॥ [illegible] सभाषाटीकं श्रीमार्कण्डेयपुराणम् ॥

विदुषामभ्यर्थना।

अत्रास्माकं मुद्रणालये ऋगादयो वेदा उपनिषदो वेदान्तग्रन्था महाभारतादीतिहासाः श्रीमद्भागवतादिमहापुराणोपपुराणानि धर्मशास्त्र-कर्मकाण्ड-व्याकरण-न्याय-योग-सांख्य-मीमांसादिशास्त्रीयग्रन्थाः काव्य-नाटक-चम्पू-प्रभृतयो ग्रन्थाः सहस्रनामाद्यनेकस्तोत्रग्रन्था विविधभाषाग्रन्थाश्च सीसकोत्तममहद्लघ्वक्षरैर्मनोहरं मुद्रिता योग्यमूल्येन क्रय्याः सन्ति, तांश्च भवन्तः सर्वथापुस्तकसूचीपत्रं मूल्यप्रेषणेन प्राप्नुयुः।

क्षेमराज-श्रीकृष्णदासः "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणालयाध्यक्षः, मुंबईस्थः।

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस,-बम्बई.

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

भूमिका ।

★

इस भारतवर्षमें वेदार्थको लेकर प्रतिद्वापर युगके अन्तमें भगवान् श्रीवेदव्यासजी पुराणोंका विभाग करते हैं, वे ब्रह्मपुराण आदि अष्टादश पुराण हैं, जिनमें सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर, वंशानुचरित, यह पांच विषय होते हैं। इनही पांच, विषयोंके क्रमसे पुरातन कालके समस्त इतिहास; राजाओंके चरित्र, सृष्टि आदि विषय, तथा वेद शास्त्रोंका आद्योपान्त समस्त सिद्धान्त आजाता है और ऐसे ऐसे गूढ विषय, मोक्षप्राप्तिके उपाय सरलतासे पुराणोंमें वर्णन किये जाते हैं कि जिसमें चारों वर्णके नरनारी भगवद्भक्तिलाभ कर मुक्तिके अधिकारी होते हैं, इस कारण उपनिषदादिमें इतिहास पुराणको पांचवा वेद कहकर निरूपण किया है। यदि पुराण विद्या न होती, तो पुरातन तत्वके विना यह भारत वर्ष अन्धकारसे ढक जाता और पुराणोंका आशय केवल पुरातन इतिवृत्त वर्णन करनेहीका नहीं है, किन्तु उपासक की उपासना दृढ करते हुए उसको ब्रह्मलोककी प्राप्ति करनाही इष्ट है; पुराणपाठ करनेसे लोक और परलोक दोनोंही बनतेहैं, यह शंका कभी नहीं करनी चाहिये कि, पुराणोंमें भिन्न भिन्न देवताओंकी उपासना लिखी है, तथा जो पुराण जिस देवताकी महिमा वर्णन करताहै वह दूसरे देवताको न्यून कहता है यह नहीं, पुराणकी निन्दा करनेको प्रवृत्त नहीं है, किन्तु उत्कर्षता विधान करती है। जैसे कोई नेत्रोंकी महिमा वर्णन करते हुए कहे कि, तुम्हारी समान कान नहीं हैं, तो उसका वह कहना सत्यही है, इसी प्रकार पुराणोंमें परमेश्वरका भिन्न भिन्न शक्तिरूपसे वर्णन है। जैसे लिखा है "शिवके समान दूसरा नहीं, विष्णुके समान दूसरा नहीं, देवीकी समान दूसरा नहीं इसीके भजनसे मुक्ति होती है" इस बातके देखनेमें स्पष्टप्रत्यय हुई कि, नाममात्रका भेद है, परन्तु शक्ति सबकी बराबर है, तब विचारनेसे विदित होता है, यह सब परमेश्वरकेही रूपान्तरहैं, परमेश्वरके प्रतिपादक हैं, यह बात सिद्ध है और पुराणोंमें अष्टादश भेद इस कारण है कि सत, रज, तमके सम, विषम

... प्राणियोंके स्वभाव अठारह प्रकारके होते हैं, जिनके स्वभाव [illegible]

... श्रीवेदव्यासजीने यह विचार कर कि सबकी ही चित्तवृत्ति इस परमात्मामें लग जाय, अठारह प्रकारसे पुराणोंका संग्रह किया है।

यह पुराणभी संस्कृत विद्यामें होनेके कारण सब साधारण इनके रहस्यको नहीं समझ सकते. यही विचार कर ... सर्वसाधारणके समझने योग्य हिन्दी भाषामें शंका समाधानके सहित होना परम आवश्यक है और हमारे परम माननीय श्रेष्ठ श्रीयुत पंडित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने श्रीमद्भागवत, हरिवंश, शिवपुराण आदि कई पुराणोंका इसी प्रकार टीका भी किया है और हमने जिस पुराणका टीका किया है, इसकी शैली भी आचार्यके टीकेके अनुसार रक्खी है और एकबार इस टीकेको प्रकाश होनेसे पहिले उनके दृष्टिगोचर भी करा दिया है।

जिसका टीका करनेमें हम प्रवृत्त हुए हैं, यह पुराणमें सातवां पुराण मार्कण्डेय नामक है. इसमें महाभारतकी अनेक शंकाओंका समाधान तथा भारतवर्षकी अनेक सुरीतियोंके गुप्त रहस्य, अनेक प्रकारकी शिक्षा, उपदेश, बालकोंकी सुरक्षा, उनका सुयोग्य बनाना, अर्थ, धर्म, काम मोक्षादि चारों पदार्थोंकी प्राप्तिके उपाय, ब्रह्मविद्या, ईश्वरभक्ति, पातिव्रत्यधर्म, स्त्रियोंके सुधारके उपाय, वर्णाश्रमके धर्म, विधान, अग्निविद्या आदि ऐसे ऐसे अद्भुत विषय इसमें वर्णन किये हैं कि, देखते ही मनुष्यका अन्तःकरण परम आनन्दित होजाता है। इन टीकेके निर्माण करनेमें कहीं कहीं गूढ विषयोंका विवरण तथा शंकित स्थलोंका समाधान भलीभाँतिसे किया है; अक्षरार्थ, भावार्थको बहुत स्पष्ट दिखला दिया है। साथमें सप्तशती भगवती दुर्गा चरित्रका टीका भी बडे विस्तारित अर्थोंमें किया है।

अब यह ग्रंथ सब प्रकारसे अलंकृत कर सब प्रकारके स्वत्वसहित परम माननीय जगद्विख्यात "श्रीवेंकटेश्वर" (स्टीम्) यन्त्रालयाध्यक्ष सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी महोदयको समर्पण किया है जो सब प्रकारके सन्मानसहित नित्य हमारे उत्साहको बढाते रहते हैं।

जेहि मारुत गिरिमेरु उडाहीं। कहहु तूल केहि लेखे माहीं॥

परन्तु इसके पाठसे आपको अनेक विषयोंमें दक्षता और भगवद्भक्तिकी प्राप्ति होगी, ऐसी मुझे दृढ आशा है।

सज्जनोंका अनुगृहीत पं॰ कन्हैयालाल मिश्र, मोहला-दीनदारपुरा, मुरादाबाद-सिटी.

अथ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीकाकी-विषयानुक्रमणिका ।

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणभाषाटीकाप्रारंभः ॥ ॥ मङ्गलाचरणम्—श्लोकः ॥ ॥ गौरीपुत्रं नमस्कृत्य शारदामम्बिकां तथा । ब्रह्माणं शंकरं विष्णुं देवदेवं जगद्गुरुम् ॥ सुखानन्दतनूजेन कन्हैयालालशर्मणा । मार्कण्डेयपुराणस्य भाषाटीका विरच्यते ॥

जो संसारके भय और दुःखके नाश करनेमें योग्य हैं, एकान्तचित्तवाले योगीजन और संन्यासी जिनके चरणोंको ध्यान द्वारा प्राप्त करके प्रणाम करते हैं, जिन्होंने प्रगट होकर भूलोक भुवर्लोक स्वर्लोकको वामनरूपसे अतिक्रमण किया है, वह नारायणके चरणकमल आपको पवित्र करें ॥ १॥ सब पापसमूहोंके नाश करनेमें चतुर, क्षीरसागरमें शेषजीके शरीरपर मूर्तिमान् हो शयन करनेवाले, जिनके श्वाससे जलके कराल कणिका कम्पित

श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीमद्वेङ्कटेशाय नमः ॥ ॥ अथ मार्कण्डेयपुराणप्रारंभः ॥ ॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥ ॥ यद्योगिभिर्भवभयार्तिविनाशयोग्यमासाद्यवंदितमतीवविविक्तचित्तैः ॥ तद्वःपुनातुहरिपादसरोजयुग्ममाविर्भवत्क्रमविलंघितभूर्भुवःस्वः ॥१॥ पायात्सवःसकलकल्मषभेददक्षःक्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः ॥ श्वासावधूतसलिलोत्कणिकाकरालः सिन्धुःप्रनृत्यमिवयस्यकरोतिसंगात् ॥२॥ नारायणंनमस्कृत्यनरंचैवनरोत्तमम् ॥ देवींसरस्वतीं व्यासंततोजयमुदीरयेत् ॥३॥ तपःस्वाध्यायनिरतंमार्कण्डेयंमहामुनिम् ॥ व्यासशिष्योमहातेजाजैमिनिःपर्यपृच्छत ॥ १ ॥ भगवन् भारताख्यानंव्यासेनोक्तंमहात्मना ॥ पूर्णमस्तमलैःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयैः ॥ २ ॥ जातिशुद्धिसमायुक्तंसाधुशब्दोपशोभितम् ॥ पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥३॥ त्रिदशानांयथाविष्णुर्द्विपदांब्राह्मणो यथा ॥ भूषणानांचसर्वेषांयथाचूडामणिर्वरः ॥ ४ ॥

होती है जिससे ऐसा समुद्र जिनके संगसे नृत्य करतासा दिखाई देता है, वह अविनाशी तुम्हारी रक्षा करें ॥ २ ॥ नारायणनर, नरोत्तम और देवी सरस्वतीको प्रणाम करके जयकीतन अर्थात् पुराणादि पाठ करें ॥३॥ एक समय महर्षि वेदव्यासजीके शिष्य महातेजा जैमिनिने परम तपस्वी, वेदादि पढनेमें निरत, महामुनि मार्कण्डेयजीसे पूँछा ॥ १ ॥ हे भगवन् ! महात्मा वेदव्यासजीने भारत नामक जो ग्रंथ वर्णन किया है, वह सब अनेक शास्त्रोंके मर्मार्थसे युक्त ॥ २ ॥ विशुद्ध शब्दोंसे परिपूर्ण छन्द और अलंकारादि से युक्त, कानोंको सुखदायक शब्दोंसे संयुक्त और उसमें जो सब प्रश्न कहे हैं, उनका भी यथार्थ उत्तर सन्निवेशित हुआ है ॥ ३ ॥ जैसे देवताओंमें विष्णु, मनुष्योंमें ब्राह्मण संपूर्ण

गहनोंमें जैसे चूडामणि ॥४॥ अस्त्रोंमें जैसे वज्र और सब इन्द्रियोंमें जैसे मन प्रधान है; इसी प्रकार सब शास्त्रोंमें यह महाभारतही एकमात्र ॥५॥ इसमें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सबही परस्पर मिले हुए और प्रकटित रूपमें तथा पृथक् पृथक् वर्णित हुए हैं ॥ ६ ॥ अतएव यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र कामशास्त्र और मोक्षका साधन शास्त्र है ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! बुद्धिमान् महर्षिवेदव्यासजीने चारों आश्रमोंका आचार अवस्थान और साधन सबही इसमें विशेष रूपसे वर्णन किया है ॥ ८ ॥ हे तात ! उदारकर्मा महर्षि वेदव्यासजीने इस महा भारत नामक महाशास्त्रकी इस प्रकार रचना करी है कि, यह अत्यन्त विस्तृत होनेपर भी इसमें किसी स्थलका परस्पर विरोध नहीं हुआ है ॥ ९ ॥ वासुदेवके वचनरूपी इस

यथायुधानांकुलिशमिन्द्रियाणांयथामनः ॥ तथेहसर्वशास्त्राणांमहाभारतमुत्तमम् ॥ ५ ॥ अत्रार्थश्चैवधर्मश्चकामोमोक्षश्चव र्ण्यते ॥ परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्चतेपृथक् ॥ ६ ॥ धर्मशास्त्रमिदंश्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदंपरम् ॥ कामशास्त्रमिदंचाग्र्यं मोक्षशास्त्रंतथोत्तमम् ॥ ७ ॥ चतुराश्रमधर्माणामचारस्थितिसाधनम् ॥ प्रोक्तमेतन्महाभागवेदव्यासेनधीमता ॥ ८ ॥ यथा वातकृतंह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा ॥ यथा व्याप्तंमहाशास्त्रंविरोधैर्नाभिभूयते ॥ ९ ॥ व्यासवाक्यजलौघेनकुतर्कतरुहारिणा ॥ वेद शैलावतीर्णेननीरजस्कामहीकृता ॥१०॥ कलशब्दमहाहंसंमहाख्यानपराम्बुजम् ॥ कथाविस्तीर्णसलिलंकार्ष्णवेदंमहाह्रदम् ॥ ११ ॥ तदिदं भारताख्यानंबह्वर्थश्रुतिविस्तरम् ॥ तत्त्वतोज्ञातुकामोहंभगवंस्त्वामुपस्थितः ॥१२॥ कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ॥ वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसंयमकारणम् ॥ १३ ॥

जलराशिने वेदरूपी पर्वतसे निकलकर कुतर्करूपी वृक्षोंको उखाड़ पृथ्वीको रजरहित करदिया है ॥ १० ॥ कृष्ण द्वैपायनप्रणीत पंचमवेदस्वरूप यह महाह्रद (तालाब) मधुर शब्दरूप महाहंस और महाआख्यानरूपी कमलोंके, द्वारा शोभायमान और विस्तीर्ण कथारूपी जलके द्वारा पूर्ण हुआ है ॥ ११ ॥ हे भगवन् ! जो वेदार्थ और श्रुतियोंसे युक्त है उस महाभारतनामक शास्त्रका यथार्थ रूपसे अर्थ जाननेके निमित्त ही मैं आपके पास आया हूं ॥१२॥ जो जगत्की सृष्टि, स्थिति और संहार करते हैं वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्वको

१ जिनके कैवोंके छिद्रमें संपूर्ण जगत् अवस्थान करता है और जो सदाही क्रीडा करते हैं अर्थात् सच्चिदानंद स्वरूप हैं, उनकोही वासुदेव कहते हैं ।

प्राण त्याग किये ? ॥ १३ ॥ अकेली द्रुपदपुत्री द्रौपदी कृष्णा जिस प्रकार पांच पांडवोंकी महिषी हुई थी ? इस विषयमें मुझको महान् संदेह है ॥ १४ ॥ और महाबलशाली बलदेवजीने तीर्थयात्राके प्रसंगमें किस प्रकार ब्रह्महत्याके पापका प्रायश्चित्त किया था ? ॥ १५ ॥ और पाण्डव जिनके सहायक थे, उन महारथ द्रौपदीके पुत्रोंने अविवाहित अवस्थामें किस प्रकार अनाथके समान प्राण त्याग किया ? ॥ १६ ॥ यह सब आप मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये क्योंकि आपही अबोध पुरुषोंको ज्ञानोदय कराते हैं ॥ १७ ॥ योगशास्त्रोक्त अठारह दोषरहित महामुनि मार्कंडेयजी जैमिनि मुनिके इस प्रकार वचन सुनकर कहने लगे ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुनिसत्तम ! मेरे संध्यावन्दनादि करनेका समय उपस्थित

कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानांमहिषीकृष्णाह्यत्रनःसंशयोमहान् ॥ १४ ॥ भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः ॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुधः ॥ १५ ॥ कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ॥ पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥ १६ ॥
एतत्सर्वविस्तरशोममाख्यातुमिहार्हसि ॥ भवन्तोमूढबुद्धीनामवबोधकराःसदा ॥ १७ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनिः ॥
दशाष्टदोषरहितोवक्तुंसमुपचक्रमे ॥ १८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ क्रियाकालोऽयमस्माकंसंप्राप्तो मुनिसत्तम ॥ विस्तरेचापि
वक्तव्येनेषकालःप्रशस्यते ॥ १९ ॥ येतु वक्ष्यन्तिवक्ष्येऽयतानहंजैमिनेतव ॥ तथाचनष्टसन्देहंत्वांकरिष्यन्तिपक्षिणः ॥ २० ॥ पिङ्गाक्ष
श्चविबोधश्चसुपुत्रःसुमुखस्तथा ॥ द्रोणपुत्राःखगश्रेष्ठास्तत्त्वज्ञाःशास्त्रचिन्तकाः ॥ २१ ॥ वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेषामव्याहतामतिः ॥ विंध्य
कन्दरमध्यस्थास्तानुपास्यचपृच्छच ॥ २२ ॥ एवमुक्तस्तदातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥ प्रत्युवाचर्षिशार्दूलोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ २३ ॥

हुआ है, यह विस्तारसहित कहनेका समय नहीं है ॥ ॥ १९ ॥ हे जैमिने ! जो पक्षी यह विषय तुमसे कहेंगे, उनका वर्णन करताहूं, वह पक्षी यह विषय सुनाकर तुमको संदेहहीन करेंगे ॥ २० ॥ पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि खगश्रेष्ठ द्रोणके पुत्र शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले ॥ २१ ॥ पक्षी विन्ध्यपर्वतकी कन्दरामें वास करते हैं, वेदशास्त्रार्थज्ञानमें उनकी बुद्धि कभी नहीं रुकती है, तुम उनकी उपासना करके पूछो तो सब विषय जान सकोगे ॥ २२ ॥ बुद्धिमान् मार्कण्डेयजीके इसप्रकार कहनेपर उन ऋषिशार्दूल जैमिनिने विस्मयोत्फुल्लनेत्र होकर फिर पूछा ॥ २३ ॥

१ निद्रा, तन्द्रा, भय, क्रोध, मोह, मद, उन्माद, प्रमाद, विस्मय, सन्देह, लोभ, असूया, मात्सर्य, कपटता, मिथ्या, नास्तिकता, अगमदर्शिता और अशिक्षा ।

जैमिनिने कहा-हे ब्रह्मन् ! पक्षी मनुष्यके समान कथा कह सकते हैं, प्रथम तो यही आश्चर्य है और फिर इसपर भी उन्होंने अत्यन्त दुर्लभ शास्त्रज्ञान प्राप्त कियाहै ॥ २४ ॥ जो हो, यदि तिर्यग्योनिमें उनका जन्म हुआ है, तो फिर उनको ऐसा ज्ञान कहां से हुआ और किस लिये उनको द्रोणपुत्र कहते हैं ॥ २५ ॥ यह चार पक्षी जिसके पुत्र हैं वह द्रोण कौन है और इन गुणवान् महात्मा पक्षियों को किस प्रकार धर्मज्ञान हुआ ? ॥२६॥ मार्कण्डेयजी बोले- हे जैमिने ! पूर्वकालमें नन्दनवनमें इन्द्र, नारद और अप्सराओं के एकत्र मिलित होनेपर जो घटना हुई थी, वह एकाग्र चित्तसे सुनो ॥ २७ ॥ एक दिन देवर्षि नारदजीने हठात् उपस्थित होकर देखा कि, देवराज इन्द्र

जैमिनिरुवाच॥अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्खगवागिवमानुषी॥यत्पक्षिणस्तेविज्ञानमापुरत्यन्तदुर्लभम्॥२४॥तिर्य्यग्योन्यांयदिभवस्तेषांज्ञानंकुतोऽभवत॥कथंचद्रोणतनयाःप्रोच्यन्तेतेपतत्रिणः॥२५॥कश्चद्रोणःप्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम्॥जातंगुणवतांतेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम्॥२६॥मार्कण्डेयउवाच॥शृणुष्वावहितो भूत्वायद्वृत्तंनन्दनेपुरा॥ शक्रस्याप्सरसांचैवनारदस्यचसंगमे॥२७॥नारदोनन्दनेऽपश्यत्पुरन्दरमवस्थितम्॥शक्रंसुराधिराजानंतन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८॥ सतेनर्षिवरिष्ठेनदृष्टमात्रःशचीपतिः॥समुत्तस्थौस्वकंचास्मैददावासनमादरात्॥२९॥तंदृष्ट्वाबलवृत्रघ्नमुत्थितंत्रिदशाङ्गनाः ॥ प्रणेमुस्ताश्चदेवर्षिंविनयावनताः स्थिताः ॥३०॥ ताभिरभ्यर्चितःसोऽथ उपविष्टशतक्रतौ ॥ यथार्हंकृतसंभाषःकथाश्चक्रेमनोरमाः॥३१॥ततः कथान्तरेशक्रस्तमुवाचमहामुनिम्॥शक्र उवाच ॥ ॥ देह्याज्ञांनृत्यतामासांयायाभिमतेतितै ॥३२॥ रम्भावाकर्कशावाथउर्वश्यथ तिलोत्तमा ॥ घृताचीमेनकावापियत्रवाभवतोरुचिः ॥ ३३ ॥

कितनीही वेश्याओंसे परिवेष्ठितहो उनके मुखकी ओर देखरहे हैं ॥ २८ ॥ शचीपति इन्द्रने उन महर्षिश्रेष्ठको देखतेही उठकर अत्यन्त आदर किया और बैठनेके लिये उनको अपना आसन दिया ॥ २९ ॥ इंद्रको उठता हुआ देखकर स्वर्गकी वेश्याओं ने भी उठकर महर्षिको प्रणाम किया और विनीतभावसे नीचेको मस्तक किये खड़ी रहीं ॥ ३० ॥ नारद इसप्रकार उनसे पूजित हो जब इंद्रके सहित बैठे, तब परस्पर यथायोग्य अनेकप्रकारकी वार्ता करने लगे ॥ ३१ ॥ इसी बीचमें शचीपति इंद्रने महामुनिसे कहा, इंद्र बोले--हे महाभाग ! जिसको आपकी इच्छाहो गाने की आज्ञादो ॥२२॥ रंभा, मिश्रकेशी, तिलोत्तमा, उर्वशी, घृताची वा मेनका इनमें जिसकी अभिलाषाहो उसीको नृत्य करनेकी

जानोगे ॥ ३३ ॥ द्विजश्रेष्ठ नारदजीने देवराज इंद्रके यह वचन सुन, कुछ काल चिन्ता कर विनय करती हुई अप्सराओंसे कहा ॥ ३४ ॥
देखो, तुममें जो रमणी रूपवती और उदारता इत्यादि गुणों में अपनेको गुणवती विचारतीहो वही मेरे सन्मुख नृत्य करे ॥३५॥ क्योंकि रूपवती
और गुणवतीके अतिरिक्त नाट्यशास्त्रमें अन्यकी सिद्धि नहीं होती । एवं हाव, भाव और कटाक्ष विक्षेपादि युक्त नृत्यकोही नृत्य कहते हैं अन्य नृत्य
[illegible] है॥३६॥मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर उनका यह वचन सुनकर एक एक अप्सरा परस्पर कहने लगी "मैं ही सबसे गुणोंमें अधिकहूं तुम नहीं"॥३७॥
तुममें इसप्रकार विवाद उपस्थित हुआ देखकर भगवान् पाकशासन (इन्द्र) ने कहा, तुम इन मुनिसेही पूछो तुममें कौन गुणवती है, सो यही कह

एतच्छ्रुत्वाद्विजश्रेष्ठोवाचंशक्रस्यनारदः॥विचिन्त्याप्सरसःप्राहविनयावनताःस्थिताः॥३४॥युष्माकमिहसर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम्॥
आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः ॥ ३५ ॥ गुणरूपविहीनायाःसिद्धिर्नाट्यस्यनास्तिवै ॥ चार्वधिष्ठानवन्नृत्यंनृत्यमन्यद्विड
म्बनम् ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तद्वाक्यसमकालंचएकैकास्तानतास्ततः ॥ अहंगुणाधिकानत्वंनत्वंचान्याब्रवीदिदम् ॥३७॥
तासांसंभ्रममालोक्य भगवान्पाकशासनः ॥ पृच्छ्यतांमुनिरित्याहवक्तायांवोगुणाधिकाम् ॥ ३८ ॥ शक्रच्छन्दानुयाताभिःपृष्टस्ताभिः
सनारदः ॥ प्रोवाचयत्तदावाक्यंजैमिनेतन्निबोधमे ॥ ३९ ॥ तपस्यंतंनगेन्द्रस्थंयावःक्षोभयतेबलात् ॥ दुर्वाससंमुनिश्रेष्ठं तांवोमन्येगु
णाधिकाम् ॥ ४० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वासर्वावेपितकन्धराः ॥ अशक्यमेतदस्माकमितिताश्चक्रिरेकथाः
॥ ४१ ॥ तत्राप्सरावपुर्नाममुनिक्षोभणगर्विता ॥ प्रत्युवाचानुयास्यामियत्रासौसंस्थितोमुनिः ॥ ४२ ॥

सकते हैं ॥३८॥ हे जैमिने ! इन्द्रकी इच्छानुसार चलनेवाली वेश्याओंके पूछनेपर महर्षि नारदजीने उस समय जो कहा था, वह कहताहूं सुनो
॥ ३९ ॥ नारदजी बोले-देखो, मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा पर्वतके ऊपर तपस्या करते हैं, उनको जो मोहित कर सकेगी, तुममें वही अधिक
गुणशालिनी है ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उनका यह वचन सुनकर सब अप्सराओंने मस्तक कम्पायमान करके कहा, इस कार्यके करनेमें
हमारी सामर्थ्य नहीं है ॥ ४१ ॥ तिनमें वपुनामक एक अप्सराने अनेक वार अनेक मुनियोंका तप भंग किया था, इसी कारण उसने गर्व
सहित कहा--आज्ञा कीजिये, जहां दुर्वासा मुनि स्थित हैं, मैं वहीं जाऊंगी ॥ ४२ ॥

में अभी कामबाणके आघातसे उनकी मनोरूप लगामको छेदन कर इंद्रियरूपी घोडोंको उन्मार्गगामी करके देहरूपी रथको बुद्धिरूप सारथी विहिन करूंगी ॥ ४३ ॥ यदि ब्रह्मा, विष्णु वा महादेव भी हों, तो भी निःसन्देह इस समय उनका अन्तर कामबाणसे जर्जरित करूंगी ॥ ४४ ॥ वपु नामक अप्सरा यह कहकर हिमालय पर्वतमें गई, वहां मुनिकी तपस्याके प्रभावसे आश्रमवासी हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त थे ॥ ४५ ॥ अप्सराओंमें श्रेष्ठ वपु जहां महामुनि दुर्वासा वास करते थे, वहांसे एक कोशमात्रके अन्तरमें अवस्थानकरके पुंस्कोकिलके समान मनोहर कंठसे गान करने लगी ॥ ४६ ॥ मुनिवर दुर्वासा इस

अद्यतंदेहयन्तारंप्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ॥ स्मरशस्त्रगलद्रश्मिंकरिष्यामिकुसारथिम् ॥४३॥ ब्रह्माजनार्दनोत्रापियदिवानीललोहितः ॥
तमप्यद्यकरिष्यामिकामबाणक्षतान्तरम्॥४४॥इत्युक्त्वाप्रजगामाथप्रालेयाद्रिंवपुस्तदा॥मुनेस्तपःप्रभावेणप्रशान्तश्वापदाश्रमम्॥४५॥
सापुंस्कोकिलमाधुर्यायत्रास्तेसमहामुनिः ॥ क्रोशमात्रंस्थितातस्मादगायतवराप्सराः॥४६॥तद्गीतध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानसः॥
जगामतत्रयत्रास्तेसाबालारुचिरानना॥४७॥तांदृष्ट्वाचारुसर्वाङ्गींमुनिःसंस्तभ्यमानसम्॥क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वितः॥४८॥
इदमाहततोवाक्यंमहर्षिस्तांमहातपाः॥४९॥यस्माद्दुःखार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् ॥ आगतासिमदोन्मत्तेममदुःखायखेचरि॥५०॥
तस्मात्सुपर्णगोत्रेत्वंमत्कोधकलुषीकृता ॥ जन्मप्राप्स्यसिदुष्प्रज्ञेयावद्वर्षाणिषोडश ॥ ५१ ॥ निजरूपंपरित्यज्यपक्षिणीरूपधारिणी॥
चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽधमाप्सराः॥५२॥अप्राप्यतेषुचप्रीतिंशस्त्रपूतापुनर्दिवि ॥ वासमाप्स्यसिवक्तव्यंनोत्तरंतेकथंचन ॥ ५३ ॥

गीतको सुनकर जहां वह कोकिलकंठी बाला स्थित थी, आश्चर्यचित्तसे वहां गये ॥ ४७ ॥ मुनिवर दुर्वासाने उस सर्वांगसुंदरी कामिनी को देख, मन रोक " मेरे तपमें विघ्न करने के लियेही आई है " यह समझ अत्यन्त क्रोध युक्त होकर ॥ ४८ ॥ महातपा महर्षि ने उससे कहा ॥ ४९ ॥ रे मदोन्मत्त खे चारि ! मेरी इस दुःखोपार्जित तपस्यामें तू विघ्न करनेके लियेही आई है ॥ ५० ॥ इस कारक रे दुर्बुद्धे ! तू मेरे क्रोधसे कलुषित होकर सोलहवर्षतक पक्षियोंके कुलमें जन्म ग्रहण करके रहेगी ॥ ५१ ॥ रे अप्सराधम ! तू अपना रूप त्याग कर पक्षीरूप धारण करेगी तेरे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ५२ ॥ तू पुत्र उत्पन्न करने की प्रीति प्राप्त करनेमें वंचित होगी और शस्त्राघातसे विनष्टपापहोकर फिर स्वर्ग में

जावणी, देखना इसमें अब कोई उत्तर न करना ॥ ५३ ॥ ब्राह्मणश्रेष्ठ महर्षि दुर्वासा क्रोधसे लाल नेत्रहो चंचल मनोरम कंकणधारिणीमानिनी वपुको यह वचन सुना कर, पृथ्वीको छोड़, प्रसिद्ध गुणों से युक्त आकाश गंगाको चलेगये ॥ ५४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां वपुशापवर्णनं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, सब पक्षियोंके राजा गरुड अरिष्टनेमिके पुत्र हुए, गरुड का पुत्र सम्पाति हुआ ॥ १ ॥ अत्यन्त बलवान् और वायुके समान विक्रमशाली सुपार्श्व सम्पाति का पुत्र हुआ, इसका पुत्र कुन्ति और कुन्तिका पुत्र प्रलोलुप हुआ ॥२॥ प्रलोलुपके दो पुत्र हुए. कंक और कन्धर॥३॥कंकने एक दिन कैलास पर्वतमें

इतिवचनमसह्यंकोपसंरक्तदृष्टिश्चलकलवलयांतांमानिनीं श्रावयित्वा ॥ तरलतरतरङ्गांगांपरित्यज्यविप्रः प्रथितगुणगणौघांसंप्रयातःखगङ्गाम् ॥ ५४ ॥ इतिमार्कण्डेयपुराणेवपुशापकथनंनामप्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूद्गरुडोनामपक्षिराट् ॥ गरुडस्याभवत्पुत्रःसम्पातिरितिविश्रुतः ॥ १ ॥ तस्याप्यासीत्सुतःशूरःसुपार्श्वोवायुविक्रमः ॥ सुपार्श्वतनयःकुन्तिःकुन्तिपुत्रःप्रलोलुपः ॥ २ ॥ तस्यापितनयावास्तांकङ्कःकन्धरएवच ॥ ३ ॥ कङ्कःकैलासशिखरेविद्युद्रूपेतिविश्रुतम् ॥ ददर्शाम्बुजपत्राक्षंराक्षसं धनदानुगम् ॥ ४ ॥ आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बरधारिणम् ॥ भार्यासहायमासीनंशिलापट्टेऽमलेशुभे ॥ ५ ॥ तद्दृष्टमात्रं कङ्केनरक्षःक्रोधसमन्वितम् ॥ प्रोवाचकस्मादायातस्त्वमितोह्यण्डजाधम ॥६॥ स्त्रीसन्निकर्षेतिष्ठन्तंकस्मान्मामुपसर्पसि ॥ नैषधर्मःसुबुद्धिनांमिथोनिष्पाद्यवस्तुषु ॥७॥ कङ्कउवाच ॥ ॥ साधारणोऽयंशैलेन्द्रोयथातवतथामम ॥ अन्येषांचैवजन्तूनांममताभवतोऽत्रका ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ८ ॥

होकर पद्मपत्रके समान विशाल नेत्रवाले कुबेरके अनुचर विद्युद्रूप नामक राक्षसको देखा ॥४॥ यह राक्षस उस समय निर्मल माला और अच्छे अच्छे वस्त्र धारण किये स्वच्छ शिलापर भार्याके संग बैठा हुआ मद्यपान कर रहा था ॥ ५ ॥ विद्युद्रूप राक्षस कंकको देखते ही अत्यन्त क्रोधित होकर कहने लगा, रे पक्षियोंमें अधम ! तू किस लिये यहां आया है ? ॥ ६ ॥ मैं स्त्रीके संग बैठा हूं इस समय किस कारण तू मेरे समीप आया है ? क्योंकि रहस्य कार्यमें बुद्धिमान् पुरुषोंको ऐसा आचरण नहीं करना चाहिये ॥७॥ कंकने कहा--इस पर्वतपर सबका समान अधिकार है,

इसमें जिसप्रकार तुम्हारा अधिकार है वैसाही मेरा है. और अन्यान्यजन्तुवोंका भी उसी प्रकार है, फिर इस विषयमें तुमको इतनी ममता क्यों है ? ॥८॥ मार्कण्डेयजी बोले-कंकके इस प्रकार कहनेपर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधित हो खड्गाघातसे उसका शिर काट डाला, शिर कटनेके कारण रुधिरके गिरनेसे अतिभयंकर कार्य हुआ, तब कंक विचेतन होकर मर गया ॥९॥ इसके पीछे पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने कंकको मरा हुआ सुन अत्यन्त क्रोध सहित विद्युद्रूप राक्षसके मारनेकी इच्छा करी ॥१०॥ अनन्तर बड़ा भाई कंधर कंक जहां मारा गया था, कैलास पर्वतके उसी स्थानमें जाकर उसका अन्त्येष्टि कर्म किया और विस्फारितनेत्रोंसे सर्पके समान श्वास लेता हुआ ॥११॥ भ्राताका मारनेवाला विद्युद्रूप राक्षस जहां स्थित था, वहां गया,

ब्रुवाणमित्थंखड्गेनकङ्कंचिच्छेदराक्षसः ॥ क्षरत्क्षतजबीभत्संविस्फुरन्तमचेतनम् ॥ ९ ॥ कङ्कंविनिहतंश्रुत्वाकन्धरःक्रोधमूर्छितः॥
विद्युद्रूपवधायाशुमनश्चक्रेण्डजेश्वरः ॥ १० ॥ सगत्वाशैलशिखरंकङ्कोयत्रहतःस्थितः ॥ तस्य संकलनंचक्रेभ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचरः ॥
कोपामर्षविवृत्ताक्षोनागेन्द्रइवनिःश्वसन् ॥११॥ जगामाथसयत्रास्तेभ्रातृहातस्यराक्षसः॥ पक्षवातेनमहताचालयन्भूधरान्वरान् ॥१२॥
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षणः ॥ क्षणात्क्षयितशत्रुःसपक्षाभ्यांक्रान्तभूधरः ॥ १३ ॥ पानासक्तमतिंतत्रंतंददर्शनिशाचरम् ॥
आताम्रवक्त्रनयनंहेमपर्यङ्कमाश्रितम् ॥ १४ ॥ स्रग्दामापूरितशिखंहरिचन्दनभूषितम् ॥ केतकीपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥ १५ ॥
वामोरुमाश्रितांचास्यददर्शायतलोचनाम् ॥ पत्नींमदनिकांनामपुंसकोकिलकलस्वनाम् ॥ १६ ॥

उसके गमन समयमें पंखोंकी वायुके वेगसे आहत होकर बड़े बड़े पर्वत चलायमान होने लगे ॥ १२ ॥ और समुद्रका जल इधर उधर बिखरने लगा कंधरने इस प्रकार एकमात्र पंखोंके आश्रयसे क्षणमात्रमेंही पर्वतको आक्रमण किया ॥ १३ ॥ पक्षी श्रेष्ठ कंधरने पर्वतके ऊपर पहुंचकर देखा कि, निशाचर विद्युद्रूप सुवर्णमय शय्यापर बैठा हुआ मद्यपान कर रहा है ॥ १४ ॥ उसके मुखमण्डल और दोनों नेत्रोंने कुछेक लालवर्ण धारण किया है और उसका मस्तक मालासे युक्त, सर्वाङ्ग हरिचंदनके द्वारा चर्चित और मुखमण्डल केतकीपुष्पके गर्भपत्रके समान सफेद दांतोंकी पंक्तिसे शोभायमान हो रहा है ॥ १५ ॥ और यह भी देखा कि, एक सर्वाङ्गसुन्दरी कोकिलकंठी नितम्बिनी उसके समीप बैठी है, यही उसकी पत्नी है । कामिनीके दोनों नेत्र बड़े और उसका नाम मदनिका है ॥ १६ ॥

इसके उपरान्त पक्षियोंमें श्रेष्ठ कन्धरने अत्यन्त क्रोधित होकर पर्वतकी कन्दरामें बैठे हुए निशाचरको बुलाकर कहा रे दुष्टात्मन्! शीघ्र आकर मुझसे युद्धकर॥ १७॥ जो कि, तैंने मदोन्मत्त होकर मेरे बड़े भाई कंकका वध किया है, इस कारण अब तुझको निःसन्देह यमालय भेजूंगा ॥ १८॥ विश्वासघातकता, स्त्रीहत्या और बालकोंकी हत्या करानेवाले पातकी जिन नरकोंमें जाते हैं, तू भी इससमय मेरे हाथसे मरकर उन्हीं नरकोंमें जायगा॥ १९॥ मार्कण्डेयजी बोले--वह निशाचर विद्युद्रूप पक्षिश्रेष्ठ कंधरके यह वचन अपनी पत्नीके निकट सुन, अत्यन्त क्रोधित होकर पक्षीसे कहने लगा॥ २०॥ रे खेचर! तेरे भाईके मारनेमें मेरा पौरुषही प्रकाश पाता है, अतएव अब इस खड्गसे तुझकोभी निहत करूंगा॥ २१॥ रे पतंगाधम! क्षणकाल ठहर, मेरे निकटसे

ततोरोषपरीतात्माकन्धरःकन्दरस्थितम् ॥ तमुवाचसुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववैमया॥ १७॥ यस्माज्ज्येष्ठोममभ्राताविश्रब्धोघातितस्त्वया ॥ तस्मात्त्वांमदसंसक्तंनयिष्येयमसादनम्॥ १८॥ विश्वस्तघातिनांलोकायेचस्त्रीबालघातिनाम् ॥ यास्यसेनिरयान्सर्वांस्तांस्त्वमधमयाहतः ॥ १९॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्येवंपतगेन्द्रेणप्रोक्तंस्त्रीसन्निधौतदा॥ रक्षःक्रोधसमाविष्टंप्रत्यभाषतपक्षिणम्॥ २०॥ यदितेनिहतोभ्रातापौरुषं तद्धिदर्शितम् ॥ त्वामप्यद्यहनिष्येहंखड्गेनानेनखेचर॥ २१॥ तिष्ठक्षणंनात्रजीवन्पतगाधमयास्यसि ॥ इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभंविमलंखड्गमा देद ॥ २२॥ ततःपतगराजस्ययक्षाधिपभटस्यच ॥ बभूवयुद्धमतुलंयथागरुडशक्रयोः॥ २३॥ ततःसराक्षसःक्रोधात्खड्गमाविध्यवेगवत्॥ चिक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारवर्चसम् ॥ २४॥ पतगेन्द्रश्चतंखड्गंकिञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात् ॥ वक्रेणजग्राहतदागरुणःपन्नगं यथा ॥ २५॥ वक्रपादतलैर्भङ्क्त्वाचकेक्षोभमथाण्डजः ॥ तस्मिन्भग्नेततःखड्गेबाहुयुद्धमवर्तत ॥ २६ ॥

जीवित अवस्थामें नहीं जा सकेगा यह कह कर उस राक्षसने अंजनपुंजके समान कृष्ण वर्ण निर्मल खड्ग ग्रहण किया ॥ २२॥ पूर्वकालमें जिसप्रकार इन्द्रके संग गरुडका तुमुल युद्ध हुआ था, वैसेही इस राक्षसके संग पक्षी कंधरका संग्राम होने लगा ॥ २३॥ अनन्तर उस राक्षसने अत्यन्त क्रोधमें भरकर अग्निके समान चमकता हुआ कृष्णवर्ण खड्ग वेगसहित पक्षीके ऊपर चलाया ॥ २४॥ पक्षीने भी वैसेही पृथ्वीसे कुछेक कूदकर गरुड जिस प्रकार सर्पोंको चोंचमें पकड़ते हैं उसी प्रकार उस खड्गको चोंचमें धारण कर लिया ॥ २५॥ पक्षिश्रेष्ठ कंधर चोंचमें खड्गधारणपूर्वक पैरोंसे उसको तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और फिर उनका बाहुयुद्ध होने लगा ॥ २६॥

अनन्तर निशाचर पक्षीके द्वारा वक्षस्थलमें आक्रान्त होकर पक्षीके प्रहारसे जर्जरित हुआ और उसकी नाड़ी हाथ पैर तथा मस्तक देहसे पृथक् होगया ॥ २७ ॥ उस राक्षसके मरनेपर उसकी पत्नी मदनिकाने भयाकुलचित्तसे खगराजकी शरणागत होकर कहा--हे महाशय ! मैं आप की भार्या हुई ॥ २८ ॥ खगश्रेष्ठ कन्धरने--निशाचरको मारकर भ्रातृवध जनित शोकसे निष्कृति लाभ की और मदनिकाको संग लेकर अपने घर आया ॥२९॥ मेनकाकी पुत्री निशाचरी मदनिका अपनी इच्छानुसार रूप धारणकर लेतीथी, इस कारण कंधरके घर आकर पक्षीरूप अवलम्बन किया ॥३०॥ इसी पक्षिणीके उदरसे दुर्वासा मुनिकी शापानलसे युक्त वपु अप्सराने जन्म ग्रहण किया, खगपति

ततःपतगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षसः ॥ हस्तपादकरैराशुशिरसाचवियोजितः॥२७॥तस्मिन्विनिहतेसास्त्रीखगंशरणमभ्यगात् ॥ किञ्चित्सञ्जातसन्त्रासाप्राहभार्याभवामिते॥२८॥ तामादायखगश्रेष्ठःस्वकंगृहमगात्पुनः ॥ गत्वासनिष्कृतिंभ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२९॥ कन्धरस्यचसावेश्मप्राप्येच्छारूपधारिणी ॥ मेनकातनयासुभ्रूःसौपर्णरूपमाददे ॥ ३० ॥ तस्यांसजनयामासताक्ष्रींनामसुतांतदा ॥ मुनिशापाग्निविप्लुष्टांवपुमप्सरसांवराम् ॥ तस्यानामतदाचक्रेताक्ष्रीमितिविहंगमः ॥३१॥ मन्दपालसुताश्चासंश्चत्वारोऽमितबुद्धयः ॥ जरितारिप्रभृतयोद्रोणान्ताद्विजसत्तमाः ॥३२॥ तेषांजघन्योधर्मात्मावेदवेदांगपारगः ॥ उपयेमेसतांताक्ष्रींकन्धरानुमतेशुभाम् ॥३३॥ कस्यचित्त्वथकालस्यताक्ष्रींगर्भमवापह ॥ सप्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षेत्रंजगामसा ॥ ३४ ॥ कुरुपाण्डवयोर्युद्धे वर्तमानेसुदारुणे ॥ भावित्वाच्चैवकार्यस्यरथमध्येविवेशसा ॥३५॥ तत्रापश्यतयुद्धंसासैर्वषांपृथिवीक्षिताम् ॥ शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमंयथादेवासुरंरणम् ॥ ३६ ॥

कंधरने उसका नाम तार्क्षी रक्खा ॥३१॥ हे द्विजसत्तम ! मन्दपाल नामक ब्राह्मणके चार पुत्र थे, उनमें बड़ेका नाम जितारि और छोटेका नाम द्रोण था वह सब अत्यन्त बुद्धिमान् थे ॥३२॥ तिनमें वेदवेदाङ्गका तत्त्व जाननेवाले धर्मात्मा द्रोणके संग खगराज कंधरकी अनुमतिसे उस सर्वाङ्गसुन्दरी तार्क्षीका विवाह कर दिया था ॥ ३३ ॥ अनन्तर कुछ दिन बीतनेपर उस तार्क्षीको गर्भ रहा गर्भ धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें धारणके दिनसे सात पक्ष बीतनेपर तार्क्षी कुरुक्षेत्रमें गई ॥ ३४ ॥ उस समय कौरव पाण्डवोंका दारुण युद्ध हो रहा था, किन्तु जो अवश्य होनेवाली बात है उसको कोई खंडन नहीं कर सकता, इसीसे तार्क्षी उस युद्धस्थलमें गई ॥ ३५ ॥ पक्षिणीने वहां पहुंचकर देखा कि,

भगदत्त और अर्जुन तुमुल संग्राम कर रहे हैं, उनके निरन्तर छूटते हुए बाणोंसे आकाशमण्डल टीढीके समान व्याप्त हुआ है ॥ ३६ ॥ इधर पार्थके धनुषसे छूटे हुए वेगसहित एक बाणने आकर तार्क्षीके जठरकी त्वक् (खाल) वींध डाली ॥ ३७ ॥ पक्षिणीकी कुक्षि विदीर्ण होनेपर चंद्रमाके समान श्वेतवर्ण चार अंडे अत्यन्त ऊँचे स्थानसे गिरकर भी आयुकाल विशेष विद्यमान होनेके कारण रूईके समान भूमिमें गिरे ॥ ३८ ॥ इसी समयमें भगदत्तके सुप्रतीक नामक गजराजका महाप्रमाण गलघंटा बाणसे छिन्न बंधन होकर गिरा ॥३९॥ यद्यपि दोनों एक ही कालमें पृथ्वीपर प्राप्त हुए, किन्तु घंटा इस प्रकार गिरा कि, उस मांसपिंडके उपरिस्थ सब अंडोंके चारों ओर भलीभांतिढक्कन हो गया

तत्रापश्यत्तदायुद्धंभगदत्तकिरीटिनोः ॥ निरंतरंशरैरासीदाकाशशलभैरिव ॥ ३७ ॥ पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ॥ तस्याभल्लमहिश्यामंतत्रचंचिच्छेदजाठरीम् ॥३८॥ भिन्नेकोष्ठेशशाङ्काभंभूमावण्डचतुष्टयम् ॥ आयुषःसावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥३९॥ तत्पातसमकालंचसुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ॥ पपातमहतीघण्टाबाणसंछिन्नबन्धना ॥ ४० ॥ समंसमन्तात्प्राप्तातुनिर्भिन्नधरणीतला ॥ छादयन्तीखमण्डानिस्थितानिपिशितोपरि ॥४१॥ हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तेनरेश्वरे ॥ बहून्यहान्यभूद्युद्धंकुरुपाण्डवसैन्ययोः ॥४२॥ वृत्तेयुद्धेधर्मपुत्रेगतेशान्तनवान्तिकम् ॥ भीष्मस्यगदतोऽशेषान्श्रोतुंधर्मान्महात्मनः ॥ ४३ ॥ घण्टागतानितिष्ठन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ॥ आजगामतमुद्देशंशमीकोलामसंयमी ॥४४ ॥ सतत्रशब्दमशृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ॥ बाल्यादस्फुटवाक्यानांविज्ञानेऽपिपरेसति ॥ ४५ ॥

॥ ४० ॥ नरपतिश्रेष्ठ भगदत्तके उस युद्धमें मारे जानेपर भी कौरव और पांडवोंकी सेनाका बहुत दिनोंतक युद्ध हुआ ॥४१॥ अनन्तर युद्ध समाप्त होनेपर धर्मपुत्र युधिष्ठिर धर्म विषयक नानाप्रकारके उपदेश ग्रहण करनेको शन्तनुपुत्र महात्मा भीष्मके निकट गये ॥४२॥ इसके पीछे जहां घंटेसे ढके हुए पक्षीके बच्चे विद्यमान थे, अकस्मात् संयमचित्त ब्राह्मण श्रेष्ठ शमीकमुनि उस स्थानमें आये ॥ ४३ ॥ और घंटेके भीतर पक्षीके बच्चोंका "चिची कुची" शब्द उन्होंने सुना यद्यपि बालकोंको अत्यन्त ज्ञान हो गया था, किन्तु तो भी वह बाल्यकालवशतः अस्फुट अर्थात् जो समझमें न आवें, ऐसे शब्द उच्चारण करते थे ॥४४॥ अनन्तर शिष्योंके सहित ऋषिश्रेष्ठने अकस्मात् पक्षिशावकों का शब्द सुनकर आश्चर्य युक्त

चित्तसे घंटा उठाया और माता पिता तथा पंखहीन पक्षीके बच्चोंको देखा ॥ ४५ ॥ मुनिश्रेष्ठ भगवान् शमीकमुनिने भूतलमें यथावत् स्थित पक्षीके बच्चोंको देखकर अनुगत ब्राह्मणोंसे आश्चर्य युक्त होकर कहा ॥४६॥ हे ब्राह्मणो ! पूर्वकालमें देवताओंसे ताडित होकर जब दैत्योंकी सेना इधर उधर भागने लगी, उस समय द्विजश्रेष्ठ शुक्राचार्यजीने उससे सत्यही कहा था ॥ ४७ ॥ "हे दैत्यगण ! तुम मत भागो" निवृत्तहोओ ! इसप्रकार कातर होकर किस लिये जातेहो ? शौर्य और यश त्यागकर कहां जाओगे ? तुम क्या कभी नहीं मरोगे ? ॥ ४८ ॥ पूर्वमें विधाताने जब तुमको उत्पन्न किया है, तो जबतक उनकी इच्छा न हो, तबतक युद्ध करो ना भागो, किसी प्रकार तुम नहीं मरोगे ॥ ४९ ॥ देखो; कोई अपने

अथर्षिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाटचविस्मितः ॥ अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददर्शह ॥ ४६ ॥ तानितत्रतथाभूमौशमीकोभगवान्मुनिः ॥ दृष्ट्वासविस्मयाविष्टःप्रोवाचानुगतान्द्विजान् ॥ ४७ ॥ सम्यगुक्तंद्विजाग्र्येणशुक्रेणोशनसाम्वयम् ॥ पलायनपरंदृष्ट्वादैत्यसैन्यंसुरार्दितम् ॥४८॥ नगन्तव्यंनिवर्तध्वंकस्माद्व्रजतकाराः ॥ उत्सृज्यशौर्य्ययशसीक्वगतानमरिष्यथ ॥४९॥ नश्यतोयुध्यतोवापितावद्भवतिजीवितम् ॥ यावद्धातासृजत्पूर्वंनयावन्मनसेप्सितम् ॥५०॥ एकेम्रियन्तेस्वगृहेपलायन्तोऽपरे जनाः ॥ भुञ्जन्तोऽन्नंतथैवापःपिबन्तोनिधनंगताः ॥५१॥ विलासिनस्तथैवायेकामयानानिरामयाः ॥ अविक्षतांगाःशस्त्रैश्चप्रेतराजवशंगताः ॥ ५२ ॥ अन्येनपम्यभिरतानीताःप्रेतनृपानुगैः ॥ योगाभ्यासेरताश्चान्येनैवप्रापुरमृत्युताम् ॥५३॥ शम्बरायपुराक्षिप्तंवज्रंकुलिशपाणिना ॥ हृदयेऽभिहतस्तेननथापिनमृतोसुरः ॥ ५४ ॥

घर रहनेपरभी मरताहै कोई भागकर भी मरता है कोई पान भोजन करते करते ही प्राण त्याग करता है ॥ ५० ॥ और कोई कामगामी व सुस्थ शरीरसे विद्यमान रहकरभी दिव्यविलास वासना भोगता हुआ शस्त्रादिसे अविद्ध होकर भी कालके करालगालमें गिरता है ॥ ५१ ॥ और कोई तपस्यामें निरत तथा कोई योगाभ्यास करते यमालयमें गया है, किन्तु अमर कोई भी नहीं हुआ ॥ ५२ ॥ पहिले वज्रपाणि इंद्रने शम्बरके प्रति वज्र चलाया और उस वज्रसे उसकी छाती फट जानेपरभी उस असुरका प्राण नष्ट नहीं हुआ ॥ ५३ ॥ किंतु उसी इंद्रने फिर उसी वज्रसे सब असुरों के प्रति आघात किया किंतु उनका समय उपस्थित हुआ था, इसकारण वह यमसदनके अतिथि हुए ॥ ५४ ॥

अत एव तुम यह सब जानकर भी किस लिये ऐसे त्रसित होते हो? निवृत्त होओ" दैत्यगण यह सुन मरनेका भय त्यागकर निवृत्त हुएथे ॥ ५५ ॥ हे विप्रगण! इन पक्षिशावकोंने भी शुक्राचार्यके यह सब वचन सत्य कियेथे ॥ देखो, इस अलौकिक युद्धमेंभी इनका नाश नहीं गया ॥ ५६ ॥ क्या आश्चर्य है, देखो, कहां तो सब अंडोंका गिरना, कहां उसी समय घंटेका गिरना, और कहां मांस वसा (चरबी) और रक्तसे पृथ्वीका आच्छादन परस्पर अत्यन्त अन्तर होनेपर भी एकही कालमें सबका संघटन हुआ ॥ ५७ ॥ यह कौन हैं? हे विप्रगण! बोध होता है कि, यह सामान्य पक्षी नहीं हैं, दैवके अनुकूल होनेपर महाभाग्यता उपस्थित होती है ॥ ५८ ॥ यह कहकर महर्षि शमीकने उनको फिर देखकर कहा--हे द्विजगण!

तेनैवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रेणदानवाः ॥ प्राप्तेकालेहतादैत्यास्तत्क्षणान्निधनंगताः ॥ ५५ ॥ विदित्वैवंनसंत्रासः कर्तव्योविनिवर्तत ॥ ततो निवृत्तास्तेदैत्यास्त्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ ५६ ॥ इतिशुक्रवचःसत्यंकृतमेभिःखगोत्तमैः ॥ येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ॥ ५७ ॥ काण्डानांपतनंविप्राः क्वघण्टापतनंसमम् ॥ क्वचमांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ॥ ५८ ॥ केऽप्येतेसर्वथाविप्रनैतेसामान्यपक्षिणः ॥ दैवा नुकूलतालोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ॥ ५९ ॥ एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ॥ निवर्ततांश्रमंयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ॥ ६० ॥ मार्जाराखुभयंयत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ॥ श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यतांतत्र पक्षिणः ॥ ६१ ॥ द्विजाःकिंवातियत्नेनमार्यन्तेकर्मभिःस्वकैः ॥ रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैतेपक्षिबालकाः ॥ ६२ ॥ तथापियत्नःकर्तव्योनरैःसर्वेषुकर्मसु ॥ कुर्वन्पुरुषकारंतुवाच्यतांयातिनोसताम् ॥ ६३ ॥ इतिमुनिवरचोदितास्ततस्तेमुनितनयाः परिगृह्यपक्षिणस्तान् ॥ तरुविटपसमाश्रितालिसंघंययुरथतापसरम्यमाश्रमंस्वम् ॥ ६४ ॥

तुम निवृत्त होओ और पक्षिशावकोंको लेकर फिर आश्रममें जाओ ॥ ५९ ॥ जहां बिल्ली, चूहा, नकुल वा बाज पक्षीका भय उपस्थित न हो, वहां इन पक्षियोंको रक्खो अथवा ॥ ६० ॥ हे ब्राह्मणों! अधिक यत्नकी क्या आवश्यकता है, क्योंकि जीवमात्रही अपने कर्मसे निहत और रक्षित होते हैं, यह पक्षीके बच्चे यहां किससे रक्षित हुए हैं? ॥ ६१ ॥ किन्तु तोभी सब कार्योंमेंही मनुष्यको यत्न करना चाहिये, नहीं तो पुरुषार्थ न करनेसे साधुओंके निकट निन्दनीय होना पड़ता है ॥ ६२ ॥ मुनि बालकोंने महर्षिके यह वचन सुन, पक्षिशावकोंको ग्रहण कर वृक्षोंकी शाखाओंमें गूँजते हुए भौंरोंसे युक्त रमणीय अपने तपके आश्रममें प्रस्थान किया ॥ ६३ ॥ महर्षि शमीकने भी इच्छानुसार वनके

फल मूल पुष्प और कुश ग्रहण करके ब्रह्मा विष्णु महादेव इन्द्र यम अग्निकी पूजा की ॥ ६४ ॥ वरुण, बृहस्पति, कुबेर, वायु, धाता और विधाताकी पूजा और वेदोक्त विधिके अनुसार उनके होमादि विविध कार्य संपादन किये ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां चटकोत्पत्तिवर्णनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे विप्रेन्द्र ! मुनिश्रेष्ठ शमीकऋषि प्रतिदिन आहारदान, और रक्षाद्वारा उनका पोषण करने लगे ॥ १ ॥ पक्षियोंके बच्चे मुनिके द्वारा इस प्रकार पालित होकर एक मासके भीतर ही आका-शमार्गमें जाने लगे मुनिकुमार कौतूहलाक्रांत हो उनको देखने लगे ॥ २ ॥ तिर्यक् योनिमें उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी, सागर और

सचापिवन्यंमनसाभिकामितंप्रगृह्यमूलंकुसुमंफलंकुशान् ॥ चकारचक्रायुधरुद्रवेधसांसुरेन्द्रवैवस्वतजातवेदसाम् ॥ ६५ ॥ अपां पतेर्गोष्पतिवित्तरक्षिणोःसमीरणस्यापितथाद्विजोत्तमः ॥ धातुर्विधातुस्त्वथवैश्वदेविकाःश्रुतिप्रयुक्ताविविधास्तुसत्क्रियाः ॥ ६६ ॥ इतिमार्कण्डेपुराणेचटकोत्पत्तिकथनंनामद्वितीयोऽध्यायः ॥२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अहन्यहनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तमः ॥ चकार हारपयसातथागुप्त्याचपोषणम् ॥१॥ मासमात्रेणजग्मुस्तेभानोःस्यन्दनवर्त्मनि ॥ कौतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टामुनिकुमारकैः ॥२॥ दृष्ट्वा महींसनगरांसाम्भोनिधिसरिद्वराम् ॥ रथचक्रप्रमाणांतेपुनराश्रममागताः ॥३॥ श्रमक्लांतांतरात्मानोमहात्मानोवियोनिजाः ॥ ज्ञानंच प्रकटीभूतं तत्रतेषांप्रभावतः ॥४॥ ऋषेशिष्यानुकम्पार्थंवदतोधर्मनिश्चयम् ॥ कृत्वाप्रदक्षिणंसर्वेचरणावभ्यवादयन् ॥५॥ ऊचुश्चमर णाद्घोरान्मोक्षिताःस्मस्त्वयामुने ॥ आवासभक्ष्यपयसांत्वंनोदातापितागुरुः ॥ ६ ॥ गर्भस्थानांमृतामातापित्रानैवापिपालिताः ॥ त्वयानोजीवितंदत्तंशिशवोयेनरक्षिताः ॥ ७ ॥

नगरादि द्वारा परिपूर्ण रथके पहियेकेसमान पृथ्वीको देख अत्यन्त थकजानेपर फिर आश्रममें लौट आये । मुनिके प्रभावसे क्रमशः उनको ज्ञान उत्पन्न हुआ ॥ ३ ॥ ४ ॥ एक समय महर्षि शमीक शिष्योंके ऊपर कृपा करके धर्मोपदेश कर रहे थे, उसी समय पक्षियोंने प्रदक्षिणा करके उनके चरणोंमें अभिवादन अर्थात् प्रणाम किया ॥ ५ ॥ और कहा—"हे मुने ! आपने हमको घोर मृत्युके कष्टसे छुड़ाया है, आपहीने हमको वासस्थान आहार और जल दिया है इस कारण आपही हमारे पिता और गुरु हैं ॥ ६ ॥ गर्भवासके समयही हमारी माता

मर गई पिताने भी हमारा पालन नहीं किया, आपने ही हमारी बाल्यअवस्थासे आजतक रक्षा की है ॥ ७ हे अक्षत-तेजा ! हम जिस समय पृथ्वीमें पड़े हुए कृमिके समान सूखते थे, उस काल आपनेही हाथीका घंटा उठाकर हमारा दुःख दूर किया था ॥८॥ "यह दुर्बल पक्षियोंके बच्चे किसप्रकारसे वर्द्धित हों. कब आकाशमें उड़ें पृथ्वीसे वृक्षके उपर जाएँ और कब एक वृक्षसे दूसरे वृक्षपर जावेंगे" ॥९॥ और "कब मेरे समीप विचरण करते करते उड़ेंगे कब इनके पंखसंचालनकी वायुसे उठीहुई रजद्वारा मेरी स्वाभाविक कांति विनष्ट होगी"? ॥१०॥ हे तात ! इसप्रकार विचार कर आपने हमारा पालन किया है, अब हम बड़े हुए हैं और आपकी कृपासे ज्ञान पाया है, इस

क्षितावक्षततेजास्त्वंकृमीणामिवशुष्यताम् ॥ गजघंटांसमुत्पाटचकृतवान्दुःखरेचनम् ॥ ८ ॥ कथंवर्द्धेयुरबलाःखस्थान्द्रक्ष्याम्यहंकदा ॥ कदाभूमेर्द्रुमंप्राप्तान्द्रक्ष्येवृक्षांतरंगताम् ॥ ९ ॥ कदामेसहजाकान्तिःपांसुनानाशमेष्यति ॥ एषांपक्षानिलोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ॥ १० ॥ इतिचिन्तयतातातभवताप्रतिपालिताः ॥ तेसांप्रतंप्रवृद्धाःस्मःप्रबुद्धाःकरवामकिम् ॥ ११ ॥ इत्यृषिर्वचनंतेषांश्रुत्वासंस्कारवत्स्फुटम् ॥ शिष्यैःपरिवृतःसर्वैःसहपुत्रेणशृङ्गिणा ॥ १२ ॥ कौतूहलपरोभूत्वारोमांचपटसंवृतः ॥ उवाचतत्त्वतोब्रूतप्रवृत्तेःकारणंगिरः ॥ १३ ॥ कस्य शापादियंप्राप्ताभवद्भिर्विक्रियापरा ॥ रूपस्यवचसश्चैवतन्मेवक्तुमिहार्हथ ॥ १४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ विपुलस्वानितिख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः ॥ तस्यपुत्रद्वयंजज्ञेसुकृषस्तुंबुरुस्तथा ॥ १५ ॥ ॥ सुकृषस्यवयंपुत्राश्चत्वारःसंयतात्मनः ॥ तस्यचैर्विनयाचारभक्तिनम्राःसदैवहि ॥ १६ ॥

समय हम क्या करें ? सो आज्ञा कीजिये॥११॥शिष्योंसे युक्त महर्षि शमीक उनका यह संस्कारयुक्त प्रस्फुट वचन सुनकर अपने पुत्र शृंगीके सहित अत्यन्त अचंभेमें हुए ॥१२॥ और अत्यन्त कौतूहलके कारण पुलकित देहकरके पक्षियोंसे कहने लगे ॥ १३ ॥ कि, सत्य कहो, तुमने ऐसे स्पष्टवचन किस प्रकार उच्चारण किये और किसके शापसे तुम्हारे वाक्य और रूपकी ऐसी विक्रिया उत्पन्न हुईहै? ॥ १४ ॥ पक्षियोंने कहा—हे मुनिसत्तम ! पूर्वकालमें विपुलस्वान् नामक एक मुनि थे सुकृष और तुम्बुरु नामक उनके दो पुत्र हुए ॥ १५ ॥ हम सब उन महात्माजितेंद्रिय सुकृषके पुत्र हैं. विनय, आचार, भक्ति और नम्रता अवलम्बन करके हम सदाही उनके निकट रहतेथे ॥ १६ ॥

वह जब संयतचित्तसे तपस्या करते तब हम उनकी अभिलाषानुसार वस्तु लादेते॥ १७॥समिध, पुष्प और संपूर्ण भोजनकी सामग्री लाते.वह इस प्रकार हमारे संग वनमें वासकरतेथे॥ १८॥सुरेश्वर इंद्र एक दिन बडा देह वृद्ध पक्षीका रूप धारणकर हमारे निकट आये उनके पंख सब टूटे हुए, नेत्र ताम्रवर्ण और आत्मा शिथिल होरहाथा ॥१९॥ वह सत्य, शौच, क्षमा और आचारसंपन्न उदारचित्त मुनिसे कोई विषय पूछने लगे और जानाजाता है कि,हमारे प्रति पितृशाप होनेके कारणही आयेथे ॥२०॥ पक्षी बोला--हे द्विजेन्द्र ! मैं भूखसे अत्यन्त आतुर हुआहूं मेरी रक्षा करो हे महाभाग ! मैं नितान्त भक्षणार्थी हूं आपही मेरी गतिस्वरूपहैं॥२१॥ हे महाभाग ! मैं विन्ध्यपर्वतके शिखरचूडामें वास करताहूं अकस्मात पक्षिराज

तपश्चरणशक्तस्यशास्यमानेन्द्रियस्यच ॥ यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्योपपादितम्॥१७॥समित्पुष्पादिकंसर्वंतथाभ्यवहारिकम्॥ एवंतत्राथवसतांतस्यास्माकंचकानने॥१८॥आजगाममहावर्ष्माभग्नपक्षोजरान्वितः ॥ आताम्रनेत्रःस्रस्तात्मापक्षीभूत्वासुरेश्वरः ॥१९॥ सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ॥ जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभवायच ॥२०॥ ॥ पक्ष्युवाच ॥ ॥ द्विजेन्द्रमांक्षुधाविष्टंपरित्रातुमिहार्हसि ॥ भक्षणार्थीमहाभागगतिर्भवममातुला ॥२१॥ विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रिपत्रेरितेनवै ॥ पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा॥२२॥सोहंमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहमस्मृतिः॥ स्थितस्तत्राष्टमेनाह्नाचेतनांप्राप्तवानहम ॥२३॥ प्राप्तचेताःक्षुधाविष्टोभवंतंशरणंगतः ॥ भक्ष्यार्थीविगतानंदो दूयमानेनचेतसा ॥२४॥ तत्कुरुष्वामलमतेमत्त्राणायाचलां मतिम ॥ प्रयच्छभक्ष्यंविप्रर्षेप्राणयात्राक्षमंमम ॥२५॥ यएवमुक्तःप्रोवाचतमिन्द्रंपक्षिरूपिणम् ॥ प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यंतवेप्सितम् ॥ २६ ॥

गरुडके पंखोंकी उठी वायुद्वारा इस स्थानमें गिरते ही मूर्च्छित होगया ॥ २२ ॥ इस अवस्थामें एक सप्ताह काल बीतनेपर आठवें दिन मुझको चैतन्यता प्राप्त हुई ॥२३॥ कुछ देरके पीछे सुस्थहुआ और क्षुधासे आतुर होकर आपकी शरणमें आया हूं हे महाभाग ! मेरा हृदय भूखसे अत्यन्त कातर होकर मुझको निरानन्द करे डालता है ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! मेरी रक्षा करनेकी चेष्टा कीजिये और जिससे मेरी क्षुधा नष्ट हो ऐसा आहार दीजिये ॥२५॥ उन महर्षिने पक्षीसे इस प्रकार सुनकर पक्षीरूपी इन्द्रसे कहा हे खग ! प्राण धारणके उपयोगी तुमको किस आहारकी अभिलाषा है ? तुम्हारे आहारके उपयुक्त किस द्रव्यको लाऊं ॥२६॥

हे द्विजोत्तम ! यह कहकर फिर मुनिने कहा कि, कहिये क्या भोजन करोगे ? मैं तुम्हारे निमित्त किस आहारको लाऊं ? तब उसने उत्तर दिया कि, मनुष्यका मांस खानेसे मेरी परम तृप्ति होगी ॥ २७ ॥ ऋषि बोले--हे अण्डज ! तुम्हारी कौमार अवस्था बीतकर यौवन अवस्था हुई, वह भी अब बीतकर वृद्धावस्था आई है ॥ २८ ॥ जिसमें मनुष्यकी भी समस्त वासना शेष होती हैं, किन्तु तो भी तुम वृद्ध होकर इतने नृशंसात्मक क्यों हो ॥२९॥ देखो नरमांसभक्षण और वृद्धावस्था इन दोनोंमें बड़ा अन्तर है, तथापि दुष्ट पुरुषोंकी दुराशा निवृत्त नहीं होती ॥३०॥ अथवा मुझकोही इन सब बातोंके आलोचना करनेकी क्या आवश्यकता है ? "अंगीकार किया

इत्युक्त्वापुनरप्येनमपृच्छत्सद्विजोत्तमः ॥ आहारःकस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ॥ सचाहनरमांसेनतृप्तिर्भवतिमेपरा ॥ २७ ॥
ऋषिरुवाच ॥ कौमारंतेव्यतिक्रांतमतीतंयौवनंचते ॥ वयसःपरिणामस्तेवर्ततेनूनमंडज ॥२८॥ यस्मिन्नराणांसर्वेषामशेषेच्छानिवर्त्तते॥
सकस्माद्वृद्धभावेऽपिसुनृशंसात्मकोभवान् ॥ २९ ॥ क्वमानुषस्यपिशितंक्ववयश्चरमंतव ॥ सर्वथादुष्टभावानांप्रथमोनोपपद्यते ॥ ३० ॥
अथवाकिंममैतेनप्रोक्ते नास्तिप्रयोजनम् ॥ प्रतिश्रुत्यसदादेयमितिनोभावितंमनः ॥ ३१ ॥ इत्युक्त्वातंसविप्रेंद्रस्तथेतिकृतनिश्चयः ॥
शीघ्रमस्मान्समाहूयगुणतोऽनुप्रशस्यच ॥३२॥ उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यंसुनिष्ठुरम् ॥ विनयावनतान्सर्वान्भक्तियुक्तान्कृतांजलीन्
॥३३॥ कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठऋणैर्युक्तामयासह ॥ जातंश्रेष्ठमपत्यंवोयूयं ममयथाद्विजाः॥३४॥गुरुःपूज्योयदिमतोभवतांपरमःपिता ॥
ततःकुरुतमेवाक्यंन्व्यिलीकेनचेतसा ॥३५॥ तद्वाक्यसमकालंचप्रोक्तमस्माभिरादृतैः ॥ यद्वक्ष्यतिभवांस्तद्वैकृतमेवावधार्यताम्॥३६॥

हुआ विषय अवश्य देना चाहिये" यही मनमें विचारना उचित है ॥ ३१ ॥ हे द्विजेन्द्र ! उस पक्षीसे यह कहकर कृतनिश्चय मुनिने शीघ्र हमको बुलाया और गुणसे प्रशंसाकर ॥ ३२ ॥ हमारे विनयनम्र और भक्तियुक्त हो हाथ जोड़कर खड़े होनेपर पिताने क्षुब्ध चित्तसे अति निष्ठुर यह वचन कहे ॥३३॥ तुम सभी विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ और सन्तानोत्पादन द्वारा मेरी समान ऋणसे मुक्त हुए हो तुम जिस प्रकार मेरी सन्तान हो ऐसे ही तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्र उत्पन्न हुए हैं ॥ ३४ ॥ मैं तुम्हारा पिता हूं तुम यदि मुझको गुरु और पूज्य विचारते हो तो अकपटचित्तसे मेरे वचन प्रतिपालन करो॥३५॥तब हमने भी सादर कहा हे पिता!आप जो आज्ञा करेंगे उसको हमारे द्वारा संपादित हुआ ही समझिये॥३६॥

ऋषि बोले--हे बालको ! यह पक्षी भूख प्याससे युक्त होकर मेरी शरणमें आया है इस समय तुम्हारा मांस भोजन करनेसे क्षण कालके लिये इसकी तृप्ति ॥३७॥ और रक्तके पीनेसे प्यास निवृत्त होगी इस कारण तुम शीघ्र यही करो तब हमने अत्यन्त व्यथित हृदय और भयसे कांपते २ कहा--यह अतीव कष्टदायक कार्य हमसे नहीं होसकेगा ॥३८॥ कौन पण्डितजन होकर पराया देह पुष्ट करनेके लिये अपना जीवन नष्ट वा निहत करेगा ? क्योंकि आत्माका सन्तानकी समानयत्न करना चाहिये ॥३९॥ पितृऋण देवऋण और मनुष्यऋण जो शास्त्रमें कहा गया है, संतान उसकोही छुडाती है परन्तु पुत्र देह नहीं दे सकता ॥४०॥ इसलिये हमसे यह कार्य नहीं हो सकेगा. क्योंकि पहिले भी किसीने ऐसा आचरण नहीं

ऋषिरुवाच ॥ मामेषशरणंप्राप्तोविहंगःक्षुत्तृषान्वितः ॥ युष्मन्मांसेनयेनास्यक्षणंतृप्तिर्भवेत्तवै ॥ ३७ ॥ तृष्णा क्षयश्चरक्तेनतथाशी घ्रंविधीयताम् ॥ ततोवयंप्रव्यथिताःप्रकम्पोद्भूतसाध्वसाः ॥ कष्टंकष्टमितिप्रोच्यनैतत्कर्मेतिचाब्रुवन् ॥ ३८ ॥ कथंपरशरी रस्यहेतोर्देहं स्वकंबुधः ॥ विनाशयेद्घातयेद्वायथाह्यात्मातथासुतः ॥ ३९ ॥ पितृदेवमनुष्याणांयान्युक्तानिऋणानिवै ॥ तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रदःसुतः ॥ ४० ॥ तस्मान्नैतत्करिष्यामोनोचीर्णंयत्पुरातनैः ॥ जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यंकरोतिच ॥ ४१ ॥ मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्युपरतिस्तथा ॥ आत्मानंसर्वतोरक्ष्य माहुर्धर्मविदोजनाः ॥ ४२ ॥ इत्थंश्रुत्वावचो ऽस्माकंमुनिःक्रोधादिवज्वलन् ॥ प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निर्दहन्निवलोचनैः ॥ ४३ ॥ प्रतिज्ञातंवचोमह्यंयस्मान्नैतत्करिष्यथ ॥ तस्मान्मच्छाप निर्दग्धास्तिर्यग्योनौप्रयास्यथ ॥ ४४ ॥ एवमुक्त्वातदासोस्मांस्तंविहंगममब्रवीत् ॥ अन्त्येष्टिमात्मनःकृत्वाशास्त्रत श्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ४५ ॥

किया है, जीवन होनेसे ही श्रेयप्राप्ति होती है और पुण्यादिका आचरण कर सकता है ॥४१॥ मृत पुरुषके देहका विनाश होता है और धर्माचारादि नष्ट होते हैं, इसी कारण धर्मके जाननेवाले पण्डितोंने कहा है कि, आत्माकी सब प्रकारसे सदा रक्षा करे ॥ ४२ ॥ मुनिवर हमारे यह वचन सुनते ही क्रोधसे जलने लगे और क्रोधसे लाल नेत्रकर मानों हमको दग्ध करनेके लिये फिर बोले ॥४३॥ रे दुर्वृत्तगण ! मैंने इसके निकट प्रतिज्ञाकी है और तुमने मेरा वचन प्रतिपालन नहीं किया, इस कारण मेरे शापसे दग्ध होकर तिर्यग् योनिमें जाओगे ॥४४॥ हे द्विजसत्तम ! उन्होंने हमसे यह

कहकर शास्त्रानुसार अपनी ऊर्ध्वदैहिक अंत्येष्टि क्रिया सम्पादन करके उस पक्षीसे कहा ॥४५॥ हे खग ! तुम विश्वस्त चित्तसे मुझको भक्षण करो मैंने अपने देहको तुम्हारा आहार किया ॥४६॥ हे पतगश्रेष्ठ ! ब्राह्मण जबतक अपना सत्य प्रतिपालन करता है, तबतक ही उसको ब्राह्मण कहाजाता है ॥४७॥ सत्य प्रतिपालनमें जिस प्रकार पुण्य संचय होता है, दक्षिणा युक्त यज्ञानुष्ठानसे वा अन्य किसी कर्मद्वारा वैसा पुण्य प्राप्त नहीं होता ॥४८॥ उन पक्षीरूपी इन्द्रने ऋषिश्रेष्ठके यह वचन सुन, मनमें अत्यन्त विस्मित हो उनसे कहा ॥४९॥ हे विप्रेन्द्र ! पहिले योगावलम्बन करके अपना कलेवर त्याग कीजिये, फिर आपकामांस भक्षण करूंगा, क्योंकि मैंने जीवित प्राणीको कभी भोजन नहीं किया ॥ ५० ॥ पक्षीका यह वचन सुनकर

भक्षयस्वसुविश्रब्धोमामत्रद्विजसत्तम ॥ आहारीकृतमेत्तेमयादेहमिहात्मनः ॥ ४६ ॥ एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वंप्रचक्ष्यते ॥ यावत्पतगजात्यग्र्यस्वसत्यपरिपालनम् ॥ ४७ ॥ नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यंप्राप्यतेमहत् ॥ कर्मणान्येनवाविप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ॥ ४८ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः ॥ प्रत्युवाचमुनिंशक्रःपक्षिरूपधरस्तदा ॥ ४९ ॥ योगमास्थाय विप्रेन्द्रत्यज्येदंस्वंकलेवरम् ॥ जीवज्जंतुंहिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन ॥ ५० ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनिः ॥ तंतस्य निश्चयंज्ञात्वाशक्रोऽध्याहस्वदेहभृत्॥५१॥भोभोविप्रेन्द्रयुध्वस्यबुद्ध्याबोध्यंबुधात्मक॥जिज्ञासार्थंमयाऽथंतेअपराधःकृतोऽनघ ॥५२॥ तत्क्षमस्वामलमतेकाचेच्छाक्रियतांतव ॥ पालनात्सत्यवाक्यस्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि ॥५३॥ अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्रंप्रादुर्भविष्यति॥तपस्यथतथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति ॥५४॥ इत्युक्त्वातुगतेशक्रेपिताकोपसमन्वितः ॥ प्रणम्यशिरसास्माभिरिदमुक्तोमहामुनिः ॥५५॥

मुनिराजने योगावलम्बन किया तब इन्द्रने भी उनका यह संकल्प निश्चय जान अपना देह धारण करके कहा ॥५१॥ हे पण्डिताग्रगण्य विप्रर्षे! जानने योग्य विषयको बुद्धिपूर्वक बोध कीजिये हे अनघ ! मैंने आपको भली भांति जाननेके लिये ही आपके निकट यह अपराध किया है ॥५२॥ निर्मलचित्त ! मुझको क्षमा करो, आपकी क्या अभिलाषा है ? आज्ञा करो, सत्यवाक्य प्रतिपालन करनेके कारण आपके प्रति मेरी अत्यन्त प्रीति उत्पन्न हुई है ॥ ५३ ॥ अबसे आपको ऐन्द्रज्ञान उत्पन्न होगा और तपस्याचरणमें कभी विघ्न नहीं होगा ॥५४॥ देवराज इन्द्रके इस प्रकार कहकर चले जानेपर हमने पिताके चरणोंमें प्रणाम करके क्रोधयुक्त महामुनिसे कहा ॥ ५५ ॥

हे पिता ! हे महामते ! हमने मरनेके भयसे अत्यन्त भीत और जीवन प्रियताके वशीभूत होकर ऐसा कहा है ? अतएव हमको क्षमा कीजिये ॥ ५६ ॥ यह देह त्वक् अस्थि और मांस राद चर्बी और शोणितसे परिपूर्ण है, इसमें कुछ भी अनुराग नहीं करना चाहिये, किन्तु हे तात ! उसी देहमें हमारा अनुराग बढ़ा है ॥ ५७ ॥ हे महाभाग ! सुना है कि, प्रबलशत्रुस्वरूप काम क्रोधादिदोषद्वारा ही सब लोक मोहित होते हैं ॥ ५८ ॥ हे पिता ! प्रज्ञारूपीदीवारोंसे वेष्टित यह देहरूप नगरी वर्त्तमान रहती है, अस्थि जिसका स्तम्भ है, जो चर्मरूपी भीतके द्वारा अत्यन्त रुद्ध, और मांस शोणितरूप कीचड़में लिपी ॥ ५९ ॥ नसें उसको

बिभ्यतांमरणात्तातत्वमस्माकंमहामते ॥ क्षन्तुमर्हसिदीनानांजीवितप्रियताहिनः ॥ ५६ ॥ त्वगस्थिमांसनिर्यासपूयशोणितपूरिते ॥ कर्त्तव्यानरतिर्यत्रतत्रास्माकमियंगतिः ॥ ५७ ॥ श्रूयतांचमहाभागयथालोकोविमुह्यति ॥ कामक्रोधादिभिर्दोषैर्वशः प्रबलारिभिः ॥ ५८ ॥ प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिस्थूणंपरंमहत् ॥ चर्मभित्तिमहारोधंमांसशोणितलेपनम् ॥ ५९ ॥ नवद्वारंमहायासंसर्वतःस्नायुवेष्टितम् ॥ नृपश्चपुरुषस्तत्रचेतनावानवस्थितः ॥ ६० ॥ मंत्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चैवविरोधिनौ ॥ यतेतेवैरनाशायतावुभावितरेतरम् ॥ ६१ ॥ नृपस्यतस्यचत्वारोनाशमिच्छंतिविद्विषः ॥ कामःक्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपुः ॥ ६२ ॥ यदातुसनृपस्तानिद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति ॥ सदासुस्थबलश्चैवनिरातंकश्चजायते ॥ ६३ ॥ जातानुरागोभवतिशत्रुभिर्नाभिभूयते ॥ ६४ ॥ यदातुसर्वद्वाराणिविवृतानिसमुंचति ॥ रागोनामतदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ॥ ६५ ॥

चारों ओरसे घेरे हुए हैं और जिसके बहुत बड़े नौ दरवाजे हैं, उस पुरीमें चैतन्यरूपी पुरुष राज्य करता है ॥ ६० ॥ राजाके दो मंत्री हैं: मन और बुद्धि वह भी परस्पर विरोधी हैं, इसलिये परस्पर परस्परको विनाश करनेके लिये सदा यत्नवान् हैं ॥ ६१ ॥ काम, क्रोध, लोभ, और मोह नामक राजाके चार शत्रु हैं, वह सदा राजाके विनाश करनेकी चेष्टा करते हैं ॥ ६२ ॥ वह राजा जिस समय पूर्वोक्त नवद्वार रुद्ध करके अवस्थान करता है, उसी समय वह अत्यन्त सुस्थ निरातंक होता है ॥ ६३ ॥ और प्रेमवान् होता है, इसकारण उस समय उसको शत्रु अभिभूत नहीं कर सकते ॥ ६४ ॥ वह जब सब द्वार खोलकर अवस्थान करता है, उसी समयमें अनुराग नामक शत्रु नेत्रादि सब द्वारों पर

आक्रमण करता है ॥ ६५ ॥ यह शत्रु सर्व व्यापी और अत्यन्त प्रबल है ॥ यह अनुरागरूपी शत्रु जब नेत्रादि द्वारमें घुसता है, उसी समय लोभ मोह और क्रोधरूपी तीनों शत्रु उसके पीछे पीछे दौड़ते हैं ॥ ६६ ॥ वह रागरूपी शत्रु इन्द्रिय नामक सब दरवाजोंके द्वारा पुरी में घुसकर मन और बुद्धिके संग संयुक्त होनेकी अभिलाषा करता है ॥६७॥ यह दुर्द्धर्ष अनुराग इन्द्रियगण मन और सब द्वारोंको वशीभूतकरके प्रज्ञारूपी प्राकार (बुद्धिरूपपरकोटा) भग्नकरता है ॥६८॥ बुद्धि भी मनको उसका आश्रय ग्रहण करता देखकर तत्काल नष्ट होती है, अतएव अमात्यहीन और प्रजा वर्गसे त्यागा हुआ ॥६९॥ वह राजा शत्रुओंसे आक्रान्त छिद्र होकर नष्ट होता है। काम, क्रोध, लोभ और मोहरूप ॥७०॥ दुरात्मागण

सर्वव्यापीमहायामः पञ्चद्वारप्रवेशनः॥ तस्यानुमार्गंविशतितद्वैघोरंरिपुत्रयम् ॥६६॥ प्रविश्याथसवैतत्रद्वारैरिन्द्रियसंज्ञकैः ॥ रागःसंश्लेषमायातिमनसाचसहेतरैः ॥६७॥ इन्द्रियाणिमनश्चैववशेकृत्वादुरासदः ॥ द्वाराणिचवशेकृत्वाप्राकारंनाशयत्यथ ॥६८॥ मनस्तस्याश्रितंदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ॥ अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झितस्तथा ॥ ६९ ॥ रिपुभिर्लब्धविवरःसनृपोनाशमृच्छति ॥ एवंरागस्तथामोहोलोभःक्रोधस्तथैवच ॥ ७० ॥ प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशकाः ॥ रागात्क्रोधःप्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ॥७१॥ लोभाद्भवतिसम्मोहःसम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः॥ स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥७२॥एवंप्रणष्टबुद्धीनांरागलोभानुवर्त्तिनाम्॥ जीवितेचसलोभानांप्रसादंकुरुसत्तम ॥७३॥ योऽयंशापोभगवद्दत्तःसनभवेत्तथा ॥ नतामसींगतिंकष्टांव्रजेमसुनिसत्तम ॥७४॥ ऋषिरुवाच ॥ यन्मयोक्तंनतन्मिथ्याभविष्यतिकदाचन ॥ नमेवागनृतंप्राहयावदद्येतिपुत्रकाः ॥ ७५ ॥

पुरीमें वास करते हैं, इसलिये मनुष्य स्मरणशक्तिविहीन होता है, अनुरागसे क्रोध होता है, क्रोधसे लोभ उत्पन्न होता है ॥७१॥ लोभसे मोहकी उत्पत्ति और मोहसे स्मृतिका नाश होता है स्मृतिनाशसे बुद्धिनाश और बुद्धि नाशसे ही मृत्यु होती है ॥ ७२ ॥ हे तात ! राग और लोभके वशीभूत होनेसे ही हमारी भी बुद्धि भ्रंश हुई है, इसी कारण जीवनके प्रति इतना लोभ है, अत एव हे सत्तम ! प्रसन्न हूजिये॥७३॥आपने जो शाप दिया है, यह शाप जिससे फलित न हो, हमारे ऊपर प्रसन्न होकर वही कीजिये हे मुनिसत्तम ! तो यह कष्टदायक तामसी गति हमको प्राप्त नहीं होगी॥७४॥ऋषि बोले--"हे बालको ! मैंने जो कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं होगा, अबतक कभी मेरे मुखसे मिथ्या वचन नहीं निकला

है ॥ ७५ ॥ वृथा पौरुषको धिक्कार है, मैं विचारता हूं दैवही इस विषयमें बली है, दैवनेही मुझको इसप्रकारके अचिंतित अकार्य करनेमें प्रवृत्त किया है ॥ ७६ ॥ तुमने प्रणाम करके मुझको प्रसन्न किया है, इस कारण तिर्यग् योनिमें जन्म लेकर भी परम ज्ञानवान होंगे ॥ ७७ ॥ मेरे प्रसादसे तुम ज्ञानद्वारा सत् मार्ग अवलोकनपूर्वक पापोंको नष्ट करके असंदिग्धचित्तसे प्रधानसिद्धि लाभ करसकोगे" ॥ ७८ ॥ हे भगवन् ! पूर्वकालमें दैवके वशीभूत होकर हमारे पिताने इसप्रकार शाप दिया था फिर कुछ काल बीतने पर यह पक्षियोनि धारण करी ॥ ७९ ॥ हे द्विजवर ! युद्धस्थलमें हमारा जन्म हुआ, आपने लाकर प्रतिपालन किया, अब हम आकाशमार्गमें जानेको समर्थ होगये हैं ॥ ८० ॥ हे

दैवमात्रंपरंमन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ॥ अकार्यकारितोयेनबलादहमचिन्तितम् ॥ ७६ ॥ यस्माच्चयुष्माभिरहंप्रणिपत्यप्रसादितः ॥ तस्मात्तिर्य्यक्त्वमापन्नाःपरंज्ञानमवाप्स्यथ ॥ ७७ ॥ ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषाः ॥ मत्प्रसादादसन्दिग्धाःपरांसिद्धिमवाप्स्यथ ॥ ७८ ॥ एवंशप्ताःस्मभगवन्पित्रादैववशात्पुरा ॥ ततःकालेनमहतायोन्यन्तरमुपागताः ॥७९॥ जाताश्चरणमध्येवैभवतापरिपालिताः ॥ वयमित्थंद्विजश्रेष्ठखगत्वंसमुपागताः ॥८०॥ नास्त्यसाविहसंसारेयोनदिष्टेनबाध्यते ॥ सर्व्वेषामेवजन्तूनांदैवाधीनंहिचेष्टितम् ॥८१॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाशमीकोभगवान्मुनिः ॥ प्रत्युवाचमहाभागःसमीपस्थान्द्विजान् ॥ ८२ ॥ पूर्वमेवमयाप्रोक्तंभवतांसन्निधाविदम् ॥ सामान्यपक्षिणोनैतेकेऽप्येतेद्विजसत्तमाः ॥ येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताःपंचत्वमातिमानुषे ॥ ८३ ॥ ततःप्रीतिमतातेनतेऽनुज्ञातामहात्मना ॥ जग्मुःशिखरिणांश्रेष्ठंविंध्यंद्रुमलतायुतम् ॥ ८४ ॥

मुनिशार्दूल ! इस संसारमें ऐसा कोई नहीं है, जो प्रारब्धके वशमें होकर न रहता हो सब प्राणियोंकी यावतीय चेष्टाएँ दैवाधीन हैं ॥ ८१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-- कि, पक्षियोंके इसप्रकारवचन सुनकर ऐश्वर्यादिषड्गुणसंपन्न मुनिश्रेष्ठ महाभाग भगवान् शमीकने समीपवर्ती ब्राह्मणों से कहा ॥८२॥ हे विप्रगण ! मैंने पहले तुमसे यही कहाथा कि, यह सामान्य पक्षी अलौकिक समरमें भी जब कालकवलमें कवलित नहीं हुए, तब निःसन्देह यह सामान्य पक्षी नहीं हैं बोध होता है, कोई ब्राह्मणकुमार हैं ॥ ८३ ॥ अनन्तर वह पक्षी प्रसन्न हुए महात्मा शमीक मुनिकी आज्ञानुसार वृक्ष लतादिसे परिपूर्ण विंध्य पर्वतमें चले गये ॥ ८४ ॥

वे धर्मपक्षी तबतक उस पर्वतमें निवास करते रहे तप और वेदपाठमें निरत होकर समाधिमें ही अपना निश्चय दृढ किया ॥ ८५ ॥ शमीकजीकी यह आज्ञा पाय, वह पक्षीरूप मुनिकुमार उनसे समस्त क्रियाका उपदेश ले, उस पर्वतके शिखरपर जहां अतिपवित्र निर्मल जल है, आनन्दपूर्वक वास करने लगे ॥ ८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि--कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां विन्ध्यप्राप्तिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे जैमिने ! वह ज्ञानवान् सब पक्षी इस प्रकार द्रोणके पुत्र हुए थे वह विन्ध्य पर्वतमें वास करते हैं तुम उनकी उपासना करके सब पूछो ॥ १ ॥ महर्षि जमिनि मार्कण्डेयमुनिके यह वचन सुनकर जहां वह धर्म पक्षी वास करते थे, उसी

यावद्व्यस्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिणः ॥ तपःस्वाध्यायनिरताःसमाधौकृतनिश्चयाः ॥ ८५ ॥ इति मुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेताः ॥ गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमनसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे॥८६॥इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेविन्ध्यप्राप्तिकथनंनामतृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंतेद्रोणतनयाःपक्षिणोज्ञानिनोऽभवन् ॥ वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच ॥ १ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वामार्कण्डेयस्यजैमिनिः ॥ जगामविन्ध्यशिखरंयत्रतेधर्मपक्षिणः ॥ २ ॥ तन्नगासन्नभूतश्चशुश्रावपठतांध्वनिम् ॥ श्रुत्वाचविस्मयाविष्टश्चिन्तयामासजैमिनिः ॥ ३ ॥ स्थानसौष्ठवसम्पन्नंजितश्वासमविश्रमम् ॥ विस्पष्टमपदोषंचपठ्यतेद्विजसत्तमैः ॥४॥ वियोनिमपिसंप्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् ॥ चित्रमेतदहंमन्येनजहातिसरस्वती ॥५॥ बन्धुवर्गस्तथामित्रयच्चेष्टमपरंगृहे ॥ त्यक्त्वागच्छतितत्सर्वंनजहातिसरस्वती ॥६॥ इतिसंचिन्तयन्नेवविवेशगिरिकन्दरम् ॥ प्रविश्यचददर्शासौशिलापट्टगतान्द्विजान् ॥७॥

विन्ध्य पर्वतमें गये ॥ २ ॥ जब वह पर्वतके निकट पहुंचे तो पक्षियोंके वेदपाठका शब्द उनके कानमें सुनाई आया, उस समय वह अत्यन्त अचंभेमें होकर चिन्ता करने लगे ॥ ३ ॥ "क्या आश्चर्य है ? ब्राह्मणगण पक्षी रूप अवलम्बन करके भी स्थानकी श्रेष्ठतासे श्वास जीतकर स्पष्टता और निर्दोषता सहित अविश्राम वेदपाठ करते हैं ॥ ४ ॥ इन बालकोंके तिर्यग्योनिमें गिरनेपर भी जो सरस्वतीने इनको नहीं त्यागा यह और भी अचंभेकी बात है ॥५॥ इससे जाना जाता है कि, बंधुवर्ग, मित्र वा घरकी समस्त अभीष्ट वस्तु सभी छोड कर चली जाती हैं, किन्तु केवल मात्र सरस्वती कभी नहीं छोड़ती ॥६॥ मुनिश्रेष्ठ जैमिनिने इसप्रकार चिन्ता करते करते पर्वतकी कन्दरामें प्रवेश किया और देखा कि, वह विप्र

गण पत्थरकी चट्टानपर विराजमान हैं ॥७॥ संपूर्ण दोषोंसे रहित उन सब पक्षियोंको वेदपाठ करता देखकर शोक और हर्षके वशीभूत हो सबसे कहा ॥८॥ हे द्विजश्रेष्ठगण ! तुम्हारा मंगल हो मैं व्यासशिष्य जैमिनि तुम्हारे दर्शनकी लालसासे उत्कण्ठित होकर इस स्थानमें आयाहूं ॥९॥ अत्यन्त क्रुद्ध पिताके शापसे पक्षिरूप अवलम्बन करना पड़ा है, ऐसा जानकर शोक न करना, क्योंकि सब प्रारब्धकाही फल है ॥१०॥ देखो, धनमानादि विपुल विषय संपन्न श्रेष्ठ वंशमें किसी महात्माका जन्म होता है और फिर उस द्रव्यके नष्ट होनेपर वही भीलोंके द्वारा सान्त्वनाको प्राप्त होता है ॥११॥ कोई दान करके भी भीख मांगता है, कोई वध करके निहत होता है, कोई दूसरेको निहत करा कर अन्यके द्वारा मरता है, तप-

पठतस्तान्समालोक्यमुखदोषविवर्जितान् ॥ सोऽथशोकेनहर्षेणसर्वानेवाभ्यभाषत ॥८॥ स्वस्त्यस्तुवोद्विज श्रेष्ठाजैमिनिमांनिबोधत ॥ व्यासशिष्यमनुप्राप्तंभवतांदर्शनोत्सुकम् ॥९॥ मन्युर्नखलुकर्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना।शप्ताःखगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत् ॥१०॥ स्फीतद्रव्येकुलेकेचिज्जाताःकिलमनस्विनः॥द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशबरेणसमान्त्विताः॥११॥दत्त्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ॥ पातयित्वाचपात्यन्तेतएवतपसःक्षयात् ॥१२॥ एतद्दृष्टंसुबहुशोविपरीतंतथामया॥भावाभावसमुच्छेदैरजस्रंव्याकुलंजगत् ॥१३॥ इति संचिन्त्यमनसानंशोकं कर्तुमर्हथ॥ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता॥१४॥ततस्तेजैमिनिंसर्वेपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन्॥अनामयंचप प्रच्छुःप्रणिपत्यमहामुनिम् ॥ १५ ॥ अथोचुःखगमाःसर्वेव्यासशिष्यंतपोनिधिम्॥सुखोपविष्टं विश्रांतंपक्षानिलहतक्रमम् ॥ १६ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ अद्यनःसफलंजन्मजीवितंचसुजीवितम् ॥ यत्पश्यामःसुरैर्वन्द्यंतवपादाम्बुजद्वयम् ॥ १७ ॥

स्याका क्षय होनेसे इसी प्रकारकी घटना होती रहती है ॥१२॥ मैंने अनेकवार ऐसी घटना देखी है,इस प्रकार भावाभाव परम्परा द्वारा सब जगत निरन्तर व्याकुल हुआ है ॥१३॥ इस प्रकार मनमें विचारकर तुम शोक न करना क्योंकि शोक वा हर्ष इत्यादिसे अभिभूत न होनाही तपस्याका फल है ॥१४॥ अनन्तर उन सब धर्मपक्षियोंने पाद्यार्घ्य इत्यादिसे महामुनि की पूजा करी और प्रणाम करके कुशल पूछी ॥१५॥ फिर जब व्यास-शिष्य तपोनिधि जैमिनि उनके पंखोंकी वायुसे थकावट दूर करके सुखपूर्वक बैठे, तब वे पक्षी उनसे कहने लगे ॥ १६ ॥ पक्षी बोले--हे महा-भाग ! अब हमारा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ, क्योंकि आपके देवताओंसे वंदित दोनों चरण कमलोंका दर्शन किया ॥ १७ ॥

पितृदेवकी कोपाग्नि अत्यन्त प्रबल होकर जो हमारे देहमें वर्तमान रहती है सो हे विप्र! वह अब आपके दर्शनरूपी जलसे शान्त होगई ॥१८॥ हे ब्रह्मन्! तुम्हारे आश्रमके मृग पक्षीगण वृक्षलता और त्वक्सार तृणादि पर्यन्त सबकी कुशल तो है॥१९॥ वा हमारा यह पूछनाही अनुचित है, क्योंकि जो आपके निकट वास करते हैं,उनको फिर अमंगल कहां ?॥२०॥अब आप किस निमित्त आये हैं? अनुग्रहपूर्वक उसको प्रकाश कीजिये आपका आना और देवताओंका संसर्ग दोनों समान हैं, सुतरां नहीं जाना जाता कि, किस भाग्यके बलसे आपका दर्शन हुआ ॥२१॥जैमिनि बोले-हे द्विज शार्दूल! मैं जिस कारण रेवा नदीके जलकणोंसे सिंचित हुआ इस विंध्यपर्वतकी मनोहर कंदरामें आया हूं, सो सुनो। महाभारत

पितृकोपाग्निरुद्भूतोयोनोदेहेषुवर्त्तते॥ सोद्यशान्तिंगतोविप्रयुष्मद्दर्शनवारिणा ॥१८॥ कच्चित्तेकुशलंब्रह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषु ॥ वृक्षेष्वथलतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ॥ १९ ॥ अथवानैतदुक्तंहिसम्यगस्माभिगहतैः ॥ भवतासंगमोयेषांतेषामकुशलंकुतः ॥ २० ॥ प्रसादंचकुरुष्वात्रब्रूत्यागमनकारणम् ॥ देवानामिवसंसर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ॥ केनास्मद्भाग्यगुरुणाआनीतोदृष्टिगोचरम् ॥ २१ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ श्रूयतांद्विजशार्दूलाःकारणंयेनकन्दरम् ॥ विन्ध्यस्येहागतोरम्यंरेवावारिकणोक्षितम् ॥ सन्देहान्भारतेशास्त्रेतान्प्रष्टुंगतवानहम् ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानंपूर्वंभृगुकुलोद्वहम् ॥ तमहंपृष्टवान्प्राप्यसन्देहान्भारतंप्रति ॥ २३ ॥ सचपृष्टोमयाप्राहसन्तिविन्ध्येमहाचले ॥ द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थविस्तरम् ॥२४॥ तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहंमहागिरिम् ॥ तच्छृणुध्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥ २५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ विषयेसतिवक्ष्यामोनिर्विशङ्कःशृणुष्वतत् ॥ कथंतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ॥ २६ ॥

शास्त्रमें कई संदेहोंके होनेसे मैं पूछनेके लिये ॥ २२ ॥ भृगुकुलधुरंधर महात्मा मार्कण्डेयमुनिके निकट गया था महाभारतके प्रति संदेह उनसे पूछे थे ॥ २३ ॥ उन्होंने कहा कि, "विन्ध्याचलमें महात्मा द्रोणके पुत्र वास करते हैं, तुम वहां जाकर उनसे पूछो, वही तुमसे इन प्रश्नोंका उत्तर विस्तार सहित वर्णन करेंगे" ॥२४॥ मैं उनकेही वचनानुसार इस महापर्वतमें आयाहूं अब तुम मेरे उन सब प्रश्नोंको भलीभाँति सुनकर यथावत् व्याख्या कर दो ॥ २५ ॥ पक्षियोंने कहा-यदि वक्तव्य होगा तो कहेंगे, आप निःशंक चित्तसे कहिये, जो हमारे बुद्धिगोचर होगा

वह क्यों नहीं कहेंगे ? ॥ २६ ॥ चार वेद, समस्त धर्मशास्त्र वा सब वेदाङ्ग वा वेदसम्मत जो कोई शास्त्र क्यों न हो ॥२७॥ हे द्विजसत्तम ! यद्यपि सबही हमारे बुद्धिगोचर हैं, किन्तु तो भी हम प्रतिज्ञा नहीं करसकते ॥ २८ ॥ अत एव महाभारतमें आपको जो संदेह है निःशंक चित्तसे आज्ञा कीजिये, यदि मोह न हो तो हे धर्मज्ञ ? वह अवश्य ही आपसे कहेंगे॥२९॥जैमिनि बोले--हे निर्मलचित्तविहंगमगण ! महाभारतके बीच जिन सब विषयोंमें मुझको सन्देह उत्पन्न हुआ है, वह सुनो और उनकी व्याख्या करदो॥३०॥मेरा सन्देह यही है कि, "जो सब कारणोंके कारण और समस्त ब्रह्माण्डके आधार हैं वह जनार्दन वासुदेव निर्गुण हो कर भी किस निमित्त मनुष्य हुए थे ? ॥ ३१ ॥ द्रुपदराजकी कन्या

चतुर्ष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रेषुचैवहि ॥ समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥२७॥ एतेषुगोचरोऽस्माकंबुद्धेर्ब्राह्मणसत्तम ॥ प्रतिज्ञांतु समावोढुंतथापिनहिशक्नुमः ॥२८॥ तस्माद्वदस्वविश्रब्धंयसन्दिग्धंयद्धिभारते॥ वक्ष्यामस्तवधर्मज्ञनचेन्मोहोभविष्यति॥२९॥जैमिनिरुवाच ॥ ॥ सन्दिग्धानीहवस्तूनिभारतंप्रतियानिमे॥ शृणुध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ॥३०॥कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ॥ वासुदेवोऽखिलाधारःसर्वकारणकारणम् ॥३१॥ कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ॥ पञ्चानांमहिषीकृष्णा सुमहानत्रसंशयः ॥ ३२ ॥ भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः ॥ तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुधः ॥ ३३ ॥ कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ॥ पाण्डुनाथामहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥३४॥ एतत्सर्वंकथ्यतांमेसन्दिग्धंभारतंप्रति ॥ कृतार्थोऽस्मिसुखंयेनगच्छेयंनिजमाश्रमम् ॥ ३५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे ॥ पुरुषायाप्रमेयायशाश्वतायाव्ययायच ॥ ३६ ॥

द्रौपदी किस प्रकार पांच पांडवोंकी महिषी हुई थी? यह महान् संशय है ॥३२॥ महाबल हलायुध बलरामजी किस प्रकार तीर्थयात्रा प्रसंगमें ब्रह्महत्याके पातकसे छूटेथे ? ॥३३॥ और महारथ युधिष्ठिरआदि पांच पांडव जिनके सहायकथे वह द्रौपदीके पुत्र अविवाहित अवस्थामें अनाथके समान किसप्रकार मरे ? ॥३४॥ इन सब बातोंमें मुझको अत्यन्त संदेह है, तुम इन महाभारत संबंधी संदेहोंका यथावत् उत्तर देकर मुझको कृतार्थ करो तो मैं सुखसेही अपने आश्रमको चला जाऊंगा ॥ ३५ ॥ पक्षी बोले--जो देवताओंके अधीश्वर सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रभावशाली

हैं, जो पुरुषरूपी अर्थात् आत्मा, अप्रमेय, शाश्वत और अव्ययरूपी हैं ॥३६॥ जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्धरूप "चतुर्व्यूहात्मक हैं" जो त्रिगुण अथ च निगुण हैं, जो उरुतम और गरिष्ठ है, जो वरेण्य, अमृत ॥३७॥ यज्ञाङ्ग और निखिल चराचरात्मक हैं, वेदान्तशास्त्रमें जिनके स्वरूपका कुछ थोड़ासा वर्णन किया है, सब जगत्में जिनकी अपेक्षा अन्य सूक्ष्म तर और बृहत्तर नहीं है, यह संपूर्ण विश्व जिनके द्वारा व्याप्त है, जो अज और जगत्के आदि हैं ॥३८॥ इस संसारमें आविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन, और अदर्शन इत्यादि सबकार्य जिनके द्वारा संपन्न होते हैं, तथा जो उनसे अतीत, जगत्के सृष्टिकर्ता और संहार कर्त्ता कहेजाते हैं (उन भगवान् विष्णुको नमस्कार है) ॥३९॥ जो

चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायागुणायच ॥ वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायामृतायच॥३७॥ यस्मादणुतरंनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम् ॥ येन विश्वमिदंव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८॥ आविर्भावतिरोभावदृष्टादृष्टविलक्षणम् ॥ वदन्तियत्सृष्टमिदंतथैवान्तेचसंहृतम्॥३९॥ब्रह्मणे चादिदेवायनमस्कृत्यसमाधिना॥ ऋक्सामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यःपुनातिजगत्त्रयम् ॥४०॥ प्रणिपत्यतथैशानमेकबाणविनिर्जितैः ॥ यस्या सुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ॥४१॥ प्रवक्ष्यामोमतंकृत्स्नंव्यासस्याद्भुतकर्मणः॥येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्याःप्रकटीकृताः ॥४२॥ आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥ अयनंतस्यताःपूर्वंतेननारायणःस्मृतः ॥४३॥ सदेवोभगवान्सर्वंव्याप्यनारायणोविभुः ॥ चतुर्द्धासंस्थितोब्रह्मन्स गुणोनिर्गुणस्तथा ॥ ४४ ॥

आदिदेव और जो चारों मुखोंसे समादि चारों वेद उत्पन्न करके तीनों भुवनोंको पवित्र करते हैं; उन ब्रह्माजीको ध्यानके सहित नमस्कार है॥४०॥ असुरगण जिनके एक बाणसे परास्त होकर याज्ञिकगणोंके यज्ञ लोप करनेमें अशक्य होते हैं, उन देवादिदेव महादेवजीके चरणकमलोंमें प्रणाम करके ॥४१॥अत्यन्त अद्भुतकर्मकारी जो महर्षि बादरायणिके द्वारा महाभारतके मिस धर्मादि प्रगट हुआ है, वह व्यासदेवके मतानुयायी सब विषय सम्यक् प्रकार आपके प्रति प्रकाशित करेंगे ॥ ४२ ॥ तत्त्वदर्शी मुनि कहते हैं, "नार" शब्दका अर्थ जल है, प्रथम वह जलही एकमात्र जिनका "अयन" अर्थात् घर था, इससे उनको नारायण कहते हैं ॥ ४३ ॥ हे ब्रह्मन् ! वही अनन्तलीलानिधान भगवान् विभु नारायण सगुण और

१ सृष्टिप्रकरणमें सांख्यादि योगशास्त्र प्रसिद्ध अहंकारादिसे इसचतुर्व्यूहकी उत्पत्ति है कोइ इस स्थलमेंचतुर्व्यूह शब्दमें स्वप्न सुषुप्ति और तुरीयरूप कहते हैं, किंतु उसमें अर्थका विशेषतात्पर्यनहींरहता

निगुणात्मक द्विविध रूपसे चार मूर्तिमें अवस्थित हैं ॥ ४४ ॥ उनकी एक मूर्ति जो अनिर्देश्य अर्थात् वाणीके अतीत है पण्डितगण जिसको शुक्लवर्ण कहते हैं, चंद्रसूर्यादि समस्त तेजपुंजमय पदार्थरूप ज्वालामालासे जिसके सब अंग अवरुद्ध हैं, जो योगियोंका एकमात्र आश्रयस्वरूप है ॥४५॥ जो नित्यरूपिणी और जो मूर्त्ति तीनों गुणोंको अतिक्रम करके दूर और निकट स्थित रहती है, उस प्रधानस्वरूप पहिली मूर्त्तिका नाम वासुदेव मूर्ति है, इसमें ममताका लेशमात्र भी नहीं है ॥४६॥ उसके रूप वर्ण इत्यादि सब भाव कल्पनात्मक हैं यह मूर्ति सर्वकाल विराजमान, परमपवित्र स्वरूप और सदा एकरूप है ॥४७॥ पाताल देशमें वास करके जो मूर्ति मस्तकके ऊपर पृथ्वी धारण करती है वह दूसरी मूर्ति है

एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लांपश्यन्तितांबुधाः ॥ ज्वालामालोपरुद्धाङ्गीनिष्ठामायोगिनांपरा ॥ ४५ ॥ दूरस्थाचान्तिकस्थाचविज्ञेयासा गुणातिगा ॥ वासुदेवाभिधानोऽसौनिर्ममत्वेनदृश्यते॥४६॥रूपवर्णादयस्तस्यानभावाःकल्पनामयाः ॥ अस्त्येवसासदाशुद्धासुप्रतिष्ठैक रूपिणी ॥ ४७ ॥ द्वितीयापृथिवींमूर्ध्नाशेषाख्याधारयत्यधः ॥ तामसीसासमाख्यातातिर्यक्त्वंसमुपाश्रिता ॥४८॥ तृतीयाकर्मकुरुते प्रजापालनतत्परा ॥ सत्त्वोद्रिक्तातुसाज्ञेयाधर्मसंस्थानकारिणी ॥ ४९ ॥ चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नगतल्पगा ॥ रजस्तस्यागुणः सर्गंसाकरोतिसदैवहि ॥ ५० ॥ यातृतीयाहरेर्मूर्त्तिःप्रजापालनतत्परा ॥ सातुधर्मव्यवस्थानंकरोतिनियतभुवि ॥ ५१ ॥ प्रोद्धृता नसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिणः ॥ पातिदेवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ॥ ५२ ॥

उसका नाम शेष अर्थात् संकर्षण है, इस मूर्तिने तामसी होनेसे तिर्यग्योनि अवलम्बन करी है ॥४८॥ भगवान् नारायणकी जिस मूर्तिके द्वारा संपूर्ण कर्म सम्यक् प्रकार साधित होते हैं, जिसके द्वारा प्रजापालनादि सब कार्य सम्पादित होते हैं और जो मूर्ति धर्म संस्थापनकारिणी अर्थात् धर्मकी रक्षा करनेवाली है उस सत्त्वगुणमयी मूर्त्तिका नाम प्रद्युम्नमूर्त्ति है ॥ ४९ ॥ चौथी मूर्त्ति पन्नगशय्यापर जलमें शयन करके वास करती है वह रजोगुणात्मिका है उसके द्वाराही सदा सृष्टिकार्य संपन्न होता है, इस मूर्त्तिका नाम अनिरुद्धमूर्ति है ॥ ५० ॥ हरिकी प्रजापालनकारिणी जो तीसरी मूर्त्ति है, उसके द्वाराही सदा पृथ्वीमें धर्मसंस्थापन होता है ॥५१॥ धर्मका विनाश करनेवाले उद्धत असुरगण उसीके द्वारा मरते हैं और उसके द्वाराही धर्म रक्षापरायण साधु और दैत्य रक्षित होतेहैं ॥ ५२ ॥

हे जैमिने ! जिस जिस समय धर्म की हानि होकर अधर्मकी वृद्धि होती है, यह मूर्ति उसी समय धर्मका उद्धार करनेके निमित्त उत्पन्न होती है ॥ ५३ ॥ इसी मूर्त्तिमें पूर्वकालमें वराहरूप धारणपूर्वक दाँतोंके अग्रभाग द्वारा जल हटाकर केवल दाढोंसे सहजमेंही पृथ्वीको नलिनीके समान निकालकर पूर्ववत् स्थिर किया है ॥ ५४ ॥ उसनेही नृसिंह मूर्त्ति धारण कर हिरण्य-कशिपुको मारा है और उसीने विप्रचित्ति इत्यादि दानवोंका भी वध किया है ॥ ५५ ॥ उसके वामनादि अन्यान्य सब अवतारोंकी संख्या नहीं कर सकते, वह इस समय जो उत्पन्न हुई है, वह माथुरमूर्त्ति श्रीकृष्ण हैं ॥ ५६ ॥ इस प्रकार उस सत्यगुणात्मिका

यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ॥ अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजत्यसौ ॥ ५३ ॥ भूत्वापुरावराहेणतुण्डेनापोनिरस्यच ॥ एकयादंष्ट्रयोत्खातानलिनीववसुंधरा ॥५४॥ कृत्वानृपसिंहरूपंचहिरण्यकशिपुर्हतः॥विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवाविनिपातिताः॥५५॥ वामनादींस्तथैवान्यान्नसंख्यातुमिहोत्सहे ॥ अवतारांश्चतस्येहमाथुरःसांप्रतंत्वयम् ॥ ५६ ॥ इतिसासात्त्विकीमूर्तिरवतारान्करोतिवै ॥ प्रद्युम्नेतिचसाख्यातारक्षाकर्मण्यवस्थिता ॥ ५७ ॥ देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसंस्थिता ॥ गृह्णातितत्स्वभावंचवा सुदेवेच्छया सदा ॥ ५८ ॥ इत्येतत्तेसमाख्यातंकृतकृत्योऽपियत्प्रभुः ॥ मानुषत्वंगतोविष्णुःशृणुष्वास्योत्तरंपुनः ॥ ५९ ॥ ॥ इतिमार्कण्डेय पुराणेचतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ त्वष्टपुत्रेहतेपूर्वंब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजसः ॥ ब्रह्महत्याभिभूतस्यपराहा निरजायत ॥ १ ॥ तद्धर्मंप्रविवेशाथशाक्रतेजोऽपचारतः ॥ निस्तेजाश्चाभवच्छक्रोधर्मेतेजसिनिर्गते ॥ २ ॥

मूर्त्तिके अवतीर्ण होनेपर प्रद्युम्नमूर्त्ति उसकी रक्षा करनेमें स्थित रहती है ॥५७॥ वह देवत्व, मनुष्यत्व, वा तिर्यक् योनि इत्यादिमें अवस्थित होकर वासुदेवकी इच्छानुसार तत्तत्स्वभाव अवलम्बन करती है ॥५८॥ हमने यह आपके निकट सब वर्णन किया अब भगवान् विष्णुने कृतकार्य होकर भी जिस कारणसे मनुष्य देह ग्रहण किया है, इसका उत्तर फिर कहते हैं, सुनो ॥५९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरदाबादनिवासि कन्हैयालालमिश्र कृतभाषाटीकायां चतुर्व्यूहावतारश्चतुर्थोऽध्यायः॥४॥ ॥ पक्षी बोले-- हे ब्रह्मन्! त्वष्टा नामक प्रजापतिका पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तपस्याकरताथा, इंद्रने उसकी तपस्यासे डरकर उसका वध किया त्वष्टपुत्र त्रिशिराके मरनेपर ब्रह्महत्याजनित पापसे सुरपतिके तेजकी हानि हुई॥ १॥अधर्म्माचरणकेकारण

पाकशासनके इस तेजने धर्ममें प्रवेश किया, तब धर्ममें तेजके चलेजानेसे शचीपति (इंद्र) निस्तेज होगये। ।२॥ तदनंतर त्वष्टा प्रजापतिपुत्रके मरनेकी वार्ता सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए और महाक्रोधपूर्वक मस्तककी एक जटा तोड़कर कहने लगे ॥३॥ "इस समय देवताओंके सहित स्वर्ग और पातालवासी सब प्राणी मेरा तेज देखें और मेरे पुत्रका मारनेवाला ब्रह्मघाती दुर्बुद्धि इन्द्रभी मेरा वीर्य देखे ॥ ४ ॥ जिसने स्वकर्मसे निरत मेरे पुत्रको मारा है" यह कहकर उन्होंने कोपसे लालनेत्र किये उस जटाको अग्निमें होम करदिया ॥५॥ उसी समय ज्वालामाली महाशरीर, बडी डाढोंवाला और अंजनपिण्डके समान रूपधारी वृत्र नामक एक महाअसुर अग्निसे उत्पन्न हुआ ॥६॥ अप्रमेयात्मा महाबली इन्द्रका शत्रु वृत्र

ततःपुत्रंहतंश्रुत्वात्वष्टाक्रुद्धःप्रजापतिः ॥ अवलुंच्यजटामेकामिदंवचनमब्रवीत् ॥ ३ ॥ अद्यपश्यन्तुमेवीर्यंत्रयोलोकाः सदेवताः ॥ सचपश्यतुदुर्बुद्धिर्ब्रह्महापाकशासनः ॥ ४ ॥ स्वकर्माभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातितः ॥ इत्युक्त्वाकोपरक्ताक्षोजटामग्नौजुहावताम् ॥ ५ ॥ ततोवृत्रःसमुत्तस्थौज्वालामालीमहासुरः ॥ महाकायोमहादंष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥ ६ ॥ इन्द्रशत्रुरमेयात्मात्वष्टृतेजोपबृंहितः ॥ अहन्यहनिसोऽवर्द्धदिषुपातंमहाबलः ॥ ७ ॥ वधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रंशक्रोमहासुरम् ॥ प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुरः ॥८॥ सख्यंचक्रुस्ततस्तस्यवृत्रेणसमयांस्तथा ॥ ऋषयः प्रीतमनसः सर्वभूतहितेरताः ॥९॥ समयस्थितिमुल्लंघ्ययदाशक्रेणघातितः ॥ वृत्रोहत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्यत ॥१०॥ तच्छक्रदेहविभ्रष्टंबलंमारुतमाविशत् ॥ सर्वव्यापिनमव्यक्तंबलस्यैवाधिदैवतम् ॥११॥ अहल्यांचयदाशक्रोगौतमंरूपमास्थितः ॥ धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदारूपमहीयत ॥ १२ ॥

प्रजापति त्वष्टाके तेजसे उत्पन्न होकर जितना ऊंचा धनुषसे छूटा हुआ बाण जाता है, उसीके समान नित्य बढ़ने लगा ॥ ७ ॥ इधर अपने संहारके लिये महाअसुर वृत्रको उत्पन्न हुआ देखकर देवराज इन्द्रने भयातुर होकर उसके संग संधि करनेके निमित्त मरीच्यादि सप्त ऋषियोंको भेजा ॥ ८ ॥ सब प्राणियोंके हितमें रत प्रसन्नमन ऋषियोंने वृत्रासुर और इन्द्रसे परस्पर प्रतिज्ञा करानेके पीछे मित्रता स्थापन कराई ॥९॥ महासुर वृत्र प्रतिज्ञा मर्यादा उल्लंघन करके इन्द्रके द्वारा जिस समय मारा गया तब उसी ब्रह्महत्याजनित पापसे अभिभूत होनेके कारण इंद्रका बल नष्ट हो गया॥१०॥उस बलने इन्द्रके शरीरसे भ्रष्ट होकर बलके एकमात्र अधिदेवता अव्यक्त सर्वव्यापी वायुमें प्रवेश किया ॥ ११॥ और इन्द्रने

जब गौतमका रूप धारण करके अहल्यासे रमण किया, उस समय भी उनका रूपहीन हुआ था ॥ १२ ॥ उस समय शचीपतिके अत्यन्त मनोहर अंग प्रत्यंगका समस्त लावण्य दुरात्मा इन्द्रको छोड़कर दोनों अश्विनीकुमारोंमें चला गया ॥१३॥ तब सुरराजको धर्म और तेजके द्वारा त्यागा जानकर तथा दुर्बल और हीनरूप विचार दैत्योंने उनको जीतनेके लिये उद्यम किया था ॥१४॥हे महामुने! अत्यन्त बलशाली दैत्योंने इन्द्रको जीतनेकी इच्छासे बल वीर्य मदोद्धत राजाओंके कुलमें जन्म लिया था॥१५॥अनन्तर कुछ काल बीतनेपर भगवती वसुन्धरा (पृथ्वी) दैत्योंके बोझसे पीडित हो सुमेरुपर्वतके मध्य देवताओंकी सभामें गई॥१६॥तब अत्यन्त बोझसे पीडित हुई भगवती वसुंधरा दैत्य दानवोंसे

अङ्गप्रत्यङ्गलावण्यंयद्तीवमनोरमम् ॥ विहायदुष्टंदेवेन्द्रंनासत्यावगमत्ततः ॥ १३ ॥ धर्मेणतेजसात्यक्तंबलहीनमरूपिणम् ॥ ज्ञात्वा सुरेशंदैतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥ १४ ॥ राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणांदेवेन्द्रविजिगीषवः ॥ कुलेष्वतिबलादैत्याअजायन्तमहामुने ॥ १५ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ॥ जगाममेरुशिखरंसदोयत्रदिवौकसाम् ॥ १६ ॥ तेषांमाकथयामासभूरिभारावपीडिता ॥ तनुजात्मजदैत्योत्थंखेदकारणमात्मनः ॥१७॥ एतेभवद्भिरसुरानिहताःपृथुलौजसः ॥ तेमर्त्येमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभृताम् ॥ १८ ॥ अक्षौहिण्योहिबहुलास्तद्भारार्त्ताव्रजाम्यधः ॥ तथाकुरुध्वंत्रिदशायथाशांतिर्भवेन्मम ॥१९॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेरुर्दिवोमहीम्॥प्रजानामुपकारार्थंभूभारहरणायच ॥२०॥ यदिन्द्रदेहजंतेजस्तन्मुमोचस्वयंवृषः॥कुन्त्यांजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिरः ॥ २१ ॥

उत्पन्न अपने दुःखका सब कारण उनसे कहने लगी॥१७॥"हे देवताओ! अत्यन्त बलवान् जिन सब असुरोंको आपने मारा है अब उन्होंने मनुष्य लोकमें राजाओंके घर जन्म लिया है ॥१८॥ वह दैत्यगण असंख्य अक्षौहिणीपरिमित हैं, इसकारण म उनके बोझसे अत्यन्त पीडित होकर नीचेको झुकी जातीहूं, बस, जिससे मुझको शांतिलाभ हो, हे देवताओ! आप वही कीजिये" ॥१९॥ पक्षी बोले ! हे मुने ! अनन्तर देवता सब प्रजाका उपकार और पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये अपने अपने तेजोभागद्वारा स्वर्गसे पृथ्वीम अवतीर्ण हुए ॥२०॥ तब स्वयं धर्मने इन्द्र के देहसे उत्पन्न उस तेजको कुन्तीके गर्भमें डाला, उससेही महातेजा राजा युधिष्ठिर उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥

देवश्रेष्ठ पवनने इन्द्रका जो तेज कुन्तीके गर्भमें निक्षेप किया उसीसे भीमसेनका जन्म हुआ और इसी कुन्तीके गर्भसे सुरराजके आधे बल द्वारा पार्थ धनंजयने जन्म लिया ॥ २२ ॥ और इंद्रके लावण्यधारी दोनों अश्विनीकुमारोंके द्वारा माद्रीके गर्भसे महाद्युतिसम्पन्न जो यमलकुमार उत्पन्न हुए, वह भी इन्द्रके तेजसे युक्त हैं सुतरां भगवान् शतक्रतु (इन्द्र) ही इन पांच अंशमें अवतीर्ण हुए ॥ २३ ॥ और उनकी पत्नी शची ही यज्ञभाग याज्ञसेनारूपमें अग्निमें उत्पन्न हुई ॥ २४ ॥ तो स्थिर हुआ कि, एक द्रौपदी केवल इन्द्रकी ही पत्नी है, अन्य किसीकी नहीं क्योंकि महात्मा योगीश्वर पुरुष अपने शरीरको अनेक

बलंमुमोचपवनस्ततोभीमोव्यजायत ॥ शक्रवीर्यार्धतश्चैवजज्ञेपार्थोधनंजयः ॥ २२ ॥ उत्पन्नौयमलौमाद्र्यांशक्ररूपौमहाद्युती ॥ पञ्चधाभगवानित्थमवतीर्णःशतक्रतुः ॥ २३ ॥ तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनात् ॥ २४ ॥ शक्रस्यैकस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यकस्यचित् ॥ योगीश्वराःशरीराणिकुर्वंतिबहुलान्यपि ॥२५॥ पंचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितं तव ॥ श्रूयतांबलदेवोऽपियथायातःसरस्वतीम् ॥ २६ ॥ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे इन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ रामःपार्थेपरांप्रीतिंज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ॥ चिन्तयामासबहुधाकिंकृतंसुकृतंभवेत् ॥ १ ॥ कृष्णेनहिविनानाहंयास्येदुर्योधनान्तिकम् ॥ पाण्डवान्वासमाश्रित्यकथंदुर्योधनंनृपम् ॥ २ ॥ जामातरंतथाशिष्यंघातयिष्येनरेश्वरम् ॥ तस्मान्नपार्थयास्यामिनापिदुर्योधनंनृपम् ॥ ३ ॥ तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मानमात्मना ॥ कुरूणांपाण्डवानांचयावदन्तायकल्पते ॥४॥

भागमें विभक्त कर सकते हैं॥२५॥हे महाभाग! जिसप्रकार पांचजनोंकी एक पत्नी हुईथी, वह आपके निकट वर्णन किया अब बलदेवजी जिस प्रकार सरस्वतीमें गयेथे वह सुनो॥२६॥इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्र कृतभाषाटीकायामिन्द्रविक्रिया नाम पंचमोऽध्यायः॥५॥ पक्षी बोले—हलधर बलरामजी, अर्जुनके प्रति श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रीति जान क्या करनेसे भला होगा' इसीकी अनेक भाँतिसे चिन्ता करनेलगे ॥१॥ मैं श्रीकृष्ण को बिना संगलिये अकेला दुर्योधनके निकट नहीं जाऊंगा और पाण्डवोंका पक्ष अवलम्बनकर ॥२॥ अपनेही जामाता तथा शिष्य पृथ्वीपति दुर्योधनको कैसे मारूं ? इस कारण राजा दुर्योधन वा अर्जुन इन दोनोंमें किसीके निकटभी नहीं जाऊंगा॥३॥अत एव जबतक कौरव-

पांण्डवोंका ध्वंस न हो, तबतक आपही आप तीर्थोंमें भ्रमण करके आत्माको पवित्र करूं" ॥ ४ ॥ बलरामजी मनमें इस प्रकार स्थिर कर हृषीकेश, पार्थ और दुर्योधनको आमंत्रणपूर्वक अपनी सेनासे वेष्टित हो द्वारकाको चले गये ॥ ५ ॥ शौरि बलरामजीने हृष्ट पुष्ट मनुष्योंसे भरी द्वारावती नगरीमें जाकर तीर्थयात्राके करनेका विचार किया और ताड़ीका रस पिया ॥ ६ ॥ वह पान करनेके पीछे अप्सराके समान सगर्वा रेवतीका हाथ पकड़कर अनेक प्रकारकी सम्पत्तिसे पूर्ण रैवत उद्यानमें गये ॥ ७ ॥ वह मद्यपानसे मत्त हो रहेथे, इसकारण स्त्रियोंसे परिवेष्टित होकर गमन करनेपर भी पग पगमें उनके पैर डिगमिगातेथे अनन्तर वीरवर बलरामजीने उस अतिउत्तम रमणीय रैवतक वनको देखा ॥ ८ ॥ यह उद्यान समस्त ऋतुके उत्पन्न

इत्यामंत्र्यहृषीकेशंपार्थंदुर्योधनावपि ॥ जगामद्वारकांशौरिःस्वसैन्यपरिवारितः ॥ ५ ॥ गत्वाद्वारवतींरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम ॥ श्वोगन्तव्येषुतीर्थेषुपपौपानंहलायुधः ॥ ६ ॥ पीतपानोजगामाथरेवतोद्यानमृद्धिमत् ॥ हस्तेगृहीत्वासमदांरेवतीमप्सरोपमाम् ॥ ७ ॥ स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोययौमत्तःपदास्खलन् ॥ ददर्शचवनंवीरोरमणीयमनुत्तमम ॥ ८ ॥ सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यंशाखामृगगणाकुलम ॥ पुण्यंपद्मवनोपेतंसल्वलमहावनम् ॥ ९ ॥ सशृण्वन्प्रीतिजननान्बहून्मदकलाञ्शुभान् ॥ श्रोत्ररम्यान्सुमधुराञ्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥ १० ॥ सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ॥ अपश्यत्पादपाँस्तत्रविहगैरनुनादितान् ॥ ११ ॥ आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ॥ आबिल्वकांस्तथाजीरान्दाडिमान्बीजपूरकान् ॥ १२ ॥ पनसाँल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् ॥ पारावताँश्चकङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ॥ १३ ॥

फल और पुष्पोंसे शोभायमान तथा शाखामृगों (बंदरों) से व्याप्त था. वह अत्यन्त पवित्र कमलवनसे युक्त, छोटे सरोवर और महावनद्वारा भलीभांति विराजित था ॥ ॥ ९ ॥ बलरामजी रेवतीके सहित वनमें प्रवेश करके आह्लादजनक शुभसूचक गंभीर कानोंको सुखदायक और मधुर नानाप्रकारके पक्षियोंका कूजन श्रवण करने लगे ॥ १० ॥ यह भी देखा कि, वहांके वृक्षोंमें सब ऋतुओंके फल लगरहे हैं, उनपर प्रसन्न हृदयसे पक्षी चहचहारहे हैं, और सारे वनमें सब ऋतुओंके फूल फूलरहे हैं । भाँति भाँतिके हरे पीले लाल फल लटकरहे हैं ॥ ११ ॥ आम, अमरा, नारियल, तिंदु, बेल, अंजीर, अनार, नीबू ॥ १२ ॥ कटहल, बडहल, मोचरस, कदम, पारावत, कंकोल. नलिन, अमलवेत ॥ १३ ॥

भिलावा, तेंदू, तिल, हिंगोट, करौंदा, हड़, बहेड़ा ॥१४॥ इन वृक्षोंको यदुनन्दन बलरामजीने वहां देखा और इनके अतिरिक्त अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलसिरी ॥१५॥ चम्पा, सप्तपर्ण कनेर, मालती, पारिजात, कोविदार, मन्दार, बेर ॥१६॥ पाटल, देवदारु, सुखुआ ताल, तमाल पलाश, वंजुल आदि अच्छे अच्छे फलफूलवाले वृक्षोंसे वह वन संयुक्त है ॥१७॥ और इन वृक्षोंपर चकोर, जातपत्र, भृंगराज, शुक, सारिका, कोकिला, कोयल, हरैल, जीवजीवक ॥१८॥ प्रियपुत्र और चातक इत्यादि भाँतिभाँतिके पक्षी श्रवणमनोहर मधुर शब्द करते हुए इन सब वृक्षोंकी शाखाओंका आश्रय करके वास कररहे हैं॥१९॥रैवतक उद्यानमें निर्मल जलमें शोभायमान सब सरोवर शोभित हैं कि, जिनके देखतेही

भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्चमहाफलान् ॥ इंगुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥ १४ ॥ एतानन्यांश्चसतरून्ददर्शयदुनन्दनः ॥ तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥ १५ ॥ चम्पकान्सप्तपर्णांश्चकर्णिकारान्समालतीन् ॥ पारिजातान्कोविदारान्दारान्बदराँस्तथा ॥ १६ ॥ पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ॥ सालांस्तालांस्तमालांश्चकिंशुकान्वंजुलान्वराम् ॥ १७ ॥ चकोरैः शातपत्रैश्चभृंगराजैस्तथाशुकैः ॥ कोकिलैःकलविंकैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः ॥ १८ ॥ प्रियपुत्रैश्चातकैश्चतथान्यैर्विविधैःखगैः ॥ श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥ १९ ॥ सरांसिचमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानिच ॥ कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथानीलोत्पलैःशुभैः ॥ २० ॥ कह्लारैःकमलैश्चापिआचितानिसमंततः ॥ कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथैवजलकुक्कुटैः ॥ २१ ॥ कारण्डवैः प्लवैर्हंसैःकूर्मैर्मद्गुभिरेवच ॥ एभिश्चान्यैश्चकीर्णानिसमन्ताजलचारिभिः ॥ २२ ॥ क्रमेणेत्थंवनंशौरिर्वीक्ष्यमाणोमनोरमम्॥जगामानुगतःस्त्रीभिर्लतागृहमनुत्तमम् ॥ २३ ॥ सददर्शद्विजांस्तत्रवेदवेदांगपारगान् ॥ कौशिकान्भार्गवांश्चैवभरद्वाजान्सगौतमान् ॥ २४ ॥

चित्त प्रसन्न हो जाय, कुमुद, पुण्डरीक, नीलकमल ॥२०॥कह्लार और कमल इत्यादि कुसुमसमूहसे सब ओर शोभायमान और कलहंस चक्रवाक तथा जलमुर्गावी॥२१॥प्लुव, हंस और कारण्डवादि जलचर पक्षी और कूर्महरियल इत्यादि जलचर जीवोंसे व्याप्त होकर अपूर्व शोभा धारण करते हैं ॥२२॥ स्त्रियोंके सहित शौरि बलरामजी क्रमसे उस वनको देखते देखते अतिउत्तम लतागृहमें गये ॥ २३ ॥ वहांपर क्या देखा कि, वेदवेदाङ्गके ज्ञाता ब्राह्मण कितने ही कुशिकवंशी कितनेही भृगुवंशी कितने ही भरद्वाजवंशी और कितने ही गौतमवंशके थे ॥ २४ ॥

और भी कितनेही वंशके ब्राह्मण पवित्र और उत्तम मनुष्य बैठे कथा सुन रहे थे ॥ २५ ॥ कोई मृगछालापर कोई वस्त्रपर कोई कुशासनपर और कितनेही पुरुष घास इत्यादिपर विराजमान हैं. और उनके बीचमें पुराणवक्ता सूतजी बैठे हुए कल्याणमयी कथा बांच रहे हैं ॥ २६ ॥ उस पुराणकी कथा, जिसमें देवता और ऋषियोंका वर्णन था । इतनेहीमें उन ब्राह्मणोंकी दृष्टि बलरामजीपर पड़ी तो देखा कि, मदिराके मदसे नेत्र लाल हो रहे हैं ॥ २७ ॥ जब समस्त मुनियोंने उन्हें मदोन्मत्त देखा, तब सूतजीके अतिरिक्त और सबने अत्यन्त शीघ्रताके साथ उठकर बड़े आदरसत्कारसे बलरामजीका पूजन किया ॥ २८ ॥ अनन्तर अशेष दानवोंके मारनेवाले महाबल पराक्रमशाली

विविधेषुचसंभूतान्वंशेषुद्विजसत्तमान् ॥ कथाश्रवणबद्धोत्कानुपविष्टान्महत्सुच ॥२५॥ कृष्णाजिनोत्तरीयेषुकुशेषुचबृसीषुच ॥ सूतंचतेषांमध्यस्थंकथयानंकथाःशुभाः ॥२६॥ पौराणिकीःसुरर्षीणामाद्यानांचरिताश्रयाः ॥ दृष्ट्वारामंद्विजाः सर्वेमधुपानारुणेक्षणम्॥२७॥ मत्तोऽयमितिमन्वानाःसमुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ॥ पूजयन्तोहलधरमृतेतंसूतवंशजम् ॥ २८ ॥ ततःक्रोधसमाविष्टोहलीसूतंमहाबलः ॥ निजघानवृवित्ताक्षःक्षोभिताशेषदानवः ॥२९॥ अध्यास्यतिपदंब्राह्मंतस्मिन्सूतेनिपातिते ॥ निष्क्रान्तास्तेद्विजाःसर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बराः ॥३०॥ अवधूतंतथात्मानंमन्यमानोहलायुधः ॥ चिन्तयामाससुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥३१॥ ब्राह्मंस्थानंगतोह्येषयत्सूतोविनिपातितः ॥ तथाहीमेद्विजाःसर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गताः ॥३२॥ शरीरस्यचमेगन्धोलोहस्येवासुखावहः ॥ आत्मानंचावगच्छामिब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥३३॥ धिगमर्षंतथामद्यमतिगानमभीरुताम् ॥ यैराविष्टेनसुमहन्मयापापमिदंकृतम् ॥ ३४ ॥

बलरामजीने सूतके द्वारा अपना तिरस्कार अर्थात् निरादर हुआ विचार अत्यन्तक्रोधसहित लाल लाल नेत्रकर सूतको निहत किया ॥२९॥ पुराणतत्त्वज्ञ सूतके मरने और ब्रह्मलोकमें गमन करनेपर ब्रह्मपदपर मृग छालाओंपर बैठे हुए सब ब्राह्मणही उस वनसे चले गये ॥३०॥ तब बलरामजी, जिनके देहपर मद झलक रहा था पछताने और चिन्ता करने लगे कि, "क्यों मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया ?" ॥ ३१ ॥ मैंने जिस सूतका वध किया, वह ब्राह्मस्थानमें चलागया, और अब सब ब्राह्मण मुझको देखकर चले जाते हैं ॥ ३२ ॥ मेरे शरीरमें लोहेके समान असुरता जनानेवाली गंध बाहर निकलतीहै और आत्माभी ब्रह्महत्याजनित कलुषित बोध होता है ॥ ३३ ॥ रे अमर्ष ! तुमको धिक्कार है मद्यको धिक्कार,

अत्यन्त मानको धिक्कार और अत्यन्त साहसकोभी धिक्कारहै, क्योंकि इन्हीं सबमें आसक्त होकर मैंने ऐसे महापापका अनुष्ठान किया है ॥३४॥इस ब्रह्महत्याजनित महापापको ध्वंस करनेके लिये बारह वर्षतक व्रत करूंगा और इस पापको सर्वत्र विख्यात करके अतिउत्तम प्रायश्चित्त करूंगा॥३५॥अथवा मैं जो इस तीर्थयात्राका उद्योग कररहाहूं, इस यात्रामेंही प्रतिलोमा सरस्वतीमें जाऊंगा।३६॥ हे मुने ! यह कहकर वह यदुकुलधुरंधर बलरामजी प्रतिलोमा सरस्वतीमें चलेगये अब दूसरी पाण्डवोंके पुत्रोंकी कथा कहते हैं, सुनो॥३७॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासि—कन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां बलदेवब्रह्महत्याकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥ धर्मात्मा पक्षी बोले—हे जैमिनि ! पहिले त्रेतायुगमें हरिश्चन्द्र नामक एक धार्मिक राजा थे वह अत्यन्त

तत्क्षयार्थंचरिष्यामिव्रतंद्वादशवार्षिकम्॥स्वकर्मख्यापनंकुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५॥ अथयेयंममारब्धातीर्थयात्रामयाधुना ॥ एतामेवप्रयास्यामिप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥३६॥ अतोजगामरामोऽसौप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥ ततःपरंशृणुध्वेमंपाण्डवेयकथाश्रयम्॥३७॥ इति मार्कण्डेयपुराणेबलदेवब्रह्महत्याकथनंनामषष्ठोऽध्यायः ॥६॥ धर्मपक्षिणऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रइतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगेपुरा ॥ धर्मात्मा पृथिवीपालःप्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ॥ १ ॥ नदुर्भिक्षंनचव्याधिर्नाकालमरणंनृणाम् ॥ नाधर्मरुचयःपौरास्तस्मिञ्शासतिपार्थिवे ॥ २ ॥ बभूवुर्नतथोन्मत्ताधनवीर्यतपोमदैः ॥ नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः ॥ ३ ॥ सकदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् ॥ शुश्रावशब्दमसकृत्त्रायस्वेतिचयोषिताम् ॥ ४ ॥ सविहायमृगंराजामाभैषीरित्यभाषत ॥ मयिशासतिदुर्मेधाःकोऽयमन्यायवृत्तिमान् ॥ ५ ॥ तत्क्रन्दितानुसारीचसर्वारम्भविघातकृत ॥ एतस्मिन्नन्तरेरौद्रोविघ्नराट्समचिन्तयत ॥ ६ ॥

कीर्तिमान् पृथवीके पालक और सुन्दर पुरुष थे ॥१॥ उन नृपवर हरिश्चन्द्रके पृथ्वीशासनकालमें प्रजाको दुर्भिक्ष वा व्याधि या अकाल मृत्युका फल वा अधर्म कुछ नहीं था ॥२॥ उस समय उनकी प्रजा धन, बल वा धर्मके मदसे उन्मत्त नहीं होती थी और स्त्रियें भी विना यौवन प्राप्तहुए अकालमें सन्तान उत्पन्न नहीं करती थीं ॥३॥ एक समय वह महाबाहु वनमें शिकार ढूंढ़तेथे उसी समयमें, "रक्षा करो, रक्षा करो" इसप्रकार कितनीही स्त्रियोंके कंठका शब्द बारंवार उनके कानमें सुनाई दिया ॥४॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने मृगयाको छोड़कर "डरो मत डरो मत" शब्द उच्चारण किया और कहा मेरे पृथ्वीशासन करनेके समय कौन दुर्बुद्धि अन्यायवृत्तिका आचरण करता है ? ॥५॥ यह कह कर उस रुदन करते हुए व्यक्तिका अनुसरण किया,

उसी समयमें संपूर्ण कार्योंका विनाश करनेवाला भयंकर विघ्नराज चिन्ता करने लगा ॥६॥ इस वनमें महातेजस्वी मुनिवर विश्वामित्रजी व्रतालम्बन-पूर्वक अतुल तपस्या करके पूर्व जिनको नहीं साध सके, उन्हीं भवादि सब विद्याओंका साधन करते हैं ॥ ७ ॥ क्षमा मौन और चित्तसंयम करके मुनिवर जिन विद्याओंके साधनेकी चेष्टा करते हैं, वह स्त्रीमूर्त्ति सब विद्याभयसे अत्यन्त भीत हो "रक्षा करो, रक्षा करो"कह कर रुदन करती हैं, अब मैं क्या उपाय करूं ? ॥ ८ ॥ क्योंकि यह विश्वामित्र मुनि अमित तेजस्वी हैं और मैं इनके निकट अत्यन्त दुर्बलहूं, तथा यह सब विद्याभी भयसे अत्यन्त रोती हैं सुतरां बड़ीही कठिन वार्त्ता उपस्थित है ॥ ९ ॥ अथवा अब मुझको किसी बातकी चिन्ता करनी

विश्वामित्रोऽयमतुलंतपआस्थायवीर्यवान् ॥ प्रागसिद्धाभवादीनांविद्याःसाधयतिव्रती ॥ ७ ॥ साध्यमानाःक्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना ॥ तावैभयार्त्ताःक्रन्दन्तिकथंकार्यमिदंमया ॥ ८ ॥ तेजस्वीकौशिकश्रेष्ठोवयमस्यसुदुर्बलाः ॥ क्रोशन्त्येतास्तथाभीतादुष्पारंप्रतिभातिमे ॥ ९ ॥ अथवायंनृपःप्राप्तोमाभैरितिवदन्मुहुः ॥ इममेवप्रविश्याशुसाधयिष्येयथेप्सितम् ॥ १० ॥ इतिसंचिन्त्यरौद्रेणविघ्नराजेनवैततः ॥ तेनाविष्टोनृपःकोपादिदंवचनमब्रवीत् ॥ ११ ॥ कोऽयंबध्नातिवस्त्रान्तेपावकंपापकृन्नरः ॥ बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्न्यावुपस्थिते ॥१२॥ सोऽद्यमत्कार्मुकाक्षेपविदीपितदिगन्तरैः ॥ शरैर्विभिन्नसर्वांगोदीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यति ॥१३॥ विश्वामित्रस्ततःक्रुद्धःश्रुत्वातन्नृपतेर्वचः ॥ क्रुद्धेचर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्याःक्षणेनताः ॥ १४ ॥

नहीं पड़ेगी, क्योंकि यह राजा हरिश्चन्द्र बारंबार "मत डरो मतडरो" शब्द करता हुआ यहां आगया है अतएव इस राजाके शरीरमें प्रवेश करकेही अपनी अभिलाषा साधन करताहूं ॥१०॥ उस भयंकर विघ्नराजने मनमें इसप्रकार चिन्ताकरके राजाके शरीरमें प्रवेश किया, तब राजाने और भी अधिक क्रोधित होकर कहा ॥११॥ कौन पापी मनुष्य वस्त्रके अंचलमें अग्निको बांधता है ? जब कि, बलरूप उष्ण तेजसे देदीप्यमान यह मैं पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र यहां आपहुँचाहूं ॥१२॥ इस समय कौन मूढ धनुषसे छूटे दिशाओंकी प्रकाश करने वाले मेरे बाणों से समस्त अंगोंमें विद्ध होकर योगनिद्राको प्राप्त होगा ॥१३॥ अनन्तर मुनिवर विश्वामित्र राजा हरिश्चंद्रके अभिमानयुक्त यह वचन सुनकर अत्यन्त क्रोधितहुए, ऋषिके क्रोधित होतेही वह सब विद्या नष्ट होगई ॥ १४ ॥

वह राजा हरिश्चंद्र तपोनिधि विश्वामित्रको सहसा देखकर अत्यन्त भीत हो पीपलके पत्तेके समान कांपने लगे ॥ १५ ॥ जब मुनिवर विश्वामित्रने "दुरात्मन् ठहर" यह कहा, तब राजा प्रणामपूर्वक विनयसहित कहने लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन्! मेरा यही धर्म है, हे प्रभो! मेरा अपराध ग्रहण न कीजिये, हे मुनिवर! मैंने अपने धर्मको नहीं छोड़ा है, इस कारण मेरे प्रति क्रोधित न हूजिये ॥१७॥ क्योंकि धर्मज्ञ राजाओंका यही कार्य है वह धर्मशास्त्रानुसार कभी दान करें रक्षा करें और कभी धनुष धारण करके युद्ध करे ॥१८॥ विश्वामित्रने कहा—हे राजन्! यदि तुम्हें अधर्मका भय है, तो शीघ्र कहो किसको दान करना चाहिये किसकी रक्षा करनी चाहिये? और किसके संग युद्ध करना चाहिये? ॥१९॥

सचापिराजातंदृष्ट्वाविश्वामित्रंतपोनिधिम् ॥ भीतःप्रावेपतात्यर्थंसहसाश्वत्थपर्णवत् ॥१५॥ सदुरात्मन्निति यदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत्॥ ततःसराजाविनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत ॥१६॥ भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराधोममप्रभो ॥ नक्रोद्धुमर्हसिमुनेनिजधर्मरतस्यमे ॥१७॥ दातव्यंरक्षितव्यंचधर्मज्ञेनमहीक्षिता ॥ चापंचोद्यम्ययोद्धव्यंधर्मशास्त्रानुसारतः ॥ १८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ दातव्यंकस्यकेरक्ष्याःकैर्योद्धव्यंचतेनृप ॥ क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्मभयंतव ॥ १९ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ दातव्यंविप्रमुख्येभ्योयेचान्येकृशवृत्तयः ॥ रक्ष्याभीताःसदायुद्धंकर्त्तव्यंपरिपन्थिभिः ॥ २० ॥ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ यदिराजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते ॥ निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहंदीयतामिष्टदक्षिणा ॥ २१ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतद्राजावचःश्रुत्वाप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ पुनर्जातमिवात्मानंमेनेप्राहचकौशिकम् ॥ २२ ॥ उच्यतांभगवन्यत्तेदातव्यमविशङ्कितम् ॥ दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुर्लभम् ॥ २३ ॥

हरिश्चंद्रने कहा हे तपोनिधान! जो सदा व्रतानुष्ठानमें तत्पर और ब्राह्मणश्रेष्ठ है, उसीको दान करना चाहिये, डरेहुए पुरुषकी रक्षा करनी चाहिये और शत्रुओंके संग युद्ध करना उचित है ॥२०॥ विश्वामित्र बोले हे राजन्! तुम यदि संपूर्ण राजधर्म जानते हो, तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूं मुझको अभिलाषित दक्षिणा दो ॥२१॥ पक्षी बोले--हे जैमिने! राजा हरिश्चंद्रने यह वचन सुन हृदयसे आह्लादित और प्रफुल्लितहोकर अपना नया जन्म विचारा और मुनिसे कहा ॥ २२॥ हे भगवन्! आप अपनी अभिलाषा कहिये, मैं उसे देनेको प्रस्तुत हूं और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि जो कठिन बातभी होगी, तो भी मैं पूर्ण करूंगा ॥ २३ ॥

हे ब्रह्मन् ! आपको सुवर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, शरीर, प्राण, राज्य, गांव, धन, जिसकी इच्छा हो सो लीजिये ॥ २४ ॥ विश्वामित्र बोले-हे राजन् ! आप जो देंगे, समझ लीजिये कि, मनेभी उसको ग्रहण करही लिया हैं किन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञकी दक्षिणा दो ॥ २५ ॥ राजाने कहा-हे ब्रह्मन् ! यह भी आपको दूंगा । हे द्विज शार्दूल ! राजसूय यज्ञकी दक्षिणास्वरूप जो आपकी रुचि हो आज्ञा कीजिये ॥ २६ ॥ विश्वामित्र बोले-हे वीर ! इस समस्त नगर, ग्राम और पर्वत इत्यादिके सहित ससागरा पृथ्वीमें रथ अश्व गजादिसंकुल सब राज व ॥ २७ ॥ कोष्ठागार (अन्तरगृह) राजकोश इत्यादि तुम्हारी जो सब वस्तु हैं, हे पापरहित ! बिनभार्या पुत्र और अपनी देहके ॥ २८ ॥

हिरण्यंवासुवर्णंवापुत्रःपुत्रीकलेवरम् ॥ प्राणाराज्यंपुरंलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ॥ २४ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ राजन्प्रतिगृहीतोऽयं यस्तेदत्तःप्रतिग्रहः ॥ प्रयच्छप्रथमंतावद्दक्षिणांराजसूयिकीम् ॥ २५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ब्रह्मंस्तामपिदास्यामिदक्षिणांभवतो ह्यहम् ॥ व्रियतांद्विजशार्दूलयस्तवेष्टःप्रतिग्रहः ॥ २६ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ ससागरांधरामेतांसभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ॥ राज्यंचसकलंवीररथाश्वगजसंकुलम् ॥ २७ ॥ कोष्ठागारंचकोशंचयच्चान्यद्विद्यतेतव ॥ विनाभार्यांचपुत्रंचशरीरंचतवानघ ॥ २८ ॥ धर्मंचसर्वधर्मज्ञयोयान्तमनुगच्छति ॥ बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ॥२९॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ प्रहृष्टेनैवमनसासोऽविकारमुखो नृपः ॥ तस्यर्षेर्वचनंश्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलिः ॥ ३० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ सर्वस्वंयदिमेदत्तंराज्यमुर्वीबलंधनम् ॥ प्रभुत्वंकस्यराजर्षेराज्यस्थेतापसेमयि ॥ ३१ ॥ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ यस्मिन्नपिमयाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा ॥ तस्मिन्नपि भवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपतिः ॥ ३२ ॥

और धर्मशास्त्रके अनुसार जो तुम्हारा अनुगमन करते हैं, अधिक और क्या कहूं हे धर्मज्ञ ! तुम्हारा जो कुछ है, वह सब मुझको दो ॥२९॥ पक्षी बोले—मुनिवरकौशिकके यह वचन सुनकर उन राजा हरिश्चन्द्रने प्रसन्नचित्त और विकाररहित मुखसे हाथ जोड़कर कहा "जो आज्ञा" यही होगा ॥३०॥ विश्वामित्र बोले—पृथ्वी बल और धन इत्यादि सर्वस्वही जब मुझको दिया है तो मेरे तपस्वी होकर राजत्व करनेसे हे राजर्षे ! इस राज्यमें किसका प्रभुत्व रहेगा ॥३१॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन् ! मैंने जिस समय आपको यह ससागरा पृथ्वी दी है, उस समयसे आपही

इसके स्वामी हुए हैं अब फिर प्रभुत्वकी बात क्यों पूछते हो ॥३२॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! तुमने जब यह ससागरा सब पृथ्वी मुझको देदी है तो अब मेरा स्वामित्व हो गया, तुम इस राज्यसे निकल जाओ ॥३३॥ श्रोणीसूत्र अर्थात् कटिभूषण इत्यादि जो गहने तुम्हारी पत्नीके और तुम्हारे पुत्रके शरीरमें वर्त्तमान हैं वह सब भी त्याग वृक्षोंकी छाल पहर पत्नी और पुत्रके सहित मेरे राज्यमे बाहरहो ॥३४॥ पक्षी बोले—हे जैमिने ! राजा हरिश्चन्द्रने मुनिवर विश्वामित्रके उन वचनोंको स्वीकार कर उन्हींके अनुसार सब कार्य किया और अपनी स्त्री शैब्या तथा शिशु (बालक) के संग जानेमें प्रवृत्त हुए ॥३५॥ उसी समयमें ऋषिश्रेष्ठ विश्वामित्रने उनके जानेका मार्ग रोक कर उनसे कहा—हे नृप !

॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ यदिराजंस्त्वयादत्ताममसर्वावसुन्धरा ॥ यत्रमेविषयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि ॥ ३३ ॥ श्रोणीसूत्रादिसकलंमुक्त्वाभूषणसंग्रहम् ॥ तरुवल्कलमाबध्यसहपत्न्यासुतेनच ॥ ३४ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तथेतिचोक्त्वाकृत्वाचराजगन्तुंप्रचक्रमे ॥ स्वपत्न्याशैब्ययासार्धंबालकेनात्मजेनच ॥ ३५ ॥ व्रजतःसततोरुद्ध्वापन्थानंप्राहतंनृपम् ॥ क्वयास्यसिमह्यमदत्त्वामदक्षिणांराजसूयिकीम् ॥ ३६ ॥ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ भगवन्सराज्यमेतत्तेदत्तंनिहतकण्टकम् ॥ अवशिष्टमिदंब्रह्मन्नद्यदेहत्रयंमम ॥ ३७ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ॥ विशेषतोब्राह्मणानांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम ॥ ३८ ॥ यावत्तोषोराजसूयेब्राह्मणानांभवेन्नृप ॥ तावदेवतुदातव्यादक्षिणाराजसूयिकी ॥ ३९ ॥ प्रतिश्रुत्यचदातव्यं योद्धव्यंचाततायिभिः ॥ रक्षितव्यास्तथाचार्त्ता स्त्वयैवप्राक्प्रतिश्रुतम् ॥ ४० ॥

राजसूय यज्ञकी दक्षिणा विना दिये कहां जाते हो ? ॥३६॥ हरिश्चन्द्र बोले हे भगवन् ! यह समस्तही निष्कण्टक राज्य आपको देदिया है, अब इन तीन जनोंके देहको छोड़कर मेरे पास और क्या है ॥ ३७ ॥ विश्वामित्र बोले—हे नृपवर ! यद्यपि तीन देहके अतिरिक्त तुम्हारे पास और सम्पत्ति नहीं है किन्तु तो भी मुझको यज्ञकी दक्षिणा देनीही पड़ेगी, विशेषकर ब्राह्मणके निकट प्रतिज्ञा करी हुई वस्तु न देनेसे समस्तही नष्ट होता है ॥३८॥ हे राजन् ! राजसूययज्ञमें जिससे ब्राह्मण सतुंष्ट हो वही राजसूय यज्ञकी दक्षिणा है॥३९॥और तुमहीने तो यह प्रतिज्ञा करी है कि, "अंगीकार करके दान, आततायी (शत्रु) के संग युद्ध और आर्त्त पुरुषकी सम्यक् प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये" ॥ ४० ॥

हरिश्चन्द्रने कहा—हे भगवन् ! हे विप्रर्षे ! साधुता अवलम्बन करके प्रसन्न हूजिये इस समय और कुछ नहीं है किन्तु कालक्रमसे अर्थात कुछ दिन बीतनेपर आपको दूंगा ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र बोले हे मनुजाधिप ! मैं कितने समयतक प्रतीक्षा करूं ? शीघ्र कह ? नहीं तो मेरी शापाग्निमें दग्ध होगा ॥ ४२ ॥ हरिश्चन्द्र बोले—हे विप्रर्षे ! अब और कुछ नहीं है इस कारण आज्ञा दीजिये, एक महीनेके बीचमें ही आपकी दक्षिणाका धन दे दूंगा ॥ ४३ ॥ विश्वामित्र बोले—हे नृपश्रेष्ठ ! जाओ ! जाओ ! स्वधर्म पालन करो ! तुम्हारा मंगलहो और तुम्हारे विघ्न दूर हों ॥ ४४ ॥ पक्षी बोले—हे मुनिवर ! जैमिने ! तदनन्तर वह राजर्षिप्रवर पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र

॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ भगवन्साम्प्रतंनास्तिदास्येकालक्रमेणते ॥ प्रसादंकुरुविप्रर्षेसद्भावमनुचिन्त्यच ॥ ४१ ॥ विश्वामित्र उवाच ॥ ॥ किंप्रमाणोमयाकालःप्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ॥ शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्निरन्यथात्वांप्रधक्ष्यति ॥ ४२ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ ॥ मासेनतव विप्रर्षेप्रदास्येदक्षिणाधनम् ॥ साम्प्रतंनास्तिमेवित्तमनुज्ञांदातुमर्हसि ॥ ४३ ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ गच्छगच्छ नृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ॥ शिवश्चतेऽध्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिनः ॥ ४४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ अनुज्ञातःसगच्छेतिजगामवसुधाधिपः ॥ पद्भ्यामनुचितागन्तुमन्वगच्छततंप्रिया ॥ ४५ ॥ तंसभार्यंनृपश्रेष्ठंनिर्यान्तंससुतंपुरात् ॥ दृष्ट्वाप्रचुक्रुशुःपौरराज्ञश्चैवानुयायिनः ॥ ४६ ॥ हानाथकिंजहास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ॥ त्वंधर्मतत्परोराजन्पौरानुग्रहकृत्तथा ॥ ४७ ॥ नयास्मानपिराजर्षेयदिधर्ममवेक्षसे ॥ मुहूर्त्ततिष्ठराजेन्द्रभवतोमुखपङ्कजम् ॥ ४८ ॥ पिबामोनेत्रभ्रमरैःकदाद्रक्ष्यामहेपुनः ॥ यस्यप्रयातस्यपुरोयान्तिपृष्ठेचपार्थिवाः ॥ ४९ ॥

मुनिवर विश्वामित्रके द्वारा जानेमें अनुमोदित होकर चले गये और उन पैरों पैरों जानेवालेके पीछे रानी शैब्या उनके पीछे पीछे गई ॥ ४५ ॥ इधर नगरवासी प्रजा पुत्र कलत्रके सहित राजाको नगरसे बाहर होता देखकर उच्चस्वरसे रोदन करते करते उनके पीछे चली॥ ४६॥ "हे महाराज ! आप धर्ममें तत्पर और सदा प्रजापालनमें अनुग्रह करनेवाले हैं तो सदा अनेक उपद्रवोंसे पीडित इस प्रजाको किस कारण छोड़ते हो ॥ ४७ ॥ हे राजर्षे ! यदि धर्मकी ओर देखते हो, तो हमकोभी संगले चलिये। हे राजेन्द्र! कुछ काल ठहरिये हम एक बार आपके मुखकमलको ॥ ४८॥ भ्रमरके समान पानकरें,

फिर आपका दर्शन कब होगा हाय! जिनके गमनकालमें पृथ्वीके सब राजा आगे पीछे चलतेथे ॥ ४९ ॥ उन्ही राजा हरिश्चन्द्रकी भार्या एक बालक सन्तानको लेकर उनकाही अनुगमन करती है, जिनके गमनकालमें हाथीके मस्तकपर चढकर समस्त भृत्य आगे आगे दौड़तेथे ॥५०॥ आज वही यह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र स्वयं पैदल गमन करते हैं ॥ ५१ ॥ हा राजन् ! शोभायमान दोनों भौंएँ सुन्दर नासिका और शोभायमान त्वचा इत्यादिसे शोभित आपका यह मुख मार्गमें धूरिसे धूसरित होगा, तब क्याही शोचनीय अवस्था धारण करेगा अत एव हे महाराज ! मत जाओ, मतजाओ ! अपना धर्म पालन करो ॥ ५२ ॥ विशेष कर अनृशंसता (दया) ही क्षत्रियोंका प्रधान धर्म है, क्या पुत्र क्या धन अथवा

यस्यानुयातिभार्येयंगृहीत्वाबालकंसुतम् ॥ यस्यभृत्याःप्रयातस्ययान्त्यग्रेकुञ्जरस्थिताः ॥ ५० ॥ सएषपद्भ्यांराजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोव्रगच्छति ॥ हाराजन्सुकुमारंतेसुभ्रुसुत्वचसुन्नसम् ॥५१॥ पथिपांसुपरिक्लिष्टंमुखंकीदृग्भविष्यति ॥ तिष्ठतिष्ठनृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ॥ ॥५२॥ आनृशंस्यंपरोधर्मःक्षत्रियाणांविशेषतः ॥ किंदारैःकिंसुतैर्नाथधनैर्धान्यैरथापिवा ॥ ५३ ॥ सर्वमेतत्परित्यज्यच्छायाभूतावयंतव ॥ हानाथहामहाराजहास्वामिन्किंजहासिनः ॥५४॥ यत्रत्वंतत्रहिवयंतत्सुखंयत्रवैभवान् ॥ नगरंतद्भवान्यत्रसस्वर्गोयत्रनोनृपः ॥ ॥५५॥ इतिपौरवचःश्रुत्वाराजाशोकपरिप्लुतः ॥ अतिष्ठत्सतदामार्गेतेषामेवानुकम्पया ॥५६॥ विश्वामित्रोऽपितंदृष्ट्वापौरवाक्याकुलीकृतम् ॥ रोषामर्षविवृत्ताक्षःसमागम्यवचोऽब्रवीत् ॥५७॥ धिक्त्वांदुष्टसमाचारमनृतंजिह्मभाषिणम् ॥ ममराज्यंचदत्त्वायःपुनःप्राकृष्टुमिच्छसि ॥ ५८ ॥

क्या धान्य हमको किसीकी आवश्यकता नहीं है॥५३॥हम सभी त्यागकर आपके छायास्वरूप होंगे। हा नाथ ! हा महाराज ! हा प्रभो ! हमको क्यों छोडिये ॥ ५४ ॥ आप जहां जायँगे हमभी वहीं जायँगे आपको जिस स्थानमें सुखहै, हमाराभी वहीं वैभवहै आप जिस स्थानमें रहेंगे, वही हमारा नगरहै हमारे राजा जहां रहेंगे, वही हमारा स्वर्ग है" ॥५५॥ महाराज हरिश्चन्द्र प्रजाके इसप्रकार वचन सुनकर अत्यन्त शोकमें डूबगये और उनकी दयां देखकर कुछ काल मार्गमें खड़ेरहे ॥ ५६ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्र भी राजाको पुरवासियोंके वचनोंसे आकुल होता देख कर एक साथ आये और रोषामर्षसे दोनों नेत्र विघूर्णित करके कहने लगे॥५७॥रे अदृढप्रतिज्ञ ! मिथ्यावादिन् ! दुष्ट यह सम

स्तराजत्व मुझको देखकर अब फिर ग्रहण करनेकी इच्छा करता है, तुझको धिक्कार है॥५८॥राजा हरिश्चन्द्र इसप्रकार गाधितनयके परुष वचनसुनकर "जाता हूं जाताहूं" कहते कांपते हुए देहसे चलनेलगे और वेगसहित शीघ्र दयिता शैब्या देवीका हाथ खैंचा॥५९॥कोमल अंगवाली शैब्यादेवी अत्यन्तश्रमातुर हो रही थी, गमन कर सकनेके कारण राजा हरिश्चन्द्र शीघ्र शीघ्र चलनेके लिये हाथ पकड़कर उसको खेंचते थे किन्तु तो भी विश्वामित्र मुनि दण्डेसे रानीकी पीठमें आघात करने लगे ॥ ६० ॥ महीपति हरिश्चन्द्रने देवीको इसप्रकार ताड़ितहोता देखकर अत्यन्त दुःखी हो अन्य कोई उत्तर नहीं दिया, केवलमात्र यही कहा कि, भगवन् ! जाताहूं ॥६१॥ यह कार्य देखकर पांचजन लोकपाल विश्वदेवा देवताओं

इत्युक्तःपरुषंतेनगच्छामीतिसवेपथुः ॥ ब्रुवन्नेवंययौशीघ्रमाकर्षन्दयितांकरे ॥५९॥ कर्षतस्तांततोभार्यांसुकुमारींश्रमातुराम् ॥ सहसा दण्डकाष्ठेनताडयामासकौशिकः ॥ ६० ॥ तांतथाताडितांदृष्ट्वाहरिश्चन्द्रोमहीपतिः ॥ गच्छामीत्याहदुःखार्तोनान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ॥ ॥ ६१ ॥ अथविश्वेतदादेवाःपंचप्राहुःकृपालवः ॥ विश्वामित्रःसुपापोऽयंलोकान्कान्समवाप्स्यति ॥ ६२ ॥ येनायंयज्वनांश्रेष्ठःस्वराज्यादवरोपितः ॥ कस्यवाश्रद्धयापूतंसुतंसोमंमसाध्वरे ॥ पीत्वावयंप्रयास्यामोमुदंमन्त्रपुरःसरम् ॥ ६३ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इतितेषांवचःश्रुत्वाकौशिकोऽतिरुषान्वितः ॥ शशापतान्मनुष्यत्वंसर्वेयूयमवाप्स्यथ ॥ ६४ ॥ प्रसादितश्चतैःप्राहपुनरेवमहामुनिः ॥ मानुषत्वेऽपिभवतांभवित्रीनैवसन्ततिः ॥ ६५ ॥ नदारसंग्रहश्चैवभवितानचमत्सरः ॥ कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथसुराःपुनः ॥ ॥ ६६ ॥ ततोऽवतेरुरंशैःस्वैर्देवास्तेकुरुवेश्मनि ॥ द्रौपदीगर्भसम्भूताःपंचवैपाण्डुनन्दनाः ॥ ६७ ॥

ने अत्यन्त दयाके वशहोकर कहा "इस पापात्मा विश्वामित्रने यज्ञकरनेवालोंमें श्रेष्ठ नर पति हरिश्चन्द्रको राजसे भ्रष्ट किया, इसको कौनसा लोक प्राप्त होगा ? अथवा हम किसके यज्ञमें श्रद्धापूत मंत्रसंस्कृत पवित्र सोमपान करके आनन्दित होंगे" ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ पक्षी बोले--पांचों विश्वदेवाओंके यह वचन सुनकर मुनिवर कौशिकने अत्यन्त क्रोधितहो " रे पापात्माओ ! तुम सब मनुष्य होगे," यह शापदिया ॥६४॥ तब उन्होंने इनकी प्रार्थना करी ! अनन्तर विश्वामित्रने विश्वदेवाओंके द्वारा प्रसन्न होकर फिर कहा--"हे देवताओ ! यद्यपि तुम मनुष्य देह धारण करोगे, किंतु तो भी तुम स्त्रीग्रहण और संतान नहीं करोगे॥६५॥तुम मत्सरी नहीं होगे और कामक्रोधादिसे मुक्त रहोगे"॥६६॥तदनंतर वहविश्वदेवा

द्रौपदीके गर्भद्वारा उत्पन्न होकर पांच पांडुनंदनरूपमें अपने अपने अंश सहित कुरुवंशमें उत्पन्न हुए ॥ ६७ ॥ हे महामुने! इन महर्षि विश्वामित्रके शापके कारणही पांच महारथ पाण्डुके पुत्रोंका विवाह नहीं हुआ ॥६८॥ हे जैमिने ! पाण्डवोंकी कथाका आश्रय करके इन चारों प्रश्नोंका उत्तर यथावत् तुम्हारे निकट वर्णन किया अब और क्या सुननेकी इच्छा है ? सो कहो ॥६९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मुरादाबादनिवासिकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां द्रौपदेयोत्पत्तिकथनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥ ॥ जैमिनिने कहा-हे द्विजोत्तम ! मैंने जिस प्रकार प्रश्न क्रमानुसार कियेथे, आपने क्रमानुसार उन सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दिया है अब हरिश्चंद्रकी कथामें मुझको अत्यन्त कौतूहल हुआ है ॥१॥ अहो ! उन

एतस्मात्कारणात्पंचपाण्डवेयामहारथाः ॥ नदारसंग्रहंप्राप्ताःशापतस्यमहामुनेः ॥ ६८ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंपाण्डवेयकथाश्रयम् ॥ प्रश्नंचतुष्टयंगीतंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ६९ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेद्रौपदेयोत्पत्तिकथनंनामसप्तमोऽध्यायः ॥ ॥ ७ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ ॥ भवद्भिरिदमाख्यातंयथाप्रश्नमनुक्रमात ॥ महत्कौतूहलंमेऽस्तिहरिश्चंद्रकथांप्रति ॥ १ ॥ अहोमहात्मनातेनप्राप्तंकृच्छ्रमनुत्तमम् ॥ कच्चित्सुखमनुप्राप्तंताहगेवद्विजोत्तमाः ॥ २ ॥ पक्षिण ऊचुः ॥ ॥ विश्वामित्रवचः श्रुत्वासराजाप्रययौशनैः ॥ शैब्ययानुगतोदुःखीभार्ययाबालपुत्रया ॥ ३ ॥ सगत्वावसुधापालोदिव्यांवाराणसींपुरीम् ॥ नैषामनुष्यभोग्येतिशूलपाणेः परिग्रहः॥४॥ जगामपद्भ्यांदुःखार्त्तःसहपत्न्यानुकूलया ॥ पुरींप्रविश्यददर्शविश्वामित्रमुपस्थितम्॥५॥ तंदृष्ट्वाम्सनुप्राप्तंविनयावनतोऽभवत् ॥ प्राहचैवाञ्जलिंकृत्वाहरिश्चंद्रोमहामुनिम् ॥ ६ ॥

महात्माने क्याही कष्ट पायाथा हे द्विजोत्तमो ! क्या उन्होंने वैसा सुखभी पायाथा ? ॥२॥ पक्षी बोले-राजा हरिश्चंद्रने विश्वामित्रके वचन सुननेसे अत्यन्त दुःखी होकर धीरे धीरे गमन किया और बालक पुत्रको लेकर रानी शैब्या उनके संग चली ॥३॥ वह पृथ्वीपति हरिश्चंद्र मनोहर वाराणसीपुरीमें गये क्योंकि यह नगरी मनुष्यभोग्या अर्थात् मनुष्योंके भोगकी नहीं है कारण कि, वह शूलपाणि महादेवजीके द्वारा विरचित हुई है ॥ ४ ॥ वह दुःखित चित्तसे इसप्रकार चिन्ता करते अनुकूल पत्नीके सहित पैरोंही गये और वाराणसीमें प्रवेश करनेके समय देखा कि, मुनिवर विश्वामित्र सम्मुख खडेहैं ॥५॥ नरपति हरिश्चन्द्रने महामुनिको आया हुआ देख हाथजोड़कर विनीतभावसे कहा ॥ ६ ॥

॥

हे प्रभो! मेरा यह प्राण, यह पुत्र और यह पत्नीमात्र विद्यमान हैं, इनमें जिसकी आपको रुचिहो, आज्ञा कीजिये, वही आपके अर्घ्यस्वरूपमें कल्पित हो ॥७॥ और इस समय मैं क्या करूं? यह भी अनुमति दीजिये॥८॥विश्वामित्र बोले--हे राजर्षे! क्या राजसूय नैमित्तिक अपना वचन स्मरण है? एक महीना पूरा होगया है,अब मेरी दक्षिणा दो ॥९॥ हरिश्चन्द्रने कहा हे ब्रह्मन्! आजही महीना पूरा होगा, अभी आधादिन जो शेष है, आप उसी की प्रतीक्षा कीजिये,फिर अधिक प्रतीक्षा करनी नहीं पड़ेगी ॥१०॥विश्वामित्र बोले--हे महाराज! यहीहो, मैं फिर आता हूं यदि आज मुझको दक्षिणा नहीं दोगे तो निःसन्देह शाप दूँगा ॥११॥पक्षियोंने कहा--विप्रोत्तम विश्वामित्रजी यह कह कर चलेगये तब राजा चिंता

इमेप्राणाःसुतश्चायमियंपत्नीमुनेमम ॥ येनतेकृत्यमस्त्याशुतद्गृहाणार्घ्यमुत्तमम् ॥ ७ ॥ यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ८ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ पूर्णःसमासोराजर्षेदीयतांममदक्षिणा ॥ राजसूयनिमित्तंहिस्मर्यतेस्ववचोयदि ॥ ९ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ ब्रह्मन्नद्यैवसंपूर्णोमासोऽम्लानतपोधन ॥ तिष्ठत्येतद्दिनार्धंयत्तत्प्रतीक्षस्वमाचिरम् ॥१०॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ एवमस्तुमहाराजआगमिष्याम्यहंपुनः ॥ शापंतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रदास्यसि ॥११॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इत्युक्ताप्रययौविप्रोराजाचाचिंतयत्तदा ॥ कथमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता ॥१२॥ कुतःपुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थःसांप्रतंमम ॥ प्रतिग्रहःप्रदुष्टोमेनाहंयायामधःकथम् ॥१३॥ किमुप्राणान्विमुञ्चामियांदिशंयाम्यकिञ्चनः ॥ यदिनाशंगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्मस्वहृत्कृमिःपापोभविष्याम्यधमाधमः ॥ अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः ॥ १५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ राजानंव्याकुलंदीनंचिन्तयानमधोमुखम् ॥ प्रत्युवाचतदापत्नीबाष्पगद्गदयागिरा ॥ १६ ॥

करने लगे कि, "इनको पूर्व कही हुई दक्षिणा किस प्रकारसे दूंगा॥१२॥मेरे समृद्धिशाली बन्धुवर्ग कहां हैं?और कहां मेरी अर्थसम्पत्ति अर्थात् धन है? प्रतिग्रहसे युक्त हुआ मैं किसप्रकार अधोगामी नहीं हूंगा? ॥ १३ ॥ कुछभी तो पास नहीं है. किस दिशामें जाऊं? क्या प्राणत्याग करूं? यदि अंगीकार करीहुई वस्तु विनादिये प्राणत्याग करूं ॥१४॥ तो ब्रह्मअंश हरण करनेके पापमें लिप्त होकर अत्यन्त नीचाधम कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करूंगा, या आत्माको बेचकर प्रेष्यगामी हूंगा"॥१५॥पक्षी बोले--राजाको इसप्रकार दुःखित व्याकुल और नीचेको मुखकिये चिन्ता करता

हुआ देख पत्नी शैब्याने नेत्रोंमें आंसू भरकर गद्गद वचनसे कहा ॥१६॥ 'हे महाराज ! चिन्ताका त्याग कीजिये । अपना अंगीकार किया हुआ वचन पालन कीजिये । असत्यका प्रतिपालन करनेवाला पुरुष श्मशानके समान सम्यक् प्रकार से त्यागने योग्य है ॥ १७ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! पंडितजन कहते हैं, अपने सत्य का पालन करने में जैसा धर्म होता है, वैसा अन्य किसीमें नहीं होता ॥ १८ ॥ जिसका वचन असत्य होता है, उसके अग्निहोत्रादि यज्ञ वेदादिका पढ़ना और दानादि सभी कार्य विफल होते हैं ॥ १९ ॥ धर्मशास्त्रमें पण्डितोंने कहा है कि. सत्य वचन जिसप्रकार तारनेके लिये सदा समर्थ होता है, मिथ्या वचनभी उसी प्रकार नीचे गिरानेका एकमात्र प्रधान कारण है ॥ २० ॥ हे

त्यजचिन्तांमहाराजस्वसत्यमनुपालय ॥ श्मशानवद्वर्जनीयोनरःसत्यबहिष्कृतः ॥ १७ ॥ नातःपरतरंधर्मंवदन्तिपुरुषस्यतु ॥
यादृशंपुरुषव्याघ्रस्वसत्यपरिपालनम् ॥ १८ ॥ अग्निहोत्रमधीतंवादानाद्याश्चाखिलाःक्रियाः ॥ भजन्तेतस्यवैफल्यंयस्यवा
क्यमकारणम् ॥ १९ ॥ सत्यमत्यन्तमुदितंधर्मशास्त्रेषुधीमताम् ॥ तारणायानृतंतद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ॥ २० ॥
सप्ताश्वमेधानाहृत्यराजसूयंचपार्थिवः ॥ कृतिर्नाममच्युतःस्वर्गादसत्यवचनात्मकृत ॥२१॥ राजञ्जातमपत्यंमेइत्युक्त्वाप्ररुरोदह ॥
बाष्पाम्बुप्लुतनेत्रांतामुवाचेदंमहीपतिः ॥२२॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ विमुंचभद्रेसंतापमयंतिष्ठतिबालकः ॥ उच्यतांवक्तुकामासि
यद्वात्वंगजगामिनि ॥२३॥ पत्न्युवाच ॥ राजञ्जातमपत्यंमेसतांपुत्रफलाःस्त्रियः ॥ ममांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम् ॥ २४ ॥
पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतद्वाक्यमुपश्रुत्यययौमोहंमहीपतिः ॥ प्रतिलभ्यचसंज्ञांसविललापातिदुःखितः ॥ २५ ॥

पार्थिव ! आपने सात अश्वमेध यज्ञ करके राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया है, तो इस समय क्या सामान्य एकमात्र असत्यके कारण स्वर्गसे भ्रष्ट होंगे ? ॥ २१ ॥ हे राजन् ! मेरे सन्तान हुई है" यह कर रोनेलगी तब महीपति बाष्पसे आकुलनेत्र हुई रानीसे कहने लगे ॥ २२ ॥ हरिश्चंद्रने कहा—"हे भद्रे ! संतापको त्यागदो, यह तुम्हारी शिशुसन्तान वर्त्तमान है, हे गजगामिनि ! जो कहनेकी इच्छाहो, वह कहो ॥२३॥ राजपत्नीने कहा—"हे राजन् ! मेरे पुत्र संतान होगई है, संतानके लियेही साधुपुरुषोंको पत्नीकी आवश्यकता होती है, अत एव अब मुझे बेचकर ब्राह्मणको दक्षिणा दो" ॥२४॥ पक्षी बोले—पृथ्वीपति हरिश्चन्द्र पत्नीका यह वचन सुनकर मोहमें आ मूर्च्छित हो गये और फिर वह चेतना लाभ करके

अत्यन्त दुःखितचित्तसे इसप्रकार विलाप करने लगे ॥ २५ ॥ हे भद्रे! तुम जो कहतीहो, यह बात अत्यन्त कष्टदायक है, यह पापात्मा क्या तुम्हारा मुसकुराकर बोलना भूलगया है? ॥ २६ ॥ हे शुचिस्मिते ! नहीं तो तुम्हारे मुखसे ऐसे दुर्वचन क्यों निकलते ? अथवा मैं किस प्रकार ऐसे कार्यके करनेमें समर्थ होता, जो ऐसे वचन कहता ॥२७॥ नरश्रेष्ठ हरिश्चंद्र इसप्रकार कहकर निरंतर "हा धिक् हा धिक्" कहतेहुए पृथ्वीमें गिरगये और तत्काल मूर्च्छाको प्राप्त हुए ॥ २८ ॥ महीपति हरिश्चन्द्रको पृथ्वीमें शयन किये देखकर राजपत्नी शैब्या अत्यन्त दुःखित हुई और करुणास्वरसे कहने लगी ॥ २९ ॥ पत्नी बोली--कि, हाय महाराज ! क्याही अचिन्तनीय अवस्था उपस्थित हुई है जो हरिणके रोमकी

महद्दुःखमिदंभद्रेयत्त्वमेवंब्रवीषिमाम् ॥ किंतवस्मितसँल्लापाममपापस्यविस्मृताः ॥ २६ ॥ हाहाकथंत्वयाशक्यंवक्तुमेतच्छुचिस्मिते ॥ दुर्वाच्यमेतद्वचनंकर्तुंशक्नोम्यहंकथम् ॥ २७ ॥ इत्युक्त्वासनरश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृद्ब्रुवन् ॥ निपपातमहीपृष्ठे मूर्च्छयाभिपरिप्लुतः ॥ २८ ॥ शयानंभुवितंदृष्ट्वाहरिश्चंद्रंमहीपतिम् ॥ उवाचेदंसकरुणंराजपत्नीसुदुःखिता ॥ २९ ॥ पत्न्युवाच ॥ ॥ हामहाराजकस्येदमपध्यानमुपस्थितम् ॥ यस्त्वंनिपतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचितः ॥३०॥ येनकोटचग्रशोवित्तंविप्राणामपवर्जितम् ॥ सएषपृथिवीनाथोभूमौस्वपितिमेपतिः ॥३१॥ हाकष्टंकिंतवानेनकृतंदेवमहीक्षिता ॥ यदिंद्रोपेंद्रतुल्योऽयंनीतःपापामिमांदशाम् ॥३२॥ इत्युक्त्वासापिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह ॥ भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येननिपीडिता ॥३३॥ तौतथापतितौभूमावनाथौपितरौशिशुः ॥ दृष्ट्वात्यंतक्षुधाविष्टःप्राहवाक्यंसुदुःखितः ॥ ३४ ॥

कोमल शय्या पर शयन करतेथे, वही आज धरातलमें पड़े हैं ॥ ३० ॥ जिन्होंने अनन्त कोटि गोधन ब्राह्मणोंको सहर्ष दान किया है, वही मेरे स्वामी पृथ्वीनाथ हरिश्चन्द्र मिट्टीके ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ३१ ॥ अहो ! क्या कष्ट है, हा दैव ! इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है, जो इन उपेन्द्रतुल्य राजाको इसप्रकार पापियोंके समान दुर्दशा ग्रस्त किया ॥ ३२ ॥ हे जैमिने ! वह सुश्रोणी राजमहिषी शैब्या इसप्रकार अनेक विलाप करती हुई स्वामीके असह्य दुःखभारसे पीडित होकर अचेतन अवस्थामें पृथ्वीपर गिरगई ॥ ३३ ॥ इधर बालक राजपुत्र माता पिताको इस अवस्थामें पृथ्वीपर पड़ा हुआ देख भूखसे अत्यन्त आतुर व दुःखित होकर कहने लगा ॥ ॥ ३४ ॥

तात! तात! मुझको भोजन दो। माता माता। मुझे भोजन दे, मुझको बहुतही भूंख लगी है, मेरी जीभका अग्रभाग सूखा जाता है ॥३५॥ पक्षी बोले—हे जैमिने! इसी अवसरमें धन लेनेको कालके समान क्रोधित हुए महातपा विश्वामित्रजी हठात् आकर प्राप्त हुए और राजा हरिश्चन्द्रको मूर्च्छित अवस्थासे पृथ्वीमें पड़ा हुआ देख ॥३६॥ जलके छींटे देकर राजासे कहने लगे हे राजेन्द्र! उठकर दक्षिणा दो ॥३७॥ क्योंकि ऋण धारण करनेसे दुःख दिन दिन बढ़ताही है। तब राजा हरिश्चन्द्रने हिमके समान शीतल जलसे सिंचित होकर ॥३८॥ चैतन्य लाभ किया, और सामने विश्वामित्रको देखतेही फिर मूर्च्छित होगये। तब द्विजश्रेष्ठ विश्वामित्रजी अत्यन्त क्रोधित होकर ॥ ३९ ॥ राजाको समझाते हुए कहने लगे हे

ताततातददस्वान्नमम्बाम्बभोजनंदद ॥ क्षुन्मेबलवतीजाताजिह्वाग्रंशुष्यतेतथा ॥ ३५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपाः ॥ कालकल्पइवक्रुद्धोधनंसमार्गितुंतदा ॥ दृष्ट्वातुतंहरिश्चंद्रःपतितोभुविमूर्च्छितः ॥ ३६ ॥ सवारिणासमभ्युक्ष्यराजानमिदमब्रवीत् ॥ उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेंद्रतांददस्वेष्टदक्षिणाम् ॥ ३७ ॥ ऋणंधारयतोदुःखमहन्यहनिवर्द्धते ॥ आप्यायमानःसतदाहिमशीतेनवारिणा ॥ ३८ ॥ अवाप्यचेतनांराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ॥ पुनर्मोहंसमापेदेसचक्रोधंययौमुनिः ॥ ३९ ॥ ससमाश्वास्यराजानंवाक्यमाहद्विजोत्तमः ॥ दीयतांदक्षिणासामेयदिधर्ममवेक्षसे ॥ ४० ॥ सत्येनार्कःप्रतपतिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ॥ सत्यंचोक्तंपरोधर्मःस्वर्गःसत्येप्रतिष्ठितः ॥ ४१ ॥ अश्वमेधसहस्रंचसत्यंचतुलयाधृतम् ॥ अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेवविशिष्यते ॥ ४२ ॥ अथवाकिंममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणम् ॥ अनार्येपापसंकल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ॥ ४३ ॥

राजन्! यदि तुम धर्मकी ओर देखते हो, मेरी दक्षिणा दे दो ॥ ४० ॥ देखो, सूर्य केवल सत्यकीही सहायतासे ताप देते हैं, पृथ्वी एकमात्र सत्यमेंही प्रतिष्ठित है, सत्यही एकमात्र धर्म कहा गया है और स्वर्गभी एकमात्र सत्यमें ही प्रतिष्ठित रहता है, देखो ॥ ४१ ॥ हजार अश्वमेध यज्ञका फल और केवल सत्य यदि तराजू की दंडीमें रक्खा जाय, तो हजार अश्वमेधके फल की अपेक्षा सत्यही अधिक होता है ॥ ४२ ॥ अथवा ऐसे अनार्य पापमति, क्रूर स्वभाव और मिथ्या वादी इस राजासे इस प्रकार सामवाद प्रयोग करनेकी मुझको क्या आवश्यकता है ॥ ४३ ॥

हे राजन् ! मैं सरलभावसे कहताहूं, सुनो, यदि इस समय तुम मुझे दक्षिणा नहीं दोगे ॥ ४४ ॥ तो सूर्यदेवके अस्ताचलमें पहुंचतेही अर्थात् संध्या होतेही मैं निःसन्देह शाप दूंगा । विप्रवर विश्वामित्रजी यह कहकर चले गये तब राजाभी ब्रह्मशाप के भयसे अत्यन्त घबराने लगे ॥४५॥ इधर हम सब अत्यन्त निर्धन और नीच दशामें पड़ेहुए हैं, उधर धनी पुरुष बड़े कठोर हैं क्या करें? क्या करनेसे भला होगा ? और किस ओर जायँ ? इस बातमें कुछ स्थिर नहीं कर सकते । इसी समयमें उनकी पत्नीने फिर कहा हे महाराज ! मैंने जो कहा है, वही कीजिये ॥ ४६ ॥ उपाय रहते शापाग्निमें दग्ध होकर मृत्युको प्राप्त मत होओ । तब राजा हरिश्चन्द्रने पत्नी शैब्याके द्वारा वारंवार इस भांति अनुरोध को प्राप्त होकर

त्वयिराजन्प्रभवतिसद्भावःश्रूयतामयम् ॥ अद्यमेदक्षिणांराजन्नदास्यतिभवान्यदि ॥ ४४ ॥ अस्ताचलंप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वांततोध्रुवम् ॥ इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुरः ॥ ४५ ॥ कान्दिग्भूतोऽधनोनिःस्वोनृशंसधनिनार्दितः ॥ भार्यास्यभूयःप्राहेदंक्रियतांवचनंमम ॥ ४६ ॥ माशापानलनिर्दग्धःपंचत्वमुपयास्यसि ॥ सतयाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुनःपुनः ॥ ४७ ॥ प्राहभद्रेकरोम्येषविक्रयंतवनिर्घृणः ॥ नृशंसैरपियत्कर्तुंनशक्यंतत्करोम्यहम् ॥ ४८ ॥ यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमीदृक्सुदुर्वचः ॥ एवमुक्त्वाततोभार्यांगत्वानगरमातुरः ॥ बाष्पाहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवीत् ॥ ४९ ॥ राजोवाच ॥ ॥ भोभोनागरिकाः सर्वेशृणुध्वंवचनंमम ॥ किंमांपृच्छथकस्त्वंभोनृशंसोऽहममानुषः ॥ ५० ॥ राक्षसोवातिकठिनस्ततःपापतरोऽपिवा ॥ विक्रेतुंदयितांप्राप्तोयोनप्राणांस्त्यजाम्यहम् ॥ ५१ ॥ यदिवःकस्यचित्कार्यंदास्याप्राणेष्टयामम ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयाम्यहम् ॥ ५२ ॥

॥४७॥ कहा—हे भद्रे ! मैं घृणाहीन होकर तुम्हें बेचूंगा । अत्यन्त निष्ठुर कार्य, जिसके करनेकी सामर्थ्य वही है, वही करूंगा॥४८॥अच्छा देखो ऐसे कठिन वचन कहसकूं वा नहीं नरपति इसप्रकार कह अत्यन्त व्याकुल होकर नगरमें गये और आंसुओंसे कंठ रोककर यह वचन कहने लगे॥४९॥ हे नगरवासियो ! सब मेरी बात सुनो आप क्या पूछते हैं तुम कौन हो ? मैं नृशंसहूं मनुष्य नहीं ॥ ५० ॥ मैं राक्षस वा उसकी अपेक्षाभी अतिकठिन और पापात्मा हूं क्योंकि प्राणप्रिया पत्नीको बेचनेके लिये आकर भी मेरा प्राण बाहर नहीं निकला ॥५१॥ मेरे प्राणोंसेभी प्यारी दासीमें यदि आपका प्रयोजन हो, तो जबतक संध्या न हो अर्थात् मेरे प्राण रहते रहते शीघ्र कहो ॥ ५२ ॥

पक्षी बोले—अनन्तर किसी बूढे ब्राह्मणने आकर राजासे कहा, मैं धन देकर दासी मोल लूंगा अत एव मुझको दो ॥ ५३ ॥ मेरे अनेक प्रकारकी धनसम्पत्ति है और मेरी प्रिया अत्यन्त कोमल अंगवाली है, घरके कार्य करनेमें असमर्थ है, इस कारण यह मुझकोही देदो ॥ ५४ ॥ तुम पत्नीके कर्मदक्षता (चतुरता) अवस्था रूप और स्वभावके अनुरूप यह धन लेकर इस स्त्रीको मुझे दो ॥ ५५ ॥ ब्राह्मणके इस प्रकार कहनेपर अत्यन्त दुःखके कारण राजा हरिश्चन्द्रका हृदय विदीर्ण होने लगा और उसको कुछ उत्तर नहीं दिया ॥ ५६ ॥ अनन्तर वह ब्राह्मण राजाके वल्कल वस्त्रमें वह धन दृढ रीति से बांध रानीके केश पकड़कर खेंचने लगा ॥ ५७ ॥ काकपक्षधारी बालक

॥ पक्षिण ऊचुः ॥ अथवृद्धोद्विजःकश्चिदागत्याहनराधिपम् ॥ समर्पयस्वमेदासीमहंक्रेताधनप्रदः ॥ ५३ ॥ अस्तिमेवित्तम स्तोकंसुकुमारीचमेप्रिया ॥ गृहकर्मनशक्नोतिकर्त्तुमस्मात्प्रयच्छमे ॥ ५४ ॥ कर्मण्यतावयोरूपशीलानांतवयोषितः ॥ अनुरूप मिदंवित्तंगृहाणार्पयमेऽबलाम् ॥ ५५ ॥ एवमुक्तस्यविप्रेणहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ॥ व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनंकिंचिदब्रवीत् ॥ ॥ ५६ ॥ ततः सविप्रोनृपतेर्वल्कलान्तेदृढंधनम् ॥ बद्धाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ॥ ५७ ॥ रुरोदरोहिताश्वोऽपि दृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ॥ हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरःशिशुः ॥ ५८ ॥ मुंचार्यमुंचतावन्मांयावत्पश्याम्यहंशिशुम् ॥ दुर्लभंदर्श नंतातपुरस्यभविष्यति ॥ ५९ ॥ पश्यैहिवत्समामेवंमातरंदास्यतांगताम् ॥ मांमास्प्राक्षीराजपुत्रअस्पृश्याहंतवाधुना ॥ ६० ॥ ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ॥ समभ्यधावदम्बेतिरुदन्नस्राविलेक्षणः ॥६१॥ तमागतंद्विजःक्रोधाद्बालमभ्याहनत्पदा ॥ वदं स्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुंचतमातरम् ॥ ६२ ॥

रोहिताश्व माताको आकृष्ट होता देख, हाथसे वस्त्रका आंचल खेंचता हुआ रोने लगा ॥ ५८ ॥ राजपत्नी बोली—हे आर्य ! एकबार मुझे छोड़ दो! मैं एकबार इस बालक पुत्रका मुख देखलूं हे तात ! फिर मैं इसको नहीं देख सकूंगी ॥ ५९ ॥ हे वत्स ! आओ, देखो मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूं! हे राजपुत्र ! अब मुझको स्पर्श मत करना, अब मैं 'तुम्हारे स्पर्श करने योग्य नहीं रही ॥ ६० ॥ अनन्तर बालक सहसा माताको आकृष्ट होता देखकर "मा ! मा !" शब्दसे रोता हुआ आंखों में आँसूभर कर दौड़ने लगा ॥ ६१ ॥ तब बूढे ब्राह्मणने अत्यन्त क्रोधित

होकर वेग सहित बालकके लात मारी, किन्तु बालक तो भी "मा ! मा ! कहकर दौड़ने लगा, जननीको किसी प्रकार भी नहीं छोड़ा ॥ ६२ ॥ राजपत्नी बोली–हे नाथ ! अनुग्रह कीजिये, इस बालकको भी क्रय करो अर्थात् मोललो क्योंकि मेरे मोल लेनेपर भी इस बालकके विना मैं किसीप्रकार आपका कार्य नहीं करसकूंगी ॥६३॥ अत एव इस हतभागिनीके ऊपर यही अनुग्रह कीजिये कि, वत्स के संग पयस्विनी गायके समान इस बालके संग मुझको संयोजित कीजिये ॥६४॥ ब्राह्मण बोला–यह धन ग्रहण करो बालकको मुझे दो, धर्मशास्त्रवेत्ता पंडितों ने स्त्री और पुरुष दोनोंकाही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष वा करोड़ मुद्रा निरूपित किया है ॥६५॥ पक्षी बोले–तदनन्तर उस

॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ प्रसादंकुरुमेनाथक्रीणीष्वेमंचबालकम् ॥ क्रीतापिनाहंभवतोविनैनंकार्य्यसाधिका ॥ ६३ ॥ इत्थंममाल्पभाग्यायाःप्रसादसुमुखोभव ॥ मांसंयोजयबालेनवत्सेनेवपयस्विनीम् ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ गृह्यतांवित्तमेतत्तेदीयतांबालकोमम ॥ स्त्रीपुंसोर्धर्मशास्त्रज्ञैःकृतमेवहिवेतनम् ॥ शतंसहस्रंलक्षंचकोटिमूल्यंतथापरैः ॥ ६५ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तथैवतस्यतद्वित्तंबद्ध्वोत्तरपटेततः ॥ प्रगृह्यबालकंमात्रासहैकस्थमबन्धयत् ॥ ६६ ॥ नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ॥ विललापसुदुःखार्तोनिःश्वस्योष्णंपुनःपुनः ॥ ६७ ॥ यांनवायुर्नचादित्योनेन्दुर्नचपृथग्जनः ॥ दृष्टवंतःपुरापत्नीसेयंदासीत्वमागता ॥ ॥ ६८ ॥ सूर्यवंशप्रसूतोऽयंसुकुमारकरांगुलिः ॥ संप्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम् ॥ ६९ ॥ हाप्रियेहाशिशोवत्समभानार्यस्यदुर्नयैः ॥ दैवाधीनांदशांप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ॥ ७० ॥

बूढे ब्राह्मणने नरपतिके दुपट्टेमें वह धन भी पूर्ववत् बाँधकर बालक और राजमहिषीको एकत्र बांधलिया ॥६६॥ तब महीपति हरिश्चन्द्र भार्या और पुत्रको ब्राह्मणके संग जाताहुआ देखकर कातरतासहित वारंवार दीर्घोष्ण श्वास छोड़ते हुए अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ ६७ ॥ कि, हाय! जिसको वायु, सूर्य, चन्द्र वा अन्य पुरुषने पहिले कभी नहीं देखा है, आज मेरी उसी पत्नीको दासीभाव अवलम्बन करना पड़ा, ॥६८॥ हाय ! सूर्यवंशमें जिसका जन्म है जिसके हाथकी सब अंगुलियें अत्यन्त सुकुमार हैं, उस शिशुबालक कोभी आज बेचना पड़ा, हाय ! मैं दुर्मति हूं, मुझको धिक्कार है॥६९॥हा प्रिये ! हा शिशो ! हे वत्स ! मेरेही अन्याय आचरणके कारण तुमको यह दैवदुर्दशा भोगनी पड़ी है, हाय ! तो भी मेरी

मृत्यु नहीं हुई,मुझको धिक्कार है॥७०॥पक्षी बोले—इस प्रकार राजा विलाप करते रहे और वह ब्राह्मणभी शीघ्रतासहित राजपुत्र तथा राजमाहेषीका लेकर अत्यन्त ऊंचे वृक्ष और महलोंके अन्तरमें चलागया ॥ ७१ ॥ उसी समय मुनिवर विश्वामित्रने भी सहसा आकर राजासे धन मांगा तब राजा हरिश्चन्द्रने भी वह सब धन उनको समर्पण किया ॥७२॥ विश्वामित्र मुनि राजाके स्त्री पुत्र बिकनेका धन बहुत थोड़ा देख, अत्यन्त क्रोधित हो शोकाभिभूत राजासे कहने लगे ॥७३॥ रे क्षत्रियाधम ! इस सामान्य धनको यदि मेरे यज्ञकी उपयुक्त दक्षिणा विचारता है तो अभी मेरी महातपस्याका बल देख ॥७४॥ निर्मल ब्रह्मतेज उग्र प्रभाव शुद्ध अध्ययन इन सबका बल देख ॥७५॥ राजाने अत्यन्त विनीतभावसे

पक्षिणऊचुः ॥ ॥ एवंविलपतोराज्ञःसविप्रोऽन्तरधीयत ॥ वृक्षगेहादिभिस्तुंगैस्तावादायत्वरान्वितः ॥७१॥ विश्वामित्रस्ततःप्राप्तो नृपंवित्तमयाचत ॥ तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ॥ ७२ ॥ तद्वित्तंस्तोकमालोक्यदारविक्रयसंभवम ॥ शोकाभिभूतंराजा नंकुपितःकौशिकोऽब्रवीत् ॥७३॥ क्षत्रबंधोममेमांत्वंसदृशींयज्ञदक्षिणाम् ॥ मन्यसेयदितत्क्षिप्रंपश्यत्वंमबलंपरम ॥७४॥ तपसोऽत्र सुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच ॥ मत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्यच ॥७५॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अन्यांदास्यामिभगवन्कालः कश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ॥ साम्प्रतंनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालकः ॥७६॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ चतुर्भागःस्थितोयोऽयंदिवसस्यन राधिप ॥ एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यंनोत्तरंत्वया ॥७७॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ तमेवमुक्काराजेंद्रंनिष्ठुरंनिर्घृणंवचः । तदादायधनंतूर्णंकुपि तःकौशिकोययौ ॥७८॥ विश्वामित्रेगतेराजाभयशोकादिमध्यगः ॥ स्वविक्रयंविनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुखः ॥ ७९ ॥ वित्तक्रीतेन योमेऽर्थीमयाप्रेष्येणमानवः ॥ सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्करः ॥ ८० ॥

कहा—हे भगवन् ! कुछ काल अपेक्षा कीजिये शेष दक्षिणा दूंगा इस समय और कुछ नहीं है, यह देखो पत्नी पुत्रतकको बेचदिया है ॥७६॥ विश्वामित्र बोले हे नराधिप ! यह जो केवल दिनका चौथा भाग शेष है मैं इसीकी प्रतीक्षा करूंगा फिर तुम कोई उत्तर नहीं करना ॥ ७७ ॥ पक्षी बोले-मुनिवर कौशिक उन राजासे क्रोधपूर्ण घृणाहीन और निष्ठुर वचन कह उस धनको लेकर चले गये॥७८॥विश्वामित्रके चले जानेपर नरपति हरिश्चंद्र भय और शोकसागरमें मग्नहो, सब प्रकारसे निश्चय कर नीचेको मुख किये उच्च स्वरसे कहने लगे ॥७९॥ कि, "यदि कोई पुरुष

धनप्रदानपूर्वक मुझको मोल लेकर सेवक बनानेकी इच्छा करे वही सूर्यदेवके अस्त होनेसे पहिलेही मुझसे कहै" ॥८०॥ अनन्तर स्वयं धर्म चांडालका रूप धारण करके शीघ्र आये। उसके गात्रमें दुर्गन्ध आतीथी उसकी मूर्त्ति रूक्ष मुख डाढी मूछोंसे युक्त और बड़ा स्वभाव अत्यन्त भयंकर समस्त दांत ऊंचे और उसका रूप अत्यन्त घृणाकर था ॥८१॥ वह कृष्णवर्ण लम्बोदर पिंगल अथ च रूक्षलोचन और कर्कशभाषी था। उसके हाथ में कितने ही पक्षी गले में मृतकों की माला ॥८२॥ एकहाथमें नरकपाल, दूसरे हाथमें लाठी लिये, शरीर अत्यन्त कृश और वह कितनेही कुत्तोंसे परिवेष्टित होकर निरन्तर अतिशय जल्पना प्रयोग करताथा ॥ ८३ ॥ वह चाण्डाल रूपी धर्म राजासे आकर बोला मैं तुमको मोल

अथाजगामत्वरितोधर्मश्चण्डालरूपधृक् ॥ दुर्गन्धोविकृतोरूक्षःश्मश्रुलोदन्तुरोघृणी ॥८१॥ कृष्णोलम्बोदरःपिङ्गरूक्षाक्षःपरुषाक्षरः॥ गृहीतपक्षिपुंजश्चशवमाल्यैरलंकृतः ॥८२॥ कपालहस्तोदीर्घास्योभैरवोऽतिवदन्मुहुः ॥ श्वगणाभिवृतोघोरोयष्टिहस्तोनिराकृतिः॥८३॥ ॥ चण्डालउवाच ॥ अहमर्थीत्वयाशीघ्रंकथयस्वात्मवेतनम् ॥ स्तोकेनबहुनावापियेनवैलभ्यतेभवान् ॥८४॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तंता दृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिसुनिष्ठुरम् ॥ वदन्तमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याहपार्थिवः ॥८५॥ ॥ चण्डालउवाच ॥ चण्डालोऽहमिहरख्यातःप्र वीरेतिपुरोत्तमे ॥ विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्बलहारकः ॥ ८६ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ नाहंचण्डालदासत्वमिच्छेयंसुविगर्हितम् ॥ वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगतः ॥ ८७ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ तस्यैवंवदतःप्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधिः ॥ कोपामर्षविवृत्ताक्षःप्राहचे दंनराधिपम् ॥ ८८ ॥

लूंगा। थोड़े वा बहुत किस मूल्यमें तुमको प्राप्त करताहूं, शीघ्र कहो ॥ ८४ ॥ पक्षी बोले कि, अतिपरुषभाषी, क्रूरदृष्टि और कर्कशस्वभाव चाण्डालको ऐसी अवस्थामें आया देखकर राजाने कहा तुम कौन हो ॥८५॥ चाण्डाल बोला मैं चाण्डाल हूं और इस श्रेष्ठ नगरीमें मेरा वास है, मेरा वास है, मेरा नाम प्रवीर है मैं प्रसिद्ध वध्य वधिक अर्थात् वध करने योग्य पुरुषका वध करनेवालाहूं और मरे हुए पुरुषका कम्बलभी हरण करताहूं ॥८६॥ हरिश्चन्द्रने कहा—चाण्डालका दासत्वस्वीकार करना अत्यन्त निन्दाकी बात है, अत एव मैं इसकी इच्छा नहीं करता यद्यपि शापानलमें दग्धही हूं, किन्तु तो भी चाण्डालके वशीभूत नहीं हूंगा॥८७॥पक्षी बोले—राजा इसप्रकार कहतेही थे, उसी समय तपोनिधि विश्वामित्र

जीने सहसा आय,कोप अमर्षद्वारा लाल नेत्रकर राजासे कहा ॥८८॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यह चाण्डाल तुमको बहुत धन देनेके लिये उपस्थित है ,तो फिर किसकारण मेरे यज्ञकी दक्षिणा नहीं देते हो?॥८९॥हरिश्चन्द्र बोले—भगवन् कौशिक! मैं अपनी आत्माको सूर्यवंशोत्पन्न जानताहूं, अत एव धनके लोभसे किसप्रकार चाण्डालके वशीभूत हूं॥९०॥विश्वामित्रने कहा—यदि तुम मुझको अपना शरीर बेचकर इस चाण्डालका धन यथासमयमें नहीं दोगे,तो मैं तुमको निःसन्देह शाप दूंगा॥९१॥पक्षी बोले—तदन्तर महीमति हरिश्चन्द्रने चिन्तामात्रसे जीवित हो "भगवन् प्रसन्न हूजिये" कहकर व्याकुल मनसे ऋषिवरके दोनों चरण पकड़लिये और कहा॥९२॥मैं आपका दासहूं, म अत्यन्त भीत और व्याकुल हुआ हूं और विशेषकर मैं आप

॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ चण्डालोऽयमनल्पंतेदातुंवित्तमुपस्थितः ॥ कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥ ८९ ॥ हरिश्चन्द्रउवाच ॥ भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानंवेद्मिकौशिक ॥ कथंचण्डालदासत्वंगमिष्येवित्तकामुकः ॥ ९० ॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ ॥ यदिचण्डालवित्तंत्वमात्मविक्रयजंमम ॥ नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यापित्वामसंशयम् ॥ ९१ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावस्थितजीवितः ॥ प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वलः ॥ ९२ ॥ दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषतः ॥ कुरुप्रसादंविप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्करः ॥ ९३ ॥ भवेयंवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवशः ॥ तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः॥९४॥ ॥ विश्वामित्रउवाच ॥ यदिप्रेष्योममभवांश्चण्डालायततोमया ॥ दासभाव मनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्बुदेनवै ॥ ९५ ॥ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ यद्यसौशक्यतेविप्रःकौशिकःपरितोषितुम् ॥ ततोगृहाणमामद्यदासत्वंतेकरोम्यहम् ॥ ९६ ॥

काही भक्तहूं,इस कारण हे विप्रर्षे ! अनुग्रह कीजिये, चाण्डालके वशीभूत होना अत्यन्त कष्टकी बात है ॥ ९३ ॥ हे प्रभो ! मेरा धन शेष हो गया है, अत एव मैं आपका ही कर्मकर दास हूंगा, हे मुनिशार्दूल ! आप जो कहेंगे, वही करूंगा और सदा तुम्हारे ही चित्तका अनुवर्त्ती होकर रहूंगा-॥ ९४ ॥ विश्वामित्र बोले—हे राजन् ! यदि तुम मेरे ही वशीभूत होतेहो तो मैंने एक अर्बुद मुद्रामें तुमको इस चाण्डालके हाथ बेचा, तुम इसके ही दास हो जाओ ॥ ९५ ॥ हरिश्चन्द्रने कहा—कि, जो यह ब्राह्मण विश्वामित्रजी संतुष्ट हो सकते हैं, तो मुझे ग्रहण करो, मैं तुम्हारा दास बनकर सेवा करूंगा ॥ ९६ ॥

चाण्डाल बोला—कि, सौ योजन की विस्तारवाली अनेक ग्रामोंसे शोभित पृथ्वीको रक्षावाली करके मैं विश्वामित्रजीको देता हूं ॥ ९७ ॥ पक्षी बोले—तब राजाके मुखसे " जो आज्ञा " यह वचन निकलते ही चाण्डाल रूपी धर्म प्रसन्नचित्तसे विश्वामित्र मुनिको वह धन देकर नरपतिको बांध अपने नगरमें गया ॥ ९८ ॥ राजा हरिश्चन्द्र एक तो पत्नीपुत्रादि बंधु वियोगसे अत्यन्त कातर होगयेथे, इसपर भी फिर चाण्डालके दण्डे मारनेसे अत्यन्त सम्भ्रान्त और व्याकुल होगये ॥ ९९ ॥ तदनन्तर हरिश्चन्द्र चाण्डालके घर वास करते हुए प्रात मध्याह्न तथा सायंकाल इत्यादि सब समयमें ही इसप्रकार गान करते कि, ॥ १०० ॥ "दीनमुखी बाला दीनमुखबालकको सन्मुख देखकर दुःखित चित्तसे इसप्रकार चिन्ता करती

चण्डालउवाच ॥ ॥ शतयोजनविस्तीर्णांनानाग्रामैरलंकृताम् ॥ भूमिरक्षामयींकृत्वादास्येहंकौशिकंप्रति ॥ ९७ ॥ पक्षिणऊचुः ॥
॥ एवमुक्तेतदातेनश्वपाकोहृष्टमानसः ॥ विश्वामित्रायतद्द्रव्यंदत्त्वाबद्ध्वानरेश्वरम् ॥९८॥ दण्डप्रहारसंभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम्॥
इष्टबन्धुवियोगार्तमनयन्निजपक्कणम् ॥९९॥ हरिश्चन्द्रस्ततोराजावसंश्चण्डालपक्कणे ॥ प्रातर्मध्याह्नसमयेसायंचैतदगायत ॥१००॥
बालांदीनमुखींदृष्ट्वाबालंदीनमुखंपुरः ॥ मांस्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृपः॥१०१॥उपात्तवित्तोविप्रायदत्त्वावित्तमतोऽधिकम्॥
नसामांमृगशावाक्षीवेत्तिपापतरंकृतम्॥१०२॥ राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्यातनयविक्रयः ॥ प्राप्ताचण्डालताचेयमहोदुःखपरम्परा॥३॥
एवंसनिवसन्नित्यंसस्मारदयितंसुतम् ॥ भार्यांचात्मसमाविष्टांहृतसर्वस्वआतुरः ॥ ४ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यमृतचैलापहारकः ॥
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशानेतद्वशानुगः ॥ ५ ॥

होगी कि, राजा धन उपार्जनपूर्वक ब्राह्मणको इससे अधिक धन दे हम दोनोंको छुडावेंगे" किंतु हाय ! वह मृगशावाक्षी यह नहीं जानती है कि, मैं चाण्डालके दासत्वरूप पापदशामें निपतित हुआहूं ॥ १०१ ॥ १०२ ॥ राज्यनाश, सुहृद्त्याग, भार्या पुत्रका बिकना और अन्तमें इस चाण्डालपनेकी प्राप्ति, हाय ! दुःखके ऊपर दुःख उपस्थित होता है ॥१०३॥ जिनका सर्वस्व हरण होगया वह राजा इसप्रकार चाण्डालके घर वास करते हुए प्रतिदिन दुःखितचित्तसे प्रियतम पुत्र और मनमें बसी हुई भार्याको स्मरणकरते ॥ १०४ ॥ फिर कुछ दिन बीतनेपर उस चाण्डालके वशवर्त्ती राजा हरिश्चन्द्र श्मशानमें स्थित मृतकके वस्त्र ग्रहण करनेवाले हुए ॥ १०५ ॥

और शवबस्त्रापहारी चाण्डालके द्वारा इसप्रकार आज्ञाको प्राप्त हुए कि " तुम दिन रात इस स्थानमें वास करके कहां कौन मुर्दा आता है, इसको खोज करो॥१०६॥प्रत्येक शव (मुरदे) में जो प्राप्त हो, उसका छठा भाग राजाको दो, अवशिष्ट पांच भागमें तीन भाग मेरे निमित्त और दो भाग तुम अपने वेतनमें रक्खो" ॥१०७॥ तब राजा हरिश्चन्द्रने चाण्डालकी इसप्रकार आज्ञा पाय वाराणसीकी दक्षिण दिशामें स्थित श्मशानमें प्रवेश किया ॥ १०८ ॥ उसकी चारों दिशा घोर शब्दसे प्रतिध्वनित थीं। सैकड़ों गीदड़ियोंसे परिपूर्ण, मृतकोंके मस्तकोंसे व्याप्त तथा दुर्गन्धमय और बहुत धुएँसे समाच्छन्न था ॥ १०९ ॥ पिशाच, भूत, वेताल, डाकिनी, यक्ष, गृध्र, गोमायु इत्यादिसे भरा हुआ, तथा उनके शब्दोंसे

चण्डालेनानुशिष्टश्च मृतचैलापहारिणा ॥ शवागमनमन्विच्छन्निहतिष्ठन्दिवानिशम् ॥ ६ ॥ इदंराज्ञेऽपिदेयश्चषड्भागन्तुशवंप्रति ॥ त्रयस्तुममभागाःस्युर्द्वौभागौतववेतनम् ॥ ७ ॥ इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमन्दिरम् ॥ दिशंतुदक्षिणांयत्रवाराणस्यांस्थितंतदा ॥ ॥ ८ ॥ श्मशानंघोरसंनादंशिवाशतसमाकुलम् ॥ शवमौलिसमाकीर्णंदुर्गन्धबहुधूमकम् ॥ ९ ॥ पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम् ॥ महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥ ११० ॥ गृध्रगोमायुसंकीर्णंश्ववृन्दपरिवारितम् ॥ अस्थिसंघातसंकीर्णंमहादुर्गन्धसंकुलम् ॥ ११ ॥ नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ॥ हापुत्रमित्रहाबन्धोभ्रातर्वत्सप्रियाद्यमे ॥ १२ ॥ हापतेभगिनिमातर्हामातुलपितामह ॥ मातामहपितःपौत्रक्वगतोऽस्येहिबान्धव ॥ १३ ॥ इत्येवंवदतांयत्रध्वनिःसंश्रूयतेमहान् ॥ यत्रनेत्रैरनिमिषैःशवामयमिवाविशन् ॥ १४ ॥ निमीलितैश्चनयनैर्बंधुचिंतापथेस्थितः ॥ ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसंकुलम् ॥ १५ ॥

नादित था और उसमें कुत्ते जहां तहां फिर रहे थे। वह अस्थियोंसे परिपूर्ण और महादुर्गन्धमय था ॥११०॥१११॥ मृतपुरुषवाले सम्बंधियोंके आर्तनादसे परिपूर्ण होनेके कारण अत्यन्त कोलाहलयुक्त था। हा पुत्र! हा मित्र! हा बन्धो! हा भ्राता! हा वत्स! हा प्रिये! ॥११२॥ हा स्वामिन्! हा बहिन! हा माता! हा मामा! हा पितामह! हा मातामह! हा पितः! हा पौत्र! हा बांधव! आज कहां गये! एक बार आओ॥ ॥११३॥ इसप्रकार और भी अनेक भांतिसे विलाप करते हुए पुरुषोंका आर्तनाद उसके चारों ओर सुनाई आता था और कहीं कहीं मृतक अनिमेष नेत्रोंसे अर्थात् विनाही पलक मारे देख रहे थे, जिनसे भय लगता था ॥ ११४ ॥ कोई आंख खोले बन्धुओंकी चिन्ता कर रहा था, मांस,

मज्जा और मेद जलनेके कारण छन छन शब्दसे उसकी चारों दिशा संकुल होरही थीं ॥ ११५ ॥ शवने अग्निमें पड़नेके कारण अध जली होकर श्यामवर्ण धारण किया है और उसके दाँतोंकी पंक्ति बाहर होगई है, देखनेसे विदित होता है कि, "उस देहकी ऐसी दशा !" यह विचार कर मानों उसका हास्य करती है ॥ ११६ ॥ अस्थिपंक्तियोंके ऊपर बैठे हुए काकोंके नानाप्रकारसे शब्द होते थे, मृत पुरुषोंके लिये बांधवजन आर्त्तनाद कर रहे थे. अग्निके चटचटा शब्द और चाण्डालोंकी आनन्दसूचक ध्वनिसे वह परिपूर्ण हो रहाथा ॥११७॥ कहीं भूत वेताल पिशाच राक्षसोंके गाने नाचनेका शब्द सुननेसे वह स्थान भयंकर प्रलयकालके समान विदित होताथा॥११८॥कहीं कहीं राखोंके ढेर काले काले भैंसाओंके गोबरके ढेर तथा गायोंके गोबरके ढेर दिखाई देतेथे और उन राखोंका अस्थियोंपर उड उड़ कर गिरना पहाड़की

अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामाविकसद्दन्तपंक्तयः ॥ हसंत्येवाग्निमध्यस्थाःकायस्येयंदशात्विति ॥ १६ ॥ अग्नेश्चटचटाशब्दोवयसा मस्थिपंक्तिषु ॥ बान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुल्कसेषुप्रहर्षजः ॥ १७ ॥ गायतांभूतवेतालपिशाचगणरक्षसाम् ॥ श्रूयतेसुमहान्घोरःक ल्पान्तइवनिःस्वनः ॥ १८ ॥ महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम् ॥ तदुत्थभस्मकूटैश्चवृतंसास्थिभिरुन्नतैः ॥ १९ ॥ नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसंकुलम् ॥ अनेकशब्दबहुलंश्मशानंनरकायते ॥१२०॥ सवह्निगर्भैरशिवैःशिवारुतैर्निनादितंभीषणरावग ह्वरम् ॥ भयंभयस्याप्युपसंजनैर्भृशंश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ॥२१॥ सराजातत्रसंप्राप्तोदुःखितःशोचनोद्यतः ॥ हाभृत्यामंत्रिणो विप्राःक्वतद्राज्यंविधेगतम् ॥ २२ ॥ हाशैब्येपुत्रहाबालमांत्यक्त्वामन्दभाग्यकम् ॥ श्वामित्रस्यदोषेणगताःकुत्रापितेमम ॥ २३ ॥

सुन्दरता दिखाता था ॥ ११९ ॥ किसी स्थानमें काकबलिको उपहार दीहुई माल्य और दीपमाला पड़ीहुई थी, कहीं उल्कामुख शृगाल अमंगलजनक शब्दसे चारों दिशा प्रतिध्वनित कररहे थे, जिससे वह स्थान नरक दीख रहाथा ॥ १२० ॥ किसी स्थानमें गह्वरस्थ शृगालोंका भयंकर शब्द हो रहाथा । अनेक मनुष्योंकी अनेक प्रकार क्रंदनध्वनिसे और भाँति भाँतिकी भयंकर प्रतिध्वनिसे अत्यन्त भयानक उस नरकके समान श्मशानमें बोध होताहै कि, स्वयं भयको भी अत्यन्त भीत होना पड़ताथा॥१२१॥ राजा हरिश्चन्द्र उस दारुण श्मशानमें पहुँचकर चिन्ता करने लगे कि, "हा विधाता ! वह भृत्यगण, वह मंत्रीगण, वह ब्राह्मणगण और वह ब्राह्मणगण और वह राज्य कहां गया ? ॥१२२॥ हा शैब्ये !

हा वत्स ! तुम इस भाग्यहीनको छोड़कर कहां चले गये ? हाय ! एकमात्र विश्वामित्रजीके रोषसे मेरा सर्वस्व चलागया" ॥ १२३ ॥ नृपवर हरिश्चन्द्र उस श्मशानमें इसप्रकार अनेक भाँतिसे चिन्ता करते २ चाण्डालके वचनकीभी वारंवार चिन्ता करतेथे, एक तो मलिन वेष, रूक्ष देह, इसपर भी फिर सर्वांग में केश, एवं दुर्गंध और ध्वजा ॥१२४॥ तथा लाठी लेकर इधर उधर घूमना, अत एव मानों वह उस समय स्वयं यमस्वरूप होरहेथे और मनमें विचारतेथे कि, इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इतना मिला और इतना शेष है ॥ १२५ ॥ सुतरां 'यह मेरा, यह राजाका और वह मुख्य चाण्डालका, जब वह इसप्रकार चिन्ता करते करते इधर उधर भ्रमण करते, तब बोध होताकि, उनको जीवितदशामें ही प्रेतयोनि उपस्थित हुई है ॥१२६॥ जीर्ण वस्त्रमें ग्रंथि देकर ही उन्होंने कन्था पहर रक्खीथी, मुख, बाहु, उदर और दोनों चरणोंमें चिता की

इत्येवंचिन्तयंस्तत्रचण्डालोक्तंपुनपुनः ॥ मलिनोरूक्षसर्वांगःकेशवान्गन्धवान्ध्वजी॥२४॥ लगुडीकालकल्पश्चधावंश्चापिततस्ततः॥ अस्मिन्शवइदंमूल्यंप्राप्तंप्राप्स्यामिचाप्युत ॥२५॥ इदंममइदंराज्ञेमुख्यचंडालकेत्विदम् ॥ इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरंगतः॥ ॥ २६ ॥ जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ॥ चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ॥ २७ ॥ नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यंगुलिः श्वसन् ॥ नानाशवौदनकृताहारतृप्तिपरायणः ॥२८॥ तदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः॥नरात्रौनदिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहुः॥२९॥ एवंद्वादशमासास्तुनीताःशतसमोपमाः ॥ सकदाचिन्नृपश्रेष्ठःश्रान्तोबन्धुवियोगवान् ॥ १३० ॥ निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गोनिश्चेष्टःसुप्तए वच ॥ तत्रापिशयनीयेसदृष्टवानद्भुतंमहत्॥३१॥श्मशानाभ्याशयोगेनदैवस्यबलवत्तया॥अन्यदेहेनदत्वातुमुखेगुरुदक्षिणाम् ॥३२॥

भस्म लेपन करीथी॥१२७॥हाथकी सब अंगुलियोंमें नानाप्रकार मेद, वसा और मज्जा लगी रहतीथी, अनेक मृतकोंके पिंडसे बचेहुए भातका भोजन कर के तृप्त होते थे॥१२८॥मृतकके शरीर की मालासे ही मस्तक शोभित करके वारंवार हा हा शब्द उच्चारण करते और क्या दिन, क्या रात्रि, किसी समय भी वह नहीं सोतेथे ॥१२९॥ उन्होंने इसप्रकार उस श्मशानमें वास करके सौ वर्षके समान बारह महीने बिताये फिर किसी दिन नृपश्रेष्ठ हरिश्चन्द्र बंधुवियोगसे श्रांत हुए ॥ १३० ॥ रूक्ष देह, चेष्टारहित हो शयन करके निद्राभिभूत हुएथे, उसी समय उन्होंने एक महाअद्भुत बात स्वप्नमें देखी॥१३१॥श्मशानमें वास करनेका अभ्यास होनेके कारण अथवा दैवकी बलवत्ताके कारण उन्होंने देखा कि, "अन्य देह धारणपूर्वक गुरुको

दक्षिणा देकर ॥ १३२ ॥ बारह वर्ष दुःख भोगने के पीछे तब मेरा छुटकारा होगा फिर उन्होंने देखा कि, मैं स्वयं मानों पुक्कसी (डोमनी) के गर्भमें वास करता हूं ॥ १३३ ॥ उस डोमनीके गर्भमें वास करनेके समय वह चिन्ता करने लगे कि, इस डोमनीके गर्भसे निकलते ही मैं दानधर्मका आचरण करूंगा" ॥ १३४॥ इतनेही में क्या देखा कि, मैं उस गर्भसे उत्पन्न होकर उसी जातिका कर्म अर्थात् श्मशानमें मृतकसंस्कार करनेको उद्यत रहता हूं ॥ १३५॥ जब वह चांडालके बालकवेषमें सात वर्षकी अवस्थाके हुए, तब किसी गुणवान् अनाथ ब्राह्मणके मृत देहको उसके बंधुवर्ग श्मशानमें लाये ॥ १३६॥ तब वह निर्धन ब्राह्मण शब्द दाह करनेका मूल्य देनेमें असमर्थ होकर उनसे अत्यंत तिरस्कृत हुए कहनेलगे कि, हाय!

तदाद्वादशवर्षाणिदुःखदानात्तुनिष्कृतिः ॥ आत्मानंसददर्शाथपुल्कसीगर्भसंभवम् ॥ ३३ ॥ तत्रस्थश्चाप्यसौराजासोऽचिन्तयदिदं तदा ॥ इतोनिष्क्रान्तमात्रोहिदानधर्मंकरोम्यहम् ॥ ३४ ॥ अनन्तरंसजातस्तुतदापुल्कसबालकः ॥ श्मशानमृतसंस्कारकरणेषुसदोद्यतः ॥ ३५ ॥ प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मशानेऽथमृतोद्विजः ॥ आनीतोबन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राधनोगुणी ॥ ३६ ॥ मूल्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणाः ॥ ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥ ३७ ॥ पापिष्ठमशुभंकर्मकुरुत्वंपापकारक ॥ हरिश्चन्द्रःपुराराजा विश्वामित्रेणपुल्कसः ॥ ३८ ॥ कृतःपुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात ॥ यदानक्षमतेतेषांतैःसशप्तोरुषातदा ॥ ३९ ॥ गच्छत्वं नरकंघोरमधुनैवनराधम ॥ इत्युक्तमात्रेवचनेस्वप्नस्थःसनृपस्तदा ॥ १४० ॥ अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान् ॥ तैः संगृहीतमात्मानंनीयमानंतदाबलात् ॥४१॥ पश्यतिस्मभृशंखिन्नोहामातःपितरद्यमे ॥ एवंवादीसनरकेतैलद्रोण्यांनिपातितः ॥४२॥

विश्वामित्रका क्या अशुभ पापमय कार्य है। रे पापकारक ! तू इस प्रकारके अशुभ कार्यही करता रहता है, तू पूर्व जन्ममें राजा हरिश्चंद्र था, विश्वामित्रने तुझे चांडाल किया है ॥ १३७ ॥ १३८॥ ब्रह्मस्व नाशसे पुण्य विनाश होनेके कारणही विश्वामित्रके द्वारा चांडालरूपमें जन्म ग्रहण किया है। जब वह ब्राह्मण मूल्य देकर शवके दाह करनेमें समर्थ नहीं हुए, तब अत्यन्त क्रोधसे राजाको शाप दिया ॥ १३९॥ कि, रे नराधम ! तू इसी समय घोर नरकमें जा। ब्राह्मणोंके यह वचन कहतेही उस स्वप्नदर्शी राजाने ॥ १४०॥ देखा कि, अत्यन्त भयंकर यमदूत हाथमें फांसी लिये आ रहे हैं, और फिर बलपूर्वक मेरी आत्माको, बांधकर ले चले हैं ॥ १४१॥ तब वह अत्यन्त खेदसे ' हा माता ! हा पिता ! आज मेरी यह दशा हुई, इस

भाँति अनेक प्रकारसे विलाप करने लगे, उसी समय यमदूतों ने उनको नरककी तैलद्रोणीमें डाल दिया ॥१४२॥ फिर तीक्ष्णधारवाले आरोंसे चीरे जाकर अन्धतम नरकमें गिराया और दुःखीहुएको राद और रुधिरका भोजन कराया॥१४३॥इसप्रकार सात वर्षतक मृत उस आत्माको चाण्डाल स्वप्नमें देखने लगे कि, दिन दिन नरकमें कहीं दग्ध होता हूं, कहीं पच्य अर्थात् कोल्हूमें पेला जाता हूं॥१४४॥कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूं, कभी मारा जाता, कभी पाड़ा जाता, कभी खारमें डालाजाता, कभी बालाजाता और कभी शीत तथा वायुसे आहत होताहूं॥१४५॥ वहां एक एक दिन उनके पक्षमें मानो सौ वर्षके समान बीतने लगा। इस प्रकार दुःख भोगते भोगते नरक की रक्षा करनेवालोंके मुखसे सुना कि,उनके सौ वर्ष उत्तीर्ण होगये हैं ॥१४६॥

ककचैःपाट्यमानस्तुक्षुरधाराभिरप्यधः ॥ अन्धेतमसिदुःखार्त्तःपूयशोणितभोजनः॥४३॥ सप्तवर्षमृतात्मानंपुलकसस्त्वेददर्शह ॥ दिनं दिनंतुनरकेदह्यतेपच्यतेऽन्यतः ॥ ४४ ॥ खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्रमार्यतेपाट्यतेऽन्यतः ॥ क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्रशीतवाताहतोऽन्यतः ॥ ॥४५॥ एकंदिनंवर्षशतप्रमाणंनरकेऽभवत् ॥ तथावर्षशतंतत्रश्राविंतनरकेभटैः ॥ ४६ ॥ ततोनिपातितोभूमौविष्ठाशीश्वाव्यजायत ॥ वान्ताशीशीतदग्धश्चमासमात्रेमृतोऽपिसः ॥४७॥ अथापश्यत्खरंदेहंहस्तिनंवानरंपशुम् ॥ छागंबिडालंकङ्कंचगामविंपक्षिणंकृमिम्॥ ॥४८॥ मत्स्यंकूर्मंवराहंचश्वाविधंकुक्कुटंशुकम् ॥ शारिकांस्थावरांश्चैवसर्पमन्यांश्चदेहिनः ॥४९॥ दिवसेदिवसेजन्मप्राणिनः प्राणिनस्तदा ॥ अपश्यद्दुःखसन्तप्तोदिनंवर्षशतंतथा ॥ १५० ॥ एवंवर्षशतंपूर्णंगतंतत्रकुयोनिषु ॥ अपश्यच्चकदाचित्सराजातस्त्वकुलोद्भवम् ॥ ५१ ॥

तब यमदूतोंने उनको पृथ्वीमें गिरादिया और उन्होंने विष्ठाभोजी कुत्तेके रूप में जन्म लिया, फिर विष्ठा और वमन भोजन करते हुए अत्यन्त शीतसे व्याकुल होकर एक महीनेमें प्राणत्याग किया॥१४७॥फिर देखा कि, मैंने गधेकी योनिमें जन्म लिया है, इसके पीछे क्रमशःहाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, काक, गौ मेष, पक्षी, कृमि ॥ १४८ ॥ मछली, कछुए, सुअर, मृग, मुरगे, तोते, मैना, वृक्षादि और अजगर सर्प इत्यादि नानाप्रकारके प्राणियों में ॥ १४९ ॥ दिन दिन जन्म लेता हूं, इसप्रकार क्लेश भोगते वह एक दिनको सौ वर्षके समान अनुभव करने लगे॥१५०॥इस भांति नानाप्रकारकी कुयोनियोंमें जन्म ग्रहण करके दुःख भोगते भोगते पूरे सौवर्ष बीतगये।फिर देखा कि, मानों किसी समय वह

गुरुओंके अपने कुलमें जन्म लेकर राजा हुए हैं॥१५१॥वह वहां वास करते हुए किसी समय जुआ खेलनेमें राज्य, स्त्री और पुत्रको हार कर अकेले वनमें गये हैं॥१५२॥वहां देखा कि, एक भयंकर सिंह शरभके सहित मुख फैलाये उनको भक्षण करनेके लिये आरहा है ॥१५३॥ फिर उसके द्वारा भक्षित होकर "हा शैब्ये! इस दुःखित मनुष्यको छोडकर तुम कहां जातीहो?" इत्यादि प्रकारसे शोक करते करते ज्योंही उद्यत हुए॥१५४॥उसी समय देखा, मानों रानी शैब्या पुत्रके सहित हा महाराज हरिश्चन्द्र ! हमारी रक्षा करो । हे प्रभो ! आपका जुआ खेलनेसे क्या प्रयोजन है ॥१५५॥ देखो, तुम्हारी भार्या शैब्या अपने पुत्रके सहित कैसी शोचनीय दशाको प्राप्त हुई है । इत्यादि प्रकारसे विलाप करती है, तब वह मानों वारंवार

तत्रस्थितस्यतस्यापिराज्यंद्यूतेनहारितम् ॥ भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनंगतः ॥ ५२ ॥ तत्रापश्यत्ससिंहंवैव्यादितास्यंभयावहम् ॥ बिभक्षयिषुमायांतंशरभेणसमन्वितम् ॥ ५३ ॥ पुनश्चभक्षितःसोऽपिभार्यांशोचितुमुद्यतः ॥ हाशैब्येक्वगतास्यद्यमामिहापास्यदुःखितम् ॥ ५४ ॥ अपश्यत्पुनरेवापिभार्यांस्वाहतपुत्रकाम् ॥ त्रायस्वत्वंहरिश्चंद्रकिंद्यूतेनतवप्रभो ॥ ५५ ॥ पुत्रस्तेशोच्यतांप्राप्ताभार्य्ययाशैब्ययासह ॥ सनापश्यत्पुनरपिधावमानःपुनःपुनः ॥ ५६ ॥ अथापश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थःसनराधिपः ॥ नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनाबलात् ॥ ५७ ॥ हाहावयंप्रमुंचन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ॥ अथापश्यत्पुनस्तत्रधर्मराजस्यशासनात् ॥ ॥ ५८ ॥ आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ॥ विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजंस्तवार्थतः ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीयतेबलवद्भिर्भुः ॥ श्राद्धदेवेनकथितंविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ॥ १६० ॥

इधर उधरको दौडे किन्तु फिर उसको नहीं देखा॥१५६॥राजा हरिश्चन्द्रने फिर देखा कि, वह स्वर्गमें वास करते हैं वहां वास करते करते उन्होंने देखा कि, मानों दीन, वस्त्रहीन और खुले केश रानी शैब्या किसी पुरुषके द्वारा बलपूर्वक हरी जाकर॥१५७॥"हा महाराज ! रक्षाकरो, ! हा महाराज! रक्षाकरो" कहकर निरन्तर चिल्लाती है । उन्होंने फिर देखा कि, मानों यमदूत यमराजके शासनमें ॥ १५८ ॥ आकाशमार्गमें स्थित हुए 'हे राजन् ! यमराजको आपके निमित्त विश्वामित्रजीने सूचना दी है, अत एव आप इस स्थानमें आइये, यह कहकर महाशब्द करते हैं ॥१५९॥ उन्होंने फिर देखा कि, यह बात कहकर मानों यमके अनुचर मुझे नागपाशमें दृढरीतिसे बांध कर लेचले हैं, और यमराज यह विश्वामित्रका

चरित्र कीर्त्तन करते हैं ॥१६०॥यद्यपि महाराज हरिश्चन्द्र इस भाँति नाना प्रकारकी यंत्रणा भोगते थे, किन्तु तो भी उनके मनमें कोई अधर्म जनित विकार उपस्थित नहीं हुआ। इस भांति अनेक प्रकारकी दशा जो जो उनको स्वप्नमें दिखाई दी थीं ॥१६१॥ जो इस बारह वर्षके समय तक निरन्तर वहीं उन्होंने भोग कीं थीं। बारह वर्ष बीतनेपर जब वह यमदूतोंके द्वारा बलपूर्वक लाये गये ॥ १६२ ॥ तब उन्होंने यमराजका दर्शन किया, यमराजने उनसे कहा—हे महाराज! यह महात्मा विश्वामित्रजीके दुर्निवार्य कोपका फल है ॥ १६३ ॥ अधिक क्या? वह कौशिक मुनि आपके पुत्रकी भी मृत्यु संघटित करावेंगे। अत एव आप मनुष्य लोकमें जाकर शेष दुःख भोग कीजिये। हे राजन्! वहां जानेसे तुम्हारा

तत्रापितस्यविकृतिर्नाधर्मोत्थाप्यवर्द्धत ॥ एताःसर्वादशास्तस्ययाःस्वप्नेसम्प्रदर्शिताः ॥ ६१ ॥ सर्वास्तास्तेनसम्भुक्तायाव द्वर्षाणिद्वादश ॥ अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ॥ ६२ ॥ यमंसोऽपश्यदाकारादुवाचचनराधिपम् ॥ विश्वामित्रस्यकोपो ऽयंदुर्निवार्य्योमहात्मनः ॥ ६३ ॥ पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिकः ॥ गच्छत्वंमानुषंलोकंदुःखशेषंचभुंक्ष्वत्वं ॥ गतस्य तत्रराजेन्द्रश्रेयस्तवभविष्यति ॥ ६४ ॥ व्यतीतेद्वादशेवर्षेदुःखस्यान्तेनराधिपः ॥ अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतैःप्रणोदितः ॥ ६५ ॥ पतितोयमलोकाच्चविबुद्धोभयसंभ्रमात् ॥ अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम् ॥ ६६ ॥ स्वप्नेदुःखंमयादृष्टंयस्यान्तोनोपल भ्यते ॥ स्वप्नेदृष्टंमयायत्तुकिन्तुमेद्वादशाःसमाः ॥ ६७ ॥ गतेत्यपृच्छत्तत्रस्थान्पुल्कसांस्तुससंभ्रमात् ॥ नेत्यूचुःकेचित्तत्रस्थाएवमे वापरेऽब्रुवन् ॥ ६८ ॥ श्रुत्वादुःखीतदाराजादेवाञ्शरणमीयिवान् ॥ स्वस्तिकुर्वन्तुमेदेवाःशैब्यायाबालकस्यच ॥ ६९ ॥

कल्याण होगा ॥ १६४ ॥ वहां बारह वर्ष बीतनेपर दुःखका अन्त होगा यमराजके इसप्रकार कहनेपर यमदूतोंने उनको आकाशसे गिरा दिया ॥ ॥१६५॥ वह यमलोकसे गिरते ही भय और भ्रमवशतः हठात् जाग गये और मनमें चिन्ता करने लगे कि, हाय! घावमें नमक लगनेके समान यह और क्या हुआ? ॥१६६॥ स्वप्नमें जिसप्रकार महादुःख देखेहैं; उनकी तो सीमा नहीं है, मैंने जो स्वप्नमें देखा, तो क्या बारह वर्ष बीत गये हैं? ॥१६७॥ यह कह भ्रमवशतः निकटके चाण्डालोंसे पूछा उनमें किसीने कहा "नहीं तुम्हारे बारह वर्ष नहीं बीते हैं" किसीने कहा " बीतसकते हैं " ॥१६८॥तब राजा हरिश्चन्द्र उनके यह वचन सुन अत्यन्त दुःखित चित्तसे देवताओंकी शरण हुए और कहने लगे कि, हे देवताओ! आप मेरी शैब्या

और बालकका मंगल कीजिये ॥१६९॥ सर्वप्रधान धर्मको नमस्कार है। विधातास्वरूप कृष्णको नमस्कार है जो सबसे श्रेष्ठ पवित्र और अव्यय हैं, उन पुराण पुरुषको नमस्कार है ॥१७०॥ हे बृहस्पते! तुमको नमस्कार है। हे वासव! तुमको नमस्कार। इस प्रकार कहकर राजा हरिश्चन्द्र फिर चाण्डालके कार्यरूप ॥ १७१ ॥ शवमूल्यनिर्द्धारणमें निरत हुए और फिर उसीप्रकार नष्ट स्मृति, मलिनवेषी, जटाधारी, कृष्णवर्ण, लकुटधारी और विह्वल होगये ॥ १७२ ॥ तब भार्या वा पुत्र कोई भी उनके स्मृतिगोचर न हुआ, क्योंकि वह उस समय राज्य नष्ट होनेके कारण उत्साहहीन हो श्मशानमें वास करते थे ॥१७३॥ इसी अवसरमें उन नरेन्द्रकी भार्या अपने पुत्रको जो कि सर्पके डसनेसे मरगया था जलानेके लिये

नमोधर्मायमहतेनमःकृष्णायवेधसे ॥ परावरायशुद्धायपुराणायाव्ययायच ॥ १७० ॥ नमोबृहस्पतेतुभ्यंनमस्तेवासवायच ॥ एवमुक्त्वासराजातुयुक्तःपुल्कसकर्मणि ॥ ७१ ॥ शवानांमूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ॥ मलिनोजटिलःकृष्णोलगुडीविह्वलोनृपः ॥ ७२ ॥ नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यवैस्मृतिगोचरे॥नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छ्मशानेनिवसंस्तदा ॥ ७३ ॥ अथाजगामस्वसुतंमृतमादायलापिनी ॥ भार्यातस्यनरेन्द्रस्यसर्पदष्टंहिबालकम् ॥ ७४ ॥ हावत्सहापुत्रशिशोइत्थंवैवदतीमुहुः ॥ कृशाविवर्णाविमनाःपांसुध्वस्तशिरोरुहा ॥ ७५ ॥ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ हाराजन्नद्यबालंत्वंपश्यसीमंमहीतले ॥ रममाणंपुरादृष्टंदष्टंपुष्टाहिनामृतम् ॥ ७६ ॥ तस्याविलापशब्दतमाकर्ण्यसनराधिपः ॥ जगामत्वरितोऽत्रेतिभवितामृतकम्बलः ॥ ७७ ॥ सतांरोरूयतींभार्यांनाभ्यजानात्तुपार्थिवः ॥ चिरप्रवाससन्तप्तांपुनर्जातामिवाबलाम् ॥ ७८ ॥

उसी श्मशानमें रोती हुई लेआई ॥१७४॥ वह स्त्री जो कि अत्यन्त कृश वदन, महा दुःखी विमना और जिसके शिरमें धूरि भररहीथी, वारंवार हा वत्स! हा पुत्र! हा शिशो! कहकर रुदन करतीथी ॥१७५॥ राजपत्नी बोली—हे राजन्! एक वार देखो, आप पृथ्वीके चन्द्रमाके समान जिस बालकको पहले खिलाते हुए देखते थे, हाय! आज आपके उसी बालकने सर्पके डसनेसे प्राणत्याग किया है ॥१७६॥ राजा हरिश्चन्द्र रानीकी यह विलापध्वनि सुनकर "जान पड़ता है, इसी स्थानमें मृतक वस्त्र मिलेगा" यह विचार शीघ्रता सहित वहां गये ॥१७७॥ बहुत समयके प्रवाससे सन्तप्त हुई मानों फिरसे प्रगटहुईके समान उस रोती हुई अबला भार्याको नहीं पहिचान सके ॥ १७८ ॥

नृपसुता शैब्याने भी राजाको पहिले मनोहर केशयुक्त देखा था, इस कारण जटिल और सूखे वृक्षके समान उन राजाके पहिचाननेमें समर्थ नहीं हुई ॥१७९॥ तब राजा हरिश्चन्द्र सर्पके विषसे पीडित बालकको काले वस्त्रमें लिपटा हुआ राजलक्षणयुक्त देखकर चिन्ता करने लगे ॥१८०॥ जिसका मुख चंद्रमाके समान, सुन्दर भौं, ऊंची नासिका, नीले घूंघरवाले बाल, समान और दीर्घ तरंगोंवाले ॥१८१॥ कमलकेसे दोनों ओष्ठ, चार डाढ़, शोभासमान दीर्घमुख, और बड़ी भुजा॥१८२॥हाथमें मत्स्य, यवयुक्त और पर्वतकी रेखा है, गलेके पीछेकी नाडी और चरण गंभीर पतली त्वचा और उदर कंठमें त्रिवली रेखा देख पड़ती है ॥१८३॥ हा! इस बालकने किस राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है, दुरात्मा कालने इसकी कैसी दशा करदी

साऽपितंचारुकेशान्तंपुराद्दृष्ट्वाजटालकम् ॥ नाभ्यजानान्नृपसुताशुष्कवृक्षोपमंनृपम् ॥ ७९ ॥ सोऽपिकृष्णपटेबालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ॥ नरेन्द्रलक्षणोपेतंचिन्तामापनरेश्वरः ॥ १८० ॥ तस्यास्यंचंद्रबिंबाभंसुभ्रुरम्यंसमुन्नसम् ॥ नीलाःकेशाःकुंचितास्चसमादीर्घास्तरंगिताः ॥ ८१ ॥ राजीवनेत्रयुगुलोबिंबोष्ठपुटसंवृतः ॥ चतुर्दंष्ट्रश्चतुष्किष्कुर्दीर्घास्योदीर्घबाहुकः ॥ ८२ ॥ चतुर्लेखःकरोमत्स्ययवयुक्चैकपर्वतः ॥ शिराऌपादोगंभीरःसूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधरः ॥ ८३ ॥ अहोकष्टंनरेन्द्रस्यकस्याप्येषकुले शिशुः ॥ जातोनीतःकृतान्तेनकामप्याशांदुरात्मना ॥ ८४ ॥ एवंदृष्ट्वाहितंबालंमातुरुत्सङ्गशायिनम् ॥ स्मृतिमभ्यागतोबालोरोहिताश्वोऽब्जलोचनः ॥ ८५ ॥ सोऽप्येनामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागतः ॥ नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ॥ ८६ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ हावत्सकस्यपापस्यअपध्यानादिदंमहत् ॥ दुःखमापतितंघोरंयस्यान्तोनोपलभ्यते ॥ ८७ ॥ हानाथराजन्भवतामामनाश्वास्यदुःखिताम् ॥ क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेविश्रब्धंस्थीयतेकथम् ॥ ८८ ॥

है ॥ १८४ ॥ अनन्तर माताकी गोदीमें सोयेहुए उस बालकको भली भांति देखनेसे फिर उस पद्मपलाशलोचन रोहिताश्वको स्मरण किया ॥ १८५ ॥ तब वह सोचने लगे कि, "यदि दुरात्मा कालने अपने वशीभूत न किया हो तो मेरा वह रोहिताश्व भी इतने दिनोंका हुआ होगा और यही वयोवस्था प्राप्त हुई होगी ॥ १८६ ॥ इधर राजपत्नी बोली--हा वत्स किस पापकी अनिष्ट चिन्ताके कारण यह असीम घोर महादुःख उपस्थित हुआ ॥१८७॥ हा नाथ! राजन्! इस दुःखनीको आश्रय न देकर निष्ठुर चित्तसे कहां किसप्रकार वास करते हो ॥१८८॥

एक तो राज्यनाश इसपरभी बंधुवियोग और फिर भार्या तथा पुत्रका बिकना, हा विधाता ! तै ने राजर्षि हरिश्चन्द्रका क्या सर्वनाश नहीं किया ॥ १८९ ॥ राजा उसका यह वचन सुन, स्त्री और मृतक पुत्रको पहिचान स्वस्थानसे निपतित हुए ॥१९०॥ यह किसकी स्त्री है क्या यह मेरी भार्या है ? और यह मृतक बालक कौन है ? इसप्रकार राजा विचारने लगे और व्याकुल हुए ॥ १९१ ॥ "हाय ! क्या कष्ट है ? यही वह शैब्या और यही तो वह बालक है" इसप्रकार कहते कहते अत्यन्त दुःखसे सन्तप्तहो रुदन करने लगे और मूर्च्छितहोकर पृथ्वीपर गिरपड़े ॥ १९२ ॥ रानी शैब्या भी इसप्रकार अवस्थान्तर प्राप्त राजाको पहिचानकर मूर्च्छित हुई एवं आर्त्त और निश्चेष्ट होकर पृथ्वीमें

राज्यनाशःसुहृत्त्यागोभार्य्यातनयविक्रयः ॥ हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेःकिंविधेनकृतंत्वया ॥ ८९ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वाराजास्वस्थावतश्च्युतः ॥ प्रत्यभिज्ञायदयितांपुत्रंचनिधनंगतम् ॥ १९० ॥ कैषानामगृहेयुक्तामममयोषिद्राभवेत् ॥ बालश्चसमृतःकःस्यादितिराजाविचारयन् ॥ ९१ ॥ कष्टंशैब्येयमेषाहिसबालोऽयमितीरयन् ॥ रुरोदद्दुःखसन्तप्तोमूर्च्छामभिजगामच ॥ ॥ ९२ ॥ साचतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ॥ मूर्च्छितानिपपातार्तानिश्चेष्टाधरणीतले ॥ ९३ ॥ चेतःसंप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ॥ विलेपतुःसुसन्तप्तौशोकभारातिपीडितौ ॥ ९४ ॥ राजोवाच ॥ ॥ हावत्ससुकुमारंतेसुभ्रूनासिकालकम् ॥ पश्यतोमेमुखंदीनंहृदयंकिंनदीर्यते ॥ ९५ ॥ तात तातेतिमधुरंब्रुवाणंस्वयमागतम् ॥ उपगुह्यवदिष्येकंवत्सवत्सेति सौहृदात् ॥ ९६ ॥ कस्यजानुप्रणीतेनपिङ्गेनक्षितिरेणुना ॥ ममोत्तरीयमुत्सङ्गंतथाङ्गंमलमेष्यति ॥ ९७ ॥

गिरगई ॥ १९३ ॥ फिर कुछ समयके पीछे राजा हरिश्चंद्र और रानी शैब्या दोनों चैतन्यहोकर शोकभारसे पीडितहो अत्यन्त विलाप करने लगे ॥ १९४ ॥ राजा बोले--हे वत्स ! तुम्हारे वह सुन्दरनेत्र, दोनों भौं, नासिका और अकलोंसे शोभायमान सुकुमार वदनको इसप्रकार मलिन देखकर मेरा हृदय क्यों विदीर्ण नहीं होता ? ॥ १९५ ॥ हा ! मधुर स्वरसे "तात ! तात ! " कहता हुआ मेरे निकट अब कौन आवेगा ? और अब मैं किसको स्नेहसहित गोदीमें लेकर "वत्स ! वत्स ! " कहता हुआ पुकारूंगा ? ॥ १९६ ॥ अब किसीकी जानुमें लगी हुई धूरिसे मेरा दुपट्टा और अंग मैला होगा ? ॥ १९७ ॥

हाय ! तुम मेरे अंग प्रत्यंगसे उत्पन्न तथा मन और हृदयके आनन्द जनक होकर भी इस कुपिताने तुमको सामान्य वस्तुके समान बेचा था ॥ १९८ ॥ हाय ! देवरूपी दुष्ट सर्प ने मेरा महत् राज्य, साधन और धन समस्त ही हरण करके अन्तमें तुम सरीखे पुत्रको भी डसा ॥ १९९ ॥ हाय ! दैवरूपी सर्पके डसे इस पुत्रका मुखकमल देखते देखते मैं भी अब भयंकर विषसे अंधा हुआ हूं ॥ २०० ॥ राजाने बाष्प गद्गद स्वरसे इसप्रकार कह, उस बालकको ग्रहण कर गोदीमें लेलिया और तत्काल मृर्च्छासे चेष्टाहीन हो पृथ्वीमें गिरगये ॥२०१॥ राजपत्नी बोली—स्वरके द्वारा जानाजाता है, कि, यही वह पुरुषसिंह विद्वज्जनोंके मन खिलानेको चन्द्रमा राजा हरिश्चन्द्र हैं इसमें सन्देह नहीं ॥२०२॥

अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दनः ॥ मयाकुपित्राहावत्ससविक्रीतोयेनवस्तुवत ॥ ९८ ॥ हृत्वाराज्यमशेषंमेसबांधवधनं महत् ॥ दैवाहिनानृशंसेनदष्टोमेतनयस्ततः ॥ ९९ ॥ अहंदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ॥ निरीक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकृतो ऽधुना ॥२००॥ एवमुक्त्वातमादायबालकंबाष्पगद्गदः ॥ परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ॥१॥ राजापत्न्युवाच ॥ ॥ अयंस पुरुषव्याघ्रःस्वरेणैवोपलक्ष्यते ॥ विद्वज्जनमनश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसंशयः ॥२॥ तथास्यनासिकातुङ्गाअग्रतोऽधोमुखंगता ॥ दन्ताश्चमु कुलप्रख्याःख्यातकीर्तेर्महात्मनः ॥ ३ ॥ श्मशानमागतःकस्माद्द्यैषसनरेश्वरः ॥ अपहायपुत्रशोकंसापश्यत्पतितंपतिम् ॥ ४ ॥ प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृपुत्राधिपीडिता ॥ वीक्षन्तीसाततोऽपश्यद्भर्तुर्दण्डंजुगुप्सितम् ॥५॥ श्वपाकार्हमनोमोहंजगामायतलोचना ॥ प्राप्यचेतश्चशनकैःसगद्गदमभाषत ॥६॥ धिक्त्वांदैवात्यकरुणंनिर्मर्यादंजुगुप्सितम् ॥ येनायममरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ॥ ७ ॥

उनकेही समान इनकी भी नासिका ऊंची और अग्रभागमें अधोमुख हुई है उन ख्यातकीर्त्ति महात्माके समान इनके दाँतोंकी पंक्तिभी मुकुल (कली) की सदृश है ॥२०३॥ किंतु वह राजा हरिश्चंद्र आज श्मशानमें क्यों उपस्थित हैं, यह कह रानी शैब्या पुत्रशोकको त्याग मूर्च्छित अवस्थामें पड़े हुए पतिको देखने लगी ॥२०४॥ उस दुबले अंगवाली दीनवदन आश्चर्ययुक्त हुई राजमहिषी शैब्याने स्वामी और पुत्रजनित मनकी पीडासे पीडित हो इधर उधर देखते देखते स्वामीका वह निंदनीय चाण्डाल दण्ड देखा ॥ २०५ ॥ "मैं चाण्डालकी पत्नी हुई" कह कर वह दीर्घनेत्रवाली रानी मोहको प्राप्त हुई फिर धीरे धीरे चैतन्यता लाभ करके गद्गद स्वरसे कहने लगी ॥२०६॥ रे नृशंस ! मर्यादहीन ! निन्दितदैव ! तुझको धिक्कार

है तैंने इन देवताके समान अमरपतिको चाण्डालपना दिया है ॥ २०७ ॥ राज्यनाश, सुहृद्त्याग, भार्या और पुत्रको बिकवाकर भी शान्त नहीं हुआ, अब चाण्डालपनेको प्राप्त कराया है ॥ २०८ ॥ हा राजन्! इस प्रकार सन्तापमें पड़ी हुई मुझको पृथ्वीसे उठाकर आज 'पलँगपर बैठो' क्यों नहीं कहते ? ॥ २०९ ॥ हाय ! आज आपका वह छत्र वा शृंगार क्यों नहीं दिखाई देता ? आज आपका वह चामर कहां है ? वह पंखा कहां हैं ? हाय ! दैवकी क्या ही विपरीतता है ॥ २१० ॥ पहिले जिनके गमन कालमें राजा लोग भृत्यके समान अपने डुपट्टेसे पृथ्वीकी धूरि हटाते थे, वही यह राजा हरिश्चंद्र आज असह्य दुःखसे पीडितहो ऐसे भयंकर अपवित्र श्मशानमें अकेले विचरण करते हैं ॥ २११ ॥ जहां मृतकोंके कपालोंसे मिले हुये घट और छोटे घड़ोंसे चारों दिशा परिपूर्ण हुई

राज्यनाशंसुहृत्त्यागंभार्यातनयविक्रयम् ॥ प्रापयित्वापिनोमुक्तश्चण्डालोऽयंकृतोनृपः ॥ ८ ॥ हाराजञ्जातसन्तापामित्थंमां धरणीतलात् ॥ उत्थाप्यनाद्यपर्यङ्कमारोहतिकिमुच्यते ॥ ९ ॥ नाद्यपश्यामितेच्छत्रंशृङ्गारमथवापुनः ॥ चामरंव्यजनंचापि कोऽयंविधिविपर्ययः ॥ १० ॥ यस्याग्रेव्रजतःपूर्वंराजानोभृत्यतांगताः ॥ स्वोत्तरीयैरकुर्वन्तनीरजस्कंमहीतलम् ॥ ११ ॥ सोयं कपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ॥ मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशेसुदारुणे ॥ १२ ॥ वसानिष्यन्दसंशुष्यमहीपुटकमण्डिते ॥ भस्माङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ॥ १३ ॥ गृध्रगोमायुनादार्त्तनष्टक्षुद्रविहंगमे ॥ चिताधूमायतिरुचानीलीकृतदिगन्तरे ॥ १४ ॥ कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टनिशाचरे ॥ चरत्यमेध्येराजेन्द्रःश्मशानेदुःखपीडितः ॥ १५ ॥

हैं, मृतकोंके निर्माल्य सूत्रके भीतर बहुतसे केश पड़े रहनेसे जो अत्यन्त दारुण हुआ है ॥२१२॥ मृतकोंके देहसे टपकतीहुई वसा और बहुत सारे सूखे काष्ठसे जिसकी चारों दिशा व्याप्त है, भस्म, अंगार, अर्द्धदग्ध अस्थि और मज्जा इन सबके होनेसे जो अत्यन्त भयंकर हुआ है ॥ २१३ ॥ छोटे छोटे पक्षी, गृध्रऔर गोमायुके शब्दको सुन जिस स्थानसे भागते हैं। चिताके उठतेहुए धुएँसे जिसकी दिशा विदिशा नीली होगई ॥२१४॥ और निशाचर गण मांसके भक्षण करनेसे आनन्दित होकर जिसमें इधर उधर भ्रमण करते हैं; उसी स्थानमें वह राजेन्द्र हरिश्चन्द्र दुःखसे पीडित हो अकेले विचरते हैं ॥ २१५ ॥

नृपसुता शैब्या इस प्रकार कह, राजाके कंठसे लिपट कष्ट और सैकड़ों शोकका आधार स्वरूप हो आर्त वचनोंसे विलाप करने लगी ॥ २१६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजन् ! जो देखती हूं, यह क्या स्वप्न है वा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो सो कहिये । हे महाभाग ! मैं तो मोहसे विचारशक्तिहीन हुई हूं॥२१७॥हे धर्मज्ञ ! यदि यह सत्य हो, तब धर्मकी तो सहायता नहीं, तथा देवता और ब्राह्मणके पूजनसे भी फल नहीं अथवा पृथ्वीका पालन करनेसे ही क्या फल है ॥२१८॥ अत एव धर्म नहीं, सत्य नहीं सरलता नहीं और सदयताकी तो बातही नहीं है, क्योंकि केवलमात्र धर्मही आपका परम बल है, किन्तु तो भी अपने राज्यसे च्युत हुए ॥ २१९ ॥ राजनन्दिनी शैब्याके यह

एवमुक्त्वासमाश्लिष्यकण्ठंराज्ञोनृपात्मजा ॥ कष्टशोकशताधाराविललापार्त्तयागिरा ॥ १६ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ राजन्स्वप्नोऽथतथ्यं वायदेतन्मन्यतेभवान् ॥ तत्कथ्यतांमहाभागमनोवैमुह्यतेमम ॥ १७ ॥ यद्येतदेवंधर्मज्ञनास्तिधर्मसहायता ॥ तथैवविप्रदेवादिपूजने पालनेभुवः ॥ १८ ॥ नास्तिधर्मःकुतःसत्यमार्जवंचानृशंसता ॥ यत्रत्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः ॥ १९ ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वा निःश्वस्योष्णंसगद्गदम् ॥ कथयामासतन्वंग्यायथाप्राप्ताश्वपाकता ॥ २० ॥ रुदित्वासापिसुचिरंनिःश्वस्योष्णंचदुःखिता ॥ स्वपुत्र मरणंभीरुर्यथावृत्तंन्यवेदयत् ॥ २१ ॥ श्रुत्वाराजातदावाक्यंनिपपातमहीतले ॥ मृतस्यपुत्रस्यतदाजिह्वयालेलिहन्मुखम् ॥ २२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यमस्यभिक्षांयाचावःकृपणौपुत्रगर्द्धिनौ ॥ तस्माच्छीघ्रंव्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगतः ॥ २३ ॥ प्रियेनरोचयेदीर्घका लंक्लेशमुपासितुम् ॥ नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यमेमन्दभाग्यताम् ॥ २४ ॥

वचन सुनकर राजाने उष्ण श्वास छोड़ अपने चाण्डालपनेके प्राप्त होनेका यथावत् वृत्तान्त गद्गद स्वरसे कहा ॥२२०॥ तब रानी शैब्याने भी उनका वृत्तान्त सुनकर दुःखितचित्तसे बहुत देरतक रोदन किया और लम्बी श्वास लेकर जिसप्रकार रोहिताश्वकी मृत्यु हुई थी, वह सब वृत्तान्त उनसे आनुपूर्विक निवेदन किया ॥२२१॥ राजा हरिश्चन्द्र रानी शैब्याके यह वचन सुनकर पृथ्वीमें गिरगये और मरेहुए पुत्रका मुख जीभसे चाटने लगे॥२२२॥राजा बोले—हम दोनों कृपण पुत्रके लोभी यमसे भिक्षा मांगें. अब शीघ्र जहां प्रिय पुत्र गया है, वहां चलें॥२२३॥हे प्रिये ! अब बहुत कालतक क्लेश सहनेकी इच्छा नहीं करता, किन्तु हे तन्वङ्गी! देखो, मैं ऐसा मंदभाग्यहूं कि, मेरी आत्मा भी मेरे अधीन नहीं है॥२२४॥

यदि बिना चाण्डालकी आज्ञाके अग्निमें प्रवेश करूं, तो फिर दूसरे जन्ममें भी चाण्डालका दास होना पड़ेगा॥२२५॥ अथवा कृमि खानेवाला कीड़ा होकर नरकमें गिरना होगा वा वैतरणीमें, या पीव, वसा, रक्त और नसोंकी चिकनाईसे युक्त नरकमें यंत्रणा भोगनी पड़ेगी ॥ २२६ ॥ अथवा असिपत्र वनमें जाकर दारुण छेदन करनेकी यंत्रणा भोग करूंगा। या महारौरव वा रौरव नरकमें दुःसह तापको प्राप्त हूंगा ॥ २२७ ॥ जो दुःखरूपी समुद्रमें डूबता हो, केवलमात्र प्राणत्यागही उसकी पार भूमि है। देखो मेरा जो एक बालक वंशका बढानेवाला था ॥२२८॥ वह भी बलवान् दैवरूपी जलमें डूब गया। इधर असीम दुर्गति भोग है, पराधीन होनेके कारण प्राण भी कैसे त्यागूं ? ॥२२९॥ अथवा आर्तपुरुषको पापके

चण्डालेनाननुज्ञातःप्रवेक्ष्येज्वलनंयदि ॥ चाण्डालदासतांयास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ॥ २५ ॥ नरकेचपतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः ॥ वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ॥ २६ ॥ असिपत्रवनेप्राप्यछेदंप्राप्यस्यामिदारुणम् ॥ तापंप्राप्स्यामिवाप्राप्यमहारौरवरौरवौ ॥ २७ ॥ मग्नस्यदुःखजलधौपारःप्राणवियोजनम् ॥ एकोऽपिबालकोयोयमासीद्वंशकरःसुतः ॥२८॥ ममदैवाम्बुवेगेनमग्नःसोऽपिबलीयसा ॥ कथंप्राणान्विमुंचामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः ॥ २९ ॥ अथवानार्तिनाक्लिष्टोनरःपापमवेक्षते ॥ नियंक्त्वेनास्तितद्दुःखंनासिपत्रवनेतथा ॥२३०॥ वैतरण्यांकुतस्तादृग्यादृशंपुत्रविप्लवे ॥ सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ॥ ३१ ॥ निपतिष्यामितन्वङ्गिक्षन्तव्यंकुकृतंमम ॥ अनुज्ञाताचगच्छत्वंविप्रवेश्मशुचिस्मिते ॥ ३२ ॥ ममवाक्यंचतन्वङ्गिनिबोधाहतमानसा ॥ यदिदत्तंयदिहुतंगुरवोयदितोषिताः ॥ ३३ ॥ परत्रसङ्गमोभूयात्पुत्रेणसहचत्वया ॥ इहलोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गितम ॥ ३४ ॥

क्षति क्या देखता है ? पुत्र वियोगमें जिसप्रकार असह्य दुःख है, तिर्यग्योनिमें, असिपत्र वनमें ॥२३०॥ वा वैतरणीमें भी वैसा दुःख नहीं है, अतएव मैं पुत्रदेहके संग जलती हुई अग्निमें ॥ २३१ ॥ गिरूंगा। हे तन्वङ्गी ! मैंने तुम्हारे निकट जो अन्याय आचरण किया है, वह सब क्षमाकरो हे शुचिस्मिते ! तुम मेरी आज्ञासे उसी ब्राह्मणके घर चलीजाओ ॥२३२॥ हे तन्वङ्गी ! मैं जो कहता हूं, सो आदरयुक्त मनसे सुनो यदि मैंने दान किया है, वा होम किया है अथवा यदि गुरुजनको संतुष्ट किया है ॥२३३॥ तो पुत्र और तेरे संग पुनर्जन्ममें मिलूंगा, अब इस लोकमें मेरे इस अभिप्रायके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥२३४॥

अथवा मेरे संग तुझको भी पुत्रके मार्गका अनुसरण करना चाहिये हे शुचिस्मिते ! हास्यके मिस निर्जनमें भी ॥ २३५ ॥ कुछ अश्लील कहा हो, प्रार्थना करता हूं, वह सब क्षमा करना तुम राजपत्नी होनेके गर्वसे उस ब्राह्मणका निरादर नहीं करना । हे शुभे ! स्वामी वा देवताके समान उसको अतियत्नसे संतुष्ट रखना ॥ २३६ ॥ राजपत्नीने कहा—हे राजर्षे ! मैं भी अब यह दुःख भार नहीं सह सकती इस कारण अब इस जलती हुई अग्निमें ही आपके संग चलूंगी ॥ २३७ ॥ वहां पर हम आप और पुत्र तीनों एक ही स्थानमें रहकर स्वर्ग वा नरक भोगेंगे रानीके यह वचन सुनकर राजा बोले—हे पतिव्रते ! अच्छा यही करना ॥ २३८ ॥ पक्षी बोले—

त्वयासहममश्रेयोगमनंपुत्रमार्गेणे ॥ यन्मयाहसताकिंचिद्रहस्येवाशुचिस्मिते ॥ ३५ ॥ अश्लीलमुक्तंतत्सर्वंक्षन्तव्यंममयाचतः ॥ राजपत्नीतिगर्वेणनावज्ञेयःसतेद्विजः ॥ सर्वयत्नेनतेतोष्यःस्वामीदैवतवच्छुभे ॥ ३६ ॥ ॥ राजपत्न्युवाच ॥ ॥ अहमप्यत्रराजर्षेदीप्यमानेहुताशने ॥ दुःखभारासहाद्यैवसहयास्यामिवैत्वया ॥ ३७ ॥ सहस्वर्गंचनरकंमहैवावांहिभुंक्ष्वहे ॥ श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ॥ ३८॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ ततःकृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयंस्वकम ॥ भार्ययामहितश्चामौबद्धांजलिपुटस्तदा ॥ ३९ ॥ चिन्तयन्परमात्मानमीशंनारायणंहरिम् ॥ हृत्कोटरगुहासीनंवासुदेवंसुरेश्वरम ॥ अनादिनिधनंब्रह्मकृष्णंपीताम्बरंशुभम् ॥ ४० ॥ तस्यचिन्तयमानस्यसर्वेदेवाःसवासवाः ॥ धर्मंप्रमुखतःकृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विताः ॥ ४१ ॥ आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजञ्शृणुप्रभो ॥ अयंपितामहःसाक्षाद्धर्मश्चभगवान्स्वयम् ॥ ४२ ॥ साध्याश्चविश्वेमरुतोलोकपालाःसचारणाः ॥ नागाःसिद्धाःसगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाश्विनौ ॥ ४३ ॥

हे जैमिने ! फिर राजा हरिश्चन्द्रने चिता बनाय, अपने पुत्रको उसके ऊपर रख भार्याके सहित हाथ जोड़ उसी ॥ २३९ ॥ परमात्मा, ईश, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म, कृष्णवर्ण, पीताम्बरधारी, शुभपद, हृत्कोटरगुहावासी, अनादिनिधन, नारायण, हरिकी चिन्ता करी ॥२४०॥ चिन्ता करतेही उसी समय इन्द्रादि देवता धर्मको आगे करके शीघ्रतासहित उस स्थानमें आये ॥२४१॥ वह सब आकर कहने लगे--हे राजन् ! सुनो । यह साक्षात् ब्रह्मा यह साक्षात भगवान् धर्म ॥ २४२ ॥ और साध्यगण, विश्वेदेवा, मरुद्गण सब लोकपाल, नागगण, सिद्धगण, गंधर्वोंके

सहित रुद्रगण, दोनों अश्विनीकुमार ॥२४३॥ और अन्यान्य सब देवता, सभी अपने वाहनसहित आये हैं और जो तीनों विश्वके संग मित्रता नहीं कर सकते वह विश्वामित्रभी स्वयं उपस्थित हैं ॥ २४४ ॥ सबही आपके संग मित्रता और इष्टता करने आये हैं तदनन्तर धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीन जने उठकर राजाके निकट आये ॥ २४५ ॥ धर्मने कहा- हे राजन् ! ऐसे साहसिक कार्यसे निवृत्त हूजिये, मैं धर्म हूं. तितिक्षा दम और सत्य इत्यादि अपने गुणोंसे आपने मुझको संतुष्ट किया है, मैं स्वयं आपके निकट आया हूं ॥२४६॥ इन्द्र बोले--हे महा भाग ! हरिश्चन्द्र ! मैं इन्द्र हूं, और आपके निकट आया हूं, आपने भार्या और पुत्रके सहित सनातन सब लोकोंको जीता है ॥ २४७ ॥ अत

एतेचान्येचबहवोविश्वामित्रस्तथैवच ॥ विश्वत्रयेणयोमित्रंकर्तुंवैनाशकत्पुरा ॥ ४४ ॥ विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्टंचाहर्तुमिच्छति ॥ आरुरोहततःप्राप्तोधर्मःशक्रोऽथगाधिजः ॥ ४५ ॥ धर्मउवाच ॥ माराजन्साहसंकार्षीधर्मोऽहंत्वामुपागतः ॥ तितिक्षादमसत्याद्यैःस्वगुणैःपरितोषितः ॥ ४६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्तःशक्रोस्मितेऽन्तिकम् ॥ त्वयासभार्यापुत्रेणजिता लोकाःसनातनाः ॥ ४७ ॥ आरोहत्रिदिवंराजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ॥ सुदुष्प्रापंनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥ ४८ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ ततोऽमृतमयंवर्षमपमृत्युविनाशनम् ॥ इन्द्रःप्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतःप्रभुः ॥ ४९ ॥ पुष्पवर्षंचसुमहद्देवदुन्दुभिनिःस्वनम् ॥ ततस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसंकुले ॥ ५० ॥ समुत्तस्थौततःपुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः ॥ सुकुमारतनुःसुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥ ५१ ॥ ततोराजाहरिश्चंद्रःपरिष्वज्यसुतंक्षणात् ॥ सभार्य्यःसुश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥ ५२ ॥ स्वस्थः सम्पूर्णहृदयोमुदापरमयायुतः ॥ बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषत ॥ ५३ ॥

एव जो दूसरे मनुष्यको दुर्लभ है, उसी अपने कर्मसे जीते हुए स्वर्गमें भार्या और पुत्रके सहित आरोहण करो ॥ २४८ ॥ पक्षी बोले—फिर चिता स्थानमें जाकर प्रभु इन्द्रने अपमृत्युविनाशक अमृतकी वर्षा करी ॥ २४९ ॥ तब देवताओंने वर्तमान सभामें फूल बरसाये और देव दुन्दुभी बजने लगी॥२५०॥अनन्तर उन महात्मा राजाका सुकुमार अंगवाला पुत्र रोहिताश्वभी स्वस्थ और प्रसन्नेन्द्रिय मन होकर उठ बैठा॥२५१॥ फिर राजा हरिश्चन्द्र क्षणकाल पुत्रको आलिंगन कर दिव्य वस्त्र और माल्य धारण किये भार्याके सहित शोभा पाने लगे॥२५२॥और भली भांति

स्वस्थ होकर अत्यन्त आनंदित हुए, तब सुरपति इन्द्रने उनसे फिर कहा ॥ २५३ ॥ हे महाभाग ! आप भार्या और पुत्रके सहित परम सद्गति प्राप्त करेंगे, अत एव अपने कर्मफलसे स्वर्गमें निवास करो ॥ २५४ ॥ हरिश्चन्द्र बोले-हे देवराज ! मैं प्रभु चाण्डालकी अनुमतिसे विना छुटकारा पाये स्वर्गमें नहीं जाऊंगा ॥२५५॥ धर्मने कहा हे राजन् ! मैंने आपका इस प्रकार भावी क्लेश समझकर अपनी मायासे चाण्डालका रूप धारणपूर्वक ऐसा चाण्डालपना दिखाया था ॥२५६॥ इंद्र बोले ॥ पृथ्वीके संपूर्ण मनुष्य जिस परम स्थानमें जानेके लिये सदा प्रार्थना करते हैं हे हरिश्चन्द्र ! पुण्य करनेवाले मनुष्यादिकोंके उसी स्थानमें जाओ ॥२५७॥ हरिश्चन्द्र बोले-हे देवराज ! आपको नमस्कार है.

सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिंपराम् ॥ समागेहमहाभागनिजानांकर्मणांफलैः ॥ ५४ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजाननुज्ञातः स्वामिनाश्वपचेनवै ॥ अगत्वानिष्कृतिंतस्यनागेष्येऽहंसुरालयम् ॥ ५५ ॥ धर्मउवाच ॥ तवैनंभाविनंक्लेशमवगम्यात्ममायया ॥ आत्माश्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम् ॥ ५६ ॥ इन्द्रउवाच ॥ प्रार्थ्यतेयत्परंस्थानंसमस्तैर्मनुजैर्भुवि ॥ तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानंपुण्यकृतांनृणाम् ॥ ५७ ॥ हरिश्चंद्रउवाच ॥ देवराजनमस्तुभ्यंवाक्यंचैतन्निबोधमे ॥ प्रसादसुमुखंयत्त्वां ब्रवीमिप्रश्रयान्वितः ॥ ५८ ॥ मच्छोकमग्नमनसःकोसलानगरेजनाः ॥ तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहंदिवम् ॥ ५९ ॥ ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवधःस्त्रीवधस्तथा॥तुल्यमेभिर्महापापंभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ॥६०॥ भजन्तंभक्तमत्याज्यमदुष्टंत्यजतःसुखम् ॥ नेहनामुत्रपश्यामितस्माच्छक्रदिवंव्रज ॥६१॥ यदितेसहिताःस्वर्गमयायान्तिसुरेश्वर ॥ ततोऽहमपियास्यामिनरकंवापितैःसह॥६२॥

मैं नम्रतापूर्वक प्रसन्न हुए आपसे जो कहता हूं, सो सुनिये ॥२५८॥कोशल नगरके संपूर्ण मनुष्य मेरे शोकमें मग्न मन होकर वहां वास करते हैं, मैं उनको छोड़कर किस प्रकार स्वर्गमें जाऊं ? ॥ २५९ ॥ ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या, वा स्त्रीहत्या करनेसे जो पाप होता है, भक्तका त्याग करनेसे वही पाप होता है ॥ २६० ॥ जो मेरे भक्त हैं और सदा मेरा भजन करते हैं, उनको छोड़नेसे इस लोक वा परलोकमें क्या सुख है ? अतएव हे शक्र ! आप स्वर्गको जाइये ॥२६१॥ हे देताओंके ईश्वर ! यदि वह भी मेरे संग स्वर्गमें जायँ तो मैं भी स्वर्गमें जा सकता हूं, नहीं तो उनके संग नरकमेंही रहूंगा ॥ २६२ ॥

इन्द्रने कहा—हे राजन ! उन्होंने अनेक प्रकारके पृथक् पृथक् पाप पुण्य किये हैं, तो फिर उनके संग आप किस प्रकार स्वर्गमें जा सकते है ॥२६३॥ हरिश्चन्द्र बोले—हेशक्र ! राजा कुटुम्बियोंके प्रभावसेही राज्य भोगता है, तथा महा यज्ञसाधन और वापी कूपादि निर्माण करता है ॥२६४॥ मैंने जो कुछ धर्मकार्यको अनुष्ठान किया है, वह सब उन लोगोंके प्रभावसे । अतएव सामान्य स्वर्गके लालचसे उन उपकारियोंको नहीं छोड सकता ॥२६५॥ इस कारण हे देवेश ! मैंने जो कुछ पुण्य किया है और जो कुछ जप व दान किया है, वह सब उनके सहित सामान हो ॥२६६॥ जो मेरे कर्मका फल बहुत समयतक भोगने योग्य हो, आपके प्रसादसे वह उनके संग एकही दिनमें भोग करूं ॥ २६७ ॥ पक्षी बोले

इन्द्रउवाच ॥ बहूनिपुण्यपापानितेषांभिन्नानिवैपृथक् ॥ कथंसंघातभोग्यंत्वंभूयःस्वर्गमवाप्स्यसि॥६३॥हरिश्चंद्रउवाच ॥ ॥ शक्रभुंक्ते नृपोराज्यंप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ॥ यजतेचमहायज्ञैःकर्मपौर्तंकरोतिच॥६४॥तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वमनुष्ठितम् ॥ उपकर्तॄन्नसन्त्यक्ष्येता नहंस्वर्गलिप्सया॥६५॥तस्माद्यन्ममदेवेशकिंचिदस्तिसुचेष्टितम्॥दत्तमिष्टमथोजप्तंसामान्यंतैस्तदस्तुनः ॥६६॥बहुकालोपभोग्यंहिफ लंयन्ममकर्मणः॥तदस्तुदिनमप्येकंतैःसमंत्वत्प्रसादतः॥६७॥पक्षिणऊचुः॥एवंभविष्यतीत्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ॥प्रसन्नचेताधर्मश्चवि श्वामित्रश्चगाधिजः ॥ ६८ ॥ गत्वाशुनगरंसर्वंचातुर्वर्ण्यसमायुतम् ॥ हरिश्चंद्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिपः ॥ ६९ ॥ आगच्छंतु जनाःशीघ्रंस्वर्गलोकंसुदुर्लभम् ॥ धर्मप्रसादात्संप्राप्तंसर्वैर्युष्माभिरेवतु ॥ ७० ॥ विमानकोटिसम्बद्धंस्वर्गलोकान्महीतलम् ॥ गत्वा योध्याजनंप्राहदिवमारुह्यतामिति ॥७१॥ तदेन्द्रस्यवचःश्रुत्वाप्रीत्यातस्यचभूपतेः ॥ आनीयरोहिताश्वंचविश्वामित्रोमहातपाः ॥७२॥

हे जैमिने ! “ऐसाही होगा” यह कह कर तीनों भुवनके ईश्वर इन्द्र और प्रसन्नचित्त धर्म तथा गाधिनन्दन विश्वामित्रजी॥ २६८ ॥ सबने उस नगरमें जाय चारों वर्णके लोगोंको हरिश्चन्द्रके सहित एकत्र कराया इन्द्रने कहा ॥ २६९ ॥ हे मनुष्यों ! आओ तुम सबने जो धर्मके प्रसादसे दुर्लभ स्वर्गलोक प्राप्त किया है, वहां चलो ॥ २७० ॥ उस समय स्वर्गसे करोड़ों विमान भूलोकमें आये और अयोध्यावासियोंसे बोले कि स्वर्ग चलनेके निमित्त शीघ्रही विमानोंपर बैठो ॥ २७१ ॥ फिर गाधितनय महातपा विश्वामित्रजीने राजाको प्रसन्न करनेके लिये देवराज इंद्रका वचन सुन, रोहिताश्वको लाय ॥ २७२ ॥

मनोहर अयोध्यानगरीमें राजपुत्रको अभिषिक्त किया, तब अयोध्यावासी हृष्ट पुष्ट बंधुगण सबनेही सिद्ध मुनि और देवताओंके सहित राजाको अभिषिक्त कर, भार्या,पुत्र और सेवकोंसे मिलितहो राजा हरिश्चंद्रके सहित स्वर्ग में गमन किया ॥२७३॥२७४॥ उस समय वह पग पगमें एक विमानसे दूसरे विमानपर जाते थे. उस काल राजा हरिश्चंद्र भी अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥ २७५ ॥ और विमान में चढ़ने की अतुल विभूतिको प्राप्त और वलयाकार परकोटेसे युक्तहो स्थिति करने लगे ॥२७६॥ तब संपूर्ण शास्त्रोंका तत्त्व जाननेवाले दैत्योंके आचार्य महाभाग शुक्राचार्यने राजाका ऐसा ऐश्वर्य देखकर यह श्लोक गाया ॥२७७॥ शुक्र बोले--जगत्में हरिश्चंद्रके समान दूसरा राजा न हुआ और न आगेको होगा । जो

अयोध्याख्येपुरेरम्येसोऽभ्यषिंचन्नृपात्मजम् ॥ देवैश्चमुनिभिःसिद्धैरभिषिच्यनराधिपः ॥ ७३ ॥ राज्ञासहतदासर्वेहृष्टपुष्टसुहृज्जनाः॥ सपुत्रभृत्यदारास्तेदिवमारुरुहुर्जनाः ॥ ७४ ॥ पदेपदेविमानात्तेविमानमगमन्नाराः ॥ तदासंभूतहर्षोसौहरिश्चंद्रश्चपार्थिवः ॥ ७५ ॥ संप्राप्यभूतिमतुलांविमानैःसमहीपतिः ॥ आसांचक्रेपुराकारवप्रप्राकारसंवृते ॥ ७६ ॥ ततस्तस्यर्द्धिमालोक्यश्लोकतत्रोशनाजगौ ॥ दैत्याचार्योमहाभागःसर्वशास्त्रार्थतत्त्ववित् ॥ ७७ ॥ शुक्रउवाच ॥ ॥ हरिश्चंद्रसमोराजानभूतोनभविष्यति ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानवः ॥ ७८ ॥ तेनवेदाःपुराणानिसर्वेमंत्राःसुसंग्रहाः ॥ घुष्टाःस्युःपुष्करेतीर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे ॥ ७९ ॥ देवागारे कुरुक्षेत्रेवाराणस्यांविशेषतः ॥ विषुवद्ग्रहणेचैवयत्फलंजपतोलभेत् ॥ २८० ॥ तत्फलंद्विगुणंचैवसंयतात्माशृणोतियः ॥ श्रुत्वातु पूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञंद्विजोत्तमम् ॥ ८१ ॥ गोभूहिरण्यवस्त्रैश्चतथैमान्नेनजैमिने ॥ येनैवंयत्कृतंपुण्यंतच्छक्यंनमयोदितुम् ॥ ८२ ॥

तितिक्षा और दानके फलसे अपने नगरवासियों सहित स्वर्ग में गये । जो मनुष्य इन राजा हरिश्चंद्रकी कथाको भक्तिसहित सुनेगा ॥ २७८ ॥ वह वेद पुराण और सब मंत्रोंके फलको प्राप्त होगा जो पुष्कर, प्रयाग, सिंधुसागर, देवालय, कुरुक्षेत्र और काशी में इस कथा का पाठ करेगा उसको विशेष फल होगा विषुवती (बिखौती) और ग्रहणमें जो जप करनेका फल होता है ॥ २७९ ॥ २८० ॥ उससे दूना फल जितेंद्रिय होकर इसके सुननेसे होता है ॥ और यह कथा सुनकर पुराण जाननेवाले ब्राह्मणश्रेष्ठको संतुष्ट करे ॥ २८१ ॥ हे जैमिने उसको गौ, भूमि, सुवर्ण, वस्त्र और अन्न दे जो इससे पुण्य होताहै उसे मैं नहीं कह सकता ॥ २८२ ॥

अहो ! तितिक्षा और दानका बड़ा फल है, जिसके प्रभावसे हरिश्चंद्र इंद्रत्वको प्राप्तहो नगरनिवासियोंसहित स्वर्गमें गये ॥ २८३ ॥ पक्षी बोले-- हे मुने ! इसप्रकार यह आपके निकट हरिश्चंद्रका सब वृत्तान्त वर्णन किया; इसके सुननेसे दुःखार्त्त मनुष्यको महासुख प्राप्त होता है॥२८४॥ स्वर्गकी इच्छा करने वालेको स्वर्ग, पुत्रकी अभिलाषा करनेवालेको पुत्र, भार्याकी कामना करनेवाले को भार्या और राज्य की आकांक्षा करने वाले मनुष्यको राज्य मिलता है ॥ २८५ ॥ हे मुनिसत्तम ! अब पृथ्वीक्षयका कारण राजसूय यज्ञका विपाक और उस विपाकके कारण महत् आडिवक युद्धस्वरूप शेष कथा वर्णन करते हैं. सुनो ॥ २८६ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायामष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥ पक्षी बोले--

अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलंमहत् ॥ यदागतोहरिश्चंद्रःपुरींचेन्द्रत्वमाप्तवान् ॥ ८३ ॥ ॥ पक्षिणऊचु ॥ ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंहरिश्चंद्रविचेष्टितम् ॥ यःशृणोतिदुःखार्त्तःससुखंमहदाप्नुयात् ॥ ८४ ॥ स्वर्गार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गंपुत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ॥ भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्याराज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ॥ ८५ ॥ अतःपरंकथाशेषःश्रूयतांमुनिसत्तम ॥ विपाकोराजसूयस्यपृथिवीक्षयकारणम् ॥ तद्विपाकनिमित्तंचयुद्धमाडिबकंमहत् ॥ २८६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेहरिश्चंद्रोपाख्यानंनामाष्टमोऽध्यायः ॥८॥

पक्षिणऊचुः ॥ राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रेगतेचत्रिदशालयम् ॥ निश्चक्राममहातेजाजलवासात्पुरोहितः ॥ १ ॥ वसिष्ठोद्वादशाब्दान्तेगङ्गापर्युषितोमुनिः ॥ शुश्रावचसमस्तन्तुविश्वामित्रविचेष्टितम् ॥ २ ॥ हरिश्चन्द्रस्यनाशञ्चराज्ञश्चोदारकर्मणः ॥ चण्डालसंप्रयोगञ्चभार्यातनयविक्रयम् ॥ ३ ॥ सश्रुत्वासुमहाभागःप्रीतिमानवनीपतौ ॥ चकारकोपंतेजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ॥ ४ ॥ ॥ वसिष्ठउवाच ॥ ॥ ममपुत्रशतंतेनविश्वामित्रेणघातितम् ॥ तत्रापिनाभवत्क्रोधस्तादृशोयादृशोऽद्यमे ॥ ५ ॥

हे जैमिने ! जब राजा हरिश्चंद्र राज्यसे छूटकर त्रिदशालय (स्वर्ग)में चलेगये, तब उनके पुरोहित महातेजस्वी वसिष्ठजी जलसे निकले ॥ १ ॥ मुनिने बारह वर्षके पीछे जलवाससे निकलकर विश्वामित्रजीका सब वृत्तांत सुना ॥ २ ॥ उदार कर्म राजा हरिश्चंद्र जिसप्रकार राज्य नष्ट होजानेपर चांडालपनेको प्राप्त हुए और जैसे उनके स्त्री पुत्र बिके ॥ ३ ॥ उन महाभाग तेजस्वी वशिष्ठजीने यह सब सुनकर विश्वामित्र ऋषिपर बड़ा क्रोध किया कारण कि, यह राजासे अत्यंत प्रसन्न थे ॥ ४ ॥ वसिष्ठजी बोले-इस समय महात्मा महाभाग देवता और

ब्राह्मणोंकी पूजा करनेवाले राजाको स्वराज्यसे च्युत हुआ सुनकर मुझको जितना क्रोध उत्पन्न हुआ है उतना क्रोध उमी विश्वामित्रके हाथसे अपने सौ पुत्रके मरनेपर भी उत्पन्न नहीं हुआ था ॥ ५ ॥ ६ ॥ जब कि, मेरे आश्रित सत्यवादी, शत्रुके प्रति भी मत्सरताहीन अर्थात् शत्रुसे भी शत्रुता न रखनेवाले, निरपराधी, धर्मात्मा और अप्रमत्त राजाको ॥७॥ पत्नी पुत्र और सेवकोंसहित अंत दशामें प्राप्त कराया है, निज राज्यसे भ्रष्ट करके, अनेक प्रकार से दुःखी किया है॥८॥इस कारण वह दुरात्मा ब्रह्मद्वेषी मूढ, यज्ञ करनेवालोंके यज्ञका नाशक विश्वामित्र मेरे शापसे हत होकर तिर्यग्योनि अर्थात् बगलेके देहको प्राप्त हो ॥९॥ पक्षी बोले—इधर कुशिकवंशोत्पन्न महातेजस्वीने भी इस शापका वृत्तान्त

श्रुत्वानराधिपमिमंस्वराज्यादवरोपितम् ॥ महात्मानंमहाभागंदेवब्राह्मणपूजकम् ॥ ६ ॥ यस्मात्मसत्यवाक्छान्तःशत्रावपिविमत्सरः॥ अनागाश्चैवधर्मात्माअप्रमत्तोमदाश्रयः ॥७॥ सपत्नीभृत्यपुत्रस्तुप्रापितोऽन्त्यांदशांनृपः ॥ सराज्याच्च्यावितोऽनेनबहुशश्च खिलीकृतः ॥ ८ ॥ तस्माद्दुरात्माब्रह्मद्विड्यज्विनामवरोपकः॥मच्छापोपहतोमूढःसबकत्वमवाप्स्यति ॥ ९ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ श्रुत्वाशापंमहातेजाविश्वामित्रोऽपिकौशिकः ॥ त्वमप्याडिर्भवेतिप्रतिशापमयच्छत॥१०॥अन्योन्यशापात्तौप्राप्तौतिर्यक्त्वंपरमद्युती ॥ वसिष्ठःसमहाजाविश्वामित्रश्चकौशिकः ॥ ११ ॥ अन्यजातिसमायोगंगतावप्यमितौजसौ ॥ युयुधातेऽतिसंरब्धौमहाबलपराक्रमौ ॥ १२ ॥ योजनानांसहस्रेद्वेप्रमाणेनाडिरुच्छ्रितः ॥ षण्णवत्यधिकंब्रह्मस्त्रित्रितयंबकः ॥ १३ ॥ तौतुपक्षप्रहाराभ्यामन्योन्यस्योरुविक्रमौ॥प्रहरन्तौभयंतीव्रंप्रजानांचक्रतुस्तदा ॥१४॥ विधूयपक्षाणिबकोरक्तोद्वृत्ताक्षिराहनत् ॥ आडिंसोऽप्युन्नतग्रीवोबकंपद्भ्यामताडयत ॥ १५ ॥

सुनकर वसिष्ठजीको दिया "तू आडि (चीलपक्षी) की योनिको प्राप्त हो"॥१०॥महातेजा वसिष्ठ और कुशिकनन्दन विश्वमित्रजी, दोनोंही अत्यन्त तेजस्वी थे, अतएव एक दूसरके शापसे परस्पर पक्षीकी योनिको प्राप्त हुए ॥११॥ वह अमिततेजस्वी महाबलवान् पराक्रमशाली दोनों अन्यजातिको प्राप्तहोकर भी अत्यन्त क्रोधरहित युद्ध करने लगे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! आडिपक्षी दो हजार योजन ऊँचा और बगला. तीन हजार छयानवें योजन ऊँचा उड़ा ॥ १३ ॥ उन उरविक्रम पराक्रमशाली दोनों पक्षियोंके आपस में पक्षप्रहार करनेसे. प्रजाको अत्यन्त भय उपस्थित हुआ ॥ १४ ॥ बगलेने फैलाये हुए लाल लाल नेत्रोंसे समस्त पंखोंको कंपायमान करके आडि

पक्षीको आहत किया; तब उसी समय आडिने भी गर्दन ऊँची करके बगलेको पैरसे ताडित किया ॥१५॥ उनके पंखोंकी पवनसे आहत होकर अनेक पर्वत भूमिमें गिरने लगे और उन पर्वतोंके गिरनेसे अभिहत होकर पृथ्वी कांपनेलगी ॥१६॥ और भूमिके कांपनेसे समुद्रका जल उछलने लगा तथा कांपती हुई पृथ्वी प्रायः पाताल जानेकी इच्छा करके एक पार्श्वमें झुक गई ॥१७॥ तब पृथ्वीके सब प्राणी, कोई पर्वतके गिरनेसे, कोई समुद्रके जलते और कोई भूमिके कांपनेसे नाशको प्राप्त होने लगे ॥ १८ ॥ इस प्रकार सब जगत् अत्यन्त त्रसित हो, हाहाकार करने लगा मूर्च्छित और संभ्रान्त होगया, तब पृथ्वीमण्डलकी विपरीतता उपस्थित होनेपर ॥१९॥ पृथ्वीके समस्त पुरुष अत्यन्त व्याकुलचित्तसे

तयोःपक्षानिलापास्ताःप्रपेतुर्गिरयोभुवि ॥ गिरिप्रपाताभिहताचकम्पेचवसुन्धरा ॥१६॥ क्ष्माकम्पमानाजलधीनुद्वृत्ताम्बूंश्चकारच ॥ ननामचैकपार्श्वेनपातालगमनोन्मुखी ॥ १७ ॥ केचिद्गिरिनिपातेनकेचिदंभोधिवारिणा ॥ केचिन्महीसंचलनात्प्रययुःप्राणिनःक्षयम् ॥ १८ ॥ इतिसर्वपरित्रस्तंहाहाभूतमचेतनम् ॥ जगदासीत्सुसंभ्रांतंपर्यस्तक्षितिमण्डलम् ॥ १९ ॥ हावत्समहाकांतशिशोप्रयाह्यपोऽस्मिसंस्थितः ॥ हाप्रियेकांतशैलोऽयंपतत्याशुपलायताम्॥२०॥इत्याकुलीकृतेलोकेसंत्रासविमुखेतदा ॥ सुरैःपरिवृतःसर्वैराजगामपितामहः ॥ २१ ॥ प्रत्युवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ॥ युद्धंवांविरमत्वेतल्लोकाःस्वास्थ्यंव्रजन्तुच ॥ २२ ॥ शृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः ॥ २३ ॥ ततःपितामहोदेवस्तंदृष्ट्वालोकसंक्षयम ॥ तयोश्चहितम न्विच्छंस्तिर्यग्भावमपानुदत् ॥ २४ ॥

"हा वत्स ! हा कान्त ! हा शिशो ! भागो; यह देखो, मैं कैसी अवस्थामें हूं ! हा कान्त ! यह देखो पर्वत गिरते हैं शीघ्र भागो" ॥२०॥ अत्यन्त भीत चित्तसे वह इस प्रकार कहने लगे और परस्पर एक दूसरेसे विमुख अर्थात् अलग अलग होगये, तब स्वयं पितामह ब्रह्माजी सब देवताओंसे युक्त होकर उस स्थानमें आये॥२१॥और अत्यन्त क्रोधित हुए दोनों पक्षियोंसे बोले कि,—तुम्हारा युद्ध निवृत्त हो और पृथ्वीके सब प्राणी स्वस्थ होवें ॥२२॥ दोनों पक्षी अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर भी कोप और अमर्षके वश हो अत्यन्त युद्ध करने लगे, किसी प्रकारसे स्थिर न हुए॥२३॥तब पितामह ब्रह्माजीने इस प्रकार प्रजाका क्षय देखकर, उनके हितसाधनकी इच्छासे दोनोंकाही पक्षी

भाव हरण कर लिया ॥ २४ ॥ उन दोनों ऋषियोंको पहिले देहकी प्राप्ति होनेसे उनका तामस भाव दूर हुआ तब दिव्य शक्तिमान् ब्रह्माजीने वसिष्ठ और कौशिक ऋषिसे कहा ॥ २५ ॥ हे वत्स वसिष्ठ ! हे सत्तम कौशिक ! तुम तामसभाव अवलम्बन करके जो ऐसा युद्ध करते थे, उसको त्याग दो ॥ २६ ॥ तुम पृथ्वीको क्षय करनेवाला जो युद्ध करते थे, वह राजा हरिश्चन्द्रके राजसूय यज्ञ करनेका विपाक (फल) है ॥ २७ ॥ इन कौशिकश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने राजाका कोई अपराध नहीं किया है, प्रत्युत हे ब्रह्मन् ! उपकारके पदमें स्थित होकर उनको स्वर्ग प्राप्त कराया है ॥ २८ ॥ तुम काम और क्रोधके वशीभूत होकर तपस्यामें विघ्नकारक हुए हो, अतएव इन दोनोंको त्यागदो । तुम्हारा

तास्तौपूर्वदेहस्थौप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ व्युदस्तेतामसेभावेवसिष्ठकौशिकर्षभौ ॥ २५ ॥ जहिवत्सवसिष्ठत्वंत्वंचकौशिकसत्तम ॥ तामसंभावमाश्रित्ययद्दंयुद्धंचिकीर्षितम् ॥ २६ ॥ राजसूयविपाकोयंहरिश्चंद्रस्यभूपतेः ॥ युवयोर्विग्रहश्चायंपृथिवीक्षयकारकः ॥ ॥ २७ ॥ नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यति ॥ स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः ॥ २८ ॥ तपोविघ्नस्यकर्त्तारौकाम क्रोधवशंगतौ ॥ परित्यजतभद्रंवोब्राह्मंहिप्रचुरंबलम् ॥ २९ ॥ एवमुक्तौततस्तेनलज्जितौतावुभावपि ॥ क्षमयामासतुःप्रीत्यापरिष्व ज्यपरस्परम् ॥ ३० ॥ ततःसुरैर्वन्द्यमानोब्रह्मालोकंनिजंययौ ॥ वसिष्ठोऽप्यात्मनःस्थानंकौशिकोऽपिस्वमाश्रमम् ॥ ३१ ॥ एतदाडिबकंयुद्धंहरिश्चंद्रकथांतथा ॥ कथयिष्यन्तियेमर्त्याःसम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये ॥ ३२ ॥ तेषांपापापनोदंतुश्रुतंह्येवकरिष्यति ॥ नचैवविघ्नकार्याणिभविष्यन्तिकदाचन ॥ ३३ ॥ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे आडिबकयुद्धकथनंनामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

मंगल हो । ब्रह्मत्वकी अपेक्षा अन्य बल नहीं है ॥ २९ ॥ तब प्रजापति ब्रह्माजीका इसप्रकार वचन सुनकर वह दोनों बहुत लज्जित हुए और प्रेममें पूर्ण हो परस्पर आलिंगनकर क्षमा प्रार्थना करी ॥३०॥ इसके पीछे लोकपितामह ब्रह्माजी देवताओंसे पूजित होकर ब्रह्मलोक चलेगये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र इन दोनोंने भी अपने अपने स्थानको प्रस्थान किया ॥ ३१ ॥ जो मनुष्य यह आडिबकयुद्ध और हरिश्चन्द्रकी कथा कहेगा, वा भलीभाँति सुनेगा ॥ ३२ ॥ उसके सब पाप दूर होंगे और जो इसको सुनकर कार्य करेगा, उसके कार्यमें कभी विघ्न नहीं होगा ॥ ३३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नवमोऽध्याय ॥ ९ ॥

जैमिनिने कहा—हे द्विजशार्दूलगण ! प्राणियोंकी, जिसमें जन्म और मृत्यु संघटित होती है,उस विषयमें मुझे संदेह है अत एव पूछता हूं, आप कहिये ॥ १ ॥ प्राणी किस प्रकारसे उत्पन्न होता है ? कैसे बढता है ? और किस भांति देहमें पीडा सहकर उदरमें वास करता है ? ॥ २ ॥ उदरसे बाहर निकलकर कैसे बढता है, मृत्युकालमें किसप्रकार उसका चैतन्य वियुक्त होता है ? ॥ ३ ॥ प्राणी कालकवलमें कवलित होकर किस प्रकार पुण्य और पापका फल भोगता है तथा पाप पुण्य किसप्रकारसे अपना अपना फल सम्पादन करते हैं ? ॥ ४ ॥ और जब अनेक गुरुपाक भोजनकी वस्तु जठराशयमें जीर्ण होती हैं, तो सामान्य पिण्डीकृत जीव स्त्रीके जठरमें किस लिये जीर्ण नहीं होता ? ॥ ५ ॥ जिस

॥ जैमिनिरुवाच ॥ संशयंद्विजशार्दूलाःप्रब्रूतममपृच्छतः ॥ आविर्भावतिरोभावौभूतानांयत्रसंस्थितौ ॥ १ ॥ कथंसञ्जायतेजन्तुकथंवासविवर्धते ॥ कथंवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ॥ २ ॥ निष्कान्तिमुदरात्प्राप्यकथंवावृद्धिमृच्छति ॥ उत्क्रान्तिकालेचकथंचिद्भावेनवियुज्यते ॥ ३ ॥ कृत्स्नोमृतस्तथाश्नातिउभेसुकृतदुष्कृते ॥ कथंतेचतथातस्यफलंसम्पादयन्त्युत ॥ ४ ॥ कथंनजीर्यतेतत्रपिण्डीकृतइवाशये ॥ स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरूण्यपि ॥ ५ ॥ भक्ष्याणितत्रनोजन्तुर्जीर्य्यतेकथमल्पकः ॥ कथंभोक्तासर्वस्यकर्मणःसुकृतस्यवै ॥ ६ ॥ एतन्मेब्रूतसकलंसन्देहोक्तिविवर्जितम् ॥ तदेतत्परमंगुह्यंयत्रमुह्यन्तिजन्तवः ॥ ७ ॥

॥ पक्षिणऊचुः ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिवेशितः ॥ दुर्भाग्यःसर्वभूतानांभावाभावसमाश्रितः ॥ ८ ॥ तंशृणुष्वमहाभागयथाप्राहपितुःपुरा ॥ पुत्रःपरमधर्म्मात्मासुमतिर्नामनामतः ॥ ९ ॥

जठराग्निमें भोजनकी हुई सब वस्तु जीर्ण होती हैं अर्थात् पचजाती हैं, वहां यह छोटासा जीव कैसे नष्ट नहीं होता ? और किसप्रकार सब सुकृत कर्मोंको भोगता है ? ॥६॥ हे द्विजगण ! जिससे मेरा संदेह दूर हो, उसी प्रकार यह सब विषय वर्णन कीजिये क्योंकि यह अत्यन्त गुप्त विषय है, प्राणी इसीमें मोहित होते हैं ॥ ७ ॥ पक्षी बोले- हे मुनिसत्तम ! आपने प्राणियोंके भाव अभावसे युक्त यह प्रश्न किया है, यह बडा गूढ़ अतुलप्रश्नभार हमारे ऊपर डाला है ॥ ८ ॥ जो हो हे महाभाग ! पूर्व कालमें सुमति नामक परम धर्मात्मा पुत्रने अपने पितासे जिसप्रकार कहा था, वही कहते हैं, सुनो ॥ ९ ॥

किसी समय भार्गववंशीय महामतिनामक किसी ब्राह्मणने शान्त जनेऊकिये हुए जडरूपी पुत्र सुमतिसे कहा ॥ १० ॥ हे वत्स सुमते ! गुरुकी सेवामें रत होकर भिक्षाके अन्नद्वारा जीवनधारण पूर्वक क्रमानुसार पहिले सब वेद पढ़ ॥ ११ ॥ फिर गृहस्थधर्म अवलम्बनकर यज्ञानुष्ठान पूर्वक अभिलाषित पुत्र उत्पन्न कर और फिर वनमें चलाजा ॥ १२ ॥ हे वत्स ! वनमें वास करनेपर निष्परिग्रह संन्यासी होनेसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त करेगा, जिसके प्राप्त करनेसे फिर सोच करना नहीं पड़ेगा ॥ १३ ॥ पक्षी बोले कि--इसप्रकार पिताने सुमतिसे बहुत कुछ कहा, किन्तु उसने जडताके कारण कोई उत्तर नहीं दिया तो भी पिता स्नेहके वश हो उससे वारंवार कहने लगे ॥१४॥ जब पुत्रसे स्नेहवश पिताने ऐसे प्रलोभी

ब्राह्मणोभार्गवःकश्चित्सुतमाहमहामतिः ॥ कृतोपनयनंशान्तंसुमतिंजडरूपिणम् ॥ १० ॥ वेदानधीत्यसुमतेयथानुक्रममादितः ॥ गुरुशुश्रूषणेव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजनः ॥ ११ ॥ ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ॥ इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेथावनंततः ॥ ॥ १२ ॥ वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रहः ॥ एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥ १३ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ इत्येवमुक्तोबहुशोजडत्वान्नाहकिञ्चन ॥ पितापितंसुबहुशःप्राहप्रीत्यापुनःपुनः ॥ १४ ॥ इतिपित्रासुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् ॥ सचोद्यमानोबहुशःप्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ १५ ॥ तातैतद्बहुशोभ्यस्तंयत्त्वयात्रोपदिश्यते ॥ तथैवान्यानिशास्त्राणिशिल्पानिविविधानिच ॥ १६ ॥ जन्मनामयुतंसाग्रंममस्मृतिपथंगतम् ॥ उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदैःकिंमेप्रयोजनम् ॥ निर्वेदाःपरितोषाश्चक्षयवृद्ध्युदयेरताः ॥ १७ ॥ शत्रुमित्रकलत्राणांवियोगाःसङ्गमास्तथा ॥ मातरोविविधादृष्टाःपितरोविविधास्तथा ॥ १८ ॥

मधुर वचनोंसे वारंवार कहा, तब सुमति कुछेक हँसकर पितासे बोला ॥ १५ ॥ हे तात ! आप मुझको इस समय जिस विषयका उपदेश देते हैं, मैंने अनेक बार इसका अभ्यास किया है और अन्यान्य नानाशास्त्र और बहुत प्रकारसे शिल्पशास्त्रका भी मैंने अभ्यास किया है ॥ १६ ॥ कुछ अधिक दशहजारवर्षकी बात मुझको स्मरण है, मैंने अनेक बार दुःख पाया है और अनेक बार संतुष्ट हुआ हूं और अनेक बार क्षय वृद्धिके उदयमें रत हुआ हूं, जब ज्ञान प्राप्त है, तो वेदसे क्या प्रयोजन है ? ॥ १७ ॥ मेरा अनेक वार शत्रु मित्र और कलत्रके सहित मिलाप तथा वियोग हुआ है, अनेक माता और अनेक पिता देखे हैं ॥ १८ ॥

हजारों सुख दुःख अनुभव किये हैं, अनेक बान्धव पाये हैं और पिता भी अनेक प्रकार देखे हैं ॥ १९ ॥ मल मूत्रसे भरे स्त्रीके जठरमें मैंने अनेकवार वास किया है, सहस्र सहस्र रोगोंके दारुण यंत्रणा भोगी है ॥२०॥ गर्भयंत्रणा वा बाल्य यौवन और वृद्ध अवस्थामें जितनी बार जैसा दुःख भोगा है, सब मुझको स्मरण है, ॥२१॥ मैंने कितनीही बार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षी योनिमें जन्म ग्रहण किया है ॥२२॥ जिस प्रकार आपके घर उत्पन्न हुआ हूं ऐसे ही अनेक अनेकवार राज सेवक और अनेकानेक योधाओंके घर जन्म लिया है ॥२३॥ मैं अनेकवार मनुष्योंका भृत्य और दास हुआ हूं, अनेकवार स्वामित्व, प्रधानत्व और दरिद्रता भोगी है ॥ २४ ॥ मैंने अनेक मनुष्योंको मारा है

अनुभूतानिसौख्यानिदुःखानिचसहस्रशः ॥ बान्धवाबहवःप्राप्ताःपितरश्चपृथग्विधाः ॥ १९ ॥ विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणांतथाकोष्ठ मयोषितम् ॥ पीडाश्चसुभृशंप्राप्तारोगाणाञ्चसहस्रशः ॥ २० ॥ गर्भदुःखान्यनेकानिबालत्वेयौवनेतथा ॥ वृद्धतायांतथाप्तानितानि सर्वाणिसंस्मरे ॥ २१ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणाञ्चापियोनिषु ॥ पुनश्चपशुकीटानांमृगाणामथपक्षिणाम् ॥ २२ ॥ तथैवराजभृ त्यानांराज्ञांचाहवशालिनाम् ॥ समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ॥ २३ ॥ भृत्यतांदासतांचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ॥ स्वामि त्वमीश्वरत्वंचदरिद्रत्वंतथागतः ॥ २४ ॥ हतंमयाहतश्चान्यैर्हतंमेघातितंतथा ॥ दत्तंममान्यैरन्येभ्योमयादत्तमनेकशः ॥ २५ ॥ पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेनच ॥ तुष्टोऽसकृत्तथादैन्यमश्रुधौताननोगतः ॥ २६ ॥ एवंसंसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातातसङ्कटे ॥ ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तंमोक्षसम्प्राप्तिकारकम् ॥ २७ ॥ विज्ञातेयत्रसर्वोऽयमृग्यजुःसामसंज्ञितः ॥ क्रियाकलापोविगुणोनसम्यक्प्र तिभातिमे ॥ २८ ॥

तथा अनेक वार कितने ही मनुष्योंने मुझको और मैंने उनको मारा है, मैंने अनेकवार दान किया है और अनेकवार मैंने औरोंसे लिया है ॥२५॥ पिता, माता, सुहृत्, भ्राता और स्त्री इत्यादिसे मैं कितनीही वार संतुष्ट हुआ हूं और अनेकवार दीन दशाको प्राप्त होकर आंसुओंके जलसे मुख धोया है ॥२६॥ हे तात ! मैंने इस प्रकार संकटमय संसारचक्रमें निरन्तर भ्रमण करते करते मोक्ष देनेवाला ज्ञान प्राप्त किया है ॥ २७ ॥ इस प्रकार ज्ञानलाभ करनेसे ऋक्, यजुः और साम नामक समस्त क्रियाकलाप मुझको विगुण और असम्यक् विदित होती है ॥ २८ ॥

अतएव जब मुझको ज्ञान प्राप्त हो गया है और गुरु विज्ञानमें तृप्त हो कर चेष्टारहित और सदात्मा हुआ हूं,तो फिर मेरा वेदज्ञानसे क्या प्रयोजन है ? ॥२९॥ सुतरां छह प्रकारकी क्रिया, सुख, दुःख, हर्ष, रस और गुणहीन ब्राह्म परमपदको मैं निःसन्देह प्राप्त हूंगा ॥३०॥ और रस, हर्ष, भय, उद्वेग क्रोध, अमर्ष और बुढापेके द्वारा सदा नितान्त आकुल तथा मृग श्वानके पकड़नेवाले सैकड़ों बंधनमें व्याप्त ॥३१॥ इस कारण हे पिता ! मैं इस दुःख-रूप प्रवाहको छोड़ कर जाऊंगा त्रयी विद्याका धर्म अधर्मसा दीखता है, इसको त्याग निःसन्देह ब्राह्मपद प्राप्त करूंगा ॥३२॥ पक्षी बोले—पुत्रका यह वचन सुन महाभागपिताने प्रसन्नचित्त और हर्षविस्मययुक्त गद्गद वाणीके द्वारा अपने पुत्रसे फिर कहा॥३३॥ पिताबोले—हे वत्स! यह तुम क्या कहते

तस्यादुत्पन्नबोधस्यवेदैः किंमेप्रयोजनम् ॥ गुरुविज्ञानतृप्तस्यनिरीहस्यसदात्मनः ॥२९॥ षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरसैश्चयत् ॥ गुणैश्चवर्जितंब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरंपदम् ॥ ३० ॥ रसहर्षभयोद्वेगक्रोधामर्षजवागुरा ॥ विज्ञातानृमृगग्राहिसंघपाशशताकुला ॥३१॥ तस्मायास्याम्यहंतातत्यक्त्वेमांदुःखसन्ततिम् ॥ त्रयीधर्ममधर्माढ्यंकिंपाफलसन्निभम् ॥३२॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षविस्मयगद्गदम् ॥ पिताप्राहमहाभागःस्वसुतंहृष्टमानसः ॥ ३३ ॥ पितोवाच ॥ ॥ किमेतद्वदसेवत्सकुतस्तेज्ञानसम्भवः ॥ केनतेजडतापूर्वमिदानींचप्रबुद्धता ॥ ३४ ॥ किन्नुशापविकारोऽयंमुनिदेवकृतस्तव ॥ यत्तेज्ञानंतिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ॥ ३५ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ शृणुताततयथावृत्तंममेदंसुखदुःखदम् ॥ यश्चाहमासमन्यस्मिञ्जन्मन्यस्मत्परन्तुयत् ॥ ३६ ॥ अहमासंपुराविप्रोन्यन्यस्तात्मापरमात्मनि ॥ आत्मविद्याविचारेषुपरांनिष्ठामुपागतः ॥ ३७ ॥ सततंयोगयुक्तस्यसतताभ्याससङ्गमात् ॥ सत्संयोगात्स्वस्वभावाद्विचारविधिशोधनात् ॥ ३८ ॥

हो! कहांसे तुमको ऐसा ज्ञान मिला पहिले तुम जडस्वभावथे, अब कहांसे ऐसी ज्ञान बुद्धि उत्पन्न हुई॥३४॥ तुम्हारा छिपा हुआ ज्ञान जो सहसा प्रगट हुआ यह क्या किसी मुनि वा देवताके शापका विकार था?॥३५॥ पुत्रने कहा--हे तात ! मेरा यह सुख दुःखप्रदायक पहिला वृतान्त तथा मैं अन्य जन्ममें जो था और जो जो हुआ था, वह कहता हूं, सुनो ॥ ३६ ॥ मैं पूर्व जन्ममें एक ब्राह्मण था, तब मैंने परमात्मामें निरंतर आत्माको लीन करके आत्मविद्यामें परमनिष्ठालाभ करी थी ॥ ३७ ॥ सदा योगयुक्त रहनेसे साधुता अभ्यास, सत्संयोग, सत्स्वभाव, विचार, विधिशोधन अर्थात

विधियोंका उद्धार ॥ ३८ ॥ और निरंतर परमात्मामें युक्त रहनेसे उस जन्ममें मैं अत्यन्त प्रसन्न था और शिष्योंका सन्देह निवारण करनेवाला होकर आचार्यकी पदवीको प्राप्त हुआ था ॥ ३९ ॥ कुछ काल बीतने पर मैं ऐकांतिक होगया ! फिर अज्ञानसे आकृष्ट स्वभावहो प्रमादके कारण यद्यपि व्याकुल होगया ॥ ४० ॥ किंतु तो भी उस मृत्युकालतक मेरी स्मृति लोप नहीं हुई, अतएव जन्मके समयसे जितने वर्ष बीते हैं, वह सब मुझको स्मरण हैं ॥ ४१ ॥ इस कारण हे तात ! मैं पूर्वाभ्यासके बलसे जितेंद्रिय होकर फिर वैसाही यत्न करूंगा ॥ ४२ ॥ जिससे मैं इन ज्ञान और दानका फलस्वरूप जातिस्मर हुआ हूं, अर्थात् सब जन्मोंका वृत्तांत मुझे स्मरण है । हे पिता ! त्रयीधर्मका आश्रय करनेवाले मनुष्य

तस्मिन्नेवपराप्रीतिर्ममासीद्युंजतःसदा ॥ आचार्यतांचसंप्राप्तःशिष्यसन्देहहृत्तमः ॥ ३९ ॥ ततःकालेनमहताऐकान्तिकमुपागतः ॥ अज्ञानाकृष्टसद्भावोविपन्नश्चप्रमादतः ॥ ४० ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ॥ यावदब्दंगतंचैव जन्मनांस्मृतिमागतम् ॥ ४१ ॥ पूर्वाभ्यासेनतेनैवसोऽहंतातजितेन्द्रियः ॥ यतिष्यामितथाकर्तुंनभविष्येयथापुनः ॥ ४२ ॥ ज्ञानवानफलंह्येतद्यज्जातिस्मरणंमम ॥ नह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयीधर्माश्रितैर्नरैः ॥ ४३ ॥ सोऽहंपूर्वाश्रमादेवनिष्ठाधर्ममुपाश्रितः ॥ एकान्तित्वमुपागम्ययतिष्याम्यात्ममोक्षणे ॥ ४४ ॥ तद्ब्रूहित्वंमहाभागयत्तेसांशयिकंहृदि ॥ एतावतापितेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ॥ ४५ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ पिताप्राहततःपुत्रंश्रद्दधत्तस्यतद्वचः ॥ भवतायद्वयंपृष्टाःसंसारग्रहणाश्रयम् ॥ ४६ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ शृणुतातयथातत्त्वमनुभूतंमयाऽसकृत् ॥ संसारचक्रमजरंस्थितिर्यस्यनविद्यते ॥ ४७ ॥

इस प्रकार जातिस्मर नहीं होसकते ॥४३॥ मैं पूर्वजन्मार्जित निष्ठा धर्मके आश्रयसे ऐकांतिकत्व लाभकरके आत्ममोक्षमें यत्नवान् हूंगा ॥ ४४ ॥ अतएव हे महाभाग ! आपके हृदयमें जो कुछ संशय है वह कहिये, मैं एकमात्रउपायसेही उसविषयमें आपकी प्रीति उत्पन्न कराकर उऋण हूंगा॥४५॥ पक्षी बोले-अनंतर उसके पिताने उसका यह वचन सुन श्रद्धायुक्त हो, जीवोंके जन्ममृत्युविषयमें आपने मुझसे जिस प्रकार पूछाहै, उन्होंने भी पुत्रसे उसी प्रकार पूछा था ॥ ४६ ॥पुत्रने कहा--हे तात! मैंने वारंवार जो अनुभव किया है, वह यथातत्त्व कहता हूं सुनो, यह जो संसारचक्र है, इसकी जरा भी कहीं स्थिति नहीं है ॥ ४७ ॥

हे पिता ! मैं आपकी आज्ञासे वह सब वृत्तान्त कहता हूं और कोई भी मृत्युकालकी सम्पूर्ण घटनाओंका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होगा ॥ ४८ ॥ देहमें स्थित हुआ पित्त कुपित होकर ईंधनके विना भी तीव्र वायुके संचालनेमे दीप्यमान होता है और सब मर्मस्थानको भेदन करता है ॥ ४९ ॥ और उदान नामक शरीरस्थ वायु उसके ऊपर वर्तमान होकर जलीय समस्त भक्ष्य वस्तुकी अधोगति निरोध करती है सुतरां उस समय प्राणीके आत्माका वियोग होता है ॥ ५० ॥ जिसने जल वा अन्न, रस दान किया है, वही उस मृत्युरूप आपत्कालमें प्रसन्न होते हैं ॥ ५१ ॥ जिन्होंने श्रद्धासहित पवित्रमनसे अन्नदान किया है, वह विनाअन्न भी उससमय तृप्तिलाभ करते हैं ॥ ५२ ॥ जो पुरुष

सोऽहंवदामितेसर्वंतवैवानुज्ञयापितः ॥ उत्क्रान्तिकालादारभ्ययथानान्योवदिष्यति ॥ ४८ ॥ ऊष्माप्रकुपितःकायेतीव्रवायुसमीरितः ॥ भिनत्तिमर्मस्थानानिदीप्यमानोनिरिन्धनः ॥ ४९ ॥ उदानोनामपवनस्ततश्चोर्ध्वंप्रवर्त्तते ॥ भुक्तानामम्बुभक्ष्याणामधोगतिनिरोधकृत् ॥ ५० ॥ ततोयेनाम्बुदानानिकृतान्यन्नरसास्तथा ॥ दत्ताःसतस्यआह्लादमापदिप्रतिपद्यते ॥ ५१ ॥ अन्नानियेनदत्तानिश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ सोऽपितृप्तिमवाप्नोतिविनाप्यन्नेनवैतदा ॥ ५२ ॥ येनानृतनिनोक्तानिप्रीतिभेदःकृतोनच ॥ आस्तिकःश्रद्दधानश्चससुखंमृत्युमृच्छति ॥ ५३ ॥ देवब्राह्मणपूजायांयेरतानोनसूयवः ॥ शुक्लावदान्याह्रीमन्तस्तेनराःसुखमृत्यवः ॥ ॥ ५४ ॥ योनकामान्नसंरम्भान्नद्वेषाद्धर्ममुत्सृजेत ॥ यथोक्तकारीसौम्यश्चससुखंमृत्युमृच्छति ॥ ५५ ॥ अवारिदायिनोदाहंक्षुधाचानन्नदायिनः ॥ प्राप्नुवन्तिनराःकालेतस्मिन्मृत्यावुपस्थिते ॥ ५६ ॥

कभी मिथ्या नहीं बोलते, किसीकी प्रीतिमें भेद नहीं कराते, आस्तिक और श्रद्धावान् हैं, उन्हींकी सुखसे मृत्यु होती है ॥ ५३ ॥ जो देवता और ब्राह्मणकी पूजामें रत हैं, जो असूयाहीन शुद्धचित्त, सुभाषी अर्थात् श्रेष्ठबोलनेवाले और लज्जावान् हैं, वही सुखपूर्वक प्राणत्याग करते हैं ॥ ५४ ॥ जो काम, क्रोध वा द्वेषके वश होकर कभी धर्मको नहीं छोड़ते, जो कहते हैं, वही करते हैं और सौम्यमूर्त्ति हैं वही सुखसे प्राणत्याग करते हैं ॥ ५५ ॥ और जिन्होंने कभी प्याससे आर्त्तहुए मनुष्यको जल और भूखसे दुःखी हुएको अन्न नहीं दिया, वह उस मृत्युकालके उपस्थित होनेपर दाह और क्षुधाको प्राप्त होते हैं ॥ ५६ ॥

जो काष्ठदान करते हैं, उनको मृत्युकालमें शीत नहीं सताता, चंदनदान करते हैं वह ताप नहीं पाते और जो सदा प्राणियोंको भयभीत करते हैं, उन्हींको मृत्यु-कालमें कष्टदायक प्राणघ्नी वेदना भोगनी पड़ती है ॥ ५७ ॥ जो अधम मनुष्य मनुष्योंको मोह और अज्ञानकी शिक्षा देते हैं, वही प्राणत्यागके समय अत्यन्त भय पाते हैं और महादुःखसे पीडित होते हैं ॥ ५८ ॥ जो झूंठी गवाही देते मिथ्यावादी, वेदनिन्दक और बुरा शासन करते हैं, उनकी अज्ञानसे मृत्यु होती है ॥ ५९ ॥ और उनके मृत्युकालमें पूतिगंधमय कूट मुद्गर हाथमें लिये अत्यन्त भयंकर दुरात्मा यमदूत आते हैं ॥ ६० ॥ ज्योंही यमदूतगण नेत्रोंके सामने आते हैं, उसी समय वह कांपते हुए शरीरसे

शीतंजयन्तिधनदास्तापंचन्दनदायिनः ॥ प्राणघ्नींवेदनांकष्टांयेचानुद्वेगकारिणः ॥ ५७ ॥ मोहाज्ञानप्रदातारःप्राप्नुवन्तिमहद्भयम् ॥
वेदनाभिरुदग्राभिःप्रपीड्यन्तेऽधमानराः ॥ ५८ ॥ कूटसाक्षीमृषावादीयश्चासदनुशास्तिवै ॥ तेमोहमृत्यवःसर्वेतथान्येवेदनिन्दकाः
॥५९॥ विभीषणाःपूतिगन्धाःकूटमुद्गरपाणयः ॥ आगच्छन्तिदुरात्मानोयमस्यपुरुषास्तदा ॥६०॥ प्राप्तेषुदृक्पथंतेषुजायतेतस्यवेपथुः॥
क्रन्दत्यविरतंसोऽथभ्रातृमातृसुतानथ॥६१॥सास्यवागस्फुटातातएकवर्णाविभाव्यते ॥ दृष्टिश्चभ्राम्यतेत्रासाच्छ्वासाच्छुष्यत्यथाननम्
॥६२॥ऊर्ध्वश्वासान्वितःसोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वितः ॥ ततःसवेदनाविष्टस्तच्छरीरंविमुंचति॥६३॥ वाय्वग्रसारीतद्रूपंदेहमन्यत्प्रपद्यते ॥
तत्कर्मजंयातनार्थंनमातृपितृसम्भवम् ॥ तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैःप्राग्भवंयथा ॥ ६४ ॥ ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणैः ॥
दण्डप्रहारसंभ्रान्तंकर्षतेदक्षिणांदिशम् ॥६५॥ कुशकण्टकवल्मीकशंकुपाषाणकर्कशे ॥ तथाप्रदीप्तज्वलनेक्वचिच्छ्वभ्रशतोत्कटे ॥६६॥

भाई माता और पुत्रको पुकारकर निरन्तर रोते हैं ॥६१॥ उस समय उनका वचन ठीक समझमें नहीं आता, एकवर्णमय होता है, दृष्टि घूमने लगती है और त्रास तथा श्वासके कारण मुख सूख जाता है ॥ ६२ ॥ अनन्तर वह ऊर्ध्वश्वास लेतेहुए दृष्टि भंगयुक्त हो वेदनासे भ्रमित होते हैं और वह शरीर छोड़ देते हैं ॥ ६३ ॥ फिर वायुके आगे होकर कर्मजनित यंत्रणा अर्थात् नरककी यातना भोगनेके लिये विना माता पिताके उत्पन्न अन्य देह धारण करते हैं और वह देह पूर्वके समान वयस, अवस्था और संस्थानसे संयुक्त होता है ॥ ६४ ॥ अनन्तर यमदूत उनको दारुण पाशमें बांधकर दण्डके प्रहारसे संभ्रान्तकरते हुए दक्षिण दिशामें खैंचते हैं ॥ ६५ ॥ कुश, कांटे, वल्मीक, शंकु (कील) और

पत्थरोंसे कर्कश, कहीं जलती हुई अग्निसे व्याप्त, कहीं सैकड़ों गढे पड़े हुए ॥६६॥ कहीं सूर्यकी महा उष्ण किरणोंसे जलतेहुए और कहीं सैकड़ों गीदड़ी शब्द करती हैं कहीं यमदूत खच रहे हैं ॥६७॥ वे घोर उस प्राणीको खेंचते हैं और सैकड़ों गीदड़ उसको खाते हैं, इसप्रकारके दारुण मार्गसे पापीपुरुष यमलोकको जाते हैं ॥६८॥ जिन मनुष्योंने छत्री, जूता, वस्त्र वा अन्नका दान किया है, वह सहजमें ही सुखपूर्वक उस मार्गमें जासकते हैं ॥६९॥ जिन मनुष्योंने भूमिका दान किया है, वह उज्जल विमानोंमें बैठकर जाते हैं। पापपीड़ित अर्थात् पापात्मामनुष्य इस प्रकार क्लेशानुभवसे विवश होकर बारहवें दिन धर्मराजके नगरमें पहुँचते हैं ॥ ७० ॥ जब शरीर जलता है, तब वह महादाह भोगते हैं और देहके

प्रदीप्तादित्यतप्तेनदह्यमानेनदंशुभिः ॥, कृष्यतेयमदूतैश्चशिवासन्नादभीषणैः ॥ ६७ ॥ विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणःशिवाशतैः ॥
प्रयातिदारुणेमार्गेपापकर्मायमक्षयम् ॥६८॥ छत्रोपानत्प्रदातारोयेचवस्त्रप्रदानराः ॥ तेयान्तिमनुजामार्गेतंसुखेनतथान्नदाः ॥ ६९ ॥
विमानैःसोज्ज्वलैर्यातिभूमिदानप्रदानराः ॥ एवंक्लेशाननुभवन्नवशःपापपीडितः ॥ नीयतेद्वादशाहेनधर्मराजपुरंनरः ॥७०॥ कलेवरेदह्य
मानेमहान्तंदाहमृच्छति ॥ ताड्यमाने तथैवार्तिंछिद्यमानेचदारुणाम् ॥७१॥ क्लिद्यमानेचिरतरंजन्तुर्दुःखमवाप्नुते ॥ स्वेनकर्मविपाके
नदेहान्तरगतोऽपिसन् ॥७२॥ तत्रयद्बान्धवास्तोयंप्रयच्छन्तितिलैःसह ॥ यच्चपिण्डंप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदश्नुते॥७३॥ तैलाभ्यङ्गो
बान्धवानामङ्गसंवाहनंचयत् ॥ तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिस्वबान्धवाः ॥७४॥ भूमौस्वपद्भिर्न्नात्यन्तंक्लेशमाप्नोतिबान्धवैः॥दानंदद
द्भिश्चतथाजन्तुराप्याय्यतेमृतः ॥ ७५ ॥ नीयमानःस्वकंगेहंद्वादशाहंसपश्यति ॥ उपभुङ्क्तेतथादत्तंतोयपिण्डादिकंभुवि ॥ ७६ ॥

ताड़ित वा छेदित होनेसे दारुण वेदना भोगते हैं ॥७१॥ यह देह जब जलमें गीला होता है, तब देहान्तर अवलम्बन करनेपर भी अपने कर्म केफलसे सदा दुःख अनुभव करना पड़ता है॥७२॥बांधवगण उसके उद्देश्यमें जो तिलसहित जल वा पिण्ड देते हैं,उस समय वही उसीको भोजन करता है॥७३॥बांधवोंको तेल लगाना, उबटन मलना, वार्जित है. कारण कि, उस मृतकके भोजनको यही वस्तु प्राप्त होती है॥७४॥ और बांधवोंके भूमिमें शयनकरनेसे उसका क्लेश दूर होता है और दान करनेसे वह जीव प्रसन्न होता है॥ ७५ ॥ वह बारहवें दिन फिर अपने घर पहुँचता है और उसके उद्देश्यमें जो जल तथा पिण्डादि दियाजाता है, वह उसीको खाता है ॥ ७६ ॥

बारह दिन बीतने पर फिर यमदूतोंके द्वारा आकर्षित हो अत्यन्त बृहत् भीषणाकार लोहमय यमपुर देखता है॥७७॥वहां जाय मृत्यु,काल,अन्तकादि पार्षदोंसे युक्त रक्तलोचन और अंजनपुंजके समान कृष्णवर्ण यमराजको देखता है ॥७८॥ वह डाढ और भृकुटीभंग अतीव कराल वदन तथा विरूप भीषणाकार और वक्राकृति सैकड़ों व्याधिके द्वारा चारों ओरसे घिरे हुएहैं ॥७९॥ वह महाबाहुयम दण्ड और पास धारण करते हैं. इससे उनका आकार बडा भयंकर है, प्राणी उन्हीं यमराजकी निर्दिष्ट की हुई अच्छी बुरी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ८० ॥ जो मनुष्य मिथ्यावादी हैं और मिथ्यासाक्षी देते, हैं वह रौरव नामक नरकमें गिरते हैं. ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले, गौकी हत्या करनेवाले पिताका घात करनेवाला ॥८१॥

द्वादशाहात्परंघोरमावासंभीषणाकृतिम् ॥ याम्यंपश्यत्यथोजन्तुःकृष्यमाणःपुरंततः ॥ ७७ ॥ गतमात्रोऽतिरक्ताक्षंभिन्नाञ्जनचयप्रभम् ॥ मृत्युकालान्तकादीनांमध्येपश्यतिवैयमम् ॥ ७८ ॥ दंष्ट्राकरालवदनंभ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ॥ विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतंव्याधिशतैःप्रभुम् ॥ ७९ ॥ दण्डासक्तंमहाबाहुंपाशहस्तंसुभैरवम् ॥ तन्निर्दिष्टांततोयातिगतिंजन्तुःशुभाशुभाम् ॥ ८० ॥ रौरवेकूटसाक्षीतुयातियश्चानृतीनरः ॥ ब्रह्मघ्नोहत्ययादष्टोगोघ्नश्चपितृघातकः ॥ ८१ ॥ क्षेपदारापहारीचसीमानिक्षेपहारकः ॥ गुरुपत्न्यभिगामीचकन्यागामीतथैवच ॥ ८२ ॥ तस्यस्वरूपंगदतोरौरवस्यनिशामय ॥ योजनानांसहस्रेद्वेरौरवोहिप्रमाणतः ॥ जानुमात्रप्रमाणश्चततःश्वभ्रसुदुस्तरः ॥ ८३ ॥ तत्राङ्गारचयोपेतंकृतंचधरणीसमम् ॥ जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना ॥ ८४ ॥ तन्मध्येपापकर्माणंविमुंचन्तियमानुगाः ॥ सदह्यमानस्तीव्रेणवह्निनातत्रधावति ॥ ८५ ॥ पदेपदेचपादोऽस्यशीर्यतेजीर्यतेपुनः ॥ अहोरात्रेणोद्धरणंपादन्यासंचगच्छति ॥ ८६ ॥

क्षेप, वा स्त्री, सीमा, धरोहरके हरनेवाले.गुरुकी स्त्री कन्यासे भोग करनेवाले उसी रौरव नरकमें जाते हैं ॥८२॥ हे तात ! उस रौरव नरकका स्वरूप कहता हूं, सुनिये—वह रौरव नरक दो हजार योजन परिमित लम्बा चौड़ा है, और उसमें जांघकी बराबर गहरा गर्त (गढा) है ॥८३॥ उस गर्तमें मृत्तिकाके समान अंगारे और उन तीव्र अंगारोंसे तप्त होकर वह सदा जलता रहता है ॥ ८४ ॥ यमदूत पापात्मा मनुष्योंको उसमें डाल देते हैं और वह उस तीव्र अग्नीमें दह्यमान होकर इधर उधर दौड़ते हैं ॥ ८५ ॥ इस प्रकार उसके पैर पग पग पर अग्निसे फटते और नष्ट होते हैं

कि, दिन रातमें एकवार पैर रखने वा पैर उठानेमें समर्थ होता है ॥ ८६ ॥ इस भाँति चरण रखता हुआ सहस्रयोजन उत्तीर्ण होने पर वहांसे छुटकारा पाता है और पापशुद्धिके लिये उसीके समान दूसरे नरकमें जाता है ॥ ८७ ॥ पापी मनुष्य इस प्रकार सब नरकोंसे उत्तीर्ण होकर तिर्यक् योनिको प्राप्त होता है । फिर क्रमानुसार कृमि, कीट, पतंग श्वापद (हिंसकजन्तु) मच्छर ॥ ८८ ॥ गौ, घोड़ा हाथी, और वृक्ष लतादि अनेक प्रकारकी कष्टदायक पाप योनियोंमें जन्म ग्रहण पूर्वक ॥ ८९ ॥ मनुष्य जन्मको प्राप्त हो कुबडा, कुत्सित, और बौना आदि रूपसे चाण्डाल और पुल्कस इत्यादि निंदनिय योनियोंमें जन्म लेता है ॥९०॥ फिर शेषपुण्यसे मनुष्ययोनिको प्राप्त होकर (यदि पुण्यसंचय करे तो)

एवंसहस्रमुत्तीर्णोयोजनानांविमुच्यते ॥ ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ्निरयमृच्छति ॥८७॥ ॥ ततःसर्वेषुनिम्नीर्णःपापीतिर्यक्त्वमश्नुते॥ कृमिकीटपतङ्गेषुश्वापदेमशकादिषु ॥ ८८ ॥ गत्वागजद्रुमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैवच ॥ अन्यासुचैवपापासुदुःखदासुचयोनिषु ॥ ८९ ॥ मानुष्यंप्राप्यकुब्जोवाकुत्सितोवामनोऽपिवा ॥ चण्डालपुल्कसाद्यासुनरोयोनिषुजायते ॥ ९० ॥ अवशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वितः ॥ ततश्चारोहणींजातिंशूद्रवैश्यनृपादिकाम् ॥ ९१ ॥ विप्रदेवेन्द्रताञ्चापिकदाचिदवरोहणीम ॥ एवन्तुपापकर्म्माणोनरकेषुपतन्त्यधः ॥ ९२ ॥ यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदतःशृणु ॥ तेयमेनविनिर्दिष्टांयान्तिपुण्यांगतिंनराः ॥ ९३ ॥ प्रगीतगन्धर्वगणैः प्रनृताप्सरसांगणैः ॥ हारनूपुरमाधुर्यशोभितात्युत्तमानिच ॥ ९४ ॥ प्रयान्त्याशुविमानानिनानादिव्यस्रगुज्ज्वलाः ॥ तस्माच्चप्रच्युताराज्ञामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ ९५ ॥

आरोहिणी गति पाय क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय ॥ ९१ ॥ ब्राह्मण और देवेन्द्रतक होसकता है (और यदि फिर अधर्माचरण करे तो पुनर्वार) अवरोहिणी गतिको प्राप्त हो क्रमानुसार उन सब नरकोंमें गिरता है ॥ ९२ ॥ अब पुण्यवान् मनुष्य जिस प्रकारजाते हैं वह कहता हूं, सुनो-पुण्यवान् मनुष्य भी यमकी निर्दिष्ट करीहुई पुण्यमयी गतिको प्राप्त होते हैं ॥ ९३ ॥ जिस समय वह गमन करते हैं, तब उनके चारों ओर गंधर्व गाते हुए जाते हैं अप्सरा नाचती हैं तथा हार नुपूर और माधुर्य इत्यादिसे शोभित अति उत्तम ॥९४॥ विमान उनके निकट आते हैं और वह शीघ्रही नानाप्रकारके दिव्य माल्यधारणसे उज्ज्वल हो उनमें बैठकर जाते हैं,फिर पुण्य शेष होने पर वह विमानसे गिरकर अन्य महात्मा॥९५॥

बा राजकुलमें जन्म ले सद्वृत्तिके पालन करनेवाले मनुष्य होते हैं और अनेक प्रकारके भोगोंको भोगकर क्रमशः उर्ध्वगतिको प्राप्त होते हैं॥९६॥ और यदिअवरोहिणी दशामें प्राप्त हो, तो पहिले कहेके अनुसार समस्त भोगकरते हैं हे तात ! प्राणीगण जिस प्रकारसे मृत्युको प्राप्त होते हैं, वह आपसे सब वर्णन किया हे विप्रर्षे ! अब जिस प्रकारसे गर्भधारण होता है, वह सुनो ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! निषेककालमे स्त्रीके रजमें मनुष्यका जो वीर्य प्राप्त होता है, स्वर्ग वा नरकसे छूटते ही मनुष्य उसको अवलम्बन करता है ॥ १ ॥ और उसके द्वारा अभिभूत होकर वह दोनों बीज स्थैर्यभावको प्राप्त होते हैं, अर्थात् स्थिर हो जाते हैं, फिर कुछ

जायन्तेचकुलेतत्रसद्वृत्तपरिपालकाः ॥ भोगान्संप्राप्नुवन्त्यग्र्यांस्ततोयान्त्यूर्ध्वमन्यथा ॥ ९६ ॥ ॥ अवरोहणीश्चसम्प्राप्यपूर्ववद्या न्तिमानवाः ॥ एतत्तेसर्वमाख्यातंयथाजन्तुर्विपद्यते ॥ अतःशृणुष्वविप्रर्षेयथागर्भंप्रपद्यते ॥ ९७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादेमृत्युदशावर्णनंनामदशमोऽध्यायः ॥ १० ॥ पुत्रउवाच ॥ निषेकंमानवस्त्रीणांबीजंप्रोक्तंरजस्यथ ॥ विमुक्तमात्रोनर कात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ॥ १ ॥ तेनाभिभूतंतत्स्थैर्ययातिबीजद्वयंपितः ॥ कललत्वंबुद्बुदत्वंततःपेशित्वमेवच ॥ २ ॥ पेश्यास्तथा यथाबीजादंकुराद्दिसमुद्भवः ॥ अङ्गानांचतथोत्पत्तिःपंचानामनुभागशः ॥ ३ ॥ उपाङ्गान्यंगुलीनेत्रनासास्यश्रवणानिच ॥ प्ररोहंया न्तिचाङ्गेभ्यस्तद्वत्तेभ्योनखादिकम् ॥ ४ ॥ त्वचिरोमाणिजायन्तेकेशाश्चैवततःपरम् ॥ समंसमृतद्धिमायान्तितेनैवोद्भवकोशकः ॥ ॥ ५ ॥ नारिकेलंयद्वत्सकोशंवृद्धिमृच्छति ॥ तद्वत्प्रयात्यसौवृद्धिंसकोशोऽधोमुखःस्थितः ॥ ६ ॥

गाढ़े बुलबुले लंबे गोल २ और अंडाकार भावको प्राप्त होते हैं ॥ २ ॥ उस लंबे गोल २ अंडाकारमें जो सूक्ष्म बीज रहता है, उसको अंकुर कहते हैं और अंकुरसे विभागके क्रमानुसार पांचों अंगकी उत्पत्ति होती है ॥३॥ फिर समस्त उपाङ्ग अर्थात् अंगुली, नेत्र, नासिका, मुख और कान इत्यादिकी उत्पत्ति होती है और इस उपाङ्गसे जो अंकुर उत्पन्न होता है, उससे नखादिकी उत्पत्ति होती है ॥४॥ फिर चर्मके ऊपर रोमावली और केश उत्पन्न होते हैं इस प्रकार उसके सब अंग और उद्भवकोश दोनोंही समान भावसे बढ़ते हैं ॥ ५ ॥ अर्थात् नारियलका फल जिस प्रकार कोषके सहित बढ़ता रहता है ऐसेही वह प्राणी भी गर्भकोषके सहित नीचेको मस्तक किये वृद्धिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥

किन्तु यहां स्वर्गमें भी दुःखकी सीमा नहीं है, क्योंकि स्वर्गमें रहनेके समयतक नित्य मनमें यह दुःख उपस्थित रहता है कि, "पुण्यक्षय होने पर हमको भी इसी प्रकार गिरना होगा" ॥ २६ ॥ हे तात ! उन नरकवासियोंको देखकर अत्यन्त दुःखी होते हैं और "हम भी ऐसी ही गतिको प्राप्त होंगे" यह विचार कर उनको रात दिन अत्यन्त दुःखी होना पड़ता है ॥ २७ ॥ एक तो गर्भवासही अत्यन्त दुःखमय है, उसमें भी फिर योनिके छिद्र द्वारा होकर जन्मग्रहण करना अत्यन्तही दुःखमय है, यदि जन्म हुआ तो बाल्यावस्था और वृद्ध अवस्था दोनों दुःखमय हैं ॥२८॥ और काम ईर्षा और क्रोध इत्यादि कारणोंसे यौवन कालतो अत्यन्तही दुःखमय है और इसके ऊपर वृद्धावस्था तो दुःखकी खानिस्वरूप है.

स्वर्गेपिदुःखमतुलंयदारोहणकालतः ॥ प्रभृत्यहंपतिस्यामीत्येतन्मनसिवर्तते ॥ २६ ॥ नरकांश्चैवसंप्रेक्ष्यमहद्दुःखमवाप्यते ॥ एतांगतिमहंगंतेत्यहर्निशमनिर्वृतः ॥ २७ ॥ गर्भवासेमहद्दुःखंजायमानस्ययोनितः ॥ जातस्यबालभावेचवृद्धत्वेदुःखमेवच ॥ २८ ॥ कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धंयौवनंचातिदुःसहम् ॥ दुःखप्रायावृद्धताचमरणेदुःखमुत्तमम्॥२९॥कृष्यमाणश्चयाम्यैश्चनरकेपुचपात्यतः॥पुनश्चगर्भोजन्माथमरणंनरकस्तथा ॥३०॥ एवंसंसारचक्रेस्मिन्भ्रान्तनोघटियन्त्रवत ॥ भ्राम्यन्तेप्राकृतैर्बन्धैर्बद्धावध्यन्तिचासकृत्॥३१॥ नास्तितातसुखंकिंचिदत्रदुःखशताकुले ॥ तस्मान्मोक्षाययततःकथंसेव्यामयात्रयी ॥ ३२ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेगर्भस्थितिवर्णनंनामएकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥ पितोवाच ॥ साधुवत्सत्वयाख्यातंमंसारगहनंपरम् ॥ ज्ञानप्रदानमंभूतंसमाश्रित्य महाफलम् ॥ १ ॥

और मरनेमें तो अत्यन्त कठिन दुःख है ही ॥ २९ ॥ तदनन्तर यमदूतगण जब उनको खेंचकर नरकमें डालते हैं, तब फिर दुःखकी सीमा नहीं रहती इस परभी फिर गर्भवास जन्मग्रहण, मरण और नरकमें वास होता है ॥ ३० ॥ इस प्रकार इस संसार चक्रमें सब प्राणी प्राकृत बंधनमें बँधकर घटीयंत्रके समान सदा भ्रमण करते हैं और वारंवार बंधनका दुःख भोगते हैं ॥ ३१ ॥ सुतरां हे तात ! सैकड़ों दुःखोंसे भरे हुए इस संसारमें सुखका लेश मात्रभी नहीं है, इसलिये मैं जब मुक्ति लाभके निमित्त यत्न करता हूं तो फिर त्रयी विद्याधर्मकी सेवा क्यों करूं मैं तो अपरा विद्या प्राप्त करूंगा ॥३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायामेकादशोऽध्यायः ॥११॥ पिताने कहा—हे साधु वत्स ! तुमने ज्ञान

देनेंके मिस महाफल देनेवाला परम संसारगहनका विषय भली भाँति वर्णन किया ॥ १ ॥ और रौरव तथा अन्यान्य नरकोंका जो विषय वर्णन किया, हे महामते! अब वही विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ पुत्र बोला—हे पिता! मैंने पहिले आपसे रौरव नरकका वर्णन तो कियाही है, अब महारौरव नामक नरकका विषय वर्णन करता हूं, सुनिये ॥ ३ ॥ न जानेयोग्य मार्गमें जानेवाले अभक्ष्यभक्षण करनेवाले, मित्रद्रोही, स्वामीके विश्वासका नाश करनेवाले ॥ ४ ॥ पराई स्त्रीमें गमन करनेवाले, अपनी स्त्रीके त्याग करनेवाले, मार्ग, तडाग और उपवनोंके तोड़नेवाले ॥ ५ ॥ ऐसे ऐसे पापियोंको यमदूत वहां लेजाकर जलाते हैं, प्रमाण उसका बारह हजार

तत्रतेनरकाःसर्वेयथावैरौरवस्तथा ॥ वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ॥ २ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ रौरवस्तेसमाख्यातः प्रथमंनरकोमया ॥ महारौरवसंज्ञंतुशृणुष्वनरकंपितः ॥ ३ ॥ अगम्यागमनेयेचअभ्यक्षणेरताः ॥ मित्रद्रोहकराश्चैवस्वामिविश्रंभघातकाः ॥ ४ ॥ परदाररताश्चैवस्वदारपरिवर्जिनः ॥ मार्गभंगकरायेचतडागारामभेदकाः ॥ ५ ॥ एतेन्येचदुराचारादह्यन्तेतत्रकिंकरैः ॥ योजनानांसहस्राणिसप्तपंचसमन्ततः ॥ तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशनः ॥ ६ ॥ तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा ॥ विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ॥ ७ ॥ तस्यांबद्धःकराभ्यांचपद्भ्यांचैवयमानुगैः ॥ मुच्यतेपापकृन्मध्ये लुंठ्यमानःसगच्छति ॥ ८ ॥ काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्वृश्चिकैर्मशकैस्तथा ॥ भक्ष्यमाणस्तथागृध्रैर्द्रुतंमार्गेविकृष्यते ॥ ९ ॥ दह्यमानःपितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुलः ॥ वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ॥ १० ॥

योजन चारों ओर है, उसकी पृथ्वी ताम्रमयी है, जिसके नीचे अग्निकी खानि है ॥ ६ ॥ यह ताम्रमयी भूमि अनलके तापसे तप्त हो बिजली की प्रभाके समान समस्त दिशाविदिशा प्रकाशमान करती है, उसका देखना वा स्पर्श करना अत्यन्त भयंकर है ॥ ७ ॥ यमदूत पापियोंके हाथ पैर बांधकर उसमें छोड़ देते हैं और पापी उसमें पड़ेहुए लोटते हैं और उसके भीतर जाते हैं ॥८॥ मार्गमें वह काक, बगुले, भेडिये, उल्लू, बीछू, मच्छर और गृध्र इत्यादिके द्वारा भक्षित होकर आकर्षित होते हैं॥९॥ फिर दाहकी यंत्रणासे पीडित होकर व्याकुल चित्तसे "माता! पिता! भ्राता इत्यादि शब्द करते हैं और अत्यन्त उद्विग्न होकर शान्ति लाभ नहीं कर सकते हैं ॥ १० ॥

जो दुष्टबुद्धि मनुष्य सदा पाप करते हैं, वह इसप्रकार सहस्र सहस्र वर्षमें उसको अतिक्रमकर वहांसे छुटकारा पाते हैं ॥ ११ ॥ इसके पीछे घोर अंधकारसे ढका हुआ तम नामक एक नरक है, वह महारौरव नरकके समान दीर्घ और स्वभावसेही अत्यन्त शीतमय है ॥ १२ ॥ उसमें गोवध करनेवाले भाईके मारने वाले और बालकोंका घात करनेवाले मनुष्य इस शीत संकटमें डाले जाते हैं ॥ १३ ॥ जो इस नरकमें गिरते हैं वह उस दारुण अंधकारमें शीतसे आर्त्त हो इधर उधर दौड़ते हैं और अन्यान्य नारकियोंके संगमिलित हो उसके शरीरसे लिपट परस्परका आश्रय करके वास करते हैं ॥ १४ ॥ शीतकी पीडासे अत्यन्त काँपनेके कारण उनके दाँत टूटते हैं और भूख प्यास तथा अन्यान्य नानाप्रकारके

एवंतस्मान्नरैर्मोक्षोह्यतिक्रान्तैरवाप्यते ॥ वर्षायुतायुतैःपापंयैःकृतंदुष्टबुद्धिभिः ॥ ११ ॥ तथान्यस्तुतमोनाममोऽतिशीतःस्वभावतः ॥ महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः ॥ १२ ॥ गोवधश्चकृतोयेनभ्रातॄणांघातएवच ॥ अब्रह्मबाल्यघातीचनीयतेशीतसंकरे ॥ १३ ॥ शीतार्त्तास्तत्रधावंतिनरास्तमसिदारुणे ॥ परस्परंसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्तिच ॥ १४ ॥ दन्तास्तेषांचभज्यन्तेशीतार्त्तिपरिकम्पिता ॥ क्षुत्तृष्णाप्रबलातत्रतथैवान्येऽप्युपद्रवाः ॥ १५ ॥ हिमखण्डवहोवायुर्भिनत्त्यस्थीनिदारुणः ॥ मज्जासृग्गलितंतस्माद्श्नुवन्तिक्षुधान्विताः ॥ १६ ॥ लेलिह्यमानाभ्राम्यन्तेपरस्परसमागमे ॥ एवंतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवैः ॥ १७ ॥ प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसंक्षयः ॥ निकृन्तनइतिख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः ॥ १८ ॥ तस्मिन्कुलालचक्राणिभ्राम्यन्त्यविरतंपितः ॥ अदृष्टंदृष्टवद्ब्रूयादश्रुतंश्रुतमेवच ॥ १९ ॥

समस्त उपद्रव अत्यन्त प्रबल होते हैं ॥ १५ ॥ हिमके खंड वहन करनेवाली दारुण वायु उनकी अस्थि भंगकर डालती है और उनमें जो मज्जा तथा रुधिर गिरता है वह अत्यन्त भूखसे आतुर होकर उसीको भोजन करते हैं ॥ १६ ॥ और आपसमें मिलित होकर एक दूसरेका शरीर चाटते हैं और इधर उधर भ्रमण करते हैं, इस प्रकारसे वहां मनुष्योंको बडा क्लेश होता है ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ जबतक सम्यक् प्रकार पापोंका क्षय नहीं होता, मनुष्य तबतक उस तम नामक नरकमें इसप्रकार महा क्लेश भोगते रहते हैं इसके पीछे निकृन्तन नामसे विख्यात एक प्रधान नरक है ॥ १८ ॥ जो सदा कुम्हारके चाकके समान घूमाकरता है और उस चक्रमें पापियोंको कालसूत्रसे काटता रहता

है जो न देखे हुएको देखे हुए और न सुने हुएको सुने हुएके समान कहता है ॥ १९ ॥ जो दुराचारी एकाक्षर देनेवाले गुरुको ईश्वररूप नहीं मानता, गुरु वा शास्त्रका वचन नहीं सुनता ॥ २० ॥ वे पापात्मा दुराचारी मनुष्य उस चक्रके ऊपर आरोपित होकर यमदूतोंकेहाथोंमें स्थित कालसूत्र द्वारा पैरोंसे मस्तक पर्यन्त काटे जाते हैं, किन्तु हे द्विजसत्तम ! इसपरभी उनका जीवन नष्ट नहीं होता ॥ २१ ॥ २२ ॥ और यह शत शत खंड होकर भी एकत्र संयुक्त होते हैं, अर्थात् वह फिर ज्योंके त्यों हो जाते हैं, इसप्रकार पापी मनुष्य सहस्र वर्ष छेदित रहते हैं ॥२३॥ जबतक पपात्माओंके उन पापोंका क्षय नहीं होता । अब मुझसे अप्रतिष्ठ नामक नरकका विषय सुनो ॥२४॥

एकाक्षरंगुरुं यस्तुदुराचारो नमन्यते ॥ नशृणोति गुरोर्वाक्यंशास्त्रवाक्यंतथैवच ॥ २० ॥ एतेपापादुराचारास्तत्रतैर्यमपूरुषैः ॥ तेष्वारोप्य निकृत्यन्तेकालसूत्रेणमानवाः ॥२१॥ यमानुगांगुलिस्थेनआपादतलमस्तकम् ॥ नचैषांजीवितभ्रंशोजायतेद्विजसत्तम ॥ ॥ २२ ॥ छिन्नानितेषांशतशःखण्डान्यैक्यंव्रजन्तिच ॥ एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः ॥ २३ ॥ तावद्यावदशेषंवैतत्पापंहि क्षयंगतम् ॥ अप्रतिष्ठंचनरकंशृणुष्वगदतोमम ॥ २४ ॥ यत्रस्थैर्नारकैर्दुःखमसह्यमनुभूयते ॥ स्वधर्मरतविप्राणांविघ्नंयस्तुसमा चरेत् ॥ २५ ॥ सबद्धैर्दारुणैःपाशैर्नीयतेचक्रसंकरैः ॥ तान्येवतत्रचक्राणिघटीयन्त्राणिचान्यतः ॥ २६ ॥ दुःखस्यहेतुभूतानिपापकर्म कृतांनृणाम् ॥ चक्रेष्वारोपिताःकेचिद्भ्राम्यन्तेतत्रमानवाः ॥ २७ ॥ यावद्वर्षसहस्राणिनतेषांस्थितिरन्तरा ॥ घटीयन्त्रेषुचैवान्योबद्ध स्तोयेयथाघटी ॥ २८ ॥ भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः ॥ अन्त्रैर्मुखविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैश्चावलम्बिभिः ॥ २९ ॥

जहां स्थित होकर नरकवासी असह्य क्लेश अनुभवकरते हैं जो अपने धर्ममें तत्पर ब्राह्मणोंका विघ्न करता है ॥ २५ ॥ उनको दारुण पाशमें बाँधकर चक्रसंकर नरकमें लेजाते हैं वह चक्र और घटीयंत्र ॥ २६ ॥ पाप करनेवाले मनुष्योंके दुःखके हेतुस्वरूप होते हैं, कोई प्राणी उसी चक्रके ऊपर आरोपित होकर घुमाये जाते हैं ॥२७॥ प्रायः हजारवर्ष उनको उसमें अवस्थान करना पड़ता है कोई कोई पापात्मा छोटे घड़के समान बंधकर ॥ २८ ॥ उसी घटीयंत्रके द्वारा घूमते हैं, और बारंबार रक्तको वमन करते हैं, उन प्राणियोंकी आंतें वहां मुखसे निकल आती हैं रक्तधारा बहती है और नेत्र निकल आते हैं ॥ २९ ॥

वहां प्राणियोंसे अत्यन्त पीडित होकर असह्य दुःख अनुभव करते हैं इसके पीछे असिपत्रनामक अन्य दारुण नरकका विषय वर्णन करता हूं सुनिये ॥ ३० ॥ यह नरक जलती हुई अग्निसे पृथ्वीको सहस्र योजन आक्रमण करके स्थित है जो ब्रह्मचारीके व्रत और तपमें विघ्न करते हैं ॥ ३१ ॥ वह उद्वेगकारि उस असिपत्र वनमें जाते हैं. नरकवासी प्राणी भयंकर प्रचण्ड सूर्यकी किरणोंसे तपकर ॥ ३२ ॥ इस नरकमें गिरते हैं उसमें एक अति मनोहर वन है देखनेमें उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने बोध होते हैं ॥ ३३ ॥ किन्तु हे द्विजसत्तम ! उसके सब पत्ते खड्ग फलकमय हैं, वहां बड़े बड़े बली कुत्ते भोंकते रहते हैं ॥३४॥ व्याघ्रके समान उनके बड़े मुख, तीव्र डाढ़ोंवाले और बड़े भयंकर

दुःखानितेप्राप्नुवन्तियान्यसह्यानिजन्तुभिः ॥ असिपत्रवनंनामनरकंशृणुचापरम्॥३०॥ योजनानांसहस्रंयोज्वलदग्न्यास्तृतावनिः ॥ ब्रह्मचारिव्रतानांचतपसांविघ्नमाचरेत् ॥ ३१ ॥ असिपत्रवनंयांतियेसदोद्वेगकारिणः ॥ तत्राःसूर्यकरैश्चण्डैर्यत्रातीवसुदारुणैः ॥ ३२ ॥ प्रपतन्तिसदातत्रप्राणिनोनरकौकसः ॥ तन्मध्येचवनंरम्यंस्निग्धपत्रंविभाव्यते ॥ ३३ ॥ पत्राणितत्रखड्गानांफलानिद्विजसत्तम ॥ श्वानश्चतत्रसबलाःस्वनन्त्ययुतशोऽभितः ॥ ३४ ॥ महावक्त्रामहादंष्ट्राव्याघ्राइवभयानकाः ॥ ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छायमग्रतः ॥ ३५ ॥ प्रयान्तिप्राणिनस्तत्रतृट्तापपरिपीडिताः ॥ हामातर्हातातइतिक्रन्दन्तोऽतीवदुःखिताः ॥ ३६ ॥ दह्यमानाङ्घ्रियुगलाधरणीस्थेनवह्निना ॥ तेषांगतानांतत्रासिपत्रपातीसमीरणः ॥ ३७ ॥ प्रवातितेनपात्यन्तेतेषांखड्गास्तथोपरि ॥ ततःपतन्तितेभूमौज्वलत्पावकसंचये॥३८॥लेलिह्यमानेचातीवव्याप्ताशेषमहीतले॥सारमेयास्ततःशीघ्रंशातयन्तिशरीरतः॥३९॥ तेषांमंगानिरुदतांत्वचश्चातीवभीषणाः॥असिपत्रवनंतातमयैतत्कीर्तितंतव ॥ ४० ॥

हैं उस वनकी ठंढी छाया देखकर॥३५॥भूख प्याससे कातर हुए प्राणी उसमें प्रवेश करते हैं और अत्यन्त दुःखित चित्तसे "हा माता ! हा पिता!" कह कर रोते हैं॥३६॥पृथ्वीकी अग्निसे उनके पैर जल जाते हैं, वहां जानेके पीछे असिपत्र पाती समीरण ॥३७॥ प्रवाहित होता है और उसके द्वारा उनके ऊपर वह सब खड्ग गिरते हैं, तब वह जलती हुई अग्निमें गिरते हैं॥३८॥और जीभ चाटते हुए भूमिमें गिरते हैं,तदन्तर वहां अति भयंकर कुत्ते उन रोते हुओंके शरीरके सब अंग छिन्न भिन्न करते हैं. हे तात!यह असिपत्रवन नामक नरकका विषय आपसे कहा॥३९॥४०॥

इसके पीछे इससे भी भयंकर तप्तकुम्भ नामक विषय वर्णन करता हूं, सुनिये । इस नरकके चारों ओर अग्निकी शिखा उठती रहती है ॥ ॥ ४१ ॥ जलती हुई अग्निसे तप्त तैल और लौहचूर्ण परिपूर्ण तप्तकुम्भ वर्तमान है, यमके दूत पापी मनुष्यको अधोमुख करके उसम डालते हैं ॥ ४२ ॥ जो धर्मशास्त्र और तीर्थोंको दूषित करते हैं, जो भुक्तभोग इष्टप्रिया शुभा स्त्रीको ॥ ४३ ॥ मूर्खतासे विना दोष देखे करते हैं, इस लोहकुम्भ नरकमें डाले जाते हैं ॥ ४४ ॥ उसी समय उनके देह फट जाते हैं और मज्जा जल सब उनका जल जाता है, इस प्रकार वे पकाये जाते हैं. उनके कपाल नेत्र और समस्त अस्थियें फूट जाती हैं और भयंकरतासे छिन्न किये जाते हैं ॥ ४५ ॥ और भयंकर

अतःपरंभीमतरंतप्तकुम्भंनिबोधमे ॥ समन्ततस्तप्तकुम्भावह्निज्वालासमावृताः ॥ ४१ ॥ ज्वलदग्निचयोत्तप्तास्तैलायश्चूर्णपूरिताः ॥ तेषुदुष्कृतकर्माणोयाम्यैःक्षिप्तास्त्वधोमुखाः ॥ ४२ ॥ दूषयेद्धर्मशास्त्राणियेचान्येतीर्थदूषकाः ॥ भुक्तभोगांतुयोनारीमिष्यमाणांप्रियांशुभाम् ॥ ४३ ॥ अदृष्टामपिदोषेणत्यजतेमूढचेतनः ॥ तेसमानीयपच्यंतेलोहकुम्भेषुशीघ्रतः ॥ ४४ ॥ क्वाथ्यन्तेविस्फुटद्गात्राज्वलन्मज्जाजलाविलाः ॥ स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमानातिभीषणैः ॥ ४५ ॥ गृध्रैरुत्पाट्यमुच्छन्तेपुनस्तेष्वेववेगितैः ॥ पुनःसिमसिमायन्तेतैलेनैक्यंव्रजन्तिच ॥ ४६ ॥ द्रवीभूतैःशिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः ॥ ततोयाम्यैर्भटैराशुदर्वीघट्टनघट्टिताः ॥ ॥ ४७ ॥ कृतावर्तैर्महातैलेमथ्यन्तेपापकर्मिणः ॥ एषतेविस्तरेणोक्तस्तप्तकुम्भोमयापितः ॥ ४८ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेमहारौरवादिनरकाख्यानकथनंनामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ अहंवैश्यकुलेजातोजन्मन्यस्मात्तुसप्तमे ॥ समतीतेगवांरोधंनिपानेकृतवान्पुरा ॥ १ ॥

वेगवान् सब गृध्र उनको वहांसे उठाकर फिर उसमें डालते हैं और वह चुरते हुए तैलमें ऐक्यताको प्राप्त होते हैं ॥ ४६ ॥ मस्तक, गात्र, स्नायु, मांस, त्वक् और अस्थिके सहित द्रवीभूत होकर तैलके संग मिल जाते हैं फिर यमदूतगण उन पापात्माओंको दर्वी द्वारा कूटकर ॥ ४७ ॥ महातैलके गर्त में डालकर मथते हैं. हे पिता ! आपसे वह तप्तकुम्भ इत्यादि नरकोंका विषय विस्तारसहित मैंने वर्णन किया ॥४८॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥ पुत्रने कहा–हे तात ! इस जन्मसे सात जन्म पहिले मैंने वैश्यकुलमें जन्म

ग्रहण किया था, तब निपान (पौंसेरे) में गायोंकी गतिरोध की थी अर्थात् उनको जल नहीं पीने दिया था ॥ १ ॥ उसी कर्मके फलसे मैं भयंकर दारुण नरकमें गिरा, मैं जिस नरकमें गिरा था, वह अग्नि शिखामय और लोहेके मुखवाले पक्षियोंसे भरा था ॥ २ ॥ यंत्रनिपीडित पापियोंके शरीरसे निकले रुधिर प्रवाहकी वहां कीच रहती है और वह मारे जाते हुए दुष्कर्मियोंके उस नरकमें पड़नेसे उत्पन्न हुए आर्त्तनाद द्वारा व्याप्त था ॥ ३ ॥ मैंने वहां महातापकी पीड़ासे उत्तप्त प्याससे दुःखी होकर कुछ अधिक एकसौ वर्ष काटे थे ॥ ४ ॥ अकस्मात् एक दिन करम्भ बालुकावाले घड़ेके कुम्भ मध्यसे प्रसन्नता करनेवाली सुख शीतल पवन चलने लगी ॥ ५ ॥ उस

विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकंभृशदारुणम् ॥ संप्राप्तोऽग्निशिखापूर्णमयोमुखखगाकुलम् ॥ २ ॥ यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्द-मम् ॥ विक्रुष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ॥ ३ ॥ पात्यमानस्यमेतत्रसाग्रंवर्षशतंगतम् ॥ महातापार्त्तितप्तस्यतृष्णादाहा-न्वितस्य च ॥ ४ ॥ तत्राह्लादकरःसद्यःपवनःसुखशीतलः ॥ करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थेवैसमागतः ॥ ५ ॥ अकस्मादेवभोस्ता-तनररत्नंसमागतम् ॥ तत्सम्पर्कापशेषाणांनाभवद्यातनानृणाम् ॥ ममचापियथास्वर्गेस्वर्गिणांनिर्वृतिःपरा ॥ ६ ॥ किमेतदिति-चाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणैः ॥ दृष्टमस्माभिरासन्नंनररत्नमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ याम्यश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोऽशनिप्रभः ॥ पुरोदर्श-यन्मार्गमितएहीतिचब्रुवन् ॥ ८ ॥ ततस्तेजन्तवःसर्वेमत्वातद्दर्शनात्सुखम् ॥ ऊचुःप्रांजलयोभूपक्षणमात्रंस्थितोभव ॥ ९ ॥ त्वद्गात्रसंगीपवनोह्यस्माकंसुखकारकः ॥ ततोसौनरकाभ्याशेउपविष्टःकृपान्वितः ॥ १० ॥

पवनके स्पर्शसे मेरी और अन्यान्य नरकवासी प्राणीयोंकी यंत्रणा जाती रही. तब सभी स्वर्गस्थ स्वर्गवासियोंको समान परमानन्द अनुभवकरने लगे ॥ ६ ॥ फिर जब हमने "यह क्या है" इसप्रकार कहा प्रसन्नतासे उत्पन्न आश्चर्य और स्थिर नेत्रोंसे इधर उधर देखा, वैसेही निकटवर्ती एक अनुत्तम मनुष्यरत्न हमको दिखाई दिया ॥ ७ ॥ और यह भी देखा कि, एक भयंकर वज्र तुल्य दण्ड हाथ में लिये यमदूत "इधर आओ" कह कर मार्ग दिखाता है ॥ ८ ॥ तब वह सब प्राणी उसके दर्शनका सुख मान हाथ जोड़कर बोले आप यहाँ क्षणमात्रको ठहरिये ॥ ९ ॥ तुम्हारे गात्रका संगी पवन हमको सुखकारक है, तब वह कृपा करके समीप स्थित हुए ॥ १० ॥

अनन्तर उस पुरुषने सैकडों दुखोंसे पूर्ण नरक देखकर कृपाभरे चित्तसे यमदूतों से कहा॥११॥ पुरुष बोला—हे यमपुरुषो ! शीघ्र कहो, मैंने ऐसा क्या पाप किया है? जिस पापसे मैं इस अत्यन्त भयंकर यातनामय नरकमें आयाहूं ॥१२॥ क्योंकि मैं पितृकुलमें विपश्चित् अर्थात् पंडित कहकर विख्यात था, इसी कारण विदेहराज्यमें उत्कृष्ट प्रजापालक हुआ था ॥ १३ ॥ मैंने धर्मपूर्वक चारों वर्णोंकी रक्षा की है और मनुके समान सब धर्मपूर्वक किया ॥ १४ ॥ मैंने अनेक यज्ञोंका अनुष्ठान किया है और धर्मानुसार पृथ्वीपालन की है, मैंने कभी संग्राम परित्याग नहीं किया और मेरे निकटसे कभी अतिथि विमुख नहीं हुआ ॥ १५ ॥ मैंने पितृ, देवता, ऋषि वा सेवकोंको भी दुःखी नहीं किया, महातापसे तप्त और

पुरुषःसतदादृष्ट्वायातनाशतसंकुलम् ॥ नरकंप्राहतंयाम्यंकिङ्करंकृपयान्वितः ॥ ११ ॥ पुरुषउवाच ॥ भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिंमया दुष्कृतंकृतम् ॥ येनेदंयातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम् ॥ १२ ॥ विपश्चिदितिविख्यातोजनकानामहंकुले ॥ जातोविदेहविषयेसम्य क्मनुजपालकः ॥ १३ ॥ चातुर्वर्ण्यंस्वधर्मस्थंकृत्वासंरक्षितंमया ॥ धर्मतोधर्मकल्पेनमनुनात्रयथापुरा ॥ १४ ॥ यज्ञैर्मयेष्टंबहुभिर्ध र्मतः पालितामही ॥ नोत्सृष्टश्चैवसंग्रामोनातिथिर्विमुखोगतः ॥ १५ ॥ पितृदेवर्षिभृत्याश्चनचापचरितामया ॥ महातापार्तिततस्य तृष्णादाहार्दितस्यच ॥ १६ ॥ सर्वस्यजीवभूतस्यकृतंत्राणंसदामया ॥ कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभवादिषु ॥ १७ ॥ पर्व कालेषुपितरस्तिथिकालेषुदेवताः ॥ पुरुषंस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनवः ॥ १८ ॥ यतस्तेविमुखायान्तिनिःस्वस्यगृहमेधिनः ॥ तस्मादिष्टश्चपूर्तश्चधर्मौद्वावपिनश्यतः ॥ १९ ॥ पितृनिस्वासविध्वस्तंसप्तजन्मार्जितंधनम् ॥ त्रिजन्मप्रभवंदैवोनिश्वासोहन्त्य संशयम् ॥ २० ॥

तृष्णादाहसे व्याकुल ॥ १६ ॥ सब प्राणियोंकी मैंने सदा रक्षा की है, पराये धन वा पराई स्त्रीमें मेरी स्पृहा नहीं थी ॥ १७ गायें जिसप्रकार निपान अर्थात् पौसेरेमें आतीं हैं, इसीप्रकार पर्वकालमें मेरे निकट पितृगण और तिथिकालमें देवतागण आते थे ॥ १८ ॥ देवता वा पितृ जिस गृहस्तके निकटसे विमुख जाते हैं, उसके यज्ञ वा पूर्त्त दोनों धर्मोंका नाश होता है ॥ १९ ॥ पितरोंके निराश होनेसे सात जन्मका पुण्य नष्ट होता है और देवताके निराश होनेसे तीन जन्मका संचित पुण्य नष्ट होता है, इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥

इसी कारण मैं देवता और पितरोंके कार्यमें सदा तत्पर था, तो फिर किस निमित्त इस अत्यन्त दारुण नरकमें प्राप्त हुआ हूँ ॥ २१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! मैं उस समय सुनने लगा कि, उस महात्माके इस प्रकार पूँछनेपर यमपुरुषने अत्यन्त भयंकर होनेपरभी नम्र वचनसे उत्तर दिया ॥ १ ॥ यमदूत बोला—हे महाराज ! आप जो कहते हैं, वह सत्य है, इसमें संशय नहीं किन्तु हे महाशय ! आपने अति सामान्य पाप किया है, वह आपको स्मरण कराता हूं ॥ २ ॥ विदर्भदेशोत्पन्न पीवरी नामक जो आपकी एक पत्नी थी; पूर्वमें उसके ऋतुमती होनेपर आपने उसकी ऋतुको विफल किया था ॥ ३ ॥ क्योंकि

तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेवहितोऽभवम् ॥ सोऽहंकथमिमंप्राप्तोनरकंभृशदारुणम ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेत्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ इतिपृष्टस्तदातेनशृण्वतांनोमहात्मना ॥ उवाचपुरुषोयाम्योघोरोऽपिप्रश्रितंवचः ॥ १ ॥ ॥ यमकिङ्करउवाच ॥ महाराजयथात्थत्वंतथैतन्नात्रसंशयः ॥ किन्तुस्वल्पंकृतंपापंभवतास्मारयामितत् ॥ २ ॥ वैदर्भीतवयापत्नीपीवरीनामनामतः ॥ ऋतुमत्याऋतुर्वन्ध्यस्त्वयातस्याःकृतःपुरा ॥ ३ ॥ सुशोभनायांकैकेय्यामासक्तेनततोभवान् ॥ ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तोनरकंघोरमीदृशम् ॥ ४ ॥ होमकालेयथावह्निराज्यपातमवेक्षते ॥ ऋतौप्रजापतिस्तद्वद्बीजपातमवेक्षते ॥ ५ ॥ यस्तमुल्लंघ्यधर्मात्माकामेष्वासक्तिमान्भवेत् ॥ सतुपित्र्याद्दणात्पापमवाप्यनरकंपतेत् ॥ ६ ॥ एतावदेवतेपापंनान्यत्किञ्चनविद्यते ॥ तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ॥ एतच्छ्रुत्वातुराजर्षिःकृपयाजनकोब्रवीत् ॥ ७ ॥

आप उस समय केकयदेशकी उत्पन्न हुई सुशोभनाके प्रति अत्यन्त आसक्तचित्त थे, अत एव ऋतुका व्यतिक्रम होनेसे आप इस घोरनरकमें प्राप्त हुए हैं ॥ ४ ॥ अग्नि जिस प्रकार होमकालमें आहुतिकी आकांक्षा करता है, इसीप्रकार प्रजापति ऋतुकालमें उस बीजपातकी अभिलाषा करते रहते हैं ॥ ५ ॥ जो धर्मात्मा पुरुष इसको उल्लंघन करके अन्यके प्रति कामासक्तचित्त होते हैं उनको पितरोंके ऋणसे पापरूपी कीचड़में लिप्त होकर नरकमें गिरना पडता है ॥६॥ हे महाराज! आपने केवल यही पाप किया है, इसके अतिरिक्त आपका और कोई पाप नहीं है अत एव हे पार्थिव ! आओ, समस्त पुण्यका फल भोगनेके लिये चलो यह सुनकर वह राजर्षि कृपापूर्वक बोले ॥ ७ ॥

राजाने कहा हे देवानुचर ! तुम जहां लेजाओगे मैं वहीं जाऊंगा किंतु मैं जो कुछ पूँछता हूँ, इसका ठीक ठीक उत्तर दो ॥ ८ ॥ हे यमकिंकर ! यह वज्रतुण्ड कौवे इन पुरुषोंके नेत्र हरण करते हैं, किंतु उनके नेत्र फिर वारम्वार उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥ इन्होंने किस निन्दित कार्यका अनुष्ठान किया है. देखो-इनकी जीभ हरी जाकर भी फिर नवीन उत्पन्न होती है ॥ १० ॥ यह किस लिये करपत्रकी मार खाकर अत्यन्त दुःख भोगते हैं ? और तप्त वालू तथा खौलते हुए तेलमें भुन रहे हैं ? ॥ ११ ॥ किस लिये लौहमुख पक्षियोंके आकर्षण करनेपर देहबंधन छिन्न होनेकी पीड़ासे पीडित हो कर बड़े शब्दसे चिल्लाते हैं ? ॥ १२ ॥ और, पक्षियोंके लोहमय तुण्डाघातसे

राजोवाच ॥ ॥ यास्यमिदेवानुचरयत्रत्वंमांनयिष्यसि ॥ किंचित्पृच्छामितन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ॥ ८ ॥ वज्रतुण्डास्त्वमीकाकाःपुंसांनयनहारिणः ॥ पुनःपुनश्चनेत्राणितद्देषांभवन्तिहि ॥ ९ ॥ किंकर्मकृतवन्तश्चकथयैतज्जुगुप्सितम् ॥ हरन्त्येषांतथाजिह्वांजायमानांपुनर्नवाम् ॥ १० ॥ करपत्रेणपाट्यन्तेकस्मादेतेऽतिदुःखिताः ॥ करम्भवालुकास्थाश्चतथैतेक्वाथतैलगाः ॥ ११ ॥ अयोमुखैःखगैश्चैवकृष्यन्तेकिंविधावद ॥ विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ॥ १२ ॥ अयश्चंचूनिपातेनसर्वाङ्गक्षतविक्षतः ॥ किमेतेनिःस्वनन्तोपितुद्यन्तेऽहर्निशंनराः ॥ १३ ॥ एताश्चान्याश्चदृश्यन्तेयातनाःपापकर्मिणाम् ॥ येनकर्मविपाकेनतन्ममोद्देशतोवद ॥ १४ ॥ यमकिङ्करउवाच ॥ यन्मांपृच्छसिभूपालमापकर्मफलोदयम् ॥ तत्तेऽहंसंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणयथातथम् ॥ १५ ॥ पुण्यापुण्येहिपुरुषःपर्यायेणसमश्नुते ॥ भुञ्जतश्चक्षयंयातिपापंपुण्यमथापिवा ॥ १६ ॥

सर्वाङ्ग क्षत विक्षत होकर दारुण यंत्रणा भोगते हैं इन मनुष्योंने कैसे पापका आचरण किया है जो रातदिन ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ? ॥ १३ ॥ और भी देखता हूं कि, पापात्मागण ऐसी तथा अन्य प्रकारकी नाना यंत्रणा भोगते हैं. हे यमकिंकर यह दुःख किस कर्मके फल उपस्थित हुए हैं ? सो आद्योपान्त मुझसे वर्णन करो ॥ १४ ॥ यमकिंकरने कहा—हे भूपाल ! पापकर्मके फलोदय विषयमें जो आपने पूछा, वह संक्षेपसे आपके निकट यथावत् वर्णन करताहूं ॥ १५ ॥ पुरुष क्रमानुसार ही पुण्य पाप भोगते हैं और भोगनेसेही पुण्य वा पापका क्षय होता है ॥ १६ ॥

भोगे विना पुण्य वा पाप कोई भी मनुष्यके शुद्धिविधानमें समर्थ नहीं होता और भोग होनेसे वह शीघ्रही क्षय होजाता है. हे राजन् ! सुनो पुण्य पाप भोगा जानेपर ही मनुष्यको छुटकारा मिलता है, तिनमें जो पापात्मा हैं वही दरिद्री होते हैं और दुर्भिक्ष, क्लेशसे क्लेश, भयसे भय और मृत्यु प्राप्त करते हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥ कर्मबंधनसे प्राणी नाना प्रकारकी गति भोगते हैं, उत्सवसे उत्सव, स्वर्गसे स्वर्ग और सुखपर सुख पाते हैं ॥१९॥ जो कि; श्रद्धावान्,शान्तचित्त, धनदाता और सुखकारी हैं । और पापीपुरुष व्याल और कुंजरादिके द्वारा दुर्गम तथा सर्प और चोर इत्यादिके भयसे युक्त स्थानमें ॥ २० ॥ पापसे हत हुए गमन करते हैं. इसके अतिरिक्त उनकी और दूसरी क्या गति होसकती है. और

नतुभोगादृतेपुण्यंपापंवाकर्ममानवः॥ परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिबोधमे ॥ १७ ॥ दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षंक्लेशात्क्लेशंभयाद्भयम् ॥ मृतेभ्यःप्रमृतायान्तिदरिद्राःपापकर्मिणः ॥ १८ ॥ गतिंनानाविधांयान्तिजन्तवःकर्मबन्धनात् ॥ उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गात्स्वर्गंसुखात्सुखम्॥ १९ ॥ श्रद्दधानाश्चदान्ताश्चधनदाःशुभकारिणः ॥ व्याघ्रकुंजरदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ॥ २० ॥ हताःपापेनगच्छन्तिपापिनःकिमतःपरम् ॥ सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ॥ २१ ॥ स्तूयमानाःसदायान्तिपुण्यैःपुण्याटवीष्वपि ॥ अनेकशतसाहस्रजन्मसंचयसंचितम्॥ २२ ॥ पुण्यापुण्यंनृणांतद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम्॥ यथाबीजंहिभूपालपयांसिसमवेक्षते ॥२३॥ पुण्यापुण्येतथाकालदेशान्यकर्मकारकम्॥स्वल्पंपापंकृतंपुंसांदेशकालोपपादितम्॥२४॥ पादन्यासकृतंदुःखंकण्टकोत्थं प्रयच्छति ॥ तत्प्रभूततरंस्थूलशंकुकीलकसम्भवम्॥२५॥दुःखंयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम्॥अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम्॥२६॥

सुगंधित माला, अच्छे वस्त्र, यान और भोजनको ॥ २१ ॥ अपने पुण्योंके बलसे महात्मा प्राप्त करते हैं वे स्तुतिको प्राप्त हुए सदा पवित्रस्थानोंमें आते हैं. अनेक सैकडों हजार जन्मोंमें संचय किये हुए ॥ २२ ॥ जो पुण्य पाप प्राणी इकट्ठा करते हैं; हे भूपाल ! वही उनके सुख दुःखके अंकुररूपमें उत्पन्न होता है, समस्त बीज जिसप्रकार जलकी अपेक्षा करते हैं ॥ २३ ॥ पुण्य पापभी इसीप्रकार काल, देश और पात्रकी अपेक्षा करते हैं. यदि पुरुषने देश कालमें स्वल्पमात्र पापभी किया हो तो ॥ २४ ॥ चरण रखनेमात्रसे कंटकजनित सामान्य दुःख ही अनुभव करता है, और बहुत पापोंका आचरणकरनेसे उसको शूल कीलकादिसे उत्पन्न ॥ २५ ॥ शिरोरोगादि दारुण

दुःसह दुःख भोगना पड़ता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत उष्ण, श्रम, तापआदिका करनेवाला है॥२६॥तैसेही फलोत्पत्तिके समयमें सब पाप परस्प रकी अपेक्षा करते हैं. इसीप्रकार महापापका आचरण करनेसे भी दीर्घ रोगादि विकार होते हैं॥२७॥शस्त्र वा अग्निकी महापीड़ा वा बंधनादि समस्त फल भोगने पड़ते हैं और खेलके मिस अत्यन्त थोड़े पुण्यका भी अनुष्ठान करनेसे सुन्दर गंध॥२८॥सुखमय स्पर्श, मधुर शब्द, मिष्टरस और सुंदर रूप अल्पकाल भोगनेमें समर्थ होता है और भारी पुण्यका अनुष्ठान करनेपर कालक्रमसे इन सबकी अपेक्षा, अधिक फल लाभ होता है॥२९॥ इसप्रकार पाप पुण्यसे उत्पन्न हुए सुख दुःख भोगता हुआ संसारमें पड़ता है॥३०॥ जाति और देशादि द्वारा अवरुद्धज्ञान और अज्ञानका समस्त

तथान्योन्यमपेक्षन्तेपापानिफलसङ्गमे ॥ एवंमहान्तिपापानिदीर्घरोगादिकाःक्रियाः ॥२७॥ तद्वच्छस्त्राग्निकृच्छ्रार्तिबन्धनादिफलायवै॥ स्वल्पंपुण्यंशुभंगन्धंहेलयासम्प्रयच्छति ॥२८॥ स्पर्शंवाप्यथवाशब्दंरसंरूपमथापिवा ॥ चिराद्धुरुतरंतद्वन्महान्तमपिकालजम् ॥२९॥ एवंचसुखदुःखानिपुण्यापुण्योद्भवानिवै ॥ भुञ्जानोऽनेकसंसारसम्भवानीहतिष्ठति ॥३०॥ जातिदेशावरुद्धानिज्ञानाज्ञानफलानिच ॥ तिष्ठन्तितत्रपृक्तानिलिङ्गमात्रेणचात्मनि ॥३१॥ कर्मणामनसावाचानकदाचित्कचिन्नरः ॥ अकुर्वन्पापकंकर्मपुण्यंवाप्यवतिष्ठते ॥३२॥ यद्यत्प्राप्नोतिपुरुषःसुखंदुःखमथापिवा ॥ प्रभूतमथवास्वल्पंविक्रियाकारिचेतसः ॥३३॥ तावतातस्यपुण्यंवापापंवाप्यथचेतरत्॥३४॥ उपभोगात्क्षयंयातिभुज्यमानमिवाशनम् ॥ एवमेतेमहापापंयातनाभिरहर्निशम् ॥३५॥ क्षपयन्तिनराघोरंनरकान्तर्निवर्तिनः ॥ तथैव-राजन्पुण्यानिस्वर्गलोकेमरैःसह ॥३६॥ गन्धर्वसिद्धाप्सरसांगीताद्यैरुपभुंजते ॥ देवत्वेमानुषत्वेचतिर्यक्त्वेचशुभाशुभम् ॥ ३७ ॥

फल आत्मामें चिह्नरूपसे स्थिति करता है॥३१॥कर्म, मन, वचनसे कभी कोई पाप वा पुण्य कर्म किये बिना फल नहीं पाता है॥३२॥पुरुष यह जो कुछ सुख वा दुःख पाता है, थोड़ा या बहुत यह सब चित्तका विकार है ॥ ३३ ॥ वह उतनाही पाप पुण्यका फल पाता है ॥ ३४ ॥ जैसे भोजन किया हुआ अन्न उपभोगसेही क्षय होता है, इसी प्रकार रातदिन पाप भोगे बिना नहीं मिटता है ॥ ३५ ॥ हे राजन् ! इस प्रकारही नरकके भीतर रहकर मनुष्य यातनासे घोर महापापका क्षय करते हैं और स्वर्गवासी मनुष्यभी इसी प्रकार देवताओंके संग मिलकर पुण्य भोगते हैं ॥ ३६ ॥ सिद्ध, गंधर्व और अप्सराओंके गीतादि द्वारा सब पुण्य भोगते हैं देवता मनुष्य

वा पक्षियोनि प्राप्त करकेभी शुभ अशुभ ॥३७॥ पुण्य, पापजनित सुखदुःखमय शुभाशुभ भोगते हैं. हे राजन् ! आपने जो पूँछा कि, पापात्मा किस किस पापके करनेसे ऐसी यातना भोगते हैं ॥ ३८ ॥ अब मैं इसीका पूरा वर्णन करताहूं, जिस पापसे जो होता है जिन नराधमोंने दुष्ट नेत्रोंसे पराई स्त्रीको देखा है ॥३९॥ वा दुष्ट मन और स्पृहावाले नेत्रोंसे पराये द्रव्यको देखाहै यहां वज्रतुण्डवाले पक्षी उनकेही दोनों नेत्र हरण करते हैं ॥४०॥ और वारंवार वही नेत्र फिर उत्पन्न होते हैं. इन नरोंने जितने पलक लगनेमें इन सब पापोंका आचरणकिया है ॥ ४१ ॥ हे राजन् ! उतनेही हजार वर्ष यह इस प्रकारकी नेत्रपीड़ा अनुभव करेंगे । जिन्होंने शत्रुकीभी ज्ञानदृष्टि विनाश करनेके लिये अन्यायरीतिसे

पुण्यपापोद्भवंभुंक्तेसुखदुःखोपलक्षणम्॥यत्त्वंपृच्छसिमांराजन्यातनाःपापकर्मिणाम॥३८॥केनकेनेतिपापेनतत्तेवक्ष्याम्यशेषतः॥ दुष्टेन चक्षुषादृष्टाःपरदारानराधमैः ॥३९॥ मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यंचसस्पृहैः ॥ वज्रतुंडाःखगास्तेषांहरंत्येतेविलोचने ॥४०॥ पुनःपुनश्चसंभूति रक्ष्णोरेषांभवत्यथ ॥ यावतोऽक्षिनि मेषांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम्॥४१॥ तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रार्तिप्राप्नुवंत्युत ॥ असच्छास्त्रोपदेशास्तुयै र्दत्तायैश्चमंत्रिताः॥४२॥सम्यग्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपि मानवैः ॥ यैःशास्त्रमन्यथाप्रोक्तंयैरसद्वाग्गुदाहृता ॥४३॥ वेददेवद्विजातीनांगु रोर्निन्दाचयैःकृता॥हरंतितेषांजिह्वाश्चजायमानाःपुनःपुनः॥४४॥तावतोवत्सरानेतेवज्रतुंडाःसुदारुणाः ॥ मित्रभेदंतथापित्रापुत्रस्यस्वज नस्यच॥४५॥यज्ञोपाध्याययोर्मात्रासुतस्यसहचारिणः ॥ भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदंचक्रुर्नराधमाः॥४६॥तइमेपश्यपाट्यंतेकरपत्रेणपा र्थिव॥परोपतापकायेचयेचाह्लादनिषेधकाः॥४७॥तालवृंतानिलस्थानचंदनोशीरहारिणः॥प्राणान्तिकंददुस्तापमदुष्टानांचयेऽधमाः ॥४८॥

शास्त्रोपदेश, वा खोटी परामर्श दी है, जिन्होंने सब शास्त्रोंकी विपरीत व्याख्या करीहै, जिन्होंने मिथ्या बातें कहीं हैं ॥ ४२ ॥४३॥ जिन्होंने वेद, देवता, ब्राह्मण और गुरुजनोंकी निन्दा की है, यह वज्रतुण्डवाले दारुण पक्षी उनकीही वारम्वार उत्पन्न हुई जीभको छेदन करते हैं उन्होंने जितनी बार ऐसा पाप किया है यह वज्रतुण्ड समस्त पक्षी उनको उतनेही वर्ष ऐसी यंत्रणा देते हैं. जिन्होंने मित्रभेद पितापुत्रभेद किया है ॥४४॥४५॥ वा यज्ञकर्ता और उपाध्यायमें माता तथा पुत्रमें पति और पत्नीमें जो नराधम भेद कराते हैं ॥४६॥ हे राजन् ! देखो वही इस करपत्रकी मार खाते हैं।जो दूसरेको क्रोध उत्पन्न करातेहैं जो दूसरेकी प्रसन्नता नष्ट करतेहैं ॥४७॥जो ताड़का पंखा चन्दन और खस हरण

करते हैं और जो अधम साधुओंको प्राणान्तिक ताप देते हैं ॥ ४८ ॥ वही पाप भागी अधम इस तपे हुए रेतमें गिरकर पापका फल भोगते हैं। जो मनुष्य और के श्राद्धमें न्यौते जाकर और के भोजन करते हैं ॥ ४९ ॥ अर्थात् दैव वा पितृकार्यमें एकका निमंत्रण स्वीकार करके अन्यका श्राद्ध भोजन करते हैं ॥ ५० ॥ तो निर्भय हुए पक्षीगण उनकोही व्यथित करते हैं जो वचन मनसे असत्य बात बनाकर किसीकी चुगली करते हैं ॥ ५१ ॥ उनकी जीभ इस तेज छुरीसे दो खंड करी जाती है। जो मत्त होकर माता पिता और गुरुजनोंका निरादर करते हैं ॥५२॥ वही इस पीव, विष्ठा और मूत्रसे भरे कुण्डमें नीचेको मुख करके डाले जाते हैं. देवता, अतिथि, सेवक अभ्यागत ॥ ५३ ॥ पितृगण, अग्नि

करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः ॥ भुङ्क्तेश्राद्धंतुयोऽन्यस्यनरोन्येननिमंत्रितः ॥४९॥ दैवेवाप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेखगैः ॥ मर्माणियस्तुसाधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥५०॥ तामिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ॥ यःकरोतिचपैशुन्यमन्यवागन्यथामतिः॥५१॥पाट्यतेहिद्विधाजिह्वातस्ययेत्थंनिशितैःक्षुरैः॥मातापित्रोर्गुरूणांचयेऽवज्ञांचक्रुरुद्धताः॥५२॥तइमेपूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः ॥ देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच॥५३॥ अभुक्तवत्सुयेऽश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ॥ दुष्टास्तेपूयनिर्यासभुजःसूचीमुखास्तुते ॥५४॥ जायन्तेगिरिवर्ष्माणःपश्यैतेयादृशानराः ॥ एकपंक्त्यातुयेविप्र मथवेतरवर्णजम्॥५५॥विषमंभोजयन्तीहविड्भुजस्तइमेयथा ॥ एकसार्थप्रयातंयेनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् ॥५६॥ अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः॥गोब्राह्मणाग्नय स्पृष्टायैरुच्छिष्टैर्नरेश्वर॥५७॥ तेषामेतेऽग्निकुण्डेषुप्रज्वलत्स्वाहिताःकराः ॥ सूर्येन्दुतारकादृष्टायैरुच्छिष्टैस्तुकामतः ॥ ५८ ॥

और पक्षियोंके भूखा रहते जो दुष्ट लोग भोजन करतेहैं, वही सूचीमुख होकर पीव और गोंदका भोजन करते हैं ॥ ५४ ॥ और उनका देह पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण वा अन्य जातिको एक पंक्तिमें बैठाकर ॥ ५५ ॥ विषमभोजन अथात् परस्परको असमानभावसे भोजन कराते हैं, वह इसकी विष्ठा भोजन करते हैं। जो व्यापारके लिये एकत्र जाते हुए अपने संगी धनहीन याचकको ॥५६॥ छोडकर अपने आप अन्न भोजन करते हैं, यह वही यहां इसप्रकार कफका भोजन करते हैं। हे नरेश्वर ! जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें गौ, ब्राह्मण वा अग्निको स्पर्श किया है ॥ ५७ ॥ उनके वह हाथ अग्नि कुण्डमें गिरकर जलते हैं जिन्होंने उच्छिष्ट अवस्थामें अपनी इच्छासे सूर्य, चन्द्र, वा तारोंको

देखा है ॥ ५८ ॥ यह यमदूत उन्हींके नेत्रपर अग्निको रखते हैं. जिन्होंने गौ, अग्नि, माता, ब्राह्मण बड़े भाई, पिता, बहन ॥ ५९ ॥ कुलबहन,गुरु अथवा बूढे ब्राह्मणको पैरसे स्पर्श किया हो, उनकेही पैर अग्निसे तपी हुई लोहेकी बेड़ियोंमें बाँधे गये हैं ॥६०॥ और जंघातक अंगारोंके ढ़ेरमें खड़े हुए हैं, जिन पापात्माओंने खीर कृशर (खिचड़ी) छाग और जिस किसी देवान्नको॥६१॥ विना संस्कार किये भोजन किया है, उन्हीं पापात्माओंके नेत्र यह पृथ्वीमें उखाडकर डाले गये यह दीख रहे हैं ॥६२॥और दंशनकारी यमदूतोंके मुखमें आकर्षित होते हैं। जो नराधम गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदकी ॥ ६३ ॥ निन्दा सुनकर पुष्टि करते हैं, यमपुरुष अग्निवर्षक लोहेकी कीली वारम्वार ॥ ६४ ॥

तेषांयाम्यैर्नरैर्नेत्रेन्यस्तोवह्निःसमिध्यते ॥ गावोऽग्निर्जननीविप्रोज्येष्ठभ्रातापितास्वसा ॥ ५९ ॥ जामयोगुरवोवृद्धायैःस्पृष्टास्तुपदा नृभिः ॥ बद्धांघ्रयस्तेनिगडैर्लोहैरग्निप्रतापितैः ॥ ६० ॥ अंगारराशिमध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ॥ पायसंकृसरंछागंदेवान्नानि चयानिवै ॥ ६१ ॥ भुक्तानियैरसंस्कृत्यतेषांनेत्राणिपापिनाम् ॥ निपातितानांभूपृष्ठेउद्वृत्ताक्षिनिरीक्षताम् ॥ ६२ ॥ सन्दंशैःपश्य कृष्यन्तेनरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ॥ गुरुदेवद्विजातीनांवेदानांचनराधमैः ॥ ६३ ॥ निन्दानिशामितायैश्चपापानामभिनन्दताम् ॥ तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनःपुनः ॥ ६४ ॥ कर्णेषुपूरयन्त्येतेयाम्याविलपतामपि ॥ यैःप्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाःशुभाः ॥ ६५ ॥ भङ्क्त्वाविध्वंसमानीताःक्रोधलोभानुवर्त्तिभिः ॥ तेषामेतैःशितैःशस्त्रैर्मुहुर्विलपतांत्वचः ॥ ६६ ॥ पृथक्कुर्वन्तिवैयाम्याः शरीरादतिदारुणाः ॥ गोब्राह्मणार्कमार्गास्तुयेऽवमेहन्तिमानवाः ॥ ६७ ॥ तेषामेतानिकृष्यन्तेगुदेनांत्राणिवायसैः ॥ दत्त्वाकन्यांय एकस्मैद्वितीयायप्रयच्छति ॥ ६८ ॥

विलाप करते हुए उन पापात्माओंके कानमें प्रवेश कराते हैं जिन्होंने देवता, ब्राह्मणका घर अथवा सभाको ॥ ६५ ॥ क्रोध वा लोभके वशीभूत हो तोडकर विध्वंस किया है, उन विलाप करनेवाले पापात्माओंकी त्वचा (चर्म) पैने शस्त्रोंसे ॥६६॥ अत्यन्त दारुण शरीवाले यमदूत देहसे पृथक करते हैं। जो मनुष्य गौ,ब्राह्मण और सूर्यके मार्गमें मलमूत्र त्याग करते हैं ॥ ६७ ॥ उन पापात्माओंकी सब आंतें कौवे गुह्यद्वारसे खेंचते हैं। जो पुरुष एक बार किसी मनुष्यको कन्यादान करके वही फिर किसी दूसरे मनुष्यको देते हैं ॥ ६८ ॥

उनको इस प्रकार खंड करके रक्षा (खारी) नदीमें बहादिया जाता है। जो मनुष्य औरोंको छोडकर अपना ही पोषण करते हैं ॥ ६९ ॥ दुर्भिक्ष वा किसी प्रकारके संभ्रममें जो अकिंचन पुत्र, सेवक, कलत्रादि और बंधुवर्गको त्याग देते हैं, यमदूत ॥ ७० ॥ उनका मांस काट काट कर उन्हींके मुखमें डालते हैं, और भूखके मारे वह उसेही इस प्रकार भोजन करते हैं। जो लोभके वशीभूत हो वृत्तिपानेवाले वा शरणागत मनुष्योंको त्यागते हैं ॥ ७१ ॥ यमदूत उनको ही ऐसी यंत्रपीडासे पीड़ित करते हैं। जो मनुष्य संपूर्ण जन्मोंका किया हुआ पुण्य किसी के हाथ बेचते हैं अर्थात् मूल्य लेकर अपने अनुष्ठानका फल बेच डालते हैं ॥ ७२ ॥ वह इन पापात्माओंके समान पत्थरके कोल्हूमें पीसे जाते हैं। जो किसीकी

सत्त्वेवंनेकधाछिन्नःक्षारनद्यांप्रवाह्यते ॥ स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानवः ॥ ६९ ॥ पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धुवर्गमकिंचनम् ॥ दुर्भिक्षेसंभ्रमेवापिसोऽप्येवंयमकिंकरैः ॥ ७० ॥ उत्कृत्त्यदत्तानिमुखेस्वमांसान्यश्नुतेक्षुधा ॥ शरणागतान्यस्त्यजतिलोभादुत्को चजीविकः ॥ ७१ ॥ सोऽप्येवंयंत्रपीडाभिःपीडयतेयमकिंकरैः ॥ सुकृतंयेप्रयच्छन्तियावज्जन्मकृतंनराः ॥ ७२ ॥ तेपिष्यन्तेशिला पेषैर्यथैतेपापकर्मिणः ॥ न्यासापहारिणोबद्धाःसर्वगात्रेषुबन्धनैः ॥ ७३ ॥ कृमिवृश्चिककाकोलैर्भुज्यन्तेऽहर्निशंनराः ॥ क्षुत्क्षामा स्तृट्पतज्जिह्वातालवोवेदनातुराः ॥ ७४ ॥ दिवामैथुनिनःपापाःपरदारभुजश्चये ॥ तथैवकण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैःपश्यशाल्मलिम् ॥ ॥ ७५ ॥ आरोपिताविभिन्नांगाःप्रभूतासृक्स्रवाविलाः ॥ मूषायामपिपश्यैतान्ध्मायामानान्यमानुगैः ॥ ७६ ॥ पुरुषैःपुरुषव्याघ्रप रदारावमर्शिनः ॥ उपाध्यायमधःकृत्वास्तब्धोयोऽध्यायनंनरः ॥ ७७ ॥

धरोहर हरण करते हैं उनका सब शरीर बंधनमें बँधता है ॥ ७३ ॥ और उनको कृमि, बीछू, कांवे तथा उल्लू रातदिन भक्षण करते हैं और भूख प्याससे जिनकी जिह्वा और तालू सूखगया है ॥ ७४ ॥ जिन पापात्माओंने दिनमें स्त्रीगमन वा पराईस्त्रीसे भोग किया है, यह देखो, वह लौहमय तीक्ष्ण कांटोंसे युक्त शाल्मलि वृक्षमें ॥ ७५ ॥ आरोपित होरहे हैं उनके अंग भंग हो रहे हैं और बहुत सारा रुधिर टपकनेसे व्याकुल हो रहे हैं, यह देखो वह धौंकनीमें रखकर धौंकाये जाते हैं ॥ ७६ ॥ पुरुषव्याघ्र ! यह देखिये ! जिन्होंने पराई स्त्रीसे भोग किया है, उनकी यह दशा होती है। जो मनुष्य उपाध्यायको नीचे बैठाकर घमंडसे अध्ययन ॥ ७७ ॥

वा शिल्प ग्रहणकरते हैं वह पुरुष इसी प्रकार मस्तकपर शिलाका बोझ रखकर जनमार्गमें महा क्लेश भोगते हैं ॥ ७८ ॥ और बोझकी पीडासे व्यथित मस्तक हो अर्थात् मस्तकमें वेदना अनुभव कर भूख प्याससे दिनरात पीड़ित होते है। जिन्होंने जलमें मल मूत्र वा खखार डाली है ॥७९॥ वही इस कफ विष्ठा मूत्र और दुर्गंधि पूर्ण नरकमें गये हैं। और यह जो भूखसे कातर होकर परस्परका मांस भोजन करते हैं॥८०॥इन्होंने पूर्व कालमें परस्पर आतिथ्य विधानसे भोजन नहीं किया। जिन आहिताग्नि पुरुषोंने वेद और अग्निका अपमान किया है॥८१॥ वही इस पर्वतके शिखरसे बारम्वार नीचे गिराये जाते हैं जिन्होंने दूसरी बार व्याही हुई स्त्रीके पति होकर समस्त जीवन बिताया है ॥ ८२ ॥ वह कृमिरूपमें

गृह्णातिशिल्पमथवासोऽप्येवंशिरसाशिलाम् ॥ बिभ्रत्क्लेशमवाप्नोतिजनमार्गेऽतिपीडितः ॥ ७८ ॥ क्षुत्क्षामोऽहर्निशंभारपीडाव्यथित मस्तकः ॥ मूत्रश्लेष्मपुरीषाणियैरुत्सृष्टानिवारिणि ॥ ७९ ॥ तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धंनरकंगताः ॥ परस्परंचमांसानिभक्षय न्तिक्षुधान्विताः ॥ ८० ॥ भुक्तंनातिथ्यविधिनापूर्वमेभिःपरस्परम् ॥ अपविद्धास्तुयैर्वेदावह्नयश्चाहिताग्निभिः ॥ ८१ ॥ तइमे शैलशृंगाग्रात्पात्यन्तेऽधःपुनःपुनः ॥ पुनर्भूपतयोजीर्णायावज्जीवंतियेनराः ॥ ८२ ॥ इमेकृमित्वमापन्नाभक्ष्यंतेऽत्रपिपीलिकैः ॥ नीच प्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ॥८३॥ पाषाणमध्यकीटत्वंनरःसततमश्नुते ॥ पश्यतोभृत्यवर्गस्यमित्रस्याप्यतिथेस्तथा ॥८४॥ एकोमिष्टान्नभुग्भुंक्तेज्वलदंगारसंचयम् ॥ वृकैर्भयंकरैःपृष्ठं नित्यमस्योपभुज्यते ॥८५॥ पृष्ठमांसंनृपतेनयतोलोकस्यभक्षितम् ॥ अंधोऽथ बधिरोमूकोभ्राम्यतेत्रक्षुधातुरः ॥ ८६ ॥ अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारिषुवर्त्तते ॥ अयंकृतघ्नोमित्राणामपकारीसुदुर्मतिः ॥ ८७ ॥

परिणत होकर चींटियोंके द्वारा भक्षित होते हैं। जिसने नीच पुरुषका दान ग्रहण, यजन वा नित्य सेवा करी है ॥ ८३ ॥ वही पत्थरके भीतरका कीडा होता है। जो अतिथि, भृत्य और भाइयोंके देखते उनका निरादर कर ॥ ८४ ॥ अकेला मिष्टान्न भोजन करता है, उसको जलते हुए अंगारे भोजन करने पड़ते हैं और उनकी पीठके मांसको नित्य भयंकर भेडिये खाते हैं ॥ ८५ ॥ हे महाराज ! जिससे कि, इसने लोकोंके पृष्ठमांसको भक्षण किया था, अर्थात् पीछेमें बुराई की थी, वह यहां अंधे, बहरे, गूंगे होकर क्षुधासे भ्रमण कर रहे हैं ॥ ८६ ॥ इस नराधमने उपकार करनेवालेके प्रति कृतज्ञता प्रकाश नहीं करी यह दुर्मति कृतघ्न और मित्रोंका अपकारी है ॥ ८७ ॥

इसी कारण तप्तकुंभमें गिराया गया है और बड़ा विलाप करता है, इसके पीछे फिर पीसा जायगा, तदनन्तर तप्तवालू यंत्रमें पीडा भोगकर ॥ ८८ ॥ असिपत्र नरकमें तल्वारकी मार खायगा और फिर कालसूत्र नामक नरकमें छेदन किया जायगा, इस भाँति नाना प्रकारकी यातना भोगकर ॥ ८९ ॥ यह किस प्रकार इससे छुटकारा पावेंगे, सो मैं नहीं जानता । इन दुष्ट ब्राह्मणोंने परस्पर संघटित होकर श्राद्धभोजन किया था ॥ ९० ॥ इस कारण यह दुष्ट सर्पोंके सर्वाङ्गसे निकलते हुए फेन भोजन करते हैं । हे राजन् ! इस पुरुषने सुवर्ण चुराया है, इस पुरुषने ब्रह्महत्या करी है और इस पुरुषने मद्य पी है, इसने गुरुकी स्त्रीको हरणकिया है ॥ ९१ ॥ इस कारण यह चारों ओरसे जलती हुई अग्निमें

तप्तकुंभेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ॥ करंभवालुकांतस्मात्ततोयंत्रावपीडनम् ॥८८॥ असिपत्रवनंतस्मात्करपत्रेणपाटनम् ॥ काल सूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातनाः ॥८९॥ प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति ॥ श्राद्धेसंगतिनोविप्राःसमुपेत्यपरस्परम् ॥९०॥ दुष्टाहिनिःसृतंफेनंसर्वांगेभ्यःपिबंतिवै ॥ सुवर्णस्तेयीविप्रघ्नःसुरापोगुरुतल्पगः ॥९१॥ अधश्चोर्ध्वंचदीप्ताग्नौदह्यमानाःसमंततः ॥९२॥ तिष्ठंत्यब्दसहस्राणिसुबहूनिततःपुनः ॥ जायन्तेमानवाःकुष्ठक्षयरोगादिचिह्निताः ॥ ९३ ॥ मृताःपुनश्चनरकंपुनर्जाताश्चतादृशम् ॥ व्याधिमृच्छंतिकल्पांतपरिमाणंनराधिप ॥ ९४ ॥ गोघ्नोन्यूनतरंयातिनरकेऽथत्रिजन्मनि ॥ तथोपपातकानांससर्वेषामितिनिश्चयः ॥ ९५ ॥ नरकप्रच्युतायान्तियैर्यैर्विहितपातकैः ॥ प्रयांतियोनिजातानितन्मेनिगदतःशृणु ॥ ९६ ॥ इतिमा० पु० पितापुत्रसंवादेय मकिंकरसंवादेस्वकृतकर्मभुक्तिकथनंनामचतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

जलाये जाते हैं ॥९२॥ और फिर यह वहां हजारों वर्षतक रहते हैं. इसके पीछे कुष्ठ और क्षयरोगादिसे विहित मनुष्यदेह धारण कर ॥ ९३ ॥ प्राणपरित्यागपूर्वक फिर नरकमें गिरते हैं और वारम्वार इसीप्रकार जन्मग्रहण करते हुए कल्पान्तपर्यन्त व्याधि भोगा करते हैं ॥९४॥ गोहत्या वा अन्यान्य उपपातक करनेसे सबकोही क्रमानुसार तीन जनम निम्नतर नरक भोगना पड़ता है तथा और उपपातकोंमें भी ऐसाही होता है यह निश्चय है ॥ ९५ ॥ हे महाराज ! नरकमें पकड़कर पापी मनुष्य जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करते हैं, वह कहता हूं सुनिये ॥ ९६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकयां चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

यमदूतने कहा--पतित पुरुषसे अर्थ ग्रहणकरनेपर ब्राह्मण गधेकी योनिमें जन्म ग्रहण करता है और पतित पुरुषको यज्ञ करानेपर नरकसे छूटकर कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है ॥१॥ उपाध्यायके निकट छल प्रकाश करनेसे वा उसकी भार्या अथवा किसी वस्तुकी मनमें अभिलाषा करनेसे कुत्ता होकर जन्म ग्रहण करना पडता है ॥२॥ माता पिताका अपमान करनेसे गधा होता है और माता पिताको गाली देनेसे मैना होता है ॥३॥ जो पुरुष भाईकी पत्नीका अपमान करता है, वह कबूतर होता है और उसको पीडित करनेसे कछुएके रूपमें जन्म लेता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष स्वामीका पिण्ड भोजन करके उसके इष्टकी चेष्टा नहीं करता वह मोहाच्छन्न होकर मरनेके पीछे वानर योनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ ५ ॥

॥ यमकिङ्करउवाच ॥ पतितात्प्रतिगृह्याथखरयोनिंव्रजेद्द्विजः ॥ नरकात्प्रतिमुक्तस्तुकृमिःपतितयाजकः ॥ १ ॥ उपाध्यायव्यलीकंतु कृत्वाश्वाभवतिद्विजः ॥ तज्जायांमनसावाचातद्द्रव्यंवापिकामयेत् ॥२॥ गर्दभोजायतेजन्तुःपित्रोश्चाप्यवमानकः ॥ मातापितरावाक्रुश्य सारिकासम्प्रजायते ॥३॥ भ्रातुःपत्न्यवमन्ताचकपोतत्वंप्रपद्यते ॥ तावेवपीडयित्वातुकच्छपत्वंप्रपद्यते ॥४॥ भर्तृपिण्डमुपाश्नन्यस्त दिष्टंननिषेवते ॥ सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृतः ॥५॥ न्यासापहर्त्तानरकाद्विमुक्तोजायतेकृमिः ॥ असूयकश्चनरकान्मुक्तोभव तिराक्षसः ॥६॥ विश्वासहन्ताचनरोमीनयोनौप्रजायते ॥ धान्यंयवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणान् ॥ ७ ॥ कलायन्कलमा न्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ॥ सस्यान्यन्यानिवाहृत्वामोहाज्जन्तुरचेतनः ॥ ८ ॥ सञ्जायतेमहावक्त्रोमूषिकोबभ्रुसन्निभः॥ परदाराभि मर्शात्तुवृकोघोरोऽभिजायते ॥ ९ ॥ श्वासृगालोबकोगृध्रोव्यलःकङ्कस्तथाक्रमात् ॥ भ्रातृभार्यांचदुर्बुद्धिर्योधर्षयतिपापकृत् ॥१०॥

जो पुरुष किसीकी धरोहर हरण करता है, वह नरकके दुःखसे छूटकर कृमि होता है। और असूया करनेवाला पुरुष नरकके अन्तमें राक्षस योनिको प्राप्त होता है ॥ ६ ॥ विश्वासघातक मनुष्य मछलीकी योनीमें जन्म ग्रहण करता है. जो धान्य, यव, तिल, उरद, कुलथी, सरसों चने ॥ ७ ॥ कैना, मूंजी, मूंगा, गेहूँ, तीसी वा अन्यान्य धान्य हरण करता है, वह मोह द्वारा अचेतन हो ॥ ८ ॥ नोलेके समान दीर्घ मुख चूहा होकर जन्म ग्रहण करता है, पराई स्त्रीसे रमण करनेवाला भयंकर भेडिया होता है ॥ ९ ॥ और फिर क्रमानुसार कुत्ता, गीदड़, बगला, गृध्र, सर्प तथा कौवेकी योनिमें जन्म ग्रहण करना पड़ता है और जो पापात्मा दुर्बुद्धि भाईकी स्त्रीसे भोग करता है ॥ १० ॥

वह नरकके अन्तमें कोयल होता है। जो पापात्मा मित्रपत्नी वा राजपत्नीसे ॥ ११ ॥ रमण करते हैं, वह कामातम मनुष्य सूकररूपमें जन्म पाते हैं. यज्ञ दान वा विवाहमें विघ्न करनेसे कृमि होना पड़ता है ॥ १२ ॥ और जो मनुष्य दी हुई कन्या फिर किसी दूसरेको देता है, वह भी कृमिरूपमें जन्म ग्रहण करता है. जो मनुष्य देवता पितर ब्राह्मणको विना दिये अन्न भोजन करता है ॥ १३ ॥ वह मनुष्य नरककी यंत्रणा भोगकर कौवा होता है जो मनुष्य पिताके समान बड़े भाईका अपमान करता है ॥ १४ ॥ वह नरक भोगनेके पीछे क्रौञ्च योनिमें जन्म लेता है. शूद्र ब्राह्मणीमें गमन करनेसे कृमियोनिमें उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥ और उसके गर्भसे पुत्र उत्पन्न करनेपर काष्ठके भीतरका

पुंस्कोकिलत्वमाप्नोतिसचापिनरकाच्च्युतः ॥ सखिभार्य्यांगुरोर्भार्य्यांराजभार्य्यांचपापकृत् ॥ ११ ॥ प्रधर्षयित्वाकामात्मासूकरोजायतेनरः ॥ यज्ञदानविवाहानांविघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः ॥ १२ ॥ पुनर्दातातुकन्यायाःकृमिरेवोपजाते ॥ देवतापितृविप्राणामदत्वायोऽन्नमश्नुते ॥ १३ ॥ प्रमुक्तोनरकात्सोऽपिवायसःसम्प्रजायते ॥ ज्येष्ठंपितृसमंवापिभ्रातरंयोवमन्यते ॥ १४ ॥ नरकात्सोपिविभ्रष्टः क्रौंचयोनौप्रजायते ॥ शूद्रश्चब्राह्मणींगत्वाकृमियोनौप्रजायते ॥ १५ ॥ तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत् ॥ सूकरःकृमिकोमद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ॥ १६ ॥ अकृतज्ञोऽधमःपुंसांविमुक्तोनरकान्नरः ॥ कृतघ्नःकृमिकःकीटःपतङ्गोवृश्चिकस्तथा ॥ १७ ॥ मत्स्यस्तुवायसःकूर्मःपुल्कसोजायतेततः ॥ अशस्त्रंपुरुषंहत्वानरःसंजायतेखरः ॥ कृमिःस्त्रीवधकर्त्ताचबालहंताचजायते ॥ १८ ॥ भोजनंचोरयित्वातुमक्षिकाजायतेनरः ॥ तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यशृणुष्वतत् ॥ १९ ॥ हृत्वादुग्धंतुमार्जारोजायतेनरकाच्च्युतः ॥ तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नंहृत्वातुमूषकः ॥ २० ॥

कीट, सूकर, कृमि, मलका कीड़ा, वा चाण्डालयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ १६ ॥ और जो पुरुषोंमें अधम अकृतज्ञ तथा कृतघ्न है वह नरकसे छूटकर कृमि, कीट, पतंग, बिच्छू ॥ १७ ॥ मत्स्य, काक, कूर्म, वा डोम योनिमें जन्म ग्रहण करता है. शस्त्रविहीन किसी पुरुषको मारनेसे गधेके योनिमें जन्म होता है, स्त्रीका वध करनेवाला वा बालकका वध करनेवाला पुरुष कृमि होता है ॥ १८ ॥ भोजन चुरानेसे मक्खी होना पड़ता है, भोजनके विषयमें जो विशेष है वह कहताहूं, सुनिये ॥ १९ ॥ अन्न हरण करनेसे नरक भोगनेके पीछे बिल्ली होना पड़ता है,

तिल और दाना मिला हुआ अन्न हरण करनेसे चूहा होता है ॥ २० ॥ घृतका हरण करनेवाला नौला और छागमांस हरण करनेवाला पुरुष कौवा, तथा मृगमांसका हरण करनेवाला गिद्धयोनिमें जन्म ग्रहण करता है ॥ २१ ॥ लवणका चुरानेवाला पुरुष जलकाक और दधिका चुरानेवाला पुरुष कृमि होता है. और दूध हरण करनेसे बगलेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है ॥ २२ ॥ जो पुरुष तेल चुराता है वह तेली होता है, मधुका चुरानेवाला डाँस और पुडेका चुरानेवाला मनुष्य चीटीं होता है ॥ २३ ॥ हविष्यान्न चुरानेसे गृहगोधक अर्थात् गोय होता है और आसव चुरानेसे तीतर पक्षी होता है ॥ २४ ॥ जो मनुष्य लोहा चुराता है, वह पापात्मा कौवा होता है, किसीका पात्र चुरानेवाला

घृतंहृत्वातुनकुलःकाकोमद्गुरजामिषम् ॥ मत्स्यमांसापहृत्काकःश्येनोमेषामिषापहृत् ॥ २१ ॥ चिरीवाकस्त्वपहृतेलवणेदध्निवा कृमिः ॥ चोरयित्वापयश्चापिबलाकासंप्रजायते ॥ २२ ॥ यस्तुचोरयतेतैलंतैलपायीसजायते ॥ मधुहृत्वानरोदंशोऽपूपंहृत्वापिपिपा लिका ॥ २३ ॥ चोरयित्वाहविष्यान्नंजायतेगृहगोधिका ॥ आसवंचोरयित्वातुतित्तिरित्वमवाप्नुयात् ॥ २४ ॥ अयोहृत्वातुपापा त्मावायसःसंप्रजायते ॥ पात्रेकांस्येपिहारीतःकपोतोरौप्यभाजने ॥ २५ ॥ हृत्वातुकांचनंभांडंकृमियोनौप्रजायते ॥ कौशेयंचो रयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ॥ २६ ॥ कोशकारश्चकौशेयेहृतेवस्त्रेभिजायते ॥ दुकूलेशार्ङ्गकःपापोहृतेचैवांशुकेशुकः ॥ २७ ॥ ऋक्षश्चैवाविकंहृत्वावस्त्रंक्षौमंचजायते ॥ कार्पासिकेहृतेक्रौंचोवह्निहर्ताबकःखरः ॥ २८ ॥ मयूरोवर्णकान्हृत्वापत्रशाकंचजायते ॥ जीवञ्जीवकतांयातिरक्तवस्त्रापहृन्नरः ॥ २९ ॥

हारीत पक्षी और चांदीका पात्र चुरानेसे कबूतर होता है ॥ २५ ॥ सुवर्णके पात्र चुरानेसे कृमि होता है और रेशम चुरानेसे चकवेकी योनिमें उत्पन्न होना पडता है ॥ २६ ॥ कौशेय वस्त्र हरण करनेसे कोशकार अर्थात् चांदी सोनेका शिक्का बनानेवाला होता है और जो पापी दुपट्टा चुराता है, वह मोर अंकुशका चुरानेवाला तोता ॥ २७ ॥ ऊनी और अलसीके वस्त्र चुरानेवाला ऋक्ष, कपास चुरानेवाला क्रौंच और अग्निका चुरानेवाला बगला वा गधा होता है ॥ २८ ॥ जो पुरुष वर्णक (पीसे हुए सुगंधित द्रव्य चोवा चंदन अर्गजादि)वा शाकपत्र अर्थात् शोभाञ्जन चुराता है, वह मोर होता है और लाल वस्त्र चुरानेवाले मनुष्यको चकवा चकवीकी योनि प्राप्त होती है ॥ २९ ॥

सुंदर गंध द्रव्यका चुरानेवाला छुच्छुन्दरी होता है, वस्त्र चुरानेवाला खरगोश होता है, पराल हरनेसे गंजा और काष्ठ चुरानेवाला मनुष्य घुनकीट होता है॥३०॥ पुष्प हरण करनेसे दरिद्री होता है; यान हरण कनेसे मनुष्य लँगडा होकर जन्म लेता है, जो शाक चुराता है वह हारीत पक्षी होता है और जलका चुरानेवाला मनुष्य चातक पक्षी होता है॥३१॥ जो पुरुष भूमि हरण करता है वह दारुण रौरवादि सब नरकमें गमन करके फिर क्रमानुसार तृण, गुल्म, लता, गल्ली और त्वक्सार तरुरूपमें जन्मग्रहण करता है ॥ ३२ ॥ इसप्रकार यथाक्रम पापोंका क्षय होनेपर मनुष्य योनिमें जन्म ग्रहण करता है, बैलको बधिया करनेसे मनुष्य नपुंसक होता है ॥३३॥ और फिर इक्कीस जन्मतक

छुच्छुंदरीशुभान्गंधान्वासोहृत्वाशशोभवेत् ॥ खंजःपलालहरणेकाष्ठहृद्घुणकीटकः ॥ ३० ॥ पुष्पापहृद्दरिद्रस्तुपंगुर्यानापहृन्नरः ॥ शाकहर्त्ताचहारीतस्तोयहर्त्ताचचातकः ॥ ३१ ॥ भूमिहृन्नरकान्गत्वारौरवादीन्सुदारुणान् ॥ तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतांक्रमात ॥३२॥ प्राप्यक्षीणाल्पपापस्तुनरोभवतिवैततः ॥ वृषस्यवृषणौछित्त्वापंडत्वंप्राप्नुयान्नरः ॥३३॥ परिहृत्यतथाभूयोजन्मनामेकविंशतिः॥ कृमिःकीटःपतंगोत्रापक्षीतोयचरोमृगः ॥३४॥ गोत्त्वंचप्राप्यचांडालपुल्कसादिजुगुप्सितम् ॥ पंग्वंधोबधिरःकुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीडितः ॥३५॥ मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चबाध्यते ॥ अपस्मारीचभवतिशूद्रत्वंचसगच्छति ॥३६॥ एषएवक्रमोदृष्टोगोसुवर्णादिहारिणाम् ॥ विद्यापहारिणांचैवनिष्क्रियभ्रंशिनांगुरोः ॥ ३७ ॥ जायामन्यस्यपारक्यांपुरुषःप्रतिपादयेत् ॥ प्राप्नोतिपंडतामूढोयातनाभ्यः परिच्युतः ॥ ३८ ॥

कृमि, कीट, पतंग, जलचर, पक्षी, मृग ॥३४॥ तथा गौ योनिमें उत्पन्न होता है, इसके पीछे चाण्डाल और डोमआदि नीच योनिमें जन्म लेता है, फिर लँगडा, अंधा, बहरा, कोढी तथा यक्ष्मारोगसे पीडित होता है ॥ ३५ ॥ और मुखरोग, नेत्ररोग, तथा गुह्यरोगसे पीडित होकर फिर मिरगीके रोगसे आक्रान्त हो शूद्रयोनिमें उत्पन्न होता है ॥ ३६ ॥ जिसने गौ सुवर्ण वा अगरकी चोरी की है, उसको भी क्रमानुसार यही दशा भोगनी पड़ती है और जो विद्या हरण वा गुरुका धन मारता है ॥ ३७ ॥ उसको भी इसी प्रकार उग्र रूपी होकर दुःख भोगना पड़ता हैं. जो पुरुष दूसरेकी भार्या लाकर दूसरेको देता है, वह मूढ पुरुष अनेक प्रकारकी यंत्रना भोगकर अन्तमें

नपुंसक होता है ॥ ३८ ॥ जो समाधिके विना अग्निमें होम करता है, वह अजीर्ण रोगसे अत्यन्त पीडित होकर मंदाग्नियुक्त होता है ॥ ३९ ॥ पराई निन्दा कृतघ्नता, परमर्मछेदन, निष्ठुरता, निर्लज्जता, पराई स्त्रीका सेवन ॥४०॥ पराये धनका हरण, अपवित्रता, देवताकी निन्दा धोका देकर मनुष्योंको ठगना कृपणता, मनुष्योंकी हिंसा ॥ ४१ ॥ और भी दूसरे सब निषिद्ध कर्मोंका अनुष्ठान और उन उन विषयोंमें सदा प्रवृत्ति, यह देखनेसेही जानना चाहिये कि, इस पापात्माने नरककी सब यंत्रणा भोगनेके पीछे ही जन्म ग्रहण किया है ॥ ४२ ॥ और सब प्राणियोंमें दया, अच्छा सम्वाद देना, परलोकके लिये सत्क्रिया, सत्यता, मनुष्यके हितके निमित्त बोलना, वेदका प्रमाण देखना ॥ ४३ ॥

यः करोति नरो होमम समिद्धे हुताशने ॥ सोजीर्णघनदुःखार्तो मंदाग्निरभिजायते ॥ ३९ ॥ परनिंदाकृतघ्नत्वंपरमर्मापघट्टनम् ॥ नैष्ठुर्यनिर्घृणत्वंचपरदारोपसेवनम् ॥ ४० ॥ परस्वहरणाशौचदेवतानांचकुत्सनम् ॥ निकृत्यावंचनानृणांकार्पण्यंचनृणांवधः ॥ ४१ ॥ यानियानिचप्रतिषिद्धानितद्वृत्तिचप्रशंसताम् ॥ उपलक्षणानिजानीयान्मुक्तानांनरकादनु ॥ ४२ ॥ दयाभूतेषुसद्वादःपरलोकंप्रतिक्रिया ॥ सत्याभूतहिताचोक्तिर्वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥४३॥ गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनंसाधुसंगमः ॥ सत्क्रियाभ्यसनंमैत्रीचेनद्बुध्येतपंडितः ॥४४॥ अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानियानिच ॥ स्वर्गच्युतानांलिंगानिपुरुषाणामपापिनाम् ॥४५॥ एतदुद्देशतोराजन्भवतःकथितं मया ॥ स्वकर्मफलभोक्तॄणांपुण्यानांपापिनांतथा ॥ ४६ ॥ तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्टंसर्वंत्वयाधुना ॥ त्वयाचदृष्टोनरकस्तदेह्यन्यत्रगम्यताम् ॥ ४७ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ततस्तमग्रतःकृत्वासराजागंतुमुद्यतः ॥ ततश्चसर्वैरुत्क्रुष्टंयातनास्थायिभिर्नृभिः ॥ ४८ ॥

गुरु, देव, ऋषि और सिद्धर्षियोंकी पूजा, साधुसंगम, सत्कर्मका अभ्यास, मित्रता, यह पंडितोंको जानना चाहिये कि, ॥ ४४ ॥ और अन्यान्य सत्कार्य तथा उत्तम धर्मविषयक जो कुछ निर्दिष्ट हुआ है यह सब लक्षण मनुष्यमें दिखाई दें तो पण्डितोंको निश्चय करना चाहिये कि, इन निष्पाप पुरुषोंने स्वर्गसे भ्रष्ट होकर जन्म ग्रहण कियाहै ॥४५॥ हे राजन् ! अपने कर्मफल भोगनेवाले पुण्यवान् और पापियोंका समस्त विषय उद्देशानुसार मैंने आपसे वर्णन किया॥४६॥आपने समस्तही देखा है और आपको भी नरकका दर्शन हुआ, अत एव आवो अन्यत्र चलें॥४७॥ पुत्रने कहा—तदनन्तर वह राजा यमदूतको आगे करके जैसेही जानेको उद्यत हुए वैसेही नरककी यंत्रणा भोगनेवाले सब मनुष्योंने उच्चस्वरसे क्रंदन

करके कहा॥४८॥"हे भूप ! प्रसन्न होओ और मुहूर्त्तकाल ठहरो, तुम्हारे अंगके संसर्गी वायुसे हमारा मन अत्यन्त आह्लादित होता है ॥ ४९. ॥ हे नरव्याघ्र ! इस वायुने हमारे समस्त शरीरका परिताप और पीडाकी बाधा हरण की है अतएव हे महीपते ! हमपर दया करो" ॥५०॥ अनन्तर राजाने उन सबके यह वचन सुनकर यमदूतसे पूँछा—हे यमदूत ! मेरे खडे होनेसे इतना आह्लाद क्यों होता है?॥५१॥ मैंने मृत्युलोकमें ऐसे किस पुण्य कर्मका अनुष्ठान किया है, जो इनके प्रति इसप्रकार आनन्ददायिनी वृष्टि होती है ? सो कहो ॥५२॥ यमदूत बोला—हे महाराज ! आपने प्रथम देवता, पितर, अतिथि और संन्यासी इत्यादिके भोजनसे बचा हुआ अन्न भक्षण करके अपना शरीर पाला था और हरघडी

प्रसादंकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्त्तकम् ॥ त्वदंगसंगीपवनोमनोह्लादयतेहिनः ॥ ४९ ॥ परितापंचगात्रेषुपीडांबाधांचकृत्स्नशः ॥ अपहंतिनरव्याघ्रकृपांकुरुमहीपते ॥ ५० ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांतंयाम्यंपुरुषंततः ॥ पप्रच्छकथमेनेषामाह्लादोमयितिष्ठति ॥ ५१ ॥ किंमयाकर्मतत्पुण्यंमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ॥ आह्लाददायिनीव्युष्टिर्यस्येयंतदुदीरय ॥ ५२ ॥ ॥ पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टेनान्नेनते तनुः ॥ पुष्टिमभ्यागतायस्मात्तद्गतंचमनोयतः ॥ ५३ ॥ ततस्त्वद्गात्रसंसर्गीपवनोह्लाददायकः ॥ पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधते ॥ ५४ ॥ अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः ॥ ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायंत्रशस्त्राग्निवायसाः ॥ ५५ ॥ पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतवः ॥ मृदुत्वमागताराजंस्तेजसोपहतास्तव ॥५६॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ नस्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखंप्राप्यतेनरैः ॥ यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमतिः ॥ ५७ ॥ यदिमत्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ॥ ततोभद्रमुखाऽत्राहंस्थास्येस्थाणुरिवाचलः ॥५८॥

आपका मन इन्हीं बातोंमें लगा रहता था॥५३॥हेराजन् ! इसीकारण आपके शरीरसंसर्गि आह्लाददायक इस वायुसे पापात्माओंकी समस्त यातना नष्ट होतीहैं॥५४॥और आपने अश्वमेध इत्यादि सब यज्ञोंका यथाविधि अनुष्ठान कियाहै. इस कारण पीडन, छेदन और दाहादि संपूर्ण महादुःखोंके हेतु यमसंबंधीय यंत्र, शस्त्र, अग्नि और कौवोंने तुम्हारे दर्शन और तेजसे हत होकर इस प्रकार कोमलताका अवलम्बन किया है ॥५५॥५६॥ राजाने कहा--मेरी ऐसी बुद्धि है कि, दुःखी मनुष्यकी रक्षा करनेसे जैसा सुख मिलता है, स्वर्ग वा ब्रह्मलोकमें भी वैसा सुख उत्पन्न नहीं होता ॥५७॥यदि मेरे खडे होनेसे इनकी समस्त यंत्रणा नष्ट होतीहैं तो हे भद्रमुख! स्थाणुके समान अचल होकर मैं इस स्थानमेंही वासकरूंगा॥५८॥

यमदूत बोला--आवो, चलो ! अपने पुण्यसे इकट्ठा किया हुआ समस्त भोग भोगो यह पापात्माओंके दुःख भोगनेका स्थान है ॥ ५९ ॥ राजाने कहा जबतक यह अत्यन्त दुःखी रहेंगे, तबतक मैं नहीं जाऊंगा, क्योंकि यह सब नरकवासी मेरे रहनेसे सुखी होते हैं॥६०॥शत्रुभी यदि दुःखसे आतुर होकर शरणार्थी हो तो जो पुरुष उसपर अनुग्रह नहीं करता, उसके जीवनको धिक्कारहै॥६१॥आर्त पुरुषकी रक्षा करनेमें जिसका चित्त नहीं है, उसका यज्ञदान वा तपस्या कुछभी इसकाल अथवा परकालके सुखके निमित्त नहीं है॥६२॥बालक, आतुर वा बूढे इत्यादिके प्रति जिसका चित्त कठिन है, अर्थात् जो इनके ऊपर दया नहीं करता, मेरे विचारसे वह मनुष्य नहीं बरन राक्षस है॥६३॥ यद्यपि इनके समीप

॥ यमपुरुषउवाच ॥ एहिराजेंद्रगच्छामिनिजपुण्यसमार्जितान् ॥ भुंक्ष्वभोगांस्तुभुज्यंतुयातनाःपापकर्मिणः ॥ ५९ ॥ राजोवाच ॥ ॥ तस्मान्नतावद्यास्यामियावदेतेसुदुःखिताः ॥ मत्सन्निधानात्सुखिनोभवंतिनरकौकसः ॥ ६० ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमागतम् ॥ योनार्त्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥ ६१ ॥ यज्ञदानतपांसीहपरत्रचनभूतये ॥ भवंतितस्ययस्यार्त्तपरित्राणेनमानसम् ॥ ६२ ॥ नरस्ययस्यकठिनंमनोबालातुरादिषु ॥ वृद्धेषुचनतंमन्येमानुषंराक्षसोहिसः ॥ ६३ ॥ एषांमत्सन्निकर्षात्तुयद्यग्निपरितापजम् ॥ तथोग्रगंधजंवापिदुःखंनरकसंभवम् ॥ ६४ ॥ क्षुत्पिपासोद्भवंदुःखंयच्चमूर्च्छाप्रदंमहत् ॥ विनाशमेतितद्धद्रमन्येस्वर्गसुखात्परम् ॥ ६५ ॥ प्राप्स्यंतेतेयदिसुखंबहवोदुःखितेमयि ॥ किंवाप्राप्तंमयानस्यात्तस्मात्त्वंवदमाचिरम् ॥ ६६ ॥ ॥ याम्यउवाच ॥ ॥ एषधर्मश्चशक्रश्चत्वांनेतुंसमुपागतौ ॥ अवश्यमस्माद्गन्तव्यंतस्मात्पार्थिवगम्यताम् ॥ ६७ ॥

रहनेसे मुझको नरककी अग्निके तापसे उत्पन्न तीव्र गंधका दुःख होगा ॥६४॥ भूख प्याससे प्रगट मूर्च्छाका देनेवाला महादुःख भोगना पडेगा, किंतु तो भी इनकी रक्षा करनी विचारकर इस महादुःखकोभी स्वर्गके सुखकी अपेक्षा अधिक सुख समझूंगा ॥६५॥ यदि केवल मात्र मेरे दुःख पानेसे इसप्रकार अनेक दुःखी पुरुषोंको सुख प्राप्त होगा तो मुझे क्या नहीं मिलेगा ? अत एव हे यमदूत ! तुम विलम्ब मतकरो, शीघ्र जाओ ॥ ६६ ॥ यमदूत बोला--हे राजन् ! यह धर्म और इन्द्र हैं, आपको लेकर जानेके लिये आये हैं, आपको अवश्यही जाना पडेगा, अत एव आइये ॥ ६७ ॥

धर्मने कहा--हे राजन् ! आपने सम्यक् प्रकारसे मेरी उपासना करी है, इसी कारण आपको स्वर्गमें ले जाऊंगा, अब आप विलम्ब न करें, शीघ्र इस विमानमें बैठकर चलैं ॥ ६८ ॥ राजा बोले--हे धर्म ! सहस्रों मनुष्य नरकमें पड़े कष्ट संयुक्त रुदन करते हैं और "हमारी रक्षा करो" ऐसा मुझसे कहते हैं, इस कारण मैं इस स्थानको छोड़कर नहीं जाऊंगा ॥ ६९ ॥ इन्द्रने कहा अपने अपने कर्मके फलसे इन पापियोंको नरककी यंत्रणा भोगनी पड़ती है, सुतरां अपने पुण्यकर्मके फलसे आपको भी स्वर्गमें जाना उचित है ॥ ७० ॥ राजा बोले- हे धर्म ! हे शचीपति इन्द्र ! मैंने कितना पुण्यसंचय किया है, यदि आप जानते हो तो बताइये ॥ ७१ ॥ धर्मने

॥ धर्मउवाच ॥ ॥ नयामित्वामहंस्वर्गंत्वयासम्यगुपासितः ॥ विमानमेतदारुह्यमाविलंबस्वगम्यताम् ॥ ६८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ नरकेमानवाधर्मपीड्यमानाःसहस्रशः ॥ त्राहीत्यमीचक्रंदंतिमामतोनव्रजाम्यहम् ॥ ६९ ॥ ॥ इंद्र उवाच ॥ ॥ कर्मणानरकप्राप्तिरेषांपापिष्ठकर्मणाम् ॥ स्वर्गस्त्वयापिगंतव्योनृपपुण्येनकर्मणा ॥ ७० ॥ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यदिजानासिधर्मत्वंत्वंवा देवशतक्रतो ॥ ममयावत्प्रमाणंतुशुभंतद्वक्तुमर्हथः ॥ ७१ ॥ ॥ धर्मउवाच ॥ ॥ अब्बिन्दवोयथांभोधौयथावादिवितारकाः ॥ यथावावर्षतोधारागंगायांसिकतायथा ॥ ७२ ॥ असंख्येयामहाराजन्नानायोनिषुजंतवः ॥ तथातत्रापिपुण्यस्यसंख्यानैवोपपद्यते ॥ ७३ ॥ अनुकंपामिमामद्यनारकेष्विहकुर्वता ॥ तदेवशतसाहस्रसंख्यानीतंत्वयानृप ॥ ७४ ॥ तद्गच्छत्वंनृपश्रेष्ठतल्लोकंममगलयम् ॥ एतेतुनरकेपापंक्षपयंतुस्वकर्मजम् ॥ ७५ ॥

कहा-हे राजन् ! समुद्रमें जितनी जलकी बूँदें, आकाशमें जितने तारे, वर्षामें जितनी जलधारा और गंगामें जितनी बालू है, आपका पुण्य भी उतनाही है ॥ ७२ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार जलबिन्दु आदिकी संख्या नहीं करी जाती उसी प्रकार आपका पुण्य भी संख्यातिरिक्त है ॥ ७३ ॥ और फिर हे नृप ! अब हम नारियोंके ऊपर दया प्रकाश करनेसे आपका वह पुण्य भी शत सहस्र गुण बढ़ गया ॥ ७४ ॥ सुतरां हे नृपश्रेष्ठ ! उस पुण्यफलको भोगनेके लिये अमरलोकमें चलिये और यह पापात्मा भी नरकमें वास करके अपने कर्मोंसे उत्पन्न हुए समस्त पापोंका क्षय करैं ॥ ७५ ॥

राजाने कहा—मेरा समीप वास करनेसे यदि इनका कल्याण नहीं होता तो मनुष्य मेरी संगतिकी इच्छा क्यों करते ? ॥ ७६ ॥ इस कारण हे त्रिदशाधिप ! मेरे जो कुछ पुण्य है, यह यातना भोगनेवाले पापात्मा उसके द्वारा ही नरकसे छूटें ॥ ७७ ॥ इन्द्रने कहा—हे महीपते ! इससे आपकी और भी ऊँचे स्थानमें गति हुई, यह देखो ! पापी लोग नरकसे छूट गये ॥ ७८ ॥ पुत्रने कहा—अनन्तर उन राजाके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी, और शचीपति इंद्र उनको विमानमें बैठाकर स्वर्गलोकमें लेगये ॥ ७९ ॥ इधर मैंने व अन्यान्य नारकियोंने यातनासे छूटकर अपने अपने कर्मफलानुसार भिन्न भिन्न योनिमें जन्म ग्रहण किया ॥८०॥ हे द्विजसत्तम !

॥ राजोवाच ॥ ॥ कथंस्पृहांकरिष्यंतिमत्संपर्कायमानवाः ॥ यदिमत्संनिधावेषामुत्कर्षोनोपपद्यते ॥ ७६ ॥ तस्माद्यत्सुकृतंकिंचिन्ममास्तित्रिदशाधिप ॥ मुच्यंतांतेननरकात्पापिनोयातनागताः ॥ ७७ ॥ ॥ इंद्रउवाच ॥ ॥ एवमूर्ध्वतरंस्थानंत्वयाप्राप्तंमहीपते ॥ एतांस्तुनरकात्पश्यविमुक्तान्पापकर्मिणः ॥ ७८ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ततोपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपतेः ॥ विमानंचाधिरोप्यैनंस्वर्लोकमनयद्धरिः ॥ ७९ ॥ अहंचान्येचयेतत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः ॥ स्वकर्मफलनिर्दिष्टंततोयोन्यंतरंगताः ॥ ८० ॥ एवमेतेसमाख्यातानरकाद्विजसत्तम ॥ येनयेनचपापेनयांयांयोनिमुपैतिवै ॥ ८१ ॥ तत्तत्सर्वंसमख्यातंयथादृष्टंमयापुरा ॥ पुरानुभवजंज्ञानमवाप्यकथितंतव ॥ अतःपरंमहाभागकिमन्यत्कथयामिते ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेनरकस्थोद्धारवर्णनं नामपंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पितोवाच ॥ कथितंमेत्वयावत्ससंसारस्यव्यवस्थितम् ॥ स्वरूपमपिदेहस्यघटीयंत्रवदव्ययम् ॥ १ ॥

इन नरकोंका सब वृत्तान्त आपके निकट यथार्थरीतिसे वर्णन किया, जिस जिस पापसे जिस जिस योनिमें जन्म ग्रहण करना पडता है॥८१॥ जो मैंने पहिले देखा है, वह सबही आपके वर्णन किया, आपसे जो कुछ कहा यह सभी मैंने पूर्वमें अनुभव किया है, सुतरां यह मिथ्या नहीं है. हे महाभाग ! अब अनुमति दीजिये, क्या वर्णन करूं ॥ ८२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे भाषाटीकायां पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥ पिताने कहा—हे वत्स ! घटीयंत्रके समान व्यवस्थित अतिशय त्यागने योग्य संसारका अव्ययस्वरूप तुमने मुझसे वर्णन किया ॥ १ ॥

मुझको भी ज्ञान हुआ कि "समस्त इसी प्रकार है" जब कि, संसारकी ऐसी व्यवस्था है तो कहताहूं, देखो! मुझको क्या करना चाहिये? ॥२॥ पुत्र बोला--हे तात! यदि निःशंक चित्तसे मेरे वचनमें श्रद्धा करो तो गृहस्थाश्रम छोड़कर वानप्रस्थाश्रम अवलम्बन कीजिये ॥ ३ ॥ विधानानुसार वानप्रस्थ आश्रमका अनुष्ठानपूर्वक अग्निपरिग्रहत्याग, आत्मामें आत्माका संयोगकर निर्द्वन्द्व और निष्परिग्रह होवो ॥४॥ और एकान्तशील हो आत्माको वशीभूत एवं आलस्यहीन कर भिक्षुक होवो. इसप्रकार योगपर वशहो जब बाह्य स्पर्शरहित होंगे ॥ ५ ॥ तब मुक्तिके कारण स्वरूप, उपमाविहीन, वचनसे अतीत निःसंग और दुःखसंयोगके औषधिस्वरूप इसयोगको प्राप्त होंगे ॥ ६ ॥ इस योगका संयोग होनेसे आपका फिर

तदेवमेतदखिलंममावगतमीदृशम् ॥ किंमयात्रदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ॥ २ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ यदिमद्वचनंतातश्रद्धास्यविशंकितः ॥ तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यंवानप्रस्थमनाभव ॥ ३ ॥ तमनुष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ॥ आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रहः ॥ ४ ॥ एकांतशीलोवश्यात्माभवभिक्षुरतंद्रितः ॥ तत्रयोगपरोभूत्वाबाह्यस्पर्शविवर्जितः ॥ ५ ॥ ततःप्राप्स्यसितंयोगंदुःखसंयोगभेषजम् ॥ मुक्तिहेतुमनौपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ॥ ६ ॥ तत्संयोगाद्भवतेयोगोभूयोभूतैर्भविष्यति ॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ वत्सयोगंममाचक्ष्वमुक्तिहेतुमतःपरम् ॥ ७ ॥ येनभूतैःपुनर्भूतोनैदृग्दुःखमवाप्नुयाम् ॥ यत्रासक्तिपरस्यात्मामामसंसारबंधनैः ॥ ८ ॥ नेतियोगमयोगोपिनंयोगमधुनावद ॥ संसारादित्यतापार्त्तिविप्लुष्यद्देहिमानसम् ॥ ९ ॥ ब्रह्मज्ञानांबुशीतेनसिंचमांवाक्यवारिणा ॥ अविद्याकृष्णसर्पेणदष्टंतद्विषपीडितम् ॥ १० ॥

पंचभूतके संग मेल नहीं रहेगा। पिताने कहा- हे वत्स! अब मुक्तिके कारण स्वरूप उस योगका विषय वर्णन करो ॥७॥ जिसयोगका अवलंबन करनेसे भौतिक पदार्थोंके संग मिलित होकर पुनर्वार जन्म ग्रहणपूर्वक मुझको फिर ऐसा दुःख पाना न पड़े, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है किन्तु मेरी संसारबंधनमें अत्यन्त आसक्ति है ॥ ८ ॥ अतएव उसको त्याग करके आत्मा भी फिर युक्त न हो, सुतरां मुझसे योग कहो. हे वत्स! मेरा देह और मन संसाररूपी सूर्यकी तापकी पीडासे तप रहा है ॥९॥ तुम ब्रह्मज्ञानमय सुशीतलाम्बुमिश्रित वचनरूपी जलके द्वारा उसको परिषिक्त अर्थात् ठंडा करो· अविद्यारूपी कालसर्पने मुझको काटा है, मैं उनके विषकी पीडासे अत्यन्त पीडीत होकर मृतप्राय हुआ हूं ॥ १० ॥

तुम अपने वचनरूपी अमृतको पिलाकर मुझको फिर जीवित करो। हे वत्स! मैं पुत्र, स्त्री, गृह खेत ममतारूपी बेड़ियोंसे दृढ बँधा हुआहूं॥११॥ तुम सद्भावसंयुक्त विज्ञान उत्पन्नकरके शीघ्र मुझको छुडाओ। पुत्र बोला--हे तात! पूर्वमें बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीने अलर्कके सम्यक् प्रकार पूँछनेपर उनसे विस्तारपूर्वक जो योग कहा था, मैं वही कहताहूं सुनो। पिताने कहा-हे वत्स! दत्तात्रेय जी किसके पुत्रथे और उन्होंने किस प्रकार योग कहा था? ॥१२॥१३॥ और जिन्होंने योग पूँछाथा, वह महाभाग अलर्क कौन थे? पुत्र बोला-पहिले प्रतिष्ठान नगरमें कुशिकवंशोत्पन्न कोई ब्राह्मण वास करता था ॥ १४ ॥ वह पूर्व जन्मके किये पाप द्वारा कुष्ठ रोगसे आतुर हुआ. स्वामीके कुष्ठरोगसे आक्रान्त होनेपरभी उसकी भार्या देवताके समान उसकी

स्ववाक्यामृतदानेनमांजीवयपुनर्मृतम् ॥ पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दितम् ॥ ११ ॥ मांमोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ॥
॥ पुत्रउवाच ॥ शृणुतातयथायोगोदत्तात्रेयेणधीमता ॥ १२ ॥ अलर्कायपुराप्रोक्तःसम्यक्पृष्टेनविस्तरात् ॥ पितोवाच ॥ ॥
दत्तात्रेयस्सुतःकस्यकथंवायोगमुक्तवान् ॥ १३ ॥ कश्चालर्कोमहाभागोयोयोगंपरिपृष्टवान् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कौशिकोब्राह्मणः
कश्चित्प्रतिष्ठानेभवत्पुरे ॥ १४ ॥ सोन्यजनकृतैःपापैःकुष्ठरोगातुरोभवत् ॥ तंतथाव्याधितंभार्यापतिंदेवमिवार्चयत ॥ १५ ॥
पादाभ्यंगांगसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ॥ श्लेष्ममूत्रपुरीषासृक्प्रवाहक्षालनेनच ॥ १६ ॥ रहस्येवोपचारेणप्रियसंभाषणेनच ॥ सततं
पूज्यमानोपितयातीवविनीतया ॥ १७ ॥ अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयनिदारुणः ॥ तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यतदैवतम् ॥१८ ॥
तंतथाप्यातिबीभत्संसर्वश्रेष्ठममन्यत ॥ अचंक्रमणशीलोपिसकदाचिद्द्विजोत्तमः ॥ १९ ॥

पूजा करती ॥ १५ ॥ चरणोंमें तेल मलती, अंग दावती, आच्छादन करती, भोजन कराती और कफ, मूत्र, मल तथा रक्तका प्रवाह धोती ॥ १६ ॥ निर्जनमें उपकार और प्रियसंभाषणादि द्वारा विनीत भावसे सदा उसकी पूजा करती ॥ १७ ॥ किन्तु ब्राह्मण अत्यन्त कोपनस्वभाव और निष्ठुर होनेके कारण विनीत पत्नीसे निरंतर पूजित होकरभी उसको सदा घुड़कता, तथापि वह प्रणत भार्या उसको सदा घुड़ता, तथापि वह प्रणत भार्या उसको देवता जानती ॥ १८ ॥ वह उस बीभत्सरूपी ब्राह्मणको सबसे श्रेष्ठ मानती ब्राह्मणमें चलनेकी शक्ति नहीं थी तोभी एक समय ॥ १९ ॥

पत्नीको आज्ञा दी कि, मैंने जो उस वेश्याको देखा है, जो राजमार्गके पार्श्ववर्त्ती घरमें वास करती है ॥ २० ॥ तू मुझे उसी वेश्याके घर ले चल, हे धर्मकी जाननेवाली ! वही मेरे हृदयमें वर्त्तमान रहती है, मैंने प्रातःकालमें उस बालाको देखा है और अब रात्रि होगई है ॥ २१ ॥ तथापि जबसे देखा है तबसे वह मेरे हृदयसे अलग नहीं होती, यदि वह पुष्टश्रोणि-भागवाली पुष्टपयोधरवाली ॥ २२ ॥ तन्वङ्गी सर्वाङ्गसुन्दरी बालिका मुझको आलिंगन नहीं करेगी तो निःसन्देह मेरा मरण देखोगी. क्योंकि एकतो कामदेव मनुष्योंके प्रतिकूल है ॥ २३ ॥ तिसपरभी अनेक मनुष्य उसके प्रार्थी हैं फिर मुझमें चलनेकी शक्ति नहीं. इसकारण मुझे विषम संकट बोध होता है, उस समय

प्राहभार्यांनयस्वेतित्वंमांतस्यानिवेशनम् ॥ यासावेश्यामयादृष्टाराजमार्गेगृहेसता ॥ २० ॥ तांमेप्रापयधर्मज्ञेसैवमेहृदिवर्त्तते ॥ दृष्टासूर्योदयेबालारात्रिश्चेयमुपागता ॥ २१ ॥ दर्शनानंतरंसामेहृदयान्नापसर्पति ॥ यदिसाचारुसर्वांगीपीनश्रोणिपयोधरा ॥ २२ ॥ नोपगूहतितन्वंगीतन्मांद्रक्ष्यतिवैमृतम् ॥ वामःकामोमनुष्याणांबहुभिःप्राप्यचेतसः ॥ २३ ॥ ममाशक्तिश्चगमनेसंकुलंप्रतिभातिमे ॥ तत्तदावचनंश्रुत्वाभर्त्तुःकामातुरस्यसा ॥ २४ ॥ तत्पत्नीव्याकुलाजातामहाभागापतिव्रता ॥ गाढंपरिकरंबद्ध्वाशुल्कमादायचाधिकम् ॥ २५ ॥ स्कंधेभर्त्तारमारोप्यजगाममृदुगामिनी ॥ निशिमेघावृतेव्योम्निचलद्विद्युच्चदृश्यते ॥ २६ ॥ राजमार्गेप्रियंभर्त्तुश्चिकीर्षतीद्विजांगना ॥ पथिशूलेतदाप्रोतमचोरंचोरशंकया ॥ २७ ॥ माण्डव्यमतिदुःखार्तमंधकारेचसद्विजः ॥ पत्नीस्कंधसमारूढश्चालयामासकौशिकः ॥ २८ ॥

कामातुर स्वामीके इसप्रकार वचन सुनकर ॥२४॥ सत्कुलोत्पन्न महाभाग पतिव्रता व्याकुल हुई--पत्नीने दृढ़रूपसे कमरबांध बहुत धन ग्रहण किया ॥ २५ ॥ और स्वामी को कंधेपर चढाकर धीरे धीरे गमन करने लगी। एक तो रात्रिही अँधियारी थी, फिर आकाशमें मेघ आच्छादित थे, किन्तु वह स्वामीके प्रियकार्यकी अभिलाषा करनेवाली द्विजाङ्गना चंचल बिजलीका प्रकाश देखकर राजमार्ग में गमन करने लगी और उसी मार्ग में एक शूली गड़रहीथी जिसपर चोर न होकर भी चोरीके अपराधमें ॥ २६ ॥ २७ ॥ मांडव्य मुनि चढे हुए अत्यन्त दुःख भोगते थे, मार्ग में अंधकार होनेसे हठात् उस पत्नीके कंधेपर चढ़े हुए कौशिक ब्राह्मणके अंगस्पर्शसे उनका चरण विचलित हुआ ॥ २८ ॥

पैरके विचलित होनेसे मांडव्य मुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर कहा कि, जिस पुरुष ने पैर विचलित करके मुझे वृथा ॥ २९ ॥ यंत्रणा दी है सूर्योदय होतेही वह पापात्मा नराधम असह्य यंत्रणाभोगनेसे अवश होकर निःसंदेह प्राण त्याग करेगा ॥३०॥ सूर्यके देखतेही निःसन्देह उसका प्राण त्याग होगा, तब उसकी पत्नी ने उनका यह दारुण शाप सुन ॥ ३१ ॥ अत्यन्त व्यथित होकर कहा "सूर्य अब उदितही नहीं होंगे" अनन्तर पतिपरायणा ब्राह्मणकी स्त्रीके उसी वचनानुसार सूर्यदेवके उदित न होनेसे सदा रात्रिही रही. इस प्रकार बहुत रात्रियोंके बीतने पर देवताओंको अत्यन्त भय प्राप्त हुआ॥३२॥तब वह विचारने लगे कि, "जब स्वाध्याय, वषट्कार, स्वधा और स्वाहा लोप होगा तब" किस प्रकारसे इस संपूर्ण जगत

वामांगेनाथसंक्रुद्धोमांडव्यस्तमुवाचह ॥ येनाहमेवमत्यर्थंदुःखितश्चालितोवृथा ॥ २९ ॥ इत्थंकष्टमनुप्राप्तःसपापात्मानराधमः ॥ सूर्योदयेऽवशःप्राणैर्वियोक्ष्यति न संशयः ॥ ३० ॥ भास्करालोकनादेवसविनाशमवाप्स्यति ॥ तस्यभार्याततःश्रुत्वातंशापमतिदारुणम् ॥ ३१ ॥ प्रोवाचव्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति ॥ ततःसूर्योदयाभावादभवत्संततानिशा ॥ ३२ ॥ ॥ बहून्यहःप्रमाणानिततोदेवाभयंययुः ॥ निःस्वाध्यायवषट्कारंस्वधास्वाहाविवर्जितम् ॥ ३३ ॥ कथंनुखल्विदंसर्वंनगच्छेत्संक्षयंजगत ॥ अहोरात्रव्यवस्थायाविनामासर्तुसंक्षय ॥ ३४ ॥ तत्संक्षयान्नत्वयनेज्ञायेतेदक्षिणोत्तरे ॥ ३५ ॥ विनाचायनविज्ञानंकालःसंवत्सरःकुतः ॥ पतिव्रतायावचनान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ॥ ३६ ॥ सूर्योदयंविनानैवस्नानदानादिकाःक्रियाः ॥ अग्नेर्विहरणंचैवक्रत्वभावश्च लक्ष्यते ॥ ३७ ॥ नकालेनविनाचेष्टिर्नचयज्ञादिकाःक्रियाः ॥ नश्यंतिसर्वभूतानितमोभूते चराचरे ॥ ३८ ॥

की रक्षा होगी?॥३३॥अहोरात्रकी व्यवस्थाके विना मास और ऋतुका विभाग नहीं होगा, मास और ऋतुका विभाग न होनेसे उत्तरायण और दक्षिणायनका ज्ञान नहीं होगा॥३४॥३५॥ अयनज्ञान न होनेसे किसप्रकार संवत्सरकी स्थिरता होगी? और संवत्सरका ज्ञान न होनेसे अन्यान्य कालका ज्ञान किस प्रकारसे होगा? पतिव्रताके वचनानुसार सूर्य अब उदित नहीं होते ॥३६॥ सूर्योदय नहीं होनेसे स्नानदानादि कार्यभी बन्द हुए, अब अग्निचयन अर्थात् हवन भी नहीं होता और समस्त यज्ञोंका भी अभाव दीखता है ॥ ३७ ॥ कालके विना इष्टि नहीं होती, यज्ञदानादि क्रिया नहीं होती चराचर अंधकारसे व्याप्त होनेके कारण सब प्राणी नष्ट होते हैं ॥ ३८ ॥

होमके विना हमारी तृप्तिका भी दूसरा उपाय नहीं है, मनुष्यगण यथोचित हमको यज्ञभागमें तृप्त करते हैं ॥ ३९ ॥ हम भी सस्यादि (अन्नादि) की सिद्धिके लिये जल वर्षाकर उनपर अनुग्रह करते हैं; समस्त औषधी उत्पन्न होनेसे ही मनुष्य उनके द्वारा हमारे उद्देशसे यज्ञ करते हैं ॥ ४० ॥ हमभी यज्ञादि द्वारा पूजित होकर उनकी अभिलाषानुसार समस्त विषय संपादन करते हैं, हम नीचेकी ओर वृष्टिधारा वर्षण करते हैं और मनुष्य ऊपरकी ओर घृतधारा बरसाते हैं ॥ ४१ ॥ हम जल वर्षाकर और मनुष्य हवि देकर प्रसन्न करते हैं, जो नित्य नैमित्तिकी क्रियायें हमको नहीं देते ॥ ४२ ॥ अर्थात् जो दुरात्मा नित्य नैमित्तिक समस्त क्रिया

नैवाप्यायनमस्माकंविनाहोमेनजायते ॥ वयमाप्यायितामर्त्यैर्यज्ञभागैर्यथोचितैः ॥ ३९ ॥ वृष्ट्यादिनानुगृह्णीमोमर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ॥ निष्पादितास्त्वौषधीषुमर्त्यायज्ञैर्यजंतिनः ॥ ४० ॥ एवंवयंप्रयच्छामःकामान्यज्ञादिपूजिताः ॥ अधोहिवर्षामवयंमर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिणः ॥ ४१ ॥ तोयवर्षेणहिवयंहविर्वर्षेणमानवाः ॥ येस्माकंनप्रयच्छंतिनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः ॥ ४२ ॥ क्रतुभागंदुरात्मानःस्वयंवाश्नंतिलोलुपाः ॥ विनाशायवयंतेषांतोयसूर्याग्निमारुताः ॥४३॥ क्षितिंचसंदूषयामःपापानामपकारिणाम् ॥ दुष्टतोयादिदोषेणतेषांदुष्कृतकर्मणाम् ॥४४॥ उपसर्गाःप्रवर्त्ततेमरणायसुदारुणाः ॥ येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुंजतेशेषमात्मना ॥४५॥ तेषांपुण्यतमाँल्लोकान्वितरामोमहात्मनाम् ॥ तन्नास्तिसर्वमेतद्धिनचोपायव्यवस्थितम् ॥ ४६ ॥ कथंनुदिनसंगःस्यादन्योन्यमवदन्सुराः ॥ तेषामेवसमेतानांयज्ञव्युच्छित्तिशंकिनाम् ॥ ४७ ॥

हमारे उद्देशसे अर्पण नहीं करते और लोभी होकर यज्ञभाग स्वयं भोजन करते हैं, हम उनका नाश करनेके लिये जल, अग्नि, सूर्य, वायु ॥ ४३ ॥ और पृथ्वीको दूषित करतेहैं और दुष्टजलादि भोग करनेसे उन अपकारी पापात्माओंके ॥ ४४ ॥ विनाश सूचक दारुण रोग प्रवर्त्तित होते हैं, और जो मनुष्य हमको तृप्त करके शेषमात्र स्वयं भोजन करते हैं ॥ ४५ ॥ हम उन महात्माओंको समस्त पुण्यमय स्थान देते हैं, इस समय तो उनका कुछभी उपस्थित नहीं है, न कोई उपाय विदित है ॥ ४६ ॥ किन्तु किसप्रकार से दग्ध सृष्टिका स्थापन हो और किसप्रकारसे दिनकी सृष्टि हो ? देवता आपसमें इसप्रकार कहनेलगे, यज्ञविनाशकी शंका करनेवाले सब ॥ ४७ ॥

देवताओंके इसप्रकार वचन सुनकर देवताओंमें श्रेष्ठ प्रजापति, ब्रह्माजीने कहा ॥४८॥ हे अमरगण ! देखो, तेजसे परम तेज और तपसे तपका विनाश होता है, अत एव मेरा वचन सुनो. देखो--पतिव्रताके माहात्म्यसे सूर्य उदय नहीं होता है सूर्यके उदय न होनेसे तुम्हारी और मनुष्योंकी अत्यन्त हानि होती है, इस कारण तुम यदि सूर्योदय होनेकी अभिलाषा करते हो तो एक मात्र पतिव्रता तपस्विनी अत्रिमुनिकी पत्नी अनसूयाको ॥४९॥५०॥ सूर्यके उदयकी कामनासे प्रसन्न करो। पुत्र बोला--अनन्तर जब देवताओंने जाकर उनको प्रसन्न किया, तब वह उनके द्वारा प्रसन्न होकर बोली " तुम अभिलषित विषयकी प्रार्थना करो"॥ ५१ ॥ देवताओंने यह प्रार्थना करी कि, 'पहिलेके समान दिन हो अर्थात

देवानांवचनंश्रुत्वाप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ तेजःपरंतेजसैवतपसाचतपस्तथा ॥४८॥ प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वंवचनंमम ॥ पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ॥४९॥ तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानांभवतांयथा ॥ तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयांतपस्विनीम् ॥५०॥ प्रसादयतवैपत्नींभानोरुदयकाम्यया ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ तैःसाप्रसादितागत्वाप्राहेष्टंव्रियतामिति ॥५१॥ अयाचंतदिनंदेवाभवत्विति यथापुरा ॥ अनसूयोवाच ॥ पतिव्रतायामाहात्म्यंनहीयेतकथंत्विति ॥५२॥ संमान्यतांतथासाध्वींतथाप्रेष्याम्यहंसुराः ॥ यथापुनरहोरात्रसंस्थानमुपजायते ॥५३॥ यथाचतस्याःसपतिर्नशापान्नाशमेष्यति ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वासुरांस्तस्यागत्वासामंदिरंशुभा ॥५४॥ उवाचकुशलंपृष्टाधर्मंभर्तुस्तथात्मनः ॥ कच्चिन्नंदसिकल्याणिस्वभर्तुःसुखदायिनी ॥५५॥ कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेऽभ्यधिकंपतिम् ॥ भर्तुःशुश्रूषणादेवमयाप्राप्तंमहत्फलम् ॥ ५६ ॥

सूर्य निकले' अनसूयाने कहा -पतिव्रताकी महिमा कभी हीन होनेवाली नहीं है ॥ ५२ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ ! उस पतिव्रताका तैसा सन्मान करके भेजूंगी, जिस प्रकार फिर दिनरातकी स्थिति होजाय ॥ ५३ ॥ और जिस प्रकारसे उसका वह पति शापके कारण नाशको प्राप्त न हो सो करूंगी. पुत्रने कहा अनसूया इस प्रकार देवताओंसे कह उसके मंदिरको गई ॥ ५४ ॥ और उसकी तथा उसके स्वामी की धर्मविषयक कुशल पूछी कि, हे कल्याणी ! हे भर्ताकी सुख देनेवाली तुम स्वामीका मुख देखनेसे आह्लादित तो होती हो ॥ ५५ ॥ और देवताओंकी अपेक्षा स्वामीको श्रेष्ठ तो जानती हो मैं केवलमात्र भर्त्ताकी शुश्रूषासेही महाफलको प्राप्त हुई हूं ॥ ५६ ॥

॥

स्त्रीकी सब-कामना पतिकी शुश्रूषासे ही सफल होती है. हे साध्वी ! मनुष्यको पांच ऋण सर्वदा देने योग्य हैं ॥ ५७ ॥ अपने वर्णके धर्मानुसार धनसंचय करैं और वह संचित धन विधानानुसार उपयुक्त पात्रमें दान करें ॥ ५८ ॥ और सदा सत्य, सरलता, तप, दान और दयापरायण हों, तथा प्रतिदिन श्रद्धा सहित राग और द्वेष रहित यथाशक्ति समस्त शास्त्रोक्त क्रियाका अनुष्ठान करें, पुरुष इसप्रकार अपनी शक्तिके अनुसार स्वजातिविहित समस्त लोकोंको प्राप्त होते हैं ॥ ५९ ॥ ६० ॥ और महाक्लेशसे क्रमशः प्राजापत्यादि पवित्र धाममें जानेको समर्थ होते हैं, किन्तु स्त्रियें केवल पतिकी सेवासेही मनुष्यके दुःखोपार्जित इस सब पुण्यमें अर्द्धांशको प्राप्त

सर्वकामफलावाप्तिःपत्युःशुश्रूषणात्स्त्रियाः ॥ पंचर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा ॥ ५७ ॥ तथात्मवर्णधर्मेणकर्तव्योधन संचयः ॥ प्राप्तश्चार्थस्तथापात्रेविनियोज्योविधातः ॥ ५८ ॥ सत्यार्जवतपोदानदयायुक्तोभवेत्सदा ॥ क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टा रागद्वेषविवर्जिता ॥ ५९ ॥ कर्त्तव्याहरहःश्रद्धापुरस्कारेणशक्तितः ॥ स्वजातिविहितानेवंलोकान्प्राप्नोतिमानवः ॥ ६० ॥ क्लेशे नमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात् ॥ स्त्रियश्चैवंसमस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै ॥६१॥ पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यःपतिशुश्रूषयैवहि ॥ ना स्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञोनश्राद्धंनाप्युपोषितम्॥६२॥भर्तुःशश्रूषयैवैतालोकानिष्टान्व्रजंतिहि ॥ तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणंप्रति॥त्व यामतिःसदाकार्यायतोभर्त्तापरागतिः ॥ ६३ ॥ यद्देवेभ्योयच्चपित्रादिकेभ्यःकुर्याद्भर्ताभ्यर्चनंसत्क्रियाश्च ॥ तस्यार्द्धंवैकेवलानन्यचित्ता नारीभुङ्क्तेभर्तृशुश्रूषयैव॥६४॥पुत्रउवाच ॥ तस्यास्तद्वचनंश्रुत्वाप्रतिपूज्यतदादरात् ॥ प्रत्युवाचात्रिपत्नींतामनसूयामिदंवचः ॥६५॥

होती हैं. स्त्रियोंके पक्षमें यज्ञ श्राद्ध वा उपवासका कोई पृथक् विधान नहीं है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥ यह केवलमात्र स्वामीकी शुश्रूषासेही समस्त अभिलषितलोकों में जानेको समर्थ हैं. इसकारण हे साध्वि ! हे महाभागे ! तुम स्वामीकी शुश्रूषामें सदा यत्नवती होओ। क्योंकि स्वामीही स्त्रीकी परम गति है॥६३॥देखो--पुरुष, देवता, पितर वा अतिथिगणोंके प्रति सत्क्रियानुसार जो पूजादि प्रदान करते हैं, अनन्यमन स्त्री केवलमात्र स्वामीकी शुश्रूषासेही उसका अर्द्धांश भोग करती है ॥६४॥ पुत्रबोला--अत्रिपत्नी अनसूयाके यह वचन सुन द्विजरमणीने आदरसहित उसकी पूजा करके कहा ॥ ६५ ॥

हे स्वभावशुभदायिनी ! अब मैं धन्य और अनुग्रहीत हुई, देवताओंने भी आज मेरे ऊपर दृष्टिपात की, क्योंकि तुमने आज फिर मेरी स्वामीके प्रति श्रद्धा बढ़ादी ॥ ६६ ॥ मैंने जाना कि, स्त्रीकी पतिके समान और दूसरी गति नहीं है. उनके प्रसन्न होनेसे इसलोक और परलोकमें उपकार होता है ॥ ६७ ॥ हे यशस्विनी ! पतिके प्रसादसे ही स्त्रियें इसलोक और परलोकमें सुख भोगतीं हैं क्योंकि भर्त्ताही एकमात्र स्त्रियोंका देवता है ॥६८॥ हे महाभाग ! हे शुभे ! मानिनीने जब आपही मेरे स्थानमें आगमन किया है, तब मुझको वा मेरे स्वामीको क्या करना चाहिये ? इस विषयमें अनुमति दो ॥ ६९ ॥ अनसूयाने कहा--हे साध्वि ! तुम्हारे वचनानुसारही दिन रात्रिका भेद मिट

धन्यास्म्यनुगृहीतास्मिदेवस्याप्यवलोकतः ॥ यन्मेप्रकृतिकल्याणिश्रद्धांवर्धयसेपुनः॥६६॥जानाम्येतन्ननारीणांकश्चित्पतिसमागतिः ॥ तत्प्रीतिश्चोपकारायइहलोकेपरत्रच ॥ ६७ ॥ पतिप्रसादादिहचप्रेत्यचैवयशस्विनी ॥ नारीसुखमवाप्नोतिनार्याभर्त्ताहिदैवतम् ॥६८॥ सात्वंब्रूहिमहाभागेप्राप्तायाममममंदिरम्॥आर्यायाःकिंनुकर्त्तव्यंमयार्येणापिवाशुभे ॥ ॥६९॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ एतेदेवाःसहेन्द्रेणमामु पागम्यदुःखिताः ॥ त्वद्वाक्यापास्तसत्कर्मदिननक्तनिरूपणाः ॥७०॥ याचंतेहर्निशासंस्थांयथावदविखंडिताम् ॥ अहंतदर्थमायाताशृ णुचैतद्वचोमम ॥ ॥७१॥ दिनाभावात्समस्तानामभावोयागकर्मणाम् ॥ तदभावात्सुराःपुष्टिंनोपयांतितपस्विनि ॥७२॥ अह्नश्चैवसमु च्छेदादुच्छेदःसर्वकर्मणाम् ॥ तदुच्छेदादनावृष्ट्याजगदुच्छेदमेष्यति ॥७३॥ तत्त्वमिच्छसिधैर्येणजगदुद्धर्त्तुमापदः ॥ प्रसीदसाध्विलो कानांपूर्ववद्वर्त्ततांरविः॥७४॥ ॥ ब्राह्मण्युवाच॥ ॥मांडव्येनमहाभागेशप्तोभर्त्ताममेश्वरः॥सूर्योदयेविनाशंत्वंप्राप्स्यसीत्यतिमन्युना॥७५॥

जानेसे समस्त सत्क्रिया नष्ट होगई हैं, इसकारण यह देवता अत्यन्त दुःखी होकर देवराज इंद्रके सहित मेरे निकट आय ॥७०॥ पूर्वके समान अखंडित दिनरातके होनेकी प्रार्थना करते हैं, मैं इसीलिये तुम्हारे पास आई हूं मेरा वचन सुनो ॥ ७१ ॥ हे तपस्विनी ! दिनके अभावमें समस्त यागकर्मका अभाव हुआ है और यज्ञके न होनेसे देवताओंकी पुष्टि नहीं होती ॥ ७२ ॥ दिनके न होनेसे सब कर्म नष्ट होगये हैं, और कर्मोंके नष्ट होनेसे अनावृष्टि होगई है. जिससे कि, सब जगत् नष्ट होना चाहता है ॥ ॥ ७३ ॥ ऐसी आपदासे जगत्को रक्षित करनेकी यदि तुम्हारी इच्छाहो तो हे साध्वि ! लोकोंपर प्रसन्न होओ, और सूर्यदेवभी पहिलेके समान उदितहों ॥ ७४ ॥ ब्राह्मणीने कहा--हे महाभागे !

माण्डव्यमुनिने अत्यन्त क्रोधित होकर मेरे भर्त्ताको इस प्रकार शाप दिया है कि, "सूर्य उदय होतेही तेरा पति मर जायगा" ॥७५॥ अनसूया बोली--हे कल्याणी! यदि तुम्हारी अभिलाषा हो तो मैं तुम्हारे स्वामीका देह पूर्ववत् करूंगी ॥७६॥ हे वरवर्णिनी! पतिव्रतास्त्रीकी महिमा सम्यक् प्रकार मुझको आराधनीय है अतएव मैं तुम्हारा सन्मान करूंगी ॥ ७७ ॥ पुत्रने कहा-ब्राह्मणीके "तथास्तु" कहनेपर तपस्विनी अनसूयाने अर्घ्य उद्यतकरके जब सूर्यदेवका आवाहन किया, तब दशदिन क्रमागत रात्रि थी, अर्थात् उस समयतक दश रात्रियोंका प्रमाण बीत गया था ॥७८॥ अनंतर प्रफुल्ल कमलके समान लालवर्ण उरुमण्डल भगवान् विवस्वान्‌ने जैसेहीउदयाचलमें आरोहण किया॥ ७९॥इसी बीचमें उसके भर्ता ब्राह्मणका प्राण नष्ट हुआ और

॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ यदितेरोचतेभद्रेततस्तद्वचनादहम् ॥ करोमिपूर्ववद्देहंभर्त्तारंवचनात्तव ॥ ७६ ॥ मयापिसर्वथास्त्रीणांमाहात्म्यंवरवर्णिनी ॥ पतिव्रतानामाराध्यमितिसंमानयामिते ॥ ७७ ॥ पुत्रउवाच ॥ तथेत्युक्तेतथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ॥ अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदशार्धरात्रेतदानिशि ॥ ७८ ॥ ततोविवस्वान्भगवान्फुल्लपद्मारुणाकृतिः ॥ शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमंडलः ॥ ७९ ॥ समनंतरमेवास्यभर्त्ताप्राणैर्व्ययुज्यत ॥ पपातचमहीपृष्ठेपततंजगृहेचसा ॥८०॥ ॥ अनसूयोवाच ॥ ॥ नविषादस्त्वयाभद्रेकर्तव्यःपश्यमेबलम् ॥ पतिशुश्रूषयावाप्तंतपसःकिंचिरेणमे ॥ ८१ ॥ यथाभर्तृसमंनान्यमपश्यंपुरुषंक्वचित् ॥ रूपतःशीलतोबुद्ध्यावाङ्माधुर्यादिभूषणैः ॥८२॥ तेनसत्येनविप्रोयंव्याधिमुक्तःपुनर्युवा ॥ प्राप्तोतुजीवितंभार्यासहायः शरदांशतम् ॥८३॥ यथाभर्तृसमंनान्यमहंपश्यामिदैवतम्॥तेनसत्येनविप्रोयंपुनर्जीवत्वनामयः॥८४॥कर्मणामनसावाचाभर्तुराराधनंप्रति॥यथाममोद्यमोनित्यंतथायंजीवताद्विजः॥८५॥

वह जैसेही पृथ्वीमें गिरा, द्विजरमणीने उसी समय उसको पकड़ लिया ॥ ८० ॥ अनसूया बोली हे भद्रे! तुम विषाद मत करो, मैंने केवल मात्र पतिकी सेवासे जो तपोबल प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाई देगी ॥८१॥ रूप, शील, बुद्धि, वाक्य और मधुरता इत्यादि सद्गुणोंके द्वारा कभी किसी पुरुषको यदि स्वामीके समान नहीं जानती हूं ॥८२॥ तो उसी सत्यके बलसे यह ब्राह्मण व्याधिमुक्त और युवा हो, फिर जीवन प्राप्तकर पत्नीके सहित सौ वर्ष जीवित रहै ॥८३॥मैं यदि अन्य देवताको स्वामीके समान नहीं जानती हूं तो इसी सत्यसे यह ब्राह्मण रोगरहित होकर फिर जीवित हो॥८४॥और काय, मन, वचनसे स्वामीके आराधनामें यदि नित्य मेरा उद्यम है तो यह द्विजवर जीवित हो ॥ ८५ ॥

पुत्रने कहा--अनन्तर वह ब्राह्मण व्याधिसे छूटकर युवाकलेवर हो अजर अमरकी समान देहकी प्रभासे घरको प्रकाशमान करता हुआ उठ खड़ा हुआ॥ ८६ ॥ और पुष्पवृष्टि तथा देवताओंके बाजोंकी ध्वनि होने लगी, फिर देवताओंने अत्यन्त प्रसन्न होकर अनसूयासे कहा ॥ ८७ ॥ देवता बोले--हे कल्याणी ! तुमने देवताओंका बड़ा कार्य संपादन किया है अत एव वर ग्रहण करो । हे सुव्रते ! सूर्य उदयके कारण तुम वर मांगो ॥८८॥ हे तपस्विनी ! देवता तुमको वर देनेके लिये उद्यत हुए हैं, अनसूया बोली- हे पितामह इत्यादि देवताओ!आप यदि मेरे प्रति प्रसन्न होकर वर देनेके अभिलाषी हुए हैं॥और मुझको वर देनेके योग्य विचारा है, तो यह वर दो, जिससे ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर मेरे पुत्ररूपमें जन्म

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ ततोविप्रःसमुत्तस्थौव्याधिमुक्तःपुनर्युवा ॥ स्वभाभिर्भासयन्वेश्मवृंदारकइवाजरः ॥ ८६ ॥ ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्देववाद्यानिसस्वनुः ॥ लेभिरेचमुदंदेवाअनसूयामथाब्रुवन् ॥८७॥ देवाऊचुः॥ वरंवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यंमहत्कृतम्॥ आदित्योदयसद्भावाद्वरंवरयसुव्रते॥८८॥त्वयायस्मात्ततोदेवावरदास्तेतपस्विनि॥अनसूयोवाच॥यदिदेवाःप्रसन्नामेपितामहपुरोगमाः॥८९॥ वरदावरयोग्याचयद्यहंभवतांमता ॥ तद्यांतुममपुत्रत्वंब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥ ९० ॥ योगंचप्राप्नुयांभर्तृसहिताक्लेशमुक्तये ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमस्त्वितिदेवास्तांब्रह्मविष्णुशिवादयः ॥ ९१ ॥ उक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतपस्विनीम् ॥ ततःकालेबहुतिथेद्वितीयोब्रह्मणःसुतः ॥ ९२ ॥ स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ॥ ऋतुस्नातांसुचार्वंगींलोभनीयतमाकृतिम् ॥ ९३ ॥ सकामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिंदिताम् ॥ तस्याभिपश्यतस्तांतुविकारोयोभ्यजायत ॥ ९४ ॥ तमपोवाहपवनस्तिर्यगूर्ध्वंचवेगवान् ॥ ब्रह्मरूपंचशुक्लाभंपतमानंसमंततः ॥ ९५ ॥

ग्रहण करें ॥८९॥९०॥और मैं स्वामीके सहित क्लेशमुक्तिके निमित्त योगको प्राप्त हूं । पुत्रने कहा--तब ब्रह्मा, विष्णु, और महेश्वरादि देवता "तथास्तु" कहकर ॥९१॥ उस तपस्विनीका यथाविधि सन्मान करके चले गये । फिर कुछ काल बीतनेपर ब्रह्माजीके दूसरे पुत्र ॥ ९२ ॥ भगवान् अत्रिने एक दिन सर्वाङ्गसुन्दरी मनोहर मूर्त्ति अपनी पत्नीको ऋतुसे निवृत्त होकर स्नान किये देख॥९३॥ कामके वशीभूत हो मनमें उस अनिन्दिताकी भजन करी । उसके संग मनमें संभोग करनेसे मुनिवरका जो तेज स्खलित हुआ था ॥ ९४ ॥ वेगवान् पवनने उस तेजको वहन

करके ऊर्ध्वमें और तिर्यक् भावमें प्रवाहित किया, ब्रह्मतेजसम्पन्न शुक्ल कान्ति रजोगुणस्वरूप उस तेजने गिरनेके समय चन्द्ररूपसे दशो दिशाओंका आश्रय किया, समस्त प्राणियोंके जीवनाधार उन्हीं सोम अर्थात् ब्रह्मरूपी चन्द्रने प्रजापति अत्रिके मानस पुत्र रूपमें अनसूयासे जन्मग्रहण किया था ॥ ९५ ॥ ९६ ॥ यह सब तत्त्वोंकी आयु और आधार है, महात्मा विष्णुनेभी अत्यन्त संतुष्ट होकर अपना अंशप्रदानपूर्वक सत्वगुणावलम्बी द्विजोत्तम दत्तात्रेय नामसे जन्मग्रहण किया है, विष्णुने दत्तात्रेयके नामसे प्रसिद्ध होकर अनसूयाका स्तनपिया था ॥९७॥ ॥९८ ॥ यही अत्रिके दूसरे विष्णुरूप पुत्र हैं, जो क्रोधके कारण माताके उदरसे सात दिनमेंही जन्मे थे ॥ ९९ ॥ उन्मार्गगामी हैहयाधिपतिके

सोमरूपंरजोरूपंदिशस्तंजगृहुर्दश ॥ ससोमोमानसोजज्ञेतस्यामात्रेःप्रजापतेः ॥ ९६ ॥ पुत्रःसमस्ततत्त्वानामायुराधारएवच ॥ तुष्टेनविष्णुनाजज्ञेदत्तात्रेयोमहात्मना ॥ ९७ ॥ स्वशरीरात्समुत्पन्नःसत्त्वोद्रिक्तोद्विजोत्तमः ॥ दत्तात्रेयइतिख्यातःसोनसूयास्तनंपपौ ॥ ९८ ॥ विष्णुरेवावतीर्णोसौद्वितीयोत्रेःसुतोभवत् ॥ सप्ताहात्प्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयतः ॥ ९९ ॥ हैहयेंद्रमुपावृत्तमपराध्यन्तमुद्धतम् ॥ दृष्ट्वात्रौकुपितःसद्योदग्धुकामःसहैहयम् ॥ १०० ॥ गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः ॥ दुर्वासास्तमसायुक्तोरुद्रांशःसोभ्यजायत ॥ १ ॥ इतिपुत्रत्रयंतस्याजज्ञेब्रह्मेशवैष्णवम् ॥ सोमोब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोभ्यजायत ॥ २ ॥ दुर्वासाःशंकरोजज्ञेवरदानाद्दिवौकसम् ॥ सोमःस्वरश्मिभिःशीतैर्वीरुदोषधिमानवान् ॥ ३ ॥ आप्याययन्सदास्वर्गेवर्त्ततेसप्रजापतिः ॥ दत्तात्रेयःप्रजाःपातिदुष्टदैत्यनिबर्हणात् ॥ ४ ॥ शिष्टानुग्रहकृद्योगीज्ञेयश्चांशःसवैष्णवः ॥ निर्दहत्यवमंतारंदुर्वासाभगवानजः ॥ ५ ॥

उद्धत स्वभावसे अत्रि मुनिका अपमान रूप अपराध करनेसे, वह यह देख कुपित हो हैहयको दग्ध करनेके निमित्त ॥ १०० ॥ गर्भवासरूप महाक्लेश और दुःखसे अमर्षयुक्त हो तमोगुणप्रधान रुद्रके अंशसे श्रीदुर्वासाजीका जन्म हुआ ॥ १ ॥ इसप्रकार ब्रह्मा, विष्णु और महादेव इन तीनोंने अनसूयाके पुत्ररूपमें जन्म ग्रहण किया, ब्रह्माने चन्द्ररूपमें, विष्णुने दत्तात्रेय रूपमें ॥ २ ॥ और महादेवने दुर्वासा रूपमें देवताओंके वरदानसे जन्म ग्रहण किया, था । वह प्रजापति सोम अर्थात् चंद्रमा अपनी शीतल किरणोंके द्वारा लता: औषधी और मनुष्यको ॥ ३ ॥ तृप्त करके स्वर्गधाममें वर्तमान सदा रहते हैं और विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी दुष्टदैत्योंका विनाश ॥ ४ ॥ और साधु वैष्णवोंके प्रति अनुग्रह

प्रकाश करते हुए प्रजापालनमें तत्परहुए और भगवान् अत्र दुर्वासा ॥ ५ ॥ रुद्र संबंधी शरीर अवलम्बन करके नेत्र, मन और वचन द्वारा उद्धत हो अपमान करनेवाले दुष्टोंका विनाश करने लगे, इसके पीछे भगवान् अत्रिने चन्द्रमाको सोमत्वका पद देकर प्रजापति किया ॥ ६ ॥ विष्णुके अंशसे उत्पन्न दत्तात्रेयजी योग अवलम्बमें विषयभोग और दुर्वासा मातापिताको छोड़कर उत्तम व्रत ॥ ७ ॥ अवलम्बन करके उन्मत्तभावसे पृथ्वीमें विचरण करने लगे. जो कि, दत्तात्रेय परमयोगी थे, इस कारण मुनिपुत्रगण सदाही इनको घेर रहते ॥ ८ ॥ वह उनके छोड़नेकी अभिलाषासे सरोवरमें बहुत दिनोंतक निमग्न रहते तथापि वह अत्यन्त प्रियदर्शन और महात्मा थे ॥ ९ ॥ इस कारण मुनिकुमारोंने

रौद्रभावंसमाश्रित्यदृङ्मनोवाग्भिरुद्धतः ॥ सोमत्वंभगवानत्रिपुनश्चक्रेप्रजापतिः ॥ ६ ॥ दत्तात्रेयोपिविषयान्योगस्थोदद्दशेहरिः ॥ दुर्वासाःपितरंत्यक्त्वामातरंचोत्तमंव्रतम् ॥७॥ उन्मत्ताख्यंसमाश्रित्यपरिबभ्राममेदिनीम् ॥ मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोप्यसंगिताम् ॥८॥ अभीप्समानःसरसिनिममज्जचिरंविभुः ॥ तथापितंमहात्मानमतीवप्रियदर्शनम ॥ ९ ॥ तत्यजुर्नकुमारास्तेसरसस्तीरसंश्रयाः ॥ दिव्येवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजंतितम् ॥ ११० ॥ तत्प्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारकाः ॥ ततोदिव्यांबरधरांसुरूपांसुनितंबिनीम् ॥ ११ ॥ नारीमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनिः ॥ स्त्रीसंनिकर्षिणंह्येतेपरित्यक्ष्यंतिमामिति ॥ १२ ॥ मुनिपुत्रास्ततोयोगेस्था स्यामितिविचिंतयन् ॥ तथापितेमुनिसुतानत्यजंतियदामुनिम् ॥ १३ ॥ ततःसहतयानार्यामद्यपानमथाकरोत् ॥ सुरापानरतंतेनस भार्यंतत्यजुस्ततः ॥ १४ ॥ गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् ॥ मन्यमानामहात्मानंतयासहबहिष्क्रियम् ॥ १५ ॥

उनको नहीं छोड़ा और उसी सरोवरके तटपर वास करने लगे. इसप्रकार दिव्य शतवर्ष वीतजानेपर भी खडे रहे ॥ ११० ॥ जब उनके प्रति प्रीतिसे सब मुनिकुमारोंने उनको नहीं छोड़ा तब दिव्य वस्त्र धारण किये स्वरूपवान् नितम्बिनी ॥ ११ ॥ कल्याणी एक स्त्रीको संगलेकर मुनिवर दत्तात्रेयजी जलसे अवतीर्ण हुए फिर विचारा कि मैं स्त्रीके निकट स्थिति करताहूं, ऐसा समझकर यह मुझको छोड़ देंगे ॥ १२ ॥ और मैं भी निःसंग होनेपर योगपरायण हो अकेला रहूंगा किन्तु तो भी जब मुनि कुमारोंने इनको नहीं छोड़ा ॥ १३ ॥ तब वह उस कामिनिके संग मद्यपान करने लगे और विचारा कि—"भार्याके सहित मद्यपानमें रत जानकर छोडदेंगे" ॥ १४ ॥ किन्तु तो भी उन मुनिकुमारों ने गीता वाद्यादि

रमणीसंभोग और उनके संसर्गसे दूषित त्रिक्रियायुक्त मुनिको महात्मा जानकर नहीं छोडा ॥१५॥ वह योगीश्वर दत्तात्रेय वारुणी पान करकेभी चाण्डालके घरमें स्थित वायुके समान दूषित नहीं हुए ॥ १६ ॥ जो हो, वह योगवित् योगीश्वर दत्तात्रेयजी पत्नीके सहित सुरापानमें रत हुए तपस्या करनेलगे, इस परभी यह मुमुक्षु योगीजनोंके चिन्तनीय हुएथे ॥१७॥ बलवान् कार्त्तवीर्यके स्वर्ग जानेके पीछे कुछ काल बीतनेपर पुरवासी, मंत्री और पुरोहितों ने एकत्र मिलकर उसके पुत्र अर्जुनको स्वीय राज्यमें अभिषिक्त करनेके लिये बुलाया, उसने उनके द्वारा बुलाये जाकर यह कहा--हे मंत्रीगण ! मैं राज्य नहीं करूंगा, क्योंकि राज्यका परिणाम नरकभोग है ॥ १८ ॥ १९ ॥ देखो, इसीलिये कर ग्रहण किया जाता है जिसका

नात्रापद्दोषंयोगीशोवारुणींसपिबन्नपि ॥ अंतावसायिवेश्मांतर्मातरिश्वास्पृशन्निव ॥ १६ ॥ सुरांपिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित् ॥ योगीश्वरश्चिंत्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ॥ १७ ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यकार्त्तवीर्योर्ज्जुनोबली ॥ कृतवीर्येदिवंयातेमंत्रिभिःसपुरोहितैः ॥ १८ ॥ पौरैश्चात्माभिषेकार्थंसमाहूतोब्रवीदिदम् ॥ नाहंराज्यंकरिष्यामिमंत्रिणोनरकोत्तरम् ॥ १९ ॥ यदर्थंगृह्यतेशुल्कंतदनिष्पादयन्वृथा ॥ पण्यानांद्वादशंभागंभूपालायवणिग्जनः ॥ १२० ॥ दत्त्वात्मरक्षिभिर्मार्गेरक्षितोयातिदस्युतः ॥ गोपाश्चघृततक्रादेःषड्भागंचकृषीवलाः ॥ २१ ॥ दत्त्वान्यद्भूभुजेदद्युर्यदिभागंततोधिकम् ॥ पण्यादीनामशेषाणांवणिजोगृह्णतस्ततः ॥ २२ ॥ अग्निहोत्रंतपःसत्यंवेदानांचैवसाधनम् ॥ आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टमित्यभिधीयते ॥ २३ ॥ वापीकूपतडागानिदेवतायतनानिच ॥ अन्नप्रदानमर्थिभ्यःपूर्त्तमित्यभिधीयते ॥ २४ ॥ इष्टापूर्त्तविनाशायतद्राज्ञश्चौरकर्मिणः ॥ यदन्यैःपाल्यतेलोकस्तद्वृत्त्यंतरसंश्रितः ॥ २५ ॥

लेना बडा दुर्घट है, वैश्यगण व्यापारी वस्तुका बारहवां भाग राजाको ॥१२०॥ देकर रक्षकोंके द्वारा चोरोंके भयसे रक्षित होकर जाते आते हैं, ग्वालिये घृत तक्रादि (मठादि) का छठा भाग और किसान भी सब धान्योंका छठा भाग ॥२१॥ राजाको देकर यदि यह दूसरेको दें तो इनसे सब व्यापारी वस्तुओंका अधिक भागलेना चाहिये ॥२२॥ अग्निहोत्र, तप, सत्य, वेदोंका साधन अतिथि सत्कार, वैश्वदेव यह इष्ट कहाता है ॥ २३ ॥ बावडी, कुए, सरोवर, देवताओंके स्थान बनवाना और अर्थियोंको दान देना पूर्त्त कहाता है॥२४॥ चौरकर्मा अर्थात् अधिक कर लेनेवाले राजा

को इष्टापूर्त्तका नाशक कहा जाता है, जो अन्य वृत्तिको प्राप्तकर दूसरोंसे प्रजा पलवाता है॥२५॥ और छठा भाग लेता है, वह राजा निःसन्देह नरकको जाता है. पूर्वकालमें पण्डितोंने प्रजाकी रक्षा करनेके लियेही राजाका वेतन स्वरूप छठाभाग निरूपण किया है॥२६॥ राजा उसको ग्रहण करके यदि रीतिके अनुसार प्रजाकी रक्षा न करैं, तो चोरी करना हुआ, और इसकारण वह चोरीकेपापमें पापी होता है, अतएव यदि तपस्या करके योगित्व लाभ करसकूं ॥२७॥ और पृथ्वीमें शस्त्रधारी मान्य तथा पृथ्वीका पालन करनेमें सामर्थ्ययुक्त होकर एक मात्र नरपति होसकूं तभी मैं इसप्रकार ऋद्धिमान होकर राज्य करूंगा ॥ २८ ॥ नहीं तो वृथा आत्माको पापमार्ग करनेकी इच्छा नहीं करता. इसप्रकार

गृह्णतोबलिषड्भागंनृपतेर्नरकोध्रुवम् ॥ निरूपितमिदंराज्ञःपूर्वैरक्षणवेतनम् ॥ २६ ॥ अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनंनृपतेर्भवेत् ॥ तस्मा द्यदितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमीप्सितम् ॥ २७ ॥ भुवःपालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपतिः ॥ पृथिव्यामस्त्रभृन्मान्यस्त्वहमेवर्द्धिसंयुतः ॥ २८ ॥ ततोभविष्येनात्मानंकरिष्येपापभागिनम् ॥ तस्यतंनिश्चयंज्ञात्वामंत्रिमध्यस्थितोब्रवीत् ॥ २९ ॥ गर्गोनाममहाबुद्धि र्मुनिर्भूपवयोतिगः ॥ भक्त्यातुकृपयाविष्टस्तंतोषयितुमर्हति ॥ १३० ॥ यद्येवंकर्त्तुकामस्त्वंराज्यंसम्यक्प्रशासितुम् ॥ ततःशृणुष्वमे वाक्यंकुरुष्वचनृपात्मज ॥ ३१ ॥ दत्तात्रेयंमहात्मानंसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ॥ तमाराधयभूपालपातियोभुवनत्रयम् ॥ ३२ ॥ योगयुक्तंमहात्मानंसर्वत्रसमदर्शिनम् ॥ विष्णोरंशंजगद्धातुरवतीर्णंधरातले ॥ ३३ ॥ यमाराध्यसहस्राक्षःप्राप्तवान्पदमात्मनः ॥ हतंदुरात्मभिर्दैत्यैर्जघानचदितेःसुतान् ॥ ३४ ॥

अर्जुनका निश्चय जान मंत्रियोंके बीचमें बैठे हुए ॥ २९ ॥ बुद्धिमान् बडी आयुवाले मुनियोंमें श्रेष्ठ गर्ग नामक एक मुनि भक्ति और कृपा पूर्वक राजाको प्रसन्न करते हुए कहने लगे ॥ ३० ॥ हे राजकुमार ! जो आपको सम्यक् प्रकार राज्यशासन करनेकी इच्छा हो तो जो मैं कहता हूं, सो सुनो और उसे करो ॥३१॥ अर्थात् सह्याद्रि पर्वत पर आश्रम बनाकर स्थित तीनों भुवनके पालन करनेवाले महात्मा दत्तात्रेयजीकी आराधना करो ॥३२॥ जो परमयोगी, महाभाग और सर्वत्र समदर्शी है, जो जगत्की रक्षा करनेके लिये विष्णुके अंशसे जन्म ग्रहण करके पृथ्वी तलमें अवतीर्ण हुए हैं ॥३३॥ और जिनकी आराधना करके सहस्रनयन इन्द्र दैत्योंसे हरण किये अपने पदको प्राप्त हुए हैं ॥ ३४ ॥

अर्जुनने कहा—किस प्रकार देवताओंने प्रतापी दत्तात्रेयजीकी आराधना की थी और इन्द्र भी किस प्रकारसे दैत्योंसे हरे हुए अपने पदकी प्राप्त हुए थे? ॥ ३५॥ गर्गजीने कहा—किसी समय देवता और असुरों का भयंकर युद्ध हुआ, तब जम्भ दैत्योंका अधिपति और शचीपति इन्द्र देवताओंके अधिनायक हुए थे ॥ ३६ ॥ इसप्रकार युद्धकरनेमें दिव्य संवत्सर बीतगया, तदनन्तर युद्धमें देवताओंकी हार और दैत्योंकी जीत हुई ॥ ३७ ॥ अनन्तर देवतागण विप्रचित्ति इत्यादि प्रधान प्रधान दानवोंसे हारकर इधर उधर भागनेलगे और शत्रुओंके जीतनेमें निरुत्साह हो ॥ ३८ ॥ दैत्यसेनाके वध करनेकी इच्छासे बृहस्पतिके निकट जाय वालखिल्य ऋषियोंके

॥ अर्जुनउवाच ॥ ॥ कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रेयःप्रतापवान् ॥ कथंवापहृतंदैत्यैरिंद्रत्वंप्रापवासवः ॥ ३५ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ दैत्यानांदेवतानांचयुद्धमासीत्सुदारुणम् ॥ दैत्यानामीश्वरेजंभेदेवानांचशचीपतौ ॥ ३६ ॥ तेषांतुयुध्यमानानांदिव्यःसंवत्सरोगतः ॥ ततोदेवाःपराभूतादैत्याविजयिनोऽभवन् ॥ ३७ ॥ विप्रचित्तिमुखैर्देवादानवैस्तेपराजिताः ॥ पलायनकृतोत्साहानिरुत्साहाद्विपज्जये ॥ ३८ ॥ बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सवः ॥ अमंत्रयंतसहितावालखिल्यैःसहर्षिभिः ॥ ३९ ॥ ॥ बृहस्पतिरुवाच ॥ ॥ दत्तात्रेयंमहाभागमत्रेःपुत्रंतपोधनम् ॥ विकृताचरणंभक्त्यासंतोषयितुमर्हथ ॥ १४० ॥ सवोदैत्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ॥ ततोहनिष्यथसुरैःसहितान्दैत्यदानवान् ॥ ४१ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ हंतुंशक्तानसंदेहोदत्तात्रेयप्रसादतः ॥ इत्युक्तास्तेतदाजग्मुर्दत्तात्रेयाश्रमंसुराः ॥ ४२ ॥ ददृशुश्चमहात्मानंशांतंलक्ष्म्यासमन्वितम् ॥ उद्गीयमानंगन्धर्वैःसुरापानरतंमुनिम् ॥ ४३ ॥

सहित मंत्रणा (परामर्श) करने लगे ॥ ३९ ॥ बृहस्पतिजी बोले—हे देवताओ ! तुम भक्तिसहित तपोधन महात्मा विकृताचारी अर्थात् जिनका आचरण अच्छा नहीं है, उन्हीं अत्रिपुत्र दत्तात्रेयको संतुष्ट करनेकी चेष्टा करो ॥ १४० ॥ वह वरद संतुष्ट होकर दैत्योंका नाश करनेके निमित्त तुमको वर देंगे, तब तुम मिलकर दैत्य और दानवोंको मारसकोगे ॥ ४१ ॥ गर्गजी बोले—देवता बृहस्पतिजीके दत्तात्रेयके प्रसादसे तुम अवश्य दैत्योंको मार सकोगे, इसप्रकार कहनेपर दत्तात्रेयजीके आश्रममें गये ॥ ४२ ॥ और देखा कि वह महात्मा, लक्ष्मीजीके सहित युक्त होकर सुरा पानमें रत होरहे हैं और गंधर्वगण उनके निकट गान करते हैं ॥ ४३ ॥

ततस्यगत्वाप्रणतिंचक्रुःसर्वार्थसाधनीम् ॥ भक्त्यातस्योपजह्रुश्चमद्यपस्यसुरादिकम् ॥ ४४ ॥ तिष्ठंतमनुतिष्ठंतियांतंयांतिदिवौकसः॥ आराधयामासुरधःस्थितास्तिष्ठंतमासने ॥ ४५ ॥ सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेयःकिमिष्यते ॥ मत्तोभवद्भिर्येनेयंशुश्रूषाक्रियतेमम ॥ ॥ ४६ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ दानवैर्मुनिशार्दूलजंभाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ॥ हृतंत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नशः ॥ ४७ ॥ तद्वधेकुरुबुद्धिंत्वंपरित्राणायनोनघ ॥ त्वत्प्रसादादभीप्सामःपुनःप्राप्तुंत्रिविष्टपम् ॥ ४८ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ मद्यासक्तोहमुच्छिष्टोनचैवाहंजितेंद्रियः ॥ कथमिच्छथमत्तोपिदेवाःशत्रुपराभवम् ॥ ४९ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ अनघस्त्वंजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ॥ विद्याक्षालनशुद्धांतर्निविष्टज्ञानदीधिते ॥ १५० ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिनः ॥ अस्यास्तुयोपितःसंगादहमुच्छिष्टतांगतः ॥ ५१ ॥ स्त्रीसंभोगोतिदुःखायसातत्येनोपसेवितः ॥ एवमुक्तास्ततोदेवाःपुनर्वचनमब्रुवन् ॥ ५२ ॥

देवता उनके निकट जाय प्रणामपूर्वक सब अर्थ सिद्ध करनेवाली स्तुति करने लगे और उनको भक्ष्य भोज्य तथा माल्यादि लाने लगे ॥ ४४ ॥ उनके बैठनेपर यह भी बैठते और गमन करनेपर यह भी गमन करते, इस प्रकार देवताओंने उनके आसनके निम्न भागमें बैठकर मुनिकी आराधना करी थी ॥ ४५ ॥ अनन्तर दत्तात्रेयजीने प्रणत देवताओंसे कहा तुम मेरे निकट क्या प्रार्थना करते हो, जिससे इस प्रकार मेरी सेवा कर रहे हो ? ॥ ४६ ॥ देवता बोले--हे मुनिशार्दूल ! जम्भ इत्यादि दानवोंने हमको आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोक और सब यज्ञ भाग हरण किया है ॥ ४७ ॥ हे पापरहित ! आप उनसे विनाश करनेमें मन लगाकर हमारी रक्षा कीजिये. आपके प्रसादसे हम फिर स्वर्गको प्राप्त करें, यही हमारी अभिलाषा है ॥ ४८ ॥ दत्तात्रेयजी बोले--मैं मद्यपानमें आसक्त, अजितेंद्रिय और निरन्तर अपवित्र हूं, हे देवताओ ! फिर तुम किस प्रकारसे मेरे द्वारा शत्रुओंके जीतनेकी इच्छा करते हो ? ॥ ४९ ॥ देवता बोले--हे जगन्नाथ ! आपने विद्या प्रक्षालित-अंतःकरणमें ज्ञानरूपी किरणोंका सन्निवेश किया है, अतएव आप निष्पाप और किसी विषयमें लिप्त नहीं हैं ॥ १५० ॥ दत्तात्रेय बोले--हे देवताओ ! यथार्थ ही मुझमें विद्या है और मैं समदर्शी हूं, किन्तु इस स्त्रीके संसर्गसे अपवित्र होगया हूं ॥ ५१ ॥ क्योंकि उससे सेवित होकर स्त्रीसंसर्ग करनेसे यह अत्यन्त दोषकी खानि स्वरूप हैं देवता इसप्रकार सुनकर फिर कहनेलगे ॥ ५२ ॥

देवता बोले--हे अनघ ! हे मुनिश्रेष्ठ ! हे जगन्नाथ यह दूषित नहीं होती. हे विभो ! जो विद्या तुम सर्वज्ञके हृदय स्थित है॥५३॥ हे जगन्नाथ ! जिस प्रकार सूर्यकी किरणें ब्राह्मण और चाण्डालादिक संसर्गसे पवित्र वा दूषित नहीं होती इसीप्रकार यह जगन्माता भी आपके संसर्गसे दूषित नहीं हैं ॥ ५४ ॥ गर्गजी बोले--मुनिवर दत्तात्रेयजीने देवताओंका इसप्रकार वचन सुनकर कुछेक हँसते हुए उनसे कहा हे त्रिदशगण ! यदि तुम्हारा मन ऐसा ही है ॥ ५५ ॥ तो हे सुरसत्तम ! तुम सब असुरोंको युद्धके निमित्त बुलाकर इस स्थानमें मेरे दृष्टिगोचर करो, विलम्ब मत करो ॥ ५६ ॥ क्योंकि मेरी दृष्टिपातरूप अग्निद्वारा उनका बल और तेज क्षीण होगा और वह सब मेरे दर्शनसे तत्काल मृत्युको प्राप्त

॥ देवाऊचुः ॥ अनघेयंमुनिश्रेष्ठजगन्मातानदुष्यति ॥ यासाविद्यातवविभोसर्वज्ञस्यहृदिस्थिता ॥ ५३ ॥ यथांशुमालासूर्यस्यद्विज चंडालसंगिनी ॥ नदुष्यतिजगन्नाथतथेयंवरवर्णिनी ॥ ५४ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ एवमुक्तस्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोब्रवीदिदम् ॥ प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतांमतम् ॥ ५५ ॥ तदाहूयासुरान्सर्वान्युद्धायसुरसत्तमाः ॥ इहानयतमद्दृष्टिगोचरंमाविलंब्यताम् ॥ ५६ ॥ मद्दृष्टिपातहुतभुक्प्रक्षीणबलतेजसः ॥ येननाशमशेषास्तेप्रयांतिममदर्शनात् ॥ ५७ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा देवैर्दैत्यामहाबलाः ॥ आहवायसमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम् ॥ ५८ ॥ तेहन्यमानादैतेयैर्देवाःसर्वेभयातुराः ॥ दत्तात्रेयाश्रमंजग्मुःसमस्ताःशरणार्थिनः ॥ ५९ ॥ तमेवविविशुर्दैत्याःकालयंतोदिवौकसः ॥ ददृशुस्तंमहात्मानंदत्तात्रेयंमदालसम् ॥ १६० ॥ वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगतःशुभाम् ॥ भार्यांचास्यसुचार्वंगींलक्ष्मीमिंदुनिभाननाम् ॥ ६१ ॥ नीलोत्पलाभनयनांपीनश्रोणिपयोधराम् ॥ सुदतींमधुराभाषांसर्वयोषिद्गुणैर्युताम् ॥ ६२ ॥

होंगे ॥ ५७ ॥ गर्गजी बोले उनके इसप्रकार वचनसुनकर देवताओं ने युद्धके निमित्त असुरोंको बुलाया. महाबलवान् असुरोंनेभी युद्धमें आय, कोपमें भर देवताओंपर आक्रमण किया॥५८॥अनंतर सब देवता दानवोंकी मारसे चित्तमें भय पाय शरणकी इच्छा कर दत्तात्रेयजीके आश्रममें गये ॥५९॥दैत्योंनेभी उनका विनाश करनेके लिये उसी आश्रममें जाकर मदसे आलसी महात्मा दत्तात्रेयजीको देखा॥१६०॥और उनके वामपार्श्वमें बैठी हुई संपूर्ण जगत्की इष्टदायिनी शुभकारिणी चन्द्रमुखी उनकी पत्नी लक्ष्मीको देखा॥६१॥दैत्य उस नीले कमलके समान नेत्रवाली पीन श्रोणि पीनस्तन

वाली मधुरभाषिणी और स्त्रीके सब गुणोंसे युक्त ललनाको॥६२॥सन्मुख देखकर दैत्यगण उसके लेनेमें अत्यन्त अभिलाषी हुए और उद्धत कामकी पीडासे आतुर हो मनमें धैर्य धारण न करसके ॥६३॥ और देवताओंको छोडकर उस कामिनीके हरण करनेमें अभिलाषी हुए, वह इस पापसे मुग्ध और हतवीर्य होकर इसप्रकार कहने लगे॥६४॥कि, यह स्त्रीरत्न तीनों लोकोंका सार है, हम यदि इस ललनारत्नको ग्रहण करसकें तभी कृतकार्य हों और हमारा चित्तभी भावनारहित हो ॥ ६५ ॥ अतएव हे दानवगण ! हम इस स्त्रीको पालकी में चढाकर अपने घर लेजावेंगे, इस विषयमें निश्चन्त होओ ॥ ६६ ॥ गर्गजी बोले-तदनन्तर उन सानुराग दैत्योंने आपसमें इस प्रकार परामर्शकर कामबाणसे पीडित

दृष्ट्वाग्रस्तदादैत्याःसाभिलाषमनोभवाः ॥ नशेकुरुद्धतादैत्यामनसावोढुमातुराः ॥६३॥ त्यक्त्वादेवान्स्त्रियंतांतुहर्तुकामाहतौजसः ॥ प्रेरितास्तेनपापेनह्यासक्तास्तेततोब्रुवन् ॥६४॥ स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यसारंचेद्धिदितंभवेत् ॥ कृतकृत्यास्ततःसर्वेइतिनोभावितंमनः ॥ ६५ ॥ तस्मात्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिबिकायांसुगर्दनाः ॥ आरोप्यस्वमधिष्ठानंनयामइतिनिश्चिताः ॥६६॥ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ सानुरागास्ततस्तेतुपुनरंतिकमागमन् ॥ तस्यतांयोषितं साध्वींसमुत्क्षिप्यस्मरातुराः ॥६७॥ शिबिकायां समारोप्यसहितादैत्यदानवाः ॥ शिरःसुशिबिकांकृत्वास्वस्थानाभिमुखाययुः ॥६८॥ दत्तात्रेयस्तथादेवान्विहस्येदमथाब्रवीत् ॥ दिष्ट्याचवर्द्धतदैत्यानामेषालक्ष्मीःशिरोगता ॥ सप्तस्थानान्यतिक्रम्यलयमन्यमुपेष्यति॥६९॥देवाऊचुः ॥ ॥ कथयस्वजगन्नाथकेषुस्थानेष्ववस्थिता ॥ पुरुषस्ययफलंकिंवाप्रयच्छत्यथनश्यति॥१७०॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ नृणांपादस्थितालक्ष्मीर्निलयंसंप्रयच्छति ॥ सक्थ्नोश्चसंस्थितावस्त्रंरत्नंनानाविधंवसु॥७१॥

हो साध्वी दत्तात्रेयपत्नीको उठाकर ॥ ६७ ॥ पालकी में चढाया और दैत्य तथा दानव एकत्र मिलित हो, मस्तकपर पालकी रख अपने स्थानकी ओरको चले ॥ ६८ ॥ तब मुनिवर दत्तात्रेयने कुछेक हँसकर देवताओंसे कहा--हे देवताओ ! तुम्हारा भाग्य फिरा है, यह देखो, लक्ष्मी सब स्थानमें अतिक्रम करके दानवोंके मस्तकपर चढी है, अत एव यह उनको छोड़कर अन्यके निकट जायगी ॥ ६९ ॥ देवता बोले--हे जगन्नाथ ! यह वर्णन कीजिये. किस किस स्थान पर लक्ष्मीजीके जानेसे मनुष्योंका भला और किस किस स्थानपर जानेसे बुरा फल होता है ॥१७०॥दत्तात्रेयजीने कहा लक्ष्मी मनुष्यके पैरमें रहनेसे गृहप्रदान करती है सक्थिनी अस्थिमें स्थित होनेमे वस्त्र और नाना प्रकारके रत्न देती

है॥७१॥गुह्यस्थानमें लक्ष्मीके वास करनेसे स्त्री मिलती है गोदीमें रहनेसे पुत्र प्राप्त होता है तथा हृदयमें स्थित होनेसे पुरुषके सब मनोरथ पूर्ण होते हैं॥७२॥ सर्वप्रधान लक्ष्मी देवी कंठस्थानमें स्थित होनेसे लक्ष्मीवान्को कंठभूषण प्राप्त होता है और प्रवासी प्रियतम बंधु और स्त्रीके सहित समागम होता है॥७३॥समुद्रतनया लक्ष्मी यदि मुखमें स्थित हो तो सुन्दर वाक्य लावण्य, आज्ञा सफल और कवित्व लाभ होता है॥७४॥और मस्तकमें स्थित होनेपर उसको छोड़कर अन्यका आश्रय ग्रहण करती है, वहीयह लक्ष्मी दानवोंके मस्तकपर पहुँची है, अब इनको परित्याग करेगी ॥ ७५ ॥ अतएव तुम अस्त्र शस्त्रग्रहणकर निर्भयचित्तसे उनको विनाश करो मेरे दृष्टिपातसे वह निस्तेज होगये हैं ॥ ७६ ॥ क्योंकि

कलत्रदागुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ॥ मनोरथान्पूरयतिपुरुषाणांहृदिस्थिता ॥ ७२ ॥ लक्ष्मीर्लक्ष्मीवतां श्रेष्ठाकंठस्थाकंठभूषणम् ॥ अभीष्टबंधुदारैश्चतथाश्लेषंप्रवासिभिः ॥ ७३ ॥ मृष्टान्नंवाक्यलावण्यमाज्ञामवितथांतथा ॥ मुखस्थिताकवित्वंचयच्छत्युदधिसंभवा ॥ ७४ ॥ शिरोगतासंत्यजतिततोन्यंयातिचाश्रयम् ॥ सेयंशिरोगतादैत्यान्परित्यजतिसांप्रतम् ॥ ७५ ॥ प्रगृह्यास्त्राणिवध्यन्तांतस्मादेतेसुरारयः ॥ नभेतव्यंभृशंत्वेतेमयानिस्तेजसःकृताः ॥ ७६ ॥ परदारावमर्शाच्चदग्धपुण्याहतौजसः ॥ तस्मादेतेभिहन्यंतांभवद्भिरविशंकितैः ॥ ७७ ॥ गर्गउवाच ॥ ॥ ततस्ते विविधैरस्त्रैर्वध्यमानाःसुरारयः ॥ शिरःसुलक्ष्म्याप्याक्रांताविनेशुरितिनःश्रुतम् ॥ ७८ ॥ लक्ष्मीश्चोत्पत्यसंप्राप्तादत्तात्रेयंमहामुनिम् ॥ स्तूयमानासुरैःसेंद्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥ ७९ ॥ प्रणिपत्यततोदेवादत्तात्रेयंमहामुनिम् ॥ जयकृष्णजगन्नाथदैत्यांतकहरप्रभो ॥ १८० ॥

पराई स्त्रीके संग बलात्कार करनेसे पुण्य दग्ध और पराक्रम नष्ट हो जाता है, इस कारण तुम निःशंक होकर इनका नाश करो ॥ ७७ गर्गजी बोले--तदनन्तर देवता पैने अस्त्र शस्त्रोंसे असुरोंको मारने लगे हे राजनन्दन ! मस्तकमें लक्ष्मीको स्थापन करके असुर इसप्रकार मरे थे, ऐसा सुना है ॥७८॥ फिर लक्ष्मीदेवी उनके मस्तकसे कूदकर महामुनि दत्तात्रेयजीके निकट आगई, और दैत्योंके नाशसे प्रसन्न हो इन्द्रके सहित सब देवता उनकी स्तुति करनेलगे॥७९॥फिर महामुनि दत्तात्रेयजीको प्रणामकर हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! हे दैत्यांतक ! हे हर ! हे प्रभो ! आपकी जयहो ॥ १८० ॥

हे नारायण ! हे अच्युत ! हे अनन्त ! हे वासुदेव ! हे अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन आपके प्रसादसे सुख लक्ष्मी राज्य संपत्तिको हमने प्राप्त किया ॥ ८१ ॥ हे शार्ङ्गधन्वन् हे चक्रपाणि ! आप नित्य भक्तोंपर कृपा करते हैं, इस प्रकार स्तुतिकर देवता लोग जहांसे आये थे, वहीं चले गये ॥ ८२ ॥ अत एव हे राजेन्द्र ! तुम यदि मनोभिलषित अतुल ऐश्वर्य प्राप्त करनेकी इच्छा करते हो तो शीघ्रही उन मुनिवर दत्तात्रेयजीकी आराधना करो ॥ १८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ पुत्रने कहा—नरपति कार्त्तवीर्यने गर्गऋषिके इस प्रकार वचन सुनकर दत्तात्रेय मुनिके आश्रममें जाय भक्तिसहित उनकी पूजा करी ॥ १ ॥ चरण संवाहन (पैरोंकादाबना)

नारायणाच्युतानंतवासुदेवाक्षयाजर ॥ त्वत्प्रसादात्सुखंलक्ष्मीराज्यंसंपज्जनार्दन ॥ ८१ ॥ शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणेभक्तानांनित्यवत्सल ॥ इतिस्तुत्वानाकपृष्ठंयथापूर्वंगताःसुराः ॥ ८२ ॥ तथात्वमपिराजेंद्रयदिच्छसियथेप्सितम् ॥ प्राप्तमैश्वर्यमतुलंतूर्णमाराधयस्वतम् ॥ ॥ १८३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदत्तात्रेयमाहात्म्यवर्णनंनामषोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ इत्यृपेर्वचनंश्रुत्वा कार्त्तवीर्योनरेश्वर ॥ दत्तात्रेयाश्रमंगत्वातंभक्त्यासमपूजयत ॥ १ ॥ पादसंवाहनाद्येनअर्घ्याद्याहरणेनच ॥ स्रक्चंदनादिगंधांबुफलाद्यानयनेनच ॥ २ ॥ तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेनच ॥ परितुष्टोमुनिर्भूपंतमुवाचतथैवसः ॥ ३ ॥ यथैवोक्ताःपुरादेवा मद्यभोज्यादिकुत्सनम् ॥ स्त्रीचेयंममपार्श्वस्थेत्येतद्भोगानुकुत्सितः ॥ ४ ॥ सदैवाहंनमामेवमुपरोद्धुंत्वमर्हसि ॥ अशक्तमुपकारायशक्तमाराधयस्व भोः ॥ ५ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ तेनैवमुक्तोमुनिनास्मृत्वागर्गवचश्चतत् ॥ ६ ॥

इत्यादि करके अर्घ्य, फूल, माला, सुगंधि, जल, फल और चन्दनादि उनके लिये लाने लगे ॥ २ ॥ ऐसे ही अन्नादि भी लाते थे और उनका उच्छिष्ट आप खातेथे इस कारण मुनिने संतुष्ट होकर उससे उस प्रकार कहा ॥ ३ ॥ जिस प्रकार पहिले देवताओंसे मद्यपान इत्यादि अपने निन्दित कर्म कहे थे. फिर बोले, देखो—यह स्त्री जो मेरे निकट स्थित है, इससे मैं निन्दित रमण किया करता हूं ॥ ४ ॥ हे राजन् ! मैं इसप्रकारके समस्त निन्दिनीय कार्योंमें व्याप्त रहताहूं अतएव मेरे समान उपकार करनेमें असमर्थ पुरुषकी सेवा करनेसे क्या होगा ? जो पुरुष समर्थ हो, उसकी आराधना करो ५ ॥ पुत्रने कहा—मुनिके इसप्रकार कहनेपर गर्गमुनिके वह वचन स्मरण करके ॥ ६ ॥

कार्त्तवीर्यार्जुन दत्तात्रेयजीको प्रणामपूर्वक कहने लगे. अर्जुनने कहा—हे देव ! आपने मुझको ऐसा मोहित क्यों किया है, आप अपनी मायाके संग मिलित हुए हैं, अर्थात् मुझ अज्ञानीको अपनी मायासे किस लिये भुलावा देते हो ? ॥ ७ ॥ अतएव आप पापरहित हैं, यह देवी सब संसारकी अरणि[1] स्वरूप है इसकारण यहभी निष्पाप है, राजाके इसप्रकार कहनेपर मुनिवर अत्यन्त प्रसन्न होकर फिर बोले ॥ ८ ॥ हे पृथ्वीमण्डलको वशीभूत करनेवाले महावीर्यवान् कार्त्तवीर्यार्जुन ! वर मांगो, तुमने जो मेरे गुप्तनाम उच्चारण किये हैं ॥ ९ ॥ इससे मुझको अत्यन्त संतोष उत्पन्न हुआ है. हे राजन् ! जो मनुष्य मेरा गंधमाल्यादिसे पूजन करते हैं ॥ १० ॥ जो मद्यमांसरूप उपहार और घृतयुक्त मिष्टान्न देकर लक्ष्मी सहित ब्राह्मणकी

प्रत्युवाचप्रणम्यैनंकार्त्तवीर्यस्ततोर्ज्जुन ॥ ॥ अर्जुनउवाच ॥ ॥ देवस्त्वंहिपुराणोयःस्वांमायांसमुपाश्रितः ॥ ७ ॥ अनघस्त्वंतथैवेयंदेवीसर्वभवारणिः ॥ इत्युक्तःप्रीतिमान्देवोभूयस्तंप्रत्युवाचह ॥ ८ ॥ कार्त्तवीर्यमहावीर्यवशीकृतमहीतलम् ॥ वरंवृणीष्वगुह्यंमेत्वयानामयदीरितम् ॥ ९ ॥ तेनतुष्टिःपराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ॥ येचमांपूजयिष्यंतिगंधमाल्यादिभिर्नराः ॥ १० ॥ मांसमद्योपहारैश्चमृष्टान्नैश्चात्मसंमतैः ॥ लक्ष्म्यासमेतंगीतैश्चब्राह्मणानांतथार्च्चनैः ॥ ११ ॥ वाद्यैर्मनोरमैर्वीणावेणुशंखादिभिस्तथा ॥ तेषामहंपरांपुष्टिंपुत्रदारधनादिकीम् ॥ १२ ॥ प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम् ॥ सत्वंवरयभद्रंमेवरंयंमनसेच्छसि ॥ १३ ॥ प्रसादसुमुखस्तेहंगुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ॥ ॥ कार्त्तवीर्यउवाच ॥ ॥ यदिदेवप्रसन्नस्त्वंतत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् ॥ १४ ॥ यथाप्रजांपालयेयंनचाधर्ममवाप्नुयाम् ॥ परानुस्मरणंज्ञानमप्रतिद्वंद्वतांरणे ॥ १५ ॥

पूजाके संगीत ॥ ११ ॥ तथा वीणा, वेणु और शंख इत्यादि मनोहर बाजे बजाते हैं, मैं पुत्र स्त्री और धनादि प्रदान करके उनको परमसंतुष्ट करता हूं ॥ १२ ॥ और जो अवधूत कहकर तिरस्कार करते हैं उनको मारताहूं, सो जो तुम्हारे मनमें इच्छा हो, वह वर मांगो तुम्हारा कल्याण हो ॥ १३ ॥ तुमने जो मेरे गुप्त नामकीर्त्तन किये हैं, इसकारण मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हुआ हूं. कार्त्तवीर्यने कहा—हे देव ! यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझको ऐसी उत्तम ऋद्धि प्रदान कीजिये ॥ १४ ॥ जिससे सहजमें ही सब प्रजाका पालन करसकूं और पापभागी न हूं और शत्रुओंके

[1] अरणि—घर्षण द्वारा अग्नि जलानेका काष्ठ वा सूर्य ।

अनुसरणमें ज्ञानकी प्राप्तिहो तथा समरमें कोई सन्मुख न ठहर सके ॥ १५ ॥ लघुतागुणयुक्त सहस्रबाहु हो जानेकी इच्छा करताहूं. जल, आकाश, भूमि, पर्वत और पाताल इत्यादि सब स्थानोंमेंही असंगगती और श्रेष्ठ मनुष्यके हाथमें मृत्यु यह सब लाभ करनेकी अभिलाषा करता हूं. हे देव ! मैं उन्मार्गप्रवृत्त मनुष्योंको सन्मार्ग दिखानेवाला हूं ॥ १६ ॥१७॥ अक्षय धन दान करनेसे श्लाघनीय अतिथिलाभ करूं, राज्यमें मेरा नाम उच्चारण करनेसे अनष्टद्रव्यता हो अर्थात् कोई धनहीन न रहै ॥ १८ ॥ और आपके चरणकमलों में मेरी भक्ति सदा अचल होकर वर्त्तमान रहै, दत्तात्रेयजी बोले--हे वत्स ! तुमने जो जो कहा, वह सब होगा ॥ १९ ॥ और मेरे प्रसादसे तुम चक्रवर्त्ती राजा होगे. पुत्रने कहा

सहस्रमाप्तुमिच्छामिबाहूनांलघुतागुणम् ॥ असंगागतयःसंतुशैलाकाशांबुभूमिषु ॥ १६ ॥ पातालेषुचसर्वेषुवधश्चाप्यधिकान्नरात् ॥ तथामार्गप्रवृत्तस्यसंतुसन्मार्गदेशिकाः ॥१७॥ संतुमेतिथयःश्लाघ्यावित्तंवान्यत्तथाक्षयम् ॥ अनष्टद्रव्यताराष्ट्रेममानुस्मरणेनच॥१८॥ त्वयिभक्तिश्चदेवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ यएतेकीर्तिताःसर्वेतान्वत्ससमवाप्स्यसि ॥१९॥ मत्प्रसादात्प्रभविताचक्रवर्तित्वमैश्वरम् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायमोर्जुनः ॥ २० ॥ आनीयप्रकृतीःसम्यगभिषेकमगृह्णत ॥ आगताश्चापिगंधर्वास्तथैवाप्सरसांगणाः॥२१॥ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्याःपर्वतास्तथा ॥ गंगाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्रारत्नसंभवाः॥२२॥ प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षादेवावैवासवादयः ॥ वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागताः ॥२३॥ तार्क्ष्याद्याःपक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा ॥ संभाराःसंभृताःसर्वेदत्तात्रेयप्रसादतः ॥२४॥ अथासंज्वाल्यतैर्वह्निंदेवैर्ब्रह्मादिभिःसह ॥ नारायणेनाभिषिक्तोदत्तात्रेयस्वरूपिणा॥२५॥

तब उन कार्त्तवीर्यार्जुनने मुनिवर दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके ॥ २० ॥ समस्त प्रजाको बुलाय सम्यक् प्रकारसे अभिषेक ग्रहण किया, उससमय समस्त गंधर्व, अप्सरागण॥२१॥वसिष्ठ आदि ऋषिगण, सुमेरु इत्यदि पर्वत गंगा इत्यादि सब नदियाँ जल युक्त सब समुद्र ॥२२॥ प्लक्ष इत्यादि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुकी इत्यादि नाग ॥ २३ ॥ गरुडादि पक्षी, तथा नगर और पुरवासी समस्त लोक मुनिवर दत्तात्रेयजीके प्रसादसे सब सामग्री सजाय अभिसेकके लिये आये ॥ २४ ॥ और ब्रह्मादि देवताओंने अग्नि प्रज्वलित करी, फिर दत्तात्रेयरूपी नारायणने अभिसेक किया ॥ २५

अन्तर समुद्र, नदी और ऋषियोंने अभिषेक किया और "हैहय राज्यमें स्थित हुए" यह घोषणा सर्वत्र होगई ॥२६॥ मुनिवर दत्तात्रेयके प्रसादसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त हो महाबल हैहयने राज्यमें अवस्थान करके आज्ञा दी कि, जो अबसे मेरे अतिरिक्त अस्त्र ग्रहण करेगा ॥ २७ ॥ वह परहिंसारत वा दस्यु मेरे हाथसे मारा जायगा राजाके इस प्रकार आज्ञा करनेपर उनके अतिरिक्त और कोई आयुधधारी मनुष्य वर्त्तमान नहीं रहा ॥२८॥ सब भूमिके एक राजा कार्त्तवीर्यार्जुन ही मनुष्य व्याघ्र और पराक्रमी हुए, तब वही ग्रामपालक, वही पशुपालक ॥२९॥ और वही क्षेत्ररक्षक थे, दूसरा नहीं. ब्राह्मणरक्षक, तपस्वीरक्षक और वही अर्थपालक हुए ॥ ३० ॥ वह परवीरघातक राजाही केवल मात्र चोर सर्प,

समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिषेचितः॥ अघोषयामासतदास्थितोराज्येसहैहयः ॥२६॥ दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ॥ अद्यप्रभृतियःशस्त्रंमामृतेन्योगृहीष्यति ॥२७॥ हंतव्यःसमयादस्युःपरहिंसारतोपिवा ॥ इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चिदायुधभृन्नरः॥२८॥ तमृतेपुरुषव्याघ्रंबभूवोरुपराक्रमम् ॥ सएवग्रामपालोभूत्पशुपालःसएवच ॥ २९ ॥ क्षेत्रपालःसएवासीद्द्वितीयोनचरक्षिता ॥ तपस्विनांपालयीतासार्थपालश्चसोभवत् ॥ ३० ॥ दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौनिमज्जताम् ॥ अन्यासुचैवमग्नानामापत्सुपरवीरहा ॥ ३१ ॥ सएवसंस्मृतःसद्यःसमुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ॥ अनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिञ्छासतिपार्थिवे ॥ ३२ ॥ तेनेष्टंबहुभिर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ॥ तपश्चतप्तंसुमहत्संग्रामेवातिचेष्टितम् ॥ ३३ ॥ तस्यर्द्धिमहिमानंचदृष्ट्वाप्राहांगिरामुनिः ॥ ननूनंकार्त्तवीर्यस्यगतिंयास्यंतिपार्थिवाः ॥ ३४ ॥ यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वासंग्रामेचातिचेष्टितैः ॥ दत्तात्रेयाद्दिनेयस्मिन्संप्राप्तर्द्धिर्नरेश्वरः ॥ ३५ ॥

अग्नि, शस्त्र, शत्रु और भयंकर समुद्र वा अन्यान्य आपदामें निमग्न मनुष्योंकी रक्षा करनेवाले हुए ॥३१॥ एक मात्र उनका नाम उच्चारण करकेही मनुष्यगण सब आपदाओंसे उत्तीर्ण होने लगे, उन राजाने जब राज्य शासन किया, तब राज्यमें किसीका द्रव्य नष्ट न हुआ ॥ ३२ ॥ उन्होंने नाना प्रकारके यज्ञ यजनकरके दक्षिणासहित समाप्त किये और महत् तपस्याचारी तथा संग्राममें बड़ी चेष्टा वाले हुए ॥ ३३ ॥ तब इनकी अत्यन्त समृद्धि और मान देखकर अंगीरा मुनिनेकहा—"अन्य कोई राजा इनके समान नहीं हुआ ॥३४॥ और न यज्ञ दान, तपस्या वा संग्राम चेष्टा किसी विषयमें कार्त्तवीर्यके समान नहीं होगा, इसमें संदेह नहीं"। वह राजा जिस दिन दत्तात्रेयके निकटसे अतुल ऐश्वर्यको प्राप्त हुए हैं ॥३५॥

उन्होंने उसी दिन दत्तात्रेयका याग किया था और उनकी सब प्रजाने भी भूपतिकी ॥ ३६ ॥ परम ऋद्धि देखकर सावधान चित्तसे उसी दिन याग किया था, यही उन बुद्धिमान् दत्तात्रेयजीका माहात्म्य है ॥ ३७ ॥ उन चराचर गुरु, अन्तहीन, शार्ङ्गधन्वा, शंख, चक्र गदा धारी अप्रमेय अनन्तदेव दत्तात्रेयरूपी विष्णुकी उत्पत्ति सब पुराणोंमें नाना प्रकारसे कहीं गई है, जो मनुष्य नारायणके इस परमरूपकी चिन्ता करते हैं ॥३८॥ ॥३९॥ वही सुखी होते हैं और तत्काल संसारबंधनसे छूट जाते हैं जो सदा कहते हैं कि, हे वैष्णवगण ! मैं भक्तिद्वारा सदाही तुमको सुलभ हूं ॥ पत्र, पुष्प फलोंद्वारापूजित हुआभी मैं मुक्ति देता हूं, ऐसी जिसकी प्रतिज्ञाहै, फिर मनुष्य उनका आश्रय क्यों न करें॥४०॥४१॥ वह अनादि निधनदेवही

तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागंदत्तात्रेयस्यसोकरोत् ॥ तथैवचप्रजाःसर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ॥ ३६ ॥ तस्यर्द्धिंपरमांदृष्ट्वायागंचक्रुः समाधिना ॥ इत्येतत्तस्यमाहात्म्यंदत्तात्रेयस्यधीमतः ॥ ३७ ॥ विष्णोश्चराचरगुरोरनंतस्यमहात्मनः ॥ प्रादुर्भावःपुराणेषु कथ्यतेशार्ङ्गधन्वनः ॥ ३८ ॥ अनंतस्याप्रमेयस्यशंखचक्रगदाभृतः ॥ एतस्यपरमंरूपंयश्चिंतयतिमानवः ॥३९॥ ससुखीसचसंसारात्समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ॥ सदैववैष्णवानांचभक्त्याहंसुलभोस्मिभोः ॥४०॥ पत्रपुष्पफलेनाहंपूजितोमोक्षदोस्मिवै ॥ इत्येवंयस्य वैवाचस्तंकथंनाश्रयेज्जनः ॥ ४१ ॥ अधर्मस्यविनाशायधर्माधारार्थमेवच ॥ अनादिनिधनोदेवःकरोतिस्थितिपालनम् ॥ ४२ ॥ तथैवजन्मचाख्यातमालर्ककथयामिते ॥ यथाचयोगःकथितोदत्तात्रेयेणतस्यवै ॥ पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मनः ॥४३॥ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेदत्तात्रेयोपाख्याननामसप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्राग्बभूवमहावीर्यःशत्रुजिन्नामपार्थिवः॥तुतोषयस्ययज्ञेषुसोमावाप्यापुरंदरः ॥ १ ॥ तस्यात्मजोमहावीर्योबभूवारिविदारणः ॥ नाम्नाऋतध्वजख्यातःसर्वलक्षणसंयुतः ॥ २ ॥

धर्माचरणके करने और अधर्म विनाशके निमित्त स्थिति और पालनादि करते हैं॥४२॥हे पिता ! अब अलक नामक ब्राह्मणका वृत्तान्त आपसे कहता हूं कि, जिनसे दत्तात्रेयजीने वर्णन किया है वह महात्मा अलर्कमहाराज जगत्में प्रसिद्ध राजर्षि और अपने पिताके भक्त थे ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥ पुत्रने कहा—हे पिता ! पूर्वकालमें शत्रुजित् नामक महावीर्यवान् एक राजा थे, उनके यज्ञमें सोमपान करके शचीपती इन्द्र अत्यन्त संतुष्ट हुए थे ॥ १ ॥ उन राजाके महावीर्यवान् और अत्यन्त पराक्रमी,

अरिमर्दन सर्वलक्षणोंमें युक्त ऋतुध्वज नामसे विख्यात एक पुत्र हुआ ॥ २ ॥ वह बुद्धिमें बृहस्पतिके समान, विक्रममें इन्द्रके समान और लावण्यमें अश्विनीकुमारके समान थे । राजपुत्र जिन राजनन्दनोंके सहित मिलित रहते, वह भी वयस, बुद्धि, सत्व, विक्रम और चेष्टामें राजपुत्रसे किसी प्रकार कम नहीं थे, वह कभी शास्त्र पढनेसे उत्पन्न विवेक विषयमें व्रतनिश्चय होकर अवस्थान करते ॥ ३ ॥ ४ ॥ कभी काव्यकी चर्चामें गीत श्रवणमें और नाटकसंभवगीतादिमें मन लगाकर प्रसन्न रहते, कभी अक्षविनोद अर्थात् पाश खेलनेमें, कभी अस्त्रशस्त्रमें, कभी--विनयमें ॥५॥ कभी योग्य पुरुषोंके संग मल्लयुद्ध विषयमें और कभी हाथी घोडे तथा रथादिके

बुद्धिविक्रमलावण्यैर्गुरुशुक्राश्विनांसमः ॥ ससमानवयोबुद्धिसत्त्वविक्रमचेष्टितैः ॥३॥ नृपपुत्रोनृपसुतैर्नित्यमास्तेसमावृतः ॥ कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥ ४ ॥ कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसंभवैः ॥ तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्त्रविनयेषुच ॥ ५ ॥ योग्योनियुद्धनागाश्वस्यंदनाभ्यासतत्परः ॥ रेमेनृपेंद्रपुत्रोसौनरेंद्रतनयैर्वृतैः ॥ ६ ॥ यथैवहिदिवातद्वद्रात्रावपिमुदायुतः ॥ तेषांतुक्रीडतांतत्रद्विजभूपविशांसुताः ॥ ७ ॥ समानवयसःप्रीत्यारंतुमायांत्यनेकशः ॥ कस्यचित्त्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ॥ ८ ॥ कुमारावागतौनागौपुत्रावश्वतरस्यतु ॥ ब्रह्मप्रतिच्छन्नौतरुणौप्रियदर्शनौ ॥ ९ ॥ तौतैर्नृपसुतैःसार्द्धंतथैवान्यैर्द्विजात्मजैः ॥ विनोदैर्विविधैस्तत्रतस्थतुःप्रीतिसंयुतौ ॥ १० ॥ सर्वैंचतेनृपसुतास्तेचब्रह्मविशांसुताः ॥ नागराजात्मजौतौचस्नानसंवाहनादिकाम् ॥ ११ ॥ वस्त्रगंधान्नसंयुक्तांचक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ॥ अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ॥ १२ ॥

अभ्यासमें तत्पर होकर राजपुत्रोंके संग खेलते॥६॥जिसप्रकार दिन आनन्दसे बीतता था, वैसेही रातभी सुखसे बीतजाती थी, जिस स्थानपर वह क्रीडा किया करते थे, वहां सैकडों ब्राह्मणोंके पुत्र सैकडों राजाओं और वैश्योंके बालक॥ ७ ॥ समान आयुमान् प्रीतिपूर्वक आ आकर खेला करते, इसप्रकार कुछ काल बीतनेपर नागलोकसे महीतलमें॥८॥नागराज अश्वतरके दो पुत्र ब्राह्मणका रूप धारण करके आये, दोनोंही तरुण और प्रिय दर्शन थे॥९॥यह उन राजनन्दन और ब्राह्मण पुत्रोंके संग नानाप्रकारके विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वास करने लगे॥१०॥वह राजपुत्र ब्राह्मण पुत्र और वैश्यपुत्र तथा वह दोनों नागकुमार सबही एकत्र स्नान, यानारोहण ॥११॥ वस्त्र पहरना, गंधानुलेपन और भाग्यानुसार भोजन करने

लगे । इसप्रकार राजपुत्रकी प्रीतिसे आह्लाद युक्त हो वह दोनों नागराजके पुत्र नित्य आने जाने लगे और राजपुत्रभी उनसे परम प्रसन्न हुए ॥१२॥१३॥अर्थात् उनके नानाप्रकार आमोद प्रमोद और हास्य संलापादि द्वारा अत्यन्त सुखी हुए थे, यही क्या उनके विना भोजन, स्नान और मधुपान नहीं करते ॥१४॥ तथा क्रीडा और आत्म गुण वृद्धिके निमित्त शस्त्रभी ग्रहण नहीं करते, दोनों नाग नन्दनभी उन महात्मा राजपुत्रके विना रात्रि ॥१५॥ दीर्घ श्वास लेते हुए रसातलमें बिताया दिनमें उनके निकट आते. इसप्रकार कुछ काल बीतनेपर नागराज अश्वतरने एक दिन दोनों पुत्रोंसे पूछा--हे प्रियदर्शन पुत्रो ! तुम मृत्युलोकमें ऐसे--प्रीतिमान् क्यों हुए हो ? बहुत दिन हुए दिनके समयमें तुमको

आजग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपतेः ॥ सचताभ्यांनृपसुतःपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥ १३ ॥ विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेवच ॥ विनाताभ्यांनबुभुजेनसस्नौनपपौमधु ॥ १४ ॥ नरेमेचनजग्राहशास्त्राण्यात्मगुणर्द्धये ॥ रसातलेचतौरात्रिंविनातेनमहात्मना ॥ १५ ॥ निःश्वासपरमौनीत्वाजग्मतुस्तंदिनेदिने ॥ मर्त्यलोकेपराप्रीतिर्भवतोःकेनपुत्रकौ ॥ १६ ॥ सहेतिचप्रलपितौताबुभौनागदारकौ ॥ दृष्टयोरत्रपातालेबहूनिदिवसानिमे ॥ १७ ॥ दिवारजन्यामेवोभौपश्यामिप्रियदर्शनौ ॥ ॥ जडउवाच ॥ ॥ इतिपित्रास्वयंपृष्टौ प्रणिपत्यकृतांजली ॥ १८ ॥ प्रत्यूचतुर्महाभागावुरगाधिपतेःसुतौ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ पुत्रःशत्रुजितस्तातनाम्नाख्यातऋतध्वजः ॥ १९ ॥ रूपानावर्जवोपेतःशूरोमानीप्रियंवदः ॥ अनावृतकथोवाग्मीविद्वान्मैत्रोगुणाकरः ॥ २० ॥ मान्यमानयिताधीमान्ह्रीमान्विनयभूषणः ॥ तस्योपचारसंप्रीतिसंभोगापहृतंमनः ॥ २१ ॥

इस पातालमें नहीं देखता ॥ १६ ॥ १७ ॥ रात्रि होनेपर ही देखता हूं, इसका क्या कारण है ! जडने कहा--स्वयं पिताके इसप्रकार पूछने पर वह दोनों पुत्र महाभाग उरगाधिपतिसे--प्रणामपूर्वक हाथ जोड़कर कहने लगे--पुत्रोंने कहा- हे तात ! मर्त्यलोकमें शत्रुजित नामक-राजाके एक पुत्र है और उनका नाम ऋतुध्वज विख्यात है ॥ १८ ॥ १९ ॥ वह रूपवान्, सरलचित्त, शूर, मानी, प्रियवादी, प्रसिद्ध यशवान्, वाग्मी, विद्वान् मित्रतायुक्त और गुणोंके आकर (खान) स्वरूप हैं ॥२०॥ वह मान करते हैं, वह बुद्धिमान्, लज्जावान् और विनयसे विभूषित हैं उनके इस उपचार और प्रीतिसम्भोग द्वारा हमारा मन अत्यन्त खिंचकर ॥२१॥

नागलोक, भूलोक वा अन्य किसी स्थानमें प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता. हे पिता ! उनसे वियोग होनेपर पातालकी शीतल निशाभी हमको ॥ २२ ॥ तापकी देनेवाली होती है और उनके संग मिलित रहनेसे रवितापान्वित दिन भी हमको आह्लादजनक होता है ॥ पिताने कहा—वह पुण्यशील पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम सरीखे गुणवान् पुरुष भी ॥ २३ ॥ पीछेमें जिनके गुण कीर्त्तन करते हैं अनेक शास्त्र जाननेवाले पंडित भी कुस्वभावसंपन्न होते हैं और अनेक मूर्खभी सुशील होते हैं ॥ २४ ॥ किन्तु मैं विचारताहूं कि, शास्त्रज्ञ और सुशील वह राजपुत्र ही अत्यन्त धन्य हैं, क्योंकि मित्रद्वारा जिसका मित्रतागुण प्रकाशित होता है और शत्रुद्वारा जिसका पराक्रम प्रगट होता है ॥ २५ ॥

नागलोकेऽन्यलोकेवानरतिंविंदतेपितः ॥ तद्वियोगेननौतातनिशापातालशीतला ॥ २२ ॥ परितापायतत्संगश्चाह्लादायरविर्दिवा ॥ ॥ पितोवाच ॥ पुत्रःपुण्यवतोधन्यःसयस्यैवंभवद्विधः ॥ २३ ॥ परोक्षस्यापिगुणिभिःक्रियतेगुणकीर्तनम् ॥ संतिशास्त्रविदोऽशीलाः संतिमूर्खाःसुशीलिनः ॥ २४ ॥ शास्त्रशीलेसमंमन्येयस्मिन्धन्यतरंतुतम् ॥ यस्यमित्रगुणान्मित्राण्यमित्राश्चपराक्रमम् ॥ २५ ॥ कथयंतिसदासत्सुपुत्रवांस्तेनवैपिता ॥ तस्योपकारिणःकच्चिद्भवद्भ्यामभिवांछितम् ॥ २६ ॥ किंचिन्निष्पादितंवत्सौपरितोषायचेतसः ॥ सधन्योजीवितंतस्यतस्यजन्मसुजन्मनः ॥ २७ ॥ यस्यार्थिनोनविमुखामित्रार्थेनचदुर्बलः ॥ मद्गृहेयत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् ॥ ॥ २८ ॥ यद्वान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशंकया ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसोमित्राणामपकारिणः ॥ २९ ॥ प्रतिरूपमकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ॥ उपकारंसुहृद्वर्गेष्वपकारंचशत्रुषु ॥ ३० ॥

अनेक संतान होने परभी उसके द्वाराही पिता पुत्रवान् कहा जाता है जो हो, उस उपकारीके निमित्त तुमने कुछ विचारा भी है? ॥ २६ ॥ हे वत्स! उस मित्रका चित्त संतुष्ट करनेके लिये कुछ कार्य तुमने किया है ? देखो—इस संसार में वही धन्य है और उसी अच्छे जन्मवालेका जन्म लेना सफल है ॥ २७ ॥ जो अर्थियोंको विमुख नहीं करता और मित्रके निमित्त दुर्बल नहीं है. अतएव मेरे घरमें सुवर्ण, रत्न, वाहन, आसन इत्यादि ॥ २८ ॥ जो कुछ है, तुम उनको प्रसन्न करनेके लिये अशंकित चित्तसे वह दे सकते हो, क्योंकि मित्रोंका अपकार करने वालेके जीवनको धिक्कार है ॥ २९ ॥ जो पुरुष उपकारी मित्रके प्रति उपकार न करके जीवन धारण करनेकी इच्छा करते हैं, उनके

जीवनको धिक्कार है और जो पुरुषरूपी मेघ बंधुवर्गका उपकार और शत्रुवर्गका अपकार रूप जलकी वर्षा करते हैं, देवता सदा ही उनकी उन्नति साधन करनेकी इच्छा करते हैं. पुत्रने कहा हे पिता ! मैं उन कृतकृत्यका क्या उपकार कर सकताहूं ॥ ३० ॥ ३१ ॥ जिनके निकट याचकजन अभिलषित पदार्थद्वारा सदा आर्चित होते हैं, उनका उपकार करनेकी मेरी भी सामर्थ्य नहीं है, उनके घर जो रत्न हैं, पातालमें वह सब कहां हैं ॥ ३२ ॥ उनके यहांके वाहन, आसन, यान, भूषण, वस्त्र हमारे यहां नहीं हैं; उनके निकट जैसा विज्ञान है, अन्य कहीं भी वह नहीं है ॥३३॥ हे तात ! वह पंडितोंका भी संदेह हरण करनेवाले हैं. जो हो, केवल उनका एक कार्य है किन्तु विचारसे हमारे वह साध्य नहीं है ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भ गोविन्द और शिवादिके अतिरिक्त वह दूसरेके असाध्य है, अर्थात्

नृमेघोवर्षतिप्राज्ञास्तस्येच्छंतिसदोन्नतिम् ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ किंतस्यकृतकृत्यस्यकर्तुंशक्येतकेनचित् ॥ ३१ ॥ यस्यसर्वार्थिनो गेहेसर्वकामैःसदार्चिताः ॥ यानिरत्नानितद्गेहेपातालेतानिनःकुतः ॥ ३२ ॥ वाहनासनयानानिभूषणान्यंबराणिच ॥ विज्ञानंयच्चतत्रास्तितदन्यत्रनविद्यते ॥ ३३ ॥ प्राज्ञानामप्यसौतातसर्वसंदेहहृत्तमः ॥ एकंतस्यास्तिकर्त्तव्यमसाध्यंतच्चनोमतम् ॥ ३४ ॥ हिरण्यगर्भगोविंदशर्वादीनांवराद्दते ॥ ॥ पितोवाच ॥ तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ॥३५॥ असाध्यमथवासाध्यंकिंचासाध्यं विपश्चिताम् ॥ देवत्वममरेशत्वंतत्पूज्यत्वंचमानवाः ॥ ३६ ॥ प्रयांतिवांछितंचान्यद्दृढंयेव्यवसायिनः ॥ नाविज्ञातंनचागम्यंनाप्राप्यंदिविचेहवा ॥ ३७ ॥ उद्यतानांमनुष्याणांयतचित्तेंद्रियात्मनाम् ॥ योजनानांसहस्राणियातिगच्छन्पिपीलिकः ॥ ३८ ॥

दूसरा कोई उस कार्यको नहीं कर सकता. पिता बोले—तथापि उनका वह जो उत्तम कार्य है, उसके सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ ३५ ॥ चाहे वह साध्य असाध्य कैसाभी है, जो मनुष्य दृढतर उद्योगी होते हैं, वह देवत्व वा इन्द्रत्व अथवा उनके पूज्यभावको प्राप्त होनेमें समर्थ होतेहैं ॥ ३६ ॥ दृढव्यवसायी पुरुषही मनोवांछीतको प्राप्त होते हैं, कोई वस्तु स्वर्गमे भी अविज्ञात, अगम्य और अप्राप्त नहीं है ॥ ३७ ॥ जो मन, इंद्रिय और आत्माको वश करके अधिक उद्योगी होते हैं, वह मनोरथको प्राप्त होते हैं, देखो—छोटी चैंटी अधिक उद्योगी होनेसे गमन करते करते हजार योजन जा सकती है ॥ ३८ ॥

किंतु पक्षिराज गरुड उद्योगहीन होनेसे एक पग भी जानेमें समर्थ नहीं होते, क्योंकि अनुद्योगी मनुष्यको गम्य वा अगम्य कुछ नहीं है. देखो—उत्तानपाद राजाके पुत्र ध्रुव पृथ्वीमें अवस्थान करके जिस अन्य दुर्लभ स्थानको प्राप्त हुए हैं, वह ध्रौव स्थान कहां? और पृथ्वी कहां? अतएव हे पुत्रो! वह साधु महाभाग राजपुत्र जिससे कार्यवान् हो, वह कहो ॥३९॥ ॥४०॥ और तुमभी जिसके द्वारा मित्रता ऋणसे मुक्त होसको। पुत्रोंने कहा हे तात! उन महात्माने पूर्ववृत्तान्त इसप्रकारसे कहाहै ॥ ४१ ॥ उन सद्वृत्तशाली महात्मा राजपुत्रकी कौमार अवस्थामें जिसप्रकार हुआथा, सो सुनो। एक शत्रु जित् नामक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ॥४२॥ एक दिन गालव नामक बुद्धिमान् द्विजश्रेष्ठने

अगच्छन्वैनतेयोपिपदमेकंनगच्छति ॥ क्वभूतलंक्वचध्रौव्यंस्थानंयत्प्राप्तवान्ध्रुवः ॥ ३९ ॥ उत्तानपादनृपतेःपुत्रःसद्भूमिगोचरः ॥ तत्कथ्यतांमहाभागौकार्यवान्येनपुत्रकौ ॥ ४० ॥ सभूपालसुतःसाधुर्येनानृण्यंलभेतवाम् ॥ पुत्रावूचतुः ॥ तेनाख्यातमिदंतातपूर्ववृत्तंमहात्मना ॥ ४१ ॥ कौमारकेयथातस्यवृत्तंसद्वृत्तशालिनः ॥ तस्यशत्रुजितंतातंपूर्वंकश्चिद्द्विजोत्तमः ॥ ४२ ॥ गालवोभ्यागमद्धीमान्गृहीत्वातुरगोत्तमम् ॥ प्रत्युवाचचराजानंसमुपेत्याश्रमंमम ॥ ॥ ४३ ॥ कोपिदैत्याधमोराजन्विध्वंसयति पापकृत् ॥ तत्तद्रूपंसमास्थायसिंहेभवनचारिणाम् ॥ ४४ ॥ अन्येषांचातिकायानामहर्निशमकारणात् ॥ समाधिध्यानयुक्तस्य मौनव्रतरतस्यच ॥ ४५ ॥ तथाकरोतिविघ्नानियथानेच्छामिपार्थिव ॥ दग्धुंकोपाग्निनासद्यःसमर्थास्तंवयंनतु ॥ ४६ ॥ दुःखार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव ॥ एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ॥ ॥ ४७ ॥

सुन्दर घोड़ा ग्रहण करके मेरे आश्रममें आय राजासे कहाथा ॥४३॥ हे राजन्! कोई पापकारी दैत्योंमें अधम मेरे आश्रमें आकर सबही ध्वंस करताहै वह रात दिन सिंह हाथी और अन्यान्य अल्पकाय वनचारी जन्तुका रूप धारण करकेइसप्रकार विघ्न करता है कि, मेरे समाधिध्यानयुक्त वा मौनव्रत अवलम्बन करनेपरभी मेरा मन विचलित होता है. हे राजन्! आपही उसे कोपाग्निमें दग्धकरनेको समर्थ हूं ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ॥ ४६ ॥ क्योंकि समर्थ होकर भी मैं ऐसे अनुचित कार्यमें बहुत दिनोंकी दुःखोपार्जित तपस्या व्यय करनेकी इच्छा नहीं करता. जो हो, हे राजन्! मैंने एक दिन उसके द्वारा अतिदुःखित चित्तसे ॥ ४७ ॥

क्लेशित होकर आकाशमें दीर्घ श्वास छोड़ा तब उसी समय आकाशमें यह घोड़ा गिरा ॥ ४८ ॥ और जो आकाशवाणी हुई वह कहता हूं, हे नरनाथ ! सुनो " हे द्विजश्रेष्ठ ! तुमको जो अश्व मिला है, यह सूर्यके समान विना थके समस्त पृथ्वीवलय गमनकरनेमें समर्थ है. पाताल, आकाश, जलमें इसकी गति नहीं रुकती ॥ ४९ ॥ ५० ॥ समस्त दिशा तथा पर्वतोंमें भी विना रोक टोकके चल सकता है जो कि, यह अश्व विना थके समस्त पृथ्वीवलयमें जानेको समर्थ है ॥ इस कारण यह सब लोकोंमें "कुवलय" नामसे विख्यात होगा और जो पापी दानवाधम तुमको रात दिन क्लेश देता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! शत्रुजित् नामक राजाका पुत्र ऋतध्वज इस अश्व रत्नपर चढ़कर

तत्क्लेशितेननिःश्वासोनिरीक्ष्यांबरमुज्झितः ॥ ततोंबरतलात्सद्यःपतितोयंतुरंगमः ॥ ४८ ॥ वाक्चाशरीरिणीप्राहनरनाथशृणुष्व तत् ॥ अश्रांतःसकलंभूमेर्वलयंतुरगोत्तमः ॥ ४९ ॥ समर्थःक्रांतुमर्केणतवायंप्रतिपादितः ॥ पातालांबरतोयेषुनास्यप्रतिहतागतिः ॥ ॥ ५० ॥ समस्तदिक्षुव्रजतोनसंगःपर्वतेषुच ॥ यतोभूलयंसर्वमश्रांतोयंचरिष्यति ॥ ५१ ॥ ततःकुवलोनाम्नाख्यातिंलोकेषुयास्यति ॥ क्लिश्नात्यहर्निशंपापोयश्चत्वांदानवाधमः ॥ ५२ ॥ तमप्येनंसमारुह्यद्विजश्रेष्ठहनिष्यति ॥ शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रऋतध्वजः ॥ ५३ ॥ प्राप्यैतदश्वरत्नंचख्यातिमेतेनयास्यति ॥ सोहंत्वामनुसंप्राप्तस्तपसोविघ्नकारिणम् ॥ ५४ ॥ तंनिवारयभूपालभागभाङ्नृपतिर्यतः ॥ तदेवदश्वरत्नंतेमयाभूपनिवेदितम् ॥ ५५ ॥ पुत्रमाज्ञापयतथायथाधर्मोनलुप्यते ॥ सतस्यवचनाद्राजा तंवैपुत्रमृतध्वजम् ॥ ५६ ॥ तदश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुकमंगलम् ॥ अप्रेषयतधर्मात्मागालवेनसमंतदा ॥ ५७ ॥ स्वमाश्रमपदंसोपितमादाययौमुनिः ॥ ॥ ५८ ॥

उसको वध करेंगे ॥ ५३ ॥ और इस अश्वरत्न द्वारा ख्यातिलाभ करेंगे. इसीलिये मैं आपके निकट आया हूं, आप भी तपस्याके विघ्न करनेवालेको ॥ ५४ ॥ निवारण कीजिये। हे भूपाल ! मेरे दिये इस अश्वरत्नको ग्रहण करके ॥ ५५ ॥ पुत्रको इस प्रकारका आज्ञा दीजिये कि, जिससे धर्मलोप न हो. तब धर्मात्मा राजा शत्रुजित्ने ब्राह्मणका यह वचन सुन, ऋतध्वजपुत्रको ॥ ५६ ॥ कौतुक और मंगलाचार इत्यादि कराय, उस अश्वरत्नपर चढाय मुनिवर गालवके संग भेजा ॥ ५७ ॥ और मुनिने भी उनको संग लेकर अपने आश्रमकी

और प्रस्थान किया ॥५८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्याने भाषाटीकायां अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ पिता बोले—मुनिवर गालवके संग जाकर राजकुमारने जो किया था, सो कहो। हे पुत्रो ! तुम्हारी कथा अत्यन्त विचित्र है ॥ १ ॥ पुत्रोंने कहा—भूपालनंदन ऋतध्वजने गालवमुनिके मनोहर आश्रममें वास करके ब्रह्मवादियोंके समस्त विघ्न दूर किये थे ॥ २ ॥ वीर कुवलयाश्व जो गालव मुनिके आश्रममें वास करते हैं, मदके गर्वसे वह दानवाधम यह बात नहीं जानसका ॥ ३ ॥ इसी कारण वह सूकरमूर्ति धारण करके संध्योपासनमें तत्परहुए ब्राह्मण गालवजीको धर्षण करने लगा ॥४॥ तब मुनिके शिष्य ऊँचे स्वरसे चीत्कार करने लगे। राजपुत्र

इतिश्रीमार्कंडेयपुराणेपितापुत्रसंवादेमदालसोपाख्याने कुवलयाश्वीयेऽष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ गालवेन सुमंगत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ॥ कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौविचित्रायुधयोधिना ॥ १ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनंदनः ॥ सर्वविघ्नोपशमनंचकारब्रह्मवादिनाम् ॥ २ ॥ वीरःकुवलयाश्वंतंवसंतंगालवाश्रमे ॥ मदावलेपोपहतोनाजानाद्दानवाधमः ॥ ३ ॥ ततस्तंगालवंविप्रंसंध्योपासनतत्परम् ॥ सौकरंरूपमास्थायप्रधर्षयितुमागमत् ॥ ४ ॥ मुनिशिष्यैरथोत्क्रुष्टेशीघ्रमारुह्य तं हयम् ॥ अन्वधावद्वराहंतंनृपपुत्रःशरासनी ॥ ५ ॥ आजघानचबाणेनचंद्रार्धाकारवर्चसा ॥ आकृष्यबलवच्चापंचारुचित्रोपशोभितम् ॥ ६ ॥ नाराचाभिहतःशीघ्रमात्मत्राणपरोमृगः ॥ गिरिपादपसंबाधांसोत्यक्रामन्महाटवीम् ॥ ७ ॥ तमन्वधावद्वेगेनतुरगो सौमनो जवः ॥ चोदितोराजपुत्रेणपितुरादेशकारिणा ॥ ८ ॥ अतिक्रम्याथवेगेनयोजनानिसहस्रशः ॥ धरण्यांविवृतेगर्तेनिपपातलघुक्रमः ॥ ९ ॥

भी उसी समय शरासनधारणपूर्वक उस अश्वपर शीघ्रतासहित चढ वराहको लक्ष्य करके दौडे ॥ ५ ॥ और मनोहर चित्रनाभ शोभित धनुष बलपूर्वक खैंचकर अर्द्धचन्द्रबाणसे उसको ताडन किया ॥ ६ ॥ तब वह दैत्य उनके बाणमें आहत हो आत्मरक्षा करनेमें तत्पर होकर पर्वत और महावनमें भ्रमण करने लगा ॥ ७ ॥ और पिताकी आज्ञा पालन करनेवाले राजपुत्रके द्वारा प्रेरित होकर वह मनके समान वेगवान् अश्वभी वेगसहित उसके पीछे पीछे गया ॥ ८ ॥ फिर वह लघुक्रम दानव वेगसहित सहस्र योजन अतिक्रम करके पृथ्वीके

गर्भमें स्थित एक बड़े गढ़ेमें गिरा ॥ ९ ॥ इसके पीछे वह अश्वारोही राजपुत्रभी वैसेही उस अंधकारसे व्याप्त महागर्तमें गिरे ॥१०॥ किन्तु उस समय वह सूकर राजपुत्रको दिखाई नहीं दिया अनन्तर वह जब प्रकाशित पातालमें घुसे, तबभी उस दैत्यको नहीं देखा ॥ ११ ॥ उस समय सुवर्णमय सैकडों महलोंसे व्याप्त परकोटेसे शोभित अमरावतीके समान एक पुरी उनको दिखाई दी ॥ १२ ॥ उन्होंने उस पुरीमें प्रवेश करके एक मनुष्यकोभी नहीं देखा फिर इधर उधर भ्रमण करते करते शीघ्रतायुक्त वहां एक रमणीको देखा ॥१३॥ राजपुत्रने उस कृशाङ्गीसे पूछा "तुम किसके द्वारा प्रेरित होकर किसके निकट जातीहो ?" उस भामिनीने उनके इसप्रकार पूछनेपर कुछ उत्तर नहीं दिया बरन वेगसे

तस्यानंतरमेवाथसचाश्वीनृपतेःसुतः ॥ निपपातमहागर्तेतिमिरौघसमावृते ॥ १० ॥ ततोनादृश्यतमृगःसतस्मिन्राजसूनुना ॥ प्रकाशंचसपातालमपश्यत्तत्रचाचिषा ॥ ११ ॥ ततोपश्यत्ससौवर्णप्रासादशतसंकुलम् ॥ पुरंदरपुरप्रख्यंपुरंप्राकारशोभितम् ॥ ॥ १२ ॥ तत्प्रविश्यसनापश्यत्तत्रकंचिन्नरंपुरे ॥ भ्रमताचततोदृष्टातत्रयोषित्त्वरान्विता ॥ १३ ॥ सापृष्टातेनतन्वंगीप्रस्थिता केतिकस्यवा ॥ नोवाचकिंचित्प्रासादमारुरोहचभामिनी ॥ १४ ॥ सोप्यश्वमेकतोबद्ध्वातामेवानुससारवै ॥ विस्मयोत्फुल्लनयनोनिःशंकोनृपतेःसुतः ॥ १५ ॥ ततोपश्यत्सुविस्तीर्णेपर्यंकेसर्वकांचने ॥ निषण्णांकन्यकामेकांकामयुक्तांरतिंयथा ॥ १६ ॥ विस्पष्टेंदुमुखींसुभ्रूंपीनश्रोणीपयोधराम् ॥ बिंबाधरौष्ठींतन्वंगींनीलोत्पलविलोचनाम् ॥ १७ ॥ रक्ततुंगनखांश्यामांमृदुताम्रकरांघ्रिकाम् ॥ करभोरुंसुदशनांनीलसूक्ष्मस्थिरालकाम् ॥ १८ ॥

हित महलपर चढ़गई राजपुत्रनेभी वैसेही अश्वको एक स्थानमें बांध विस्मयोत्फुल्लनेत्र हो निःशंक चित्तसे उस कामिनीका अनुसरण किया अर्थात् उसका वृत्तान्त पूछनेके लिये उसी कोठेपर चढ़गये ॥१४॥१५॥ उन्होंने उस स्थानमें प्रवेश करके देखा कि, सकामा रतिके समान साक्षात् चन्द्रमुखी पीनश्रोणी और मनोहर कुचोंवाली एक रमणी सुवर्णके बने बड़े पर्यंकके ऊपर पौढ रहीहै. उसके बिम्बाफलके समान ओष्ठ, कृशाङ्गी और नीले कमलके समान दोनों नेत्र हैं ॥ १६॥१७॥ उसके नख रक्तवर्ण और कुछेक ऊंचे, नवीनवय श्यामा[1] शरीर कोमल, हाथ और पैरके

१ शीतकालमें जिसका देह सुखोष्ण और ग्रीष्मकालमें सुख शीतल होताहै, तपे हुए सुवर्णके समान जिसका वर्ण है, उस स्त्रीको "श्यामा" कहतेहैं !

तलुए रक्तवर्ण, दोनों ऊरू हाथीके सूंडके समान, दांत सुन्दर और नीलवर्ण अलक स्थित और सूक्ष्म थीं ॥१८॥ राजपुत्रने अनंगलताके समान उस सर्वाङ्गसुन्दरी कामिनीको देखकर उसको रसातलकी देवता जाना॥१९॥ शुभमयी रमणीने भी नीलवर्ण और घूँघरवाले केशोंसे विराजित चौडी छातीवाले पुष्ट स्कन्ध और पीन बाहु राजनन्दनको देखकर मनमें विचारा कि, यही रतिपति कामदेव हैं ॥२०॥ तब वह कृशाङ्गी महाभाग्यवती चित्तमें क्षोभको प्राप्तहो सहसा उठी और उसी समय लज्जा, विनय तथा दीनताके वश होगई ॥ २१ ॥ और विचारने लगी कि, "यह कौन हैं ? क्या यह देवता हैं? वा यक्ष हैं? या गंधर्व हैं अथवा यह उरग किंवा विद्याधर हैं या कोई पुण्यवान् मनुष्य इस

तांदृष्ट्वाचारुसर्वांगीमनंगांगलतामिव ॥ सोमन्यत्पार्थिवसुतस्तांरसातलदेवताम् ॥ १९ ॥ साचदृष्ट्वैवतंबालानीलकुंचितमूर्धजम् ॥ पीनोरःस्कंधबाहुंतममंस्तमदनंशुभा ॥२०॥ उत्तस्थौचशुभाचाराचित्तक्षोभमवापसा ॥ लज्जाविस्मयदैन्यानांसद्यस्तन्वीवशंगता ॥ ॥२१॥ कोयंदेवोथयक्षोनुगंधर्वोवोरगोपिवा ॥ विद्याधरोवासंप्राप्तःकृतपुण्यापतिर्नरः ॥ २२ ॥ एवंविचिंत्यबहुधानिःश्वस्यचमहीतले ॥ उपविश्यतदाभेजेसामूर्छांमदिरेक्षणा ॥ २३ ॥ सोपिकामशराघातमवाप्यनृपतेःसुतः ॥ तांसमाश्वासयामासनभेतव्यमिति ब्रुवन् ॥ २४ ॥ साचस्त्रीयातदादृष्टापूर्वंतेनमहात्मना ॥ तालवृंतमुपादायपर्यवीजयदाकुला ॥ २५ ॥ समाश्वस्तातदापृष्टातेनसामोहकारणम् ॥ किंचिल्लज्जान्विताबालातस्यैसख्यैन्यवेदयत् ॥ २६ ॥ साचास्मैकथयामासनृपपुत्रायविस्तरात ॥ मोहस्यकारणं सर्वंतद्दर्शनमुद्भवम् ॥ २७ ॥

स्थानमें आया है?॥२२॥वह मदिरेक्षणा लाल नेत्रोंवाली वहां इस भाँति नानाप्रकारकी चिन्ता करके दीर्घ निःश्वास परित्यागपूर्ण बैठतेही तत्काल मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर पडी ॥२३॥ तब राजपुत्रभी उसी समय कामबाणके आघातसे व्यथितहृदय हो "भय नहीं, भय नहीं" कहकर उसको समझाने लगे ॥२४॥ और जो स्त्री उन महात्मा राजपुत्रको प्रथम दिखाई दी थी, वह ललना अत्यन्त व्याकुल होकर तालका पंखा ले उनकी पवन करने लगी॥२५॥अनन्तर राजपुत्रने उसको समझा बुझाकर मूर्च्छाका कारण पूंछा, किन्तु उस लज्जावती कामिनीने उनसे कुछ न कहकर अपनी सखीसे सब वृत्तान्त निवेदन किया ॥२६॥ तब उस भामिनीने भी उनके पूछनपरउनकेदर्शनसे हुई मूर्च्छाका कारण और रमणीका समस्त

वृत्तान्त विस्तारसहित राजपुत्रके निकट वर्णन किया ॥ २७ ॥ उसने जो वृत्तान्त यथातथ्य कहा, सो सुनो—सखीने कहा हे प्रभो ! स्वर्गमें विश्वावसुनामक जो प्रसिद्ध गंधर्वराज है ॥ २८ ॥ यह सुभ्रू उन्हींकी कन्या है, मदालसा इसका नाम है एक दिन यह उद्यानमें क्रीडा कर रही थी, इसी अवसरमें वज्रकेतु दानवका पुत्र पातालवासी उग्रमूर्ति शत्रुविदारण पातालकेतुनामक विख्यात दुरात्मा दानवने तमोमयी माया फैलाकर ॥ २९ ॥ ॥ ३० ॥ इस असहाय बालाको हरण किया है. अब आनेवाली त्रयोदशी में वह दुष्टबुद्धि असुर इससे विवाह करेगा ॥ ३१ ॥ किन्तु शूद्र जिस प्रकार वेदश्रुतिका अधिकारी नहीं है इसी प्रकार वह भी इस सुन्दरीका योग्य पात्र नहीं है. जो हो, कल जिस समय यह आत्मघात करनेको

यथात्यासमाख्यातंतद्वृत्तांतंचभामिनी ॥ सख्युवाच ॥ ॥ विश्वावसुरितिख्यातोदिविगंधर्वराट्प्रभो ॥ २८ ॥ तस्येयमात्मजासुभ्रूर्नाम्नाख्यातामदालसा ॥ वज्रकेतोःसुतश्चोग्रोदानवोरिविदारणः ॥ २९ ॥ पातालकेतुर्विख्यातःपातालांतरसंश्रयः ॥ तेनेयमुद्यानगताकृत्वामायांतमोमयीम् ॥ ३० ॥ अपहृत्यसमानीताबालेयंदुष्टबुद्धिना ॥ आगामिन्यांत्रयोदश्यामुद्वक्ष्यतिकिलासुरः ॥ ३१ ॥ सतुनार्हतिचार्वंगींशूद्रोवेदश्रुतिंयथा ॥ अतीतेचदिनेबालांचात्मव्यापादनोद्यताम् ॥ ३२ ॥ सुरभिःप्राहनायंत्वांप्राप्स्यतेदानवाधमः ॥ मर्त्यलोकमनुप्राप्तंयएनंभेत्स्यतेशरैः ॥ ३३ ॥ सतेभर्तामहाभागेह्यचिरेणभविष्यति ॥ अहंत्वस्याःसखीनाम्नाकुंडलेतिमनस्विनी ॥ ३४ ॥ सुताविंध्यवतःपत्नीवीरपुष्करमालिनः ॥ हतेभर्तरिशुंभेनतीर्थात्तीर्थमनुव्रता ॥ ३५ ॥ चरामिदिव्ययागत्यापरलोकार्थमुद्यता ॥ पातालकेतुर्दुष्टात्मावाराहंवपुरास्थितः ॥ ३६ ॥ केनापिविद्धोबाणेनमुनीनांत्राणकारणे ॥ तथाहंतत्त्वतोन्विष्यत्वरिताहमिहागता ॥ ३७ ॥

उद्यत हुई ॥ ३२ ॥ उसी समय सुरभिने कहा कि—"यह अधम दानव तुमको प्राप्त नहीं कर सकेगा" इस मृत्युलोकसे आकर जो पुरुष इसको बाणोंसे छेदन करेगा ॥ ३३ ॥ वही पुरुष तत्काल तुम्हारा भर्त्ता होगा. मैं इसकी सखी हूं और मेरा नाम कुण्डला है ॥ ३४ ॥ मैं विन्ध्यवान्की मनस्विनी कन्या और वीर पुष्कमालीकी पत्नी हूं, मेरे स्वामी शुंभके हाथसे मारे गये हैं, उनके परलोकके लिये उद्यत हो मैं दिव्यगतिसे तीर्थ तीर्थमें विचरण करती हूं, दुष्टात्मा पातालकेतुने आज सूकररूप धारण कियाथा ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये किसी पुरुषने बाणसे उसको विद्ध किया है, यह सत्य है वा नहीं मैं इसी बातकी खोजमें शीघ्र आई थी ॥ ३७ ॥

यहां आकर देखा कि, उस दानवाधमको सत्यही किसी पुरुषने ताड़न किया है. और यह जो मूर्च्छित हुई थी, अब इसका भी कारण सुनिये ॥ ३८ ॥ हे मानव ! आपका दर्शन करते ही यह बाला आपके प्रति अत्यन्त प्रीतमती हुई है, क्योंकि आप देखनेमें देवपुत्रके समान और मनोहर वाक्य इत्यादि अनेक प्रकार गुणशाली हैं ॥ ३९ ॥ किन्तु जिस मनुष्यने इस दानवको विद्ध है. उस पुरुषके अतिरिक्त यह दूसरेकी भार्या नहीं हो सकती, इसी कारण यह अत्यन्त मोहको प्राप्त हुई थी ॥ ४० ॥ क्योंकि इसको जीवन पर्यन्त दुःखही भोगना पड़ेगा देखो इसका आपके प्रति अनुरक्त है, किन्तु अन्य पुरुष इसके भर्ता होंगे ॥ ४१ ॥ कारण कि, सुरभिका वचन कभी मिथ्या नहीं होगा इसको यावज्जीवन दुःखही भोगना पड़ेगा. हे प्रभो ! स्नेहके वश हो दुःखीत चित्तसे मैं इसके निकट आई हूं, ॥ ४२ ॥ क्योंकि सखीके

सत्यमेवसकेनापिताडितोदौष्टचमाचरन् ॥ इयंचमूर्च्छामगमद्येनतत्कारणंशृणु ॥ ३८ ॥ त्वयिप्रीतिमतीबालादर्शनादेवमानद देवपुत्रोपमेचारुवाक्यरूपादिशालिनि ॥ ३९ ॥ भार्याचान्यविहितायेनविद्धःसदानवः ॥ एतस्मात्कारणान्मोहंमहांतमियमागता ॥ ॥ ४० ॥ यावज्जीवंचतन्वंगीदुःखमेवोपभोक्ष्यति ॥ त्वय्यस्याहृदयंरागिभर्त्ताचान्योभविष्यति ॥ ४१ ॥ यावज्जीवमतोदुःखंसुरभ्यानान्यथावचः ॥ अहंत्वस्याःप्रभोप्रीत्यादुःखितात्रसमागता ॥ ४२ ॥ यतोविशेषोनैवास्तिमत्सखीनिजदेहयोः ॥ यद्येषाभिमतं वीरपतिमाप्नोतिशोभना ॥ ४३ ॥ ततस्त्वहंतपःकुर्यांनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥ त्वंतुकोवाविमार्थंवासंप्राप्तोत्रमहामते ॥ ४४ ॥ देवोदैत्योनुगंधर्वःपन्नगःकिन्नरोपिवा ॥ नह्यत्रमानुषगतिर्नचेदृङ्मानुषीगतिः ॥ ४५ ॥ नत्त्वमाख्याहिकोसित्वंयथैवावितथंमया ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ यन्मांपृच्छसिधर्मज्ञेकस्त्वंकिंवासमागतः ॥ ४६ ॥

इसमें और अपनी देहमें कोई विशेषता नहीं है अर्थात् मैं अपने देहको इसके देहसे पृथक् नहीं समझती हूं, यह शोभना यदि अपनी इच्छानुसार वीर पतिको प्राप्त हो ॥ ४३ ॥ तो मैं स्वस्थ चित्तसे तपस्या करूं. हे महामते ! आप कौन हैं ? और किसलिये यहां आये हैं ? ॥ ४४ ॥ क्या आप देवता हैं अथवा दैत्य, गंधर्व, पन्नग वा उरग हैं ? क्योंकि मनुष्य यहां नहीं आ सकता और मनुष्यका देह भी ऐसा नहीं होता ॥ ४५ ॥ अतएव मैंने जिस प्रकार आपसे अपना सत्य वृत्तान्त कहा है, इसी प्रकार आपभी मुझसे अपना सब सत्य

सत्य वृत्तान्त कहिये. कुवलयाश्वने कहा—हे धर्म जाननेवाली ! "तुम कौन हो और किस कारण इस स्थानमें आये हो ?" कह कर जो तुमने पूँछा है ॥ ४६ ॥ मैं वह सब क्रमसे कहता हूं, हे निर्मलबुद्धिमती ! सुनो, मैं राजा शत्रुजित्का पुत्र हूं, हे शुभे ! मैं पिताके द्वारा प्रेरित होकर ॥ ४७ ॥ मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये गालव मुनिके आश्रममें आया था और वहां मैं धर्मचारी मुनियोंकी रक्षा करता था ॥ ४८ ॥ उसी समयमें कोई सूकरमूर्त्ति धारणकरके उनके कार्यमें विघ्न करनेको आया । जब मैंने उसको अर्द्धचन्द्र बाणसे विद्ध किया ॥ ४९ ॥ तब वह अत्यन्त वेगसे दौड़ने लगा और मैं भी घोड़ेपर चढा हुआ उसके पीछे पीछे दौडा । अनन्तर उसके एक गढेमें गिरनेपर

तच्छृणुष्वामलप्रज्ञेकथयाम्यादितस्तव ॥ राज्ञःशत्रुजितःपुत्रःपित्रासंप्रेषितःशुभे ॥४७॥ मुनिरक्षणमुद्दिश्यगालवाश्रममागतः कुर्वतो ममरक्षांचमुनीनांधर्मचारिणाम् ॥ ४८ ॥ विघ्नार्थमागतःकोपिशौकरंवपुरास्थितः ॥ मयासविद्धोबाणेनचंद्रार्द्धाकारवर्चसा ॥ ४९ ॥ अपक्रांतोतिवेगेनतमस्म्यनुगतोहयी ॥ पपातसहसागर्त्तेसक्रोधोश्वश्चमामकः ॥ ५० ॥ सोहमश्वंसमारूढस्तमस्येकःपरिभ्रमन् ॥ प्रकाशमासादितवान्दृष्टाचभवतीमया ॥ ५१ ॥ पृष्टाचनचमेकिंचिद्भवत्यादत्तमुत्तरम् ॥ त्वांचैवानुप्रविष्टोहमिमंप्रासादमुत्तमम् ॥५२॥ इत्येतत्कथितंसत्यंनदेवोहंनदानवः ॥ नपन्नगोनगंधर्वःकिन्नरोवाशुचिस्मिते ॥ ॥ ५३ ॥ समस्ताःपूज्यपक्षावैदेवाद्यामममकुंडले ॥ मनुष्योस्मिविशंकातेनकर्त्तव्यात्रकर्हिचित् ॥ ५४ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ततःप्रहृष्टासाकन्यासखीवदनमुत्तमम् ॥ लज्जाजडंवीक्षमाणाकिंचिन्नोवाचभामिनी ॥ ५५ ॥ तत्सखीपुनरप्येनांप्रहृष्टाप्रत्युवाचह ॥ यथावत्कथितंतेनसुरभ्यावचनानुगम् ॥ ५६ ॥

मैं भी घोड़ेके सहित उसमें गिरा ॥ फिर मैं घोड़ेपर चढा हुआ अकेला भ्रमण करते करते जब प्रकाश स्थानमें आकर उपस्थित हुआ, तब मैंने तुम्हें देखा ॥ ५० ॥ ५१ ॥ तुमसे पूछनेपर जब तुमने कुछ उत्तर नहीं दिया तब मैं तुम्हारा अनुसरण करके इस सुन्दर महलमें उपस्थित हुआ ॥ ५२ ॥ यह मैंने तुमसे सब सत्यही कहा है हे शुचिस्मिते ! देवता, दानव, पन्नग, गंधर्व वा किन्नर, मैं इनमें कोई नहीं हूं ॥५३॥ मैं मनुष्य हूं, कुण्डले ! देवता इत्यादि सबही मेरे पूज्य हैं, मेरे मनुष्य होनेमें तुम किसी प्रकारकी शंका मत करो ॥५४॥ पुत्रोंने कहा-हे पिता ! तब वह भामिनी कन्या मदालसा अत्यन्त आह्लादित होकर लज्जासे मौन हो केवल सखीका सुन्दर वदन देखने लगी, कुछ कहा नहीं ॥५५॥ तब सखीने

अत्यन्त प्रसन्न चित्त होकर मदालसासे कहा—हे सुरभिका वचन करनेमें तत्पर ! इन्होंने यथार्थ ही कहा है, फिर राजपुत्रसे कहा ॥ ५६ ॥ कुण्डला बोली—हे वीर ! आपने जो जो कहा यह सब सत्य और निःसन्देह है, नहीं तो आपको देखकर इसका हृदय आपमें इतनी स्थिरताको प्राप्त क्यों होता ? ॥ ५७ ॥ क्योंकि अधिक कान्ति चन्द्रमाको ही प्राप्त होती है. प्रभा सूर्यको ही प्राप्त होती है, ऐश्वर्य धन्य पुरुष ही करता है और धृति धीर पुरुषको और क्षान्ति उत्तमकोही प्राप्त होती है ॥ ५८ ॥ अत एव आपने जो इस पापी दानवाधमको विद्ध किया है, इस विषयमें संशय नहीं है, गोमाता सुरभि कभी मिथ्या नहीं कहेगी ॥५९॥ अत एव आपके संग संबंध लाभ करके यह सखी धन्य और भाग्यवती हुई. सुतरां हे वीर ! विधिके अनुसार जो कर्त्तव्य है, आप उसका अनुष्ठान कीजिये ॥ ६० ॥ नागपुत्रोंने कहा

कुंडलोवाच ॥ वीरसत्यमसंदिग्धंभवताभिहितंवचः ॥ नान्यत्रहृदयंह्यस्याद्दष्ट्वास्थैर्यंप्रयास्यति ॥ ५७ ॥ चंद्रमेवाधिकाकांतिःसमुपैतिरविंप्रभा ॥ भूतिर्धन्यंधृतिर्धीरंक्षांतिरभ्येतिचोत्तमम् ॥ ५८ ॥ त्वयैवविद्धोसंदिग्धंसपापोदानवाधमः ॥ सुरभिःसागवांमाताकथंमिथ्यावदिष्यति ॥ ५९ ॥ तद्धन्येयंसभाग्याचत्वत्संबंधमवेत्यवै ॥ कुरुष्ववीरयत्कार्यंविधिनैवसमाहितम् ॥ ६० ॥ पुत्रावूचतुः॥ परवानहमित्याहराजपुत्रःसदापितुः ॥ साचतंचिंतयामासतुंबुरुंतत्कुलेगुरुम् ॥ ६१ ॥ सचापितत्क्षणात्प्राप्तोनिगृहीतसमित्कुशः ॥ मदालसायाःसंप्रीत्याकुंडलागौरवेणच ॥ ६२ ॥ प्रज्वाल्यपावकंहुत्वामंत्रवित्कृतमंगलाम् ॥ वैवाहिकेविधौकन्यांप्रतिपाद्याययथागतम् ॥ ६३ ॥ जगामतपसेधीमान्स्वमाश्रमपदंततः ॥ साचाहतांसखीबालांकृतार्थास्मिवरानने ॥ ६४ ॥

हे पितः ! राजपुत्र बोले मैं पराधीन हूं मैं उन पिताकी आज्ञाके विना किस प्रकार इस बालासे विवाह कर सकता हूं ? कुण्डला बोली आप ऐसा न कहैं यह देवकन्या है इससे विवाह कीजिये. तब राजपुत्रके तथास्तु कहनेपर उनके संग विवाहमें संगत हो उस कन्या मदालसाने अपने कुलगुरु तुम्बुरुको मनमें स्मरण किया ॥ ६१ ॥ चिन्ता करतेही वह मंत्रवित् तुम्बुरुभी उसी समय समिध और कुश ग्रहण करके वहां उपस्थित हुए. फिर मदालसाकी प्रीति और कुण्डलाके गौरवसहित आये ॥६२॥ और घृतकी आहुति देकर अग्निको प्रज्वलित किया मंगलके साज सजाये वैवाहिक विधानानुसार मदालसाको मिलित कराय वहांसे अपने स्थानको गये ॥ ६३ ॥ अर्थात् वह बुद्धिमान् अपने आश्रममें तप

करनेके निमित्त चलेगये तब सखी कुण्डलाने मदालसासे कहा हे वरारने ! मैं अब कृतार्थ हुई ॥६४॥ रूपशालिनी तुमको इनके संग मिलिती देख- कर मैं प्रसन्न हुई अब मैं निर्विकल्प मनसे तप करूंगी ॥ ६५ ॥ अब जिससे फिर मुझको इस प्रकार न होना पड़े वैसा करनेको तीर्थके जलसे स्नानकर पाप रहित हो जाऊंगी फिर वह राजपुत्रसे नम्रतावाद्वारा कहने लगी ॥ ६६ ॥ अभिलषित स्थानमें जानेके लिये अपनी सखीके स्नेहसे व्याकुल हो बोली कुण्डला बोली—हे अपरिमितबुद्धिशालिन् ! प्राज्ञ पुरुष भी आपके समान पुरुषकी उपदेश देनेमें समर्थ नहीं होते ॥ ६७ ॥ स्त्री मैंहूं मेरी तो बात ही क्या है ? अतएव आपको उपदेश नहीं देती किंतु इस सखीके स्नेहसे मेरा मन अत्यन्त खिंचगया है ॥ ६८ ॥ और

सयुंक्तामसुनादृष्ट्वात्वामहंरूपशालिनीम् ॥ तपस्तप्स्येहमतुलंनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥ ६५ ॥ तीर्थांबुधौतपापाचभवित्रीनेदृशी यथा ॥ तंचाहराजपुत्रंसाप्रश्रयोपनतंवचः ॥ ६६ ॥ गंतुकामानिजसखीस्नेहविक्लवभाषिणी ॥ कुण्डलोवाच ॥ पुंभि रप्यमितप्रज्ञेनोपदेशोभवद्विधे ॥ ६७ ॥ दातव्यःकिमुतस्त्रीभिरतोनोपदिशामिते ॥ किंत्वस्यास्तनुमध्यायाःस्नेहाकृष्टेनचेतसा ॥ ६८ ॥ त्वयाविश्रंभिताचास्मिस्मारयाम्यरिसूदन ॥ भर्त्तव्यारक्षितव्याचभार्याहिपतिनासदा ॥ ६९ ॥ धर्मार्थकामसंसिद्ध्यै भार्याभर्त्तुःसहायिनी ॥ याचभार्याचभर्त्ताचपरस्परमनुव्रतौ ॥७०॥ तदाधर्मार्थकामानांत्रयाणामपिसंगतम् ॥ कथंभार्यामृतेधर्ममर्थं वापुरुषःप्रभो ॥ ७१ ॥प्राप्नोतिकाममर्थंवातस्यांत्रितयमाहितम् ॥ तथैवभर्त्तारमृतेभार्याधर्मादिसाधने ॥७२॥ नसमर्थात्रिवर्गोयंदां पत्यंसमुपाश्रिताः ॥ देवतापितृभृत्यानामतिथीनांचपूजनम् ॥७३॥

आपके द्वारा विश्वासित होनेके कारण हे अरिसूदन! आपको किंचित् स्मरण कराती हूं कि, पतिको भार्य्याकी सदा रक्षा और पालना करनी चाहिये ॥६९॥भार्य्या भर्त्ताकी सहायिनी होने पर सम्यक् प्रकार धर्म अर्थ और कामकी सिद्धिका निमित्त होती है भार्य्या और भर्त्ता दोनोंही जब परस्पर में वशीभूत होते हैं ॥ ७० ॥ तभी धर्म अर्थ और काम इन तीनोंकी संगति होती है धर्मादि त्रिवर्ग भार्य्यामें समाहित होने के कारण पुरुष जिसप्रकार भार्य्याके विना कभी धर्म अर्थ ॥ ७१ ॥ वा लाभ करनेमें समर्थ नहीं होता इसी प्रकार भार्य्या भी स्वामीके विना धर्मादिसाधनमें ॥ ७२ ॥ समर्थ नहीं होती. क्योंकि धर्म अर्थ और काम दोनोंको सम्यक् प्रकारसे आश्रय करके स्थित देखो हे राजनन्दन !

देवता पितृ भृत्य और अतिथियोंका पूजन ॥ ७३ ॥ न होनेसे यह धर्म्माचरण करनेमें समर्थ नहीं होता पुरुषके अनायास लब्ध अर्थ भी अपने घर लानेपर ॥७४॥ स्त्रीके न होनेसे वा कुभार्य्याके संसर्गसे वह सम्पूर्णही क्षयको प्राप्त होता है भार्य्याके न होनेमें जो काम नहीं रहता, यह तो प्रत्यक्षही प्रतीत होता है ॥ ७५ ॥ और अधिक क्या स्त्री और पुरुष दोनोंही यदि समान धर्म्म अवलम्बन करें तो त्रयीधर्म्मलाभ करनेमें समर्थ होते हैं मनुष्यगण यदि साध्वी पत्नीको प्राप्त हों तो पुत्रोत्पादनसे पितरोंको अन्नादि साधनसे अतिथिको ॥ ७६ ॥ और पूजादिद्वारा देवताओंको प्रसन्न करनेमें समर्थ होते हैं. स्वामीके विना स्त्री के भी धर्म और कामका सम्यक् प्रकार विस्तार नहीं होता ॥ ७७ ॥ क्योंकि यह त्रिवर्ग दोनोंके

नर्पुंभिःशक्यतेकर्त्तुमृतेभार्यांनृपात्मज ॥ प्राप्तोपिचार्थोमनुजैरानीतोपिनिजंगृहम् ॥ ७४ ॥ क्षयमेतिविनाभार्यांकुभार्यासंग्रहेपिवा ॥ कामस्तुतस्यनैवास्तिप्रत्यक्षेणोपलक्ष्यते ॥७५ ॥ दंपत्योःसहधर्मेणत्रयीधर्ममवाप्नुयात् ॥ पुत्राणांयोनिरन्यावैनान्यतोभार्ययाविना॥ पितॄन्पुत्रैस्तथैवान्नसाधनैरतिथीनपि ॥ ७६ ॥ पूजाभिरमरांस्तद्वत्साध्वींभार्यांनरोवति ॥ स्त्रियाश्चापिविनाभर्त्राधर्मकामार्थसंततिः ॥ ७७ ॥ नैवतस्मात्त्रिवर्गोयंदांपत्यमधिगच्छति ॥ एतन्मयोक्तंयुवयोर्गमिष्यामियथेप्सितम् ॥ ७८ ॥ वर्धत्वमनयासार्द्धंधनपुत्रसुखायुषा ॥ पुत्रावूचतुः ॥ इत्युक्त्वासंपरिष्वज्यस्वसखींतंनमस्यच ॥ ७९ ॥ जगामदिव्ययागत्यायथाभिप्रेतमात्मनः ॥ सोपिशत्रुजितःपुत्रस्तामारोप्यतुरंगमम् ॥ ८० ॥ निर्गंतुकामःपातालाद्विज्ञातोदनुसंभवैः ॥ ततस्तैःसहसोत्क्रुष्टंह्रियतेह्रियतेत्विति ॥ ८१ ॥ कन्यारत्नयदानीतंदिवःपातालकेतुना ॥ ततःपरिघनिस्त्रिंशगदाशूलशरायुधम् ॥ ८२ ॥

आपमेंही आश्रित हैं जो आप दोनोंके निकट मेरा केवल यही निवेदन है कि, अब अनुमति कीजिये मैं यथाभिलषित स्थानमें चली जाऊं ॥७८॥ आशिर्वाद करतीहूं कि, आप इसके संग मिलित होकर धन पुत्र सुख और आयुद्वारा वर्द्धित हों। नागराजके पुत्रोंने कहा—कुण्डला इस प्रकार कह अपनी सखीको आलिंगन और राजपुत्रको नमस्कार करके ॥ ७९ ॥ दिव्यगतिसे अपने अभिलषित स्थानको चलीगई उस शत्रुजितके पुत्र ऋतध्वजनेभी उस समय मदालसाको उस घोड़ेपर चढ़ाय ॥ ८० ॥ पातालसे निकलनेकी जैसेही इच्छा करी वैसेही दानवोंने जान लिया "पातालकेतु स्वर्गसे जिस कन्यारत्नको लाया था उसकोही कोई हरण करता है" यह कहकर दानव चीत्कार करनेलगे. तदनन्तर दानवसैन्य

पातालकेतुके संग मिलित होकर परिघ, खड्ग, गदा, शूल और बाण इत्यादि ॥ ८१ ॥८२॥ समस्त दानवोंकी सेनाने पातालकेतुके साथ आयुध ग्रहण किये और वह ठहरो ठहरो कहते कहते ॥ ८३ ॥ राजनन्दनके ऊपर शर और शूल इत्यादि अस्त्रोंकी वर्षा करने लगे. तब अत्यन्त बलशाली शत्रुजित्के पुत्रने ॥ ८४ ॥ हँसते हँसते लीलापूर्वकही उनके समस्त अस्त्र अपने बाणोंसे काट डाले तब ऋतध्वजके बाणोंसे छिन्न भिन्न असि, शक्ति, ऋष्टि और बाणोंसे क्षणकालमेंही पातालतल ॥ ८५ ॥ परिपूर्ण होगया और ऋतध्वजने बड़े बाण छोडे और छिन्न भिन्न कर दिये फिर राजपुत्रने त्वाष्ट्र अस्त्र ग्रहण करके दानवोंपर चलाया ॥८६॥ तब उस ज्वालामालायुक्त भयंकर अस्त्रने पातालकेतुके सहित दानवों

दानवानांबलंप्राप्तंसहपातालकेतुना ॥ तिष्ठतिष्ठेतिजल्पंतस्तेतदादानवोत्तमाः ॥ ८३ ॥ शरवर्षैस्तथाशूलैर्ववर्षुर्नृपनंदनम् ॥ सतुशत्रुजितःपुत्रस्ततस्तान्प्रतिवीर्यवान् ॥८४॥ चिच्छेदशरजालेनप्रहसन्निवलीलया ॥ क्षणेनपातालतलमसिशक्त्यृष्टिसायकैः ॥ ८५ ॥ छिन्नैःसंछन्नमत्यर्थमृतध्वशजरोत्करैः ॥ ततोस्त्रंत्वाष्ट्रमादायचिक्षेपप्रतिदानवान् ॥८६॥ तेनतेदानवाःसर्वेसहपातालकेतुना ॥ ज्वालामालातितीव्रेणस्फुटदस्थिचयास्तदा ॥ ८७ ॥ निर्दग्धाःकापिलंतेजःसमासाद्येवसागराः ॥ ततःसराजपुत्रोश्वीनिहत्यासुरसत्तमान् ॥ ॥ ८८ ॥ स्त्रीरत्नेनसमंतेनसमागच्छत्पितुःपुरम् ॥ प्रणिपत्यचतत्सर्वंसतुपित्रेन्यवेदयत् ॥ ८९ ॥ पातालगमनंचैवकुंडलायाश्चदर्शनम् ॥ तद्वन्मदालसाप्राप्तिंदानवैश्चापिसंगरम् ॥ ९० ॥ वधश्चतेषामस्त्रेणपुनरागमनंतथा ॥ इतिश्रुत्वापितातस्यचरितंचात्रचेतसः ॥ ९१ ॥ प्रीतिमानभवच्चैनंपरिष्वज्याहचात्मजम् ॥ सत्पुत्रेणत्वयापुत्रतारितोहंमहात्मना ॥ ९२ ॥

की अस्थियोंको तोड़ डाला ॥८७॥ और वह क्षणकालमेंही कपिलमुनिके तेजसे सगरके पुत्रोंके समान भस्म होगये. तदनन्तर वह राजपुत्र असुरकुल निहत करके उस स्त्रीरत्नके सहित घोडेपर चढकर पिताके नगरमें आये और पिताको प्रणाम करके सब वृत्तान्त कहा ॥८८॥८९॥ पातालगमन, कुण्डलाका दर्शन, मदालसाप्राप्ति, दानवोंके संग युद्ध ॥ ९० ॥ अस्त्रद्वारा उनका निधन और पुनरागमन इत्यादि समस्त वृत्तान्त पितासे निवेदन किया. तब वह चारुचेता पुत्रका चरित्र इसप्रकार सुनकर ॥ ९१ ॥ अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुत्रको आलिंगन करके कहने लगे हे वत्स ! तुझ सत्पुत्रने मुझको तार दिया ॥ ९२ ॥

जिसके द्वारा धर्मशील मुनिगण भयसे रक्षित हुए हैं मैं भी उसी महात्मा सत्पात्र द्वारा तारित हुवा. हे वत्स ! मेरे पूर्व पुरुषगण जिसके द्वारा ख्यात हुएथे और मैंने जिसको विस्तारित किया था ॥ ९३ ॥ हे वीर ! पराक्रमशाली तुम्हारे द्वारा वह यश और भी बहुत हुआ देखो यश बल वा धन पिताके द्वारा जो उपार्जित होता है ॥ ९४ ॥ जो उसको नष्ट नहीं करता है अर्थात् रक्षित करता है वह पुरुष मध्यम है और जो व्यक्ति उसकी अपेक्षा अधिक वीर्यशाली होकर अपनी शक्तिसे उसको अधिक करता है ॥ ९५ ॥ पंडित गण उसको उत्तम पुरुष कहकर कीर्तन करते हैं और जो व्यक्ति पितृउपार्जित यश बल वा धनको ॥ ९६ ॥ नष्ट करता है उस पुरुषको अधम पुरुष

भयेभ्योमुनयस्त्रातायेनसद्धर्मचारिणा ॥ मत्पूर्वैःख्यातिमानीतंमयाविस्तारितंपुनः ॥ ९३ ॥ पराक्रमवतावीरत्वयातद्बहुलीकृतम् ॥ यद्दत्तंयशःपित्राधनंवीर्यमथापिवा ॥ ९४ ॥ तन्नहापयतेयस्तुसनरोमध्यमःस्मृतः ॥ तद्वीर्यादधिकंयस्तुपुनरन्यत्स्वशक्तितः ॥ ॥ ९५ ॥ निष्पादयतितंप्राज्ञावदंतिनरमुत्तमम् ॥ यःपित्रासमुपात्तानिधनवीर्ययशांसिवै ॥ ९६ ॥ न्यूनतांनयतिप्राज्ञास्तमाहुः पुरुषाधमम् ॥ तन्मयाब्राह्मणत्राणंकृतमासीद्यथात्वया ॥ ९७ ॥ पातालगमनंयच्चयच्चासुरविनाशनम् ॥ एतदभ्यधिकंवत्सतेनत्वं पुरुषोत्तमः ॥ ९८ ॥ तद्धन्योस्म्यथवानत्वमहमेवगुणाधिकः ॥ त्वांपुत्रमीदृशंप्राप्यश्लाघ्यंपुण्यवतामपि ॥ ९९ ॥ नसत्पुत्रकृतां प्रीतिमन्यःप्राप्नोतिमानवः ॥ पुत्रेणनातिशयितोयःप्रज्ञादानविक्रमैः ॥ १०० ॥ धिक्तस्यजन्मयःपित्रालोकेविज्ञायतेनरः ॥ यत्पुत्रा त्ख्यातिमभ्येतितस्यजन्मसुजन्मनः ॥ १०१ ॥

कहकर पंडितगण कीर्तन करते हैं, जो हो हे वत्स ! मैंने पूर्वमें तुम्हारे समान केवलमात्र ब्राह्मणोंकी रक्षा की थी ॥ ९७ ॥ तुमने पातालगमन असुरविनाशन और ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेसे मेरी अपेक्षा अधिक कार्य किया है अतएव तुम उत्तम पुरुष हो ॥९८॥ हे बालक ! तुम धन्य हो और ऐसे गुणाधिक तुम सरीखे पुत्रको लाभकरके मैं पुण्यवानोंमें श्लाघनीय हुआ हूं ॥९९॥ हे वत्स ! जो पुरुष पुत्र द्वारा प्रज्ञा दान वा पराक्रममें अधिक नहीं होता मेरा विचार है कि, वह पुरुष पुत्र जनित प्रीतिलाभ नहीं करसकता ॥१००॥ जो पुरुष पिताद्वारा लोकमें विख्यात होता है उसके जन्मको धिक्कार है किन्तु जो पुरुष पुत्रद्वारा ख्यातिलाभ करता है उसी सुजन्माका जन्म सार्थक है॥ १०१ ॥

जो मनुष्य निज नामसे विख्यात होता है वही धन्य है और जो पुरुष मातृपक्ष द्वारा विख्यात होताहै वह नराधम है॥१०२॥जो हो हे वत्स! तुम धन बल और सुख द्वारा वर्द्धित होओ और इस गंधर्वतनयाका तुमसे कभी वियोग न हो॥१०३॥राजपुत्र पिताके द्वारा इसप्रकार सुनकर और आलिंगित होकर भार्याके सहित अपने वासस्थानको चले गये ॥१०४॥ और उस पत्नी मदालसाके संग मिलित होकर पिताके भवन और अन्यान्य उद्यान वन और पर्वतसानु सबमें क्रीडा करने लगे॥१०५॥ और वह शुभमयी सुमध्यमा मदालसा भी प्रतिदिन प्रातःकालमें सास और श्वशुरके दोनों चरणोंकी वन्दना करके उनके संग प्रसन्न रहने लगी ॥१०६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

आत्मख्यातीयतोधन्योमध्यःपितृपितामहैः ॥ मातृपक्षेणमात्राचख्यातियातिनराधमः॥१०२॥ तत्पुत्रधनवीर्यैस्त्वंविवर्धस्वसुखेनच ॥ गंधर्वतनयाचेयंमावियुज्यतुवैत्वया ॥ १०३ ॥ इतिपित्राबहुविधंप्रियमुक्त्वापुनःपुनः ॥ परिष्वज्यस्वमावासंसभार्यःसविसर्जितः ॥ ॥ १०४ ॥ सतयाभार्ययासार्धंरेमेतत्रपितुःपरे॥ अन्येषुचतथोद्यानवनपर्वतसानुषु ॥ १०५ ॥ श्वश्रूश्वशुरयोःपादौप्रणिपत्यचसा शुभा ॥ प्रातःप्रातस्ततस्तेनप्रणिपत्यसुमध्यमा ॥ १०६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेएकोनविंशोऽध्यायः ॥ १९ ॥

पुत्रावूचतुः ॥ ॥ततःकालेबहुतिथेगतेराजापुनःसुतम् ॥ द्विप्रगच्छाशुविप्राणांत्राणायचरमेदिनीम् ॥१॥ अश्वमेतंसमारुह्यप्रातःप्रातर्दिनेदिने ॥ आबाधाद्द्विजमुख्यानामन्वेष्टव्यासदैवहि ॥२॥ दुर्वृत्ताःसंतिशतशोदानवाःपापबुद्धयः ॥ तेभ्योनस्याद्यथाबाधामुनीनांत्वं तथाकुरु॥३॥ सतथोक्तस्तदापित्रातथाचक्रेनृपात्मजः ॥ परिक्रम्यमहींकृत्स्नांववंदेचरणौपितुः ॥ ४ ॥ अहन्यनिसंप्राप्तेपूर्वाह्णेनृपनंदनः ॥ ततश्चशेषंदिवसंतयारेमेसुमध्यया ॥ ५ ॥

नागपुत्र बोले कि, अनन्तर कुछ काल बीतनेपर राजा शत्रुजित्‌ने पुत्र ऋतध्वजसे फिर कहा हे वत्स ! तुम ब्राह्मणोंकी रक्षा करनेके लिये शीघ्र जाओ और पृथ्वीमें विचरण करो ॥१॥ प्रतिदिन प्रातःकालमें इस अश्वपर चढ़कर ब्राह्मणश्रेष्ठगणोंकी बाधारहित रक्षा करो ॥ २ ॥ पापात्मा और दुर्वृत्त सैकडों दानव हैं वह दानव जिससे मुनियोंको बाधा न करसकें तुम वैसाही आचरण करो ॥ ३ ॥ राजनन्दन इसप्रकार पिताकी आज्ञा पाय वही करने लगे. वह प्रतिदिन पूर्वाह्ण समयमें पृथ्वीपर्यटन करके पिताके चरणयुगलकी वन्दना करते और शेष समयमें

[कु]मध्यमाके संग क्रीडा करते ॥ ४ ॥ ५ ॥ उन्होंने इस प्रकारका विचरण करते करते एक समय देखा कि, पातालकेतु दानवका अनुज (भाई) [ता]लकेतु यमुनातटपे आश्रम करके अवस्थान करता है ॥ ६ ॥ इस मायावी दानवने मुनि रूप अवलम्बन किया था वह पहला वैर स्मरण करके राजपुत्र से कहने लगा ॥७॥ कि, हे राजपुत्र ! जो कहताहूं यदि इच्छा हो तो वह करो । हे सत्य प्रतिज्ञ ! आपने कभी किसीकी प्रार्थनाभंग नहीं [क]री है ॥ ८ ॥ हे राजतनय ! मैं यज्ञ करूंगा और अभिलषित इष्टि (यज्ञाङ्गविशेष) तथा अग्निचयन करूंगा, किन्तु मुझमें दक्षिणा देनेकी [सा]मर्थ्य नहीं है ॥९॥ अतएव हे वीर ! सुवर्णप्रदान के लिये अपना अंगभूषण कंठका यह अलंकार (गहना) मुझे दो और मेरे आश्रमकी रक्षा

एकादातुचरन्सोथददर्शयमुनातटे ॥ पातालकेतोरनुजंतालकेतुंकृताश्रमम् ॥ ६ ॥ मायावीदानवःसोथमुनिरूपंसमाश्रितः ॥
सप्राहराजपुत्रंतंपूर्ववैरमनुस्मरन् ॥ ७ ॥ राजपुत्रब्रवीमित्वांतत्कुरुष्वयदीच्छसि ॥ नचतेप्रार्थनाभंगःकार्यःसत्यप्रतिश्रव ॥ ८ ॥
यक्ष्येयज्ञेनधर्मायकर्त्तव्याश्चमयेष्टयः ॥ चिंतयेतत्रकर्त्तव्यानास्तिमेदक्षिणायतः ॥ ९ ॥ ततःप्रयच्छमेवीरदक्षिणार्थंस्वभूषणम् ॥
यदेतत्कंठलग्नंतेरक्षचेमंममाश्रमम् ॥ १० ॥ यावदंतर्जलेदेवंवरुणंयादसांपतिम् ॥ वैदिकैर्वारुणैर्मंत्रैःप्रजानांपुष्टिहेतुकैः ॥ ११ ॥
अभिष्टूयत्वरायुक्तःसमभ्येमीतिवादिनम् ॥ तंप्रणम्यततःप्रादात्सतस्मैकंठभूषणम् ॥ १२ ॥ प्राहचैनंभवान्यातुनिर्व्यलीकेनचेतसा ॥
स्थास्यामितावदत्रैवतवाश्रमसमीपतः ॥१३॥ तवादेशान्महाभागयावदागमनंतव ॥ नतेत्रकश्चिदाबाधांकरिष्यतिमयीस्थिते ॥१४॥
विश्रब्धस्त्वंमुनिश्रेष्ठकुरुष्वचमनोगतम् ॥ एतदुक्तस्ततस्तेनसममज्जनदीजले ॥ १५ ॥

[क]रो ॥ १० ॥ प्रजाके पुष्टिकारक वैदिक वारुणमंत्रसे यादः पतिका वरुणदेव जलमें स्तव करके जबतक मैं न लौटूं आप तबतक मेरे आश्रम [की] रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ मैं शीघ्र ही आता हूं. उन कहते हुए मुनिको प्रणाम करके उन्होंने अपने कंठका भूषण प्रदान किया ॥ १२ ॥ [औ]र कहा, हे महाभाग ! विश्वस्त हृदयसे जाइये मैं तबतक इसी आश्रमके समीप रहूंगा ॥ १३ ॥ जबतक आपलौटकर नहीं आवेंगे, तबतक मैं [आ]पकी आज्ञानुसार यहाँ रहूंगा, मेरे रहनेसे कोई आपको बाधा नहीं करेगा ॥१४॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप निःशंक होकर गमन करके अभिलषित [वि]षय सम्पादन कीजिये. वह मायामुनि तालकेतु राजनन्दनसे इसप्रकार सुनकर नदीके जलमें निमग्न हुआ ॥ १५ ॥

राजनन्दन उसके मायारचित आश्रमकी रक्षा करने लगे अनन्तर तालकेतु उस जलाशयसे निकल राजा शत्रुजितके नगरमें आय ॥ १६ ॥ मदालसा और अन्यान्यलोकोंके सामने यह बात कहनेलगा कि वीर कुवलयाश्व मेरे आश्रमके समीप ॥१७॥ तपस्वियोंकी रक्षा करते थे उन्होंने किसी दुष्ट दानवके सहित यथाशक्ति युद्ध किया और ब्रह्मद्वेष्टा असुरपर प्रहार किया ॥ १८ ॥ परंतु वह उस पापात्मा दानवके मायारूपीशूलसे वक्षःस्थलमें विदारित हुए हैं उन्होंने उसके द्वारा मृतक होते समय मुझको यह कंठभूषण दे दिया है ॥ १९ ॥ और वनमें शूद्रतापसोंके द्वारा अग्निसंयोगको प्राप्त हुए हैं और वह नेत्रोंमें आँसू भरे दुःखसेही सता हुआ ॥ २० ॥ घोडा उस दुरात्मा दानवने ग्रहण कर लिया उस पापात्मा

अरक्षत्सोपितस्यैवमायाविहितमाश्रमम् ॥ गत्वाजलाशयात्तस्मात्तालकेतुश्चतत्पुरम् ॥ १६ ॥ मदालसायाःप्रत्यक्षमन्येषांचैतदुक्तवान् ॥ वीरःकुवलयाश्वोसौममाश्रमसमीपतः ॥ १७ ॥ केनापिदुष्टदैत्येनकुर्वन्रक्षांतपस्विनाम् ॥ युध्यमानोयथाशक्तिनिघ्नन्ब्रह्मद्विषोयुधि ॥ १८ ॥ मायामाश्रित्यपापेनभिन्नःशूलेनवक्षसि ॥ म्रियमाणेनतेनेदंदत्तंमेकंठभूषणम् ॥ १९ ॥ प्रापितश्चाग्निसंयोगंगतवेशूद्रतापसैः ॥ कृतार्तहेषाशब्दोवैत्रस्तःसाश्रुविलोचनः ॥ २० ॥ नीतःसोश्वश्चतेनैवदानवेनदुरात्मना ॥ एतन्मयानृशंसेनदृष्टंदुष्कृतकारिणा ॥ २१ ॥ यदत्रानंतरंकृत्यंकुरुष्वोत्तरकालिकम् ॥ हृदयाश्वासनंचैतद्गृह्यतांकण्ठभूषणम् ॥ २२ ॥ नास्माकंहिसुवर्णेनकृत्यमस्तितपस्विनाम् ॥ इत्युक्तोत्सृज्यतद्भूमौसजगामयथागतम् ॥ २३ ॥ निपपातजनःसोथशोकार्त्तोमूर्च्छयातुरः ॥ क्षणेनचेतनांप्राप्यसर्वास्तानृपयोषितः॥२४॥ राजपत्न्यश्चराजाचविलेपुरतिदुःखिताः ॥ मदालसातुतद्दृष्ट्वातदीयंकंठभूषणम् ॥२५॥

नृशंसके द्वारा यह समस्तही घटना देखी है ॥२१॥ अब जो कर्त्तव्य हो आप वह समस्त अकालिक विधि संपादन कीजिये और यह हृदयाश्वासदायक उनका कंठभूषण ग्रहण कीजिये मैं तपस्वी हूं मेरा सुवर्णसे क्या प्रयोजन है ? इस प्रकार कहकर तालकेतु कुवलयाश्वका कंठभूषण स्थापन कर जहांसे आयाथा वहींको चलागया ॥ २२ ॥ २३ ॥ तब वहाँके मनुष्यगण शोकसे पीडित और मूर्च्छित होकर गिर पड़े फिर चेतना लाभ करके राजा राजमहिषी ॥ २४ ॥ और अन्यान्य सब राजस्त्रियें अत्यन्त दुःखी होकर विलाप करने लगीं मदालसाने उनका कंठभूषण देखा ॥ २५ ॥

और स्वामीकी मरणवार्ता सुन अत्यन्त कातर होकर शीघ्रही प्रिय प्राणपरित्याग किया तब राजाके भवनमें जिसप्रकार क्रन्दनध्वनि हुई उसी प्रकार पुरवासी प्रजाके प्रत्येक भवनमें रुदन का महाशब्द होने लगा अनन्तर राजा शत्रुजित् पुत्रवधू मदालसाको भर्त्ताके वियोगसे प्राणरहित देख ॥ २६ ॥ २७ ॥ विचारसहित मनको सावधान कर समीपवर्त्ती मनुष्योंसे कहने लगे तुमको और हमको रोना नहीं चाहिये ॥ २८ ॥ मैं देखता हूं कि, समस्त प्राणियोंके संबन्ध की अनित्यता है क्या मैं पुत्रका शोच करूं वा पुत्रवधूको शोचूं ॥ २९ ॥ दोनों कृतकृत्य होनेके कारण अशोचनीय हैं क्योंकि जिस मेरे शुश्रूषा और मेरेही वचनानुसार ब्राह्मणोंकी रक्षामें तत्पर होकर ॥ ३० ॥ जब प्राणत्याग

तत्याजसुप्रियान्प्राणाञ्श्रुत्वाविनिहतंप्रियम् ॥ ततःपुरेमहाक्रंदःपौराणांभवनेष्वभूत् ॥ २६ ॥ यथैवतस्यनृपतेःस्वगृहेसमवर्तत ॥ राजाचतांमृतांदृष्ट्वाविनाभर्त्रामदालसाम् ॥ २७ ॥ प्रत्युवाचजनंसर्वंविमृश्यस्वस्थमानसः ॥ नरोदितव्यंपश्यामिभवतामात्मनस्तथा ॥ २८ ॥ सर्वेषामेवसंचिंत्यसंबंधानामनित्यताम् ॥ किंनुशोचामितनयंकिंनुशोचाम्यहंस्नुषाम् ॥ २९ ॥ विमृश्यकृतकृत्यत्वान्मन्येशोच्यावुभावपि ॥ मच्छुश्रूषुर्मद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ॥ ३० ॥ प्राप्तोमेयसुतोमृत्युंकथंशोच्यःसधीमताम् ॥ अवश्यंयातियद्देहं तद्द्विजानांकृतेयदि ॥ ३१ ॥ ममपुत्रेणसंत्यक्तंनन्वभ्युदयकारितत् ॥ इयंचसत्कुलोत्पन्नाभर्त्तर्येवमनुव्रता ॥ ३२ ॥ कथंतुशोच्या नारीणांभर्तुरन्यन्नदैवतम् ॥ अस्माकंबांधवानांचतथान्येषांदयावताम् ॥ ३३ ॥ शोच्याह्येषाभवेदेवंयदिभर्त्राविियोगिनी ॥ यातुभर्तुर्वधंश्रुत्वातत्क्षणादेवभामिनी ॥ ३४ ॥

किया है तब उस पुत्रके लिये शोक करना बुद्धिमान्को उचित नहीं है जो देह अवश्यही जायगा मेरे पुत्रने उस देहको ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ ३१ ॥ त्याग किया है तब वह शोचनीय नहीं है वरन् कल्याणकारी है और इस सत्कुलोत्पन्न ललनाने जब स्वामीका अनुगमन किया है ॥ ३२ ॥ तब फिर वह भी शोचनीय किस प्रकार होसकती है ? क्योंकि स्वामीके अतिरिक्त स्त्रीका अन्य देवता नहीं है यह स्वामीके वियोग होनेपर यदि जीवित रहती तो मेरी बांधवगणोंकी और अन्यान्य दयावान् मनुष्योंकी शोचनीय दशा होती इसने जब स्वामीकी मरणवार्त्ता सुनकर तत्काल प्राणत्याग किया है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तब यह पंडितगणोंको अशोचनीय है जो रमणी स्वामीके मरनेपर भी जीवन धारणा करती हैं वही शोकके योग्य हैं॥ ३५ ॥ और जो स्वामीके सहित गमन करती हैं वह तो कभी शोचनीय नहीं हैं और जो कष्ट जानकर गमन नहीं करतीं वह अपने कुलको कष्ट देती हैं इसने कृतज्ञा होनेसे भर्त्ताके वियोगका अनुभव नहीं किया ॥ ३६ ॥ इस लोक और परलोक दोनों लोकके समस्त सुखदाता स्वामीको कौन स्त्री मनुष्य समझती है ? ॥ ३७ ॥ हमारा पुत्र वा पुत्रवधू या मैं किम्वा उसकी माता हम कोई शोक के उपयुक्त नहीं हैं क्योंकि ब्राह्मणोंके निमित्त प्राणपरित्यागकारी उस पुत्रके द्वारा हम सबकाही उद्धार हुआ है ॥३८॥ मेरा महामति पुत्र अर्द्धमुक्त देहका परित्यागकरनेके कारण

भर्तारमनुयातेयंनशोच्यातोविपश्चिताम् ॥ ॥ ताःशोच्यायावियोगिन्यःसहभर्त्राकुलांगनाः ॥३५॥ कष्टज्ञात्यानगच्छन्तिकष्टदाःस्युः कुलात्मनोः ॥ भर्तुर्वियोगस्त्वनयानानुभूतःकृतज्ञया ॥ ३६ ॥ दातारंसर्वसौख्यानामिहचामुत्रचोभयोः ॥ लोकयोःकाहिभर्त्तारंनारी मन्येतमानुषम् ॥३७॥ नसशोच्योनचैवेहनायंतज्जननीनच ॥ त्यजताब्रह्मणार्थायप्राणान्सर्वैस्मतारिताः ॥ ३८ ॥ विप्राणांममधर्मस्यगतःसतुमहामतिः ॥ आनृण्यमर्द्धभुक्तस्यत्यागादेहस्यमेसुतः ॥३९॥ मातुःसतीत्वंमद्वंशवैमल्यंशौर्यमात्मनः ॥ संग्रामेसंत्यजन्प्राणान्सोविंदद्विजरक्षणात् ॥ ४० ॥ ततःकुवलयाश्वस्यमाताभर्तुरनंतरम् ॥ श्रुत्वापुत्रवधंताहक्प्राहहृष्टातुतंपतिम् ॥ ४१ ॥ नमेस्वस्राप्राप्ताप्रीतिर्नृपेदृशी ॥ श्रुत्वामुनिपरित्राणेहतंपुत्रंयथामया ॥ ४२ ॥ शोचतांब्राह्मणानांयेनिःस्वनेनातिदुःखिताः ॥ म्रियंतेव्याधिनाक्लिष्टास्तेषांमातावृथाप्रजा ॥ ४३ ॥ संग्रामेयुध्यमानायेभीतागोद्विजरक्षणे ॥ क्षुण्णाःशस्त्रैर्विपद्यंतेतएवभुविमानवाः ॥ ४४ ॥

ब्राह्मणसे मुझसे और धर्म्मसे उऋण हुआ है ॥३९॥ ब्राह्मणकी रक्षाके निमित्त संग्राममें प्राणत्याग करनेसे माताका सतीत्व वंश निर्मलता और निज शूरता इन सबका कुछभी उसके द्वारा त्याग नहीं हुआ ॥४०॥ कुवलयाश्वकी माता पुत्रकी मरणवार्त्ता स्वामीके सुननेके पीछे सुन स्वामीको देख प्रसन्न चित्तसे उनके समान कहने लगी॥४१॥हे राजन्!मुनिकी रक्षा करते२संतान निहत हुई है यह सुनकर जिसप्रकार सुखी हुई हूं माता वा बहन किसीके द्वारा मैं इस प्रकार सुखी नहीं होसकी ॥ ४२ ॥ जो शोचनीय बान्धवगणोंके लिये अति दुःखसे श्वासलेते हुए व्याधिसे क्लिष्ट होकर जीवन विसर्जन करते हैं उनकी माता वृथा संतानजननी है ॥४३॥ जो गौ वा ब्राह्मणोंकी रक्षामें संग्राममें निर्भय चित्तसे युद्धकर शस्त्रके द्वारा

विपन्न होता है पृथ्वीमें उसकोही मनुष्य कहा जाता है॥४४॥अर्थी मित्र और शत्रुगण जिससे पराङ्मुख नहीं होते उसीके द्वारा पिता पुत्रवान् कहाकर विख्यात होता है ॥ ४५ ॥ पुत्र जब संग्राममें मृतक होता अथवा शत्रुको जीतकर लौटता है तभी स्त्रीके गर्भक्लेशकी सफलता होती है ॥ ४६ ॥ नागपुत्रोंने कहा—अनन्त राजा शत्रुजित्‌ने पुत्रवधूका संस्कार किया और नगरके बाहिर स्नान करके पुत्रके उद्देश्यसे उदकांजलि दी ॥४७॥ इधर दानवाधम ताल केतु उसी प्रकार यमुना जलसे निकल प्रणामपूर्वक मधुरवचनद्वारा राजपुत्रसे कहने लगा ॥ ४८॥ हे भूपालपुत्र ! मैं आपके द्वारा कृतार्थ हुआ आपने इस स्थानमें अविचलित भावसे स्थितिकर मेरा वांछितकार्य्य किया है ॥ ४९ ॥ इस करण महात्मा जलपति वरुणका

अर्थिनांमित्रवर्गस्यविद्विषांचपराङ्मुखः ॥ योनयातिपितातेनपुत्रीमाताचवीरसूः ॥ ४५ ॥ गर्भक्लेशःस्त्रियोमन्येसाफल्यंभजतेतदा ॥ यदारिविजयीवास्यात्संग्रामेवाहतःसुतः ॥ ४६ ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ ततःसराजासंस्कारंपुत्रपत्नीमलंभयत् ॥ निर्गम्यचबहिः स्नातोददौपुत्रायचोदकम् ॥ ४७ ॥ तालकेतुश्चनिर्गम्यतथैवयमुनाजलात् ॥ राजपुत्रमुवाचेदंप्रणयान्मधुरंवचः ॥ ४८ ॥ गच्छभूपालपुत्रत्वंकृतार्थोहंकृतस्त्वया ॥ वांछितंतुकृतंकार्यंत्वय्यत्राविचलेस्थिते ॥ ४९ ॥ वारुणंयज्ञकार्यंचजलेशस्यमहात्मनः ॥ तन्मयासाधितंसर्वंयन्ममासीदभीप्सितम् ॥ ५० ॥ प्रणिपत्यसतंप्रागाद्राजपुत्रःपुरंपितुः ॥ समारुह्यतमेवाश्वंसुपर्णानिलविक्रमम् ॥५१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकुवलयाश्वीयेविंशोध्यायः ॥ २० ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ सराजपुत्रःसंप्राप्यवेगादात्मपुरंततः ॥ पित्रोर्ववंदिषुःपादौदिदृक्षुश्चमदालसाम् ॥ १ ॥ सददर्शतदुद्विग्नमप्रहृष्टमुखंपुरम् ॥ पुनश्चविस्मिताकारंप्रहृष्टवदनंपुनः ॥ २ ॥

यज्ञकार्य्य जो मेरा अभिलषित था वह मेरी मायासे सिद्ध हुआ है. अतएव हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ॥ ५० ॥ तब राजपुत्र मुनिको प्रणाम करके गरुड़ और वायुके समान विक्रमशाली उस घोड़ेपर चढ़कर पिताके नगरमें चले गये ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां विंशोऽध्यायः ॥ २० ॥ नागपुत्रोंने कहा—राजपुत्र ऋतध्वजने पिता माताके चरणोंकी वन्दना और मदलसाके देखनेकी इच्छासे शीघ्र अपने नगरमें पहुँच देखा ॥ १ ॥ कि, पुरवासी मनुष्यगण अत्यन्त उद्विग्न हैं और फिर प्रसन्नमुख होकर उस समय विस्मित और प्रहृष्ट वदन हुए ॥ २ ॥

और उत्फुल्लनेत्रोंमें "भाग्य भाग्य कहने लगे" और परमस्नेह तथा कौतूहलसे परस्परको आलिंगन करने लगे ॥ ३ ॥ और उस राजपुत्रने खिले नेत्रवाले अपने उत्तम मित्रको परमप्रेमसे उस समय हृदय लगाया ॥ ४ ॥ तब पुरवासी उनको देखकर धन्यभाग्य २ ऐसा कहनेलगे हे बड़े कल्याणवाले ! दीर्घजीवी होओ, तुम्हारे समस्त शत्रु विनष्ट हों ॥ ५ ॥ और माता पिता तथा हमारेचित्तको परम आह्लादित करो इसप्रकार कहते २ उनके आगे और पीछे एकत्र हुए ॥ ६ ॥ उन्होंने उनसे परिवेष्टित और तत्काल आनन्दसे आनन्दित होकर पिताके मन्दिरमें प्रवेश किया तब पिता माता और अन्यान्य बन्धुगण ॥ ७ ॥ उनको आलिंगन करके चिरंजीवी होओ यह कल्याणमय आशीर्वाद

अन्यमुत्फुल्लनयनंदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनम् ॥ परिष्वजंतमन्योन्यमतिकौतूहलान्वितम् ॥ ३ ॥ सराजपुत्रोमित्रंतुउत्फुल्लनयनंशुभम् ॥ आलिलिंगतदाकालेसौहृदेनपरेणच ॥ ४ ॥ ततःपौरास्तदालोक्यदिष्ट्यादिष्ट्येतिवादिनः ॥ चिरंजीवोरुकल्याणहतास्तेपरिपंथिनः ॥ ५ ॥ पित्रोःप्रह्लादयमनस्तथास्माकमकंटकः ॥ इत्येवंवादिभिःपौरैःपुरःपृष्ठेचसंवृतः ॥ ६ ॥ तत्क्षणप्रभवानंदःप्रविवेशपितुर्गृहम् ॥ पिताचतंपरिष्वज्यमाताचान्येचबांधवाः ॥ ७ ॥ चिरंजीवोरुकल्याणददौचास्मैतदाशिपः ॥ प्रणिपत्यततःसोथकिमेतदितिविस्मितः ॥ ८ ॥ पप्रच्छपितरंचाथसोस्मैसर्वंतदुक्तवान् ॥ सभार्यांतांमृतांश्रुत्वाहृदयेष्टांमदालसाम् ॥ ९ ॥ पितरौचपुराहृष्ट्वालज्जाशोकविमध्यगः ॥ चिंतयामाससाबालामांश्रुत्वानिधनंगतम् ॥१०॥ तत्याजजीवितंसाध्वीधिङ्मांनिष्ठुरमानसम् ॥ नृशंसोहमनार्योहंविनातांमृगलोचनाम् ॥११॥ मत्कृतेनिधनंप्राप्तांयज्जीवाम्यतिनिर्घृणः॥पुनःसंचिंतयामासपरिसंस्तभ्यमानसम् ॥१२॥

देने लगे इसके पीछे राजपुत्रने उनको प्रणाम करके हे तात ! यह क्या ? इसप्रकार विस्मित चित्तसे पूछा ॥ ८ ॥ तब उन्होंने राजपुत्रसे सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों कह दिया. राजपुत्र उस प्राणप्रिय भार्य्या मदालसा की मृत्युवार्त्ता सुनकर पिता माताको सन्मुख देख लज्जा और शोकसागरमें निमग्नमें हो चिन्ता करने लगे कि हा ! उस साध्वी बालाने मेरी मरणवार्त्ता सुनकर ॥ ९ ॥ १० प्राण परित्याग किया है तब इस निष्ठुर वाले मुझको धिक्कार है. हा ! मैं नृशंस और अनार्य हूं जो उस मृगलोचनाके विना जीता हूं ॥ ११ ॥ मेरे निमित्त जिसने प्राण त्याग किया है, उस मृगलोचनाके विना यदि मैं जीवित रहूं तो निःसंदेह अत्यन्त निर्दयी हूं फिर वह चिन्ताकर मनको रोक ॥ १२ ॥

अत्यन्त कातर हो लम्बे २ श्वास लेते हुए मोहको रोककर फिर चिन्ता करने लगे. उस कामिनीने मेरे लिये प्राण त्याग किया है मैं भी यदि उसके निमित्त प्राण त्याग करूं ॥ १३ ॥ तो मैंने उसका क्या उपकार कियाहै किन्तु यह स्त्रियोंको ही श्लाघनीय है यदि हा प्रिये ! कहकर वारम्वार रोदन करूं ॥ १४ ॥ वह भी प्रशंसनीय नहीं है क्योंकि हम पुरुष हैं. और यदि शोकसंतप्त हो माल्यादि त्यागकर मलीन होकर रहूं तो ॥ १५ ॥ शत्रु तिरस्कार करेंगे क्योंकि वैरियोंका नाश और पिताकी सेवा करना मेरा एकमात्र कार्य है ॥ १६ ॥ कारण कि, मेरा जीवन इसीके आधीन है अतएव यह जीवन परित्याग करना कभी उचित नहीं है किन्तु मैं विचार करताहूं कि, अन्य स्त्री गमनका भी मेरा त्याग है ॥ १७ ॥ यद्यपि

मोहोद्गममपास्यैवंनिःश्वस्योच्छ्वस्यचातुरः ॥ मृतेतिसामन्निमित्तंत्यजामियदिजीवितम् ॥ १३ ॥ किंमयोपकृतंतस्याःश्लाघ्यमेतत्तुयोषिताम् ॥ यदिरोदिमिवादीनंहाप्रियेतिवदन्मुहुः ॥ १४ ॥ तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नोवयंहिपुरुषाःकिल ॥ अथशोकजडोदीनोऽस्रृजाहीनो बलान्वितः ॥ १५ ॥ विपक्षस्यभविष्यामिततःपरिभवास्पदम् ॥ मयारिशातनात्कार्यंराज्ञःशुश्रूषणांपितुः ॥ १६ ॥ जीवितंतस्यचायत्तंसंत्याज्यंतत्कथंमया ॥ किंत्वत्रमेन्यत्कर्त्तव्यंत्यागोभोगस्ययोषितः ॥ १७ ॥ सचापिनोपकारायतन्वंग्याःकिंतुसर्वथा ॥ मयानृशंस्यंकर्त्तव्यंनापकार्युपकारिवा ॥ १८ ॥ यामदर्थेत्यजत्प्राणांस्तदर्थेल्पमिदंमम ॥ ॥ पुत्रावूचतुः ॥ ॥ इतिकृत्वामतिंसोथनिष्पाद्योदकदानिकम् ॥ १९ ॥ क्रियाश्चानंतरंकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वजः ॥ यदिसाममतन्वंगीनस्याद्भार्यामदालसा ॥ २० ॥ अस्मिञ्जन्मनिनान्यामेभवत्रीसहचारिणी ॥ तामृतेमृगशावाक्षींगंधर्वतनयामहम् ॥ २१ ॥

इससे भी उस तन्वङ्गीका कोई उपकार नहीं हो सकता तो भी मेरा यही कर्त्तव्य है इससे उसका उपकार हो वा अपकार हो मैं इस प्रकार नृशंसताका आचरण करूंगा ॥ १८ ॥ जिसने मेरे निमित्त प्राणतक त्याग कर दिया है उसके लिये तो यह सामान्य कार्य है । नागपुत्र बोले, ऋतध्वजने इसप्रकार निश्चयकर जलदान आदि करके ॥ १९ ॥ और तदनन्तर समस्त कर्त्तव्य क्रिया सम्पादन करके कहा जब वह मेरी भार्या तन्वङ्गी मदालसा नहीं है ॥ २० ॥ तो इस जन्म में दूसरी कोई स्त्री मेरी सहचारिणी नहीं हो सकेगी मैं सत्य कहताहूं कि, उस मृगशावाक्षी गंधर्वतनयाके अतिरिक्त मैं ॥ २१ ॥

दूसरी स्त्रीसे संभोग नहीं करूंगा यह मेरा सत्य वचन है मैं उस सद्धर्म चारिणी गजगामिनी पत्नीको परित्यागकर ॥ २२ ॥ अन्य किसी स्त्रीको अंगीकार नहीं करूंगा, यह भी यथार्थ कहता हूं, नागपुत्र बोले हे तात ! वह उस मदालसाके अतिरिक्त अन्य सब स्त्री संभोग त्यागकर ॥ २३ ॥ स्वभाव और सम्पद् द्वारा अपनी समान अवस्थावालोंके सहित सदा क्रीडा करते रहते हैं। हे पितः ! उनके पक्षमें यही एकमात्र प्रधान कर्त्तव्य कार्य है. हे तात ! इसमें किसीकी सामर्थ्य नहीं है ॥ २४ ॥ यह ईश्वरको भी अत्यन्त दुष्प्राप्य है. दूसरे मनुष्यकी तो फिर बात ही क्या है। जड़ने कहा उनके इसप्रकार वचन सुनकर पिता नागराज अश्वतर अत्यन्त विचारमें पड़गये ॥ २५ ॥ और विचारपूर्वक हँसते

नभोक्ष्येयोषितंकांचिदितिसत्यंमयोदितम् ॥ सधर्मचारिणींपत्नींतांमुक्त्वागजगामिनीम् ॥ २२ ॥ कांचिन्नान्यांकरिष्यामिते नसत्यंमयोदितम् ॥ एवंसर्वान्परित्यज्यस्त्रीभोगांस्तातसर्वदा ॥ २३ ॥ क्रीडन्नास्तेसमंतुल्यैर्वयस्यैःशीलसंपदा ॥ एतत्तस्य परंकार्यंतातत्तत्केनसाध्यते ॥ २४ ॥ कर्तुमत्यंतदुःष्प्राप्यमश्वरैःकिमुतेतरैः ॥ जडउवाच ॥ ॥ इतिवाक्यंतयोःश्रुत्वाविमर्शम गमत्पिता ॥ २५ ॥ विमृश्यचाहतौपुत्रौनागराट्प्रहसन्निव ॥ यद्यशक्यमितिश्रुत्वानकरिष्यंतिमानवाः ॥ २६ ॥ कर्मण्युद्य मसुद्योगहान्याहानिस्ततःपरम् ॥ आरभेतनरःकर्मस्वपौरुषमहापयन् ॥ २७ ॥ निष्पत्तिःकर्मणांदैवेपौरुषेचव्यवस्थिता ॥ तस्मादहं तथायत्नंकरिष्येपुत्रकार्यतः ॥ २८ ॥ तपश्चर्यांसमास्थाययथैतत्साध्यतेचिरात् ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वासनागेंद्रःप्ल क्षावतरणंगिरेः ॥ २९ ॥ तीर्थंहिमवतोगत्वातपस्तेपेसुदुश्चरम् ॥ तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवींसरस्वतीम् ॥ ३० ॥ तन्मनानिय ताहारोभूत्वात्रिषवणाप्लुतः ॥ अश्वतरउवाच ॥ जगद्धात्रीमहंदेवीमारिराधयिषुःशुभाम् ॥ ३१ ॥

हँसते दोनों पुत्रोंसे कहने लगे. सामर्थ्यसे बाहर होनेके कारण मनुष्यगण जो कर्मका उद्योग नहीं करते ॥ २६ ॥ उस उद्योगहानिसे ही उनकी अत्यन्त हानि होती है. अपना पौरुष नष्ट न करके मनुष्य कार्य आरंभ करते हैं ॥ २७ ॥ क्योंकि दैव वा पौरुषमें ही कर्म्म की निष्पत्ति स्थित है अतएव हे दोनों पुत्रो ! मैं ऐसा करूंगा जिससे कार्य बने ॥ २८ ॥ मैं तपस्याका आचरणकर ऐसा यत्नकरूंगा जिससे यह शीघ्र सिद्धहो. पुत्रने कहा यह बात कहकर वह नागराज अश्वतर हिमालयपर्वतके प्लक्षावतरणा नामक तीर्थमें जाकर ॥२९॥ दुश्चर तपस्या करने

लगे इसके उपरान्त वह उसीमें मन लगाये परिमित भोजन कर तीनों कालमें स्नानकरके वचन द्वारा सरस्वतीका स्तवन करने लगे अश्वतर बोले मैं शुभमयी जगज्जननी देवीके आराधनाकी इच्छा करके ॥ ३० ॥ ३१ ॥ उन ब्रह्मका स्थान सरस्वतीको मस्तक द्वारा प्रणामपूर्वक स्तुति करताहूं. हे देवी ! मोक्षयुक्त वा अर्थयुक्त सत् असत् स्वरूप जो सब पद हैं ॥ ३२ ॥ वह समस्तही तुममें असंयुक्त होकर भी संयुक्त की समान सम्यक् प्रकार अवस्थित रहते हैं. हे देवि ! तुम परं अक्षर हो और तुममें ही सब प्रतिष्ठित हैं ॥ ३३ ॥ किंतु समस्त अक्षर परमाणुके समान तुममें ही स्थित हैं अक्षर स्वरूप परब्रह्म और क्षरात्मक यह विश्वभी तुममेंही अवस्थित है। अनल और भीमके समस्त परमाणु जिसप्रकार काष्ठमें अवस्थान करते हैं॥ ३४ ॥ इसीप्रकार

स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिसरस्वतीम् ॥ सदसद्देवियत्किंचिन्मोक्षवंधार्थवत्पदम् ॥ ३२ ॥ तत्सर्वंत्वय्यसंयोगंयोगवद्देविसं स्थितम् ॥ त्वमक्षरंपरंदेवियत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ३३ ॥ अक्षरंपरमंब्रह्मजगच्चैतत्क्षरात्मकम् ॥ दारुण्यवस्थितोवह्निर्भौमाश्चपरमा णवः ॥ ३४ ॥ तथात्वयिस्थितंब्रह्मजगच्चेदमशेषतः ॥ ओंकाराक्षरसंस्थानंयत्तद्देविस्थिरास्थिरम् ॥ ३५ ॥ तत्रमात्रात्रयंसर्वमस्ति यद्देविनास्तिच ॥ त्रयो लोकास्त्रयोदेवास्त्रैविद्यंपावकत्रयम् ॥ ३६ ॥ त्रीणिज्योतींषिवर्गाश्चत्रयोधर्मादयस्तथा ॥ त्रयोगुणास्त्रयःशब्दा स्त्रयोदोषास्तथाश्रमाः ॥ ३७ ॥ त्रयःकालास्तथावस्थाःपितरोहर्निशादयः ॥ एतन्मात्रात्रयंदेवितवरूपंसरस्वति ॥ ३८ ॥ विभिन्नदर्शिना माद्याब्रह्मणोहिसनातना ॥ सोमसंस्थाहविःसंस्थाःपाकसंस्थाश्चसप्तयाः ॥ ३९ ॥ तास्त्वदुच्चारणाद्देविक्रियंतेब्रह्मवादिभिः ॥ अनिर्देश्यं तथाचान्यदर्द्धमात्राश्रितंपरम् ॥ ४० ॥

परब्रह्म और अशेष जगत् तुममें ही विद्यमान है। हे देवि। ओंकार अक्षर संस्थान और स्थिरास्थिर ॥ ३५ ॥ अर्थात् सदसत सम्पूर्ण पदार्थ तुममेंही वर्तमान रहते हैं हे मातः ! तीन लोक तीन वेद तीन विद्या तीन अग्नि ॥ ३६ ॥ तीन ज्योति तीन वर्ग तीन धर्मादि तीन गुण तीन शब्द तीन दोष तीनों आश्रम ॥ ३७ ॥ तीन काल तीन अवस्था एवं पितृ और दिन रात इत्यादि यावतीय वस्तु जो तीन मात्राका स्वरूप हैं ॥ ३८ ॥ पृथक्पृथक् सम्प्रदाययुक्त पुरुषोंके लिये सोमसंस्था हविःसंस्था और पाकसंस्थारूपसे आद्य और सनातन सप्तविधि व्याहृति वेदमें निरूपित हुई हैं॥ ३९ ॥ ब्रह्मवादी गण एकमात्र तुम्हारे ही कीर्त्तनमें वह सम्पूर्ण समाहित करते हैं. हे मातः ! उल्लिखितरूपके अतिरिक्त आपका और एक जो अनिर्देश्य

परमरूप है जिसको अर्द्धमात्रा कहते हैं ॥ ४० ॥ वह भी इसीप्रकार अविकारी अक्षय और अशेष है. हे मातः ! मेरी ऐसी शक्ति नहीं है कि, जिसके द्वारा आपके इस परमरूपका निर्देश करनेमें समर्थ हूं ॥ ४१ ॥ क्योंकि वदन जिह्वा तालु और ओष्ठादिद्वारा उसका उच्चारण नहीं होता. इन्द्र सूर्य वा अन्यान्य ज्योतिर्मय पदार्थ समस्त उसका स्वरूप हैं ॥ ४२ ॥ वही विश्वका आवास विश्वका ईश्वर और परमेश्वर है । सांख्य वेदान्त और तर्कशास्त्रमें जो कथित हुआ है वेदकी अनेक शाखाओंसे जो स्थिरीकृत हुआ है ॥ ४३ ॥ जिसका आदि मध्य और अन्त नहीं है जो सत् और असत् है संसारके भेद समाश्रयमें जो एक अनेक और नानाप्रकार है॥४४॥जिसकी आख्या नहीं है एवं गुण षट्क और वर्ग समस्त

अविकार्यक्षयंदिव्यंपरिणामविवर्जितम् ॥ तवैवचपरंरूपंयन्नशक्यंमयेरितुम् ॥ ४१ ॥ नचास्येननवाजिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ॥ इन्द्रोपिवसवोब्रह्माचंद्रार्कौज्योतिरेवच ॥ ४२ ॥ विश्वावासंविश्वरूपंविश्वेशंपरमेश्वरम् ॥ सांख्यवेदांतवेदोक्तंबहुशाखास्थिरीकृतम् ॥ ॥ ४३ ॥ अनादिमध्यनिधनंसदसन्नःसदेवतु ॥ एकंत्वनेकमप्येकंभवभेदसमाश्रितम् ॥ ४४ ॥ अनाख्यंषड्गुणाख्यंचषट्काख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥ नानाशक्तिमतामेकंशक्तिवैभाविकंपरम् ॥ ४५ ॥ सुखासुखमहत्सौख्यंरूपंतवविभाव्यते ॥ एवंदेवित्वयाव्या तंसकलंनिष्कलंजगत् ॥ ४६ ॥ अद्वैतावस्थितंब्रह्मयच्चद्वैतेव्यवस्थितम् ॥ येर्थानित्यायेविनश्यंतिचान्येयेवास्थूलायेचसूक्ष्मा श्चसूक्ष्माः ॥ येवाभूमौयेंतरिक्षेन्यतोवातेषांसत्यंत्वत्तएवोपलब्धिः ॥ ४७ ॥ यच्चामूर्तंयच्चमूर्तंसमस्तंयद्वाभूतेष्वेकमेकंचकिंचित् ॥ यद्दिव्येस्तिक्ष्मातलेखेन्यतोवातत्संबंधंत्वत्स्वरैर्व्यंजनैश्च ॥ ४८ ॥

ही जिसकी आख्या हैं जोत्रिगुणलम्बीहैंजो नानाप्रकार शक्तिमान् मनुष्योंकी शक्तिका परमविभवसम्पन्न॥४५॥और जो सुख असुख तथा महासुखरूप है हे मातः ! तुममें ही वह सब लक्षित होता है हे देवि ! इसी प्रकार सकल और निष्कल समस्त जगत् ही तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है ॥ ४६ ॥ और जो अद्वैतावस्थित एवं द्वैतावस्थित ब्रह्म है वह भी तुम्हारे द्वारा व्याप्त हुआ है जो अर्थ नित्य और जो अनित्य है जो स्थूल और जो सूक्ष्म है और जो पृथ्वी वा अन्तरिक्षमें या अन्यत्र विद्यमान है हे देवि ! तुमसेही उन सब पदार्थोंकी प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥ हे मातः ! जो वस्तु मूर्तियुक्त वा अमूर्त्त है जो सब प्राणियोंमें कुछकुछ विद्यमान है जो स्वर्गमें पृथ्वीतलमें अन्तरिक्षमें वा अन्यान्य स्थानमें वर्त्तमान-है हे देवि !

तुम्हारे स्वर और व्यञ्जन द्वारा ही उन सब पदार्थोंका ज्ञान होता है॥४८॥विष्णु जिह्वा सरस्वतीने नागराजके द्वारा इस प्रकार स्तुतिको प्राप्त होकर महात्मा अश्वतर नागसे कहा ॥ ४९ ॥ सरस्वती बोली हे कम्बलभ्राता उरगाधिप ! मैं तुमको वर दूंगी अतएव तुम्हारे मनमें जो इच्छाहो सो कहो वही दूंगी॥५०॥अश्वतरने कहा हे मातः ! मेरे पूर्व सहाय कम्बल और मुझे इन दोनोंकोही समस्त स्वरका संबन्ध अर्थात् श्रुतिग्राम और मूर्च्छनादि समस्तही प्रदान कीजिये ॥५१॥ सरस्वतीने कहा हे पन्नगसत्तम ! तुम और कम्बल दोनोंही आजसे मेरे प्रसादद्वारा उत्तम गायक होंगे और सप्त स्वर ग्रामके सात राग सात गीत समस्त मूर्च्छना॥५२॥एकोनपंचाशत्(४९)प्रकारकी ताल और तीन प्रकार ग्राम हे अनघ!तुम यह समस्तही कम्बलके सहितगान करस-

॥ जडउवाच ॥ ॥ एवंस्तुतातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्वती ॥ प्रत्युवाचमहात्माननंनागमश्वतरंततः ॥ ४९ ॥ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ ॥ वरंतेकंबलभ्रातःप्रयच्छाम्युरगाधिप ॥ तदुच्यतांप्रदास्यामियत्तेमनसिवर्त्तते ॥ ५० ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ साहाय्यंदेविदेहित्वं पूर्वंकंबलमेवच ॥ समस्तस्वरसंबद्धमुभयोःसंप्रयच्छच ॥ ५१ ॥ सरस्वत्युवाच ॥ सप्तस्वराग्रामरागाःसप्तपन्नगसत्तम ॥ गीतकानिचसप्तैवतावत्यश्चापिमूर्च्छनाः ॥ ५२ ॥ तानाश्चैकोनपंचाशत्तथाग्रामत्रयंचयत् ॥ एतत्सर्वंभवान्वेत्ताकंबलश्चैवतेनघ ॥ ५३ ॥ ज्ञास्यतेमत्प्रसादेनभुजंगेंद्रपरंतथा ॥ चतुर्विधंपरंतालंत्रिःप्रकारंलयत्रयम् ॥ ५४ ॥ गतित्रयंतथातालंमयादत्तंचतुर्विधम् ॥ एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेंद्रापरंचयत् ॥ ५५ ॥ आस्यांतर्गतमायत्तंस्वरव्यंजनयोश्चयत् ॥ तदशेषंमयादत्तंभवतःकंबलस्यच ॥ ५६ ॥ यथानान्यस्यभूलोकेपातालेवापिपन्नग ॥ प्रणेतारौभवंतौचसर्वस्यास्यभविष्यतः ॥ ५७ ॥ पातालेदेवलोकेचभूर्लोकेचैवपन्नगौ ॥ ॥ जडउवाच ॥ इत्युक्त्वासातदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती ॥५८॥

कोगे॥५३॥हे पन्नगाधिप ! और भी चार प्रकारके पद तीन प्रकार की ताल त्रिविध लय मेरे प्रसादसे जानोंगे॥५४॥तीन प्रकारकी गति और चार प्रकार की ताल तुमको प्रदान करती हूं तुमको मेरे प्रसादसे यह और इसके सिवाय समस्त भलीप्रकार विदित होगा ॥५५॥ और इन सबके अन्तर्गत एवं आयत्त स्वर और व्यंजन, सम्मित जो कुछ वर्त्तमान है वह समस्त विषय तुमको और कम्बलको प्रदान किया ॥५६॥ अधिक क्या हे सर्पराज ! स्वर्ग मर्त्य और पातालमें तुम दोनोंही समस्त विषयके प्रणेता होंगे और इससे तुम्हारे समान दूसरा कोई नहीं रहेगा. जडने कहा विष्णुकी जिह्वास्व-

रूपिणी सरस्वती ॥५७॥५८॥ कमलनयना यह कहकर तत्काल अन्तर्धान होगई फिर पन्नगराज उनको नहीं देखसके उनके वरप्रसादसे दोनों भाई पूर्वकथित सम्पूर्ण विषयके ज्ञाता हुए ॥५९॥ पद ताल और स्वरादि विषयमें उनको अद्वितीय व्युत्पत्ति उत्पन्न हुई तब कैलास शिखरमें स्थित ईश्वर ॥६०॥पापनाशी कामका अंग हरनेवाले शंकरकी तन्त्रीलयसहित सप्तस्वरसे गानकर आराधना करने लगे ॥६१॥ एवं वाक्य और इन्द्रियसमूह संयमन पूर्वक महेश्वरकी उपासना करनेकी इच्छासे प्रभात मध्याह्न सायंकाल और रात्रिमें तत्परता सहित यत्न करनेलगे ॥ ६२ ॥ भूतपति महादेवजीने बहुत दिनोंके पीछे संगीत द्वारा परम प्रसन्न होकर उन दोनोंसे कहा तुम वर मांगो॥६३॥तब कम्बलके सहित अश्वतरने प्रणाम

अथामादर्शनंसद्योनागस्यकमलेक्षणा ॥ तयोश्चतद्यथावृत्तंभ्रात्रोःसर्वप्रजायत ॥ ५९ ॥ विज्ञानमुभयोरग्र्यंपदतालस्वरादिकम् ॥
ततःकैलासशैलेंद्रशिखरस्थितमीश्वरम् ॥ ६० ॥ गीतकैःसप्तभिर्नागौतंत्रीलयसमन्वितैः ॥ आरिराधयिषूदेवमनंगांगहरंहरम् ॥६१॥
प्रचक्रतुःपरंयत्नमुभौसंहतवाक्कलौ ॥ प्रातर्निशायांमध्याह्नेसंध्ययोश्चापितत्परौ ॥ ६२ ॥ ततःकालेनमहतास्तूयमानोवृषध्वजः ॥
तुतोषगीतकैस्तौचप्राहसंगृह्यतांवरः ॥ ६३ ॥ ततःप्रणम्याश्वतरःकंबलेनसमंतदा ॥ विज्ञापयन्महादेवंशितिकंठमुमापतिम् ॥६४॥
यदिनौभगवन्प्रीतोदेवदेवत्रिलोचन ॥ ततोयथाभिलषितंवरमेनंप्रयच्छनौ ॥ ६५ ॥ मृताकुवलयाश्वस्यपत्नीदेवमदालसा ॥ तेनैववय
सासद्योदुहितृत्वंप्रयातुमे ॥ ६६ ॥ जातिस्मरायथापूर्वंतद्वत्कांतिसमन्विता ॥ योगिनीयोगमाताचजायतांवचनात्तव ॥ ६७ ॥
ईश्वरउवाच ॥ ॥ यथोक्तंपन्नगश्रेष्ठसर्वमेतद्भविष्यति ॥ मत्प्रसादादसंदिग्धंशृणुचेदंभुजंगम ॥ ६८ ॥

पूर्वक शितिकंठ उमानाथ महेश्वरसे कहा॥६४॥आप देवदेव त्रिनयन और सर्वशक्तिमान हैं यदि हमारे प्रति प्रसन्न हुए हो तो हमारा अभिलषित यह वर प्रदान कीजिये ॥६५॥ कुवलयाश्वकी स्त्री मदालसाने जीवन विसर्जन किया है उसने जिस अवस्थामें प्राण त्याग किया है उसी अवस्थामें मेरी कन्या होकर जन्मग्रहण करे॥६६॥पहिले उसमें जिस प्रकार कान्ति विद्यमान थी उसी प्रकार कान्ति हो और वह जातिस्मरा पूर्ववत् योगिनी और योगज ननी होकर मेरे घर जन्मग्रहण करे ॥६७॥ महादेवजीने कहा हे पन्नगश्रेष्ठ ! तुमने जो कहा मेरे प्रसादसे वह सब होगा इसमें संदेह नहीं अब सुनो हे फणिश्रेष्ठ ! ॥६८॥

जब श्राद्धका समय प्राप्त हो तब पवित्र और सावधान मन होकर तुम स्वयं मध्यम पिण्ड भोजन करो और मेरा ध्यानकर पितरोंका यजन करो ॥ ६९ ॥ मध्यमपिण्ड भोजन करनेसे मंगलदायिनी मदालसाने जिस अवस्थामें प्राणत्याग किया है तुम्हारे मध्यम फणसे उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥७०॥ तुम इसप्रकार कामना करके पितृतर्पणका अनुष्ठान करो तो तत्काल श्वास छोडनेके समयमें तुम्हारे मध्यम फणसे वह सुभ्रू जिस अवस्थामें मरी है उसी अवस्थामें उत्पन्न होगी ॥ ७१ ॥ दोनों भाई यह वचन सुनकर महेश्वरको प्रणामपूर्वक प्रसन्नचित्तसे फिर रसातलमें उपस्थित हुए ॥७२॥ इसके उपरान्त अश्वतरने उसी प्रकार श्राद्ध और उसी प्रकार यथा नियमसे मध्यम पिण्ड

श्राद्धावसानेप्राश्नीथामध्यंपिण्डमात्मना ॥ कामंचेमामनुध्यायन्कुरुत्वंपितृपूजनम् ॥ ६९ ॥ तत्क्षणादेवसासुभ्रूर्भवतोमध्यमात्फणात् ॥ समुत्पत्स्यतिकल्याणीतथारूपायथामृता ॥ ७० ॥ स्वयमेवोपभुंजस्वततःसर्वंभविष्यति ॥ उत्पत्स्यतेततःसातुसत्यं मध्यमात्फणात् ॥ ७१ ॥ एतच्छ्रुत्वाततस्तौतुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ॥ रसातलमनुप्राप्तौपरितोषसमन्वितौ ॥ ७२ ॥ तथाचकृतवाञ्छ्राद्धंसनागःकंबलानुजः ॥ पिंडंचमध्यमंतद्वद्यथावदुपभुक्तवान् ॥ ७३ ॥ उपभुक्तेततःपिंडेतस्यसातनुमध्यमा ॥ जज्ञेनिःश्वसतःसद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ॥ ७४ ॥ नचापिकथयामासकस्यचित्सभुजंगमः ॥ अंतर्गृहेतांसुदतींस्त्रीभिर्गुप्तामधारयत ॥ ७५ ॥ तौचानुदिनमागत्यपुत्रौ नागपतेःसुखम् ॥ ऋतुध्वजेनसहितौचिक्रीडातेमराविव ॥ ७६ ॥ एकदातुसतौप्राहसनागोश्वतरोमुदा ॥ तन्मयापूर्वमुक्तंतुक्रियतेकिंनुतत्तथा ॥ ७७ ॥ सराजपुत्रोयुवयोरुपकारीममांतिकम् ॥ किंनुनानीयतेवत्सावुपकारायमानदः ॥ ७८ ॥ एवमुक्तौपुनस्तेनपुत्रौस्नेहवतातुतौ ॥ गत्वातस्यपुरंसख्यूरमातेतेनधीमता ॥ ७९ ॥

भोजन किया ॥७३॥ अन्तमें अपने अभिलषित विषयका ध्यान करते करते श्वास छोड़ते ही तत्काल उनके मध्यम फणसे कृशाङ्गी मदालसा उसी रूपमें उत्पन्न हुई ॥ ७४ ॥ अश्वतरने यह वार्त्ता किसीके निकट प्रकाश न करके अपने घरमें उस सुदतीको स्त्रियोंके सहित गुप्तभावसे रक्खा ॥७५॥ इधर उनके दोनोंपुत्र मूर्तिमान् दोनों सुरकुमारोंके समान नित्य आनन्दपूर्वक आकर ऋतध्वजके संग क्रीडा करने लगे ॥७६॥ एक दिन नागपतिने पुलकित होकर उन दोनोंसे कहा,मैंने पहिले तुमसे जो कहा है,तुम उसको क्यों नहीं करते हो ॥७७॥७८॥स्नेहवान पिताके

इस प्रकार कहनेपर दोनों पुत्र महामति ऋतध्वजके नगरमें जाकर उनके संग क्रीड़ा करनेमें प्रवृत्त हुए ॥ ७९ ॥ तदनन्तर बातोंही बातोंके प्रसंगमें प्रणय प्रदर्शनपूर्वक कुवलयाश्वको अपने घर लेजानेका अनुरोध किया ॥ ८० ॥ राजकुमारने उनसे कहा मेरा यह घर और धन यान वसन इत्यादि जो कुछ विद्यमान है सब तुम्हाराही है ॥८१॥ यदि मेरे प्रति तुम्हारी प्रीतिका संचार हुआ है तो मुझको धन वा रत्न जो अर्पण करने की इच्छा करी है सो दो ॥ ८२ ॥ तुम जब मेरे घरको अपने घरके समान नहीं समझते तो मैं दुरात्मा दैवके द्वाराही वञ्चित हुआ हूं ॥८३॥ मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुमको कर्तव्य हो और यदि मुझको अनुग्रहका पात्र विचारते हो तो मेरे घर और मेरे धनमें ममत्व

ततःकुवलयाश्वंतंकृत्वाकिंचित्कथांतरम् ॥ अब्रूतांप्रणिपातेनस्वगृहागमनंप्रति ॥ ८० ॥ तावाहनृपपुत्रोसौनन्विदंभवतोर्गृहम् ॥ धनवाहनवस्त्रादियन्मदीयंतदेववाम् ॥ ८१ ॥ यस्यवांवांछितंदातुंधनंरत्नमथापिवा ॥ तदीयतांद्विजसुतौयदिवांप्रणयोमयि ॥ ८२ ॥ एतावताहंदैवेनवंचितोस्मिदुरात्मना ॥ यद्भवद्भ्यांममत्वंनोमदीयेक्रियतांगृहे ॥ ८३ ॥ यदिवांमेप्रियंकार्यमनुग्राह्योस्मिवायदि ॥ तद्धनेममगेहेचममत्वमनुकल्प्यताम् ॥ ८४ ॥ युवयोर्यन्मदीयंतन्मामकंयुवयोःस्वयम् ॥ एतत्सर्वंविजानीयसखाप्राणोबहिश्चरः ॥ ॥ ८५ ॥ पुनर्नैवंविभिन्नार्थंवक्तव्यंद्विजसत्तमौ ॥ मत्प्रसादपरौप्रीत्याशापितौहृदयेनमे ॥ ८६ ॥ ततःस्नेहार्द्रवदनौतावुभौनागनंदनौ ॥ ऊचतुर्नृपतेःपुत्रंकिंचित्प्रणयकोपितम् ॥ ८७ ॥ ऋतुध्वज नसंदेहोयथैवाहभवानिदम् ॥ तथैवचास्मन्मनसिनात्रचिंत्यमतोन्यथा ॥ ८८ ॥ किंत्वावयोःसमंपित्राप्रोक्तमेतन्महात्मना ॥ द्रष्टुंकुवलयाश्वंतमिच्छामीतिपुनःपुनः ॥ ८९ ॥

स्थापन करो अर्थात् अपनाही समझो ॥८४॥ जो तुम्हारा है, सो मेरा और मेरा जो कुछ है वह समस्त तुम्हाराही है मैंने जो कहा इसकोही यथार्थ जानो वस्तुतः तुम मेरे बाहर रहनेवाले प्राणस्वरूप हो॥८५॥ अत एव हे ब्राह्मणश्रेष्ठो ! इसप्रकार भिन्न अर्थवाले वचन नहीं कहना, मैं अन्तरके सहित तुमको शपथ देता हूं तुम प्रणयप्रदर्शनपूर्वक मुझपर प्रसन्न होओ ॥८६॥ तब दोनों पन्नगपुत्रोंने स्नेहार्द्रमुख होकर कुछेक प्रीतिका कोप दिखाकर राजपुत्रसे कहा ॥८७॥ हे राजपुत्र ! तुमने जो कहा हमभी सदा यही विचारते हैं, इसमें कुछभी सन्देह नहीं है, अत एव किसी भाँति अन्यथा नहीं समझना ॥ ८८ ॥ किन्तु हमारे पिताने स्वयं यह वारंवार कहा है कि, कुवलयाश्वको देखनेकी मेरी इच्छा है ॥ ८९ ॥

तब कुवलयाश्वने वरासनसे उठ "स्वयं पिताने यह बात कहीहै" इसप्रकार कह भूमिपर स्थित होकर प्रणाम किया॥९०॥और कुवलयाश्व कहने लगे, मैं ही धन्य और मैंही पुण्यवान् हूं मेरे समान और कोई भी दिखाई नहीं देता क्योंकि मुझको देखनेके लिये पिता स्वयं अत्यन्त उत्सुक हुए हैं ॥९१॥अत एव उठो अभी चलें,महूर्त्तमात्रको भी उनकी आज्ञा उल्लघंन करनेकी हमारी इच्छा नहीं है.उनके चरणस्पर्शपूर्वक इस विषयमें मैं शपथ करता हूं ॥९२॥ जडने कहा ऋतध्वजने इसप्रकार कहकर उनके संग गमन किया फिर नगरसे निकल पवित्र जलवाली गोमतीपर उपस्थित हुए ॥९३॥ उसके मध्यमें होकर वह तीनोंजने गमन करने लगे. राजकुमारने समझा कि, गोमती नदीके पारही दोनों सखाओंका घर है ॥ ९४ ॥

ततःकुवलयाश्वोथसमुत्थायवरासनात् ॥ यथाहतातेतिवदन्प्रणाममकरोद्भुवि ॥ ९० ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ ॥ धन्योहमति पुण्योहंकोन्योस्तिसदृशोमया ॥ यत्तातोमामभिद्रष्टुंकरोतिप्रवणंमनः ॥ ९१ ॥ तदुत्तिष्ठतगच्छामताताज्ञांक्षणमप्यहम् ॥ नातिक्रां तुमिहेच्छामिपद्भ्यांतस्यशपाम्यहम् ॥ ९२ ॥ जडउवाच॥ ॥ एवमुक्त्वाययौसोथसहताभ्यांनृपात्मजः ॥ प्राप्तश्चगोतमींपुण्यांनिर्ग म्यनगराद्बहिः ॥ ९३ ॥ तन्मध्येनययुस्तेवैनागेंद्रनृपनंदनाः ॥ मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोर्गृहम् ॥ ९४ ॥ ततश्चाकृष्य पातालंताभ्यांनीतोनृपात्मजः ॥ पातालेददृशेचोभौसपन्नगकुमारकौ ॥ ९५ ॥ फणामणिकृतोद्द्योतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ ॥ विलोक्यतौसुरूपांगौविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥ ९६ ॥ विहस्यचाब्रवीत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ ॥ कथयामासतुस्तौतुपितरंपन्नगे श्वरम् ॥ ९७ ॥ शांतमश्वतरंनागंमाननीयंदिवौकसाम् ॥ रमणीयंततोपश्यत्पातालंसनृपात्मजः ॥ ९८ ॥

तदनन्तर उन्होंने राजकुमारको खेंचकर पातालमें लेजाकर प्राप्त किया राजकुमारने पातालमें जाकर देखा कि, इन दोनों पन्नगपुत्रोंने छद्मवेष छोड़कर अपना वेष धारण किया है ॥ ९५ ॥ फणोंमें स्थित मणिकी सहायतासे उनका हृदय प्रकाशित और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित हो उठा है उनका स्वरूप देख राजकुमारने विस्मयविकासित नेत्रोंसे ॥ ९६ ॥ हँसकर प्रणयपूर्वक साधुवाद दिया तदनन्तर देवताओंके भी माननीय शान्तचरित्र पितृदेव अश्वतरके सन्मुख राजकुमारके आनेकी वार्त्ता कही राजकुमार ऋतध्वजने देखा कि, वह पातालनगर अत्यन्त मनोहर है ॥ ९७ ॥ ९८ ॥

बालक युवा वृद्ध सबजातीय सर्प शोभायमान हैं नागनन्दिनी उनके चारों ओर क्रीड़ाकरती हुई विचरण करती हैं ॥ ९९ ॥ उनके हार और कुण्डल अतीव मनोहर और उनकी समीपतासे तारोंकी मालासे विभूषित आकाशमण्डलके समान पातालनगरीकी शोभा सम्पादित हुई है इसके किसी किसी स्थानमें संगीत ध्वनि होती है उसके संग संग वेणु और वीणासमूह शब्दायमान होते हैं ॥१००॥मृदंग पणव और आतोद्य (वाद्यविशेषके) शब्दसे वह प्रतिध्वनित है उसमें सैकड़ों मनोरम गृह विराजमान हैं राजनन्दन पातालको देखते देखते उन प्रियतम समान अवस्थावाले दोनों सखाओंके संग गमन करने लगे. तदनन्तर सबने पन्नगके स्थानमें प्रविष्ट होकर ॥ १०१ ॥॥ १०२ ॥ देखा कि, वह महात्मा वहां स्थिति करते हैं उनका बिछोना दिव्यवस्त्रका है गलेमें दिव्यमाला और कानोंमें मणिमय कुण्डल विराजमान हैं ॥१०३॥

कुमारैस्तरुणैर्वृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ॥ तथैवनागकन्याभिःक्रीडंतीभिरितस्ततः ॥९९॥ चारुकुंडलहाराभिस्ताराभिर्गगनंयथा ॥ गीत शब्दैस्तथान्यत्रवीणावेणुस्वरानुगैः ॥ १०० ॥ मृदंगपणवातोद्यहारिवेश्मशताकुलम् ॥ वीक्षमाणःसपातालंययौशत्रुजितःसुतः ॥१॥ सहताभ्याममीष्टाभ्यांपन्नगाभ्यामरिंदमः ॥ ततःप्रविश्यतेसर्वेनागराजनिवेशनम् ॥ २ ॥ ददृशुस्तंमहात्मानमुरगाधिपतिंस्थितम् ॥ दिव्यमाल्यांबरधरंमणिकुंडलभूषणम् ॥ ३ ॥ स्वच्छमुक्ताफललताहारिहारोपशोभितम् ॥ केयूरिणंमहाभागमासनेसर्वकांचने ॥४॥ मणिविद्रुमवैडूर्यजालांतरीतरूपके ॥ सताभ्यांदर्शितस्तस्यतातोस्माकममावितिः ॥ ५ ॥ वीरःकुवलयाश्वोयंपित्रेचासौनिवेदितः ॥ ततोननामचरणौनागेंद्रस्यऋतुध्वजः ॥ ६ ॥ समुत्थप्यबलाद्गाढंसनागःपरिषस्वजे ॥ मूर्ध्निचैवमुपाघ्रायचिरंजीवेत्युवाचह ॥ ७ ॥

स्वच्छ मुक्ताफल लतामय मनोरम हारके रहनेसे उनकी शोभा असीम हो रही है। उनके हाथमें केयूर और वह सुवर्णके आसनपर विराजमान हैं ॥ १०४ ॥ मणि मूँगे और वैडूर्यमें खचित होनेके कारण उनका प्रकृतरूप तिरोहित हुआ है. तदनन्तर उन्होंने राजपुत्रको दिखाया कि, यही हमारे पिता हैं ॥ १०५ ॥ अनन्तर पिताके निकट भी राज पुत्रका परिचय देकर कहा कि, "यही वह वीर कुवलयाश्व हैं" तब ऋतध्वजने पन्नगपतिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १०६ ॥ पन्नगराजने भी उनको बल पूर्वक उठाय आलिंगन और शिर सूँघकर कहा तुम चिरंजीवी होओ ॥ १०७ ॥

और शत्रुकुल संहारकरके पितामाताकी शुश्रूषा करो हे वत्स ! तुम धन्य हो क्योंकि मेरे पुत्र पीछेमें भी तुम्हारे अलौकिक गुणोंका विषय ॥ १०८ ॥ कीर्तन करते हैं इससेभी तुम्हारा मन वाक्य शरीर और चेष्टा सर्वांशमें वृद्धको प्राप्त होगी ॥ १०९ ॥ जो पुरुष गुणवान् हैं उनका प्राणधारणही श्लाघाका विषय है जो पुरुष निर्गुण है वह जीवित अवस्थामें मृतकके समान है। जो पुरुष गुणवान् हैं वह पिता माताकी शांति करते शत्रुकुलको ताप देते ॥ ११० ॥ और महाजनोंका विश्वास उत्पादन करके अपना मंगल साधन करते हैं. देवता पित्र बन्धु विप्र एवं मित्र प्रार्थी और विभवादि ॥ १११ ॥ तथा बन्धुजन गुणवानके दीर्घजीवनकी कामना करते हैं गुणवान व्यक्ति दूसरोंकी बराईमे निवृत्त

निहतामित्रवर्गश्चपित्रोःशुश्रूषणंकुरु ॥ वत्सधन्यस्यकथ्यंतेपरोक्षस्यापितेगुणाः ॥ ८ ॥ भवतोममपुत्राभ्याभाभ्यांयेमेनिर्विदिताः ॥ तदेतैरेववर्द्धेथामनोवाक्कायचेष्टितैः ॥ ९ ॥ जीवितंगुणिनःश्लाघ्यंजीवन्नपिमृतोऽगुणी ॥ गुणवान्निर्वृतिंपित्रोःशत्रूणांहृदयज्वरम् ॥ ११० ॥ करोत्यात्महितंकुर्वन्विश्वासंचमहाजने ॥ देवताःपितरोविप्रामित्रार्थिविभवादयः ॥ ११ ॥ बांधवाश्चतथेच्छंतिजीवितंगुणिनश्चिरम् ॥ परवादनिवृत्तानांदुर्गतेषुदयावताम् ॥ १२ ॥ गुणिनांसफलंजन्मसंश्रितानांविपद्गतः ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुक्त्वा सतंवीरंपुत्राविदमथाब्रवीत् ॥ १३ ॥ पूजांकुवलयाश्वस्यकर्त्तुकामोभुजंगमः ॥ स्नानादिकक्रमंकृत्वासमत्रमेवयथाक्रमम ॥ १४ ॥ मधुपानादिसंभोगमाहारंचयथेप्सितम् ॥ ततःकुवलयाश्वेनहृदयोत्सवभूतया ॥ १५ ॥ कथयास्वल्पकंकालंस्थाभ्यामोत्दृष्टचेतसः ॥ अनुमेनेचतंमौनीवचःशत्रुजितःसुतः ॥ १६ ॥ तथाचकारचपतिःपन्नगानामुदारधीः ॥ १७ ॥

दुःखियोंके प्रति दया दिखाते हैं ॥ ११२ ॥ और दुःखी पुरुषको आश्रयप्रदान करते हैं सुतरां उनकाही जन्म सफल है उन्होंने कहा वह राजपुत्रसे यह कहकर उनकी अर्चना करनेमें उत्कंठित हुए और दोनों पुत्रोंसे कहा हम सब इकठे हो क्रमानुसार स्नानादि क्रिया कर ॥ ११३ ॥ ॥ ११४ ॥ अपनी इच्छानुसार मधुपान इत्यादि उपभोग और भक्षण करके कुवलयाश्वके सहित उत्सव करते हुए ॥ ११५ ॥ प्रसन्नमनसे कुछकाल निवास करेंगे ऋतध्वजने इसपर कोई बात नहीं कही और मौनभावसे स्थितिकर उसी बातका अनुमोदन किया ॥ ११६ ॥ तब उदारमति पन्नगराजने तदनुरूप कार्यका अनुष्ठान किया ॥ ११७ ॥

वह भोगभागी आत्मवान् सत्यभाषी पन्नगराज अश्वतर पुत्र राजकुमारके सहित मिलित होकर प्रसन्न चित्तसे अन्न और मधु सम्यक् प्रकारसे भोग करने लगे ॥ ११८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ जड़ने कहा अनन्तर पन्नगपति महात्मा अवश्वतरके आहार करनेपर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासनामें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥ तब महात्मा भुजाङ्ग-धिपतिने अनुरूप वचनप्रयोगपूर्वक राजकुमारको प्रसन्न करके कहा हे भद्र ! ॥ २ ॥ तुम मेरे घर आये हो पुत्र जिसप्रकार शंका छोड़कर पितासे बातें करता है उसी प्रकार तुम बातें करो, कहो तुम्हारा क्या प्रिय करूं ? ॥ ३ ॥ सो तुमभी मेरे निकट स्वच्छन्द प्रकाश करो क्या

समेत्यतैरात्मजभूपनंदनैर्महोरगाणामधिपःससत्यवाक् ॥ मुदायुतोन्नानिमधूनिचात्मवान्यथोपजोपंबुभुजेसभोगभाक् ॥ ११८ ॥
॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे कुवलयाश्वीयेपातालप्रवेशोनामैकविंशोऽध्यायः ॥ २१ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ कृताहारंमहात्मानमधिपं पवनाशिनाम् ॥ उपासांचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयस्तथा ॥ १ ॥ कथाभिरनुरूपाभिःप्रहृष्टात्माभुजंगमः ॥ प्रीतिंसंजनयामास पुत्रसख्युरुवाचह ॥ २ ॥ तवभद्रसुखंब्रूहिगेहमभ्यागतस्ययत् ॥ कर्तव्यमुत्सृजाशंकांपितरीवसुतेमयि ॥ ३ ॥ हिरण्यंवासुवर्णं वावस्त्रंवाहनमासनम् ॥ यद्वाभिमतमत्यर्थंदुर्लभंतद्वृणुष्वमाम् ॥ ४ ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादिगृहेमम ॥ पितुरस्तिममद्यापिनकिंचित्कार्यमीदृशैः ॥ ५ ॥ तातेवर्षसहस्रायुःशासतीमांवसुंधराम् ॥ तथैवत्वयिपातालंनमेयाच्ञोन्मुखंमनः ॥ ॥ ६ ॥ तेसुभाग्याःसुपुण्याश्चयेषांपितरिजीवति ॥ तृणंकोटिसमंवित्तंतारुण्यंवित्तकोटिषु ॥ ७ ॥

सुवर्ण क्या चाँदी क्या वसन वाहन अथवा अन्य जिस किसीवस्तुकी अभिलाषा हो वह अत्यन्त दुर्लभ होनेपरभी मुझसे माँगो॥४॥कुवलयाश्वने कहा हे भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे पिताके घर सुवर्णादि समस्त वस्तुही विद्यमान हैं अभीतक मुझको ऐसी वस्तुका कोई प्रयोजन नहीं हुआ ॥ ५ ॥ मेरे पिता जब सहस्र वर्ष हुए इस पृथ्वीका शासन करते थे और आपभी पातालपुरमें वास करते थे तब कभी मेरा मन प्रार्थना करनेमें अग्रसर नहीं हुआ ॥ ६ ॥ क्योंकि जिन पुरुषोंके पिता जीवित हैं वही पुरुष धन्य हैं इसी कारण जो यौवन कालमें करोड़ करोड़ वित्तको भी सामान्य तृणके समान समझते हैं वही परम पुण्यवान् और वही स्वर्गीय महापुरुष हैं ॥ ७ ॥

विचार करके देखो मेरे मित्रगण अनुरूप शिष्टाचार सम्पन्न हैं मेरा शरीर भी रोगरहित है यौवनभी है क्या नहीं है ॥ ८ ॥ मेरे पिता विलक्षण धनसम्पत्तिके अधिकारी हैं और जिनके अर्थ नहीं है उनका ही अन्तःकरण याचनामें लगता है किन्तु मेरे यहां धनका अभाव नहीं है सुतरां मेरी रसना याचना करनेमें उद्यत क्यों हो ? ॥ ९ ॥ मेरे घर धन है वा नहीं जिनको चिन्ता करनी नहीं पड़ती और जो कोई पितारूपी वृक्षकी भुजलताकी छायामें रहते हैं वही यथार्थमें सुखी हैं ॥ १० ॥ किन्तु जो कोई बाल्यकालसेही पितृहीन होकर परिवारके भरण पोषणमें नियुक्त होते हैं मेरे विचारमें विधाताने उन सब पुरुषोंको सुख स्वादसे भ्रष्टकरके वंचित किया है ॥ ११ ॥ मैं आपके अनुग्रहसे

मित्राणितुल्यशिष्टानितद्वद्देहमनामयम् ॥ जनेवाश्रितेवित्तंयौवनंकिंतुनास्तिमे ॥ ८ ॥ असत्यर्थेनृणांयाच्ञाप्रवणंजायतेमनः ॥ सत्यशेषेकथंयाच्ञांममजिह्वाकरिष्यति ॥ ९ ॥ येर्नचिंत्यंधनंकिंचिन्ममगेहेस्तिनास्तिवा ॥ पितृबाहुतरुच्छायांसंश्रिताःसुखिनोहिते ॥ १० ॥ येतुबाल्यात्प्रभृत्येवविनापित्राकुटुंबिनः ॥ तेसुखास्वादविभ्रंशान्मन्येधात्रैववंचिताः ॥ ११ ॥ तद्वयंतत्प्रसादेनधनरत्नादिसंचयम् ॥ पितृभक्ताःप्रयच्छामःकामतोनित्यमर्थिनाम् ॥ १२ ॥ तत्सर्वमिहसंप्राप्तंयदंघ्रियुगलंतव ॥ मच्चूडामणिनाघृष्टंयच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ॥ १३ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ इत्येवंप्रश्रितंवाक्यमुक्तःपन्नगसत्तमः ॥ प्राहराजसुतंप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ॥ १४ ॥ यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोवाप्तुंनतेमनः ॥ यदन्यन्मनसःप्रीत्यैब्रूहितत्तेददाम्यहम् ॥ १५ ॥ कुवलयाश्वउवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनप्रार्थितस्यगृहेमम ॥ सर्वमस्तिविशेषेणसंप्राप्तंतवदर्शनात् ॥ १६ ॥

पिताके दिये हुए असंख्य असंख्य धनरत्नादि अपनी इच्छानुसार प्रतिदिन अर्थियोंको देता हूं ॥ १२ ॥ विशेषकर जब अपनी चूडामणि द्वारा आपके चरण कमलोंका स्पर्श किया है और आपके अंगसंगलाभ किया है तब यहां वह मुझको समस्तही लाभ हुए इसमें सन्देह नहीं ॥ १३ ॥ जड़ने कहा पन्नगराज! इस प्रकार विनययुक्त वचन सुनकर प्रसन्नतासहित अपने दोनों पुत्रके हितकारी उन राजपुत्रसे कहने लगे ॥ १४ ॥ यदि मुझसे सुवर्णरत्नादि लेनेकी तुम्हारी इच्छा न हो तो और कुछ जिससे तुम्हारी आन्तरिक प्रीतिका संचार हो सो कहो मैं तुमको वही दूंगा ॥ १५ ॥ कुवलयाश्वने कहा हे भगवन्! आपके प्रसादसे मेरे घरमें प्रार्थनीय समस्तही वस्तु विद्यमान हैं. और विशेष करके इस समय आपका दर्शन करनेसे

वह भलीभाँति समस्त वस्तु मुझको लाभ होगई ॥ १६ ॥ आप देवता हैं मैं मनुष्य होकरभी जो आपके अंगसंगको प्राप्त हुआ इससे मैं अपनेको कृतार्थ मानता हूं और इससे मेरा जीवनधारणभी सफल होगया ॥ १७ ॥ हे पन्नगेश्वर ! आपके चरणरेणुने जो मेरे मस्तकके स्थानका अधिकार किया है इससे मुझको कौनसी वस्तु नहीं मिली ॥ १८ ॥ तो भी मुझको यदि आप अभिलषित वर देना कर्त्तव्य समझते हैं तो यही वर दीजिये कि, मेरे अन्तरसे पुण्य कर्म्मका संस्कार किसी समयमें दूर न हो॥१९॥ मेरे विचारमें सुवर्ण मणि रत्नादि वाहन गृह आसन स्त्री अन्न पान पुत्र मनोहर माल्य और अनुलेपन ॥ २० ॥ एवं गीत वाद्य इत्यादि अन्यान्य सब अभिलषित वस्तु यह मब्रह्मी पुण्यरूप वनस्पतिका

कृतकृत्योस्मिचैतेनसफलंजीवितंमम ॥ यदंगसंश्लेषमितस्तवदेवस्यमानुषः ॥ १७ ॥ ममोत्तमांगेत्वत्पादरजसायदिहास्पदम् ॥ कृतंतेनैवनप्राप्तंकिमयापन्नगेश्वर ॥ १८ ॥ यदित्ववश्यंदातव्योवरोमेमनसेप्सितः ॥ तत्पुण्यकर्मसंस्कारोहृदयान्मापयातुमे ॥१९॥ सुवर्णमणिरत्नादिवाहनंगृहमासनम् ॥ स्त्रियोन्नपानंपुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम् ॥ ॥ २० ॥ एतेचविविधाभोगागीतवाद्यादिकंच यत् ॥ सर्वमेतन्ममतंफलंपुण्यवनस्पतेः ॥ २१ ॥ तस्मान्नरेणतन्मूलसेकेयत्नःकृतात्मना ॥ कर्त्तव्यःपुण्यसक्तानांनकिंचिद्भुवि दुर्लभम् ॥ २२ ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ एवंभविष्यतिप्राज्ञतवधर्माश्रितामतिः ॥ सत्यंचैतत्फलंसर्वंधर्मस्योक्तंयथात्वया ॥२३॥ तथाप्यवश्यंमद्गेहमागतेनत्वयाधुना ॥ ग्राह्यंयन्मानुषेलोकेदुष्प्रापंभवतोमतम् ॥ २४ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ तस्यतद्वचनंश्रुत्वा सतदानृपनंदनः ॥ मुखावलोकनंचक्रेपन्नगेश्वरपुत्रयोः ॥ २५ ॥

फल है ॥ २१ ॥ अत एव कृतचित्त हो उसकी जड़के सेवन करनेका यत्न करना सब मनुष्योंका कर्त्तव्य है जो मनुष्य पुण्यासक्त हैं पृथ्वीमें उनके निकट कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ॥ २२ ॥ अश्वतरने कहा हे प्राज्ञ ! यही होगा तुम्हारा मन सदाही धर्मपथ अवलम्बन करके रहेगा तुमने जो जो कहा सबही सत्य है बरन यही धर्मका एकमात्र फल है॥२३॥तथापि जब तुम मेरे घर आये हो तो नर लोकमें जो तुमको दुष्प्राप्य हो वह तुमको अवश्य ही ग्रहण करना चाहिये ॥ २४ ॥ जड़ने कहा राजपुत्रने पन्नगपतिका यह वचन सुनकर उनके पुत्रोंके मुख की ओर देखा ॥ २५ ॥

तब उन दोनोंने प्रणामपूर्वक राजकुमारकी जो कुछ इच्छा थी वह सब स्पष्ट रूपमे पिताके निकट निवेदन करी ॥ २६ ॥ दोनों पुत्र बोले उनकी प्रियतमा पत्नी किसी दुरात्मा दानवसे छलीजाकर इनका मृत्यु सम्बाद सुन परम प्रियतम जीवन विसर्जन किया है ॥२७॥ कुबुद्धि दैत्यने वैर करके ही ऐसे आचरण किया था. इनकी प्रणयिनीका नाम मदालसा था, वह गन्धर्वपतिकी कन्या थी ॥ २८ ॥ हे पितः ! मदालसाके प्राण परित्याग करने पर इन्होंने उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश की नामनासे यह प्रतिज्ञा करी है कि, मदालसाके अतिरिक्त और किसी स्त्रीको पत्नीरूपमें ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २९ ॥ यह महावीर ऋतध्वज उस सर्वांगसुंदरीको देखनेके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं. हे तात !

ततस्तौप्रणिपत्योभौगजपुत्रस्ययन्मतम् ॥ तत्पितुःसकलंवीरौकथयामासतुःस्फुटम् ॥ २६ ॥ तानास्यपत्नीदयिताश्रुत्वेमंविनिपातितम् ॥ अत्यजद्दयिताप्राणान्विप्रलब्धादुरात्मना ॥ २७ ॥ केनापिकृतवैरेणदानवेनकुबुद्धिना ॥ गंधर्वराजस्यसुतानाम्नाख्यातामदालसा ॥ २८ ॥ कृतज्ञोयंततस्तातप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ॥ नान्याभार्याभवित्रीमेवर्जयित्वामदालसाम् ॥२९॥ द्रष्टुमांचारुसर्वांगीमयंवीरोऋतध्वजः ॥ तातवांछतियद्यतक्रियतेतत्कृतंभवेत् ॥ ३० ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ भूतैर्वियोगिनोयोगस्ताहक्स्वप्नेताहशः ॥ कथमेतद्विनास्वप्नंमायांवाशंबरोदिताम ॥ ३१ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ प्रणिपत्यभुजंगेशंपुत्रःशत्रुजितस्ततः ॥ प्रत्युवाचमहात्मानंप्रेमलज्जासमन्वितः ॥ ३२ ॥ मायामयीमप्यधुनाममतातोमदालसाम् ॥ यदिदर्शयतेमन्येपरंकृतमनुग्रहम ॥ ३३ ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ तस्मात्पश्येहवत्सत्वंमायांचेद्द्रष्टुमिच्छसि ॥ अनुग्राह्योभवान्गेहेबालोप्यभ्यागतोगुरुः ॥ ३४ ॥

यदि ऐसा करसके तो इनका यथार्थ उपकार हो ॥ ३० ॥ अश्वतरने कहा एकवार पंचभूत सहितोंके वियोग होनेपर फिर पूर्ववत संयोग होना स्वप्न वा शम्बरकी रची आसुरी मायाके अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार सम्भव नहीं है ॥ ३१ ॥ जइने कहा, तब शत्रुजित नन्दन ऋतध्वजने महात्मा भुजंगपतिको प्रणाम करके प्रेम और लज्जासहित कहा ॥ ३२ ॥ हे तात ! आप यदि इस समय उस मदालसाको माया करकेभी दिखासके तो मैं जानूंगा कि आपने मेरे प्रति परम अनुग्रह किया ॥ ३३ ॥ अश्वतर बोले हे वत्स ! यदि माया देखनेकी इच्छा हो तो देखिये क्योंकि तुम इसप्रकार अनुग्रहके पात्र हो यद्यपि बालक होकर भी मेरे घर आये हो ! तथापि अतिथि होनेसे गुरुके समान माननीय हो ॥ ३४ ॥

पन्नगराजने यह कहकर उस घरनें छिपीहुई मदालसाको उस स्थानमें बुलाया और राजकुमारको दिखाया ॥ ३५ ॥ तथा मनको मोहित करनेके लिये कुछेक वृथा अव्यक्त मंत्र उच्चारणपूर्वक राजकुमारको मदालसा दिखाकर कहा हे वत्स ! तुम्हारी पत्नी मदालसा यही तो नहीं है तुम देखो ॥ ३६ ॥ राजकुमार मदालसाको देखते हीलज्जा छोड़ तत्काल गिरे ! यह वचन कहते कहते उसके सन्मुख हुए ॥ ३७ ॥ अश्वतरने यह देख शीघ्र उनको निषेध करके कहा ! हे पुत्र ! यह माया है, इसको स्पर्श न करना मैंने पहले ही कहा है ॥३८॥ स्पर्शादि करते ही मायातत्काल अन्तर्धान होजाती है यह वचन सुनते ही ऋतध्वज मूर्च्छित हो पृथ्वीमें गिरगये ॥३९॥ और हा प्रिये कहकर उसकी चिन्ता करने लगे क्या

॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ आनयामासनागेंद्रोगृहेगुप्तांमदालसाम् ॥ दर्शयामासचतदाराजपुत्रायतांशुभाम् ॥ ३५ ॥ तेषांसंमोहनार्थाय जजलपचततःस्फुटम ॥ सेयंनवेतितेभार्याराजपुत्रमदालसा ॥ ३६ ॥ ॥ जडउवाच ॥ ॥ सद्दृष्ट्वातांतदातन्वींतत्क्षणाद्विगतत्रपः ॥ प्रियेतितामभिमुखंययौवाचमुदीरयन् ॥ ३७ ॥ निवारयामासचतंनागःसोश्वतरस्त्वरन् ॥ ॥ अश्वतरउवाच ॥ ॥ मायेयं पुत्रमास्प्राक्षीःप्रागेवकथितंतव ॥ ३८ ॥ अंतर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः ॥ ततःपपातमेदिन्यांसतुमूर्च्छापरिप्लुतः ॥ ३९ ॥ हाप्रियेतिवदन्सोथचिंतयामासभामिनीम् ॥ मोहोममायंनोवेतिनालंप्रत्ययवानहम् ॥ ४० ॥ अहोममेत्यहंचेतिबलंप्रत्यययोर्महत् ॥ येनाहंपातनोरीणांविनाशस्त्रंनिपातितः ॥ ४१ ॥ ममेतिदर्शितानेनमिथ्यामायेतिविस्फुटम् ॥ वाय्वंबुतेजसांभूमेराकाशस्यचचेष्टया ॥ ४२ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ ततःकुवलयाश्वंसमाश्वास्यभुजंगमः ॥ कथयामासतत्सर्वंमृतसंजीवनादिकम् ॥ ४३ ॥ ततःप्रहृष्टःप्रतिलभ्यकांतांप्रणम्यनागंनिजमाजगाम ॥ संस्तूयमानःस्वपुरंतमश्वमारुह्यसंचिंतितमभ्युपेतम् ॥ ४४ ॥

मुझको मोह होगया है वा कुछ और है, विश्वास नहीं होता॥४०॥यह मेरी ही है यह मुझे बलपूर्वक विश्वास होता है जिससे मुझको विनाशस्त्र निपातन किया है ॥ ४१ ॥ मुझे इन्होंने प्रत्यक्ष मिथ्या माया दिखाई है वा वायु जल तेज आकाशकी यह चेष्टा है ॥ ४२ ॥ जड़ने कहा अनन्तर भुजंगपति अश्वतरने राजकुमार कुवलयाश्वको समझा बुझाकर जिसप्रकारसे मृत मदालसाको फिर जीवित किया था वह सबही कहा॥४३॥तब कुवलयाश्व अपनी प्रणयिनीको पानेसे अत्यन्त आनन्दित हुए और अपने अश्वरत्नको स्मरण किया स्मरण करते ही वह अश्व उस स्थानमें आकर उपस्थित

हुआ तब राजकुमारने नागपतिको प्रणामकर स्त्रीसहित घोड़ेकी पीठपर चढ़े अपने शोभायमान पुरको प्रस्थान किया ॥४४॥ जो मनुष्य निरन्तर भक्ति-पूर्वक इस कथाको सुनते हैं वह वेदपाठके फलको अवश्य प्राप्त होते हैं जो पृथ्वीमें बड़ा दुर्लभ है ॥४५॥ उसको सबकामकी प्राप्ति और नित्य सुख मिलता है और उस पुरुषको लोकमें कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता ॥४६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वाविंशोऽध्यायः ॥ २२ ॥ पुत्रने कहा ऋतध्वजने अपने पुरमें पहुँचकर परलोकगत मदालसाको जिस प्रकार फिर पाया था वह समस्त पिता माताके निकट आनुपूर्विक वर्णन किया ॥ १ ॥ कल्याणी कृशांगी मदालसाने भी सास और श्वशुरके चरणोंमें प्रणाम करके ॥ २ ॥ अवस्था और गुरुत्वा-

शृणुयाद्भक्तिपूर्वंयोनैरंतर्येणमानवः ॥ वेदघोषफलंतेनप्राप्तंवैभुविदुर्लभम् ॥ ४५ ॥ संप्राप्नोतिसुखंनित्यंसर्वकामसमन्वितः ॥ लोके चदुर्लभंतस्यनास्तिकिंचिन्नतीवद्यो ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेमदालसोपाख्यानेपुनर्मदालसांप्राप्यपातालान्निर्गमोनामद्वाविंशो ऽध्यायः ॥ २२ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ आगम्यस्वपुरंसोथपित्रोःसर्वमशेषतः ॥ कथयामासतन्वंगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ॥ १ ॥ ननामसा पिचरणौश्वश्रूश्वशुरयोःशुभा ॥ स्वजनंचयथापूर्ववंदनाश्लेषणादिभिः ॥ २ ॥ पूजयामासतन्वंगीयथान्याय्यंयथावयः ॥ ततोमहोत्स वोजज्ञेपौराणांतत्रवैपुरे ॥ ३ ॥ ऋतध्वजश्चसुचिरंतयारेमेसुमध्यया ॥ निर्झरेषुचशैलानांनिम्नगापुलिनेषुच ॥ ४ ॥ काननेषुचर म्येषुवनेषूपवनेषुच ॥ पुण्यक्षयंवांछमानासापिकामोपभोगतः ॥ ५ ॥ सहतेनातिकांतासुरेमेरम्यासुभूमिषु ॥ ततःकालेनमहताशत्रुजि त्सनराधिपः ॥ ६ ॥ सम्यक्प्रशास्यवसुधांकालधर्ममुपेयिवान् ॥ ततःपौरामहात्मानंपुत्रंतस्यऋतध्वजम् ॥ ७ ॥ अभ्यषिंचं तराजानमुदाराचारचेष्टितम् ॥ सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ ८ ॥

नुसार स्वजनोंकी यथायोग्य वन्दना और आलिंगनादि करके पूजा करी तदनन्तर पुरीमें पुरवासियोंका महोत्सव प्रवृत्त हुआ॥३॥इस और राज-कुमार ऋतध्वजने सुमध्यमा मदालसाके संग गिरिनिर्झर नदीपुलिन॥४॥और मनोहर वन उपवनमें बहुत कालतक विहार किया मदालसा भी कामो-पभोग द्वारा पुण्यक्षयकी वासनासे ॥ ५ ॥ मनोहर कान्ति ऋतध्वजके संग अनेक प्रकारके मनोहर स्थानोंमें विहार करने लगी.इस प्रकार बहुत दिन बीतनेपर नरपति शत्रुजित् ॥६॥ विधानानुसार पृथ्वीका शासन कर कालधर्मके वशीभूत हुए तब पुरवासियोंने उनके पुत्र ॥७॥ उदाराचार

चेष्टित महात्मा ऋतध्वजको राज्यपदमें प्रतिष्ठित किया कुमार भी औरस पुत्रके समान सम्यक् प्रकारसे प्रजापालन करने लगे ॥ ८ ॥ इसी समयमें मदालसाके गर्भसे प्रथम पुत्रने जन्म ग्रहण किया पिताने उस मतिमान् पुत्रका नाम "विक्रान्त" रक्खा ॥ ९ ॥ पुत्रसन्तान होनेसे भृत्यगण अत्यन्त प्रसन्नताको प्राप्त हुए और मदालसा हँसने लगी उस पुत्रके पैर फैलाकर सोनेमें तथा ॥ १० ॥ अस्फुटस्वरमे क्रन्दन करनेमें प्रवृत्त होनेपर मदालसा उसको समझानेके मिससे कहने लगी हे वत्स ! तुम शुद्ध और नामहीन हो अब कल्पनामात्रकी सहायतासे ही तुम्हारा नामकरण हुआ है ॥११॥ तुम इस देहको पंचभूतात्मक जानना अतएव यह देह जिस प्रकार तुम्हारा नहीं है तुम इसीप्रकार इसके भी नहीं हो

मदालसायाःसंजज्ञेपुत्रःप्रथमजस्ततः ॥ तस्यचक्रेपितानामविक्रांतइतिधीमतः ॥ ९ ॥ तुतुषुस्तेनवैभृत्याजहासचमदालसा ॥ सावैमदालसापुत्रंबालमुत्तानशायिनम् ॥ १० ॥ उल्लापनच्छलेनाहरुदमानमविस्वरम् ॥ शुद्धोसितातनतेस्तिनामकृतंचतेकल्पनया धुनैव ॥ ११ ॥ पंचात्मकंदेहमिदंनतेस्तिनैवास्यत्वंरोदिषिकस्यहेतोः ॥ नवाभवान्रोदितिवैस्वजन्माशुद्धोयमासाद्यमहीशसूनुम् ॥ ॥ १२ ॥ विकल्प्यमानोविविधैर्गुणार्थैर्गुणाश्चभौताःसकलेंद्रियेषु ॥ भूतानिभूतैःपरिदुर्बलानिवृद्धिंसमायांतियथेहपुंसः ॥ १३ ॥ अन्नांबुपानादिभिरेवकस्यनतेस्तिवृद्धिर्नचतेस्तिहानिः ॥ त्वंकंचुकेशीर्यमाणेनिजेस्मिंस्तस्मिन्स्वदेहेमूढतांमाव्रजथाः ॥ १४ ॥ शुभाशुभैःकर्मभिर्देहमेतन्मदादिमूढैःकंचुकस्तेपिनद्धः ॥ तातेतिकिंचित्तनयेतिकिंचिदंबेतिकिंचिद्दयितेतिकिंचित ॥ १५ ॥ ममेतिकिंचिन्नममेतिकिंचिद्भौतंसंघंबहुधामालपेथाः ॥ दुःखानिदुःखोपगमायभोगान्सुखायजानातिविमूढचेताः ॥ १६ ॥

सुतरां तुम किस कारण रुदन करते हो ? वा तुम क्रन्दन नहीं करते यह शब्द इन राजकुमारको आश्रय करके स्वयंही आविर्भूत होता है ॥१२॥ नानाप्रकार भौतिक गुण और अगुण सब तुम्हारी इंद्रियोंमें विकल्पित हुए हैं अतीव दुर्लभ भूतसमूह जिसप्रकार भूतकी सहायतासे अन्न और जलदानादि द्वारा वर्द्धित होते हैं ॥१३॥ इस जलादिके समान तुम्हारी उसप्रकार वृद्धि वा क्षय कुछ नहीं तुम्हारा यह देह आच्छादन मात्र है यह भी शीर्ण हो जायगा इसलिये तुम मोहमें अभिभूत नहीं होना ॥१४॥ शुभाशुभकर्मसे ही अपने शरीरमें यह आच्छादन हुआ जानो क्या पिता क्या पुत्र क्या माता क्या स्त्री क्या आत्मीय ॥१५॥ क्या अपना कोई कुछ नहीं है तुम इनकाबहुत मान नहीं करना जो पुरुष मूढ़चित्त हैं व[illegible]

दुःखको दुःखोपशमका हेतु और भोगोंको सुखका कारण समझते हैं ॥१६॥ जो पुरुष अविद्यासे अन्धे हैं वही मोहाच्छन्न चित्त हैं, वह उस दुःखको ही सुख जानते हैं स्त्रीके हँसने में अस्थि दिखाई देती है उसके नेत्रोंमें वसाकी कलुषता दिखाई देती है ॥१७॥ उसके पीनोन्नत स्तनादि भी घन मांसपिण्डमात्र हैं. उसका रतिस्थान भी वैसाही है. सुतरां रमणी क्या साक्षात् नरकस्वरूप नहीं है? भूमिमें यान यानमें देह और उसी देह में अन्य पुरुष निविष्ट रहता है ॥१८॥ जैसी अपने देहमें ममता है ऐसी तो पृथ्वीमें भी नहीं मानता यही मूढता है. कारण कि, देह पृथ्वीका सूक्ष्म अंश मात्र है ॥१९॥ धर्म अधर्म सत्य अनृत त्यागन करो इन दोनोंके त्यागन करनेके उपरान्त जिससे त्यागन किया जायगा उसे त्यागन

तान्येवदुःखानिपुनःसुखानिजानातिविद्वानविमूढचेताः ॥ हासोस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलंयत्कलुषंवसायाः ॥ १७ ॥ कुचादि पीनंपिशितंघनंतत्स्थानंरतेःकिंनरकोनयोषित् ॥ यानंक्षितौयानगतश्चदेहोदेहेपिचान्यःपुरुषोनिविष्टः ॥ १८ ॥ ममत्वमुर्व्यांनतथा यथास्वेदेहेतिमात्रंचविमूढतैषा ॥ १९ ॥ त्यजधर्ममधर्मंचउभेसत्यानृतेत्यज ॥ उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्त्यज ॥ २० ॥ वर्धमानंसुतंसातुराजपत्नीदिनेदिने ॥ तमुल्लापादिनाबोधमनयन्निर्मलात्मकम् ॥ २१ ॥ यथायथाबलंलेभेयथालेभेमतिंपितुः ॥ तथातथात्मबोधंचसोवापन्मातृभाषितैः ॥ २२ ॥ इत्थंतयासतनयोजन्मप्रभृतिबोधितः ॥ चकारनमतिंप्राज्ञोगार्हस्थ्यंप्रतिनिर्ममः ॥ ॥ २३ ॥ द्वितीयोस्याःसुतोजज्ञेतस्यनामाकरोत्पिता ॥ सुबाहुरयमित्युक्तेसाजहासमदालसा ॥ २४ ॥ तमप्येवंयथापूर्वंबालमुल्लाप वादिनी ॥ प्राहबाल्यात्मचप्रापतथाबोधंमहामतिः ॥ २५ ॥

करो ॥२०॥ जड़ने कहा. इसप्रकार पुत्र दिन दिन जिसप्रकार वृद्धिको प्राप्त होने लगा ॥ राजमहिषी मदालसा भी उसीप्रकार खिलानेके बहाने उस निर्मलात्मा पुत्रको आत्मबोध ॥ २१ ॥ देने में प्रवृत्त हुई पुत्र क्रम क्रमसे जिसप्रकार पिताके समीप बल और वृद्धिको प्राप्त हुआ माताके उपदेशसे भी उसीप्रकार आत्मज्ञान लाभ करने लगा ॥२२॥ जननीके समीप जन्मसे आत्मज्ञानविषयमें उपदेशको प्राप्त होकर ज्ञानोदय और ममता दूर होनेसे कुमार गार्हस्थ्य धर्ममें एकबार ही स्पृहारहित होगये ॥ २३ ॥ कुछ काल पीछे मदालसाके गर्भसे दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, पिताने इस पुत्रका नाम "सुबाहु" रक्खा. उस समय भी मदालसा हँसी ॥ २४ ॥ वह उस पुत्रको भी बाल्यावस्थामें पूर्वोक्तनियमानुसार

आत्मबोधप्रदान करने लगी. इस कारण दूसरे पुत्रका मन भी वैसाही ज्ञानलाभ करके विरक्त होगया ॥२५॥ इसके उपरान्त तीसरे पुत्रके उत्पन्न होनेपर नरपतिने उसका नाम "शत्रुमर्दन" रक्खा. पुत्रका नाम सुनकर सुभ्रू मदालसा बहुत समयतक हँसती रही ॥ २६ ॥ कृशाङ्गी मदालसा इस पुत्रको भी बाल्यकालसे पूर्ववत् आत्मज्ञान प्रदान करने लगी, तब यह कुमारभी निष्काम और क्रियाहीन हो गया ॥२७॥ अन्तमें चौथे पुत्रके उत्पन्न होने पर राजाने उसके नामकरणमें उत्सुक हो मदालसाकी ओर देखा, मदालसा कुछेक हँसी ॥२८॥ तब राजाने यह देख कौतूहलके वश होकर कहा पुत्र उत्पन्न होनेके पीछे मेरे नामकारणमें समुद्यत होतेही तुम हँसती हो इसका क्या कारण है ? ॥२९॥ मैंने पुत्रोंका जो विक्रान्त सुबाहु

तृतीयंतनयंजातंतंराजाशत्रुमर्दनम् ॥ यदाहतेनसासुभ्रूर्जहासातिचिरंपुनः ॥ २६ ॥ तथैवसोपितन्वंग्याबालत्वादेवबोधितः ॥ क्रियाश्चकारनिष्कामानकिंचित्फलकारणम् ॥ २७ ॥ चतुर्थस्यसुतस्याथचिकीर्षुर्नामभूपतिः ॥ ददर्शतांशुभाचारामीषद्धासांमदालसाम् ॥ २८ ॥ तामाहराजाहसन्तींकिंचित्कौतूहलान्वितः ॥ क्रियमाणेऽसकृन्नाम्निकथ्यतांहास्यकारणम ॥ २९ ॥ विक्रांतश्चसुबाहुश्चयथान्यःशत्रुमर्दनः ॥ शोभनानीतिनामानितानिमन्येकृतानिवै ॥ ३० ॥ योग्यानिक्षत्रबंधूनांशौर्याटोपयुतानिच ॥ असत्यं तानिवैभद्रेयदितेमनसिस्थितम् ॥ ३१ ॥ तदस्यक्रियतांनामचतुर्थस्यसुतस्यमे ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ मयाज्ञाभवतःकार्यामहाराजयथात्थमाम् ॥ ३२ ॥ तथानामकरिष्यामिचतुर्थस्यसुतस्यते ॥ अलर्कइतिधर्मज्ञःख्यातिंलोकेगमिष्यति ॥ ३३ ॥ कनीयानेषतेपुत्रोमतिमांश्चभविष्यति ॥ पुत्रउवाच ॥ तच्छ्रुत्वानामपुत्रस्यकृतंमात्रामहीपतिः ॥ ३४ ॥

और शत्रुमर्दन नाम रक्खा है मेरे विचारसे यह नाम सब प्रकार युक्तिसंगत हुए हैं ॥ ३० ॥ क्योंकि क्षत्रियोंका शौर्य और दर्प संयुक्त नाम रखना उपयुक्त है, जो हो ! हे भद्रे ! यदि यह तीनों नाम तुम्हारे विचारमें उत्तम न हों ॥३१॥ तो तुम स्वयं चौथे पुत्रका नामकरण करो, मदालसाने कहा हे राजन् ! आपकी आज्ञा प्रतिपालन करना मेरा सर्वथा कर्त्तव्य है॥ ३२॥ अतएव आप जिसप्रकार कहते हैं, उसके अनुसार मैं ही चौथे पुत्रका नामकरण करूंगी यह धर्मज्ञ पुत्र "अलर्क" ❋ नाम से पृथ्वीतलमें विख्यात होगा ॥३३॥ आपका यह कनिष्ठ पुत्र महाबुद्धिमान् होगा पुत्र बोला--माताने पुत्रका "अलर्क" यह नामकरण किया यह असंबद्ध नाम सुनकर॥ ३४ ॥

महीपतिने हँसते हँसते कहा हे कल्याणी ! तुमने मेरे पुत्रका जो नामकरण किया ॥ ३५ ॥ यह अत्यन्त असंबद्ध है. हे मदालसे ! इसका क्या अर्थ है ! मदालसा बोली, हे महाराज ! नामकरण लोकाचार और कल्पना मात्र है ॥ ३६ ॥ हे नृप ! "नाम रखना होगा" यह समझकर एकनाम रख लिया आपने जो सब नाम रक्खे हैं, उनका भी किसी प्रकार अर्थ नहीं है. सुनिये—जो पुरुष सुपंडित हैं, वह आत्माको सर्वव्यापी कहते हैं ॥ ३७ ॥ एक देशसे अन्य देशकी गतिकोही क्रांति कहते हैं आत्मा सर्वगत व्यापी और देहका ईश्वर है सुतरां उसकी गति संभव नहीं है ॥ ३८ ॥ इस कारण ही मेरे विचारमें विक्रांत नामका कोई अर्थ नहीं है । हे महीपते ! आत्मा सब प्रकार

अलर्कइत्यसंबद्धंप्रहस्येदमथाब्रवीत ॥ भवत्यायदिदंनाममत्पुत्रस्यकृतंशुभे ॥ ३५ ॥ किमीदृशमसंबद्धमर्थःकोस्यमदालसे ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ कल्पनेयंमहाराजकृतासाव्यावहारिकी ॥ ३६ ॥ त्वत्कृतानांतथानाम्नांशृणुभूपनिरर्थताम् ॥ वदंतिपुरुषाःप्राज्ञाव्यापिनंपुरुषंसतः ॥ ३७ ॥ क्रांतिश्चगतिरुद्दिष्टादेशाद्देशांतरंतुया ॥ सर्वगोनप्रयातीहव्यापीदेहेश्वरोयतः ॥ ३८ ॥ ततोविक्रांतसंज्ञेयंमताममनिरर्थिका ॥ सुबाहुरितियासंज्ञाकृतान्यस्यसुतस्यते ॥ ३९ ॥ निरर्थामाप्यमूर्त्तस्यपुरुषस्यमहीपते ॥ पुत्रस्ययत्कृतंनाम तृतीयस्यारिमर्दनः ॥ ४० ॥ मन्येतच्चाप्यसंबद्धंशृणुवाप्यत्रकारणम् ॥ एकएवशरीरेषुसर्वेषुपुरुषोयदा ॥ ४१ ॥ तदास्यराजन्कःशत्रुःकोवामित्रमिहेष्यते ॥ भूतैर्भूतानिमर्द्यंतेअमूर्त्तोमर्द्यते कथम् ॥ ४२ ॥ क्रोधादीनांपृथग्भावात्कल्पनेयंनिरर्थिका ॥ यदिसंव्यवहारार्थमसन्नामप्रकल्प्यते ॥ ४३ ॥

मूर्त्तिहीन है अतएव आपने जो दूसरे पुत्रका सुबाहु नामकरण किया है ॥ ३९ ॥ उसकाभी किसी प्रकार अर्थ न हो सकता है तीसरे पुत्रका जो अरिमर्दन नाम रक्खा है ॥ ४० ॥ मेरे विचारमें वह भी निरर्थक है उसका कारण सुनिये एक मात्र आत्मा समस्त शरीरोंमें विराजमान रहता है ॥ ४१ ॥ सुतरां उसका शत्रु वा मित्र कौन सम्भावन कर सकता है भूतके द्वारा ही भूतगण मर्दित होते हैं जो मूर्त्तिहीन है उसका फिर मर्दन किस प्रकार संभव हो सकता है ? ॥ ४२ ॥ क्रोध इत्यादिका पृथक्भाव होनेसे यह कल्पनाभी निरर्थक है अर्थात् आत्मा सब प्रकार दोषरहित है वह किस शत्रुको मर्दन करेगा ? यदि लोकाचारके कारणही इस प्रकार अर्थहीन नामकी कल्पना करी जाती है ॥ ४३ ॥

तो मैंने जो "अलर्क" नाम रक्खा है वह किस प्रकार आपके मतसे अर्थहीन हो सकता है ? महिषीके इस प्रकार साधुवाक्य उच्चारण करनेपर महाबुद्धि महीपतिने ॥ ४४ ॥ सत्यभाषिणी दयितासे कहा तुमने जो जो कहा सब सत्य है अनन्तर सुभ्रू मदालसा चौथे पुत्रकोभी पहिले तीनोंके समान ॥ ॥४५॥ आत्मज्ञानकी शिक्षा देनेमें उद्यत हुई तब महीपतिने कहा हे मूढ ! यह क्या करती है मेरी सन्तानका अभाव करती है ॥४६॥ इसप्रकार दुषणीय आत्मज्ञान देकर पहिले पुत्रोंका जिस प्रकार अमंगल विधान किया है इस पुत्रको भी क्या वैसाही करेगी ? मेरा प्रिय अनुष्ठान करना यदि तुम कर्तव्य समझती हो और मेरा वचन प्रतिपालन करना यदि उचित समझती हो ॥४७॥ तो इस पुत्रको प्रवृत्तिमार्ग में

नाम्निकस्मादलर्काख्येनैरर्थ्यंभवतोमतम् ॥ एवमुक्तस्तयासाधुमहिष्यासमहीपतिः ॥४४॥ तथेत्याहमहाबुद्धिर्दयितांतथ्यवादिनीम् ॥ तंचापिसासुतंसुभ्रूर्यथापूर्वसुतांस्तथा ॥४५॥ प्राहावबोधजननंतामुवाचसपार्थिवः ॥ करोषिकिमिदंमूढेममाभावायसंततः ॥ ४६ ॥ दुष्टावबोधदानेनयथापूर्वंसुतेषुमे ॥ यदिमेमत्प्रियंकार्यमनुग्राह्यंवचोमम ॥ ४७ ॥ तदेनंतनयंमार्गेप्रवृत्तेसन्नियोजय ॥ कर्ममार्गः समुच्छेदंनैवदेविगमिष्यति ॥ ४८ ॥ पितृपिण्डनिवृत्तिश्चनैवसाध्विभविष्यति ॥ पितरोदेवलोकस्थास्तथातिर्यक्त्वमागताः ॥४९॥ तद्वन्ममनुष्यतांयाताभूतवर्गेषुयेस्थिताः ॥ सपुण्यानसपुण्यांश्चक्षुत्क्षामांस्तृट्परिप्लुतान् ॥ ५० ॥ पिंडोदकप्रदानेननरःकर्मण्यवस्थितः ॥ सदाप्याययतेसुभ्रूस्तद्वद्देवातिथीनपि ॥ ५१ ॥ देवैर्मनुष्यैःपितृभिःप्रेतैर्भूतैःसगुह्यकैः ॥ वयोभिःकृमिभिःकीटैर्नरएवोपजीव्यते ॥ ५२ ॥

नियोजित करो. हे देवी ! पुत्रको कर्ममार्गमें प्रवृत्त करनेसे कर्ममार्ग नष्ट नहीं होगा ॥ ४८ ॥ हे साध्वी ! तो पिण्डके लुप्त होनेकी भी सम्भावना नहीं है पितृगण शुभाशुभकर्मवश सुरलोकमें वास तिर्यग्योनि सम्भोग ॥ ४९ ॥ नरत्वप्राप्ति और दूसरी योनियोंमें संक्रमणपूर्वक भूख प्याससे अत्यन्त कातर और क्षीण होने पर ॥ ५० ॥ मनुष्य कर्ममार्गमें अवस्थित होकर पिण्डोदक समर्पण कर सदा उनका और उन्हींके अनुसार देवता और अतिथिगणोंका सम्यक् प्रीतिविधान करते हैं ॥ बरन क्या देवता क्या मनुष्य क्या पितृगण क्या प्रेत क्या भूत क्या गुह्यक क्या पक्षी क्या कृमि कीट सर्वही मनुष्यको आश्रय करके जीवका निर्वाह कहते हैं ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

अतएव हे तन्वङ्गी ! क्षत्रियोको जो कर्त्तव्य है और जो ऐहिक पारलौकिक फललाभार्थ उचित है मेरे इस पुत्रको वैसीही शिक्षा दो ॥ ५२ ॥ वर नारी मदालसाने पतिका यह वचन सुनकर "अलर्क" नामक पुत्रसे खिलानेके समय कहा ॥ ५४ ॥ हे पुत्र ! बढ़ित होओ मित्रोंके उपकारार्थ और शत्रु कुलके विनाशार्थ कर्मानुष्ठान द्वारा मेरे पतिका अन्तर आनन्दित करो ॥ ५५ ॥ हे पुत्र ! तुम धन्य हो क्योंकि तुम निःशत्रु होकर बहुतकाल पर्यन्त वसुमती (पृथ्वी) का पालन करो तुम्हारे पालन गुणसे सम्पूर्ण लोगोंको सुख होगा और परम धर्मसंचयके कारण अमरत्व लाभ कर सकोगे ॥ ५६ ॥ तुम प्रति पर्वके दिन ब्राह्मणोंका तृप्ति विधान करो बंधुवर्गकी अभिलाषा पूर्ण करो हृदयमें पराये हितके साधनको

तस्मात्त्वं गिमेपुत्रंयत्कार्यंक्षत्रयोनिभिः ॥ ऐहिकामुष्मिकायालंतत्कर्मप्रतिपादय ॥ ५३ ॥ तेनेवमुक्तागागार्भावरनारीमदालसा ॥ अलर्कंनामतनयंप्रोवाचोल्लापवादिनी ॥ ५४ ॥ पुत्रवर्द्धस्वमेभर्त्तुर्मनोनंदयकर्मभिः ॥ ऐहिकामुष्मिकफलंतत्सम्यक्परिपालय ॥ मित्राणामुपकारायदुर्हृदांनाशनायच ॥ ५५ ॥ धन्योसिरेयोवसुधामशत्रुरेकश्चिरंपालयितासिपुत्र ॥ तत्पालनादिद्रसमोपभोगं धर्म्मफलंप्राप्स्यसिचामरत्वम् ॥ ५६ ॥ धरामरान्पर्वसुतर्पयेथाःसमीहितंबंधुषुपूरयेथाः ॥ हितंपरस्मैहृदिचिंतयेथामनःपरस्त्रीषुनिवर्तयेथाः ॥ ५७ ॥ सदामुरारिंहृदिचिंतयेथास्तद्ध्यानतोंतःषडरीञ्जयेथाः ॥ मायांप्रबोधेननिवारयेथाह्यनित्यतामेवविचिंतयेथाः ॥ ॥ ५८ ॥ अर्थागमायक्षितिपाञ्जयेथायशोर्ज्जनायार्थमपिव्ययेथाः ॥ परपवादश्रवणाद्बिभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ॥ ॥ ५९ ॥ यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणयसंश्रितांश्च ॥ स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिराय युद्धैश्चारींस्तोषयितासिवीर ॥ ६० ॥

इच्छा करो और पराई स्त्रीमें मन नहीं लगाओ ॥ ५७ ॥ सदा मुरारीको हृदयमें ध्यान करो और उनके ध्यानसे अंतःकरणके कामादि छः शत्रुओंको जीतो ज्ञानसे मायाको निवारणका जगत्‌की अनित्यताको विचार करते रहो ॥ ५८ ॥ अर्थके प्राप्त होनेमें पांच वस्तुओंको जय करना और यश प्राप्तिके निमित्तव्यय करो पराई निंदा सुननेसे डरो जनोंको विपत्तिके सागरसे उद्धार करो ॥ ५९ ॥ अनेक प्रकारके यज्ञानुष्ठानद्वारा देवताओंका एवं निरंतर दान देनेसे ब्राह्मण और आश्रित जनोंको प्रसन्न करो. हे वीर ! नाना प्रकारके अनुपभोग द्वारा स्त्री गण और संग्राम द्वारा शत्रुओंका संतोष साधन करोगे ॥ ६० ॥

तुम बालकपनमें बांधवोंका, कौमारमें आज्ञा पालन द्वारा पिता माताका यौवनमें सत्कुलभूषण नारीका और बुढ़ापेमें वनवासी होकर वनचरोंकी प्रीति साधन करोगे ॥ ६१ ॥ हे वत्स ! तुम राज्यपदमें प्रतिष्ठित होकर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादन करोगे साधुओंकी रक्षा करके यज्ञानुष्ठान एवं गौ और ब्राह्मणोंकी रक्षा विधानार्थ समरमें दुष्ट और शत्रुओंका विनाश करके परलोकमें प्रस्थान करोगे ॥ ६२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायांत्रयविंशोध्याय ॥ २३ ॥ पुत्रने कहा जननी मदालसा इसप्रकार खिलानेके मिष जब नित्य उपदेश देनेमें उद्यत हुई तब बालक अलर्क बुद्धि और अवस्था सहित बढ़ने लगा ॥१॥ क्रमानुसार कौमार अवस्था प्राप्त होनेपर महाबुद्धि ऋतध्वजनंदन

बालोमनोनंदयबांधवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणैःकुमारः ॥ स्त्रीणांयुवासत्कुलभूषणानांवृद्धोवनेवत्सवनेचरणाम् ॥ ६१ ॥ राज्यंकुर्वन्सुहृदोनंदयेथाःसाधून्रक्षंस्तातयज्ञैर्यजेथाः ॥ दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्चाजिमध्येगोविप्रार्थेवत्समृत्युंभजेथाः ॥ ६२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्रवृत्तिमार्गानुशासनंनामत्रयोविंशोध्यायः ॥ २३ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ एवमुल्लाप्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने ॥ ववृधेवयसाबालोबुद्ध्याचालर्कसंज्ञितः ॥ १ ॥ सकौमारकमासाद्यऋतध्वजसुतस्तदा ॥ कृतोपनयनःप्राज्ञःप्रणिपत्याहमातरम् ॥ २ ॥ मयायदंबकर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकायवै ॥ सुखायवदतत्सर्वंप्रश्रयावनतस्यमे ॥३॥ ममार्थंचैवधर्मार्थंप्रजानांचैवयद्धितम् ॥ श्रेयसेयच्चतत्सर्वंप्रजागंजनमादितः ॥४॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ वत्सराज्याभिषिक्तेनप्रजारंजनमादितः ॥ कर्त्तव्यम विरोधेनस्वधर्मस्यमहीभृताम् ॥५॥ व्यसनानिपरित्यज्यसत्यमूलहराणिवै ॥ आत्मारिपुभ्यःसंरक्ष्योबहिर्मंत्रविनिर्गमात् ॥ ६ ॥

अलर्कने यज्ञोपवीतको प्राप्त हो मातासे प्रणाम करके कहा ॥ २ ॥ हे अम्ब ! मैं विनयपूर्वक पूंछता हूं ऐहिक और पारलौकिक दोनों सुखके निमित्त मुझको जिसप्रकार कार्यानुष्ठान करना उचित है वह तुम सब विस्तारसहित कहो ॥ ३ ॥ मेरा धर्म अर्थ और प्रजाका जिस प्रकार हित हो और प्रजापालनसे मुक्तिकी प्राप्ति हो वह तुम सब यथायोग्य वर्णन करो. मदालसा बोली हे वत्स ! राज्यपदमें अभिषिक्त होकर अपने धर्मके अनुसार प्रजारंजन करनाही नगरपतिका प्रथम कर्त्तव्य है ॥ ४ ॥ ५ ॥ सत्यके मूलविना व्यसनोंको त्यागकरके जिससे किया हुआ मंत्र बाहर निकल कर शत्रुगण तिरस्कार न करसके इस प्रकारके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होकर शत्रुओंसे अपनी रक्षा करना परम कर्त्तव्य है ॥ ६ ॥

शत्रुके योगसे अमात्योंकी दुष्टता अदुष्टता जाने अच्छे चक्रवाले रथसे गिरनेसे जैसे आठप्रकारसे आघात होता है ॥ ७ ॥ उसी प्रकार राजा मन्त्रणा बाहर निकल जानेपर निःसन्देह क्षयको प्राप्त होता है शत्रुओंके दोषसे अमात्यवर्ग दूषित हुए हैं वा नहीं अर्थात् शत्रुओंने धनादि द्वारा अमात्य वर्गको दूषित किया है वा नहीं यत्नपूर्वक दूतोंके द्वारा राजाको यह अवश्य जानना चाहिये ॥ ८ ॥ क्या मित्र क्या भ्रात क्या बन्धु किसीका विश्वास करना राजाको उचित नहीं है किन्तु कार्यवश समयान्तरमें शत्रुकाभी विश्वास करना चाहिये ॥ ९ ॥ नरपतिको कामके वशीभूत न होकर स्थानवृद्धि और क्षय जानना उचित है और वह संधि विग्रहादि छै गुणोंमें गुणवान् हो ॥

दुष्टादुष्टांश्चजानीयादमात्यानरिदोषतः ॥ अष्टधानाशमाप्नोतिस्वचक्रात्स्यंदनाद्यथा ॥७॥ तथाराजाप्यसंदिग्धंबहिर्मंत्रविनिर्गमात् ॥ चरैश्चरास्तथाशत्रोरन्वेष्टव्याःप्रयत्नतः ॥ ८ ॥ विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्रातबंधुषु ॥ कार्ययोगादमित्रेषुविश्वसीतनराधिपः ॥९॥ स्थानवृद्धिक्षयज्ञेनपाड्गुण्यविदितात्मना ॥ भवितव्यंनरेन्द्रेणनकामवशवर्तिना ॥ १० ॥ प्रागात्मअंत्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ॥ ज्ञेयाश्चानंतरंपौराविरुध्येतततोरिभिः ॥ ११ ॥ यस्त्वेतानविजित्यैववैरिणोविजिगीषते ॥ सोजितात्माजितामात्यःशत्रुवर्गेणबाध्यते ॥ १२ ॥ तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाःपुत्रमहीभृता ॥ तज्जयेहिजयोगज्ञोगजानश्यतितैर्जितः ॥ १३ ॥ कामःक्रोधश्चलोभश्च मदोमानस्तथैवच ॥ हर्षश्चशत्रवोह्येतेनाशायकुमहीभृताम् ॥ १४ ॥ कामप्रसक्तमात्मानंस्मृत्वापांडुंनिपातिनम् ॥ निवर्त्तयेत्तथाक्रोधादनुह्रादंहतात्मजम् ॥ १५ ॥

॥१०॥ प्रथम तो आपको, फिर अमात्यगणको, फिर भृत्यगण और फिर प्रजाको वशीभूतकरके अन्तमें शत्रुओंसे विरोध करे ॥ ११ ॥ जो प्रथम आत्मा इत्यादिको विनाजीते शत्रुको पराजय करनेकी इच्छा करता है वह अजितात्मा राजा अमात्योंसे विजित होकर शत्रुओंके वशीभूत होता है ॥१२॥ हे पुत्र ! इसी कारण प्रथम कामादि शत्रुओंको जीतना चाहिये उनको जीतनेमे अवश्य ही जय प्राप्त होती है किन्तु कामादिके द्वारा पराम्त होनेपर राजा नाशको प्राप्त हो जाता है ॥ १३ ॥ काम क्रोध लोभ मद मान और हर्ष यही शत्रु और यही राजाके विनाशक कारण हैं ॥ १४ ॥ पांडु राजा कामके वश होकरही नष्ट हुए हैं, अनुह्रादको क्रोधके वश होकरही पुत्रधनसे वंचित होना पड़ाहै ॥ १५ ॥

वश होकरही ऐल विनाशको प्राप्त हुए हैं. मदके कारणही वेन राजाको ब्राह्मणोंके द्वारा निहत होना पड़ा है. अनायु पुत्र वाली अभिमानके कारणही निपतित हुए हैं और परंजयको हर्षके वश होकर ही मरना पड़ा है ॥ १६ ॥ किन्तु महात्मा राजा मरुत्तने इन समस्त शत्रुओंको पराजयकरके अखिल संसारको जीता था नरपति इन सबको स्मरण करके समस्त दोषोंको परित्याग करे॥१७॥काक कोकिल भ्रमर मृग व्याल मयूर हंस कुक्कुट और लौह नरपति इनके निकटसे चरित शिक्षा ग्रहण करे॥१८॥ *राजा शत्रुके प्रति उलूक जिस प्रकार कोई आडम्बर न करके शत्रुओंको नष्टकरताहै शत्रुके प्रति ऐसाही व्यवहार करना राजाको कर्त्तव्य है पिपीलिकाके

हतमैलंतथालोभान्मदाद्वेनंद्विजैर्हतम् ॥ मानादनायुषःपुत्रंहतंहर्षात्पुरंजयम् ॥ १६ ॥ एभिर्जितैर्जितंसर्वंमरुत्तेनमहात्मना ॥ स्मृत्वा विवर्जयेदेतान्षड्दोषांश्चमहीपतिः ॥ १७ ॥ काककोकिलभृंगाणांबकव्यालशिखंडिनाम् ॥ हंसकुक्कुटलोहानांशिक्षेतचरितंनृपः ॥ ॥ १८ ॥ कौशिकस्याक्रियांकुर्याद्विपक्षेमनुजेश्वरः ॥ चेष्टांपिपीलिकानांचकालेभूपःप्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥ ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगानां बीजचेष्टाचशाल्मलेः ॥ चंद्रसूर्यस्वरूपंचनीत्यर्थेपृथिवीक्षिता ॥ २० ॥ बंधकीपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् ॥ एवंसाम्नाचभेदेन प्रदानेनचपार्थिव ॥ २१ ॥

समान यथाकालमें संचयी हो ॥१९॥ अग्निकी चिनगारी और शाल्मली बीजके समान व्यापनशील होना राजाको उचित है वह चन्द्र सूर्यके समान राजनीति प्रयोगपूर्वक पृथ्वीको देखें अर्थात् चन्द्र और सूर्य जिस प्रकार सबके गृहमें किरण विस्तारकरते हैं एवं क्रमी तीक्ष्ण और मृदु होते हैं इसी प्रकार राजनीति प्रयोग करके उदयशील होना राजाको उचित है ॥२०॥ व्यभिचारिणी पद्म शरभ शूलिका गुर्विणीस्तन गोपाङ्गना नरपति इन सबके निकटसे राजा शिक्षा ग्रहण करे अर्थात् बन्धनकी व्यभिचारिणी जिस प्रकार पर पुरुषके चित्तको आनन्द देती है राजाकोभी इसी

* इसका तात्पर्य यही है कि, काकके समान आलस्यरहित और सावधान हो कोकिलके समान संचयशील हो मृगके समान सहसा शत्रुके वशीभूत न हो सर्प जिस प्रकार स्वल्प मात्र विषसे बड़े जीवका प्राण ध्वंस करता है इसी प्रकार अल्प बलकी सहायतासे अधिक बलवान् शत्रुके मारनेकी चेष्टा करे मयूरके समानअपनी सम्पत्ति विस्तृत करे हंसके समान गुणग्राहही हो कुक्कुट अर्थात् मुरगेके समान यथा समयमें उठे और स्त्रियोंकी विपदसे रक्षा करे एवं लोहेके समान कठिन और बहुकर्म्मसम्पादक होना चाहिये ।

प्रकार प्रजाका चित्त प्रसन्न करना चाहिये. वह पद्मके सदृश सब पुरुषोंका चित्त हरण करे उनको शरभ अष्टापदजीवके समान विक्रम प्रकाश करना चाहिये शूलिकाके समान शत्रुको एकवारही ध्वंसकरे गर्भिणीके स्तन जिस प्रकार होनेवाली सन्तानके प्रतिपालन करनेके लिये पुष्ट होते हैं राजाभी इसी प्रकार भविष्यतके लिये संचयशील होनेका यत्न करे और गोपाङ्गना जिसप्रकार एक मान दूसरी नानाप्रकार द्रव्य प्रस्तुत करती है राजाको भी इसी प्रकार कल्पनापटु होना चाहिये॥२१॥नीतिपूर्वक दण्डसे पृथ्वीको जीते अर्थात् नीतिपूर्वक दण्डसे अर्थ संचयकरे और चाण्डाल स्त्रीसे बुद्धि सीखे कि, वह किसी व्यवहारसे मुख नहीं मोड़ती॥२२॥पृथ्वी पालन करनाहो तो इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्र और वायु इन पांचों देवताओंके अनुरूप आचरण करना चाहिये ॥२३॥ अर्थात् इंद्र जिसप्रकार चार मास वर्षणद्वारा पृथ्वीवासियोंको तृप्त करते हैं, राजाभी इसीप्रकार अर्थादि दानसे सबको प्रसन्न

दंडेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थंपृथिवींक्षिता ॥ प्रज्ञानृपेणवादेयातथाचंडालयोपित ॥ २२ ॥ शक्रार्कयमसोमानांतद्वद्वायोर्महीपतिः ॥ रूपाणिपंचकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ॥ २३ ॥ यथेंद्रश्चतुरोमासान्वार्योवर्षेणैवभूतलम् ॥ आप्याययेत्तथालोकान्परिहारैर्महीपतिः ॥ २४ ॥ मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ॥ सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेनतथाशुल्कादिनानृपः ॥२५॥ यथायमःप्रियद्वेष्यौप्राप्तकालेनियच्छति ॥ तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टेसमोभवेत् ॥ २६ ॥ पूर्णेंदुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनरः ॥ एवंयत्रप्रजाःसर्वानिर्वृतास्तच्छशिव्रतम ॥ २७ ॥ मारुतःसर्वभूतेषुनिगूढश्चरतेयथा ॥ एवंचरेन्नृपश्चारैःपौरामात्यारिबंधुषु ॥ २८ ॥ नलोभार्थेर्नकामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्यमानसम् ॥ पदार्थैःकृष्यतेधर्मात्सराजास्वर्गमृच्छति ॥ २९ ॥

करे॥२४॥सूर्य जिस प्रकार किरणोंके द्वारा आठमास जल सोखते हैं, इसी प्रकार सूक्ष्म उपायसे करादि ग्रहण करना महीपतिका कर्तव्य है॥२५॥ काल प्राप्त होनेपर यम जिस प्रकार क्या प्रिय क्या द्वेषी सबको ही निगृहीत करते हैं,इसी प्रकार राजाभी क्या प्रिय क्या अप्रिय क्या दुष्ट सर्वत्र समदर्शी हो॥२६॥पूर्ण चन्द्रमाके देखनेसे जिस प्रकार समस्त मनुष्य प्रसन्न होते हैं, जिसके शासनमें प्रजा भी उसी प्रकार सुख अनुभव करे उस राजाका आचरणही यथार्थ चन्द्रमाके अनुरूप है॥२७॥वायु जिस प्रकार गुप्तभावसे सर्वभूतोंमें विचरण करता है राजा भी इसीप्रकार चार द्वारा नगरवासी अमात्य और बांधव इत्यादिके चरित्रादिका खोज करे ॥ २८ ॥ काम लोभ वा अर्थ अथवा अन्य किसी कारणसे जिसका मन आकृष्ट

नहीं होता, वही राजा स्वर्गको जाता है ॥ २९ ॥ जो मूढ कुमार्ग में पडे हुए हैं अपने धर्मसे चलायमान होगये हैं, जो उनको अपने धर्मपर लाता है वह राजा स्वर्गको प्राप्त करता है ॥३०॥ हे वत्स ! जिस राजाके राज्यमें वर्णधर्म वा आश्रमधर्म किसी प्रकारसे नष्ट नहीं होते वह क्या इस लोक क्या परलोक दोनों लोकोंमें ही निरन्तर सुख भोगता है ॥ ३१ ॥ बुद्धिमान् पुरुषोंकी परामर्शसे सदा कार्य करना और सबको स्वस्व धर्ममें स्थापन करना ही राजाका एकमात्र कार्य है, और यही उसकी सिद्धि लाभका कारण है ॥ ३२ ॥ राजा प्रजाका सम्यक् प्रकार पालन करने पर जिस प्रकार कृत्यकृत्य होता है, उसी प्रकार उसको धर्मका अंश भी प्राप्त होता है ॥ ३३ ॥ जो राजा चारों वर्णकी रक्षाके

उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलितान्नरान् ॥ यःकरोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ॥ ३० ॥ वर्णधर्मानसीदंतियस्यराष्ट्रेतथाश्रमाः॥ राज्ञस्तस्यसुखंतातपरत्रेहचशाश्वतम् ॥ ३१ ॥ एतद्राज्ञःपरंकृत्यंतथैतद्वृद्धिकारणम् ॥ स्वधर्मेस्थापनंनृणांचाल्यतेनकुबुद्धिभिः ॥ ॥ ३२ ॥ पालनेनैवभूतानांकृतकृत्योमहीपतिः ॥ सम्यक्पालयिताभागंधर्मस्याप्नोतिवैयतः ॥३३॥ एवमाचरतेराजाचातुर्वर्ण्यस्यरक्षणम् ॥ ससुखीविहरत्येषशक्रस्यैतिसलोकताम् ॥ ३४ ॥ इ०मा०मदालसोपाख्यानेचतुर्विंशोध्यायः ॥ २४ ॥ ॥ पुत्रउवाच ॥ ॥ तन्मातुर्वचनंश्रुत्वासोलर्कोमातरंपुनः ॥ पप्रच्छवर्णधर्मांश्चधर्मान्येचाश्रमेषुच ॥ १ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ कथितोयंमहाभागेराज्यतंत्रश्रितस्त्वया ॥ ममधर्मोहमिच्छामिश्रोतुंवर्णाश्रमात्मकम् ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ दानमध्ययनंयज्ञोब्राह्मणस्यत्रिधोदितः ॥ धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्तिधर्मस्तस्यापदंविना ॥ ३ ॥

लिये इस प्रकार नियममें स्थित रहता है वह इसलोकमें परमसुखसे विहारकर अन्तमें इन्द्रका सालोक्य प्राप्त करता है॥३४॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥ पुत्रने कहा—अलर्क जननीके इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रमधर्मका विषय पूँछने लगा॥१॥ अलर्कने कहा—हे महाभागे ! तुमने राजधर्मका तो वर्णन किया किन्तु अब मैं वर्णधर्म और आश्रमधर्म सुनने की इच्छा करता हूं ॥२॥ मदालसा बोली; हे वत्स ! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मणके धर्म हैं इनके अतिरिक्त चौथा धर्म और कुछ नहीं है अन्य धर्म उसके पक्षमें आपत्तिमें हैं ॥ ३ ॥

विशुद्धभावसे याजन (यज्ञ कराना) अध्यापन और पवित्र भावसे प्रतिग्रह यह तीन ही ब्राह्मणजातिके जीविकार्थ व्यवसाय जानने ॥ ४ ॥ दान अध्ययन और यज्ञ करना यह तीन क्षत्रियोंके धर्म हैं एवं पृथ्वीकी रक्षा और शस्त्र चलाना यह दो कर्म उनकी जीविका हैं ॥ ५ ॥ वैश्यके भी धर्म तीन हैं—दान अध्ययन और यज्ञ और पशुपालन वाणिज्य एवं कृषि यह तीन उनकी जीविका हैं ॥ ६ ॥ दान यज्ञ उपरोक्त तीनों वर्णोंकी सेवा यह तीन शूद्रजातिके धर्म हैं एवं कारुकार्य ॥ ७ ॥ विप्रसेवा पशुपोषण और क्रय विक्रय ही उनकी जीविका है यह मैंने सब वर्णोंका धर्म कहा अब आश्रमधर्म सुनो ॥ ८ ॥ स्वस्ववर्णधर्मका पालन करनेसेही सब प्रकार सिद्धि लाभकरते हैं और

याजनाध्यापने शुद्धस्तथापुत्रप्रतिग्रहः ॥ एतत्सम्यक्समाख्यातंत्रितयंचास्यजीविका ॥ ४ ॥ दानमध्ययनंयज्ञाःक्षत्रियस्याप्ययंत्रिधा ॥ धर्मःप्रोक्तःक्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ॥ ५ ॥ दानमध्ययनंयज्ञोवैश्यस्यापित्रिधैवसः ॥ वाणिज्यंपाशुपाल्यंचकृषिश्चैवास्यजीविका ॥ ६ ॥ दानंयज्ञोथशुश्रूषाद्विजातीनांत्रिधामया ॥ व्याख्यातःशूद्रधर्मोपिजीविकाकारुकर्मजा ॥ ७ ॥ तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणंक्रयविक्रयैः ॥ वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ताःश्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥ ८ ॥ स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिंनरःप्राप्नोतिनच्युतः ॥ प्रयातिनरकंप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥ ९ ॥ यावच्चनोपनयनंक्रियतेवैद्विजजन्मनः ॥ कामचेष्टोक्तिभक्षस्तुतावद्भवतिपुत्रक ॥१०॥ कृतोपनयनःसम्यग्ब्रह्मचारीगुरोर्गृहे ॥ वसेततत्रधर्मोस्यकथ्यतेतन्निबोधमे ॥ ११ ॥ स्वाध्यायोथाग्निशुश्रूषास्नानंभिक्षाटनंतथा ॥ गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुज्ञातेनसर्वदा ॥ १२ ॥ गुरोःकर्मणिसोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादकःतेनाहूतःपठेच्चैवतत्परोनान्यमानसः ॥ १३ ॥

वर्णधर्मके विरुद्ध आचरण करनेसेही नरकमें जाते हैं ॥ ९ ॥ हे पुत्र ! जबतक द्विजातिगणका उपनयन संस्कार (जनेऊ) सम्पन्न न हो तबतक वह अपनी इच्छानुसार व्यवहार आलाप और आहारादि करसक्ते हैं ॥ १० ॥ उपनयन होनेपर ब्रह्मचारी रूपसे गुरुके घर वासकर तिस काल इस स्थानमें जिसप्रकार धर्माचरण करै वह कहती हूं सुनो ॥ ११ ॥ स्वाध्याय अग्निशुश्रूषा स्नान भिक्षार्थ भ्रमण प्रथम गुरुको निवेदन करके फिर उनकी आज्ञानुसार आप भोजन करै ॥ १२ ॥ गुरुके कार्यसाधनमें उद्योग, उनका सन्तोष उत्पादन और गुरुके द्वारा बुलाये जानेपर उनके कार्यमें तत्परता और अनन्यचित्तताके सहित अध्ययन उस ब्रह्मचारीको करना चाहिये ॥ १३ ॥

गुरुदेवके मुखसे एक दो अथवा समस्त वेद पढ़ उनके चरणोंकी वन्दना कर आज्ञा ग्रहणपूर्वक दक्षिणा समर्पण करे॥१४॥ फिर गार्हस्थ्य धर्मकी इच्छा हो तो गृहस्थाश्रममें प्रवेश करना चाहिये वा अपनी अभिलाषाके अनुसार वानप्रस्थाश्रम वा चतुर्थाश्रम अवलम्बन करें॥१५॥या नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरुके घरही वास करसकता है यदि गुरु न हों तो उनके पुत्रके निकट और पुत्रके अभावमें उनके शिष्यके निकट॥१६॥ सेवापरायण और अभिमानरहित होकर ब्रह्मचर्याश्रममें वास करना चाहिये फिर गृहस्थाश्रमकी इच्छासे गुरुके घरसे लौटकर ॥ १७ ॥ गृहस्थाश्रममें प्रविष्ट होनेपर अपने अनुरूप कन्यासे विवाह करें कन्याका रोगरहित असमान कुलगोत्र सम्पन्न विकलाङ्गसे रहित होना अवश्यक है ॥ १८ ॥

एकंद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्यगुरोर्मुखात ॥ अनुज्ञातोवरांदत्त्वादक्षिणांगुरवेततः ॥१४॥ गार्हस्थ्याश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रममावसेत ॥ वानप्रस्थाश्रमंवापिचतुर्थंवेच्छयात्मनः ॥१५॥ तथैववागुरोर्गेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ॥ गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतंविना ॥१६॥ शुश्रूषुर्निरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंवसेत् ॥ उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया॥१७॥ततोऽसमानर्षिकुलांतुल्यांभार्यामरोगिणीम्॥ उद्वहेन्न्यायतोऽव्यंगांगृहस्थाश्रमकारणात् ॥ १८ ॥ स्वकर्मणाधनंलब्ध्वापितृदेवातिथींस्तथा ॥ सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्यापोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥१९॥ भृत्यात्मजाञ्जामयोयदीनार्थिपतितानपि ॥ यथाशक्त्यान्नदानेनवयांसिपशवस्तथा ॥२०॥ एषधर्मोगृहस्थस्यऋतावभिगमस्तथा ॥ पंचयज्ञविधानंतुयथाशक्तिनहापयेत् ॥२१॥ पितृदेवातिथिज्ञातिभुक्तशेषंस्वयं नरः ॥ भुंजीतचसमंभृत्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥२२॥ एषतूद्देशतःप्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ॥ वानप्रस्थस्यधर्मंतेकथयाम्यवधार्यताम् ॥ २३ ॥

स्वीय कर्मद्वारा न्यायानुसार अर्थ उपार्जित करके भक्तिसहित यथाविधि पितर देवता और अतिथि गणकी तृप्तिविधान और आश्रितजनोंका पोषण करै॥१९॥भृत्य पुत्र दीन अन्ध पतित और पशु पक्षियोंको अपनी शक्तिके अनुसार अन्नदान द्वारा पालन करना चाहिये ॥२०॥ ऋतुकालमें स्त्रीगमन और शक्तिके अनुसार पंचयज्ञका अनुष्ठान करै यही गृहस्थका एक मात्र धर्म है॥२१॥विभवके अनुसार आदर पितृगण देवतागण अतिथिगण और ज्ञातिगणको अर्पण करके स्वयं भृत्यगणसहित अवशिष्ट भोजन करे ॥ २२ ॥ मैंने यह संक्षेपसे गृहस्थाश्रम धर्म कहा अब वानप्रस्थ धर्म वर्णन करताहूं एकाग्रचित्तसे सुनो ॥ २३ ॥

बुद्धिमान् पुरुषसन्तान सन्ततिकी पूर्णता अपने देहकी अवनति देखकर आत्म शुद्धिके लिये वानप्रस्थाश्रममें गमनकरै ॥ २४ ॥ वहां वनके फल मूलादि भक्षण तपस्याचरण द्वारा आत्माका उत्कर्ष संपादनकर भूतलमें शयन ब्रह्मचर्यानुष्ठान पितृ देव और अतिथीकी परिचर्या ॥ २५ ॥ होम तीनों सन्ध्याओंमें स्नान जटावल्कल धारण निरंतर योगाभ्यास और वन्य स्नेहोंका सेवन करै ॥ २६ ॥ इस प्रकार पापशुद्धिके निमित्त और आत्माका उपकार करनेके लिये वानप्रस्थाश्रम आश्रय करना चाहिये इस आश्रमके पीछे भिक्षुनामक चरम आश्रम है ॥ २७ ॥ हे पुत्र ! महात्मा धर्मज्ञ पुरुषोंने इस चौथे आश्रमका स्वरूप जिस प्रकार कहा है वह कहती हूं सुनो ॥ २८ ॥ सर्व संग

अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम्॥वानप्रस्थाश्रमंगच्छेदात्मनःशुद्धिकारणात् ॥२४॥ तत्रारण्योपभोगश्चतपोभिश्चात्मकर्षणम् ॥ भूमौशय्याब्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रियाः ॥२५॥ होमस्त्रिषवणंस्नानंजटावल्कलधारणम् ॥ मौनादिकरणंचैववन्यस्नेहनिषेवणम् ॥२६॥ इ त्येषपापशुद्ध्यर्थमात्मनश्चोपकारकः ॥ वानप्रस्थाश्रमस्तस्माद्भिक्षोस्तुचरमोपरः ॥२७॥ [illegible] ॥ यश्चधर्मोस्यधर्मज्ञैःप्रोक्तस्तानमहात्मभिः॥२८॥सर्वसंगपरित्यागोब्रह्मचर्यमकोपता॥जितेन्द्रियत्वमावासे[illegible] ॥ २९ ॥ अनारंभस्तथाहारोभिक्षान्नैककालिकम् ॥ आत्मज्ञानावबोधश्चतथाचात्मावलोकनम् ॥ ३० ॥ चतुर्थेचाश्रमे[illegible] सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणांचमेशृणु ॥ ३१ ॥ सत्यंशौचमहिंसाचअनसूयातथाक्षमा ॥ आनृशंस्यमकार्पण्यंसंतोषश्चाष्टमो गुणः ॥ ३२ ॥ एतेसंक्षेपतःप्रोक्ताधर्मावर्णाश्रमेषुच ॥ एतेषुनित्यधर्मेषुनित्यंतिष्ठत्समंततः ॥ ३३ ॥

परित्याग ब्रह्मचर्य रोषशून्यता इंद्रियदमन एक स्थानमें बहुत दिनों तक वास नहीं करना ॥ २९ ॥ कर्म विसर्जन भिक्षालब्ध अन्नका एकवार मात्र भोजन आत्मज्ञानके बोधको इच्छा और आत्मदर्शन यह समस्तही चतुर्थाश्रमका कर्त्तव्य है ॥ ३० ॥ चतुर्थाश्रममें जिस प्रकार धर्मानुष्ठान करना होता है वह तुमसे कहा अब अन्याय वर्ण और आश्रमोंका साधारणतः जो कर्त्तव्य है सो सुनो ॥ ३१ ॥ सत्य शौच अहिंसा अनसूया क्षमा आनृशंस्य अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सब वर्णाश्रम धर्मका साधारण धर्म कहा गया है ॥ ३२ ॥ मैंने यह तुम्हारे निकट संपूर्ण वर्णाश्रमधर्म संक्षेपसे वर्णन किया सबको ही अपने अपने वर्णाश्रम धर्मका प्रतिपालन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

जो पुरुष सदा स्वधर्ममें स्थिति करता है जबतक चौदह इन्द्र का पतन नहीं होता तबतक वह ब्रह्मलोकमें वास करता है जो मनुष्य स्वीय वर्णाश्रमसंज्ञित स्वधर्म उल्लंघनपूर्वक ॥३४॥ धर्मान्तरमें प्रवृत्त होता है वह मनुष्य राजाके द्वारा दण्डनीय होता है जो व्यक्ति स्वधर्मविसर्जनपूर्व पापानुष्ठान करता है॥३५॥उसको दण्ड न करके उपेक्षा करनेसे नरपतिका इष्टापूर्त्त विनासको प्राप्त होता है इसी कारण नरपति विशेष यत्नसहित वर्णमात्रको ही निज निज धर्ममें स्थापन करै ॥ ३६ ॥ और इसके विरुद्धाचरणमें प्रवृत्त होने पर उनको दंड देकर स्वकर्ममें स्थापन करै ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां पञ्चविंशोऽध्यायः ॥ २५ ॥ अलर्कने कहा—जो गृहस्थाश्रमी पुरुषका कर्त्तव्य है जिसका अनुष्ठान न

सयातिब्रह्मलोकंहियावदिंद्राश्चतुर्दश ॥ यश्चोल्लंघ्यस्वकंधर्मस्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ॥ ३४ ॥ नरोन्यथाप्रवर्त्तेतसदंडयोभूभृतोभवेत् ॥ येचस्वधर्मसंत्यागात्पापंकुर्वंतिमानवाः ॥ ३५ ॥ उपेक्षतस्तान्नृपतेरिष्टापूर्तंप्रयात्यधः॥ तस्माद्राज्ञाप्रयत्नेनसर्वेवर्णाःस्वधर्मतः ॥३६॥ प्रवर्त्यन्तेन्यथादंडयाःस्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेमदालसानुशासनंनामपंचविंशोध्यायः ॥ २५ ॥

॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ यत्कार्यंपुरुषेणेहगार्हस्थ्यमनुवर्त्तता॥बन्धश्चस्यादकरणेक्रियायांयस्यचोच्छ्रितिः ॥ १ ॥ उपकाराययन्नृणां यच्चवर्ज्यंगृहेसताम् ॥ यथाचक्रियतेतन्मेयथायत्पृच्छतोवद ॥ २ ॥ मदालसोवाच ॥ वत्सगार्हस्थ्यमास्थायनरःसर्वमिदंजगत् ॥ पुष्णातितेनलोकांश्चसजयत्यभिवांछितान् ॥ ३ ॥ पितरोमुनयोदेवाभूतानिमनुजास्तथा ॥ कृमिकीटपतंगाश्चवयांसिपशवोऽसुराः ॥ ४ ॥ गृहस्थमुपजीवंतिततस्तृप्तिंप्रयांतिच ॥ मुखंचास्यनिरीक्षंतेअपिनोदास्यतीतिवै ॥ ५ ॥

करनेसे बन्धन और करनेसे मोक्ष लाभ होता है ॥ १ ॥ जो मनुष्योंके उपकारका हेतु जो वर्जनीय और कर्त्तव्य है मैं वह समस्त विषय पूछता हूं और विस्तारसहित वर्णन करो ॥ २ ॥ मदालसा बोली हे वत्स ! मनुष्य गृहस्थाश्रम अवलम्बन करके इन अखिल जीवोंका पोषण करता है और उसी पुण्यके प्रभावसे समस्त वांछित लोक लाभ करता है ॥३॥ पितृगण ऋषिगण देवगण भूत गण नरगण कृमि कीट पतंगगण पक्षिगण पशुगण और असुरगण॥४॥यह समस्तही गृहस्थाश्रमके अवलम्बन करके जीवन यात्रा निर्वाह करते हैं और उनके ही सहित इनका तृप्तिविधान होता है "गृहस्थ हमको अन्न देगा वा नहीं" यह चिन्ता करके गृहीकेमुखकी ओर देखते हैं ॥ ५ ॥

सर्वस्याधारभूतेयंवत्सधेनुस्त्रयीमयी ॥ यस्यांप्रतिष्ठितंविश्वंविश्वहेतुश्चयामता ॥ ६ ॥ ऋक्पृष्ठामायजुर्मध्यामावक्त्रशिरोधरा ॥ इष्टापूर्तविषाणाचसाधुमूक्ततनूरुहा ॥ ७ ॥ शांतिपुष्टिशकृन्मूत्रा वर्णपादप्रतिष्ठिता ॥ आजीव्यमानाजगतामाऽक्षयानापचीयते ॥ ॥ ८ ॥ स्वाहाकारःस्वधाकारोवषट्कारश्चपुत्रक ॥ हंतकारस्तथैवान्यस्तस्याःस्तनचतुष्टयम् ॥ ९ ॥ स्वाहाकारंस्तनंदेवाः पितरश्चस्वधामयम् ॥ मुनयश्चवषट्कारंदेवभूतसुरेतराः ॥ १० ॥ हंतकारंमनुष्याश्चपिबंतिसततंस्तनम् ॥ एवमाप्याययत्येषाद वादीनखिलांस्त्रयी ॥ ११ ॥ एतद्वत्सचतुष्कंतुनरस्तनचतुष्टये ॥ ननियुज्याद्यथाकालंतेनम्युस्तेविमानिनाः ॥ १२ ॥ देवादी नखिलान्येषुसंतर्पयतिमानवः ॥ तेषामुच्छेदकर्त्तायःपुरुषोत्यंतपापकृत ॥ १३ ॥ सतमस्यंधतामिस्त्रतमिस्त्रेचनिमज्जति ॥ यस्त्वेतांमानवोधेनुंस्वैर्वत्सैरमरादिभिः ॥१४॥ प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोपपद्यते ॥ तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥१५॥

हे वत्स ! गृहस्थ ही वेदमयी धेनुरूपमें सबका आधारभूत होकर रहता है अखिल ब्रह्माण्ड इस धेनुमें ही प्रतिष्ठित और यह धेनु ही ब्रह्माण्ड कारण है ॥ ६ ॥ ऋग्वेद इस धेनुकी पीठ, यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा इष्टापूर्त, उसका सींग साधुमूक्त रोम ॥ ७ ॥ शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रमही इस धेनुकी प्रतिष्ठा है, इस धेनुका क्षय नहीं है. सुतरां समस्त विश्वको अवलम्बनपूर्वक जीवन धारण करनेपर भी उसका क्षय होनेकी आशंका नहीं है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्वाहा स्वधा कार और हन्त यह इस धेनुके चार स्तन हैं ॥ ९ ॥ इन चार स्तनोंमें देवगण स्वाहाकार, पितृगण वषट्कार ॥ १० ॥ और मनुष्यगण सदा हन्त कार स्तन पान करते हैं. हे पुत्र ! इसप्रकारसे यह त्रयीमयी धेनुही सबकी तृप्ति सम्पादन करती है ॥११॥ इन चारों स्तनोंको यह चार जाति पान करती हैं जो यथा समयमें नियुक्त न किये जांय तो यह धेनु अवमानित होती है ॥ १२ ॥ जिनसे मनुष्य सब देवतादिको सन्तुष्ट करते हैं उस त्रयी की नष्टता साधन करनेसे महापापी होता है ॥ १३ ॥ अन्धतामिस्र और तामिस्र नामक दोनों प्रकारके नरकोंमें निमग्न होता है. अगर इत्यादि इस धेनुके वत्स हैं जो व्यक्ति यथा समयमें उन वत्सोंको ॥१४॥ उपरोक्त स्तनपान कराता है सुरपुरमें उसकी गति होती है हे पुत्र ! इसलिये नित्य स्वीय देहके अनुसार सुरगण, मुनिगण, पितृगण, नरगण ॥ १५ ॥

और भूतगणोंका पोषण करना सबको उचित है इसी कारण स्नानपूर्वक पवित्र होकर सावधान मनसे सुरगण, पितृगण, मुनिगण ॥ १६ ॥ और प्रजापति, जलदान सहित इनका तर्पण करना चाहिये. चन्दन और गन्ध धूपादिद्वारा देवताओंकी पूजा करके ॥ १७ ॥ फिर अग्नितर्पणपूर्वक बलि दे । ब्रह्मको विश्वदेवको ॥ १८ ॥ और धन्वन्तरिको गृहमध्यमें पूर्व और उत्तर दिशामें उद्देश्य करके बलिप्रदान करे. इन्द्रको पूर्व दिशामें, यमको दक्षिण दिशामें ॥ १९ ॥ वरुणको पश्चिम दिशामें और सोमको उत्तर दिशामें बलि प्रदान करना चाहिये । घरके द्वारदेशमें धाता और विधाताके उद्देश्यसे बलि देवे ॥ २० ॥ अर्यमाको घरके बहिर्भागमें सब ओरसे बलिप्रदान करे तदनन्तर निशाचर

भूतानिचानुदिवसंपोष्याणिस्वतनुर्यथा ॥ तस्मात्स्नातःशुचिर्भूत्वादेवर्षिपितृतर्पणम् ॥ १६ ॥ प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहितः ॥ सुमनोगंधधूपैश्चदेवानभ्यर्च्यमानवः ॥ १७ ॥ ततोग्नेस्तर्पणंकुर्याद्द्याच्चबलिमित्यथ ॥ ब्रह्मणेगृहमध्येतुविश्वेदेवेभ्य एवच ॥ १८ ॥ धन्वंतरिंसमुद्दिश्यप्रागुदीच्यांबलिंक्षिपेत् ॥ प्राच्यांशक्राययाम्यायांयमायबलिमाहरेत ॥ १९ ॥ प्रतीच्यांवरुणायाथसामायोत्तरतोबलिम् ॥ दद्याद्धात्रविधत्रेचबलिंद्वारेगृहस्यच ॥ २० ॥ अर्यम्णेथबहिर्दद्याद्गृहेभ्यश्चसमंततः ॥ नक्तंचरेभ्योभूतेभ्योबलि प्राकाशतोहरेत् ॥ २१ ॥ पितॄणांनिर्वपेच्चैवदक्षिणाभिमुखःस्थितः ॥ गृहस्थस्तत्परोभूत्वासुसमाहितमानसः ॥ २२ ॥ ततस्तोयमुपादायतेषामाचमनायवै ॥ स्थानेपुनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः॥२३॥ एवंगृहबलिंकृत्वागृहेगृहपतिःशुचिः ॥ आप्ययनायभूतानांकुर्यादुत्सर्गमादरात् ॥२४॥ श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ वैश्वदेवंहिनामैतत्सायंप्रातरुदाहृतम् ॥२५॥

और समस्त भूतके उद्देश्यसे आकाश भार्गमें बलि आहरण करे ॥ २१ ॥ पितरोंको बलिदेनेके लिये दक्षिणाभिमुखसे बैठे अनन्तर गृही तत्पर और एकाग्रचित्त हो ॥ २२ ॥ आचमनके लिये जल ग्रहणकर तत्तत् स्थानमें उस उस देवताके उद्देश्यसे जलदान करे ॥ २३ ॥ गृह स्वामी इस प्रकारसे गृहबलि प्रदान करके पवित्र भावसे भूतसमूह की तृप्तिके निमित्त सादर उत्सर्ग विधि समाहित करे ॥ २४ ॥ कुत्ता श्वपच और पक्षी इनकेलिये पृथ्वीमें बलिदान करै इसको ही वैश्वदेवबलि कहते हैं सायंकाल और प्रातःकालमें यह बलिप्रदान करना चाहिये ॥ २५ ॥

बुद्धिमान् गृही इस प्रकार वैश्वदेवबलिप्रदान पूर्वक आचमन करके द्वारावलोकन करे. महूर्तके अष्टम भाग तक अतिथिकी प्रतीक्षा करे ॥ २६ ॥ अतिथिके आनेपर अपनी शक्तिके अनुसार जल अन्नादि और गन्ध पुष्पादि द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ २७ ॥ मित्र, ॥ एक ग्रामवासी मनुष्य को अतिथि नहीं करना, जिस पुरुषका कुल नाम ज्ञात न हो जो तत्काल आया हुआ हो ॥ २८ ॥ स्वाभाविक आहारकी अभिलाषासे जिसका आगमन हो जो थका हुआ याचक और जिसके पास कुछ नहीं हो पंडितगण उसे ब्राह्मणको ही अतिथि कहते हैं शक्तिके अनुसार ऐसे ही अतिथिकी पूजा करनी चाहिये ॥ २९ ॥ बुद्धिमान गृही अतिथिका गोत्र वेद शाखा

आचम्यचततःकुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ॥ मुहूर्तस्याष्टमंभागंमुदीक्ष्योह्यातिथिर्भवेत् ॥२६॥ अतिथिंतत्रसंप्राप्तमन्नाद्येनोदकेनच ॥ संपूजयेद्यथाशक्तिगंधपुष्पादिभिस्तथा ॥ २७ ॥ नमित्रमतिथिंकुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ॥ अज्ञातिकुलनामानंतत्कालसमुपस्थितम ॥२८॥ बुभुक्षुमागतंश्रांतंयाचमानमकिंचनम् ॥ ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्यःशक्तितो बुधैः ॥ २९ ॥ नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायंचापिपंडितः ॥ शोभनाशोभनाकारंतंमन्येतप्रजापतिम् ॥ ३० ॥ अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥ तस्मिंस्तृप्तेनृयज्ञात्तथा ऋणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ॥ ३१ ॥ तस्यादत्त्वातुयोभुंक्तेस्वयंकिल्बिषभुङ्नरः ॥ सपापंकेवलंभुंक्तेपुरीषंचान्यजन्मनि ॥ ३२ ॥ अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ॥ सदत्त्वादुष्कृतंतस्मैपुण्यमादायगच्छति ॥ ३३ ॥ अप्यंबुशाकदानेनयच्चाप्यश्नातिमस्वयम् ॥ पूजयेतनरःशक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ॥ ३४ ॥

अथवा स्वाध्यायका विषय कुछभी नहीं पूछे अतिथि सुन्दर वा कुरूप जिस प्रकारका क्यों न हो उसको मूर्तिमान प्रजा पतिस्वरूप विचारना चाहिये ॥ ३० ॥ नित्य अवस्थान न करनेके कारणही ऐसे अभ्यागतको अतिथि कहा जाता है. अतिथि की तृप्तिसाधन होनेपर गृही नृयज्ञ (अतिथियज्ञ) के ऋणसे मुक्ति लाभ करता है ॥ ३१ ॥ जो पुरुष अतिथिको विना दिये स्वयं भोजन करता है वह किल्बिष भोजी (पापभोगता है) केवल पापभोगी होता है तथा दूसरे जन्म में वह विष्ठा भोजन करता है ॥ ३२ ॥ अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौटता है वह उसका पुण्य लेकर अपना पाप उसे दे जाता है ॥ ३३ ॥ अतिथिको जल वा साक एवं जो स्वयं भोजन करे वह समर्पण करके

शक्तिके अनुसार सादर उसकी पूजा करे ॥ ३४ ॥ नित्य जल और अन्नादिद्वारा श्राद्ध और पितरोंके उद्देश्यसे एक वा बहुतसे ब्राह्मणोंको भोजन करावै ॥ ३५ ॥ अन्नका अग्रभाग तोड़कर ब्राह्मणको अर्पण करना चाहिये परिव्राजक और ब्रह्मचारीके माँगनेपर उसको भिक्षा दे ॥३६॥एक ग्रासको भिक्षाग्रासचतुष्टयको अग्र और अग्रचतुष्टयको हन्तकार कहा जाता है॥३७॥ अपने विभवके अनुसार हन्तकार वा अग्र अथवा भिक्षा विना दिये कभी स्वयं भोजन न करे ॥३८॥ अतिथिसत्कारके पीछे अभीष्ट ज्ञाति बन्धु याचक विकल बालक वृद्ध और आतुर इनको भोजन कराना चाहिये ॥३९॥ अन्य किसी अकिञ्चन पुरुषके क्षुधार्त होकर प्रार्थना करनेपर उसको भी आहार दे सम्पत्ति होनेपर समर्थ पुरुषको

कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ॥ पितॄनुद्दिश्यविप्रांश्च भोजयेद्विप्रमेववा ॥ ३५ ॥ अन्नस्याग्रंतदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ भिक्षांचयाचितांदद्यात्परिव्राड्ब्रह्मचारिणाम् ॥ ३६ ॥ ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्रंग्रासचतुष्टयम् ॥ अग्रंचतुर्गुणंप्राहुर्हंतकारंद्विजोत्तमाः ॥ ३७ ॥ भोजनंहंतकारंवाअग्रंभिक्षामथापिवा ॥ अदत्त्वातुनभोक्तव्यंयथाविभवमात्मनः ॥ ३८ ॥ पूजयित्वातिथीनिष्टाञ्ज्ञातीन्बंधूंस्तथार्थिनः ॥ विकलान्बालवृद्धांश्चभोजयेच्चातुरांस्तथा ॥ ३९ ॥ वांछतेक्षुत्परीतात्मायच्चान्योन्नमकिंचनः ॥ कुटुंबिनाभोजनीयःस्वसमंविभवेसति ॥ ४० ॥ श्रीमंतंज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ॥ सीदतायत्कृतंतेनतत्पापंससमश्नुते ॥ ४१ ॥ सायंचैषविधिःकार्यःपूर्वोक्तंतत्रचातिथिम् ॥ पूजयेच्चयथाशक्तिशयनासनभोजनैः ॥ ४२ ॥ एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यंभारमास्थितम् ॥ स्कंधेविधातादेवाश्चपितरश्चमहर्षयः ॥४३॥ श्रेयोभिवर्षिणःसर्वेभवंत्यतिथिबांधवाः ॥ पशुपक्षिमृगास्तृप्तायेचान्येसूक्ष्मकटिकाः ॥४४॥

भोजन कराना चाहिये ॥ ४० ॥ जो ज्ञाति श्रीमान्के विद्यमान होनेपर दुखी होती है जो पुरुष अवसन्नावस्थामें जिस पापका अनुष्ठान करता है श्रीमान् ज्ञातिकोभी उस पापके अंशका भागी होना पड़ता है॥४१॥संध्याकालमें भी इसी विधिका अनुष्ठान करै अतिथिके सूर्यमें आनेपर शक्तिके अनुसार शयन आसन और भोजन द्वारा उसकी पूजा करनी चाहिये ॥ ४२ ॥ हे तात ! इस प्रकार अपने कन्धेपर रक्खा हुआ गार्हस्थ्य भार वहन करनेसे विधातासे देवता पितर महर्षि ॥ ४३ ॥ अतिथि बान्धव एवं पशु पक्षी और सूक्ष्म कीट सबही अत्यन्त प्रसन्न होकर उसका कल्याण करते हैं ॥ ४४ ॥

हे महाभाग ! महाभाग अत्री इसके उपलक्षमें स्वयं जो गाथा गान करगये हैं तुम वह गृहस्थाश्रम संज्ञित गाथा सुनो ॥ ४५ ॥ यदि सम्पत्ति हो तो गृही पुरुष देव पितर अतिथि बन्धु ज्ञाति और गुरुकी पूजा करके ॥ ४६ ॥ श्वगण श्वपच और पक्षियोंके उद्देश्यसे भूतलमें अन्न प्रदान करे वैश्वदेव नामक यह बलिकर्म पूर्वाह्नमें और सायंकालमें करना चाहिये ॥ ४७ ॥ मांस अन्न शाक अथवा घरमें जो कुछ वस्तु विद्यमान हो वह नियमको पूरा किये विना स्वयं भोजन न करै ॥ ४८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां षट्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ मदालसा बोली कि, हे पुत्र ! गृहस्थके कर्त्तव्य कर्म तीन प्रकारके हैं नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमित्तिक इन तीनोंका विषय कहती हूं

गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायतः ॥ ताःशृणुष्वमहाभागगृहस्थाश्रमसंस्थिताः ॥ ४५ ॥ देवान्पितॄंश्चातिथींश्चतद्वत्संपूज्यबांधवान् ॥ जामयश्चगुरूंश्चैवगृहस्थोविभवेसति ॥ ४६ ॥ श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ॥ ॥ वैश्वदेवंहिनामैतत्कुर्यात्सायंतथादिने ॥ ४७ ॥ मांसमन्नंतथाशाकंगृहेयच्चोपसाधितम् ॥ नचतत्स्वयमश्नीयाद्विधिवद्यन्ननिर्वपेत् ॥ ४८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेपुराणेमदालसोपाख्यानेषड्विंशतितमोऽध्यायः ॥ २६ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ नित्यंनैमित्तिकंचैवनित्यनैमित्तिकं तथा ॥ गृहस्थस्यत्रिधाकर्मतन्निशामयपुत्रक ॥ १ ॥ पंचयज्ञाश्रितंनित्यंयदेतत्कथितंतव ॥ नैमित्तिकंतथाचान्यत्पुत्रजन्मक्रियादिकम् ॥ २ ॥ ॥ नित्यनैमित्तिकंज्ञेयंपर्वश्राद्धादिपंडितैः ॥ तत्रनैमित्तिकंवक्ष्येश्राद्धमाभ्युदयंतव ॥ ३ ॥ पुत्रजन्मनियत्कार्यंजातकर्मसमंनरैः ॥ विवाहादौचकर्त्तव्यंसर्वंसम्यक्क्रमोदितम् ॥ ४ ॥ पितरश्चात्रसंपूज्याःख्यातानांदीमुखास्तुये ॥ पिंडांश्चदधिसंमिश्रान्दद्याद्यवसमन्वितात् ॥ ५ ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवायजमानःसमाहितः ॥ वैश्वदेवविहीनंतत्केचिदिच्छंतिमानवाः ॥ ६ ॥

सुनो ॥ १ ॥ मैंने जिस पंचयज्ञाश्रित कर्मका विषय वर्णन किया उसकोही नित्य कहते हैं इसके अतिरिक्त पुत्रजन्म क्रियाको नैमित्तिक ॥ २ ॥ और पर्वश्राद्धादिको पंडितगण नित्य नैमित्तिक कर्म कहते हैं तिनमें प्रथम तुम्हरे निकट नैमित्तिक कर्मका विषय कहती हूं ॥ ३ ॥ पुत्रजन्मके समय मनुष्य जिसप्रकार जातकर्म करते हैं विवाहादिमेंभी क्रमानुसार समानरूपसे वैसेही करें ॥४॥ विवाहादि कार्यमें नांदीमुखनामक प्रसिद्ध पितरोंकी सम्यक् प्रकारसे पूजाकरे उसी समय यजमान सावधान हो पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर पितरोंके उद्देशसे यव और दधिमिश्रित

पिण्डसमर्पण करे. कोई कोई कहते हैं इसमें वैश्वदेव बलिके देनेकी आवश्यकता नहीं ॥५॥६॥ इसमें दो ब्राह्मणोंकी कल्पनापूर्वक प्रदक्षिणाकर अर्चना करें यहीं वृद्धिश्राद्धमें नैमित्तिक कहा गया है इसके अतिरिक्त मृत्युके दिन ॥ ७ ॥ जो एकोद्दिष्टनामक और्ध्वदेहिक नैमित्तिक कार्य सम्पादित होता है वह सुनो—इसमें किसी प्रकारका देव कर्म करना नहीं होता ॥ ८ ॥ तथा आवाहन वा अग्नौकरणभी नहीं हैं एकमात्र कुश प्रयोगकी ही विधि प्रतिपादित है. उच्छिष्टके निकट प्रेतके उद्देशसे एकमात्र पिण्डप्रदान करे ॥ ९ ॥ और उसका नामस्मरण करके अपसव्य हो तिलसहित जल प्रोक्षण करना चाहिये ॥ उस समय इसप्रकार कहे कि, "अमुक के उद्देश्यसे यह तिलसहित जलप्रदान करताहूं यह अक्षय हो और वह इस तिलोदकद्वारा परमप्रीति अनुभव और प्रदर्शन करें ॥ १० ॥ तब ब्राह्मण कहें कि "हमने प्रसन्नता अनुभवकरी" संवत्सरपर्यन्त

युग्माश्चात्र द्विजाः कार्यास्ते पूज्याश्च प्रदक्षिणम् ॥ एतन्नैमित्तिकं वृद्धौ तथान्यच्चौर्ध्वदैहिकम् ॥ ७ ॥ मृताहनितु कर्तव्यमेकोद्दिष्टं शृणुष्व तत् ॥ दैवहीनं तथैकार्घ्यं तथैवैकपवित्रकम् ॥ ८ ॥ आवाहनं न कर्त्तव्यमग्नौकरणवर्जितम् ॥ प्रेतस्य पिंडमेकं च दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥ ९ ॥ तिलोदकं चापसव्यं तन्नामस्मरणान्वितम् ॥ अक्षय्यममुकस्येति स्थाने विप्रविसर्जने ॥ १० ॥ अभिरम्यतामिति ब्रूयाद्ब्रूयुस्ते भिरताः स्मह ॥ प्रतिमासं भवेदेतत्कार्यमावत्सरान्नरैः ॥११॥ अथ संवत्सरे पूर्णे यदा वा क्रियते नरैः ॥ सपिंडीकरणं कार्यं तस्यापि विधिरुच्यते ॥ १२ ॥ तच्चापि दैवरहितमेकार्घ्यैकपवित्रकम् ॥ नैवाग्नौकरणं तत्र तच्चावाहनवर्जितम् ॥ १३ ॥ अपसव्यं च तत्रापि भोजयेदयुजो द्विजान् ॥ विशेषस्तत्र चान्योऽस्ति प्रतिमासं क्रियाधिकः ॥ १४ ॥

प्रतिमासमें ही इसी प्रकार अनुष्ठान करे ॥११॥ फिर संवत्सर काल पूरा होनेपर वा जिस समय उसके करनेकी विधि है उसी समय सपिंडीकरण करना चाहिये सपिण्डीकरणकी भी विधि कहती हूं सुनो ॥ १२ ॥ यह सपिण्डीकरणभी देवकार्यविहीन अग्नौकरणहीन और आवाहनहीन है, एकमात्र अर्घ्य और कुशप्रदानकी ही इसमें विधि प्रतिपादित है ॥१३॥ दक्षिण दिशामें प्रतिकूल दिशामें जलसहित पिण्डादि पूर्वोक्त विधानसे अर्पणकरके अयुग्म एक तीन पांचआदि ब्राह्मणोंको भोजन करना चाहिये पर्वश्राद्धादि ही नित्यनैमित्तिक कहागया है उसमें विशेष यही है कि, प्रतिमासमें अतिरिक्त कार्य करे ॥१४॥

वह भी कहती हूं एकाग्रचित्त होकर सुनो—हे वत्स। सतिल गन्धोदकयुक्त चारपात्र स्थापन करे ॥ १५ ॥ तिनमें तीन पितरोंके उद्देश्यसे और अपर एककी प्रेतके उद्देश्यसे कल्पना करनी चाहिये पितरोंके उद्देश्यसे स्थापित तीनों पात्रमें प्रेतपात्र और अर्घ्य प्रसेक करना चाहिये ॥ १६ ॥ फिर "ये समाना" इत्यादिमंत्र जपता हुआ पूर्व कथित प्रकारसे अवशिष्ट कार्य सम्पादन करे स्त्रियोंके उद्देश्यमेंभी इसीप्रकार एकोद्दिष्टकी विधि है ॥ १७ ॥ किन्तु पुत्रके न होनेमे उसका सपिण्डीकरण नहीं होता प्रतिसंवत्सरमें स्त्रीके उद्देश्य इसी भाँति नियमानुसार एकोद्दिष्ट करे ॥१८॥ पुरुषके समान स्त्रीकेभी मृदुदिनमें सामर्थ्यके अनुसार एकोद्दिष्ट करना चाहिये पुत्रके न होनेमें सपिंड

तंकथ्यमानमेकाग्रोवदंत्यामेनिशामय ॥ तिलगंधोदकैर्युक्तंकुर्यात्पात्रचतुष्टयम् ॥ १५ ॥ कुर्यात्पितॄणांतित्रयमेकंप्रेतस्यपुत्रक ॥ पात्रत्रयेप्रेतपात्रमर्घ्यंचैवप्रसेचयेत् ॥ १६ ॥ येसमानाइतिजपन्पूर्ववच्छेषमाचरेत् ॥ स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्॥ १७ ॥ सपिंडीकरणंतासांपुत्राभावेनविद्यते ॥ प्रति संवत्सरंकार्यमेकोद्दिष्टंनरैः स्त्रियाः ॥ १८ ॥ मृताहनियथान्यायंनृणांयद्वदिहादितम् ॥ पुत्राभावेसपिंडास्तुतदभावेसहोदकाः ॥ १९ ॥ मातुःसपिंडाये चस्युर्येप्येमातुःसहोदकाः ॥ कुर्युरेवंविधिसम्यगपुत्रस्यसुतासुतः ॥ ॥ २० ॥ कुर्युर्मातामहायैवंपुत्रिकास्तनयास्तथा ॥ द्व्यामुष्यायणसंज्ञास्तुमातामहपिता महान् ॥ २१ ॥ पूजयेर्यथान्यायंश्राद्धै नैमित्तिकैरपि ॥ सर्वाभावेस्त्रियःकुर्युःस्वभर्तॄणाममंत्रकम् ॥२२॥ तदभावेचनृपतिःकारयेत्स्वकुटुंबिना ॥ तज्जातीयैर्नरैःसम्यग्दाहाद्याः सकलाःक्रियाः ॥२३॥ सर्वेषामेववर्णानांबांधवोनृपतिर्यतः एतास्तेकथितावत्सनित्यानैमित्तिकाः क्रियाः ॥ २४ ॥

सपिण्डके अभावमें सहोदर ॥ १९॥ और जो माताका सपिण्ड है अथवा समानोदक और जो माताका दौहित्र (दौहता) है वह इस प्रकार कार्यानुष्ठान करे ॥२०॥ मातामहके उद्देश्यसे कन्याका पुत्र इस प्रकार कार्य करे ही "द्व्यामुष्यायण" कहते हैं नैमित्तिक श्राद्धद्वारा मातामह और पितामह और पितामहकी ॥२१॥ विधानानुसार पूजाकरे. सबके अभावमें स्त्रियें अपने अपने पतिका कार्य करें किन्तु इसमें किसी प्रकारसे किसी मंत्रका प्रयोग नहीं करना चाहिये॥२२॥यदि स्त्री भी न हो तो राजा मृत पुरुषके आत्मीयगणोंके द्वारा और सजातीय पुरुषोंके द्वारा उसकादाहादि संपूर्ण कर्म संपादन करे ॥२३॥ क्योंकि राजा सब वर्णोंका बांधव है. हे वत्स! यह मैंने तुमसे नित्य और नैमित्तिक विषय वर्णन किया ॥२४॥

अब श्राद्धाश्रित अन्य प्रकार नित्य नैमित्तिक क्रियाका विषय सुनो—चन्द्रमा का क्षयात्मक कालही दर्श अर्थात् अमावास्या कहा गयाहै, वह दर्शही इस विषयका निमित्त स्वरूप और सदा उसकी नित्यता सूचित करता है, इसकारण ही इसको नित्यनैमित्तिकी क्रिया कहते हैं ॥२५॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥ ॥ मदालसा बोली, हे वत्स ! सपिंडीकरणमें और पितृपिंडमें पिताके प्रपिता महका अधिकार नहीं है वह लेपभोजियो (लेपभागी जनों) में गिनने योग्य हैं ॥ १ ॥ जो उनमें चतुर्थस्थानीय और पुत्रका लेप अन्न भोजी हैं वह संबंधहीन हैं. वह उपभोगमात्रको प्राप्त होता है ॥२॥ पिता पितामह और प्रपितामह तीन जने पिंडसंबन्धी हैं ॥ ३ ॥

क्रियांश्राद्धाश्रयामन्यांनित्यनैमित्तिकींशृणु ॥ दर्शस्तत्रनिमित्तंवैकालश्चंद्रक्षयात्मकः ॥ नित्यतांनियतःकालस्तस्यसंसूचयत्यथ ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेमदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासनेगार्हस्थ्यकथनेनैमित्तिकादिश्राद्धकल्पोनामसप्तविंशोध्यायः॥२७॥ मदालसोवाच ॥ सपिंडीकरणादूर्ध्वंपितुर्यःप्रपितामहः ॥ सुतलेपभुजोयातिप्रलुप्तपितृपिंडकः ॥ १ ॥ तेषामन्यश्चतुर्थोयःपुत्रलेपभुजान्नभुक् ॥ सोपिसंबंधतोहीनमुपभोगंप्रपद्यते ॥ २ ॥ पितापितामहश्चैवतथैवप्रपितामहः ॥ पिंडसंबंधिनोह्येतेविज्ञेयाःपुरुषास्त्रयः ॥ ३ ॥ लेपसंबंधिनश्चान्येपितामहपितामहात् ॥ प्रभृत्युक्तास्त्रयस्तेषांयजमानश्चसप्तमः ॥ ४ ॥ इत्येषमुनिभिःप्रोक्तःसंबंधःसातपौरुषः ॥ यजमानात्प्रभृत्यूर्ध्वमनुलेपभुजस्तथा ॥ ५ ॥ ततोन्येपूर्वजाःस्वर्गेयेचान्येनरकौकसः ॥ येचतिर्यक्त्वमापन्नायेचभूतादिसंस्थिताः ॥ ६ ॥ तान्सर्वान्यजमानोवैश्राद्धंकुर्वन्यथाविधि ॥ समाप्याययतेवत्सयेनयेनशृणुष्वतत् ॥ ७ ॥ अन्नप्रकिरणंयत्तुमनुष्यैःक्रियतेभुवि ॥ तेनतृप्तिमुपायांतियेपिशाचत्वमागताः॥८॥यदंबुस्नानवस्त्रोत्थंभूमौपततिपुत्रक ॥ तेनयेतरुतांप्राप्तास्तेषांतृप्तिःप्रजायते ॥९॥

पितामहके पितामहसे तीन पुरुष लेप संबंधी हैं उनमें यजमान सप्तम हैं ॥ ४ ॥ मुनियोंने इसप्रकारसे सात पुरुषका संबंध स्थिर किया है यजमानसे ऊपरके पुरुष अनुलेपसंबंधी हैं ॥ ५ ॥ स्वर्गवासी पूर्ववासी पूर्व पुरुषगण और नरकवासी अपरापर सब पुरुष और जो तिर्यग् योनिगत और भूतादिमें स्थित हुए हैं ॥ ६ ॥ यजमान जिस जिस प्रकारके विधानानुसार श्राद्ध करके उनकी तृप्ति साधना करे. हे वत्स ! उसका वर्णन करती हूं सुनो ॥ ७ ॥ मनुष्य पृथ्वीतलमें जो अन्न बखेरते हैं उससे पिशाच योनिप्राप्त पुरुषों की तृप्ति होती है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! स्नानके वस्त्रसे

निचोड़ा जो जल पृथ्वीमें गिरता है उससे वृक्षयोनि प्राप्त पुरुषोंकी तृप्ति होती है ॥९॥ वंशमें जिन्होंने देवत्व लाभ किया है गात्रसे जो जलकी बूँदें पृथ्वीमें गिरती हैं उनसे वह तृप्त होते हैं ॥१०॥ पिण्ड उठानेके समय जो अन्न पृथ्वीमें गिरताहै तिर्यग्योनिगत पूर्व पुरुषगण उससे तृप्त होते हैं ॥ ११ ॥ जिन पुरुषोंने क्रियाके योग्य होकर भी असंस्कृत अवस्था और बाल्यवयसमें दग्ध होकर जीवन परित्याग किया है, विकीर्ण अन्न और बुहारे जलको भोजन करनेसे वह तृप्त होते हैं ॥ १२ ॥ ब्राह्मण भोजन करनेके पीछे आचमनके समयमें जो जल फेंक देते हैं और उनके चरण धोनेके समय जो जल पृथ्वीमें गिरता है, अन्यान्य सब उसको ही पान करके तृप्त होते हैं ॥ १३ ॥ हे वत्स ! जो पिशाचत्वको

यास्तुगात्रांबुकणिकाःपतंतिधरणीतले ॥ ताभिराप्यायनंतेषांयेदेवत्वंकुलेगताः ॥ १० ॥ उद्धृतेष्वथपिंडेपुयाश्चान्नकणिकाभुवि ॥ ताभिराप्यायनंतेषांयेतिर्यक्त्वंकुलेगताः ॥ ११ ॥ येवादग्धाःकुलेबालाःक्रियायोग्याह्यसंस्कृताः ॥ विपन्नास्तेन्नविकिरसंमार्जनजलाशिनः ॥ १२ ॥ भुक्त्वाचाचामतांयच्चजलंयच्चांघ्रिशोधने ॥ ब्राह्मणानांतथैवान्येतेनतृप्तिंप्रयांतिवै ॥ १३ ॥ पिशाचत्वमनुप्राप्ताः क्रिमिकीटत्वमेवये ॥ एवंयोयजमानस्ययश्चतेषांद्विजन्मनाम् ॥ १४ ॥ कश्चिज्जलान्नविक्षेपःशुचिरुच्छिष्टएववा ॥ तेनतेनकुलेतत्रतत्तद्योन्यंतरंगताः ॥ १५ ॥ प्रयांत्याप्यायनंवत्ससम्यक्श्राद्धक्रियावताम् ॥ अन्यायोपार्जितैरर्थैर्यच्छ्राद्धंक्रियतेनरैः ॥ १६ ॥ तृप्यंतेतेनचंडालपुल्कसाद्यासुयोनिषु ॥ एवमाप्यायनंवत्सबहूनामपिबांधवैः ॥ १७ ॥ श्राद्धंकुर्वद्भिरन्नांबुशाकैरपिहिजायते ॥ तस्माच्छ्राद्धंनरोभक्त्याशाकैरपियथाविधि ॥ १८ ॥

प्राप्त हुए हैं तथा जो कृमि कीट पनेको प्राप्त हुए हैं जो यजमान उन ब्राह्मणोंके निमित्त ॥ १४ ॥ पवित्र वा अपवित्र जल छोड़ता है, उस उस जलसे वे योन्यन्तरको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ अच्छी प्रकार श्राद्ध करनेसे सम्यक् प्रकार तृप्त होते हैं. जो मनुष्य अन्यायके द्वारा उपार्जित किये धनसे श्राद्ध करता है ॥ १६ ॥ चांडाल और पुल्कसादि योनिगत पितर उसके द्वारा तृप्त होते हैं. हे वत्स ! इसप्रकारसे बान्धवगण ॥ १७ ॥ श्राद्धानुष्ठानपूर्वक जो जलबिन्दु और अन्नप्रदान करते हैं, उससे उनके अनेक पितृ पुरुषों की तृप्ति होती है.इसप्रकार भक्तिमान् होकर शाक द्वारा भी यथाविधि श्राद्ध करना चाहिये ॥ १८ ॥

श्राद्धका अनुष्ठान करनेमे उसके वंशमें हुए किसीको भी अवसन्न होना नहीं पड़ता. हे वत्स ! अब मैं श्राद्धका नित्यनैमित्तिक काल वर्णन करती हूं ॥ १९ ॥ और जिस विधिके अनुसार श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये वह भी कहती हूं. सुनो--प्रति महीने जब चन्द्रमाका क्षय होता है, उसी अमावास्यामें विधानानुसार श्राद्ध करना उचित है ॥ ॥ २० ॥ इनके अतिरिक्त पौषमासादिकी कृष्णाष्टमीमें भी श्राद्धकरना अवश्य कर्त्तव्य है, अब श्राद्धका अच्छा अच्छा काल कहती हूं श्रवणकरो- यदि श्रेष्ठ ब्राह्मण प्राप्त होजाय तो सूर्य और चन्द्र ग्रहणकालमें अयनमें ॥ २१ ॥ विषुव समय (विषवती) में रविसंक्रमणमें व्यतीपातमें श्राद्धोपयुक्त वस्तु प्राप्त होनेपर दुःस्वप्न देखनेमें

कुर्वीतकुर्वतःश्राद्धंकुलेकश्चिन्नसीदति ॥ तस्यकालानहंवक्ष्यनित्यनैमित्तिकात्मकान् ॥ १९ ॥ विधिनायेनचनरैःक्रियतेतन्निबोधमे ॥ कार्यंश्राद्धममावास्यांमासिमास्युडुपक्षये ॥२०॥ तथाष्टकास्वप्यवश्यमिष्टकालान्निबोधमे ॥ विशिष्टब्राह्मणप्राप्तौसूर्येंदुग्रहणेऽयने ॥ ॥२१॥ विषुवद्रविसंक्रांतिव्यतीपातेषुपुत्रक ॥ श्राद्धार्हद्रव्यसंपत्तौतथादुःस्वप्नदर्शने ॥२२॥ जन्मर्क्षग्रहपीडासुश्राद्धंकुर्वीतचेच्छया ॥ विशिष्टःश्रोत्रियोयोगीवेदविज्ज्येष्ठसामगः ॥२३॥ त्रिणाचिकेतःश्रुतवान्विहितव्रतकारकः ॥ त्रिणाचिकेतस्त्रिमधुस्त्रिसुपर्णःषडंग वित् ॥२४॥ दौहित्रऋत्विक्जामातास्वस्रीयःश्वशुरस्तथा ॥ पंचाग्निकर्मनिष्ठश्चतपोनिष्ठोथमातुलः ॥ २५ ॥ मातापितृपरश्चैव शिष्यसंबंधिबांधवाः ॥ एतेद्विजोत्तमाःश्राद्धेसमस्ताःकेतनक्षमाः ॥२६॥ अवकीर्णीतथारोगीन्यूनांगस्त्वाधिकांगकः॥पौनर्भवस्त थाकाणःकुंडोगोलोथपुत्रक ॥ २७ ॥

॥ २२ ॥ जन्म नक्षत्रमें और ग्रहपीडा संघटित होनेपर इच्छापूर्वक श्राद्धका अनुष्ठान करे. जो पुरुष श्रेष्ठ भावसम्पन्न श्रोत्रिय योगी वेदज्ञ ज्येष्ठ सामगाने वाले ॥२३॥ नाचिकेताप्रणीत तीन उपनिषद्के उपासक त्रिमधु त्रिसुपर्ण और षडङ्गवेत्ता हैं॥२४॥जो पुरुष दौहित्र ऋत्विक् जामाता भगिनीपुत्र और श्वशुर हैं जो पुरुष पंचाग्निकर्मनिष्ठ और तपःपरायण हैं जो पुरुष मातुल (मामा)॥२५॥ जो माता पिताका भक्त है जो शिष्ट संबन्धी और बान्धव है ऐसा उत्तम ब्राह्मण ही श्राद्धका उपयुक्त पात्र है ॥ २६ ॥ अवकीर्णी (ब्रह्मचर्यादिरहित) रोगी स्थूलाङ्ग हीनाङ्ग दोविवाहिताके गर्भसे उत्पन्न एकचक्षु कुण्ड (जीवितभर्तृकाका गर्भजात जारजपुत्र) गोलक (पतिके मरनेपर औरसे उत्पन्न कुपुत्र) ॥२७॥

बन्धु द्रोही कुनखी क्लीब कालेदांतवाला निराकृति (हीना कृति) पिताके द्वारा शापित क्रूर सोमविक्रयी (शराब बेचनेवाला) ॥ २८ ॥ कन्यादूषयिता वेदव्यवसायी गुरु वा पितृत्यागी भृतकाध्यापक (वेतनग्रहणपूर्वक अध्यापनकारी) अमित्र परपूर्वापति (जो नारी पहिले दूसरेकी स्त्री थी उसका स्वामी) ॥२९॥ देवत्यागी अग्नित्यागी शूद्रीपति (बारह वर्षकी अनूढ़ा ऋतुमती स्त्रीका पति) दूषयित और अपराग गर्हित कर्म्मके अनुष्ठान करनेवाले ब्राह्मणको पितृकर्ममें परित्याग करे ॥ ३० ॥ श्राद्धके पहिले दिन पूर्वकथित ब्राह्मणश्रेष्ठको निमंत्रण करना चाहिये क्या देवकार्य क्या पितृकार्य दोनों कार्योंमेंही उसको ब्राह्मण करना चाहिये ॥ ३१ ॥ जो श्राद्धका अनुष्ठान करे उसको समयपूर्वक रहना चाहिये

मित्रध्रुक्कुनखीकुष्ठीश्यावदंतोनिराकृतिः ॥ अभिशस्तस्तथास्तेयःपिशुनःसोमविक्रयी ॥ २८ ॥ कन्यादूषयितावेद्योगुरुपित्रोस्त[illegible] ज्झकः ॥ भृतकाध्यापकोमित्रंपरदुष्टापतिस्तथा ॥ २९ ॥ वेदोज्झश्चाग्निसंत्यागीवृषलापत्यदूषितः ॥ तथान्येचनिकर्मस्थावर्ज्याः पैत्र्येषुवैद्विजाः ॥ ३० ॥ निमंत्रयतपूर्वेद्युःपूर्वोक्तान्द्विजसत्तमान् ॥ दैवेनियोगे[illegible]पकल्पयेत ॥ ३१ ॥ [illegible] भोक्ष्यंयश्चश्राद्धंकरिष्यति ॥ श्राद्धंदत्त्वाचभुक्त्वाचमैथुनंयोनुगच्छति ॥ ३२ ॥ [illegible] पितंश्राद्धेयोभुंक्तेयस्तुगच्छति ॥ ३३ ॥ रेतोमूत्रकृताहारास्तंमासंपितरस्त[illegible] ॥ तस्मा[illegible] ॥ ३४ ॥ अप्राप्तौतद्दिनेचापिवर्ज्यायोषित्प्रसंगिनः ॥ भिक्षार्थमागतान्वापिकालेसंयमिनोयतीन् ॥ ३५ ॥ भोजयेत्प्र[illegible] नसः ॥ यथैवशुक्लपक्षाद्धिपितॄणामसितःप्रियः ॥ ३६ ॥

जो पुरुष श्राद्धकर और श्राद्ध भक्षण करके मैथुन करता है ॥ ३२ ॥ उसके पित[illegible] एक महीनेतक उस शुक्रमें शयन करते हैं जो पुरुष नारी संग करके श्राद्धमें आहार वा गमन करता है ॥ ३३ ॥ उन दोनोंके पितृपुरुष एकमासतक शुक्र और मूत्रपान करके स्थिति करते हैं [illegible] पुरुष प्रथम पूर्वदिनमें निमन्त्रण करे ॥ ३४ ॥ कार्यके दिन ब्राह्मणके न मिलनेपरभी नारीसंगीको कभी ब्राह्मणपदमें नियुक्त न करे यथासमय भिक्षार्थ अभ्यागत संयमी यतीको ॥ ३५ ॥ प्रणामादि द्वारा प्रसन्न करके संयत चित्तमे भोजन करावे शुक्लपक्ष की अपेक्षा कृष्णपक्ष जिस प्रकार पितरोंको प्रिय है ॥ ३६ ॥

इसीप्रकार पूर्वाह्णकी अपेक्षा अपराह्ण ही उनके अधिक सन्तोषका कारण है घर आये हुए ब्राह्मणसे स्वागत पूछ भलीभाँति उसकी अर्चना करके॥३७॥कुश हाथ में लिये उसको आसनपर बैठाले पितृकार्यमें अयुग्म और देवकार्यमें युग्म ब्राह्मण श्रेष्ठकोही वरण करना चाहिये ॥३८॥ अथवा अपनी सामर्थ्यके अनुसार प्रतिकर्ममें एक ब्राह्मणको वरण करे मातामहके पक्षमें भी इसी प्रकार विधि वा वैश्वदेवविधि निर्दिष्ट है ॥ ३९ ॥ कोई कोई मनुष्य पृथक् प्रकारसे व्यवस्थाकी इच्छा करते हैं पूर्वमुख होकर देवकार्य एवं उत्तरमुख होकर पितृकार्य ॥४०॥और मातामहका कार्य समापन करे. मनीषिगणोंने इसी प्रकार विधि निरूपित करी है इसी समयमें आसनके लिये कुश प्रदान करे और अर्घ्या

तथापराह्णःपूर्वाह्णात्पितृणामतिरिच्यते ॥ संपूज्यस्वागतेनैतानभ्युपेतान्गृहेद्विजान् ॥ ३७ ॥ पवित्रपाणिराचांतानासनेपूपवेशयेत् ॥ पितॄणामयुजःकामंयुग्मान्दैवेद्विजोत्तमान् ॥३८॥ एकैकंवापितॄणांचदेवानांचस्वशक्तितः ॥ तथामातामहानांचतुल्यंवावैश्वदेविकम् ॥ ॥ ३९ ॥ पृथक्तयोस्तथाचान्येकेचिदिच्छंतिमानवाः ॥ प्राङ्मुखान्दैवसंकल्पान्पित्र्यान्कुर्यादुदङ्मुखान् ॥ ४० ॥ तथामातामहानांचविधिरुक्तोमनीषिभिः ॥ विष्टरार्थंकुशान्दत्त्वासंपूज्यार्घ्यादिनाततः ॥ ४१ ॥ पवित्रकाणिदत्त्वावैतेभ्योनुज्ञामवाप्यच ॥ कुर्यादावाहनंप्राज्ञोदेवानांमंत्रतोद्विजः ॥ ४२ ॥ यवांभोभिस्ततश्चार्घ्यंदत्त्वावैवैश्वदेविकम् ॥ गंधमाल्यादिधूपंचदत्त्वासम्यक्सदीपकम् ॥ ४३ ॥ अपसव्यंपितॄणांचसर्वमेवोपकल्पयेत् ॥ दर्भांश्चद्विगुणान्दत्त्वातेभ्योनुज्ञामवाप्यच ॥ ४४ ॥ मंत्रपूर्वंपितॄणांच कुर्यादावाहनंबुधः ॥ अपसव्यंतथैवार्घ्यंयवार्थंचतथातिलैः ॥ ४५ ॥ निष्पादयेन्महाभागपितॄणांप्रीणनेरतः ॥ अग्नौकार्यमनुज्ञातः कुरुष्वेति ततोद्विजैः ॥ ४६ ॥

दिसे पूजा करे॥४१॥फिर पवित्रकादि अर्पण पूर्वक अभ्यागत ब्राह्मणकी आज्ञाले मंत्रपाठसहित देवताओंको आवाहन करना चाहिये॥४२॥यवसंयुक्त जलद्वारा विश्वेदेवके उद्देश्यसे अर्घ्यप्रदानपूर्वक गंध माल्य धूप दीप ॥ ४३ ॥ और जलदान करके दक्षिण दिशामें पितरोंका समस्त कर्म सम्पादन करे तदनन्तर द्विगुणदर्भ प्रदानपूर्वक उसकी आज्ञाले॥४४॥मन्त्रोच्चारण सहित पितरोंका आवाहन करना चाहिये॥हे महाभाग!इसी समय पितरोंके प्रीति विधानमें निरत होकर अपसव्यही दक्षिण दिशामें यवार्थ तिलयुक्त अर्घ्यप्रदान करे. इसके पीछे ब्राह्मणोंकी अग्नि कार्य करो इसप्रकार

आज्ञा पाय॥४५॥४६॥अग्निमें विधानानुसार व्यञ्जन और क्षार रहित अन्नकी आहुति देनी चाहिये "अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा" अर्थात जो कव्य वहन करते हैं उसी अग्निको प्रसन्न करनेके लिये मैं यह अन्न प्रदान करता हूं यह वचन उच्चारण करके प्रथम आहुति दे ॥ ४७॥ फिर "सोमाय वै पितृमते स्वाहा"इसप्रकार वचन उच्चारण सहित दूसरी आहुति देनी चाहिये इसके पीछे "यमायप्रेतपतयेस्वाहा" यह वचन उच्चारण करके तीसरी आहुतिदे ॥ ४८ ॥ होमके अन्तमें जो अवशिष्ट रहे वह ब्राह्मणोंके पात्रमें प्रदान करे उसी समय आप यथासुखसे "यह अन्न भोजन कीजिये" मधुर वचनसे यह बात कहे तब ब्राह्मण मौनभावसे तद्गत चित्तहो यथा सुखसहित वह भोजन करें ॥ ४९ ॥ ५० ॥ जो अन्न

जुहुयाद्व्यंजनक्षारवर्जमन्नंयथाविधि ॥ अग्नयेकव्यवाहनायस्वाहेतिप्रथमाहुतिः ॥ ४७ ॥ सोमायवैपितृमतेस्वाहेत्यन्यानथाभवेत ॥ यमायप्रेतपतयेस्वाहेतित्रितीयाहुतिः ॥ ४८ ॥ हुतावशिष्टंदद्याच्चभाजनेपुद्विजन्मनाम् ॥ भाजनालंभनंकृत्वादत्वाचान्नंयथाविधि ॥ ४९ ॥ यथासुखंजुषध्वंभोइतिवाच्यमनिष्ठुरम् ॥ भुंजीरंश्चततस्तेपितच्चित्तामौनिनःसुखम ॥ ५० ॥ यद्यदिष्टतमंतेषांतत्त दन्नमसत्वरम् ॥ अक्रुध्यंश्चनरोदद्यात्संस्तवेनप्रलोभयेत ॥ ५१ ॥ रक्षोघ्नांश्चजपेन्मंत्रांस्तिलैश्चावकिरेन्महीम ॥ सिद्धार्थकै श्चरक्षार्थंश्राद्धंहिप्रचुरच्छलम् ॥५२॥ पृष्टैस्तृप्तैश्चतृप्ताःस्थतृप्ताःस्मइतिवादिभिः ॥ अनुज्ञातोनरस्त्वन्नंविकिरेद्भुविसर्वतः ॥५३॥ तद्वदाचमनार्थायदद्याद्भःसकृत्सकृत् ॥ अनुज्ञांचततःप्राप्ययतवाक्कायमानसः ॥ ५४ ॥ सतिलेनततोन्नेनपिंडान्सर्वेणपुत्रक ॥ पितृनुद्दिश्यदर्भेषुदद्यादुच्छिष्टसंनिधौ ॥ ५५ ॥

उनको प्रिय हो क्रोधपरित्यागपूर्वक धीरे धीरे उनको सम्भवानुसार प्रलोभित करके वही प्रदान करना चाहिये॥५१॥ रक्षोघ्नमंत्र जपकरके समस्त भूमिमें तिल बखेरे रक्षाके निमित्त सरसोंभी बखेरना चाहिये क्योंकि श्राद्ध स्वतःही अनेक छिद्र पूर्ण है॥५२॥अनन्तर आप पूछे तब द्विजनके अन्न भोजन करके "तृप्तहुए ?" यह वचन उच्चारण करनेपर ब्राह्मणभी "तृप्ताः स्मः" अर्थात् "तृप्तहुए" इस प्रकार कहें, तब उनकी आज्ञा ग्रहण कर भूमितलमें सर्वत्र अन्न बखेरना चाहिये ॥ ५३ ॥ और आचमनार्थ विधानानुसार एक एक वार जल प्रदान करे फिर आज्ञा ग्रहणकर संयत वाक्य संयत मन और संयतकायहो ॥ ५४ ॥ तिल सहित अन्नसे पिण्ड बनाय दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे कुशाओंके ऊपर उच्छिष्टके

निकट अर्पण करे ॥५५॥ तिससमय सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे भक्तिपूर्वक पितृतीर्थ योगमें उनको जलदान करे ॥ ५६ ॥ यह मातामहके उद्देश्यसे भी इसी विधानानुसार पिण्ड समर्पण करके गन्धमाल्यादि समन्वित आचमन प्रदान करे ॥ ५७ ॥ अनन्तर अपनीशक्तिके अनुसार दक्षिणा देकर उनसे सुस्वधास्तु इत्यादि मंत्र पाठ करावे जब वह प्रसन्न होकर उस मंत्रका पाठ करें तो उनके द्वारा "हे विश्वदेव ! ॥ ५८ ॥ आप संतुष्ट हो आपका श्रेयःसाधन अर्थात् कल्याण हो इत्यादि वैश्वदेविक मंत्रपाठ करावे. जब मंत्रका पाठ कर चुकें तब उनके समीप आशीर्वादको प्रार्थना करनी चाहिये ॥ ५९ ॥ अनन्तर प्रिय वचन कह सबको भक्तिसहित प्रणाम कर विदा दे बिदाके समय द्वारदेश

पितृतीर्थेनतोयंचदद्यात्तेभ्यःसमाहितः ॥ पितॄन्संचिंत्यतद्भक्त्यायजमानोनृपात्मज ॥ ५६ ॥ तद्वन्मातामहानांचदत्त्वापिंडन्यथाविधि ॥ गंधमाल्यादिसंयुक्तान्दद्यादाचमनंततः ॥ ५७ ॥ दत्त्वाचदक्षिणांशक्त्यासुस्वधास्त्वितितान्वदेत ॥ तैश्चतुष्टैस्तथेत्युक्त्वावाचयेद्वैश्वदैविकान् ॥ ५८ ॥ प्रीयंतामितिभद्रंवोविश्वेदेवाइतीरयेत ॥ तथेतिचोक्तेतैर्विप्रैःप्रार्थनीयास्तदाशिषः ॥ ५९ ॥ विसर्जयेत्प्रियाण्युक्त्वाप्रणिपत्यचभक्तितः ॥ आद्वारमनुगच्छेच्चआगच्छेच्चानुमोदितः ॥ ६० ॥ ततोनित्यक्रियांकुर्याद्भोजयेच्चतथातिथीन् ॥ नित्यक्रियांपितृणांचकेचिदिच्छंतिसत्तमाः ॥ ६१ ॥ नपितृणांतथैवान्येनेपंपूर्ववदाचरेत् ॥ पृथक्पाकेनचेत्यन्येकेचित्पूर्वंतपूर्ववत् ॥ ॥ ६२ ॥ ततस्तदन्नंभुंजीतसहभृत्यादिभिर्नरः ॥ एवंकुर्वीतधर्मज्ञःश्राद्धंपित्र्यंसमाहितः ॥ ६३ ॥ यथावाद्विजमुख्यानांपरितोषोभिजायते ॥ त्रीणिश्राद्धेपवित्राणिदौहीत्रंकुतुपस्तिलाः ॥ ६४ ॥

पर्यन्त उनका अनुगमन करना चाहिये, उनके अनुमोदन करनेपर लौट आवे ॥ ६० ॥ अन्तमें नित्य क्रिया करके अतिथिगणोंको भोजन दे कोई कोई पुरुष पितरोंके नित्य क्रिया करनेकी इच्छा करते हैं ॥ ६१ ॥ कोई कोई इसके विरुद्ध मत प्रकाश करते हैं, परन्तु अवशिष्ट कर्म पूर्ववत् समापन करे. किसी किसीके मतसे पृथक् पाकपूर्वक पितृकार्य करनेकी आवश्यकता नहीं होती और किसीके मतसे पृथक् पाक करना चाहिये ॥ ६२ ॥ फिर वह अन्न भृत्यगणके सहित भोजन करे. हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारसे अथवा जिसके द्वारा ब्राह्मणोंका सन्तोष हो, उसीप्रकार

सावधान हो पितरोंके उद्देश्यसे श्राद्धका अनुष्ठान करना चाहिये दौहित्र कुतप[1] और तिल श्राद्धमें यह तीन पवित्र हैं॥६३॥६४॥ और कोपमार्गमें भ्रमण एवं त्वरा यह तीन वर्जित हैं ब्राह्मणश्रेष्ठों ने इसप्रकार निरूपण किया है. हे पुत्र ! श्राद्धमें रजत (चाँदी) पात्र श्रेष्ठ है ॥६५॥ रौप्य दान वा रौप्य दर्शन करना अवश्य उचित है । इसप्रकार सुना है कि, पितरों ने रौप्य पात्रमें व सुमतीसे स्वधारूपी दुग्धपान किया था ॥ ६६ ॥ इसी कारण रौप्य पितरोंका अभीष्ट और प्रीतिवर्द्धक है ॥ ६७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ मदालसा बोली हे पुत्र ! अनन्तर पितरों की प्रीति संपादन करनेके लिये भक्तिपूर्वक जो जो आहरण करना चाहिये एवं जो वर्जित है और

वर्ज्यानिचाहुर्विप्रेन्द्राःकोपोध्वगमनंत्वरा ॥ राजतंचतथापात्रंशस्तंश्राद्धेषुपुत्रक ॥ ६५ ॥ रजतस्यतथाकार्यंदर्शनंदानमेववा ॥ राजतेहिस्वधादुग्धापितृभिःश्रूयतेमही ॥ ६६ ॥ तस्मात्पितॄणांरजतमभीष्टंप्रीतिवर्धनम् ॥ ६७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामाष्टविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥ मदालसोवाच ॥ अतःपरंशृणुष्वेमंपुत्रभक्त्यायदाहृतम ॥ पितॄणांप्रीतयेयद्यद्वर्ज्यंवाप्रीतिकारकम् ॥ १ ॥ मासंतृप्तिःपितॄणांचहविष्यान्नेनजायते ॥ मासद्वयंमत्स्यमांसैस्तृप्तिंयांतिपितामहाः ॥ २ ॥ त्रीन्मासान्हारिणंमांसंविज्ञेयंपितृतृप्तये ॥ पुष्णातिचनुरोमासाञ्छशस्यपिशितंपितॄन् ॥ ३ ॥ शाकुनंपंचवैमासान्षण्मासान्सूकरामिषम् ॥ छागलंसप्तवैमासानैणेयंचाष्टमासिकीम् ॥ ४ ॥

जिससे वह प्रसन्न होते हैं, वह कहती हूं सुनो ॥ १ ॥ हविष्यान्नसे वह एक महीने तृप्त रहते हैं. मत्स्य, मांस द्वारा पितामहगण दो महीने तक तृप्त रहते हैं ॥२ ॥ हरिणका मांस उनको तीन महीने तृप्त रखता है, खरगोशके मांससे चार महीने उनका पोषण होता है ॥ ३ ॥ पक्षीके मांस द्वारा पांच महीने, सूकरके मांससे छै महीने, वार्ध्रीणस * के मांससे सात महीने, ऐण मृगके मांससे आठ महीने ॥ ४ ॥

---

१ कुतप–दिनके पंचदश भागका अष्टमांश । * "त्रिपिबन्तु द्रुत क्लीबं श्वेतं वृद्धमजापतिम् ॥ वार्ध्रीणसन्तुतं प्राहुर्मुनयो यज्ञ कर्मणि" ॥ अर्थात् जो श्वेत वर्ण, (नपुंसक किया) और वृद्ध जिस बकरेके जलपान समयमें दोनोंकान और नासिका जलमें डूबती है उसको "वार्ध्रीणस" कहते हैं । मुनियोंके मतसे यह श्राद्धादिमें अति प्रशस्त है ।

रुरु मृगके मांससे नौ महीने और गवयके मांससे दश महीने तक पितृगण तृप्ति लाभ करते हैं इसमें संशय नहीं ॥ ५ ॥ और भ्रमांस ग्यारह महीने, तक पितरोंका तृप्तिप्रद है, गव्य दुग्ध और खीर द्वारा सम्वत्सर तक,उनको तृप्ति लाभ होता है ॥ ६ ॥ गेंडार--मांस (लोह) काल शाक, मधु, दौहित्रका दिया आमिष वा निजवंशोद्भव अन्य जिस किसी पुरुषका दियाहुआ मांस ॥ ७ ॥ एवं गौरीसुत और गयाश्राद्ध, हे पुत्र ! इन सबके द्वारा वह अनन्त तृप्तिलाभ करते हैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ८ ॥ समा, राजश्यामक, पसाईके चावल, नीवार और पौष्कल, यह तीनों धान्य पितरोंको परमप्रसन्नता दायक हैं ॥ ९ ॥ इनके अतिरिक्त यवव्रीहि, गेहूं, तिल, मूंग, सरसों, प्रियंगू कोविदार और निष्पाव,

करोतितृप्तिंनववैरुरोर्मांसंनसंशयः ॥ गवयस्यामिषंतृप्तिंकरोतिदशमासिकीम् ॥ ५ ॥ तथैकादशमासांस्तुऔरभ्रंपितृतृप्तिदम् ॥ संवत्सरंतथागव्यंपयःपायसमेववा ॥ ६ ॥ वार्ध्रीणसामिषंलोहंकालशाकंतथामधु ॥ दौहित्रामिषमन्यच्चदत्तमात्मकुलोद्भवैः ॥ ७ ॥ अनंतांवैप्रयच्छंतितृप्तिंगौरीसुतस्तथा ॥ पितृणांनात्रसंदेहोगयाश्राद्धंचपुत्रक ॥ ८ ॥ राजश्यामाकौतद्वच्चैवप्रशांतिका ॥ नीवाराःपौष्कराश्चैववन्यानिपितृतृप्तये ॥ ९ ॥ यवव्रीहिसगोधूमतिलमुद्राःससर्षपाः ॥ प्रियंगवःकोद्रवाश्चनिष्पावाश्चातिशोभनाः ॥ ॥ १० ॥ वर्ज्यामर्कटकाःश्राद्धेराजमाषास्तथाणवः ॥ विप्रूषिकामसूराश्चश्राद्धकर्मणिगर्हिताः ॥ ११ ॥ लशुनंगृंजनंचैवपलांडुः पिंडमूलकम् ॥ करंभंयानिचान्यानिहीनानिरसवर्णतः ॥ १२ ॥ गांधारिकमलांबूनिलवणान्यूषराणिच ॥ अरक्तायेचनिर्यासाः प्रत्यक्षलवणानिच ॥ १३ ॥ वर्जयेत्तानिवैश्राद्धेयच्चावचानशस्यते ॥ यच्चाप्युत्कोचतःप्राप्तंपतिताद्यदुपार्जितम् ॥ १४ ॥

यह सब भी उनके अत्यन्त तृप्तिजनक हैं ॥ १० ॥ और मकई, राजमाष (लोबिया) विप्रूषी और मसूर श्राद्धकर्ममें यह सब द्रव्य गर्हित कहे गये हैं, अतएव इन सबको श्राद्धकर्ममें त्याग दे ॥ ११ ॥ लहसन, गाजर, प्याज, पिंड मूलक (मूली) करंभ तथा वर्णहीन और रसहीन अन्यान्य वस्तु ॥ १२ ॥ गंधारिका (कचूर) अलाबु (तुंबी) खारी लवण, लालगोंद और प्रत्यक्ष लवण ॥ १३ ॥ श्राद्धमें यह सब द्रव्य भी वर्जित हैं, वाणीसे गर्हित अर्थात् जिस वस्तुका उच्चारण श्रेष्ठ न हो और उत्कोचसे प्राप्त हो, या पतितका आया हुआ धन ॥ १४ ॥

और अन्यायसे आया हुआ तथा घृणित कन्या शुल्क द्वारा लब्ध द्रव्य अर्थात् कन्यापर लिया हुआ द्रव्य इत्यादिका भी त्याग करे. दुर्गन्ध पूर्ण और फेनयुक्त जल, तथा अल्प जल ॥ १५ ॥ और जिससे गौकी तृप्ति नहीं हो सकती वा बासी जल या अपेय जल अथवा अभोज्योंके बनाये कूपादिका जल ॥ १६ ॥ हे तात! ऐसा जल भी पितृकार्यमें सर्वथा त्याग दे । मृग, ऊंट, बकरी और एक खुरवाले जितने पशु हैं यह भी तथा ॥ १७ ॥ भैंसका दूध, चमर गाय (सुरागाय) का दूध, वा व्यानेके पीछे जिसको दश दिन नहीं बीते हैं ऐसी गायका दूध "मेरे पितृकार्यके लिये प्रदान करो" इस प्रकार कहकर लाया हुआ जो किसी भाँतिका दूध है ॥ १८ ॥ साधु पुरुष यह

अन्यायकन्याशुल्कोत्थंद्रव्यंचात्रविगर्हितम् ॥ दुर्गंधिफेनिलंचांबुतथैवाल्पतरोदकम् ॥ १५ ॥ नलभेद्यत्रगौस्तृप्तिंनक्तंयच्चाप्युपाहृतम् ॥ यन्नसर्वापचोत्सृष्टंयच्चाभोज्यनिपानजम् ॥ १६ ॥ तद्वर्ज्यंमलिलंतातसदैवपितृकर्मणि ॥ मार्गमाविकमौष्ट्रंचसर्वमेकशफंचयत् ॥ १७ ॥ माहिषंचामरंचैवधेन्वागोश्चाप्यनिदर्शम् ॥ पित्रर्थंमेप्रयच्छस्वेत्युक्त्वायच्चाप्युपाहृतम् ॥ १८ ॥ वर्जनीयंमदासद्भिस्तत्पयश्राद्धकर्मणिः ॥ वर्ज्याजंतुमतीरूक्षाक्षितिःप्लुष्टातथाग्निना ॥ १९ ॥ अनिष्टादुष्टशब्दोग्रादुर्गंधाश्राद्धकर्मणि ॥ कुलापमानकाःश्राद्धेव्यायुज्यकुलहिंसकाः ॥ २० ॥ कुलाधमोब्रह्महाचतथावैरोगिणोंत्यजाः ॥ नग्नाःपानकिनश्चैवघ्नंतिदृष्ट्यापितृक्रियाम् ॥ २१ ॥ अपुमानपविद्धश्चकुक्कुटोग्रामसूकरः ॥ श्वाचैवहंतिश्राद्धानियातुधानाश्चदर्शनात् ॥ २२ ॥ तस्मात्सुसंवृतोदद्यात्तिलैश्चविकिरेन्महीम् ॥ एवंरक्षाभवेच्छ्राद्धेकृतातातोभयोरपि ॥ २३ ॥

सब दूध श्राद्धकर्ममें त्याग देते हैं, जो स्थान कीटादिसे पूर्ण रूखा, अग्निसे जला हुआ ॥ १९ ॥ और दुर्गंध-पूर्ण है तथा अनिष्ट स्थानकी मिट्टी और कुवाक्य कहना श्राद्ध कर्ममें त्याग करे और कुलहिंसक तथा कुलका तिरस्कार करनेवाले श्राद्धमें वर्जित हैं ॥ २० ॥ नीच कुलवाला, ब्रह्म हत्यारा रोगी, अन्त्यज (नीच) नग्न और पातकी, यह दृष्टिसे ही श्राद्ध क्रियाको नष्ट कर देते हैं ॥ २१ ॥ नपुंसक, विद्ध मुरगा, ग्रामसूकर, कुत्ता और राक्षस इनके देखनेसेही श्राद्धहत होजाता है ॥ २२ ॥ इसी कारण गोपनभावसे पृथ्वीमें तिल बखेरे! हे वत्स! इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे दोनोंकी रक्षा होती है ॥ २३ ॥

मृतकके पातकवाला वा सूतकवालेसे सम्पर्क करनेवाला अथवा काक सूकरसे स्पर्श किया हुआ सादा रोगी, पतित और मलिन अर्थात् पातकी पुरुषोंके द्वारा पितामहगणको पुष्टिलाभकी संभावना नहीं है ॥ २४ ॥ श्राद्धमें ऐसे पुरुषोंको वर्जन करे और रजस्वलाका दर्शन भी उस समय परित्याग करे। यजमान मुंडित समस्त और सुरासक्त पुरुषका स्पर्श यत्नसहित परित्याग करे ॥ २५ ॥ केश और कीट युक्त कुत्तेके द्वारा देखा हुआ, पूतिगन्ध पूर्ण, बासी वैग (वस्त्रकी पवनसे युक्त) द्रव्य श्राद्धमें परित्याग करे। परम श्रद्धासहित पितरोंके नाम और गोत्रानुसार जो कुछ अर्पण किया जाय ॥ २६ ॥ २७ ॥ वही उनके आहाररूपमें परिणत होता है इसी कारण श्राद्धमें पितरोंका सन्तोषसाधनेके लिये पात्रको

शावसूतकिसंस्पृष्टंदीर्घरोगिभिरेवच ॥ पतितैर्मलिनैश्चैवपुष्णातिनपितामहान् ॥ २४ ॥ वर्जनीयंतथाश्राद्धेसदोदक्यादिदर्शनम् ॥ चंडशौंडसमाभाषायजमानेनचादरात् ॥२५॥ केशकीटावपन्नंचतथाश्वभिरवेक्षितम् ॥ पूतिपर्युषितंचैववार्ताक्यभिपवांस्तथा ॥२६॥ वर्जनीयाहिवैश्राद्धेतथावस्त्रानिलाहतम् ॥ श्राद्धयापरयादत्तंपितॄणांनामगोत्रतः ॥ २७ ॥ यदाहाराश्चतेजातास्तदाहारत्वमेतितत् ॥ तस्माच्छ्रद्धायुतंपात्रेयच्छत्वंपितृकर्मणि ॥ २८ ॥ तथातच्चैवदातव्यंपितॄणांतृप्तिमिच्छता ॥ योगिनश्चसदाश्राद्धेभोजनीयाविप श्चिता ॥ २९ ॥ योगाधाराहिपितरस्तस्मात्तान्भोजयेत्सदा ॥ ब्राह्मणानांसहस्रस्ययोगीत्वग्रासनीयदि ॥ ३० ॥ यजमानंचभोक्तॄं श्चनौरिवांभसितारयेत् ॥ पितृगाथास्तथैवात्रश्रूयंतेब्रह्मवादिभिः ॥ ३१ ॥ यागीताःपितृभिःपूर्वमैलस्यासन्महीपतेः ॥ कदानःसंतता वग्र्यःकस्यचिद्भवितासुतः ॥ ३२ ॥

जिमावे ॥ २८ ॥ श्रद्धावान् होकर समस्त श्रेष्ठवस्तु विधानानुसार समर्पण करे. विद्वान् पुरुष श्राद्धमें सदा योगियोंको भोजन करावे ॥ २९ ॥ क्योंकि पितृगणही योगके एक मात्र आधार हैं, अतएव योगीकी सादा पूजा करनी चाहिये। सहस्र ब्राह्मणोंकी अपेक्षा एक मात्र योगीको सबसे पहिले भोजन करानेसे ॥ ३० ॥ जलमें नौका जिस प्रकार आरोहीको उद्धार करती है, इसी प्रकार वह भी यजमान और भोक्ता सबको उद्धार करता है, ब्रह्मवादिगण इस स्थलमें पितृगाथा कीर्त्तन करगये हैं ॥ ३१ ॥ पूर्वकालमें पितरोंने महीपती ऐलके उद्देश्यसे यह गाथा गाई थी। उन्होंने इस प्रकार कहा था कि, "हमारे पुत्रोंमें कब ऐसा सर्वोत्तम पुत्र जन्म ग्रहण करेगा" ॥ ३२ ॥

जो योगियोंके भोजनमें बचेहुए अन्न द्वारा पृथ्वीतलमें हमको पिण्ड समर्पण करेगा । अथवा हमारी एक मासकी तृप्तिके लिये गयाधाममें उत्कृष्ट हविस्वरूप गैंडेका मांस ॥ ३३ ॥ काल शाक, तिलयुक्त खिचड़ी इन सब वस्तुओंके द्वारा पिंड प्रदान करेगा । वैश्वदेव और सौम्य बलिके विषयमें गैंडेका मांसही परम हवि कहा गया है ॥ ३४ ॥ सींगविहीन गैंडेका मांस प्राप्त होनेपर जबतक सूर्यकी स्थिति रहती है, हम तबतक उसको भोजन करते हैं । त्रयोदशीतिथियुक्त मघानक्षत्रमें विधानानुसार ॥ ३५ ॥ श्राद्ध और दक्षिणायनमें मधु घृतयुक्त पायस (खीर) प्रदान करे । हे पुत्र ! इसप्रकार भक्तिसहित एकाग्र मनसे पूजा करनेपर संपूर्ण कामना पूरी होती है और समस्त पाप दूर होते हैं ॥ श्राद्धमें

योयोगिभुक्तशेषान्नैर्भुविपिंडंप्रदास्यति ॥ गयायामथवापिंडंखड्गमांसंमहाहविः ॥ ३३ ॥ कालशाकंतिलाढ्यंचवाकृसरंमासतृप्तये ॥ वैश्वदेव्यंचसौम्यंचखड्गमांसंपरंहविः ॥ ३४ ॥ विषाणवर्ज्यखड्गाप्त्यामामूर्द्धान्नाशयामहे ॥ तथावर्षात्रयोदश्यांमघासुचयथाविधि ॥ ॥ ३५ ॥ मधुसर्पिःसमायुक्तंपायसंदक्षिणायने ॥ तस्मात्संपूजयेद्भक्त्यास्वपितॄन्यतमानसाः ॥ कामानभीप्सन्सकलान्पापाच्चात्म विमोचनम् ॥ ३६ ॥ वसून्रुद्रांस्तथादित्यान्नक्षत्रग्रहतारकाः ॥ प्रीणयंतिमनुष्याणांपितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ ३७ ॥ आयुःप्रजांधनंविद्यांस्वर्गंमोक्षंसुखानिच ॥ प्रयच्छंतितथाराज्यंपितरःश्राद्धतर्पिताः ॥ ३८ ॥ एतत्तेकथितंपुत्रश्राद्धकर्मयथोदितम् ॥ काम्यानां श्रूयतांवत्सश्राद्धानांतिथिकीर्त्तनम ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ प्रतिपद्धनलाभायद्वितीयाद्विपदप्रदा ॥ वरार्थिनीतृतीयातुचतुर्थीशत्रुनाशिनी ॥ १ ॥

पितरोंको तृप्त करनेसे वसु, रुद्र, आदित्य, ग्रह, नक्षत्र और तारका सबहीं प्रसन्न होते हैं ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ श्राद्धद्वारा पितरोंकी तृप्ति साधन करनेसे वह आयु, प्रज्ञा, धन, विद्या, स्वर्ग, मोक्ष, सुख और राज्य प्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ हे पुत्र ! यह मैंने तुमसे श्राद्धविधिका वर्णन किया । हे वत्स ! अब काम्यश्राद्धकी तिथि वर्णन करती हूं, सुनो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥ २९ ॥

मदालसा बोली हे वत्स ! प्रतिपत् तिथिमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे धनलाभ होता है इसीप्रकार द्वितीयामें सम्पत्तिलाभ, तृतीयामें वरप्राप्ति और चतुर्थीतिथिमें श्राद्ध करनेसे शत्रुका विनाश होता है ॥ १ ॥

पंचमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीलाभ, षष्ठीमें सर्व जनसमाजमें पूजा, सप्तमीमें गणाधिपत्य और अष्टमीमें श्राद्ध करनेसे अनुत्तम बुद्धिलाभ होता है ॥२॥ नवमीमें श्राद्ध करनेसे स्त्रीका लाभ दशमीमें समस्तकामना पूर्ण और एकादशी तिथिमें श्राद्ध करनेसे समस्त वेदमें अभिज्ञतालाभ होता है॥ ३॥जो पुरुष द्वादशी तिथिमें पितरोंकी पूजा करता है,उसको जय लाभ पुत्रलाभ,मेधालाभ, पशुलाभ,बुद्धिलाभ, स्वाधीनतालाभ और पुष्टिलाभ होता है ॥४॥ जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर त्रयोदशी तिथिमें यथासंभव अन्नद्वारा श्राद्ध सम्पादन करता है उसको दीर्घ परमायु और ऐश्वर्यलाभ होता है इसमें सन्देह नहीं. जिसके पितर यौवनमें मृत्युको प्राप्त हुए हैं अथवा शस्त्राघातसे जीवन परित्याग किया है ॥ ५ ॥ ६ ॥ वह पुरुष

श्रियंप्राप्नोतिपंचम्यांषष्ठ्यांपूज्योभवेन्नरः ॥ गणाधिपत्यंसप्तम्यामष्टम्यांवृद्धिमुत्तमाम् ॥२॥ स्त्रियोनवम्यांप्राप्नोतिदशम्यांपूर्णकामताम् वेदांस्तथाप्नुयात्सर्वानेकादश्यांक्रियापरः ॥३॥ द्वादश्यांजयलाभंचप्राप्नोतिपितृपूजकः ॥ प्रजांबुद्धिंपशून्वृद्धिंस्वातंत्र्यंपुष्टिमुत्तमाम् ॥४॥ दीर्घमायुस्तथैश्वर्यंकुर्वाणस्तुत्रयोदशीम् ॥ अवाप्नोतिनसंदेहोश्राद्धंश्रद्धापरोनरः ॥५॥ यथासंभावितान्नेनश्राद्धंसंपत्समन्वितः॥ विकृत्यापितरोयस्यमृताःशस्त्रेणवाहताः ॥६ ॥ तेनकार्यं चतुर्दश्यांतेषांतृप्तिमभीप्सता ॥ श्राद्धंकुर्वन्नमावास्यांयत्नेनपुरुषःशुचिः ॥७॥ सर्वान्कामानवाप्नोतिस्वर्गंचानंत्यमश्नुते ॥ कृत्तिकासुपितॄनर्चन्स्वर्गंप्राप्नोतिमानवः ॥८॥ अपत्यकामोरोहिण्यांसौम्येतेजस्वितांलभेत् ॥ शौर्यमार्द्रासुचाप्नोतिक्षेत्रादिचपुनर्वसौ ॥ ९ ॥ पुष्टिंपुष्येसदाभ्यर्च्यआश्लेषासुवरान्सुतान् ॥ मघासुस्वजनश्रेष्ठ्यंचसौभाग्यं फल्गुनीषुच ॥१०॥ प्रदानशीलोभवतिसापत्यश्चोत्तरासुवै ॥ प्रयातिश्रेष्ठतांसत्सुहस्तेश्राद्धप्रदोनरः ॥ ११ ॥

उनकी तृप्ति करनेके लिये चतुर्दशी तिथिमें श्राद्ध करे. पवित्र होकर यत्नसहित अमावास्यामें श्राद्ध करनेसे ॥ ७ ॥ संपूर्ण परिपूर्ण कामना होती हैं और अक्षय स्वर्गलाभ होता है जो पुरुष कृत्तिकानक्षत्रमें पितरोंकी पूजा करता है उसको स्वर्गभोग होता है ॥८॥ जो पुरुष अपत्य(सन्तान)की कामना करता है,उसको रोहिणीनक्षत्रमें श्राद्ध करना चाहिये. मृगशिरा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे ओजस्विता, आर्द्रामें शौर्य और पुनर्वसु नक्षत्रमेंश्राद्ध करनेसे क्षेत्रादि लाभ होता है ॥ ९ ॥ पुष्य नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे पुष्टिलाभ, आश्लेषामें श्रेष्ठ पुत्र मघामें स्वजनोंमें प्राधान्य और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे सौभाग्यलाभ होता है ॥ १० ॥ उत्तराफाल्गुनीमें श्राद्ध करनेसे दानशील और पुत्रवान् होजाता है और जो पुरुष

हस्तनक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करता है उसको निःसन्देह श्रेष्ठता प्राप्त होती है ॥११॥ चित्रानक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे रूप और अपत्यलाभ होता है, स्वातीमें वाणिज्य, विशाखामें पुत्र और कामनासिद्धि ॥१२॥ अनुराधामें चक्रवर्त्तित्व, ज्येष्ठामें आधिपत्य, मूलमें आरोग्य ॥ १३ ॥ पूर्वाषाढामें यशःप्राप्ति, उत्तराषाढामें शोकराहित्य, श्रवणमें शुभलोकप्राप्ति और धनिष्ठा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे बहुत धनलाभ होता है॥१४॥ अभिजित् नक्षत्रमें श्राद्धका अनुष्ठान करनेसे समस्त वेदोंमें अभिज्ञ होजाता है, शतभिषामें श्राद्ध करनेसे वैद्यक शास्त्रमें सिद्धिलाभ होता है, पूर्वभाद्रपदा नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे आविक (भेड बकरी) लाभ, उत्तर भाद्रपदमें विद्या गौलाभ॥१५॥रेवती सुवर्ण,चांदीके अतिरिक्त अन्यान्य धातु,अश्विनीमें अश्व और भरणी

रूपयुक्तस्तुचित्रासुतथापत्यान्यवाप्नुयात् ॥ वाणिज्यलाभदास्वातिर्विशाखापुत्रकामदा ॥ १२ ॥ कुर्वंतश्चानुराधासुलभंतेचक्रवर्तिताम् ॥ आधिपत्यंचज्येष्ठासुमूलेचारोग्यमुत्तमम् ॥ १३ ॥ आषाढासुयशःप्राप्तिरुत्तरासुविशोकताम ॥ श्रवणेनशुभाँल्लोकान्धनिष्ठासुधनंमहत् ॥ १४ ॥ वेदविद्याचाभिजितिभिषक्सिद्धिंचवारुणे ॥ अजाविकंप्रोष्ठपदेविद्यागावस्तथोत्तरे ॥ १५ ॥ रेवतीषुतथाकुप्यमश्विनीषुतुरंगमान् ॥ श्राद्धंकुर्वंस्तथाप्नोतिभरणीष्वायुरुत्तमम् ॥ १६ ॥ तस्मात्काम्यानिकुर्वीतऋक्षेष्वेतेपुतत्त्ववित ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसोपाख्यानेऽलर्कानुशासनेश्राद्धकल्पोनामत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३० ॥ मदालसोवाच ॥ एवंपुत्रगृहस्थेनदेवताःपितरस्तथा ॥ संपूज्यहव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबांधवाः ॥ १ ॥ भूतानिभृत्याविकलाःपशुपक्षिपिपीलिकाः ॥ भिक्षवोयाचमानास्तुयेचान्येवसतागृहे ॥२॥ सदाचारवतातातसाधुनागृहमेधिना ॥ पापंभुंक्तेसमुल्लंघ्यनित्यंनैमित्तिकीःक्रियाः ॥३॥

नक्षत्रमें श्राद्ध करनेसे दिर्घायुलाभ होता है॥१६॥इस कारणही तत्त्ववित् पुरुषको इन सब नक्षत्रोंमें काम्यश्राद्धका आचरण करना चाहिये॥१७॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥ मदालसा बोली—हे पुत्र ! इसप्रकारसे साधुगृही सदाचारपरायण हो हव्य कव्य और अन्नदानपूर्वक पितृगण, देवगण, अतिथिगण, तथा बांधवगणकी पूजा करे ॥१॥ इनके अतिरिक्त भूतगण, भृत्यगण, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक, याचक और अपरापर जो कोई प्रार्थना करे ॥ २ ॥ उन उन सबकी यथाविधि पूजा करे । गृहीमनुष्य नित्य नैमित्तिकी क्रियाको उल्लंघन करनेसे पापका भागी होता है ॥ ३ ॥

अलर्कने कहा हे मातः ! तुमने मुझसे नित्य, नैमित्तिक और नित्यनैमत्तिक इन तीन प्रकृत पुरुषोचित कर्मका विषय वर्णन किया ॥ ४ ॥ हे कुलनन्दिनी ! जिसका अनुष्ठान करनेसे मनुष्य क्या इसलोक, क्या परलोक दोनोंमें सुखका भागी होता है. अब मैं वही सदाचारका विषय सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ५ ॥ मदालसा बोली—गृहस्थ सर्वदासदाचारका प्रतिपपालन करे, जो पुरुष आचारहीन है, किसी लोकमें उसको सुख मिलनेकी संभावना नहीं है ॥ जो पुरुष सदाचारको उल्लंघन करके संसार मार्गमें प्रवृत्त होता है, उसका यज्ञ, दान और तपस्या सब अमंगलका कारण होता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ दुराचारी पुरुष कभी दीर्घजीवी नहीं हो सकता, अतएव सदाचारमें

॥ अलर्कउवाच ॥ कथितंमेत्वयामातर्नित्यं नैमित्तिकंचयत् ॥ नित्यं नैमित्तिकंचैवत्रिविधंकर्मपौरुषम् ॥ ४ ॥ सदाचारमहंश्रोतुमिच्छामिकुलनंदिनि ॥ यंकुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानवः ॥ ५ ॥ मदालसोवाच ॥ गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम ॥ नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ॥ ६ ॥ यज्ञदानतपांसीहपुरुषस्यनभूतये ॥ भवंतियःसदाचारंसमुल्लंघ्यप्रवर्त्तते ॥ ७ ॥ दुराचारोहि पुरुषोनेहायुर्विंदतेमहत ॥ कार्योयत्नःसदाचारेआचारोहंत्यलक्षणम् ॥ ८ ॥ तस्यस्वरूपंवक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ॥ समाहितमनाः श्रुत्वातथैवपरिपालय ॥ ९ ॥ त्रिवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योगृहमेधिना ॥ तत्संसिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ॥ १० ॥ पादेनार्थस्य पारत्र्यंकुर्यात्संचयमात्मवान् ॥ अर्धेनचात्मभरणंनित्यनैमित्तिकान्वितम् ॥ ११ ॥ पादंचात्मार्थमायस्य [illegible]भूतंविवर्द्धयेत ॥ एवमाचरतःपुत्रअर्थःसाफल्यमृच्छति ॥ १२ ॥ तद्वत्पापनिषेधार्थंधर्मःकार्योविपश्चिता ॥ परत्रार्थंतथाचान्यः[illegible]फलप्रदः ॥ १३ ॥

यत्नशील होना चाहिये । सदाचार द्वारा अलक्षण दूर होता है ॥ ८ ॥ हे पुत्र ! मैं उस सदाचारके स्वरूपका वर्णन करती हूं, तुम एकाग्र मनसे सुनकर तिसके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान करो ॥ ॥ ९ ॥ गृही पुरुष त्रिवर्गसाधनमें यत्न करे । त्रिवर्गकी सिद्धि होनेपर वह गृहस्थ क्या इसलोक क्या परलोक दोनोंमेंही सिद्धिलाभ करता है ॥ १० ॥ आत्मवान् होकर उपार्जित अर्थका चतुर्थांश पारलौकिक धर्मकेलिये संचय करना गृहीका कर्त्तव्य है । अर्द्धांशद्वारा आत्म पोषण और नित्य नैमित्तिकादि क्रियासाधन करे ॥ ॥ ११ ॥ और अवशिष्टको मूलधनस्वरूप बढ़ावे । हे पुत्र ! इस प्रकारका आचरण करनेसेही अर्थसफलता साबित होती है ॥ १२ ॥ अर्थविषयमें जिसप्रकार आचरण करे पाप दूर होनेके

लिये भी वैसाही धर्मसंचय करना चाहिये । धर्म दो प्रकारका है काम्य और निष्काम । निष्कामधर्म परलोकमें फलप्रदान करता है और काम्यधर्म इसलोकमें फलप्रद है ॥ १३ ॥ विघ्न और व्ययके कारण काम्य और निष्काम कर्म अविरोधपूर्वक इन दोनों धर्मोंका अनुष्ठान करना चाहिये । त्रिवर्गके अविरोधसे कामभी दो प्रकार है ॥ १४ ॥ धर्म, अर्थ और काम, यह त्रिवर्ग जिसप्रकार परस्पर अनुबद्ध हैं इसीप्रकार इनको परस्पर विनाबन्धे भी विचारे. मैं इनके अनुबंधादिका वर्णन करती हूं, सुनो ॥१५॥ धर्म और धर्मके अनुबंधनिमित्त धर्म आत्माके लिये बाधक नहीं होता, इनके योगमें काम जिसभाँति दो प्रकार है, ऐसेही कामद्वारा धर्म और अर्थभी दो अंशमें विभक्त जानना चाहिये अर्थात् धर्म और धर्मानुबंधार्थ धर्म, इन दोनोंके योगमें काम जिसप्रकार धर्मानुबद्ध काम और अर्थानुबद्ध काम यह दोभागमें विभक्त है, इसीप्रकार धर्म और अर्थ भी

प्रत्यवायभयात्काममन्तथान्यश्चाविरोधवान् ॥ द्विधाकामोनिगदितस्त्रिवर्गोस्यविरोधतः ॥ १४ ॥ परस्परानुबंधांश्चसर्वानेतान्विचिन्तयेत् ॥ विपरीतानुबंधांश्चधर्मादीन्मात्ञ्छृणुष्वमे ॥ १५ ॥ धर्माधर्मानुबंधार्थोधर्मोनात्मार्थबाधकः ॥ उभाभ्यांचद्विधाकामस्तेन[illegible] द्विधापुनः ॥ १६ ॥ ब्राह्मेमुहूर्त्तेबुध्येतधर्मार्थौचानुचिंतयेत् ॥ कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्त्वार्थमेवच ॥ १७ ॥ उत्थायाचम्य[illegible] कृत्वाकृतशौचःसमाहितः ॥ समुत्थायतथाचम्यप्राङ्मुखोनियतःशुचिः ॥ १८ ॥ पूर्वांसंध्यांसनक्षत्रांपश्चिमांसदिवाकराम् ॥ उपा[illegible] सीतयथान्यायंनैनांजह्यादनापदि ॥ १९ ॥ असत्प्रलापमनृतंवाक्पारुष्यंचवर्जयेत् ॥ असच्छास्त्रमसद्वादमसत्सेवांचपुत्रक ॥ २० ॥ सायंप्रातस्तथाहोमंकुर्वीतनियतात्मवान् ॥ नोदयास्तमयेविम्बमुदीक्षेतविवस्वतः ॥ २१ ॥

दो भागमें विभक्त हुआ है ॥१६॥ गृही पुरुष ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर धर्म, अर्थ, धर्मार्थमूलक कायक्लेश और वेदतत्त्वार्थ इन सबकी चिन्ता करे ॥ १७ ॥ फिर शय्यात्यागपूर्वक आचमन करके नियत और पवित्र भावसे पूर्वमुख बैठ ॥ १८ ॥ नक्षत्र रहते रहते पूर्वसंध्याका आचरण करे । इसीप्रकार सूर्यदेवके रहते रहते सायंसंध्या करनी चाहिये ॥ अनापत्कालमें यथाविधि संध्याकी उपासना करे, कभी इसके अन्यथा न करे ॥१९॥ हे पुत्र ! असत् वाक्य, अनृत वाक्य और कर्कश वाक्य त्याग करना अवश्य कर्त्तव्य है, तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवाभी परित्याग करे ॥ २० ॥ नियतात्मा होकर प्रातःकाल और सायंकालमें होमका अनुष्ठान करना चाहिये । उदयकाल और अस्तगमन समयमें

सूर्यकेबिम्बका दर्शन न करे ॥२१॥ बाल काढ़ना, दर्पणमें मुख देखना, दंतधावन, और देवतर्पण, यह सब कार्य दिनके पूर्वाह्णमें करने चाहिये ॥२२॥ ग्राम, निवास, तीर्थ, क्षेत्र, पथ (मार्ग) जुता हुआ खेत और गौओंका स्थान इन सब स्थानोंमें मलमूत्र त्यागना अनुचित है ॥ २३ ॥ पराई स्त्रीको नग्न नहीं देखे और स्वीय मलकोभीदेखना अनुचित है, ऋतुमती स्त्रीको नहीं देखे और उसको स्पर्श तथा उसके संग वार्त्तालापभी नहीं करना चाहिये ॥ २४ ॥ जलमें विष्ठा मूत्र त्याग, वा मैथुनकार्य नहीं करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुष मलमूत्र, केश, भस्म, कपाल ॥२५॥ तुष, अंगार, अस्थि, रज्जु, वसनादि, मार्गकी मृत्तिका, इन सबके ऊपर कभी न बैठे ॥ २६ ॥ गृही मनुष्य अपनी संपत्तिके अनुसार

केशप्रसाधनादर्शदर्शनंदंतधावनम् ॥ पूर्वाह्णएवकुर्वीतदेवतानांचतर्पणम् ॥ २२ ॥ ग्रामावसथतीर्थानांक्षेत्राणांचैववर्त्मनि ॥ नमूत्रमलुतिष्ठेतनकृष्टेनचगोव्रजे ॥२३॥ नग्नांपरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनःशकृत् ॥ उदक्यादर्शनंस्पर्शोवर्ज्यंसंभाषणंतथा ॥२४॥ नाप्सुमूत्रंपुरीषंवानिष्ठीवंनसमाचरेत् ॥ नाधितिष्ठेच्छकृन्मूत्रंकेशभस्मकपालिकाः ॥२५॥ तुषांगारास्थिचूर्णानिरजोवस्त्राणिकानिचित् ॥ नाधितिष्ठेत्तथाप्राज्ञःपथिपत्राणिवाभुवि ॥ २६ ॥ पितृदेवमनुष्याणांभूतानांचतथार्चनम् ॥ कृत्वाविभवतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ॥ २७ ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवास्वाचांतोवाग्मतःशुचिः ॥ भुंजीतान्नंचतच्चित्तोह्यंतर्जानुःसदानरः ॥२८॥ उपघातमृतेदोषंनात्रस्योदीरयेद्बुधः ॥ प्रत्यक्षंलवणंवर्जमन्नमत्युष्णमेवच ॥ २९ ॥ नगच्छन्नैवतिष्ठन्वैविण्मूत्रोत्सर्गमाचरन् ॥ कुर्वीतनैवचाचामेन्नकिंचिदपिभक्षयेत् ॥ ३० ॥ उच्छिष्टोनालपेत्किंचित्स्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥ गांब्राह्मणंतथाचाग्निंस्वमूर्धानंचनस्पृशेत् ॥ ३१ ॥

सबसे पहिले पितर, देवता, नरगण और भूतगणकी पूजा करके फिर स्वयं भोजन करे॥२७॥आचमनके अन्तमें संयतवाक्य, पवित्र और अन्तर्जानु होकर पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठे एकाग्रमनसे अन्न भोजन करे ॥२८॥ किसी प्रकारक अनिष्ट वा उत्तेजन न करनेपर किसी पुरुषका दोष प्रकाशित नहीं करना चाहिये प्रत्यक्ष अधिक लवण और अत्यन्त उष्ण अन्न सर्वथा वर्जित है ॥२९॥आत्मवान् मनुष्य चलते वा बैठे बैठे मल मूत्र परित्याग न करे। आचमनके अन्तमें किंचित्मात्रभी आहार करना अनुचित है॥३०॥उच्छिष्ट शरीरमें किसीके संगभी वार्त्तालाप न करे और इस अवस्थामें वेदाध्ययन भी परित्याग करे। विशेष करके उच्छिष्ट देहसे गौ, ब्राह्मण, अग्नि और अपने मस्तकको स्पर्श न करे ॥ ३१ ॥

उच्छिष्टशरीरसे स्वेच्छानुसार चन्द्र,सूर्य और नक्षत्रका दर्शन करना अनुचित है । टूटा आसन टूटी शय्या और टूटा पात्र सर्वथा वर्जित हैं॥ ३२॥ अभ्युत्थान इत्यादि (उठकर)खडा होना इत्यादि सत्कारसहित गुरुको आसन प्रदान करे । प्रणामपूर्वक उनसे अनुकूल वार्ता करे॥ ३३॥ और गमन कालमें उनका अनुगमन करना चाहिये । उनसे प्रतिकूल वचनप्रयोग करना कभी उचित नहीं है. एक वस्त्रमे आहार वा देवपूजा करना निषिद्ध है ३४॥ द्विजातिगणकी निन्दा नहीं करे और बुद्धिमान् पुरुष कभी अग्निमें मूत्रादि त्याग न करे, नग्न होकर स्नान वा शयन अनुचित है॥ ३५॥ दोनों हाथोंसे कभी मस्तक न खुजावे,विनाकारण स्नान वा सदा शिरसे स्नान करना उचित नहीं है॥ ३६॥ और शिरःस्नानके अन्तमें किसी अंगमें तेल नहीं

नचपश्येद्रविंनेन्दुंननक्षत्राणिकामतः ॥ भिन्नासनंतथाशय्यांभाजनंचविवर्जयेत ॥ ३२ ॥ गुरूणामासनंदेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ॥ अनुकूलंतथालापमभिवादनपूर्वकम् ॥ ३३ ॥ तथानुगमनंकुर्यात्प्रतिकूलंनसंलपेत् ॥ नैकवस्त्रश्चभुञ्जीतनकुर्याद्देवनार्चनम ॥ ॥ ३४ ॥ नगर्हयेद्द्विजान्नाग्नौमेहंकुर्वीतबुद्धिमान् ॥ नस्नायीतनग्नेनग्नोनशयीतकदाचन ॥ ३५ ॥ नपाणिभ्यामुभाभ्यांचकण्डूयेत शिरस्तथा ॥ नचाभीक्ष्णंशिरःस्नानंकार्यंनिष्कारणंनरैः ॥ ३६ ॥ शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गंकिञ्चिदपिस्पृशेत ॥ अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ॥ ३७ ॥ ब्राह्मणानलगोसूर्यान्नमेहेतकदाचन ॥ उदङ्मुखोदिवारात्रावुत्सर्गंदक्षिणामुखः ॥ ३८ ॥ आबाधासुयथाकामंकुर्यान्मूत्रपुरीषयोः ॥ दुष्कृतंनगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धंचैनंप्रसादयेत्॥ ३९॥ परीवादंनशृणुयादन्येषामपिकुर्वताम् ॥ पन्था देयोब्राह्मणानांराज्ञोदुःखातुरस्यच ॥ ४०॥ विद्याधिकस्यगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयसः॥मूकान्धबधिराणांचमत्तस्योन्मत्तकस्यच॥ ४१॥

मलना चाहिये।सब अनध्यायकेदिनोंमें वेदाध्ययन परित्याग करे ॥ ३७ ॥ ब्राह्मण, अग्नि, गौ और सूर्यके सन्मुख कभी कभी विष्ठा मूत्रादि त्याग न करे । दिनमें उत्तरमुख और रात्रि कालमें दक्षिणमुख होकर ॥ ३८ ॥ विघ्नरहित स्थानमें इच्छानुसार मल मूत्र परित्याग करे।गुरुका दुष्कृत (पाप) किसीके निकट प्रकाश न करे, उनके क्रुद्ध होनेपर उनको प्रसन्न करना चाहिये ॥ ३९ ॥ और यदि कोई दूसरा उनकी झूठी निन्दा करे, तो उसमें कर्णपात न करे विप्र राजा, दुःखातुर ॥ ४० ॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान गुर्विणी स्त्री, भयातुर, युवा, मूक, अन्ध, बधिर, मत्त, उन्मत्त ॥ ४१ ॥

पुंश्चली, वैर, करनेवाला बालक और पतित इन सब पुरुषोंको पथ (मार्ग) प्रदान करे । देवमन्दिर चैत्य वृक्षचतुष्पथ (चौराहा) ॥ ४२ ॥ अपनी अपेक्षा अधिक विद्यावान्, गुरु और देवता बुद्धिमान् पुरुषको इन सबकी प्रदक्षिणा करना चाहिये दूसरे किसी पुरुषका पहरा हुआ जूता वस्त्र और माल्यादि न पहिरे ॥ ४३ ॥ और दूसरेका धारण कियाहुआ जनेऊ. विभूषण और कमण्डलु धारण न करे, प्रशस्त कर्म करनेसे दीर्घजीवी कहा है ॥ ४४ ॥ चतुर्दशी अष्टमी पंचदशी और पर्वके दिन तैलम[illegible]न [illegible] परित्याग करे ॥४५॥ बुद्धिमान् पुरुष चरण जंघा फैलाकर न बैठे और चरणद्वारा चरण आक्रमण करना तथा लात[illegible]नी निषिद्ध है॥४६॥[illegible] [illegible] नहीं देनी चाहिये

पुंश्चल्याकृतवैरस्यबालस्यपतितस्यच ॥ देवालयंचैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम् ॥ ४२ ॥ विद्याधि[illegible] [illegible]कुर्यात्प्रदक्षिणम् ॥
उपानद्वस्त्रमाल्यादिधृतमन्यैर्नधारयेत ॥ ४३ ॥ उपवीतमलंकारंकमण्डलुंचवर्जयेत ॥ [illegible] [illegible]र्जीवि[illegible]॥४४॥
चतुर्दश्यांतथाष्टम्यांपञ्चदश्यांचपर्वसु ॥ तैलाभ्यङ्गंतथाभोगंयोषितश्चविवर्जयेत् ॥ ४५ ॥ न[illegible] [illegible] [illegible]त्क्रमाच ॥
नचापिविक्षिपेत्पादौपादंपादेननाक्रमेत् ॥ ४६ ॥ [illegible]मिवातमाक्रोशंपैशुन्यंचविवर्जयेत् ॥ दम्भ[illegible] [illegible] [illegible]कुर्यात्[illegible]वणः
॥ ४७ ॥ मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा ॥ न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्चनोपहासेनदूषयेत् ॥ [illegible]नोद्यच्छेच्छिक्षार्थं
पुत्रशिष्ययोः ॥ ४८ ॥ तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञपादेनाक्रम्यचासनम् ॥ संयावंकृसरंमांसंनात्मार्थमुपसाधयेत् ॥ ४९ ॥ सायंप्रातश्च
भोक्तव्यंकृत्वाचातिथिपूजनम् ॥ उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवावाग्यतोदन्तधावनम् ॥ ५० ॥

और लोकोंके प्रति कोशना और चुगली परित्याग करे तथा बुद्धिमान् पुरुषको दंभ, अभिमान और तीक्ष्ण व्यवहार परित्याग करना चाहिये॥४७॥ मूढ, उन्मत्त. दुःखी, आपदाग्रस्त, विरूप, मायावी, हीनाङ्ग और अधिकाङ्ग इन सबको हास्यद्वारा दूषित करना अनुचित है।अन्यके प्रति दंडका उच्छेदन करे और उपदेशप्रदानार्थ पुत्र और शिष्यके प्रति दंडविधान करना अनुचित नहीं है ॥ ४८ ॥ पावोंसे आक्रमणपूर्वक आसनपर नहीं बैठे केवल आत्मोदरपूरणके अर्थ संयाव (कुलथी) कृशर (खिचडी) और मांस प्रस्तुत करना चाहिये ॥ ४९ ॥ प्रातःकाल और सायंकालमें अतिथिकी पूजा करके फिर स्वयं भोजन करे वाणीको रोक पूर्वमुख वा उत्तरमुख बैठकर दन्तधावन करे ॥ ५० ॥

जो काष्ठादि वर्जित है, दन्तधावनार्थ उनका व्यवहार नहीं करना चाहिये । उत्तरको [illegible] न करे [illegible]
दक्षिण वा पूर्वदिशामें मस्तक रखकर शयन करना चाहिये दुर्गन्धयुक्त जलमें [illegible]
चन्द्र सूर्यके ग्रहणादिकालमें ही रात्रिमें स्नान कर सकता है, स्नानके पीछे [illegible]
गीलेकेश वा गीले वस्त्रका फटकारना अनुचित है, बुद्धिमान पुरुष बिना स्नानकिये [illegible]
वर्ण अथवा चित्रित वस्त्र नहीं पहरने चाहिये, पहिरनेके और उत्तरीय वस्त्र तथा [illegible]

कुर्वीतसततंवत्सवर्जयेद्दर्ज्यवीरुधः ॥ नोदक्शिरा न्वपेज्जातुनचप्रत्यक्शिरानरः ॥ ५१ ॥ शिरस्यभ्यक्तस्नायाद्भार्यानाथपुरन्दरम् ॥ नतुगन्धवतीष्वप्सुस्नायीतनतथानिशि ॥ ५२ ॥ उपरागेपरंस्नानमृतेदिनमुदाहृतम् ॥ अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभिः ॥ ५३ ॥ नचापिधूनयेत्केशान्वाससीनचधूनयेत ॥ नानुलेपनमादद्यादस्नातःकर्हिचिद्बुधः ॥५४॥ नचापिरक्तवासाःस्याच्चित्रासितधरोऽपिवा ॥ नचकुर्याद्विपर्यासंवाससोर्नापिभूषणे ॥ ५५ ॥ वर्ज्यंचविदशंवस्त्रमत्यन्तोपहतंचयत ॥ केशकीटावपन्नंचक्षुण्णंश्वभिरवेक्षितम ॥ ५६ ॥ अवलीढावपन्नंचसारोद्धरणदूषितम ॥ पृष्ठमांसंवृथामांसंवर्ज्यमांसंचपुत्रक ॥ ५७ ॥ नभक्षयेत सततंप्रत्यक्षलवणानिच ॥ वर्ज्यंचिरोषितंपुत्रभक्तंपर्युषितंचयत ॥५८॥ पिष्टशाकेक्षुपयसांविकारान्नृपनन्दन ॥ तथामांसविकाराश्चतेचवर्ज्याश्चिरोषिताः ॥ ५९ ॥ उदयास्तमनेभानोःशयनंचविवर्जयेत ॥ नास्नातोनैवसंविष्टोनैवान्यमनानरः ॥ ६० ॥

दशाशून्य, जीर्ण और छिन्नवस्त्र सर्वथा वार्जित हैं, केश और कीटसे युक्त (विकृत) कुत्तेका देखा हुआ ॥ ५६ ॥ वा चाटा हुआ और जिसका सार निकाल लिया हो, दूषित अन्न, पृष्ठमांस, वृथा मांस ॥ ५७ ॥ वर्जित मांस और प्रत्यक्ष लवण हे पुत्र ! यह सब कभी भोजन न करे । बहुत दिनोंका धरा और बासी अन्न त्यागदे ॥५८॥ हे नृपनन्दन ! पिट्ठी, शाक, इक्षु और दुग्ध, इन सबका विकार भोजन न करे, मांस विकार बहुत दिनोंका होनेपर वह भी वर्जित है, ॥ ५९ ॥ सूर्यके उदयकालमें वा अस्तगमनसमयमें शयन करना छोड दे, स्नानके पीछेभी शयन करना अनुचित है और बैठा बैठाभी न सोवे तथा अन्य मनस्क अर्थात् दूसरी ओरको भी मन लगाकर शयन नहीं करना चाहिये ॥६०॥

सेज वा मृत्तिकामें 'हा !' कहकर न बैठे, उत्तरीय परित्यागपूर्वक एक वस्त्रसे भोजन न करे, बात कहते कहते भी भोजन करना निषिद्ध है और जो सामने बैठा हो, उसको विना दिये आहार करना उचित नहीं है ॥६१ प्रातःकाल और सायंकालमें विधानानुसार स्नान करके फिर भोजन करे, बुद्धिमान् कभी परस्त्रीगमन न करे ॥ ६२ ॥ क्योंकि परस्त्रीगमन करनेसे इष्टापूर्त्त विनष्ट होता है और परमायुका ह्रास होता है, परदाराभिमर्शन पुरुषके पक्षमें जिसप्रकार परमायुका ह्रास करनेवाला है, ऐसा इसलोकमें और पाप कुछ भी नहीं है. देवताओंकी पूजा, अग्नि कार्य और गुरुजनोंको प्रणाम करना सर्वथा उचित है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ सम्यक् आचमन करके अन्नभोजन कार्यसमापन करे। हे पुत्र ! फेन

नचैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टोनशब्दवत् ॥ नचैकवस्त्रोनवदन्प्रेक्षतामप्रदायच ॥ ६१ ॥ भुंजीतपुरुषस्नातःसायंप्रातर्यथाविधि ॥ परदा रानगन्तव्याःपुरुषेणविपश्चिता ॥ ६२ ॥ इष्टापूर्त्तायुषांहन्त्रीपरदारगतिर्नृणाम् ॥ नहीदृशमनायुष्यंलोकेकिंचनविद्यते ॥ ६३ ॥ यादृशंपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शनम् ॥ देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ॥ ६४ ॥ कुर्वीतसम्यगाचम्यतद्वदन्नभुजिक्रियाम् ॥ अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ॥ ६५ ॥ आचामेत्पुत्रपुण्याभिःप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ॥ अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीका न्मूषिकस्थलात् ॥ ६६ ॥ कृतशौचावशिष्टाश्चवर्जयेत्पञ्चवैमृदः ॥ प्रक्षाल्यहस्तौपादौचसमभ्युक्ष्यसमाहितः ॥ ६७ ॥ अन्तर्जानु स्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वापिबेदपः ॥ परिमृज्यद्विरास्यान्तंखानिमूर्धानमेवच ॥ ६८ ॥ सम्यगाचम्यतोयेनक्रियांकुर्वीतवैशुचिः ॥ देवता नामृषीणांचपितॄणांचैवयत्नतः ॥ ६९ ॥ समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततंनरः ॥ क्षुत्त्वानिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुधः ॥ ७० ॥

शून्य निर्गन्ध निर्मल पवित्र जल सादर ग्रहणपूर्वक ॥६५॥ पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर आचमन करना चाहिये. जलके भीतरकी, वासगृहकी, वल्मीककी, चूहेके भट्टेकी॥६६॥ और शौचक्रियासे बचीहुई, यह पांच प्रकारकी मृत्तिका ग्रहण न करे। एकाग्रमनसे हाथ पैर धो और सम्यक् प्रकारसे शौचकर॥६७॥दोनों जानु (समेटकर) बैठे तीनवार वा चार वार जलपानसहित आचमन करे। दो बार मुखके इधर उधर और मुख गह्वरमें एवं दो बार मस्तक और इन्द्रियद्वार मार्जनपूर्वक ॥६८॥ सम्यक् प्रकार आचमन करके पवित्र भावसे क्रियानुष्ठान करे। सदा यत्नपूर्वक एकाग्र मनसे देवता, ऋषि और पितरोंका॥६९॥ कार्य करना चाहिये। हुचकी और खखार त्याग करनेसे आचमन करना उचित है और वस्त्र

पहरनेकेपीछेभी आचमन करे ॥७०॥ छींक अवलेहन (चाटना) वमन और निष्ठीवन होनेपर आचमन, गोपृष्ठावलोकन, सूर्यदर्शन॥७१॥और दहिना कान छूना चाहिये। इन सबमें पूर्व पूर्वका अभाव होनेपर विभवके अनुसार परस्पर कार्यका अनुष्ठान करे ॥ ७२ ॥ क्योंकि पूर्व पूर्वके अभावमें परस्परको क्रिया ही श्रेष्ठ कही गई है दन्तद्वारा दन्तघर्षण न करे और अपने देहका ताड़न करनाभी अनुचित है॥७३॥क्या प्रातःसंध्या क्या सायंसंध्या, दोनों कालमें शयन, अध्ययन, और भोजन परित्याग करे। संध्याकालमें मैथुन क्रिया और प्रस्थान न करे ॥ ७४॥ हे वत्स! भक्तिसहित पूर्वाह्णमें देवताओंकी, मध्याह्नमें नरगणोंकी और अपराह्णमें पितरोंकी पूजा करे ॥७५॥ शिरसे स्नानकरके पितरोंके और देवताओंके

क्षुतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ॥ कुर्यादाचमनंस्पर्शंगोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ॥ ७१ ॥ कुर्वीतालम्बनंचापिदक्षिणश्रवणस्यवै ॥ यथाविभवतोह्येतत्पूर्वाभावेततःपरम् ॥ ७२ ॥ अविद्यमानेपूर्वोक्तेउत्तरप्राप्तिरिष्यते ॥ नकुर्याद्दन्तसंघर्षनात्मनोदेहताडनम् ॥७३॥ स्वप्नाध्यापनभोज्यानिसन्ध्यायांचविवर्जयेत् ॥ सन्ध्यायांमैथुनंचापितथाप्रस्थानमेवच ॥ ७४ ॥ पूर्वाह्णेनातदेवानांमनुष्याणांचमध्यमे ॥ भक्त्यातथापराह्णेचकुर्वीतपितृपूजनम् ॥ ७५ ॥ शिरःस्नातश्चकुर्वीतदैवंपैत्र्यमथापिवा ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्मचकारयेत् ॥ ७६ ॥ व्यङ्गांविवर्जयेत्कन्यामकुलांचापिरोगिणीम् ॥ विकृतांपिंगलांचैववाचालांसर्वदूषिताम् ॥७७॥ अव्यंगांगींसौम्यनाम्नींसर्वलक्षणलक्षिताम् ॥ तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदा ॥ ७८ ॥ उद्वहेत्पितृमात्रोश्चसप्तमींपंचमींतथा ॥ रक्षेद्दारान्त्यजेदीर्षांदिवाचस्वप्नमैथुने ॥ ७९ ॥ परोपतापकंकर्मजन्तुपीडांचवर्जयेत् ॥ उदक्याःसर्ववर्णानांवर्ज्यागत्रिचतुष्टयम् ॥ ८० ॥

क्रियानुष्ठानमें प्रवृत्त होना चाहिये. पूर्वमुख वा उत्तरमुख होकर (बाल) हजामत बनवावे ॥ ७६ ॥ जो कन्या नष्टशोत्पन्न होकरभी रोगिणी, विकलाङ्गी, विकृत पिंगल वर्ण वाचाल (बहुत बोलने वाली) वा समस्त दोषोंसे दूषित हो, ऐसी कन्याको ग्रहण करना उचित नहीं है ॥७७॥ जो पुरुष कल्याणकी कामना करे, वह सर्वाङ्ग पूर्ण सौम्य नासा, सर्व सुलक्षण विभूषित कन्यासे विवाह करे ॥ ७८ ॥ पिता वा माताकी सात वा पांचपीढी छोडकर अन्य कन्यासे विवाह करना चाहिये। स्त्रीकी रक्षा करना और ईर्षा त्यागना उचित है। दिनमें शयन वा मैथुनक्रिया नहीं करना चाहिये ॥ ७९ ॥ जिससे दूसरे पुरुषको संताप हो और जिससे जीवगण क्लेश अनुभव करे ऐसे कार्य का परित्याग करना उचित

है। समस्त वर्णही चारदिन ऋतुमती नारीका संग परित्याग करे ॥ ८० ॥ हे पुत्र ! जो पुरुष कन्या उत्पन्न होनेकी अभिलाषा नहीं करता, वह पंचम रात्रिमें स्त्रीसंग परित्याग करके छठी रात्रिमें सहवास करे। क्योंकि युग्म रात्रिही नारीसहवासमें श्रेष्ठ कहीगई हैं ॥८१॥ स्त्रीके ऋतुकालके दिन और चौदस अमावस अष्टमी तथा संक्रांति संभोगमें त्यागदे और शेष युग्म रात्रिमें गमन करे ॥८२॥ युग्म रात्रिमें नारीसंग करनेसे पुत्र और अयुग्म रात्रियोंमें कन्याकी उत्पत्ति होती है. सुतरां यदि पुत्र प्राप्त होनेकी इच्छा होतो युग्म रात्रिमें ही सहवास करे ॥ ८३ ॥ यदि पूर्वाह्णमें नारीसंग किया जाय; तो विधर्मी पुत्र उत्पन्न होता है और सायंकालमें स्त्रीसंग करनेसे नपुंसकका जन्म होता है. हे पुत्र ! क्षौरकर्म

स्त्रीजन्मपरिहारार्थंपंचमीमपिवर्जयेत् ॥ ततःषष्ठ्यांव्रजेद्रात्र्यांश्रेष्ठायुगासुपुत्रक ॥ ८१ ॥ पर्वाणिवर्जयेन्नित्यमृतुकालेपियोषितः ॥ तस्मान्नित्यंनगेगच्छेच्छेषयुग्मासुपुत्रक ॥ ८२ ॥ युग्मासुपुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ॥ तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसंविशेतसदा नरः ॥ ८३ ॥ विधर्मिणोऽह्निपूर्वाख्येसंध्याकालेचपण्ढकाः ॥ क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीसंभोगेचपुत्रक ॥ ८४ ॥ स्नायीतचैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्यच ॥ देववेदद्विजातीनांसाधुसभ्यमहात्मनाम् ॥ ८५ ॥ गुरोःपतिव्रतानांचतथायज्वितपस्विनाम् ॥ परीवादंनकुर्वीतपरिहासंचपुत्रक ॥ ८६॥ कुर्वतामविनीतानां नश्रोतव्यंकथंचन ॥ देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रियाःकुर्वीतवैबुधः ॥ ८७ ॥ स्वाध्यायंचापिकुर्वीतयथाशक्त्याह्यतंद्रितः ॥ नोत्कृष्टशय्यामनयोर्नापकृष्टस्यचारुहेत ॥ ८८ ॥ नचामङ्गल्यवेषःस्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत॥ धवलाम्बरसंवीतःसितपुष्पविभूषितः ॥ ८९ ॥

अर्थात् हजामतके पीछे, वमनके पीछे, नारीसंगके पीछे ॥ ८४ ॥ और श्मशानभूमिमें गमन करनेपर सवस्त्र स्नान करना चाहिये. हे पुत्र ! देवता, वेद, ब्राह्मण, सत्वनिष्ठ महात्मा ॥ ८५ ॥ गुरुजन, पतिव्रता स्त्री, यज्ञशील और तपःपरायण पुरुष, इनकी (असत्य निन्दा) वा हास्य करना उचित नहीं है ॥ ८६ ॥ अविनीत मनुष्य यदि इनकी निन्दा करे तो उसमें कर्णपात न करे। बुद्धिमान्‌को देवता, पितर अतिथिकी क्रियाका अनुष्ठान करना चाहिये ॥८७॥ यथाशक्ति सावधानतासे वेद पढे, उसकी अपेक्षा उत्कृष्ट वा अपकृष्ट मनुष्यकी शय्या आसनपर न बैठे ॥८८॥ अमंगल वेष धारण करना उचित नहीं है. और अमंगल वचन भी परित्याग करे श्वेतवस्त्र और सित कुसुमका व्यवहार करे ॥ ८९ ॥

उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, अविनयी, असच्चरित्र, चौर्यादि दोषसे दूषित ॥ ९० ॥ अपरिमित खर्च करनेवाला, लुब्ध, शत्रु व्यभिचारिणी, हीन, बन्धकीका स्वामी ॥ ९१ ॥ नीचाशय, निन्दित, सर्वदा शंकी और दैवपरायण, बुद्धिमान् पुरुषको इन सबके संग मित्रता नहीं करनी चाहिये ॥ ९२ ॥ सदाचारपरायण साधुपुरुषोंके सहित मित्रता स्थापन करनी चाहिये । बुद्धिमान्, पिशुनता रहित शक्तिमान् और जो कार्यमें उद्योगशील हैं ऐसे पुरुषोंके संग मैत्री स्थापन करे ॥ ९३ ॥ पण्डित पुरुष सर्वदा वेदज्ञ, विद्वान्, व्रतपरायण और स्नातक पुरुषके संग स्थिति करे । सुहृद्, दीक्षित, भूपति, स्नातक, श्वशुर और ऋत्विक् यह छै जन अर्घ्यप्रदानके उपयुक्त पात्र हैं. इनके घर आनेपर पूजा करनी

नोद्धतोन्मत्तमूढैश्चनाविनीतश्चैपण्डितः ॥ गच्छेन्मैत्रींनचाशीलैर्नचचौर्यादिदूषितैः ॥ ९० ॥ नचातिव्ययशीलैश्चनलुब्धैर्नापि वैरिभिः ॥ नानृतकैस्तथाक्रूरैःसहासीतकदाचन ॥ नबन्धकीभिर्नन्यूनैर्बन्धकीपतिभिस्तथा ॥ ९१ ॥ सार्द्धंनबलिभिःकुर्यान्नचन्यूनैर्ननिन्दितैः ॥ नसर्वशङ्किभिर्नित्यंनचदैवपरैर्नरैः ॥ ९२ ॥ कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रींसदाचारावलम्बिभिः ॥ प्राज्ञैरपिशुनैःशक्तैःकर्मण्युद्योगभागिभिः ॥ ९३ ॥ वेदविद्याव्रतस्नातैःसहासीतसदाबुधः ॥ सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैःसह ॥ ऋत्विगादीन्षडर्घार्हानर्चयेच्च गृहागतान् ॥ ९४ ॥ यथाविभवतःपुत्रद्विजान्संवत्सरोषितान् ॥ अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ॥ ९५ ॥ तिष्ठेच्चशासनेतेषांश्रेयस्कामोद्विजोत्तमः ॥ नचतान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापितैःसदा ॥ ९६ ॥ सम्यग्गृहार्चनंकृत्वायथास्थानमनुक्रमात् ॥ संपूजयेत्ततोवह्निंदद्याच्चैवाहुतीःक्रमात् ॥ ९७ ॥ प्रथमांब्रह्मणेदद्यात्प्रजानांपतयेनतः ॥ तृतीयांचैवगुह्येभ्यःकश्यपायतथापराम ॥ ९८ ॥

चाहिये ॥ ९४ ॥ हे पुत्र ! पूर्वोक्त अर्घार्ह छै जनोंके घर समागम होने पर संवत्सर बीते घर आनेपर विभवके अनुसार यथासमयमें उनकी मधुपर्कसहित पूजा करे ॥ ९५ ॥ और यदि कल्याणलाभकी इच्छा हो तो उनकी आज्ञामें रहना चाहिये उनके क्रोध प्रकाश करनेपर भी उनसे विवाद करना बुद्धिमान्‌को उचित नहीं है ॥ ९६ ॥ सम्यक् प्रकारसे गृहपूजा करके क्रमानुसार अग्निकी अर्चना पूर्वक आहुति प्रदान करे ॥ ९७ ॥ ब्रह्माजीके उद्देश्यसे पहिली आहुति प्रदानपूर्वक प्रजापतिको दूसरी, गुह्यक गणको तीसरी और कश्यपको चौथी आहुती देवे ॥ ९८ ॥

फिर अनुमतिके उद्देश्यसे पंचमाहुति प्रदान पूर्वक पहिले तुमसे नित्यकर्म क्रिया विधिके उपलक्षमें जिस प्रकार वर्णन किया है, उसीके अनुसार गृहबलिप्रदान करना चाहिये ॥ ९९ ॥ फिर वैश्वदेवबलिप्रदान करे उसका नियम सुनो । स्थानविभागके अनुसार देवताओंके उद्देश्यसे पृथक्पृथक् बलि देनी चाहिये ॥ १०० ॥ अनन्तर पर्जन्य (मेघ) अन्न और धरित्री, इनको तीन बलि और वायुको बलिप्रदानपूर्वक पूर्वादि क्रमसे प्रतिदिशामें समस्त दिशाको यथाक्रमसे बलिप्रदान करे ॥ १०१ ॥ फिर उत्तर दिशामें ब्रह्मा, अन्तरिक्षमें सूर्य, विश्वदेवगण विश्वभूतगण॥१०२॥ उषा और भूतपति, क्रमशः इनके उद्देश्यसे बलिप्रदान करके "स्वधा नमः" यह वाक्य उच्चारणपूर्वक दक्षिण दिशामें पितरोंके उद्देश्यसे बलिप्रदान

ततोऽनुमतयेदत्त्वादद्याद्गृहबलिंततः ॥ पूर्वंख्यातोमयायस्तेनित्यकर्मक्रियाविधिः ॥ ९९ ॥ वैश्वदेवंततःकुर्याद्बलयस्तत्रमेशृणु ॥
यथास्थानविभागंतुदेवानुद्दिश्यवैपृथक् ॥१००॥ पर्जन्याद्भ्योधरित्र्यैचदद्याच्चमणिकेत्रयम् ॥ ततोधातुर्विधातुश्चदद्याद्द्वारेगृहस्तु ॥
वायवेचप्रतिदिशं दिग्भ्यःप्राच्यादितःक्रमात ॥ १०१ ॥ ब्रह्मणेचान्तरिक्षायसूर्यायचयथाक्रमम् ॥ विश्वेभ्यश्चैवदेवेभ्योविश्वभूतेभ्य
एवच ॥ १०२ ॥ उपसेभूतपतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः ॥ स्वधानमइतीत्युक्त्वापितृभ्यश्चापिदक्षिणे ॥ १०३ ॥ कृत्वापसव्यंवायव्यां
यक्ष्मैतत्तेतिभाजन.त ॥ अन्नावशेषमिच्छन्वैतोयंदद्याद्यथाविधि ॥ १०४ ॥ ततोन्नाग्रंसमुद्धृत्यहन्तकारोपकल्पनम् ॥ यथाविधि
यथान्यायंब्राह्मणायोपपादयेत् ॥ १०५ ॥ कुर्यात्कर्माणितीर्थेनस्वेनस्वेनयथाविधि ॥ देवादीनांतथाकुर्याद्ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ॥
॥ १०६ ॥ अंगुष्ठोत्तरतोरेखापाणेर्यादक्षिणस्यतु ॥ एतद्ब्राह्ममितिख्यातंतीर्थमाचमनायवै ॥ १०७ ॥ तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तःपैत्रं
तीर्थमुदाहृतम् ॥ पितॄणांतेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ॥ १०८ ॥

करे ॥१०३॥ अनन्तर अन्नावशेषकी कामना करके अपसव्य हो, वायुकोणमें "यक्ष्मैतत्ता" इत्यादि मंत्रपाठसहित जलाधारसे जललेकर विधानानुसार जलदान करे ॥१०४॥ फिर अन्नका अग्रभाग तोड़ हन्तकारकी कल्पना कर यथाविधान और यथा न्याय ब्राह्मणको देवे ॥ १०५ ॥ तदनन्तर स्वीय तीर्थयोगमें विधानानुसार कार्य सम्पादन करे, देवादिके उद्देश्यसे ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करना चाहिये ॥ १०६ ॥ दहिने हाथकी अगुष्ठाङ्गुलीकी उत्तर दिशामें जो रेखा विद्यमान है, वही ब्राह्मतीर्थके नामसे प्रसिद्ध है, इसी तीर्थके द्वारा आचमन करे ॥ १०७ ॥ तर्जनी और

अंगुष्ठ, इन दोनों अंगुलियोंका मध्यस्थलही पितृतीर्थके नामसे विख्यात है। नान्दीमुखके अतिरिक्त अन्यान्य समस्त क्रियामें भी पितरोंके उद्देश्यसे इसी पितृतीर्थद्वारा जलादि प्रदानकरे ॥ १०८ ॥ अंगुलीके अग्रभागमेंही देवतीर्थ विद्यमान है, देवक्रियाविधि उसके द्वाराही समापन करनी चाहिये। कनिष्ठाके मूलदेशमें कायनामक तीर्थ विराजित है, उसके द्वारा प्रजापतिका कार्य सम्पन्न करे ॥१०९॥ इस प्रकारसे इन सब तीर्थोंके द्वारा सदा देवता और पितरोंकी क्रियाका अनुष्ठान करे, अन्यतीर्थद्वारा कभी न करे॥ ११०॥ब्राह्मतीर्थद्वाराही आचमन करना विधसिद्ध है. पितृतीर्थद्वारा पितृकार्य, देवतीर्थद्वारा देवकार्य और कायतीर्थ द्वारा प्रजापतिका कार्य करे ॥ १११॥ प्रजापतिका कार्य जिस प्रकारसे प्राजापत्य तीर्थ अर्थात् कायतीर्थद्वारा संपादित

अंगुल्यग्रेतथादैवंतेनदिव्यक्रियाविधिः ॥ तीर्थंकनिष्ठिकामूलेकायंतेनप्रजापतेः ॥ १०९ ॥ एवमेभिःसदातीर्थैर्देवानांपितृभिःसह ॥ सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थेनकर्हिचित् ॥ ११० ॥ ब्राह्मेणाचमनंशस्तंपित्र्यंपैत्रेणसर्वदा ॥ देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यंनिजेनच ॥ ॥ १११ ॥ नान्दीमुखानांकुर्वीतप्राज्ञःपिण्डोदकक्रियाम् ॥ प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापतेः ॥ ११२ ॥ युगपज्जलमग्निंचबिभृयान्नविचक्षणः ॥ गुरुदेवान्प्रतितथानचपादौप्रसारयेत् ॥ ११३ ॥ नाचक्षीतधयन्तींगांजलंनाञ्जलिनापिबेत् ॥ शौचकालेषुसर्वेषुगुरुष्वल्पेषुवापुनः ॥ ११४ ॥ नविलम्बेतशौचार्थंनमुखेनानलंधमेत् ॥ तत्रपुत्रनवस्तव्यंयत्रनास्तिचतुष्टयम् ॥ ११५ ॥ ऋणप्रदातावैद्यश्चश्रोत्रियः सजलानदी ॥ जितामित्रोनृपोयत्रवलवान्धर्मतत्परः ॥११६॥ तत्रनित्यंवसेत्प्राज्ञःकुतःकुनृपतःसुखम् ॥ यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवतीमही॥ ११७ ॥

करना चाहिये. नान्दीमुखकी पिण्डोदकक्रियाभी उसी प्रकार कायतीर्थद्वारा संपन्न करे॥ ११२॥एक साथ जल और अग्नि धारण करना बुद्धिमान् पुरुषका कर्त्तव्य नहीं है। गुरु वा देवताके सामने पांव न फैलावे ॥११३ ॥ जो गाय बछडेको स्तन पिलानेमें उद्यत हो, उसको न बुलावे और अंजलि (चुल्लू) द्वारा जल न पिये अधिक हो वा कम हो॥ ११४॥सब प्रकारकी शौचक्रियामें शीघ्रता करे और मुखद्वारा अर्थात् फूँकसे अग्नि प्रज्वलित न करे और हे पुत्र! जहां यह चार वस्तु न हों, वहां वास न करे॥ ११५॥ऋण (कर्ज) देनेवाला, वैद्य, श्रोत्रिय और सजला नदी। जिस राज्यमें शत्रुओंका जीतनेवाला धर्मनिष्ठ बलवान् राजा वास करता हो ॥ ११६ ॥ उस देशमें बुद्धिमान पुरुषको सदा वास करना चाहिये।

क्योंकि कुराजाके राज्यमें सुखकी संभावना कहां है ? जिस राज्यका राजा दुर्द्धर्ष और जिस स्थानकी भूमि सस्य (धान्य) वती है ॥११७॥ जहां पौर (पुरवासी) नियममें तत्पर और नित्य न्यायमार्गानुवर्त्ती हैं और जिस स्थानके समस्त मनुष्य मात्सर्यहीन हैं, उस स्थानमें वास करनेसे सुखोदय होता हैं ॥११८॥ जिस स्थानके कृषकगण सदा अतिभोगरहित हैं, जिस स्थानमें असंख्य असंख्य औषधी उत्पन्न होती हैं बुद्धिमान् पुरुषको उसी स्थानमें वास करना चाहिये॥११९॥हे पुत्र!जिस स्थानमें जिगीषु अर्थात् (जीतनेकी इच्छावाले)पूर्वशत्रु और सदा उत्सवोन्मत्त इन तीन प्रकारके मनुष्य वास करते हैं वहां वास करना उचित नहीं है॥१२०॥सुशील सहवासियोंमें बुद्धिमान्को वास करना चाहिये।हेवत्स!यह

पौराःसुसंयतायत्रसततंन्यायवर्त्तिनः ॥ यत्रामत्सरिणोलोकास्तत्रवासःसुखोदयः ॥ ११८ ॥ यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रेप्रायशोनातिभोगिनः ॥ यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षणः ॥ ११९ ॥ तत्रपुत्रनवस्तव्यंयत्रैतत्त्रितयंसदा ॥ जिगीषुःपूर्ववैरश्चजनश्चसततोत्सवः ॥ १२० ॥ वसेन्नित्यंसुशीलेषुसहवासिषुपण्डितः ॥ इत्येतत्कथितंपुत्रमयातेहितकाम्यया ॥ १२१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेअलर्कानुशासनेसदाचारवर्णनंनामएकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ अतःपरंशृणुष्वत्वंवर्ज्यावर्ज्यप्रतिक्रियाम् ॥ भोज्यमन्नंपर्युषितंस्नेहाक्तंचिरसंभृतम् ॥ १ ॥ अस्नेहाश्चापिगोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥ शशकःकच्छपोगोधाश्वाविच्खड्गोऽथपुत्रक ॥ २ ॥ भक्ष्याह्येतेतथावर्ज्यौग्रामशूकरकुक्कुटौ ॥ पितृदेवादिशेषश्चश्राद्धेब्राह्मणकाम्यया ॥ ३ ॥

मैंने तुम्हारे हितकी कामनासे सब वर्णन किया ॥१२१॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायामेकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥ मदालसा बोली--हे वत्स ! अब वर्ज्यावर्ज्य द्रव्यकी प्रतिक्रियाका वर्णन करतीहूं सुनो -बासी अन्न बहुत दिनका संगृहीत स्नेहद्रव्य ॥ १ ॥ और घीरहित गेंहूँका द्रव्य यव और दुग्धविकार (फटा दूध)भोजन न करे,खरगोश; कछुआ, गोय,श्वाविच्च (साही--सेही) खड्गी[1] हे पुत्र ! इन सब जीवोंका मांस ॥ २ ॥ भक्षण करसकता है किन्तु ग्राम्यसूकर और ग्रामकुक्कुट (मुरगा) अभक्ष्य हैं अर्थात् इनको भोजन नहीं करना चाहिये ब्राह्मणोंके लिये श्राद्धमें पितृदेवताओंका जो अवशिष्ट रहता है ॥ ३ ॥

१ गैंडा।

वह मांस और यज्ञादिमें प्रोक्षित और औषधार्थ आया हुआ मांस भोजन दूषणीय नहीं है. शंख, पाषाण, सुवर्ण, चाँदी, रज्जु, वसन ॥ ४ ॥ शाक मूल, फल, विदल, अन्न, चर्म (चमडा) मणि, हीरा, मूँगा, मोती ॥ ५ ॥ और मनुष्यका देह यह सब जलमें धुलनेसे शुद्ध होते हैं धातुपात्र और चमसकी जलसे शुद्धि हो जाती है ॥ ६ ॥ ताँबा, काँसा, राँग, सीसा इनका खटाईके जलसे तथा क्षारसे विधिपूर्वक शौच करना चाहिये ॥७॥ जलद्वारा लोहमय पदार्थकी घर्षण द्वारा पाषाणकी और स्नेहजलसे घृतयुक्त पात्रकी शुद्धि होती है ॥८॥ छाजधान्य, मृग, चर्म, मूसल, ओखली और मलीन वस्त्र यह सब वस्तु जलमें प्रोक्षण करनेसे शुद्ध होतीहैं॥९॥सब प्रकारका वल्कल और

प्रोक्षितंचौषधार्थंचखादन्मांसंनदुष्यति ॥ शङ्खाश्मस्वर्णरूप्याणांरज्जूनामथवाससाम् ॥ ४ ॥ शाकमूलफलानांचतथाविदलचर्मणाम् ॥ मणिवज्रप्रवालानांतथामुक्ताफलस्यच ॥ ५ ॥ गात्राणांचमनुष्याणामम्बुनाशौचमिष्यते ॥ पात्राणांचमसानांचवारिणाशुद्धिरिष्यते ॥ ६ ॥ ताम्रायःकांस्यरैत्यानांत्रपुषःसीसकस्यच ॥ शौचंयथार्हंकर्तव्यंक्षाराम्लोदकवारिभिः ॥ ७ ॥ तथायसानांतोयेनग्राव्णःसंघर्षणेनच ॥ सस्नेहानांचभाण्डानांशुद्धिरुष्णेनवारिणा ॥ ८ ॥ शूर्पधान्याजिनानांचमुशलोलूखलस्यच ॥ संहतानांचवस्त्राणांप्रोक्षणात्संचयस्यच ॥९॥ वल्कलानामशेषाणामम्बुमृच्छौचमिष्यते ॥ तृणकाष्ठौषधीनांचप्रोक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ १० ॥ आविकानांसमस्तानांकेशानांचापिमेध्यता ॥ सिद्धार्थकानांकल्केनतिलकल्केनवापुनः ॥११॥ साम्बुनानानभवेच्छुद्धिरुपघातवतांमता ॥ तथाकार्पासिकानांचविशुद्धिर्जलभस्मना ॥ १२ ॥ नागदन्तास्थिशृङ्गाणांतत्क्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥ पुनःपाकेनभाण्डानांपार्थिवानांचमेध्यता ॥ १३ ॥

मृत्तिकाभी जलके संयोगसे शुद्ध होती है, तृण काष्ठ और समस्त औषधि जलसे प्रोक्षण करनेपर शुद्ध होती हैं ॥१०॥मेषके रोमसे बने वस्त्र और केश, इन दोनों वस्तुके किसी प्रकार दूषित होनेपर जलयुक्त सरसोंके कल्क वा तिलकल्कद्वारा शुद्ध करे ॥ ११ ॥ और इनके बिगडनेसे जलद्वारा ही इनकी शुद्धि हो जाती है, तथा जल और भस्मसे कार्पासनिर्मित वस्तुकी शुद्धि होती है॥१२॥हाथीदांत और उसकी अस्थि, सींग, इनकी तत्काल वैसेही शुद्धि है, मिट्टीका पात्र दूसरीवार पकानेसे शुद्ध होता है ॥१३॥

भिक्षालब्ध वस्तु, शिल्पकारका हाथ, बाजारकी वस्तु, स्त्री जातीका मुख, बालकका मुख, अपना मुख और वृद्धपुरुषका मुख स्वयं पवित्र हैं ॥ १४ ॥ मार्गमें आता हुआ, अविज्ञात, दासवर्गादि द्वारा ताड़नाको प्राप्त हुआ. बहुत दिनोंका अतीत, अनेक बखेडोंवाला और लघुजन वाक्यमात्रसे ही शुद्ध होता है ॥ १५ ॥ बहुत बालक और वृद्ध तथा आतुर मनुष्यका कर्म, यह भी स्वभावसे ही शुद्ध है. कर्मसमापनके पीछे अंगारशाला, जिसका बालक स्तन नहीं छोडता ऐसी स्त्री ॥ १६ ॥ और गंध रहित, बुद्बुदरहित और स्रोतःसंयुक्त जल विशुद्ध है, कालसे तथा बुहारने और गौके चरनेसे भूमि शुद्ध हो जाती है ॥ १७ ॥ लीपनेसे, खुरचनेसे जल छिडकनेसे तथा मार्जन और अर्चन,

शुचिर्भैक्षंकारुहस्तैःपण्यंयच्चप्रसारितम् ॥ योषिन्मुखंबालमुखमात्मवृद्धमुखंतथा ॥ १४ ॥ रथ्यागतमविज्ञातंदासवर्गादिनाहृतम् ॥ वाक्प्रशस्तंचिरातीतमनेकान्तरितंलघु ॥ १५ ॥ अतिप्रभूतंबालंचवृद्धातुरविचेष्टितम् ॥ कर्मान्ताङ्गारशालाश्चस्तनन्धयसुताः स्त्रियः ॥ १६ ॥ अभ्यस्यचतथावाचःस्रवन्त्योऽनन्धबुद्बुदाः ॥ भूमिर्विशुध्यतेकालादाहमार्जनगोक्रमैः ॥ १७ ॥ लेपादुल्लेखनात्सेकाद्वेश्मसंमार्जनार्चनात् ॥ केशकीटावपन्नेऽन्नेगोघ्रातेमक्षिकान्विते ॥ १८ ॥ मृदंबुभस्मनातातप्रोक्षितव्यंविशुद्धये ॥ औदुम्बराणामम्लेनक्षारेणत्रपुसीसयोः ॥ १९ ॥ भस्माम्बुभिश्चकांस्यानांशुद्धिःप्लावोद्रवस्यच ॥ अमेध्याक्तस्यमृत्तोयैर्गन्धापहरणेनच ॥२०॥ अन्येषांचैवतद्द्रव्यैर्वर्णगन्धापहारतः ॥ चांडालैरंत्यजैश्चैवम्लेच्छैरस्पृश्यजातिभिः ॥२१॥ स्पृष्टमक्षालितंधान्यमनर्हंसर्वकर्मणि ॥ द्रोणादधस्तुयद्धान्यंतस्यायंविधिरुच्यते ॥ २२ ॥

इन सबके द्वारा गृहकी शुद्धि करनी चाहिये। हे तात ! मृत्तिका, सलिल और भस्मद्वारा प्रोक्षण करके केश कीटसंयुक्त, गौके सूंघे और मक्षिकायुक्त द्रव्यादिकी शुद्धि करे, गूलरकाष्ठके बने पात्रादिकी खटाईसे, रांग और सीसेकी क्षारसे ॥ १८ ॥ १९ ॥ तथा कांसेकी भस्म और जलसे शुद्धि करनी चाहिये, जो सब द्रव्य अभेध्य वस्तुसे संसक्त हो मिट्टी और जलद्वारा उनकी गंध दूर करनेपर ॥ २० ॥ एवं अन्यान्य वस्तुका वर्णन और गंध दूरकरनेसे वह शुद्ध होता है। चाण्डाल, अन्त्यज, म्लेच्छ और छूनेके अयोग्य जातियोंसे ॥ २१ ॥ छुआ और धोया धान्य सब कार्योंमें अयोग्य है, यह द्रोणसे कमती धान्यमें जानना ॥ २२ ॥

और जो धान्य द्रोणपरिमाणसे[1] अधिक हो, वह प्रोक्षणसेही शुद्ध हो जाता है, गलीमें पड़हुए धान्यको देखकर यत्नसे प्रणाम करना चाहिये ॥ २३ ॥ और उसे उठाकर शिरपर धरे. अन्यथा लक्ष्मी क्रोध करती हैं, जितने जलमें गौकी तृप्ति हो सकती है जो अपने स्वभावमें स्थित हो, पृथ्वीमें हो ॥ २४ ॥ और चाण्डाल तथा क्रव्याद द्वारा मारे हुए जीवोंका मांस भी शुद्ध कहा गया है हे वत्स ! गलियोंमें पड़े पुराने वस्त्र वायुद्वाराही शुद्ध होते हैं ॥ २५ ॥ धूलि, अग्नि, अश्व, गौ, छाया, सूर्यादिकी किरणें, वायु, पृथ्वी, जलकी बूँदे और मक्खी इत्यादि दुष्टके संसर्गसे भी दूषित नहीं होतीं अर्थात् इनका स्पर्श अपवित्र स्थानोंपर रहनेसे भी यह शुद्ध है ॥ २६ ॥ बकरी और अश्वका मुख पवित्र

द्रोणादूर्ध्वंतुयद्धान्यंप्रोक्षणादेवशुध्यति ॥ रथ्यासुपतितंधान्यंदृष्ट्वायत्नेनवंदयेत् ॥२३॥ उद्धृत्यमूर्ध्नाचादद्याल्लक्ष्मीर्नश्यतिचान्यथा ॥ शुचिगोतृप्तिकृत्तोयंप्रकृतिस्थंमहीगतम् ॥ २४ ॥ तथामांसंचचंडालक्रव्यादादिनिपातितम् ॥ रथ्यागतंचचेलादितातवाताच्छुचि स्मृतम् ॥ २५ ॥ गजोऽग्निरश्वोगौश्छायारश्मयःपवनोमही ॥ विप्रुषोमक्षिकाद्याश्चदुष्टसङ्गाददोषिणः ॥ २६ ॥ अजाश्वौमुखतोमे ध्यौनगोर्वत्सस्यचाननम् ॥ मातुःप्रस्रवणंमेध्यंशकुनिःफलपातने ॥ २७ ॥ आसनंशयनंयानंनावःपथितृणानिच ॥ सोमसूर्यांशुपवनैःशुध्यन्तेतानिपण्यवत् ॥ २८ ॥ रथ्याप्रसर्पणेस्नानेक्षुतपानान्नकर्मसु ॥ आचामेतयथान्यायंवासोविपरिधायच ॥ २९ ॥ स्पृष्टानामप्यसंस्पृश्यैर्विरथ्याकर्दमांभसाम् ॥ पंकेष्टरचितानांचमेध्यतावायुसंगमात ॥ ३० ॥ प्रभूतोपहतादन्नादग्रमुद्धृत्यमंत्यजेत् ॥ शेषस्थप्रोक्षणंकुर्यादाचम्याद्भिस्तथामृदा ॥३१॥

है. गोवत्सका मुख अपवित्र है ॥२७॥ आसन, शय्या, यान, नौका मार्गमें स्थित तृण, चन्द्र सूर्यकी किरण और वायु, यह सब बाजारके द्रव्य के समान शुद्ध हैं ॥ २८ ॥ मार्गभ्रमण, स्नान, छींक, पान और मलमूत्रविसर्जन, इन सब कार्योंके पीछे तथा वस्त्रपरिवर्तनके पीछे यथाविधि आचमन करना चाहिये ॥ २९ ॥ मार्गकी कीच, जल, ईंट और कीचसे लिप्त द्रव्यादिके संसर्गदोषसे दूषित होनेपर वह वायुके संसर्गसे शुद्ध होता है ॥ ३० ॥ अन्नका ढेर यदि किसी प्रकारसे दूषित होजाय तो उसका अग्रभाग

[1] बत्तीस सेरका एक द्रोण होता है ।

पृथक् करके त्याग करे फिर जल और मृत्तिका द्वारा आचमनकर शेष अंश जल छिडकनेसे शुद्ध होता है ॥ ३१ ॥ बिना जाने दुष्टान्नभोजन करनेपर तीन रात्रि उपवासी रहे और जान पूछकर भोजन करनेसे विधानानुसार उस दोषके शान्त करनेको प्रायश्चित्तका अनुष्ठान करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ऋतुमती स्त्री श्वान, गीदड़, आदि सूतिका चाण्डाल और शववाहक अर्थात् मृतक उठाने वाला इन सबका स्पर्श होनेपर स्नान करके शुद्ध होताहै ॥ ३३ ॥ स्नेहयुक्त मनुष्यके अस्थिका स्पर्श होनेसे स्नानकर शुद्ध होता है। और स्नेहरहित अस्थिस्पर्श करनेपर आचमन करके गोस्पर्श और सूर्यका दर्शन करनेसे ही शुद्ध होता है ॥ ३४ ॥ रुधिर, खखार और

उपवासस्त्रिरात्रंतुदुष्टभक्ष्याशिनोभवेत्॥ अज्ञातेज्ञानपूर्वेतुतद्दोषोपशमेनतु ॥ ३२ ॥ उदक्याश्वसृगालादीन्सूतिकान्त्यावसायिनः॥ स्पृष्ट्वास्नायीतशौचार्थंतथैवमृतहारिणः ॥ ३३ ॥ नारंस्पृष्ट्वास्थिसस्नेहंस्नातःशुध्यतिमानवः ॥ आचम्यैवतुनिःस्नेहंगामालभ्यार्कमीक्ष्यवा ॥ ३४ ॥ नलंघयेत्तथैवासृक्ष्ष्ठीवनोद्वर्तनानिच ॥ नोद्यानादौविकालेषुप्राज्ञस्तिष्ठेत्कदाचन ॥ ३५ ॥ नचालपेज्जनद्विष्टांवीरहीनांतथास्त्रियम ॥ गृहादुच्छिष्टविण्मूत्रपादाम्भांसिनिक्षिपेद्बहिः ॥ ३६ ॥ पंचपिण्डाननुद्धृत्यनस्नायात्परवारिणा ॥ स्नायीतदेवखातेषुगंगाह्रदसरित्सुच ॥ ३७ ॥ देवतापितृसच्छास्त्रयज्ञमन्त्रादिनिन्दकैः ॥ कृत्वातुस्पर्शमालापंशुध्येतार्कावलोकनात ॥ ३८ ॥ अवलोक्यतथोदक्यामन्त्यजंपतितंशवम् ॥ विधर्मिसूतिकाषण्डविवस्त्रान्त्यावसायिनः ॥ ३९ ॥ मृतनिर्यातकाश्चैवपरदाररताश्चये ॥ एतदेवहिकर्तव्यंप्राज्ञैःशोधनमात्मनः ॥ ४० ॥

उबटन उल्लंघन करना उचित नहीं है बुद्धिमान् पुरुष कभी असमय उद्यानादिमें स्थिति न करे ॥ ३५ ॥ निन्दित और अवीरा नारीके संग बात करनाभी अनुचित है, उच्छिष्ट मल मूत्र और पैरोंका धोया हुआ जलमें घरके बाहर फेंकना चाहिये ॥ ३६ ॥ पंचपिंड बिना उद्धार किये जलमें स्नान न करे। देवखात, गंगा, ह्रद और नदी, इन समस्त जलमें स्नान करे॥ ३७॥ जो व्यक्ति देवता, पितृ, सच्छास्त्र, यज्ञ, मंत्र इत्यादिकी निन्दा करते हैं, हे पुत्र! उनके संग बातचीत वा उनको स्पर्श करनेपर सूर्यका दर्शन करनेसे शुद्ध होताहै ॥ ३८ ॥ ऋतुमती स्त्री, अन्त्यज, (चाण्डालादि) पतिता, शव, विधर्मी, सूतिका (नवप्रसूता) नपुंसक, विवस्त्र पुरुष, अन्त्यावसायी ॥ ३९ ॥ सूतनिर्यातक (प्रसवसंबंधीय)

द्रव्यादिका बाहर निकालनेवाला और परस्त्रीपरायण, इन सबका दर्शन करनेपर सूर्यका दर्शन करके शुद्धिलाभ करना बुद्धिमान मनुष्यका कर्तव्य है ॥ ४० ॥ अभक्ष्य द्रव्य, नवप्रसूता नारी, नपुंसक, मार्जारी (बिलाई) चूहा, कुत्ता, मुर्गा, पतित, आविद्ध (पितामाताके द्वारा त्यागा हुआ व्यक्ति वा परित्यक्त दूषित द्रव्यादि) चाण्डाल, मृतहारी ॥ ४१ ॥ रजस्वला स्त्री, ग्राम्य सूकर और सूतिकाशौचदूषितव्यक्ति, इन सबका स्पर्श करनेपर स्नान करके शुद्ध होता है॥४२॥अब तुम विस्तारसहित स्त्रीधर्मको सुनो भवानी और सब देवता नित्य कुलमें रमते हैं॥४३॥ गंध, पुष्प और अक्षत आदिसे उनका नित्य पूजन करना चाहिये। विशेष करके प्रातःकालके समय देहलीको शून्य न रक्खे जिस पुरुषकी देहली शून्य

अभोज्यसूतिकाषण्डमार्जाराखुश्वकुक्कुटान् ॥ पतिताविद्धचण्डालमृतहारांश्चधर्मवित् ॥ ४१ ॥ संस्पृश्यशुध्यतेस्नानादुदक्याग्रामसूकरौ ॥ तद्वच्चसूतिकाशौचदूषितौपुरुषावपि ॥ ४२ ॥ (अतःपरंशृणुष्वत्वंस्त्रीधर्मान्नगनन्दिनि) ॥ उद्वेगेयेसन्तिनित्यंभवानीगृहदेवता ॥ ४३ ॥ ततःसाप्रत्यहंपूज्यागन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥ अशून्यादेहलीकार्याप्रातःकालेविशेषतः ॥ ४४ ॥ यस्यशून्याभवेत्सातुशून्यंतस्यकुलंभवेत् ॥ पादस्यस्पर्शनंतत्रअसंपूज्यचलंघनम् ॥ ४५ ॥ कुर्वन्नरकमाप्नोतितस्मात्परिवर्जयेत् ॥ प्रातःकालेस्त्रियाकार्यंगोमयेनानुलेपनम् ॥ ४६ ॥ अन्यथासदनेतस्मान्नैवदुःखानिपश्यति ॥ स्पृशन्तिरश्मयोयस्यगृहंसंमार्जनाद्दृते ॥ ४७ ॥ भवन्तिविमुखास्तस्यपितरोदेवमातरः ॥ निशायाःपश्चिमेयामेधान्यसंस्करणादिकम् ॥ ४८ ॥ कुरुतेयानुमोहेनवन्ध्यासाजन्मनिजन्मनि ॥ सन्ध्याकालेतुसम्प्राप्तेमार्जनंनकरोति या ॥ ४९ ॥

रहती है, उसका कुलभी शून्य हो जाता है देहलीको चरणसे स्पर्श करना और विना पूजे लाँघना ॥ ४४ ॥ ४५ ॥ ऐसा करनेसे नरक होता है इस कारण उल्लंघन न करे, बरन प्रातःकालमें स्त्रियोंको गोबरसे लीपना चाहिये ॥ ४६ ॥ क्योंकि प्रतिदिन घर लीपनेसे दुःख दिखाई नहीं देता बुहारी दिये विना जिसके घरमें सूर्यकी किरण पडती हैं ॥ ४७ ॥ उससे पितर देवता और माता विमुख होजाती हैं रात्रिके पिछले पहरमें जो धान्यका संस्कार इत्यादि करती हैं ॥ ४८ ॥ वह अज्ञानताके कारण ऐसा करनेसे जन्म जन्ममें बाँझ होती हैं और जो स्त्रियें संध्या होनेपर घरमें बुहारी नहीं देती ॥ ४९ ॥

वह जन्म जन्ममें स्वामी और धनसे हीन होती हैं और जो मनुष्य लिपी भूमिमें स्वस्तिवाचन नहीं करता है ॥ ५० ॥ उसकी स्त्री तथा धन आयु और यशका नाश हो जाता है बुहारी, चूल्हा, सिलबट्टा ॥ ५१ ॥ इन्हें पैरसे कभी आक्रमण न करे करनेसे पुत्र स्त्री और धनका क्षय होता है. इसी प्रकार ओखली तथा मूशलके वृथा वर्षणसे ॥ ५२ ॥ और चरणसे आक्रमण करनेपर पुरुष पापी होकर उत्तम गतिको प्राप्त नहीं होता. टूटे हुए आसन, योगपट्ट तथा मृगचर्म ॥ ५३ ॥ और काला कंबल, हे तात! इन वस्तुओंका पुत्रवान् पुरुषको सेवन नहीं करना चाहिये जो पुरुष दक्षिणकी ओरको मुख करके अथवा विदिशाओंकी ओरको मुख करके ॥५४॥ बालोंका संस्कार करता है, उसके धनका नाश होजाता है, क्वाँरे बालकको

भर्तृहीनाभवेत्सातुनिःस्वाजन्मनिजन्मनि ॥ अकृतस्वस्तिकांयातुकामलिप्तांचमेदिनीम् ॥ ५० ॥ तस्याःस्त्रियाविनाश्यन्तिवित्तमायुर्यशस्तथा ॥ मार्जनीचुल्लिकाष्ठीवद्दृषदश्चोपलंतथा ॥ ५१ ॥ नाक्रमेदंघ्रिणाजातुपुत्रदारधनक्षयात ॥ उलूखलंचमुसलंतथाचैवतुघर्षणम् ॥ ५२ ॥ पदाक्रमणात्पापीयान्नाप्नोत्युत्तमतांगतिम् ॥ भिन्नामनंयोगपट्टंतथैवमृगचर्मच ॥ ५३ ॥ कृष्णाविकंतथातात वर्जयेत्पुत्रवान्गृही ॥ दक्षिणाभिमुखोयस्तुविदिक्संमुखएवच ॥ ५४ ॥ केशान्संस्कुरुतेमर्त्योधननाशंचविन्दति ॥ अनूढस्तुनकुर्वीतभुक्त्वादन्तविशोधनम् ॥ ५५ ॥ पादुकारोहणंचैवतिलैश्चापिसतर्पणम् ॥ नजीवत्पितृकःकुर्यादर्धकक्षोत्तरीयकम् ॥ ५६ ॥ दर्शश्राद्धंनकुर्वीतदर्शस्नानंकथंचन ॥ पादुकारोहणंचैवयोगपट्टकमेवच ॥ ५७ ॥ नजीवत्पितृकःकुर्याद्गयाश्राद्धंतथैवच ॥ दीपभांडमयीच्छायाबिभीतककुरंटजा ॥ ५८ ॥ वर्जनीयासदापुत्रयदिजीवितुमिच्छति ॥ अधोवस्त्रेणयोवायुंकुरुतेशिरसिद्विजः ॥ ५९ ॥ स्थालेनचर्मशूर्पाभ्यांसुकृतंतस्यनश्यति ॥) ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भवत्याकीर्तिताभोज्यायएतेसूतिकादयः ॥ ६० ॥

भोजन करके दांत कुरदने उचित नहीं है॥५५॥खडाऊंपर चढना तिलोंसे तर्पण आधी धोती शिरसे ओढना जिसका पिता जीवित हो, वह इन बातोंको न करे ॥५६॥ वह पुरुष आमावसमें श्राद्ध और तदर्थ स्नान न करे, खडाऊंपर न चढे, योगपट्ट॥५७॥गयाश्राद्ध, यह जीवितपितावाला न करे, दीपककी बहेडेकी और कुरंटकी छाया ॥५८॥जीनेकी इच्छा करनेवाले पुरुषको सदा त्यागनी चाहिये और जो पुरुष धोतीसे शिरकी हवा करते हैं ॥५९॥स्थाली चर्म और सूर्पसे जो हवा करते हैं; उनका पुण्य नष्ट होजाताहै, अलर्क बोले तुमने जो यह सूतिकादिक भोज्य कहे हैं ॥ ६० ॥

सो अब मैं तुमसे इनके यथार्थ लक्षण सुननेकी इच्छा करता हूं । मदालसा बोली--जो ब्राह्मणी ब्राह्मणकी स्त्री हुई है अर्थात् ब्राह्मणने उसे कर लियाहै ॥६१॥वह दोनों सूतिका और उनका अन्न गर्हित है । जो पुरुष समयपर हवन, भोजन और दान नहीं करता॥६२॥जो पितर और देवताकी पूजासे हीन है. वह षण्ढ कहलाताहै । और जो मनुष्य दिखाई के लिये तप और हवन करता है ॥६३॥ वह परमार्थ नहीं है, पण्डितोंने उसको मार्जार कहाहै । धन होनेपर जो हवन, दान और भोजन नहीं करता॥६४॥उसे चूहा कहा है उसका अन्न भोजन करनेपर व्रत करनेसे शुद्ध होता है. जो पुरुष सभामें प्राप्त हुए मनुष्योंका पक्षपात करता है ॥ ६५ ॥ उसको देवताओंने कुक्कुट (मुरगा) कहा है. उसका अन्न भी

अमीषांश्रोतुच्छामितत्त्वतोलक्षणानिह ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ ॥ ब्राह्मणीब्राह्मणस्येहयावरोधत्वमागता ॥ ६१ ॥ ताबुभौसूतिकेत्युक्तौतयोरन्नंविगर्हितम् ॥ नजुहोत्युचितेकालेनाश्नातिनददाति च ॥ ६२ ॥ पितृदेवार्चनाद्धीनःपंढःसपरिगीयते ॥ दंभार्थंयजतेयश्च तप्यतेचतपस्तथा ॥ ६३ ॥ नपरार्थमिहेत्युक्तःसमार्जारःस्मृतोबुधैः ॥ विभवेसतिनैवात्तिनददातिजुहोतिच ॥ ६४ ॥ तमाहुराखुस्तस्यान्नंभुक्त्वाकृच्छ्रेणशुद्ध्यति ॥ सभागतानांमर्त्यानांपक्षपातंसमाश्रयेत् ॥ ६५ ॥ तमाहुःकुक्कुटंदेवास्तस्याप्यन्नंविगर्हितम् ॥ स्वधर्मंयःसमुच्छिद्यपरधर्मंसमाश्रयेत् ॥ ६६ ॥ अनापदिसविद्वद्भिःपतितःपरिकीर्तितः ॥ देवत्यागीगुरुत्यागीगुरुपत्न्युज्झकस्तथा ॥ ६७ ॥ गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धःप्रचक्षते ॥ येषांकुलेनवेदोस्तिनशास्त्रंनैवचव्रतम् ॥ ६८ ॥ तेनग्नाःकीर्तिताःसद्भिस्तेषामन्नंविगर्हितम्॥ आशाकर्त्तुस्त्वदाताचदातुश्चप्रतिषेधकः ॥ ६९ ॥ शरणागतंयस्त्यजतिसचांडालोनराधमः ॥ योबांधवैःपरित्यक्तःसाधुभिर्ब्राह्मणैरपि ॥ ७० ॥

गर्हित है । जो पुरुष अपना धर्म छोडकर पराये धर्मका आश्रय करताहै॥६६॥वह पुरुष आपत्तिके विना और ऐसा करनेसे पतित कहा गयाहै। देवत्यागी,गुरुत्यागी, गुरुस्त्रीत्यागी,॥६७॥गौ ब्राह्मण और स्त्रीका वध करनेवाला अपविद्ध कहलाता है. जिन पुरुषोंके कुलमें वेद, शास्त्र और व्रत नहीं हैं ॥ ६८ ॥ पण्डितोंने उनको नग्न कहा है. उनका अन्नभी निन्दित है आशा कराकर फिर न दे अथवा देनेवालेसे निषेध करदे ॥ ६९ ॥ जो पुरुष शरणमें आये हुएको छोडता है वह नराधम चण्डाल होता है. जो बांधव साधु और ब्राह्मणोंसे त्यागा गया है ॥ ७० ॥

जो वर्णसंकरके यहां भोजन करता है वह चान्द्रायण करनेसे शुद्ध होताहै,जो नित्य और नैमित्तिक कर्मकी हानि करताहै॥७१॥वह भोजन करने उपरान्त तीन रात व्रत करनेसे शुद्ध होताहै.जिस घरमें नित्यकर्मकी प्रतिदिन हानि होतीहै, और जो ब्राह्मणोंसे त्यागा हुआ है,वह पापी मनुष्योंमें अधम है॥७२॥नित्यकर्मकी कभी हानि न करे.नित्यकर्मका अनुष्ठान करनेसे मरण जन्ममें संवटित होताहै.केवल मात्र मरण कालमें और जन्म कालमें नित्य कर्मका अनुष्ठान न करनेसे कोई दोष नहीं होता ॥७३॥ जन्माशौच और मरणाशौचमें ब्राह्मणगण दश दिनतक दान होमादि नित्यकर्मसे रहित होकर स्थित रहे और क्षत्रियगण बारह दिन वैश्यगण पंद्रहदिन ॥७४॥ और शूद्रगण एक मासतक इसी प्रकारके आचरणमें रहे. रोग और

कुंडाशीयश्चतस्यान्नंभुक्त्वाचांद्रायणंचरेत् ॥ योनित्यकर्मणोहानिंकुर्यान्नैमित्तिकस्यच ॥ ७१ ॥ भुक्त्वान्नंतस्यशुद्ध्यैचत्रिरात्रोपोषितोनरः ॥ यस्यचानुदिनंहानिर्गृहेनित्यस्यकर्मणः ॥ यश्चब्राह्मणसन्त्यक्तःकिल्बिषीसनराधमः ॥ ७२ ॥ नित्यस्यकर्मणोहानिंनकुर्वीतकदाचन ॥ तस्यत्वकरणेबन्धःकेवलंमृतजन्मसु ॥ ७३ ॥ दशाहंब्राह्मणस्तिष्ठेद्दानहोमादिवर्जितः ॥ क्षत्रियोद्वादशाहंचवैश्योमासार्द्धमेवच ॥ ७४ ॥ शूद्रस्तुमासमासीतनित्यकर्मविवर्जितः ॥ रोगग्रहादिविधिनानित्यकर्मविधिच्युतः ॥७५॥ पादकृच्छ्रंततःकृत्वागांदत्त्वाशुद्धिमाप्नुयात् ॥ ततःपरंनिजंकर्मकुर्युःसर्वेयथोदितम् ॥ ७६ ॥ प्रेतायसलिलंदेयंबहिर्गेहाच्चगोत्रिकैः ॥ प्रथमेऽह्नितृतीयेवासप्तमेनवमेतथा ॥ ॥७७॥ भस्मास्थिचयनंकार्यंचतुर्थेगोत्रिकैर्दिने ॥ ऊर्ध्वंसंचयनात्तेषामङ्गस्पर्शोविधीयते ॥ ७८ ॥ सोदकैस्तुक्रियाःसर्वाःकार्याःसंचयनात्परम् ॥ स्पर्शएवसपिण्डानांमृतेहनितथोभयोः ॥ ७९ ॥ वृक्षाहिगोदंष्ट्रिशस्त्रतोयोद्बंधनवह्निषु ॥ विषप्रपातादिमृतेप्रायोनाशकयोरपि ॥ ८० ॥

ग्रहादिकी बांधामें भी नित्यकर्मकी विधि छूट जाती है ॥ ७५ ॥ उसमें पादकृच्छ्र व्रत करे और गोदान करनेसे शुद्ध होताहै.इसके पीछे शास्त्रोक्तविधानसे सब अपने अपने कार्यका अनुष्ठान करे॥७६॥सगोत्रीयगण बहिर्भागमें मृतदेह दग्धकर प्रथम, चतुर्थ,सप्तम और नवम दिनमें प्रेतके उद्देश्यसे जलदान करें॥७७॥चौथे दिनमें भस्म और अस्थिचयन करना चाहिये और अस्थिसंचयनके पीछे उसका अंग स्पर्श करना उचित है॥७८॥संचयके पीछे समानोदक पुरुष सब क्रिया समापन करे मृत दिवसमें सपिण्ड और समानोदक व्यक्तिका स्पर्श करना चाहिये॥७९॥शस्त्र,जल,बंध स्थान, वह्नि, विष

और पर्वतसे गिरने प्रायोपवेशन करने और अनशन करने इत्यादिमें मृत्यु होनेपर सगोत्र और समानोदक व्यक्तिका एक दिन आशौच होताहै ॥८०॥ बालक देशान्तरवासी और प्रव्रज्याश्रमीकी मृत्यु होनेपर तत्काल शौच होता है किसी किसीके मतसे त्रिरात्र आशौचकी व्यवस्था है ॥ ८१ ॥ फिर इनकी और्ध्वदेहिका क्रिया और जलदान नहीं होता गर्भस्रावमें भी यही विधि है पूर्णकालमें शुद्धि होतीहै॥८२॥ब्राह्मणोंके यहां गर्भपातमें एक दिनरात क्षत्रियोंके तीन दिन वैश्योंके छः दिन और शूद्रोंकी बारह दिनमें शुद्धि होतीहै॥८३॥एक पुरुषके मरनेपर उसीके आशौचमें अपर किसी सपिंडकी मृत्यु होनेपर प्रथम पुरुषके मृत्यु दिनकी गणनामें परव्यक्ति आशौचशुद्धिक्रिया पूर्ण करे ॥ ८४ ॥ जन्माशौचमेंभी सपिण्ड और समा

बालेदेशान्तरस्थेचतथाप्रव्रजितेमृते ॥ सद्यःशौचमथान्यैश्चत्र्यहमुक्तमशौचकम् ॥ ८१ ॥ नैवौर्ध्वदैहिकंकार्यंनचकार्योदकक्रिया ॥ गर्भस्रावेतदेवोक्तंपूर्णकालेनशुध्यति ॥ ८२ ॥ ब्राह्मणानामहोरात्रंक्षत्रियाणांदिनत्रयम् ॥ षड्रात्रमपिवैश्यानांशूद्राणांद्वादशाह्निकम् ॥ ८३ ॥ सपिण्डानांसपिण्डस्तुमृतेऽन्यस्मिन्मृतोयदि ॥ पूर्वाशौचसमाख्यातैःकार्यातस्यदिनैःक्रिया ॥८४॥ एषएवविधिर्दृष्टोजन्मन्यपिहिसूतके ॥ सपिण्डानांसपिण्डेषुयथावत्सोदकेषुच ॥ ८५ ॥ जातेपुत्रेपितुःस्नानंसचैलंतुविधीयते ॥ मृतेहिसर्वबन्धूनामित्याहभगवान्भृगुः ॥ ८६ ॥ तत्रापियदिचान्यस्मिञ्जातेजायेतचापरः ॥ तत्रापिशुद्धिरुद्दिष्टापूर्वजन्मवतोदिनैः ॥ ८७ ॥ दशद्वादशमासार्द्धमाससंख्यौदिनैर्गतैः ॥ स्वाःस्वाःकर्मक्रियाःकुर्युःसर्वेवर्णायथाविधि ॥ ८८ ॥ प्रेतमुद्दिश्यकर्त्तव्यमेकोद्दिष्टंततःपरम् ॥ सपिंडीकरणंचैवकार्यमावत्सरान्नरैः ॥ ८९ ॥ ततःपितृत्वमापन्नेदर्शपूर्णादिभिस्त्रिभिः ॥ प्रीणयंस्तस्यकर्तव्ययथाश्रुतिनिदर्शनम् ॥ ९० ॥

नोदक पुरुषकी इसी प्रकार विधि निर्दिष्ट है ॥८५॥ पुत्र उत्पन्न होनेपर पिताको सवस्त्र स्नान करना चाहिये और मृत्युमें सब बंधु सवस्त्र स्नान करें, यह भगवान् भृगुने कहा है ॥८६॥ यदि एकके जन्म ग्रहण करनेपर अन्य एक जन्म ले तो पहिलेके जन्मकी शुद्धिके दिन उसकी भी शुद्धि हो सकतीहै ॥ ८७ ॥ ब्राह्मणादि समस्त वर्णही विधानानुसार दशदिन, बारह दिन, पक्ष और एक मासका अवलम्बन करके निज निज वर्णके अनुसार कार्यादि निर्वाह करे ॥ ८८ ॥ फिर प्रेतके उद्देश्यसे एकोद्दिष्ट करना चाहिये और वर्ष दिनतक सपिण्डीकरण करलेना चाहिये ॥ ८९ ॥ अनन्तर प्रेतके पितृत्व प्राप्त होनेमें दर्शपौर्णमासको वेदानुसार पितरकी तृप्ति करनी चाहिये ॥ ९० ॥

और ब्राह्मणोंके निमित्तदान देने चाहियें, जो जो लोकमें इष्ट और अपनेको प्रिय हो वा प्रिय वस्तु घरमें हो ॥ ९१ ॥ वह अक्षयकी इच्छा करनेवालेको गुणीके निमित्त देनी चाहिये प्रेतके उद्देश्यसे भूमि धेनु आदि ॥ ९२ ॥ देनेसे पितर संतुष्ट होते हैं. हे पुत्र ! फिर आशौचके पूर्ण होनेपर सलिल, सवारी और शस्त्रका स्पर्श करके ॥ ९३ ॥ तथा चाबुक, दण्ड स्पर्शकर सब वर्ण क्रमानुसार निज निज कार्य करें अपने वर्णानुसार क्रिया करनेसे मंगल होता है ॥ ९४ ॥ और पवित्र होकर क्रिया करनेसे दोनों लोकमें मंगल होता है. बुद्धिमानको नित्य प्रति तीन वेदका पाठ करना चाहिये ॥ ९५ ॥ धर्मानुसार धन उपार्जन करके यज्ञका अनुष्ठान करे और हे पुत्र ! जिससे आत्मा निन्दित न हो वह करे

दानानिचैवदेयानिब्राह्मणेभ्योमनीषिभिः ॥ यद्यदिष्टतमंलोकेयच्चास्यदयितंगृहे ॥९१॥ तत्तद्गुणवतेदेयंतदेवाक्षयमिच्छता ॥ प्रेतंप्रेतं समुद्दिश्यभूमिधेन्वादिकंस्वकम् ॥ ९२ ॥ दद्याद्येनास्यसंप्रीताःपितरःसंतिपुत्रक ॥ पूर्णैस्तुदिवसैःस्पृष्ट्वासलिलंवाहनायुधम् ॥ ९३ ॥ प्रतोददण्डौचतथासम्यग्वर्णाःकृतक्रियाः ॥ स्ववर्णधर्मनिर्दिष्टमुपादानंतथाक्रियाः ॥ ९४ ॥ कुर्युःसमस्ताःशुचिनःपरत्रेहचभूतिदाः ॥ अध्येतव्यात्रयीनित्यंभवितव्यंविपश्चिता ॥ ९५ ॥ धर्मतोधनमाहार्ययष्टव्यंचापियत्नतः ॥ यच्चापिकुर्वतोनात्माजुगुप्सामेतिपुत्रक ॥ ९६ ॥ तत्कर्त्तव्यमशंकेनयन्नगोप्यंमहाजने ॥ एवमाचरतोवत्सपुरुषस्यगृहेसतः ॥ धर्मार्थकामसंप्राप्त्यापरत्रेहचशोभनम् ॥९७॥ इतिश्रीमार्कंडेयपुराणेऽलर्कानुशासनेधर्माधर्मनिरूपणंनामद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जडउवाच ॥ ॥ सएवमनुशिष्टःसन्मात्रासंप्राप्ययौवनम् ॥ ऋतध्वजसुतश्चक्रेसम्यग्दारपरिग्रहम् ॥१॥ पुत्रांश्चोत्पादयामासयज्ञैश्चाप्ययजद्विभुः ॥पितुश्चसर्वकालेषुचकाराज्ञानुपालनम् ॥ २ ॥

॥९६॥ जो महाजनोंके समीप गोपनीय नहीं है,निःशंक होकर ऐसे कर्ममें प्रवृत्त होना चाहिये.हे वत्स ! गृहस्थाश्रमी इसप्रकार आचरण करनेसे धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्गलाभ और इस लोक तथा परलोक दोनोंमें कल्याणलाभ करते हैं ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥ ३२ ॥ जडने कहा। जननीके इस प्रकार अनुशासन करनेपर ऋतध्वजनंदनने यौवनको प्राप्त हो सम्यक् विधानानुसार विवाह किया ॥ १ ॥ क्रमशः पुत्र उत्पादन और विविध यज्ञका अनुष्ठानपूर्वक निरन्तर पिताकी आज्ञामें रहने लगे॥ २ ॥

अनन्तर दीर्घकाल बीतनेपर जब चरम अवस्था उपस्थित हुई, तब धर्मात्मा महाभाग महीपति ऋतध्वजने तपस्याके लिये स्त्री सहित वनमें जानेकी इच्छा करके पुत्रको युवराज्यपदमें अभिषिक्त किया ॥ ३ ॥ ४ ॥ तब मदालसा पुत्रका कामभोग निवृत्त करनेकी अभिलाषासे शेष वचनोंके द्वारा इस प्रकार कहने लगी ॥ मदालसा बोली--जब तुमको प्रिय वा बंधुके वियोगका असह्य दुःख प्राप्त हो वा शत्रुबाधा वा धन नाशसे दुःख हो ॥ ५ ॥ ६ ॥ हे वत्स ! गृहस्थ सदा ही ममतापरायण है, सुतरां स्वाभाविकही दुःखका आस्पदस्वरूप है. इसी कारण कहती हूं कि, गृहस्थ धर्मावलम्बी होकर राज्यशासन करते करते दुःख उपस्थित हो, तिस समय मेरी दी हुई इस अंगुलीयसे पत्र बाहर करके इसके

ततःकालेनमहतासंप्राप्यचरमंवयः ॥ चक्रेऽभिषेकंपुत्रस्यतस्यराज्येऋतध्वजः ॥ ३ ॥ भार्ययासहधर्मात्मायियासुस्तपसेवनम् ॥ अवतीर्णोमहीरक्षोमहाभागोमहीपतिः ॥ ४ ॥ मदालसाचतनयंप्राहेदंपश्चिमंवचः ॥ कामोपभोगसंसर्गप्रहाणायसुतस्यवै ॥ ५ ॥ ॥ मदालसोवाच ॥ यदादुःखमसह्यंतेप्रियबन्धुवियोगजम् ॥ शत्रुबाधोद्भवंवापिवित्तनाशात्मसंभवम् ॥ ६ ॥ भवेत्तत्कुर्वतोराज्यं गृहधर्मावलम्बिनः ॥ दुःखायतनभूतोहिममत्वालम्बनोगृही ॥ ७ ॥ तदास्मात्पुत्रनिष्कृष्यमदत्तादंगुलीयकात् ॥ वाच्यंतेशासनं पट्टेसूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ॥ ८ ॥ जडउवाच ॥ इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णंसांगुलीयकम् ॥ आशिषश्चापियायोग्याःपुरुषस्यगृहे सतः ॥ ९ ॥ ततःकुवलयाश्वोऽसौसाचदेवीमदालसा ॥ पुत्रायदत्त्वातद्राज्यंतपसेकाननंगतौ ॥ १० ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेमदाल सोपाख्याननामत्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जडउवाच ॥ सोऽप्यलर्कोयथान्यायंपुत्रवन्मुदिताःप्रजाः ॥ पालयामासधर्मात्मास्वेस्वे कर्मण्यवस्थिताः ॥ ॥ १ ॥

मध्यस्थ सूक्ष्माक्षरोंसे लिखित शासनपाठ करना ॥ ७ ॥ ८ ॥ जड़ने कहा—मदालसाने इस प्रकार कहकर अपनी सुवर्णकी अँगूठी प्रदानपूर्वक पुत्रको गृहस्थके उपयुक्त आशिर्वाद दिया ॥ ९ ॥ तदन्तर कुवलयाश्व पुत्रको राज्यप्रदानपूर्वक तपस्यार्थ देवी मदालसाके सहित वनमें चले गये ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे मदालसाख्याने भाषाटीकायां त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३३ ॥ जड़ने कहा—धर्मात्मा अलर्कके न्यायानुसार पुत्रके समान प्रजापालन करनेसे उन्होंने परम आनन्द प्राप्त किया और सब स्वस्वविहित कार्यानुष्ठानमें प्रवृत्त हुए ॥ १ ॥

उन्होंने दुष्ट पुरुषोंको दंडविधान और शिष्टपुरुषोंका पालन करके परमानंदलाभ और अनेक प्रकार श्रेष्ठ यज्ञ संपादन किये ॥ २ ॥ कालक्रमसे उनके अनेक पुत्र उत्पन्न हुए। वह सब महाबल पराक्रान्त, धर्मात्मा महात्मा और कुमार्गके नष्टकरनेवाले थे ॥ ३ ॥ अलर्क आत्मवान् होकर धर्मके सहित अर्थका और अर्थके सहित धर्मका रक्षण एवं धर्म और अर्थ इन दोनोंके अविरोधमें विषयभोग करने लगे ॥ इस प्रकारसे धर्म, अर्थ और काम इस त्रिवर्गके अनुसारी होकर पृथ्वी पालन करते करते उनको बहुत वर्ष एक दिनके समान बीत गये ॥ ५ ॥ प्रियतम विषय संभोग करके भी उनको वैराग्यका संचार और धर्म अर्थोपार्जनके प्रति पूर्णताका उदय न हुआ ॥ ६ ॥

दुष्टेषुदंडंशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ॥ कुर्वन्परांमुदंलेभेइयाजचमहामखैः ॥ २ ॥ अजायंतसुताश्चास्यमहाबलपराक्रमाः ॥ धर्मात्मानोमहात्मानोविमार्गपरिपन्थिनः ॥ ३ ॥ चकारसोऽर्थंधर्मेणधर्ममर्थेनवापुनः ॥ तयोश्चैवावीरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥ ४ ॥ एवंबहूनिवर्षाणितस्यपालयतोमहीम् ॥ धर्मार्थकामसक्तस्यजग्मुरेकमहर्यथा ॥ ५ ॥ वैराग्यंनास्यसंजज्ञेभुंजतोविषयान्प्रियान् ॥ नचाप्यलमभूत्तस्यधर्मार्थोपार्जनंप्रति ॥ ६ ॥ तंतथाभोगसंसर्वप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ॥ सुबाहुर्नामशुश्रावभ्रातातस्यवनेचरः ॥ ७ ॥ तंबुबोधयिषुःसोऽथचिरंध्यात्वामहामतिः ॥ तद्वैरिसंश्रयंतस्यश्रेयोऽमन्यतभूपतेः ॥ ८ ॥ ततःसकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ॥ स्वराज्यमाप्तुमागच्छद्बहुशःशरणंकृती ॥ ९ ॥ सोऽपिचक्रेबलोद्योगमलर्कंप्रतिपार्थिवः ॥ दूतंचप्रेषयामास राज्यमस्मैप्रदीयताम् ॥ ॥ १० ॥ सोऽपिनैच्छत्तदादातुमाज्ञापूर्वंस्वधर्मवित् ॥ प्रत्युवाचचतंदूतमलर्कःकाशिभूभृतः ॥ ११ ॥

अलर्कका सुबाहु नाम एक भाई पहिलेसे ही वनवास आश्रय करता था, उसने अलर्ककी भोग संभोगमें प्रमत्तता और परायणताका विषय सुना ॥ ७ ॥ इस कारण उस महामतिने भ्राताको तत्त्वज्ञान होनेकी इच्छासे बहुत कालतक चिन्ता करके अन्तमें उनके शत्रुका आश्रय ग्रहण करनाही श्रेष्ठ समझा ॥८॥ अन्तर कार्यकुशल सुबाहुने स्वीय राज्यलाभकी वासनासे महाबल बल–वाहनयुक्त काशीपतिकी अनेक बार शरण ग्रहण की ॥९॥ काशीराजनेभी अलर्कके प्रतिकूल सेनाका उद्योग करके उनके निकट दूत भेजा और यह कहला भेजा कि, "सुबाहुको राज्य प्रदान करो" ॥ १० ॥ क्षत्रधर्मवित् अलर्कने इस बातको स्वीकार न करके काशिराजके दूतको यह उत्तर दिया कि, ॥ ११ ॥

"मेरे बड़े भ्राता मेरे निकट आकर विनयपूर्वक राज्यकी प्रार्थना करे, मैं आक्रमणके भयसे कणिकामात्र भूमि नहीं दूंगा" ॥ १२ ॥ महामति सुबाहुने प्रार्थना नहीं करी. क्योंकि प्रार्थना करना क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, एक मात्र वीर्यही उनका धन है ॥ १३ ॥ तदनन्तर काशिराज सब सेनासे परिवृत हो महीपति अलर्कके राज्यपर आक्रमण करनेकेलिये आये ॥ १४ ॥ उन्होंने अपने सामन्तराजाओंके सहित मिलित होकर उनके अन्यभृत्योंसहित आगमनपूर्वक आक्रमणके पीछे अलर्कको अपने वशीभूत कर लिया ॥ १५ ॥ उन्होंने भ्राताका राज्य अवरोध पूर्वक सामन्तगणोंको पीडित, दुर्गपाल और आटवीक गण (वनवासी) को वशीभूत ॥ १६ ॥ और किसीको अर्थदानद्वारा, किसीको भेद द्वारा और किसीको

मामेवाभ्येत्यहार्दैनयाचतांराज्यमग्रजः ॥ नाक्रांत्यासंप्रदास्यामिभयेनाल्पामपिक्षितिम् ॥ १२ ॥ सुबाहुर्नपिनोयाञ्चांचक्रामति मांस्तदा ॥ नधर्मःक्षत्रियस्येतियाञ्चावीर्यधनोहिसः ॥ १३ ॥ ततःसमस्तसैन्येनकाशीशःपरिवारितः ॥ आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्र मलर्कस्यमहीपतेः ॥ १४ ॥ अनन्तरैश्चसंश्लेषमभ्येत्यतदनन्तरम् ॥ तेषामन्यतमैर्भृत्यैःसमाक्रम्यानयद्वशम ॥ १५ ॥ अपीडयंश्च सामंतांस्तस्यराष्ट्रोपरोधनैः ॥ तथादुर्गांतपालांश्चचक्रेचाटविकान्वशे ॥ १६ ॥ कांश्चिच्चोपप्रदानेनकांश्चिद्भेदनपाः[illegible] ॥ सांत्वान्यान्वशंनिन्येनिभृतास्तस्ययेऽभवन् ॥ १७ ॥ ततःसोऽल्पबलोराजापरचक्रावपीडितः ॥ कोशक्षयमवापोऽथपुरंचारुध्यतारिणा ॥ १८ ॥ इत्थंसंपीड्यमानस्तुक्षीणकोशोदिनेदिने ॥ विषादमागात्परमंव्याकुलत्वंचचेतसः ॥ १९ ॥ आर्तिंतुपरमांप्राप्यसस्मार[illegible]रांगुलीयकम् ॥ यदुद्दिश्यपुराप्राहमातातस्यमदालसा ॥ २० ॥ ततःस्नातःशुचिर्भूत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ॥ निष्कृष्यशासनं तस्माद्ददृशेप्रस्फुटाक्षरम् ॥ २१ ॥

सामद्वारा अपने वशमें कर लिया ॥ १७ ॥ इस प्रकारसे अलर्क परचक्रद्वारा पीडित होकर क्षीण बल और क्षीणकोष होगये और उनका पुर भी शत्रुके द्वारा अवरुद्ध होगया ॥ १८ ॥ इस प्रकारसे दिन दिन क्षीणकोष और शत्रुके द्वारा पीडित होनेसे वह अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए और उनका चित्त व्याकुल होगया ॥ १९ ॥ क्रमानुसार अत्यन्त आर्त्तभावको प्राप्त होनेपर जननी मदालसाने पहले जो बात कही थी, वही अँगूठीका विषय उनको स्मरण हुआ ॥ २० ॥ तब उन्होंने स्नानपूर्वक पवित्र होकर ब्राह्मणद्वारा स्वस्तिवाचन कराया और वह निबद्ध शासन बाहर करके देखा, उसमें

स्पष्ट स्पष्ट रूपसे अक्षर लिख रहे थे ॥ २१ ॥ माताका लिखा हुआ वह शासनपत्र पढतेही उनका शरीर पुलकायमान और दोनों नेत्र आनन्दसे उत्फुल्ल होगये ॥ २२ ॥ शासनमें लिखा था कि, "सर्वान्तःकरणसे कामका परित्याग करे" यदि संगत्यागमें समर्थ न हो तो वह संग साधुओंके सहित करना चाहिये क्योंकि साधुसंगही जगत्का औषधीस्वरूपहै ॥ २३ ॥ सर्वान्तःकरणसे कामका परित्याग करना उचितहै, यदि उसके त्याग करनेमें समर्थ न हो तो मुक्ति कामनाके प्रतिही उसका करना उचितहै, क्योंकि वही उसकी महौषध है ॥ २४ ॥ इस प्रकार वारम्वार माताके दिये शासनका पाठ करके क्या करनसे मनुष्यको कल्याणलाभ हो मोक्षकामनाही उस कल्याण लाभ होनेका उपाय है और सत्संगही उस मुमुक्षाके

तत्रैवलिखितंमात्रावाचयामासपार्थिवः ॥ प्रकाशपुलकांगोऽसौप्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ॥ २२ ॥ संगःसर्वात्मनात्याज्यःसचेत्त्यक्तुंनशक्यते ॥ ससद्भिःसहकर्त्तव्यःसतांसंगोहिभेषजम् ॥ २३ ॥ कामःसर्वात्मनाहेयोहातुंचेच्छक्यतेनसः ॥ मुमुक्षांप्रतितत्कार्यसैवतस्यापिभेषजम् ॥ २४ ॥ वाचयित्वातुबहुशोनृणांश्रेयःकथंत्विति ॥ मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचतत्सङ्गतोयतः ॥ २५ ॥ ततःससाधुसम्पर्कंचिन्तयन्पृथिवीपतिः ॥ दत्तात्रेयंमहाभागमगच्छत्परमार्तिमान् ॥ २६ ॥ तंसमेत्यमहात्मानमकल्मषमसङ्गिनम् ॥ प्रणिपत्याभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत ॥ २७ ॥ ब्रह्मन्कुरुप्रसादंमेशरण्यःशरणार्थिनाम् ॥ दुःखपाहारंकुरुमेदुःखार्त्तस्यातिकामिनः ॥ ॥ २८ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ दुःखापहारमद्यैवकरोमितवपार्थिव ॥ सत्यंब्रूहिकिमर्थंतेदुःखंतत्पृथिवीपते ॥ २९ ॥ कस्यत्वंकस्यवादुःखंतत्त्वमेवंविचार्यताम् ॥ अंगान्यंगीनिरंगंचससर्वांगानिविचिंतय ॥ ३० ॥

साधनका कारण है॥२५॥ इसप्रकार निश्चयकर साधुसंगलाभकी चिन्ता करने लगे। अतीव आर्त्तभावातुर नरपति इसप्रकारसे चिन्ताकरके अन्तमें महाभाग दत्तात्रेयके निकट गये उन्होंने निष्पाप निःसंग और महानुभाव दत्तात्रेयको प्रणामपूर्वक पूजा करके न्यायानुसार कहा ॥२६ ॥ ॥२७॥ हे ब्रह्मन्! आप मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये, आपही शरणार्थीगणोंका आश्रय हैं, मैं विषयभोगकी कामना करता हुआ दुःखसे अभिभूत होगयाहूं, आप मेरा दुःख दूर कीजिये ॥२८॥ दत्तात्रेय बोले--हे पार्थिव! मैं अभी तुम्हारा दुःख दूर करूंगा. हे पृथ्वीपते! तुम सत्य कहो, किस कारण तुमको दुःखका उदय हुआ है? ॥ २९ ॥ तुम किसके हो? किसका दुःख है? पहले यह विचारकरो। अंग अंगी भाव तथा निरंग इन सब अंगोंको

विचारकरो ॥ ३० ॥ जड़ने कहा--महामति दत्तात्रेयके इसप्रकार पूछनेपर महीपति त्रिविध दुःखका स्थान और आत्मा इन दो विषयकी चिंता करनेसे प्रवृत्त हुए ॥ ३१ ॥ उदारमति धीरप्रकृति नरपति पुनः पुनः अनेक वार आत्मद्वारा आत्मविचार करके हँसते हुए कहने लगे ॥ ३२ ॥ मैं भूमि जल नहीं, ज्योति नहीं, अनिल नहीं और आकाश भी नहीं हूं. किंतु शरीरआश्रयपूर्वक सुखकी वासना करताहूं ॥ ३३ ॥ इस पांचभौतिक शरीरमें सुख दुःख उपस्थित होकर न्यूनातिरिक्तता प्राप्त होती है ॥ ३४ ॥ यदि इसप्रकार हो उसमें भी मेरी क्या हानि ? क्योंकि वे शरीर नहीं. शरीरसे स्वतंत्रभावमें अवस्थित हूं, मेरी न्यूनता अतिरिक्तताकी संभावना नहीं है मुझको नित्य प्रभूत सद्भाव

॥ जडउवाच ॥ ॥ इत्युक्तश्चिन्तयामाससराजातेनधीमता ॥ त्रिविधस्यापिदुःखस्यस्थानमात्मानमेवच ॥ ३१ ॥ सविमृश्यचिरं राजापुनःपुनरुदारधीः ॥ आत्मानमात्मनाधीरःप्रहस्येदमथाब्रवीत् ॥ ३२ ॥ नाहमुर्वीनसलिलंनज्योतिरनिलोनच ॥ नाकाशंकिंतु शारीरंसमेत्यसुखमिष्यते ॥ ३३ ॥ न्यूनातिरिक्ततांयातिपञ्चकेऽस्मिन्सुखासुखम् ॥ यदिस्यान्ममकिंनस्यादन्यस्थेऽपिहितंमयि ॥ ॥ ३४ ॥ नित्यप्रभूतसद्भावेन्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ॥ तथाचममतात्यक्तोविशेषेणोपलभ्यते ॥ ३५ ॥ तन्मात्रावस्थितेसूक्ष्मेतृतीयां शेचपश्यतः ॥ तथैवभूतसद्भावेशारीरंकिंसुखासुखम् ॥ ३६ ॥ मनस्यवस्थितंदुःखंसुखंवामानसंचयत् ॥ यतस्ततोनमेदुःखंसुखंवानह्यहंमनः ॥ ३७ ॥ नाहङ्कारोनचमनोबुद्धिर्नाहंयतस्ततः ॥ अन्तःकरणजंदुःखंपारक्यंममतत्कथम् ॥३८॥ नाहंशरीरंनमनोयतोऽहंपृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ॥ तत्सन्तुचेतस्यथवापिदेहेसुखानिदुःखानिचकिंममात्र ॥ ३९ ॥

उपस्थित होता है,न्यूनाधिक्य वशतः नत और उन्नत भी होता हूं अतएव ममता त्यागकर विशेषरूपसे ज्ञानकी उपलब्धि करना ही उचित है । मैं तन्मात्रावस्थित सूक्ष्म तृतीयांशमें अवस्थित हूं, मेरा शरीर भी भूतसद्भावसंघटित है सुतरां सुख और दुःखकी संभावना कहां है ? ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ सुख और दुःख मनमें ही स्थिति करते हैं, वह मनकाही धर्म है । जब मैं वह मन भी नहीं हूं, तब मुझको सुख भी नहीं और दुःख भी नहीं है ॥ ३७ ॥ जब मैं अहंकार नहीं, मन नहीं और बुद्धि भी नहीं हूं, तब मुझमें अन्तः करण जनित पारक्य दुख अर्थात दूसरेका दिया दुःख किसप्रकारसे संभव हो सकता है ? ॥ ३८ ॥ मैं शरीर नहीं, मन नहीं, मैं शरीर और मनसे पृथक हूं, अत एव सुख मनमें हो वा शरीरमें स्थिति

करे मेरा उसमें क्या ? अर्थात् मेरी उसमें हानि भी नहीं और फल भी नहीं है ॥ ३९ ॥ इस शरीरके अग्रज (बड़ेभाई) ही राज्यकी प्रार्थना करते हैं, यदि यह शरीर पाञ्चभौतिक है तो उसकी गुणप्रवृत्तिमें मेरी क्या आवश्यकता है?क्या अग्रज ? क्या मैं? दोनों ही देहसे पृथक् पदार्थ हैं ॥४०॥जिनके हस्तादि अवयव मांस अस्थि और शिरा विभाग कुछ नहीं है, घोडा, हाथी और रथादि कोषमें उसकी क्या आवश्यकता है ? इसमें पुरुषका कोई संबंध नहीं दीखता ॥४१॥अतएव मेरे शत्रुको दुःख, सुख, पुर, कोष,अश्वगजादि और सैन्य भी नहीं है. जिस प्रकार मेरा कुछ नहीं है इसी प्रकार मेरे अग्रजका और अन्यान्य किसी पुरुषका भी यह सब नहीं हैं॥४२॥एक मात्र अकाश ही जिसप्रकार घटी,कुंभ

राज्यस्यवांछांकुरुतेऽग्रजोऽस्यदेहस्यचेत्पंचमयःराशिः ॥ गुणप्रवृत्त्याममकिंनुतत्रतत्स्थःसचाहंचशरीरतोऽन्यः ॥ ४० ॥ नयस्य हस्तादिकप्यशेषंमांसंनचास्थीनिशिराविभागः ॥ कस्तस्यनागाश्वरथादिकोशैःस्वल्पोपिसम्बन्धइहास्तिपुंसः ॥ ४१ ॥ तस्मान्न मेऽरिर्नचमेऽस्तिदुःखंनमेसुखंनापिपुरंनकोशम् ॥ नचाश्वनागादिबलंनतस्यनान्यस्यवाकस्यचिद्वाममास्ति ॥ ४२ ॥ यथाघटीकुम्भ कमण्डलुस्थमाकाशमेकंबहुधाहिदृष्टम् ॥ तथासुबाहुःसचकाशिपोऽहमन्येचदेहेषुशरीरभेदैः ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्रसंवादे आत्मविवेकोनाम चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३४ ॥ जडउवाच ॥ ॥ दत्तात्रेयंततोविप्रंप्रणिपत्यसपार्थिवः ॥ प्रत्युवाचम हात्मानंप्रश्रयावनतोवचः ॥ १ ॥ सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखंनकिंचन ॥ असम्यग्दर्शिनोमग्नाःसर्वदेवासुखार्णवे ॥२॥ यस्मिन्य स्मिन्ममत्वेनबुद्धिःपुंसःप्रजायते ॥ ततस्ततःसमादायदुःखान्येवप्रयच्छति ॥ ३ ॥ मार्जारभक्षितेदुःखंयादृशंगृहकुक्कुटे ॥ नतादृङ् ममताशून्येकलविङ्केऽथमूषिके ॥ ४ ॥

और कमण्डलु भेदसे अनेक दिखाई देताहै, इसीप्रकार आत्मायक मात्र होकरभी सुबाहु काशिराज और मेरे इत्यादि देहके भेदसे नाना बोध होते हैं ॥४३॥इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां चतुस्त्रिंशोऽध्यायः॥३४॥जडने कहा अनन्तर नरपति विनयसे नम्र हो महात्मा विप्र दत्तात्रेयको प्रणा-मकरके कहने लगे॥१॥हे ब्रह्मन् ! सम्यक् प्रकार दृष्टिका उदय होनेसे मुझको अब कुछभी दुःख नहीं है,असम्यक् दर्शी मनुष्यही सदा दुःखसागरमें निमग्न होतेहैं ॥२॥ मनुष्यकी बुद्धि जिस जिसमें आसक्त होजाती है उसी उसी विषयसे दुःख उत्पन्न होता है॥३॥घरके पालेहुए मुरगेको बिल्लीके

भक्षण करनेपर जिसप्रकार दुःखका उदय होता है ममताशून्य कलविङ्क वा मूषकके भक्षित होनेपर वैसे दुःखकी सम्भावना नहीं है क्योंकि ममता तो मुरगेमें रहतीहै॥४॥मैं सुखीभी नहीं और दुःखीभी नहीं हूं क्योंकि मैं प्रकृतिके अतीत हूं भूतगणके द्वारा भूताभिभवही सुखदुःखात्मक है अर्थात् जो इस संसारमें आसक्त रहता है उसीको सुख दुःख होता है ॥ ५ ॥ दत्तात्रेयने कहा हे नरव्याघ्र ! तुमने जो कहा यह सत्य है ममताही दुःखका कारण और ममताही सुखका मूल है॥६॥मेरे पूछतेही तुम्हारे हृदयमें इस अनुत्तमज्ञानका उदय हुआ है ज्ञानके बलसेही तुम्हारी ममता रुईके समान उड गई है ॥७॥ अहंकाररूपी अंकुरमेही अज्ञानरूपी महावृक्षकी उत्पत्ति हुई है ममत्व उस वृक्षका स्कन्ध है गृह क्षेत्र उसकी

सोऽहंनदुःखीनसुखीयतोऽहंप्रकृतेःपरः ॥ योभूताभिभवोभूतैःसुखदुःखात्मकोहिसः ॥ ५ ॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ एवमेतन्नरव्याघ्र यथैतद्व्याहृतंत्वया ॥ ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिचनिर्वृतिः ॥ ६ ॥ मत्प्रश्नादेवतेज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम ॥ ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्तः शाल्मलितूलवत् ॥ ७ ॥ अहमित्यंकुरोत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ॥ गृहक्षेत्रोच्चशाखश्चपुत्रदारादिपल्लवः ॥ ८ ॥ धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धितः ॥ पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्चसुखदुःखमहाफलः ॥ ९ ॥ अपवर्गपथव्यापीमूढसम्पर्कसेचनः ॥ विधित्साभृङ्गमालाढ्योऽकृत्यज्ञानमहातरुः ॥ १० ॥ संसाराध्वपरिश्रान्तायेतच्छायांसमाश्रिताः ॥ भ्रान्तिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकंकुतः ॥ ॥ ११ ॥ येस्तुसत्सङ्गपाषाणशितेनममतातरुः ॥ छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना ॥ १२ ॥ प्राप्यब्रह्मवनंशीतंनीरजस्कमकण्टकम् ॥ प्राप्नुवन्तिपरांप्राज्ञानिर्वृतिंवृत्तिवर्जिताः ॥ ॥ १३ ॥

उच्चशाखा स्त्री पुत्रादि उसके पल्लव हैं ॥८॥ धन धान्य उसके वृहत् पत्र पुण्यापुण्य प्रधान कुसुम सुखदुःख उसका महाफल ॥९॥ और मोहाभिभूत होकर जो सम्यक् सम्बन्ध किया जाता है वही इस वृक्षका थांवणा है यह वृक्ष दिनमें बढता है और यह वृक्षही मुक्तिमार्गको ढककर स्थित है यह वृक्ष (बनाये रखनेकी कामना रूप भृङ्गमालसे समाकीर्ण है॥१०॥ जो पुरुष संसारपथमें थकगये हैं) और भ्रान्तिज्ञान सुखके अधीन हो इस वृक्षकी छायाका आश्रय करते हैं उनको किस प्रकार मोक्षलाभ होगा?॥११॥जो पुरुष विद्यारूपी कुठारको सत्संगरूपी पत्थरके द्वारा तेजकरके उससे ममतावृक्षके छेदन करनेमें समर्थ होतेहैं ॥ १२ ॥ वही उस मार्गद्वारा ब्रह्मरूप वनमें उपस्थित होते हैं यह वन अतिशय शीतल, रजोविहीन

और कंटकविहीन है. इस वनमें उपस्थित होनेसे वृत्तिरहित होकर परमशुद्धि और निर्वृत्तिलाभ होता है ॥ १३ ॥ हे भूपते ! तुमभी भूते न्द्रियमय वा स्थूल नहीं हो और मैं भी नहीं हूं । हम दोनोंमें कोईभी तन्मात्र नहीं और अन्तःकरणात्मक भी नहीं हैं॥१४॥ हे राजेन्द्र ! हम दोनोंमें किसीकोभी प्रधान अर्थात् प्रकृतिमय देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष,प्रकृतिके अतीत और पाञ्चभौतिक पदार्थही गुणात्मक और प्रकृतिका विषयीभूत है॥१५॥हे राजन् ! मशक और गूलर अर्थात् गूलरमें मच्छर, इषीका(सींक)और मुंज तथा मछली और जल, यह जिसप्रकार एक होकर भी पृथक् भावायुक्त हैं, क्षेत्र और आत्माको भी इसी प्रकार जानना चाहिये ॥ १६ ॥ अलर्कने कहा—हे भगवन् ! आपके प्रसा-

भूतेन्द्रियमयंस्थूलंनत्वंराजन्नचाप्यहम् ॥ नतन्मात्रंमयावाच्यंनैवान्तःकरणात्मकौ ॥ १४ ॥ कंवापश्यामिराजेंद्रप्रधानमिदमावयोः॥ यतःपरोहिक्षेत्रज्ञसंघातोहिगुणात्मकः ॥ १५ ॥ मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसांयथा ॥ एकत्वेऽपिपृथग्भावस्तथाक्षेत्रात्मनो र्नृप ॥ १६ ॥ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वत्प्रसादेनममाविर्भूतमुत्तमम् ॥ ज्ञानंप्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ॥ १७ ॥ किन्त्वत्राविषयाक्रान्तेस्थैर्य्यंवत्त्वंनचेतसि ॥ नचापिवेद्मिमुच्येयंकथंप्रकृतिबन्धनात् ॥१८॥ कथंनभूयांभूयश्चकथंनिर्गुणतामियाम् ॥ कथंचब्रह्मणैकत्वंव्रजयेयंशाश्वतेनवै ॥१९॥ तन्मेयोगंतथाब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ॥ सम्यग्ब्रूहिमहाप्राज्ञसत्सङ्गोह्युपकृन्नृणाम्॥२०॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दत्तात्रेयालर्कसंवादेपंचत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ॥ सामुक्तिर्ब्रह्मणाचैक्यमनैक्यंप्राकृतैर्गुणैः ॥ १ ॥

दसे मुझको प्रधान और चिच्छक्ति विवेक करनेवाला अनुत्तम ज्ञानका उदय हुआ ॥ १७ ॥ किन्तु मेरा चित्त विषयोंमें खींचा रहनेसे मैं स्थिरता धारण नहीं करसकता और किसप्रकार प्रकृतिके बंधनसे छूटूंगा, यहभी नहीं जानसकता ॥१८॥ किसप्रकारसे फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना न हो ? किसप्रकारके अनुष्ठानसे शाश्वत ब्रह्मके सहित एकता प्राप्त हो ॥ १९ ॥ ऐसे योगका मुझको सम्यक् प्रकारसे उपदेश कीजिये ! हे महाप्राज्ञ ! मैं प्रणत होकर आपके निकट प्रार्थना करता हूं । सत्संगही मनुष्यका उपकारसाधन करता है॥२०॥इति मार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥ दत्तात्रेयने कहा—योगारूढ पुरुषोंका ज्ञानलाभके द्वारा अज्ञानसे जो वियोग होता है, उसीको मुक्ति कहा जाता है और प्राकृतिक

गुणोंके सहित अनैक्यही साक्षात ब्रह्मके सहित एकता कही गई है ॥ १ ॥ हे महीपते ! योगसे मोक्ष, सम्यक् ज्ञानसे योग, दुःखसे सम्यक् ज्ञान और ममतासक्त चित्तसेही दुःखका आविर्भाव होता है॥२॥ अतएव मुमुक्षु पुरुष यत्नसहित संग परित्याग करें । विषयासक्ति छोड़तेही "मेरा" यह ज्ञान दूर होजाता है ॥३॥ निर्ममताही सुखका कारण और वैराग्यका संचार होनेपरही संसारके समस्त दोष* स्पष्टरूपसे हृदयङ्गम कर सकता है. ज्ञानसे जिसप्रकार वैराग्यका उदय होता है, वैराग्यसेभी इसी प्रकार ज्ञानका आविर्भाव होता है॥४॥ जिस स्थानमें वास किया जाय उसीको गृह जिसके द्वारा जीवन धारण किया जाय उसीको भोज्य, जिसके द्वारा मोक्षलाभ हो उसीको ज्ञान और इसके अन्यथा होनेसे उसको अज्ञान

योगेचशक्तिर्विदुषांयेनश्रेयःपरंभवेत् ॥ मुक्तिर्योगात्तथायोगःसम्यग्ज्ञानान्महीपते ॥ संगदोषोद्भवंदुःखंममत्वासक्तचेतसाम् ॥ २ ॥
तस्मात्सङ्गंप्रयत्नेनमुमुक्षुःसंत्यजेन्नरः ॥ सङ्गाभावेममेत्यस्याःख्यातेर्हानिःप्रजायते ॥ ३ ॥ निर्ममत्वंसुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ॥
ज्ञानादेवचवैराग्यंज्ञानंवैराग्यपूर्वकम् ॥ ४ ॥ तद्गृहंयत्रवसतिस्तद्भोज्यंयेनजीवति ॥ यन्मुक्तयेतदेवोक्तंज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥ ५ ॥
उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानांचपार्थिव ॥ कर्त्तव्यमितिनित्यानामकामकरणात्तथा ॥ ६ ॥ असंचयादपूर्वस्यक्षायात्पूर्वार्जितस्यच ॥
कर्मणोबन्धमाप्नोतिशरीरंचपुनःपुनः ॥ ७ ॥ कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्यतु ॥ एतत्तेकथितंज्ञानंयोगंचेमंनिबोधमे ॥ यंप्रा
प्यब्रह्मणोयोगीशाश्वतान्नान्यतांव्रजेत् ॥ ८ ॥ प्रागेवात्मात्मनाजेयोयोगिनांमहिदुर्जयः ॥ कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंशृणुष्वमे॥९॥

कहा जाताहै॥५॥ हे पार्थिव ! पुण्यापुण्यका उपभोग होनेसे कामनाविहीन होकर नित्यक्रियाका अनुष्ठान करनेपर॥६॥ पूर्वोपार्जित कर्मका क्षय होने पर और अपूर्व कर्मका असंचय होनेसेही वारंवार शरीरबंधन प्राप्त नहीं होता है राजन् ! यह जो तुम्हारे निकट वर्णन किया इसीको योग कहते हैं । इस योगके लाभ होतेही योगीजन शाश्वत ब्रह्मके अतिरिक्त और किसीकाभी आश्रय नहीं करते ॥ ७ ॥ ८ ॥ सबसे पहिले आत्माके द्वारा आत्माको जय करना चाहिये । क्योंकि यह आत्माही योगियोंको दुर्जय है. सुतरां उसके जीतनेमें यत्नवान् होना उचित है । जिसप्रकार

* दोष—अर्थात संसारकी असारता और अनित्यतादि ।

आत्माको जीतना चाहिये वह कहता हूं—सुनो ॥९॥ दोषोंको प्राणायामद्वारा, पापोंको धारण द्वारा, विषयोंको प्रत्याहार द्वारा और समस्त अनीश्वर गुणोंको ध्यानद्वारा दग्ध करे ॥१०॥ जिस प्रकार दहन द्वारा पर्वतकी समस्त धातु निर्दोषताको प्राप्त होती हैं इसी प्रकार प्राणवायुको निगृही करनेसेही इन्द्रियकृत समस्त दोष दग्ध होते हैं॥ ११ ॥ योगवित् पुरुष प्रथम प्राणायामका साधन करे । प्राण और अपान इन दोनों वायुका निरोधही प्राणायाम कहा गया है ॥१२॥ प्राणायाम तीन प्रकारका है, लघु मध्यम और उत्तरीय. हे अलर्क ! इन तीनों प्राणायामका प्रमाण कहता हूं सुनो ॥१३॥ लघुप्राणायाम द्वादशमात्रायुक्त, मध्यम उससे द्विगुण और उत्तम वा उत्तरीय प्राणायाम उससे त्रिगुण मात्रायुक्त कहागया

प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्बिषम् ॥ प्रत्याहारेणविषयान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ॥ १० ॥ यथापर्वतधातूनांध्माता नांदह्यतेमलम् ॥ तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ॥ ११ ॥ प्रथमंसाधनंकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ॥ प्राणापाननिरोध स्तुप्राणायामउदाहृतः ॥ १२ ॥ लघुमध्योत्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधोदितः ॥ तस्यप्रमाणंवक्ष्यामितदलर्कशृणुष्वमे ॥ १३ ॥ लघुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुणःसतुमध्यमः ॥ त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तमःपरिकीर्त्तितः ॥ १४ ॥ निमेषोन्मेषणेमात्राकालोलघ्वक्षर स्तथा ॥ प्राणायामस्यसंख्यार्थंस्मृतोद्वादशमात्रिकः ॥ १५ ॥ प्रथमेनजयेत्स्वेदमध्यमेनचवेपथुम् ॥ विषादंहितृतीयेनजयेद्दो षाननुक्रमात् ॥ १६ ॥ मृदुत्वंसेव्यमानास्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥ यथायान्तितथाप्राणोवश्योभवतियोगिनः ॥ १७ ॥ वश्यंमत्तं यथेच्छातोनागंनयतिहस्तिपः ॥ तथैवयोगीछन्देनप्राणंनयतिसाधितम् ॥ १८ ॥

है ॥ १४ ॥ निमेष और उन्मेष, इन दोनोंका समयही मात्राका काल कहकर निर्दिष्ट है अर्थात् यही एक मात्रा है. इसप्रकार द्वादश मात्रा होनेसेही लघुप्राणायाम होता है ॥ १५ ॥ प्रथम प्राणायाम द्वारा स्वेद (पसीना) दूसरेके द्वारा वेपथु अर्थात् कम्प,और तीसरे प्राणायाम द्वारा यथाक्रमसे विषादादि दोषोंको जीतना चाहिये ॥१६॥ सिंह व्याघ्र और हाथी जिस प्रकार सेवा द्वारा मृदुत्व (कोमलता) को प्राप्त होते हैं,इसी प्रकार प्राण और प्राणायाम द्वारा योगियोंमें वशता प्राप्त होती है ॥ १७ ॥ हाथीवान् जिस प्रकार वशीभूत मत्त हाथीको अपनी इच्छानुसार चलाता है योगीजन भी इसी प्रकार प्राणसाधित होनेपर उसके द्वारा सहजमें ही अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं ॥ १८ ॥

साधित सिंह जिसप्रकार मृगगणोंको निहत करता है किन्तु मनुष्यादिको नहीं मारता । इसी प्रकार प्राणवायुकी साधना करनेसे पाप ही नष्ट होते हैं शरीर नष्ट नहीं होता ॥ १९ ॥ अतएव योगी पुरुष सदा प्राणायाम परायण होनेमें यत्नवान् हो । प्राणायामकी अवस्था चार प्रकारकी है, उसके द्वारा मुक्तिफल प्राप्त होजाता है, अब वही कहता हूं, सुनो ॥ २० ॥ हे महीपते ! प्राणायाम चार प्रकार है । ध्वस्ति प्राप्ति, संवित् और प्रसाद । अब क्रमानुसार इनका स्वरूप वर्णन करता हूं, सुनो ॥ २१ ॥ जिस अवस्थामें दुष्ट और अदुष्ट समस्थ कर्मोंका फल क्षयको प्राप्त हो और चित्तकी मलीनता दूर होजाय, उसको ध्वस्ति कहते हैं ॥ २२ ॥

यथाहिसाधितःसिंहोमृगान्हंतिनमानवान् ॥ तद्वन्निपिद्धपवनःकिल्बिषंननृणांतनुम् ॥ १९ ॥ तस्माद्युक्तःसदायोगीप्राणायामपरोभवेत् ॥ श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥ २० ॥ ध्वस्तिःप्राप्तिस्तथासंवित्प्रसादश्चमहीपते ॥ स्वरूपंशृणुचैतेषांकथ्यमानमनुक्रमात् ॥ २१ ॥ कर्म्मणामिष्टदुष्टानांजायतेफलसंक्षयः ॥ चेतसोऽपकषायत्वंयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ॥ ॥ २२ ॥ ऐहिकामुष्मिकान्कामाँल्लोभमोहात्मकान्स्वयम् ॥ निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्तिःसासार्वकालिकी ॥ २३ ॥ अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ॥ विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणांज्ञानसम्पदा ॥ २४ ॥ तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसंविदम् ॥ तदासंविदितिख्याताप्राणायामस्यसास्थितिः ॥ २५ ॥ यान्तिप्रसादंयेनास्यमनःपंचचवायवः ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थाश्चसप्रसादइतिस्मृतः ॥ ॥ २६ ॥ शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम् ॥ युञ्जतश्चसदायोगंयादृग्विहितमासनम् ॥ २७ ॥

योगी पुरुष जिस अवस्थामें लोभमोहात्मक ऐहिक और आमुष्मिक समस्त कामको निरंतर स्वयं निरुद्ध करतेहैं, उस अवस्थाको प्राप्ति कहा गयाहै ॥२३॥ योगीजन जिसअवस्थामें ज्ञानसम्पत्तिवशतः चन्द्र, सूर्य और ग्रह नक्षत्रकी सदृश ज्ञानशक्तिको प्राप्त होकर ॥२४॥ अतीत, अनागत और तिरोहित यह दूरस्थ सब विषय जान सकते हैं, उसी अवस्थाको संवित कहा जाताहै॥२५॥जिस अवस्था द्वारा योगीका चित्त पंचवायु, इन्द्रिय और इन्द्रियोंके विषयसमूहसे शुद्धिलाभ करता है, उसी अवस्थाको प्रसाद कहतेहैं ॥ २६ ॥ हे महीपाल ! अब प्राणायामके लक्षण और योगके आरंभमें जिस प्रकार आसनका अनुष्ठान करना चाहिये सो सुनो ॥ २७ ॥

पद्मासन, अर्द्धासन, स्वस्तिकासन, इत्यादि आसनावलम्बनपूर्वक हृदयमें प्रणवजप करके योगानुष्ठानमें प्रवृत्त होवे ॥ २८ ॥ सरलभावसे सम आसनमें बैठकर दोनों चरणोंसे दृषणको सकोड मूँद और दोनों ऊरु सम्यक् प्रकारसे अग्रभागमें विष्ट (स्तब्ध) करे ॥ २९ ॥ संयुक्त मनसे इस प्रकार स्थित होना चाहिये कि, जिससे हस्त द्वारा लिंग और अंडकोशका (स्पर्श) न हो कभी समय शिर कुछेक ऊपरको उठा हो और दांतसे दांतोंका स्पर्श न करे ॥ ३० ॥ और केवल मात्र अपनी नासिकाके अग्रभागमें दृष्टि रक्खे, अन्य किसी ओर न देखे । इसी अवस्थामें योगविद् पुरुष रजोगुण द्वारा तामसी वृत्तिका और सत्वगुण द्वारा राजसिक वृत्तिका ॥ ३१ ॥ विनाश करके

पद्ममर्द्धासनंचापितथास्वस्तिकमासनम् ॥ आस्थाययोगंयुंजीतकृत्वाचप्रणवंहृदि ॥२८॥ समःसमासनोभूत्वा संहृत्यचरणावुभौ ॥ ॥ संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रतः ॥२९॥ पार्ष्णिभ्यांलिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रयतः स्थितः ॥ किंचिदुन्नामितशिरादन्तैर्दन्तान्नसंस्पृशेत् ॥३०॥ संपश्यन्नासिकाग्रंस्वंदिशश्चानवलोकयन् ॥ रजसातमसोवृत्तिंसत्त्वेनरजसस्तथा ॥ ३१ ॥ संछाद्यनिर्मलेतत्त्वे स्थितोयुञ्जीतयोगवित् ॥ इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यःप्राणादीन्मनएवच ॥ ३२ ॥ निगृह्यसमवायेनप्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ यस्तुप्रत्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीवकच्छपः ॥ ३३ ॥ सदात्मरतिरेकस्थःपश्यत्यात्मानमात्मनि ॥ सबाह्याभ्यन्तरंशौचंनिष्पाद्याकंठनाभितः ॥ ३४ ॥ पूरयित्वाबुधोदेहंप्रत्याहारमुपक्रमेत् ॥ प्राणायामादशद्वौचधारणासाभिधीयते ॥ ३५ ॥ द्वेधारणेस्मृतेयोगेयोगिभिस्तत्त्वदृष्टिभिः ॥ तथावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियतात्मनः ॥ ३६ ॥

केवल मात्र निर्मल तत्त्वमें अवस्थान पूर्वक योगाभ्यासमें नियुक्त हो इन्द्रियके विषयसे एवं मन और प्राणादिको ॥ ३२ ॥ निगृहीत करके कच्छप जिस प्रकार अपने समस्त अंगोंको सकोडलेता है इसी प्रकार प्रत्याहारमें प्रवृत्त होना चाहिये ॥ ३३ ॥ इस प्रकारसे कामसमूहको प्रत्याहरणपूर्वक केवल मात्र आत्मामेंही सदा आसक्त होकर स्थित रहनेसे आत्माद्वार आत्माका दर्शन प्राप्त हो जाता है । विलक्षण योगी कंठसे नाभिदेशपर्यन्त बाह्य और आभ्यन्तरिक शुद्धिविधानपूर्वक ॥ ३४ ॥ देह परिपूर्ण करके प्रत्याहार साधन करे । प्राणायाम दश विध और धारण दो प्रकार कही गई है ॥३५॥ तत्त्वदर्शी योगीजनोंने योगाभ्यासमें दोही प्रकारकी धारणाका निर्देश किया है । नियतात्मा

होकर योगसाधन करनेसे ॥ ३६ ॥ योगीके समस्त दोष प्रशमित होते हैं, शान्ति प्राप्त होती है पृथक् रूपसे समस्त प्राकृतगुण और परब्रह्मका दर्शनलाभ होता है ॥३७॥ एवं आकाशादि परिमाणु और विशुद्ध आत्माका साक्षात्कार लाभ किया जाता है। इस प्रकारसे योगी नियताहारपूर्वक प्राणायाममें निरत हो ॥३८॥ शनैः शनैः योगभूमि जय करता हुआ अपने घरके समान उसीमें आरूढ होवे. इसप्रकार भूमिके विजित न होनेसे उसके द्वारा कामादि दोष व्याधिसमूह ॥ ३९. ॥ और मोहकी वृद्धि प्राप्त होती है. अत एव अनिर्जिता भूमिमें आरोहण न करे जिसके द्वारा पंचप्राण संयत होते हैं उसीको प्राणायाम कहते हैं ॥ ४० ॥ जिसके द्वारा मनको धारण किया जाय वही धारणा कहाती है

सर्वेदोषाःप्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते ॥ वीक्षतेचपरंब्रह्मप्राकृतांश्चगुणान्पृथक् ॥ ३७ ॥ व्योमादिपरमाणूंश्चतथात्मानमकल्मषम् ॥ इत्थंयोगीयताहारःप्राणायामपरायणः ॥ ३८ ॥ जितांजितांशनैर्भूमिमारोहेतयथागृहम् ॥ दोषान्व्याधींस्तथामोहमाक्रान्ताभूरनिर्जिता ॥ ३९ ॥ विवर्धयतिनारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ॥ प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायामइतिस्मृतः ॥ ४० ॥ धारणेत्युच्यतेचेयंधार्य्यतेयन्मनोयया ॥ शब्दादिभ्यःप्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभिः ॥ ४१ ॥ प्रत्याह्रियन्तेयोगेनप्रत्याहारस्ततःस्मृतः ॥ उपायश्चात्रकथितोयोगिभिःपरमर्षिभिः ॥ ४२ ॥ येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिनः ॥ यथातोयार्थिनस्तोयंयन्त्रनालादिभिःशनैः ॥ ४३ ॥ आपिबेयुस्तथावायुंपिबेद्योगीजितश्रमः ॥ प्राङ्नाभ्यांहृदयेचाथतृतीयेचतथोरसि ॥ ४४ ॥ कंठेमुखेनासिकाग्रेनेत्रभ्रूमध्यमूर्द्धसु ॥ किञ्चितस्मात्परस्मिंश्चधारणापरमास्मृता ॥ ४५ ॥

और नियतात्मा पुरुष जिस अवस्थामें इन्द्रियसमूहको शब्दादि स्व स्व विषयमे ॥ ४१ ॥ प्रत्याहरण करते हैं उसीको प्रत्याहार कहते है. योगसिद्ध ऋषियोंने इस विषयमें जो उपाय निरूपण किया है ॥ ४२ ॥ उसके द्वारा योगीके शरीरमें व्याधि इत्यादि आक्रमण नहीं कर सकती जलार्थी जिस प्रकार यंत्रनालादिके सहित धीरे धीरे जलपान करते हैं ॥ ४३ ॥ योगीपुरुषभी उसीप्रकार श्रम जीतकर वायु पान करते हैं प्रथम नाभिमें, फिर हृदयमें, फिर वक्षस्थलमें ॥ ४४ ॥ फिर कंठमें, वदनमें, नासाग्रमें, लोचनमें भ्रूमध्य ऊर्द्ध्वदेशमें, और

अन्तको उस परब्रह्ममें धारणाकरनी चाहिये॥४५॥धारणा यह दशविध कहकर निर्दिष्ट है इन दशप्रकारकी धारणासिद्धिसे ब्रह्मसारूप्यलाभ होता है. हे राजेन्द्र ! योगीपुरुष सिद्धिलाभार्थ अधिक भाषण क्षुधा थकावट और चित्तकी चंचलता ॥४६॥ दूर करके यत्नपूर्वक योगाभ्यासमें प्रवृत्त हों अतिशीत और अतिग्रीष्मके समय एवं अति वायुवहन कालमें ॥४७॥ ध्यानतत्पर होकर योगाभ्यास नहीं करना चाहिये. सशब्द स्थानमें अग्नि और जलके निकट पुरानी गोशालामें चौराहेमें ॥४८॥ सूखेपत्तोंसे पूर्ण स्थानमें नदीतटमें श्मशानमें सर्पादिसे युक्त स्थानमें कूपतीरमें चैत्य (राहे) में और वल्मीकसमूहके टीलेमें ॥ ४९ ॥ तत्त्ववित्पुरुष योगाभ्यास न करे. सात्विकभावकी भलीभाँती सिद्धि न होनेपर अर्थात्

दशैताधारणाःप्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ॥ नाध्मातःक्षुधितःश्रान्तोनचव्याकुलचेतनः ॥ ४६ ॥ युञ्जीतयोगंराजेन्द्रयोगीसिद्ध्यर्थमादृतः ॥ नातिशीतेनचोष्णेवैनद्वन्द्वेनानिलात्मके ॥ ४७ ॥ कालेष्वेतेषुयुञ्जीतनयोगंध्यानतत्परः ॥ सशब्दाग्निजलाभ्याशेजीर्णगोष्ठेचतुष्पथे ॥ ४८ ॥ शुष्कपर्णचयेनद्यांश्मशानेससरीसृपे ॥ सभयेकूपतीरेवाचैत्यवल्मीकसंचये ॥ ४९ ॥ देशेष्वेतेषुतत्त्वज्ञोयोगाभ्यासंविवर्जयेत् ॥ सत्त्वस्यानुपपत्तौचदेशकालंविवर्जयेत् ॥ ५० ॥ नासतोदर्शनंयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ॥ दोषानेताननादृत्यमूढत्वाद्योयुनक्तिवै ॥ ५१ ॥ विघ्नायतस्यवैदोषाजायन्तेतन्निबोधमे ॥ बाधिर्य्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वमन्धता ॥ ५२ ॥ ज्वरश्चजायतेसद्यस्तत्तदज्ञानयोगिनः ॥ प्रमादाद्योगिनोदोषायद्येतेस्युश्चिकित्सितम् ॥ ५३ ॥

जिसस्थानमें सात्विक वस्तु प्राप्त न हो वह देशकालभी परित्याग करना चाहिये ॥ ५० ॥ और योगमें असत् बातोंका देखना भी उचित नहीं है. अतएव वह वर्जन करे । जो पुरुष मूर्खताके वश होकर इन सब स्थानोंका विचार न करके योगाभ्यासका अनुष्ठान करता है ॥ ५१ ॥ वह सब दोष उत्पन्न होकर उसके कार्यमें विघ्न साधन करते हैं,सो कहताहूं सुनो—उस योगीको बहरापन, जड़ता, गूँगापन, स्मृतिलोप, अन्धता ॥५२॥ और तत्क्षण ज्वर होता है प्रमाद वश इन सब दोषोंका आविर्भाव होनेपर उनकी शान्तिके लिये जिस प्रकारसे चिकित्सा करे ॥ ५३ ॥

१ मनकी धारणा करना अर्थात् स्वपदमें रखकर आत्मदर्शन करना ।

वहभी सुनो भलीभाँति उष्ण किया हुआ यवागूस्निग्ध करके भक्षणपूर्वक उदरम धारण करे ॥ ५४ ॥ वात गुल्म और अफारा तथा उदररोग शान्त होनेके लिये यवागू अवश्य भक्षण करे. इसका भक्षण करनेसे वायु और वायुग्रंथिरोगभी नष्ट होता है ॥ ५५ ॥ और कंप होनेपर मनमें बड़े बोझको पर्वत धारण करे अर्थात् मनके चंचल होनेपर प्रलयकालीन स्थिर महाशैलकी धारण करे वाक्शक्ति विलुप्त होनेसे वाक्यधारणा करनी चाहिये और श्रवणशक्तिके नष्ट होनेपर ॥ ५६ ॥ तृष्णार्त्त पुरुष जिस प्रकार रसनेन्द्रियमें लाभ होनेकी चिन्ता करता है ऐसेही श्रवणेन्द्रियकी धारणा करता रहे. इस प्रकार जिस जिस देहमें व्याधि उपस्थित हो उस उस देहमेंही तदुपकारिणी

तेषांनाशायकर्त्तव्यंयोगिनांतन्निबोधमे ॥ स्निग्धांयवागूमत्युष्णांभुक्त्वातत्रैवधारयेत ॥ ५४ ॥ वातगुल्मप्रशान्त्यर्थमुदावर्त्तं थोदरे ॥ यवागूर्वापिपवनंवायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ॥ ५५ ॥ तद्वत्कंपेमहाशैलंस्थिरंमनसिधारयेत ॥ विघातेवचसोवाचंवाधिर्येश्र वणेंद्रियम् ॥ ५६ ॥ यथैवाम्रफलंध्यायेत्तृष्णार्त्तोरसनेन्द्रियम् ॥ यस्मिन्यस्मिन्रुजादेहेतस्मिंस्तदुपकारिणीम ॥ ५७ ॥ धारयेद्धा रणामुष्णेशीतांशीतेचदाहिनीम् ॥ कीलंशिरसिसंस्थाप्यकाष्ठंकाष्ठेनताडयेत् ॥ ५८ ॥ लुप्तस्मृतेस्मृतिःसद्योयोगिमस्तेनजायते ॥ द्यावापृथिव्यौवाय्वग्नीव्यापिनावपिधारयेत ॥ ५९ ॥ अमानुषात्सत्त्वजाद्वाबाधास्त्वेनिचिकित्सितम ॥ अमानुषंसत्त्वमन्तर्योगिनं प्रशेविद्यदि ॥ ६० ॥ वाय्वग्निधारणेनैनंदेहसंस्थंविनिर्दहेत् ॥ एवंसर्वात्मनारक्षाकार्य्यायोगविदानृप ॥६१॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांश रीरंसाधनंयतः ॥ प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्योगिनोविस्मयात्तथा ॥ विज्ञानंविलयंयातितस्माद्गोप्याःप्रवृत्तयः ॥ ६२ ॥

धारणा धारण करे ॥५७॥उष्णमें शीतल धारणा और शीतलमें उष्ण धारणाका अनुगामी होना चाहिये शिरमें सूक्ष्म कीलका स्थापनपूर्वक काष्ठ द्वारा उस कीलककाष्ठको ठोकनेसे॥५८॥लुप्तस्मृति रोगीकी तत्काल स्मृतिशक्तिका फिर उदय होता है अथवा स्मृतिशक्ति विलुप्त होनेसे आकाश, पृथ्वी, वायु और अग्नि की धारणा करे ॥ ५९ ॥ अमानुष सत्त्वके जनित विघ्नसमूहमें चिकित्सा इस प्रकार निर्दिष्ट है योगियोंके हृद यमें अमानुष सत्त्वके प्रविष्ट होनेपर वह ॥६०॥ वायु और अग्निकी धारणासे उसको दग्ध करे. हे नृपते ! इस प्रकार सर्वान्तःकरणसे शरीरकी रक्षाविधान करना योगवित् पुरुषको उचित है॥६१॥ क्योंकि शरीरही धर्म, अर्थ काम और मोक्ष इन चतुर्वर्गके साधनका मूल है. प्रवृत्ति स्वरूप

वर्णन और विस्मय, इन दो कारणोंसे ही योगीका विज्ञान नष्ट हो जाता है. इसी कारण प्रवृत्ति गुप्त रक्खे ॥ ६२ ॥ अचंचलता, आरोग्यता, अनिष्ठुरता, देहमें सुगंधिका संचार, मूत्र और पुरीषकी अल्पता, कान्ति, प्रसाद और मधुर स्वर, यह सब योगप्रवृत्तिके प्रथम चिह्न है ॥ ६३ जिस अवस्थामें मनुष्य अनुरागी होकर परोक्षसे अर्थात् पीछे गुणोंका कीर्त्तन करे और किसी जीवको भय प्राप्त न हो, उसी समय सिद्धिका उत्तम लक्षण समझना चाहिये ॥ ६४ ॥ अत्यन्त उग्र शीत और उष्णादि जिसको बाधा देनेमें समर्थन हों, तथा दूसरेसे जिसको भयका संचार न हो, उसीको सिद्धिलाभ हुई जाने ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥ दत्तात्रेयने

अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वंगन्धशुभीमूत्रपुरीषमल्पम् ॥ कान्तिःप्रसादःस्वरसौम्यताचयोगवृत्तेःप्रथमंहिचिह्नम् ॥६३॥ अनुरागंजनोयातिपरोक्षेगुणकीर्त्तनम् ॥ नबिभ्यतिचसत्त्वानिसिद्धेर्लक्षणमुत्तमम् ॥ ६४ ॥ शीतोष्णादिभिरत्युग्रैर्यस्यबाधानविद्यते ॥ नभीतिमेतिचान्येभ्यस्तस्यसिद्धिरुपस्थिता ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेजडोपाख्यानेयोगनिरूपणंनामषट्त्रिंशोऽध्यायः ॥ ३६ ॥

दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ उपसर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टेह्यात्मनियोगिनः ॥ येतांस्तेसंप्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ॥ १ ॥ काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छति ॥ स्त्रियोदानफलंविद्यांमयांकुप्यंधनंदिवम् ॥ २ ॥ देवत्वममरेशत्वंरसायनवयःक्रियाम् ॥ मरुत्प्रपतनंयज्ञंजलाग्न्यावेशनंतथा ॥ ३ ॥ श्राद्धानांसर्वदानानांफलानिनियमांस्तथा ॥ तथोपवासात्पूर्त्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि ॥४॥ तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ॥ चित्तमित्थंवर्तमानंयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ॥ ५ ॥

कहा—आत्माका दर्शन होनेपर योगीयोंको जो सब उपसर्ग उत्पन्न होते हैं, वह संक्षेपसे कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥ उस समयमें नानाप्रकारकी काम्य क्रिया और मानसोचित नानाभाँतिके भोग भोगनेकी इच्छा होती है। स्त्री, दान, फल, विद्या, माया, कूप्य (कूपका जल) धन, स्वर्ग ॥२॥ अमरत्व, देवेन्द्रत्व, नानाप्रकार रसायन, वायुभरे (स्थानमें कूदना) यज्ञ, जल और अग्निमें प्रवेश ॥३॥ समस्त श्राद्ध और दानसमूहका फल, तथा नियम इत्यादि विषयमें योगीकी कामना उदय होती है। उसकाल वह उपवास, पूर्त्तादि कर्म, देवतार्चन॥४॥जब जब उस उस कर्ममें संलग्न होनेकी वांछा करे मनके इस प्रकार होनेपर योगी तब२यत्न सहित उसको उस उस विषयसे निवर्त्तित करे ॥ ५ ॥

इस प्रकारसे निवृत्त करके मनको ब्रह्मसाक्षी कर सकनेसे ही उपसर्गसे मुक्तिलाभ होजाता है ॥ ६ ॥ इन समस्त उपसर्गके जीतनेपर फिर सात्विक राजसिक और तामसिक भेदसे अपरापर विघ्न आकर योगीको आक्रमण करते हैं. उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैव, भ्रम और आवर्त्त ॥ ७ ॥ यह पांच प्रकारसे उपसर्ग योगमें विघ्नसाधन करनेके लिये भयंकर रूपसे आविर्भूत होते हैं जिसके द्वारा निखिल वेदार्थ समस्त काव्य शास्त्रार्थ यावतीय विद्या और शिल्प ॥ ८ ॥ योगीके चित्तमें प्रतिभात हो उसकोही प्रातिभ कहते हैं जिसके द्वारा सम्पूर्ण शब्दका अर्थ विदित होजाय ॥ ९ ॥ और सहस्र सयस्र योजन दूरका शब्द भी श्रवणगोचर हो वही श्रावण कहा गया है जिसके द्वारा मूर्त्तिमान् देवताके समान होकर

ब्रह्मसङ्गिमनःकुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ॥ उपसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गास्ततःपुनः ॥ ६ ॥ योगिनःसंप्रवर्त्तन्तेसात्त्वराजसतामसाः ॥ प्रातिभः श्रावणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ ॥ ७ ॥ पञ्चैतेयोगिनांयोगविघ्नायकटुकोदयाः ॥ वेदार्थाःकाव्यशास्त्रार्थाविद्याशिल्पान्यशेषतः ॥८॥ प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभःसतुयोगिनः ॥ शब्दार्थानखिलान्वेत्तिशब्दंगृह्णातिचैवयत् ॥ ९ ॥ योजनानांसहस्रेभ्यःश्रावणःसोऽभिधीयते ॥ समन्ताद्वीक्षतेचाष्टौसयदादेवयोनयः ॥१०॥ उपसर्गतमप्याहुर्दैवमुन्मत्तवद्बुधाः ॥ भ्राम्यतेयन्निरालम्बंमनोदोषेणयोगिनः ॥ ॥ ११ ॥ समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमःसपरिकीर्तितः ॥ आवर्त्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तोयदाकुलः ॥ १२ ॥ नाशयेच्चित्तमावर्त्तउपसर्गः सउच्यते ॥ एतैर्नाशितयोगास्तुसकलादेवयोनयः ॥ १३ ॥ उपसर्गैर्महाघोरैरावर्त्तन्तेपुनःपुनः ॥ प्रावृत्यकम्बलंशुक्लंयोगीतस्मा न्मनोमयम् ॥ १४ ॥

योगी उन्मत्तके सदृश आठों दिशाओंका दर्शन करता है ॥ १० ॥ पंडितगण उसीको दैव उपसर्ग कहते हैं जिसके द्वारा योगीका चित्त संपूर्ण आचार भ्रंशके कारण और मनके दोषोंके कारण निरालंब भावसे भ्रमण करता है ॥ ११ ॥ उसीको भ्रम कहते हैं जिसके प्रभावसे ज्ञानावर्त्त जलावर्त्तके समान आकुल होकर ॥ १२ ॥ चित्तको विनाश करता है उसीको आवर्त्तउपसर्ग कहते हैं. योगीगण इन समस्त उपसर्गोंके प्रभावद्वारा सब देवयोनि ॥ १३ ॥ और योगसे भ्रष्ट होकर वारम्वार संसारचक्रमें लौटते हैं इसी कारण योगी मनोमय मनके द्वारा श्वेत कम्बलसे आवृत होकर ॥ १४ ॥

[शरीरमंडलमें गुरु ज्ञानको अवलोकन करे. कारण कि, बुद्धिमान्को ज्ञानपूर्वक योग करना जानना चाहिये] ॥ १५ ॥ मनमें एक मात्र परब्रह्मकी ही चिन्ताकर उनका ही ध्यान करना योगीका कर्त्तव्य है. योगी पुरुष निरंतर जितेन्द्रिय, लघुभोजी और योगयुक्त होकर ॥ १६ ॥ भूरादि सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणा मस्तकमें धारण करे तो उसको उसका सूक्ष्म विदित होगा ॥ १७ ॥ वह आत्माकी इस प्रकार चिन्ता करनेसे धरित्रीका बंधन छेदन करनेमें समर्थ होगा. इसी प्रकारसे जलमें सूक्ष्म रस, तेजमें रूप ॥ १८ ॥ वायुमें स्पर्श और आकाशमें सूक्ष्माप्रवृत्ति और शब्दधारणपूर्वक परित्याग करना चाहिये ॥ १९ ॥ जब मनद्वारा समस्त भूतके मनमें

(शरीरमंडलेदृष्ट्वागुरुज्ञानंततोहियत् ॥ ज्ञानपूर्वोपियोयोगोज्ञातव्योवैविपश्चिता) ॥ १५ ॥ चिन्तयेत्परमंब्रह्मकृत्वातत्प्रवणंमनः ॥ योगयुक्तःसदायोगीलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥१६॥ सूक्ष्मास्तुधारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् ॥ धरित्रींधारयेद्योगीतत्सौक्ष्म्यंप्रतिपद्यते ॥१७॥ आत्मानंमन्यतेचोर्वींतद्गंधंचजहातिसः ॥ तथैवाप्सुरसंसूक्ष्मंतद्वद्रूपंचतेजसि ॥ १८ ॥ स्पर्शंवायौतथातद्वद्बिभ्रतस्तस्य धारणम् ॥ व्योम्नःसूक्ष्मांप्रवृत्तिंचशब्दंतद्वज्जहातिसः ॥१९॥ मनसासर्वभूतानांमनस्याविशतेयदा ॥ मानसीं धारणांबिभ्रन्मनःसूक्ष्मंचजायते ॥२०॥ तद्वद्बुद्धिमशेषाणांसत्त्वानामेत्ययोगवित् ॥ परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धिसौक्ष्म्यमनुत्तमम् ॥२१॥ परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ॥ सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते ॥ २२ ॥ एतासांधारणानांतुसप्तानांसौक्ष्म्यमात्मवान् ॥ दृष्ट्वादृष्ट्वाततःसिद्धिंत्यक्त्वात्यक्त्वापरांव्रजेत् ॥ २३ ॥ यस्मिन्यस्मिंश्चकुरुतेभूतेरागंमहीपते ॥ तस्मिंस्तस्मिन्समासक्तिंसंप्राप्यसविनश्यति ॥ २४ ॥

प्रवृष्ट होकर मानसी धारणा करी जाय. तबही सूक्ष्म मन उत्पन्न होता है ॥ २० ॥ इस प्रकारसे योगी पुरुष समस्त भूतकी बुद्धिमें प्रविष्ट होकर अनुत्तमा सूक्ष्मबुद्धिस्वरूपलाभ करके उसको परित्याग करता है ॥ २१ ॥ हे अलर्क ! जो योगी इन सात प्रकारके सूक्ष्म भावको भलीभाँति जानकर परित्याग करता है, उसको फिर जन्मग्रहण करना नहीं पड़ता ॥२२॥ आत्मवान् पुरुष इन सात प्रकारकी धारणाका सूक्ष्मत्व वारंवारदृष्टिगोचर करके वारंवार सिद्धिविसर्जनपूर्वक परमागतिको प्राप्त हो॥२३॥हे महीपते ! वह जिस जिस भूतमें अनुरागी होता है, उस उस भूतमेंही आशक्तिमान्

होकर विनाशको प्राप्त होता है ॥ २४ ॥ अतएव जो देही परस्परसंसक्त भूतगणको जानकर परित्याग करताहै, वही देही परमपदलाभ करता है ॥ २५ ॥ हे पार्थिव ! यह सप्त विध सूक्ष्म संधान करके भूतादिमें विगतराग होसकनेसेही सद्भावज्ञ पुरुष मुक्तिलाभ करता है ॥ २६ ॥ हे राजन् ! गंधादिमें आसक्ति प्राप्त होनेसे ही नष्ट होना पड़ता है और फिर उसको संसार चक्रमें लौटना होता है ॥ २७ ॥ हे नरेश्वर ! योगी पुरुष इन सातप्रकारकी धारणाको अतिक्रम करके गमनकरनेकी इच्छा करनेपर उस उस सूक्ष्म भूतमें लयको प्राप्त होता है और देवता, दानव गंधर्व, पन्नग और राक्षस, इनके शरीरमें विलीन होजाता है, किन्तु किसीमें आसक्त नहीं होता॥२८॥२९॥वह अणिमा, लघिमा, महिमा, प्राप्ति,

तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणिसंसक्तानिपरस्परम् ॥ परित्यजतियोदेहीसपरं प्राप्नुयात्पदम् ॥२५॥ एतान्यवतुमंधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव भूतादीनांविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये ॥२६॥ गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनश्यति ॥ पुनरावर्त्ततेभूपसब्रह्मापरमानुपम् ॥२७॥ सप्तैताधारणायोगीसमतीत्ययदिच्छति ॥ तस्मिंस्तस्मिँल्लयंसूक्ष्मेभूतेयातिनरेश्वर ॥ २८ ॥ देवानामसुराणांवागन्धर्वोरगरक्षसाम् ॥ देहेषुलयमायातिसंगंनाप्नोतिचक्वचित् ॥ २९ ॥ अणिमालघिमाचैवमहिमाप्राप्तिरेवच ॥ प्राकाम्यंचतथेशित्वं वशित्वंचतथापरम् ॥ ३० ॥ यत्रकामावसायित्वंगुणानेतांस्तथैश्वरान् ॥ प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरंनिर्वाणसूचकान् ॥ ३१ ॥ सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वंलघिमागुणः ॥ महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्ययत् ॥ ३२ ॥ प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वंचेश्वरोयतः ॥ वशित्वाद्वशिमानामयोगिनःसप्तमोगुणः ॥३३॥ यत्रेच्छास्थानमप्युक्तंयत्रकामावसायिता ॥ ऐश्वर्यकारणैरेभिर्योगिनःप्रोक्तमष्टधा ॥३४॥

प्रकाम्य, ईशित्व,वशित्व,हे नरव्याघ्र !॥३०॥और कामावसायित्व इन अष्टविध निर्वाणप्रद ऐश्वरिक गुणोंका अधिकारी होता है॥३१॥जिसके द्वारा सूक्ष्मसेभी सूक्ष्मतर हो सके उसका नाम अणिमा है. जिसके द्वारा क्षिप्रकारिता अर्थात सब कार्योंमें शीघ्रता उत्पन्न हो उसको लघिमा कहते हैं. जिसके द्वारा सबका पूजनीय होजाय उसका नाम महिमा है. जिसके द्वारा समस्त अभिलाषित प्राप्त हो उसको प्राप्ति कहते हैं. ॥ ३२ ॥ जिसके द्वारा व्यापित्वशक्ति उत्पन्न हो.उसका नाम प्राकाम्य है जिसके प्रभावसे सबका ईश्वर हो जाय उसको ईशित्व कहतेहैं और जिसके प्रभावसे सब वशीभूत हो उसका नाम वशित्व है. वशित्वही योगीजनोंका सातवाँ गुण कहा गया है ॥३३॥ जिसके द्वारा अपनी इच्छानुसार जहाँ गमन

और इच्छानुसार सब कार्य साधन होसके उसकाही नाम कामावसायिता है, इन आठ प्रकार गुणोंके प्रभावसे ईश्वरके समस्त कार्य करनेमें समर्थ होता है ॥ ३४ ॥ हे राजन ! यह सब गुण मुक्तिकी सूचना कर देते हैं अर्थात् इन सब गुणोंके प्रकाशित होने परही जानना चाहिये कि, योगी शीघ्रही मुक्तिलाभ करेगा, इके निर्वाणलाभ होनेका समय उपस्थित है, अब उसको जन्मग्रहण करना नहीं पडेगा वृद्धिको प्राप्त होना नहीं पड़ेगा, तथा विनष्ट होनाभी नहीं पड़ेगा ॥३५॥ क्षयको प्राप्त नहीं होना पड़ेगा और उसका कोई परिणाम भी नहीं होगा उसको फिर कभी भूगादिभूतवर्गसे छिन्न भिन्न, क्लिन्न (गीला) दग्ध वा शुष्कभी होना नहीं पड़ेगा ॥ ३६ ॥ शब्दादि सब उसको अपहृत करनेमें समर्थ नहीं होंगे, शब्दादि विषयके संग उसका फिर कोई संबंध नहीं रहता और शब्दादिका भोक्ता भी होना नहीं पड़ता और उनके संग उसका फिर कोई

मुक्तिसंसूचकंभूपपरंनिर्वाणमात्मनः ॥ ततोनजायतेनैवर्द्धतेनविनश्यति ॥ ३५ ॥ नापिक्षयमवाप्नोति परिणामंनगच्छति ॥ छेदंक्लेदंतथादाहंशोषंभूगदितोनच ॥ ३६ ॥ भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैर्ह्रियतेनच ॥ नचास्यसन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्ता तैर्नयुज्यते ॥ ३७ ॥ यथाहिकानकंखण्डमपद्रव्यवदग्निना ॥ दग्धदोषंद्वितीयेनखण्डेनैक्यंव्रजेन्नृप ॥ ३८ ॥ नविशेषमवाप्नोतितद्वद्योगाग्निनायतिः ॥ निर्दग्धदोषस्तेनैक्यंप्रयातिब्रह्मणासह ॥ ३९ ॥ यथाग्निरग्नौसंक्षिप्तःसमानत्वमनुव्रजेत् ॥ तदाख्यस्तन्मयोभूत्वा नगृह्यतेविशेषतः ॥ ॥ ४० ॥ परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यंदग्धकिल्बिषः ॥ योगीयातिपृथग्भावंनकदाचिन्महीपते ॥ ४१ ॥ यथाजलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति ॥ तथात्मासाम्यमभ्येतियोगिनःपरमात्मनि ॥ ४२ ॥

स्पर्श नहीं रहता ॥ ३७ ॥ हे महीपते ! जिस प्रकार एक स्वर्णखंडको अपद्रव्यके समान बाहर दग्ध करके निर्दोष करनेपर अवर एक स्वर्णखंडके सहित उसका संयोग होता है ॥ २८ ॥ किसी प्रकार उसका प्रभेद दिखाई नहीं देता इसी प्रकार योगअग्निद्वारा रागद्वेषादिरूप दोषोंको भस्म करनेसे योगीभी ब्रह्मके सहित सम्यक् प्रकारसे मिलित होते हैं ॥ ३९ ॥ हे राजन् ! जिस प्रकार अग्निमें अग्नि डालीजाय तो वह तुल्यताको प्राप्त होती है एवं तदात्मा और तन्मय हो जाती है और उसका प्रभेद स्थिर नहीं किया जाता ॥४०॥ इसी प्रकार दोषोंके दग्ध होनेपर जब योगी ब्रह्मके संग एक वारही संयुक्त होते हैं, तब फिर उनको कभी पृथग्भाव भोगना नहीं पड़ता ॥४१॥ जल जिस प्रकार जलमें

गिरकर समानभाव धारण करता है, योगीपुरुषोंका आत्मा भी वैसेही परमात्मामें मिलित होकर साम्यता अर्थात् समानताको प्राप्त होता है ॥ ४२ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ अलर्कने कहा । हे भगवन् ! योगियोंका आचार और जिसप्रकार ब्रह्मपथके अनुगामी होनेसे वह नाशको प्राप्त नहीं होते ! वह विषय यथार्थ सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ १ ॥ दत्तात्रेयने कहा । मान और अपमान, यह दोनोंही सबकी प्रीति और उद्वेगके कारण हैं. यदि यह दोनों योगीके निकट विपरीतार्थ हों अर्थात् अपमानको मान और मानको अपमान समझे तो सिद्धिप्रद होते हैं ॥२॥ मान और अपमान, यही दो अमृत और विष कहे गये हैं, तिनमें अपमान अमृत और मानही विषम विष है

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिसिद्धिर्नामसप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥ ॥ अलर्कउवाच ॥ ॥ भगवन्योगिनश्चर्य्यांश्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ब्रह्मवर्त्मन्यनुगच्छन्यथायोगीनसीदति ॥ १ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ मानापमानौयावेतौप्रत्युद्वेगकरौनृणाम् ॥ तावेवविप रीतार्थौयोगिनःसिद्धिकारकौ ॥ २ ॥ मानापमानौयावे[illegible]विषामृते ॥ अपमानोऽमृतं[illegible]मानस्तुविषमंविषम् ॥ ३ ॥ चक्षुः पूतंन्यसेत्पादंवस्त्रपूतंजलंपिबेत् ॥ [illegible] ॥ ४ ॥ [illegible] ॥ महाजनेषु सिद्धयर्थंनगच्छेद्योगवित्क्वचित ॥ ५ ॥ [illegible] ॥ ६ ॥ यथैव[illegible]पराभवन्ति[illegible] ॥ [illegible] ॥ ७ ॥ [illegible] प्रथमा[illegible]पदिश्यते ॥ ८ ॥

योगी भलीभाँति देखकर पैर रक्खे, ॥ ३ ॥ वस्त्रसे छानकर जलपान करे, सद [illegible] बुद्धिपूर्वक भली भाँति [illegible] कर चिन्ता करे ॥ ४ ॥ योगवित् पुरुष आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, [illegible] महाजनोंके निकट जानाभी उचित नहीं है ५ ॥ जिस समय गृहस्थका [illegible] हो, योगी पुरुष [illegible] समय भिक्षाके लिये जाय ॥६॥ मनुष्य जिससे तिरस्कार वा अपमान करें, [illegible] करके योगीको भ्रमण करना चाहिये ॥ ७ ॥ गृही पुरुषोंके घरमें [illegible] भिक्षा करनी उचित है, किन्तु प्रथमावृत्तिही प्रधान

कही गई है ॥८॥ जो गृही लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय और महात्मा है, तथा जो गृहस्थ दूषित और पतित नहीं है, उनके घरसे ही यतीगण भिक्षा करे विवर्ण पुरुषोंके यहांसे भिक्षा करनेपर उसको जघन्यवृत्ति कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥ यवागू, मट्ठा, दुग्ध, यावक, कुलथी, फल, मूल, प्रियंगु, कण, पिण्याक और सत्तू, इन सब वस्तुओंकी योगी पुरुषोंको भिक्षा करनी चाहिये ॥ ११ यह सब वस्तु उनका कल्याणकर और सिद्धिदायक आहार कहकर निर्दिष्ट हैं अतएव परम सावधान और भक्तियुक्त होकर यह सब द्रव्य उपभोग करने चाहिये ॥ १२ ॥ योगी पुरुष भोजनके पूर्वमें मौनावलम्बनसहित प्रथमतः एकवार जलपान करके सावधान हो "प्राणाय स्वाहा" इस वाक्यसे आहार करे ।

अथनित्यंगृहस्थेषुशालीनेषुचरेद्यतिः॥श्रद्दधानेषुदान्तेषुश्रोत्रियेषुमहात्मसु ॥९॥ अतऊर्ध्वंपुनश्चापिअदुष्टापतितेषुच ॥ भैक्ष्यचर्य्या विवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ॥१०॥ भैक्ष्यंयवागूंतक्रंवापयोयावकमेववा ॥ फलंमूलंप्रियंगुंवाकणपिण्याकसक्तवः ॥११॥ इत्येतेचशु भाहारायोगिनांसिद्धिकारकाः ॥ तत्प्रयुंज्यान्मुनिर्भक्त्यापरमेणसमाधिना॥१२॥ अपःपूर्वंसकृत्प्राश्यतूष्णींभूत्वासमाहितः ॥ प्राणाये तितस्तस्यप्रथमाह्याहुतिःस्मृता ॥१३॥ अपानायद्वितीयातुसमानायेतिचापरा ॥ उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपंचमी ॥१४॥ प्राणायामैःपृथक्कृत्वाशेषंभुञ्जीतकामतः ॥ अपःपुनःसकृत्प्राश्यआचम्यहृदयंस्पृशेत् ॥ १५ ॥ अस्तेयंब्रह्मचर्यंचत्यागोऽलोभस्तथै वच ॥ व्रतानिपंचभिक्षूणामहिंसापरमाणिवै ॥ १६ ॥ अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ॥ नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाः परि कीर्तिताः ॥ १७ ॥ सारभूतमुपासीतज्ञानंयत्कार्यसाधकम् ॥ ज्ञानानांबहुतायेयंयोगविघ्नकरीहिसा ॥ १८ ॥

यही योगियोंकी प्रथमा आहुति कही गई है ॥ १३ ॥ फिर क्रमानुसार "अपानाय" कह कर दूसरी आहुती, "समानाय" कहकर तीसरी "उदानाय" कहकर चौथी और "व्यानाय" कहकर पांचवी आहुति प्रदान करे ॥१४॥ फिर प्राणायामद्वारा पृथक् करते हुए अपनी इच्छानुसार शेष भोजन पूर्ण करे, तदनन्तर फिर एकवार जलपान करके आचमनके पीछे हृदयको स्पर्श करना चाहिये ॥१५॥ अस्तेय, ब्रह्मचर्य, त्याग, अलोभ और अहिंसा, यह पांच भिक्षुकके परम व्रत हैं ॥१६॥ और क्रोधशून्यता, गुरुशुश्रूषा, शौच, आहारकी लघुता, और नित्य वेदाध्ययन, यह पांच उनके नियम कहे गये हैं ॥१७॥ सारस्वरूप कार्यसिद्धि करनेवाले ज्ञानकी आलोचना करनी ही उचित है, क्यों कि, अनेक प्रकारकी

ज्ञानविषयक चर्चा करनेसे योगमें विघ्न होता है ॥१८॥जो योगी "यह ज्ञेय है यह जानना उचित है" कहकर तृषित चित्तसे भ्रमण करते हैं सहस्र कल्पमें भी उनको ज्ञेय पदार्थ लाभ होनेकी संभावना नहीं है॥१९॥संगपरित्यागपूर्वक जितक्रोध, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग द्वारा विधान करके चित्तको ध्यानमें निमग्न करे॥२०॥निर्जन प्रदेश गुहा और वनमें जाकर नित्ययुक्त हो सर्वदा सम्यक् विधानसे ध्यानमें निविष्ट होना चाहिये ॥२१॥ वाग्दंड कर्मदण्ड और मनोदण्ड, यह तीन जिसके वशीभूत हैं उसीको त्रिदण्डी और यह महायति कहा जाता है ॥२२॥ जो इस सदसदात्मक गुणागुणमय दृश्यमान जगत्को आत्ममय विचारते हैं हे राजन् ! कौन पुरुष उनका प्रिय और कौन पुरुष उनका अप्रिय होता है।

इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृपितश्चरेत् ॥ अपिकल्पसहस्रेषुनैवज्ञेयमवाप्नुयात ॥ १९ ॥ त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥ विधायबुद्ध्याद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत ॥ २० ॥ शून्येष्वेवावकाशेषुगुहासुचवनेषुच ॥ नित्ययुक्तःसदायोगी ध्यानंसम्यगुपक्रमेत् ॥ २१ ॥ वाग्दण्डःकर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः ॥ यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डीमहायतिः ॥ २२ ॥ सर्वमात्ममयंयस्यसदसज्जगदीदृशम् ॥ गुणागुणमयंतस्यकःप्रियःकोनृपाप्रियः ॥ २३ ॥ विशुद्धबुद्धिःसमलोष्टकाञ्चनःसमस्तभूतेषुसमःसमाहितः ॥ स्थानंपरंशाश्वतमव्ययंचयतिर्हिगत्वानपुनःप्रजायते ॥ २४ ॥ वेदाच्छ्रेष्ठाःसर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जाप्यंज्ञानमार्गश्चजप्यात ॥ ज्ञानाद्ध्यानंसंगरागव्यपेतंतस्मिन्प्राप्तेशाश्वतस्योपलब्धिः ॥ २५ ॥ समाहितोब्रह्मपरोऽप्रमादीशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः ॥ समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्माविमुक्तिमाप्नोतिततःस्वयोगतः ॥ २६ ॥

॥२३॥ जो विशुद्धबुद्धियुक्त, क्या लोहा क्या कंचन दोनोंमेही जिसका समान ज्ञान है, और जो पुरुष समस्त भूतमें समाहित होकर सर्वाधार शाश्वत अव्यय ब्रह्मकोही सर्वत्र विराजित देखता है, उसको फिर पुनर्जन्म ग्रहण करना नहीं पडता ॥२४॥ निखिल वेद और सब प्रकारकी यज्ञक्रियाही श्रेष्ठ हैं। उस यज्ञकी अपेक्षा जप, जपकी अपेक्षा ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गकी अपेक्षा निःसंग रागविहीन ध्यानही श्रेष्ठ है, इस ध्यान योगमें प्राप्त होनेसे शाश्वत ब्रह्मकी उपलब्धि होती है॥२५॥जो महात्मा सावधान ब्रह्मपरायण, प्रमादशून्य पवित्र एकान्तिक अनुरागी और नियतेन्द्रिय होकर यह योगलाभ करते हैं, आत्म में आत्माका संयोग होकर उनको मुक्तिलाभ होता है ॥ २६ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टत्रिंशोध्यायः ॥ ३८ ॥ दत्तात्रेयने कहा इसप्रकार जो योगी सम्यक् विधानसे योगयुक्त होते हैं, शतशत जन्मान्तरमें भी फिर वह स्वपदसे निवृत्त नहीं हो सकते ॥ १ ॥ जो विश्वरूपी; विश्वके ईश्वर और विश्वभावन हैं, विश्व ही जिनके पाद हैं विश्वही जिनकी ग्रीवा और विश्व ही जिनका मस्तक है, योगी उन्ही परमात्माको प्रत्यक्ष करके ॥ २ ॥ उनको प्राप्त करनेके लिये यह पवित्र "ॐ" एकाक्षर जप करे, यही उनका अध्ययन होगा, और इस ओंकारका स्वरूप श्रवण करे ॥ ३ ॥ अकार उकार और मकार, यह तीन अक्षर ही ओंकारका स्वरूप हैं, और इन्ही को तीन मात्रा जानना चाहिये । यह तीनों मात्राक्रमानुसार सात्विक

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगिचर्याकथनंनामअष्टत्रिंशोध्यायः ॥३८॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ एवंयोवर्त्ततेयोगीसम्यग्योगव्यवस्थितः ॥ नसव्यावर्तितुंशक्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१॥ दृष्ट्वाचपरमात्मानंप्रत्यक्षंविश्वरूपिणम् ॥ विश्वपादशिरोग्रीवंविश्वेशंविश्वभावनम् ॥२॥ तत्प्राप्तयेमहत्पुण्यमोमित्येकाक्षरंजपेत् ॥ तदेवाध्ययनंतस्यस्वरूपंशृण्वतःपरम् ॥ ३ ॥ अकारश्चतथोकारोमकारश्चाक्षरत्रयम् ॥ एतास्तिस्रःस्मृतामात्राःसात्त्वराजसतामसाः ॥ ४ ॥ निर्गुणायोगिगम्यान्याचार्धमात्रोर्ध्वसंस्थिता ॥ गान्धारीतिचविज्ञेयागान्धारस्वरसंश्रया ॥ ५ ॥ पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ॥ यथाप्रयुक्तओङ्कारःप्रतिनिर्य्यातिमूर्द्धनि ॥ ६ ॥ तथोङ्कारमयोयोगी त्वक्षरेत्वक्षरोभवेत् ॥ प्राणोधनुःशरोह्यात्माब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् ॥ ७ ॥ अप्रमत्तेनवेद्धव्यंशरवत्तन्मयोभवेत् ॥ ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः ॥ ८ ॥

राजसिक औरतामसिक अर्थात् अकार सात्विक, उकार राजसिक और मकार तामसिक है ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त ओंकारको और एक अर्द्ध मात्रा है, वह सात्विकादि तीनों गुणोंसे परे अर्थात् निर्गुण है, ऊर्ध्वमें अवस्थित और योगी पुरुषोंको गम्य है, इसने गान्धारस्वरका आश्रय किया है इसलिये यह गान्धारी नामसे विख्यात है ॥ ५ ॥ यह मात्रा पिपीलिका (चैंटी) की समान गति और स्पर्श युक्त हैं, यह शिरोभागमें दिखाई देती है ओंकार प्रयुक्त होकर जिसप्रकार शिरोदेशके प्रति गमन करती है ॥ ६ ॥ इसी प्रकार योगयुक्त पुरुष अक्षर अक्षर में ओंकारमय होता है । प्राण धनुःस्वरूप, एवं आत्मा बाण और ब्रह्मको लक्ष्य स्वरूप जानना चाहिये ॥ ७ ॥ प्रमादहीन होकर

शरके समान ब्रह्मको संविद्ध करसकनेसे ही तन्मय हो सकता है ओंकार ही तीनों वेद लोक, तीनों अग्नि, ॥८॥ ब्रह्म, विष्णु, महादेव, और ऋक्, साम, यजुःस्वरूप है. परमार्थतः ओंकारकी मात्रा साढेतीन हैं ॥९॥ इस ओंकारमें संयुक्त हो सकनेसे ही योगी उसमें विलीन होते हैं। अकार भूर्लोक उकार भुवर्लोक ॥१०॥ और सव्यञ्जन मकार स्वर्लोक कहकर निरूपित हुआ है, उसकी पहिली मात्रा व्यक्ता, दूसरी अव्यक्ता ॥११॥ तीसरी चिच्छक्ति और चौथी मात्रा परमपद कही गई है इस प्रकार क्रमानुसार इनको योगभूमि जानना चाहिये ॥१२॥ "ॐ" इस अक्षरका केवल उच्चारण करते ही समस्त सदा सत् असत् गृहीत होते हैं। पहिली मात्रा ह्रस्व, दूसरी मात्रा दीर्घ ॥ १३ ॥ और तीसरी मात्रा

विष्णुर्ब्रह्माहरश्चैवऋक्सामानियजूंषिच ॥ मात्राःसार्द्धाश्चतिस्रश्चविज्ञेयाःपरमार्थतः ॥ ९ ॥ तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ॥ अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुवः ॥१०॥ सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोकःपरिकल्प्यते ॥ व्यक्तातुप्रथमामात्राद्वितीयव्यक्तसंज्ञिता ॥११॥ मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरंपदम् ॥ अनेनैवक्रमेणैताविज्ञेयायोगभूमयः ॥१२॥ ओमित्युच्चारणात्सर्वंगृहीतंसदसद्भवेत्॥ ह्रस्वातुप्रथमामात्राद्वितीयादैर्घ्यसंयुता ॥१३॥ तृतीयाचप्लुताधोख्यावचसःसानगोचरा ॥ इत्येतदक्षरंब्रह्मपरमोंकारसंज्ञितम्॥१४॥ यस्तुवेदनरःसम्यक्तथाध्यायतिवापुनः ॥ संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धनः ॥१५॥ प्राप्नोतिब्रह्मणिलयंपरमेपरमात्मनि ॥ आक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृत्युमरिष्टतः ॥ १६ ॥ उत्क्रान्तिकालेसंस्मृत्यपुनर्योगित्वमृच्छति ॥ तस्मादसिद्धयोगेनसिद्ध योगेनवापुनः ॥ ज्ञेयान्यरिष्टानिसदायेनोत्क्रांतौनसीदति ॥१७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयोगधर्मेओंकारवर्णनंनामैकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

प्लुतस्वरूप है। किन्तु अर्द्धमात्राका स्वरूप वर्णन करना असाध्य है इस प्रकारसे जो योगी ओंकारसंज्ञक अक्षरस्वरूप परब्रह्मको ॥ १४ ॥ जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसारचक्र उल्लंघनपूर्वक तीनों बंधनको छोड़कर ॥१५॥ उस परमात्मा परब्रह्ममें विलीन होते हैं यदि उनके कर्मबंधनका क्षय न हो तो वह अरिष्टद्वारा मृत्युको जानकर ॥ १६ ॥ मरणकालमें जातिस्मृतिलाभपूर्वक फिर योगित्वको प्राप्त होते हैं। इसी कारण सिद्ध योगी क्या असिद्धयोगी अरिष्टका सबकोही ज्ञान होना चाहिये। अरिष्टके जानलेनेसे मृत्युकालमें दुःखको प्राप्त होना नहीं पड़ता ॥१७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ३९ ॥

दत्तात्रेयने कहा । हे महाराज ! अब तुम्हारे निकट समस्त अरिष्ट कहता हूं सुनो । योगी पुरुष इन सबको देखकर अपनी मृत्यु जाने ॥ १ ॥ जो पुरुष देवमार्ग ध्रुव शुक्र सोम अपनी छाया और अरुन्धती इन सबको नहीं देख सकता वह संवत्सरके पीछे ही मृत्यु मुखमें गिरता है ॥ २ ॥ जो पुरुष सूर्यके बिम्बको रश्मिविहीन और अग्निको अंशुमान् देखे ग्यारह महीनेसे अधिक उसको जीवन धारण करना नहीं पड़ता ॥ ३ ॥ स्वप्नमें मूत्र, पुरीष और वमन, इन सबमें सुवर्ण वा रजत का दर्शन करनेसे वह पुरुष केवल दश महीने प्राण धारण करके कालग्रासमें गिरता है ॥ ४ ॥ जो पुरुष प्रेत और पिशाचादि, गंधर्वनगर और स्वर्णवर्ण वृक्ष देखता है, उसको केवल नौ महीने

॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ ॥ अरिष्टानिमहाराजश्शृणुवक्ष्यामितानिते ॥ येषामालोकनान्मृत्युंनिजंजानातियोगवित् ॥ १ ॥ देवमार्गं ध्रुवंशुक्रंसोमच्छायामरुन्धतीम् ॥ योनपश्येन्नजीवेत्सनरःसंवत्सरात्परम् ॥ २ ॥ अरश्मिबिम्बंसूर्य्यस्यवह्निंचैवांशुमालिनम् ॥ दृष्ट्वैकादशमासेभ्योनरोनोर्ध्वंतुजीवति ॥ ३ ॥ वान्तेमूत्रपुरीषेचयःस्वर्णंरजतंतथा ॥ प्रत्यक्षंकुरुतेस्वप्नेजीवेत्सदशमासिकम् ॥ ॥ ४ ॥ दृष्ट्वाप्रेतपिशाचादीन्गन्धर्वनगराणिच ॥ सुवर्णवर्णान्वृक्षांश्चनवमासान्सजीवति ॥ ५ ॥ स्थूलःकृशःकृशःस्थूलोयोऽकस्मादेवजायते ॥ प्रकृतेश्चनिवर्तेततस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥ ६ ॥ खण्डंयस्यपदंपार्ष्ण्योःपादस्याग्रेचवाभवेत् ॥ पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ॥ ७ ॥ गृध्रःकपोतःकाकोलोवायसोवापिमूर्द्धनि ॥ क्रव्यादोवाखगोनीलःषण्मासायुःप्रदर्शकः ॥ ८ ॥ हन्यतेकाकपंक्तीभिःपांशुवर्षेणवानरः ॥ स्वांछायामन्यथादृष्ट्वाचतुःपंचसजीवति ॥ ९ ॥

जीवित रहना पडता है ॥ ५ ॥ जो पुरुष सहसा स्थूल होकर कृश और फिर कृश होकर अकस्मात् स्थूल होजाय, उसकी परमायु आठ मास पर्यन्त अवशिष्ट जाने इसके पीछे प्रकृति भ्रष्ट होजाती है ॥ ६ ॥ रेते वा कीचडके भीतर पैर डालनेसे जिसको पार्ष्णि (एडि) या पैरके अग्रभागका चिह्न खंडित दिखाई दे, वह केवल सातमहीने जीवनधारणा करता है ॥ ७ ॥ गृद्ध (कबूतर) काकोल (उल्लू) काक अथवा क्रव्याद वा अन्य कोई नीलवर्ण मांसाहारी पक्षी उड़कर मस्तकमें बैठे तो छः मासकी आयु जाने ॥ ८ ॥ जो काकश्रेणी और धूलि वर्षनेसे आघातको प्राप्त होता है और जो पुरुष अपने शरीरकी छायाको विपरीत देखता है चारमहीने वा पांच महीने वह जीवित रहता है ॥ ९ ॥

विनाही मेघ दक्षिणदिशामें बिजलीके देखनेसे और रात्रिकालमें इन्द्र धनुषके देखनेसे मनुष्य केवल दो वा तीन महीने जीवित रहता है ॥ १० ॥ घृत, तेल, दर्पण और जल इन सबमें नेत्र डालनेसे स्वीयमूर्ति जिसको दिखाई न दे और अपने देहको मस्तक शून्य देखे एक माससे अधिक कालतक उसको जीवन धारण करना नहीं पडता ॥ ११ ॥ हे राजन ! जिसके गात्रसे मुर्देकीसी गंध निर्गत होती है, वह रोगी केवल अर्द्धमास जीवित रहताहै॥१२॥स्नान करतेही जिसका हृदय और पैर सूख जाय और जलपानकरतेही फिर तत्काल तृष्णासे जिसका कण्ठ शुष्क हो वह केवल दशदिनमात्र जीवित रहताहै ॥ १३ ॥ वायु छिन्नभिन्न होकर जिस पुरुषका मर्मस्थान विभिन्न करदे और जलस्पर्श

अनभ्रेविद्युतंदृष्ट्वादक्षिणांदिशमाश्रिताम् ॥ रात्राविन्द्रधनुश्चापिजीवितंद्वित्रिमासिकम् ॥ १० ॥ घृतेतैलेतथादर्शेतोयेवानात्मनस्तनुम् ॥ यःपश्येदशिरस्कांवामासादूर्ध्वंनजीवति ॥११॥ यस्यबस्तसमोगन्धोगात्रेशवसमोऽपिवा ॥ तस्यार्द्धमासिकंज्ञेयंयोगिनो नृपजीवितम् ॥ १२ ॥ यस्यवैस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ॥ पिबतश्चजलंशोषोदशाहंसोऽपिजीवति ॥ १३ ॥ संभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति ॥ हृष्यतेनाम्बुसंस्पर्शात्तस्यमृत्युरुपस्थितः ॥ १४ ॥ ऋक्षवानरयानस्थोगायन्योदक्षिणांदिशम् ॥ स्वप्नेप्रयातितस्यापिनमृत्युःकालमिच्छति ॥ १५ ॥ रक्तकृष्णाम्बरधरागायन्तीहसतीचयम् ॥ दक्षिणाशांनयेन्नारीस्वप्नेसोऽपि नजीवति ॥ १६ ॥ नग्नंक्षपणकंस्वप्नेहसमानंमहाबलम् ॥ एवंसंवीक्ष्यवल्गन्तंविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ॥ १७ ॥ आमस्तकतलाद्यस्तुनिमग्नंपङ्कसागरे ॥ स्वप्नेपश्यत्यथात्मानंससद्योम्रियतेनरः ॥ १८ ॥

करनेसे जिसको रोमांच न हो, उसका मृत्युकाल उपस्थित ही जाने ॥ १४ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें ऋक्ष और वानरके यानमें चढकर गाता हुआ दक्षिण दिशामें जाय उसकी मृत्यु अति निकट जाने ॥ १५ ॥ स्वप्नमें लाल काले वस्त्र पहिरे स्त्री हास्यमुखसे गान करते करते जिसको दक्षिण दिशामें ले जाय, उसको शीघ्रही मृत्युमुखमें गिरना पड़ता है ॥ १६ ॥ स्वप्नमें महाबल नग्न क्षपणक बौद्धसंन्यासीको अकेला हँसते हँसते जाता देखनेसे जाने कि उसका मृत्युकाल बहुत निकट है ॥ १७ ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अपने देहको मस्तकपर्यन्त कीचके सागरमें निमग्न देखे, शीघ्रही उसकी मृत्यु संघटित होती है ॥ १८ ॥

स्वप्नमें केश, अंगार, भस्म, सर्प और सूखी नदी यह सब देखनेसे दशदिनके पीछे ग्यारहवें दिन मृत्यु होती है ॥ १९ ॥ स्वप्नमें कराल और विकटाकार काले वर्णपुरुष सशस्त्र आकर पाषाणद्वारा जिसको आघात करें, शीघ्रही उसकी मृत्यु होतीहै ॥ २० ॥ सूर्योदयके समय जिस व्यक्तिके सन्मुख, पीछे अथवा चारोंओर होकर गीदडी गमन करे, वह शीघ्रही मृत्युमुखमें पतित होता है॥२१॥भोजन करके उठतेही जिस मनुष्यका हृदय फिर तत्काल भूखसे व्याकुल हो और दंतघर्ष उपस्थित हो, उसकी आयु निःसंदेह शेष हुई है ॥२२॥ जिसकी नासिकामें दीपगंध विदित न हो, जो दिनमें और रात्रिकालमें भयको प्राप्त हो और दूसरेके नेत्रमें जो पुरुष अपना प्रतिबिम्ब नहीं देखसके उसके जीवनको निःशेष हुआ जाने ॥२३॥

केशाङ्गारांस्तथाभस्मभुजङ्गान्निर्जलांनदीम् ॥ दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तुमृत्युरेकादशेदिने ॥ १९ ॥ करालैर्विकटैःकृष्णैःपुरुषैरुद्यतायुधैः ॥ पाषाणैस्ताडितःस्वप्नेसद्योमृत्युंलभेन्नरः ॥ २० ॥ सूर्योदयेयस्यशिवाक्रोशन्तीयातिसंमुखम् ॥ विपरीतंपरीतंवामसद्योमृत्युमृच्छति ॥ ॥ २१ ॥ यस्यवैभुक्तमात्रस्यहृदयंबाध्यतेक्षुधा ॥ जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुर्नसंशयः ॥ २२ ॥ दीपगन्धंनयोवेत्तित्रस्यत्यह्नि तथानिशि ॥ नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षतेनसजीवति ॥ २३ ॥ शक्रायुधंचार्द्धरात्रेदिवाग्रहगणांस्तथा ॥ दृष्ट्वामन्येतसंक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ॥ २४ ॥ नासिकावक्रतामेतिकर्णयोर्नमनोन्नती ॥ नेत्रंचवामंस्रवतियस्यतस्यायुरुद्गतम् ॥ २५ ॥ आरक्ततामेति मुखंजिह्वावाश्यामतांयदा ॥ तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्युमासन्नमात्मनः ॥ २६ ॥ उष्ट्ररासभयानेनयःस्वप्नेदक्षिणांदिशम् ॥ प्रयातितंचजानीयात्सद्योमृत्युंनरेश्वर ॥ २७ ॥ पिधायकर्णौनिर्घोषंनशृणोत्यात्मसम्भवम् ॥ नश्यतेचक्षुषोर्ज्योतिर्यस्यसोऽपिन जीवति ॥ २८ ॥

यदि आधी रातके समयमें इन्द्रधनुष और दिनमें ग्रहगण दिखाई दें तो आत्मवित् पुरुष उस परमायुका क्षय हुआ जाने॥२४॥जिसकी नासिका टेढ़ी हो जाय, दोनों ऊंचे नीचे हों और वामनेत्रसे अश्रु गिरते रहें, उसकी परमायु पूरी हुई जाने॥२५॥मुख लोहित वर्ण और रसना श्याम वर्ण होनेसेही बुद्धिमान् पुरुष अपना मृत्युकाल निकट जाने ॥२६॥जो पुरुष स्वप्नमें ऊंट और गधेके यानमें चढकर दक्षिणदिशामें जाय, शीघ्रही उसकी मृत्यु होती है, इसमें संदेह नहीं॥२७॥दोनों कर्ण ढकनेसे स्वीय शब्द जिसको सुनाई न आवै और जिसके नेत्रोंकी ज्योति विलुप्त होजाय,

वह पुरुष शीघ्रही जीवन त्याग करता है॥२८॥जो पुरुष स्वप्नमें गत (गड्ढे) में गिरकर बाहर निकलनेके लिये द्वार न पावे, सुतरां उठनेमें असमर्थ हो, उसका परमायु निःशेष हुआ समझे ॥२९॥ जिस पुरुषकी दृष्टि ऊर्ध्वभागमें स्थित नहीं होती, लोहितवर्ण होकर बारंबार घूर्णित और चंचल हो जाय और जिसका मुख ऊष्मा (गरमी) से परिपूर्ण और नाभि विस्तृत होजाय उसको वह देह त्यागकर दूसरा देह ग्रहण करना पडता है ॥ ३० ॥ जो पुरुष स्वप्नमें अग्नि वा जलके भीतर प्रवेश करके फिर बाहर न निकल सके उसका जीवन निःशेष हुआ जाने ॥३१॥ जो पुरुष दिनमें वा रात्रिकालमें दुष्टभूत गणोंसे ताडनाको प्राप्त हो सात रात्रिमें उसको मृत्युमुखमें गिरना होता है॥३२॥जो पुरुष अपने शुक्लवर्ण

पततोयस्यवेगर्तेस्वप्नेद्वारंपिधीयते ॥ नचोत्तिष्ठतियःश्वभ्रात्तदन्तंतस्यजीवितम् ॥ २९ ॥ ऊर्ध्वाचदृष्टिर्नचसंप्रतिष्ठारक्तापुनःसंपरिवर्तमाना ॥ मुखस्यचोष्माशिशिरंचनाभिःशंसंतिपुंसामपरंशरीरम् ॥ ३० ॥ स्वप्नेऽग्निंप्रविशेद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुनः ॥ जलप्रवेशादपिवातदन्तंतस्यजीवितम् ॥ ३१ ॥ यश्चाभिहन्यतेदुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवा ॥ समृत्युंसप्तरात्रान्तेनरःप्राप्नोत्यसंशयम् ॥ ३२ ॥ स्ववस्त्रममलंशुक्लंरक्तंपश्यत्यथोसितम् ॥ यःपुमान्मृत्युमासन्नंतस्यापिहिविनिर्दिशेत् ॥३३॥ स्वभाववैपरीत्यंतुप्रकृतेश्चविपर्ययः ॥ कथयन्तिमनुष्याणांसमासन्नौयमान्तकौ ॥३४॥ येषांविनीतःस्यान्नित्यंयेऽस्यपूज्यतमामताः ॥ तानेवचावजानातितानेवचविनिन्दति ॥३५॥ देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति ॥ मातापित्रोर्नसत्कारंजामातॄणांकरोतिच ॥ ३६ ॥ योगिनांज्ञानविदुषामन्येषांचमहात्मनाम् ॥ प्राप्तेतुकाले पुरुषस्तद्विद्वेष्टिविचक्षणः ॥ ३७ ॥

पहरे वस्त्रको लोहित वर्ण वा कृष्णवर्ण देखताहै उसका मृत्युकाल निकटही जानना चाहिये॥३३॥स्वभावकी विपरीतता और प्रकृतिका विपर्यय होनेसे यम और अन्तक उस मनुष्यके निकट होते हैं ॥ ३४ ॥ बुद्धिमान् पुरुष निश्चय जाने कि काल प्राप्त होनेपरही मनुष्य पूजनीय पुरुषोंका और जिनके निकट सदा विनीत भावसे रहना उचित है उनका अपमान और निन्दा करता है॥३५॥देवता लोकों पूजामें विमुख होता है वृद्ध और ब्राह्मणोंकी निन्दा करता है, माता पिताका सत्कार तथा जामाताका आदर ॥३६॥ करनेमें विमुख होता है एवं योगी ज्ञानी और अन्यान्य महात्मा सबके ही असत्कारमें उद्यत होता है उसकी आयु समाप्त जाने ॥ ३७ ॥

हे अवनीपते ! योगीगण यत्नसहित निरन्तर जान रक्खें कि, यह सब अरिष्ट संवत्सरके अन्तमें दिनरात फलप्रदान करते हैं ॥ ३८ ॥ वह इन समस्त अति भीषण फलोंके प्रति भली भांति दृष्टि रक्खे। यह सब फल सहजमें ही जाने जाते हैं । हे नरेश्वर ! इन समस्त फलको सम्यक् विधानसे जानकर उनके आगमनका समय सदा मनमें रखना चाहिये ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे योगी उपस्थिति कालको जानकर भलीभांति निर्भय स्थान आश्रय पूर्वक योगमें अभिविनिष्ट हो जिससे कालका बल न चले ॥ ४० ॥ अरिष्टके देखते ही योगी मृत्युजनित भय छोड़ उस अरिष्टके स्वभावकी पर्यालोचना (विचार) करके जिस समय वह समागत हो ॥ ४१ ॥ योगवित पुरुष दिनके

योगिनांसततंयत्नादरिष्टान्यवनीपते ॥ संवत्सरान्तेतज्ज्ञेयंफलदानिदिवाशम् ॥ ३८ ॥ विलोक्याविशदांचैषांफलपंक्तिःसुभीषणा ॥ विज्ञायकार्योमनसिसचकालोनरेश्वर ॥ ३९ ॥ ज्ञात्वाकालंचतंसम्यगभस्थानमाश्रितः ॥ युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानास्याफलो भवेत् ॥ ४० ॥ दृष्टारिष्टंतथायोगीत्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ तत्स्वभावंतदालोक्यकालोयावद्विपाकदः ॥ ४१ ॥ तस्यभागेतथैवा ह्नोयोगंयुञ्जीतयोगवित् ॥ पूर्वाह्णेचापराह्णेचमध्याह्नेचापितद्दिने ॥ ४२ ॥ यत्रवारजनीभागेतदरिष्टंनिरीक्षितम् ॥ तत्रैवतावद्यु ञ्जीतयावत्प्राप्तंहितद्दिनम् ॥ ४३ ॥ ततस्त्यक्त्वाभयंसर्वंजित्वातंकालमात्मवान् ॥ तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मनः ॥ ४४ ॥ युञ्जीतयोगंनिर्जित्यत्रीन्गुणान्परमात्मनि ॥ तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वृत्तिमपिसंत्यजेत् ॥ ४५ ॥ ततःपरमनिर्वाणमतीन्द्रिय मगोचरम् ॥ यद्बुद्धेर्यन्नचाख्यातुंशक्यतेतत्समश्नुते ॥ ४६ ॥

उसी भागमें योगमें निविष्ट हो। उसी दिनके पूर्वाह्णमें, वा अपराह्णमें ॥ ४२ ॥ अथवा रात्रि कालमें या जिस समय अरिष्ट दिखाई दिया है, उसी कालमें योगनिविष्ट होना चाहिये। जबतक वह दिन न आवे, तबतक इसी प्रकारसे योगक्रियाका आचरण करे ॥ ४३ ॥ वह आत्मवान् होकर सब भय विसर्जन और तिस समय को पराजय करके उसी गृहमें अथवा अन्य जिस स्थानमें मनकी स्थिरता हो ॥ ४४ ॥ ऐसे स्थानमें बासकर तीनों गुणों को जीत योगयुक्त और परमात्मामें ऐकान्तिक चित्तसे अभिनिविष्ट हो और आत्माको तन्मय करके अन्तमें चित्तवृत्तिको भी सर्वथा विसर्जन करना चाहिये ॥ ४५ ॥ इस प्रकार करनेसे ही वह इन्द्रियातीत, बुद्धिके अगोचर, और वाक्यका अतीत

परम निर्वाण लाभकर सकते हैं ॥ ४६ ॥ हे अलर्क ! मैंने यथार्थ रूपसे तुम्हारे निकट यह सब वर्णन किया । अब जिस उपायसे ब्रह्म पदार्थ लाभ किया जाता है वह संक्षेपसे कहता हूं सुनो ॥ ४७ ॥ चन्द्रमाकी किरणोंका संयोग होनेसे ही चन्द्रकान्तमणिसे जल निकलता है चन्द्रमाकी किरणोंके सहित संयोग न होनेसे कभी जल नहीं निकलता, यही योगीके योगसिद्धिका उपाय है, अर्थात् योगमें मनको अभि निविष्ट न करनेसे कभी योगीके हृदयमें आनन्द रसका संचार नहीं होता, योगमें मनको नियुक्त करनेसे ही वह आनन्द होता है ॥ ४८ ॥ सूर्यकी किरणोंका संयोग होनेपर ही सूर्यकान्तमणिसे अग्नि निकलती है, सूर्यकी किरणोंका बिना संयोग हुए नहीं निकल सकती । यह भी योगीके योगसिद्धिकी और एक उपमा है अर्थात योगमें युक्तचित्त न होनेसे कभी ब्रह्मके साक्षात्कारमें समर्थ

एतत्सर्वंसमाख्यातंतवालर्कयथार्थवत् ॥ प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मसंक्षेपात्तन्निबोधमे ॥ ४७ ॥ शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिःपयः ॥ समुत्सृजतिनायुक्तःसोपमायोगिनःस्मृता ॥ ४८ ॥ यथार्करश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ॥ आविष्करोतिनैकःसन्नुपमासापि योगिनः ॥ ४९ ॥ पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिंजलाः ॥ वसन्तिस्वामिवद्गेहेध्वस्तयान्तिततोऽन्यतः ॥ ५० ॥ दुःखंतुस्वामिनो ध्वंसेतस्यतेषांनकिंचन ॥ वेश्मनोयत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धये ॥ ५१ ॥ मृदहिकाल्पदेहापिमुखाग्रेणाप्यणीयसा ॥ करोतिमृच्छ्रा रचयमुपदेशःसयोगिनः ॥ ५२ ॥ पशुपक्षिमनुष्याद्यैःपत्रपुष्पफलान्वितम् ॥ वृक्षंविलुप्यमानंतुदृष्ट्वासिद्ध्यन्तियोगिनः ॥ ५३ ॥

नहीं होता॥४९॥पिपीलिका, मूषिक, नकुल, गृहगोधा (घरकी गोय) और कपिञ्जल, कबूतर यह गृहस्वामीके समान विद्यमान रहते हैं अर्थात उस स्थानमें सदा वास करते हैं उसके नष्ट होनेपर अन्य स्थानमें जाते हैं ॥५०॥ गृहस्वामीके ध्वंस होनेसे वह कुछ भी नहीं होते हे राजेन्द्र ! यह भी योगीके योगसिद्धिकी तीसरी उपमा है, अर्थात् स्वभावसेही शरीरके पीछे शरीरका आविर्भाव निराधार होता है, अतएव इसके लिये दुःख वा ममताके वशीभूत होना अनुचित है योगी यह जानकर दुःखादि परित्यागपूर्वक योगसाधनमें मन लगावे ॥५१॥ देखो चींटी अत्यन्त छोटी वस्तु होकरभी अत्यन्त सूक्ष्ममुखद्वारा (मट्टीखैंचरकर ढेर) संचय करती हैं।यह भी योगीके लिये एक उपदेश है, अर्थात् यद्यपि ब्रह्मसाधन कठिन कार्य है किन्तु तो भी योगरूप सामान्य उपायके बलसेही उसको वशीभूत किया जाताहै ॥५२॥ पशु पक्षी मनुष्य इत्यादि फल, पुष्प,

पत्रान्वित वृक्षको नष्ट कर देते हैं। योगी यह देखकरभी सिद्धिलाभ करे अर्थात् समृद्धि होनेसेही ध्वंस है समयमें कालके हाथसे अवश्य नष्ट होना पड़ेगा। इसप्रकार जानकरही योगीगण योगसाधनमें निविष्ट होकर निर्वाणलाभ करे ॥ ५३ ॥ रुरुशावक (मृगविशेष) के सींगका अग्रदेश तिलकाकार होकरभी उसके संग संगमें वह वृद्धिको प्राप्त होताहै, इसी दृष्टान्तके अनुगामी होकर भी योगी सिद्धिलाभ करते हैं। अर्थात् योगचर्या कितनीही भारी क्यों न हो, धीरे अभ्यास करनेसे अवश्यही कृतकार्य हो सकताहै ॥ ५४ ॥ और भी देखो ! जब मनुष्य द्रवपरिपूर्णपात्र हाथमें लेकर पृथ्वीसे ऊंचे स्थानमें आरोहण करताहै, उसकाल उसके अंगके प्रति सम्यक् प्रकार दृष्टि डालनेसे योगीका कोई विषय अज्ञात रहताहै ॥५५॥ मनुष्य जीवनके लिये अपना सर्वस्व नष्ट करनेकी जो चेष्टा करताहै, उसको सम्यक् प्रकार जाननेसे योगी कृतकृत्यताका लाभ करताहै॥५६॥जिस स्थानमें वास किया जाय

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् ॥ सहतेनविवर्द्धन्तंयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४॥ द्रवपूर्णमुपादायपात्रमारोहतोभुवः ॥ तुङ्गमङ्गंविलोक्योच्चैर्विज्ञातंकिंनयोगिना ॥ ५५ ॥ सर्वस्वेजीवनायालंनिखाते पुरुषस्यया ॥ चेष्टांतांतत्त्वतोज्ञात्वायोगिनःकृतकृत्यता ॥ ५६ ॥ तद्गृहंयत्रवसतितद्भोज्यंयेनजीवति ॥ येनसम्पद्यतेचार्थस्तत्सखंममतात्रका ॥ ५७ ॥ अभ्यर्थितोऽपिनैःकार्यंकरोतिकरणैर्यथा ॥ तथाबुद्ध्यादिभिर्योगीपारक्यैःसाधयेत्परम् ॥ ५८ ॥ जडउवाच ॥ ततःप्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कःसमहीपतिः ॥ प्रश्रयावनतो वाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ॥ ५९ ॥ दिष्ट्यादेवैरिदंब्रह्मन्पराभिभवसम्भवम् ॥ उपपादितमत्युग्रं प्राणसंदेहदंभयम् ॥६०॥ दिष्ट्या काशिपतेर्भूरिबलसम्पत्पराक्रमः ॥ यदुच्छेदादिहायातःसयुष्मत्सङ्गदोमम ॥ ६१ ॥

वही गृह, जिसके द्वारा प्राण धारण हो, वही भोज्य और जिसके द्वारा अर्थ निष्पन्न हो, वही सुख कहा गयाहै, अतएव इस विषयमें ममता करनेकी क्या आवश्यकता है? ॥५७॥ जिस प्रकार कारणद्वारा अपना चिन्तित कार्य साधित होताहै, इसीप्रकार योगी पारलौकिक बुद्ध्यादिसेही ब्रह्मकी साधना करें ॥५८॥ जडने कहा। अनन्तर नरपति अलर्क विनयावनत हो अत्रिनन्दन दत्तात्रेयजीको प्रणाम करके आनन्द सहित कहने लगे ॥५९॥ हे ब्रह्मन् ! सौभाग्यसेही मुझको यह अतिउग्र, प्राणोंको संदेहमें डालनेवाला भयदयी शत्रुसे तिरस्कार प्राप्त हुआहै ॥ ६० ॥ सौभाग्यवशही वह काशिराज महाबल पराक्रान्त और समृद्धिमान् हुएहैं जिसके कारण मुझे तुम्हारी संगति प्राप्त हुई है ॥ ६१ ॥

मैं सौभाग्यसेही क्षीणबल हुआ हूं, सौभाग्यसेही मेरे भृत्यगण मारे गये हैं और सौभाग्यसेही मेरा कोष क्षयको प्राप्त हुआ है तथा भयका संचार हुआ है॥६२॥सौभाग्यवश ही आपके चरणयुगल मेरे स्मृतिपथमें उदित हुए हैं सौभाग्यवशही आपके सब वचनोंने मेरे हृदयमें स्थान पाया है ॥६३॥ और सौभाग्यवश ही आपका समागमलाभ होनेसे मुझको ज्ञानका उदय हुआ । हे ब्रह्मन् ! सौभाग्यवश ही आपने मेरे प्रति दया प्रदर्शन करी है॥६४॥ पुरुषका शुभोदय होनेपर अनर्थ भी अर्थरूपमें परिणत होता है। इस भयंकर विपदनेभी आपसे मिलाकर मेरा उपकार साधन किया॥६५॥हे प्रभो! हे योगीश्वर ! जिनके लिये मैं आपके निकट उपस्थित हुआ हूं, वह सुबाहु और काशिराज, दोनों ही मेरे परम उपकारी हैं, इसमें सन्देह नहीं

दिष्टयामंदबलश्चाहंदिष्टयाभृत्याश्चमेहताः ॥ दिष्टयाकोषःक्षयंयातोदिष्टयाहंभीतिमागतः ॥ ६२ ॥ दिष्टयात्वत्पादयुगुलंममस्मृतिपथंगतम् ॥ दिष्टयात्वदुक्तयःसर्वाममचेतसिसंस्थिताः ॥ ६३ ॥ दिष्टयाज्ञानंममोत्पन्नंभवतश्चसमागमात् ॥ भवताचैवकारुण्यंदिष्टयाब्रह्मन्कृतंमयि ॥ ६४ ॥ अनर्थोऽप्यर्थतांयातिपुरुषस्यशुभोदये ॥ तथेदमुपकारायव्यसनंसंगमात्तव ॥ ६५ ॥ सुबाहुरुपकारीमेसचकाशिपतिःप्रभो ॥ तयोःकृतेऽहंसंप्राप्तोयोगीशभवतोऽन्तिकम् ॥ ६६ ॥ सोऽहंतवप्रसादाग्निनिर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः ॥ तथायतिष्येयेनेदृङ्नभूयोदुःखभाजनम् ॥ ६७ ॥ परित्यजिष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकाननम् ॥ त्वत्तोऽनुज्ञांसमासाद्यज्ञानदातुर्महात्मनः ॥ ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयउवाच ॥ गच्छराजेन्द्रभद्रंतेयथातेकथितंमया ॥ निर्ममोनिरहङ्कारस्तथाचरविमुक्तये ॥ ६९ ॥ जडउवाच ॥ एवमुक्तःप्रणम्यैनमाजगामत्वरान्वितः ॥ यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः ॥ ७० ॥

॥ ६६ ॥ आपकी प्रसादरूप अग्निद्वारा मेरे अज्ञानरूप पाप दग्ध होगये हैं, जिससे फिर ऐसे दुःखको प्राप्त होना न पडे अब मैं उसीके अनुष्ठानमें यत्नवान् हूंगा ॥ ६७ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप ज्ञानदाता और महात्मा हैं, आपकी आज्ञा होनेपरही मैं गृहस्थाश्रमको परित्याग करूंगा । यह आश्रम दुःखरूपी वृक्षका वनस्वरूप है ॥ ६८ ॥ दत्तात्रेयजी बोले—हे राजेन्द्र ! तुम गमन करो । तुम्हारा मंगल हो । मैंने तुमको जिस प्रकार उपदेश प्रदान किया, तुम ममता और अहंकार रहित होकर मुक्तिलाभ होनेके लिये उसीके अनुरूप कार्य करो ॥ ६९ ॥ जड़ने कहा दत्तात्रेयजीके इस प्रकार कहनेपर अलर्क उनको प्रणाम करके शीघ्रतासहित अग्रज सुबाहु और काशीपतिके निकट उपस्थित हुए ॥ ७० ॥

उन्होंने महाबाहु काशीनाथके निकट सुबाहुके सन्मुख उपस्थित हो हँसते हँसते कहा ॥७१॥ हे काशीपते ! तुमने राज्यलाभकी कामना करी है, अत एव यह समृद्धिशाली साम्राज्य भोग करो अथवा सुबाहुको दे दो, या तुम्हारी जो इच्छा हो, वही कर सकते हो ॥७२॥ काशीराजने कहा । हे अलर्क तुम विना युद्धके राज्य क्यों परित्याग करते हो यह क्षत्रियोंका धर्म नहीं है, तुम भी क्षात्रधर्म में विशारद हो ॥ ७३ ॥ नरपति अमात्य वर्गको जीतकर मरणभय परित्यागपूर्वक शत्रुको लक्ष्य निर्देशकर शरसंधान करें ॥ ७४ ॥ वह शत्रुको पराजय करके सिद्धिके लिये अभिलाषित अति उत्तम भोगोंको भोगते अनेक श्रेष्ठ यज्ञका अनुष्ठान करे ॥ ७५ ॥ अलर्क ने कहा । हे वीर ! पहिले मेरीभी इसी प्रकार वासना थी और मेरा

समुत्पत्यमहाबाहुंसोलर्कःकाशिभूपतिम् ॥ सुबाहोरग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निव ॥ ७१ ॥ राज्यकामुककाशीशभुज्यतांराज्यमूर्जितम् ॥ यथाचरोचतेतद्वत्सुबाहोःसंप्रयच्छवा ॥ ७२ ॥ काशिराजउवाच ॥ ॥ किमलर्कपरित्यक्तंराज्यंतेसंयुगंविना ॥ क्षत्रियस्यनधर्मोऽयं भवांश्चक्षत्रधर्मवित् ॥ ७३ ॥ निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजंभयम् ॥ संदधीतशरंजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम् ॥ ७४ ॥ तंजित्वा नृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ॥ भुञ्जीतपरमंसिद्ध्यैयजेतचमहामखः ॥ ७५ ॥ अलर्कउवाच ॥ एवमीदृशकंवीरममाप्यासी न्मनःपुरा ॥ साम्प्रतंविपरीतार्थंश्रृणुचाप्यत्रकारणम् ॥ ७६ ॥ यथायंभौतिकःसंघस्तथान्तःकरणंनृणाम् ॥ गुणास्तुसगलास्तद्वदशे षेष्वेवजन्तुषु ॥ ७७ ॥ चिच्छक्तिरेकएवायंयदानान्योऽस्मिकश्चन ॥ तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ॥ ७८ ॥ तन्मया दुःखमासाद्यत्वद्योद्भवमुत्तमम् ॥ दत्तात्रेयप्रसादेनज्ञानंप्राप्तंनरेश्वर ॥७९॥ निर्जितेंद्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासंगमशेषतः ॥ मनोब्रह्मणिसंधा स्येतज्जयेपरमोजयः ॥ ८० ॥

मनभी ऐसाही धारणा करता था । किन्तु अब उसके विपरीतभावका संचार हुआ है, उसका कारण सुनो ॥ ७६ ॥ मनुष्यमात्रकाही संग जिस प्रकारका भौतिक है, उनका अन्तःकरण और गुणसमूहभी उसी प्रकार भूतकी समष्टिमात्र हैं ॥७७॥ हे नृपते ! केवल मात्र चिच्छक्तिरूप ब्रह्महो सत्य है उसके अतिरिक्त जब और कोई भी सत्य नहीं है ऐसा ज्ञानलाभ हुआ है तब शत्रु, मित्र और प्रभु भृत्यकी कल्पना किसप्रकारसे होगी॥७८॥ हे राजन् ! मैंने तुम्हारे भयसे अत्यन्त दुःखको प्राप्त होकर इस समय दत्तात्रेयके प्रसादसे ज्ञान प्राप्त किया है॥७९॥अब जितेन्द्रिय

होकर सम्यक् प्रकारसे समस्तसंग परित्यागपूर्वक मनको परब्रह्ममें अभिनिष्ट करूंगा । ब्रह्मके जय होनेसे ही समस्त जय हुई ॥ ८० ॥ एक मात्र जिसके अतिरिक्त और कोई विद्यमान नहीं है उनके लिये अन्यसाधना करना अनुचित है । जितेन्द्रिय होनेमेही सिद्धिलाभ करी जाती है ॥ ८१ ॥ हे राजन् ! मैं तुम्हारा वैरी वा तुमभी मेरे शत्रु नहीं हो इस सुबाहुनेभी मेरा कोई अपकार नहीं किया यह मैंने भलीभांतिसे जान लिया है, अतएव तुम अब अन्य शत्रुको खोजो॥८२॥अलर्कके इस प्रकार कहनेपर काशिराज अत्यंत संतुष्ट हुआ और सुबाहु हर्षसे उठ कर "परम सौभाग्य" कहकर भ्राताको अभिनन्दन करते हुए काशीश्वरसे कहने लगे॥८३॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

संसाध्यमन्यत्तत्सिद्धचैयतः किं चित्रविद्यते ॥ इन्द्रियाणिचसंयम्यततःसिद्धिनियच्छति ॥ ८१ ॥ मोहंनतेऽरिर्नममासिशत्रु सुबाहुरेषोनममापकारी ॥ दृष्टंमयासर्वमिदंयथात्माअन्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयान्यः ॥ ८२ ॥ इत्थंमतेनाभिहितोनरेन्द्रोहृष्टःसमुत्थायततः सुबाहुः ॥ दिष्ट्येतितंभ्रातरमाभिनन्द्यकाशीश्वरंवाक्यमिदंबभाषे ॥ ८३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे अलर्कनिर्वेदोनाम चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४० ॥ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ ॥ यदर्थंनृपशार्दूलत्वामहंशरणंगतः ॥ तन्मयासकलंप्राप्तंयास्यामित्वंसुखीभव ॥ १ ॥ काशिराजउवाच ॥ किंनिमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नोऽर्थश्चकस्तव ॥ सुबाहोतन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलंहिमे ॥ २ ॥ ममाक्रान्तमलर्केण पितृपैतामहंमहत् ॥ राज्यंदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदितः ॥ ३ ॥ ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते ॥ एतत्तवलमानीतं तद्भुङ्क्ष्वस्वकुलोचितम्॥४॥सुबाहुरुवाच ॥ काशिराजनिबोधत्वंयदर्थंमयमुद्यमः ॥ कृतोमयाभवांश्चैवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५॥

सुबाहुने कहा हे नृपशार्दूल ! मैंने जिस कारण आपकी शरण ग्रहण की थी सब प्राप्त किया। अब मैं जानता हूं। आप सुखी हों ॥ १ ॥ काशीपति बोले हे सुबाहो ! आपने किस लिये मेरी शरण ग्रहण करीथी और आपका क्या कार्य सम्पादित हुआ ? सो कहो। यह जाननेके लिये मुझको परम कौतुहल उत्पन्न हुआ है॥२॥अलर्क अपने पितृपैतामहिक समृद्ध राज्य भोग करता था आपने शत्रुको जीतकर वह राज्य छुड़ादेनेके लिये मुझको उत्तेजित किया ॥ ३ ॥ इसी कारण मैंने आपके भ्राताका राज्य आक्रमणपूर्वक अपने वशमें कर लिया है. अब आप स्वकुलोचित राज्य भोगिये ॥ ४ ॥ सुबाहुने कहा हे काशीपते । मैंने जिस कारण ऐसा उद्यम किया था और आपको इसमें प्रवर्तित किया था, सो सुनो ॥ ५ ॥

मेरे यह अनुज तत्त्वज्ञानी होकर भी ग्राम्य भोगमें आसक्त थे मेरे दो अग्रज विमूढ होकर भी तत्त्ववित् हुए हैं ॥ ६ ॥ हे अवनीपते ! मेरी जननीने शैशवमें दोनों अग्रजके और मेरे मुखमें जिस प्रकार स्तन प्रदान किया था, वैसे ही हमारे कानमें तत्त्वज्ञानका भी उपदेश दिया था ॥ ७ ॥ जो जो विषय मनुष्यमात्रको जानने उचित हैं हे राजन् ! माताने हमारे तीनों भाइयोंके हृदयमें वह सब प्रकाशित कर दिये थे, किन्तु अलर्कको वह नहीं हुए ॥ ८ ॥ हे महीपते ! जिस प्रकार एक सार्थगत अर्थात् एक साथमें जानेवाली मनुष्योंमें एक मनुष्यके दुःखग्रसित होनेपर सब साधू दुःखित होते हैं मेरी भी वही अवस्था हुई है ॥ ९ ॥ क्योंकि अलर्कके संग मेरा संबंध है. इनको इस देहमें मैंने भ्रातृ कल्पना किया है,

भ्राताममायंग्राम्येषुतत्त्ववित् ॥ विमूढौबोधवन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥ ६ ॥ तयोर्ममचयन्मात्राबाल्येस्तन्यंयथामुखे ॥ तथावबोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते ॥ ७ ॥ तयोर्ममचविज्ञेयाःपदार्थायेमतानृभिः ॥ प्रकाश्यंमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥ ८ ॥ यथैकमर्थंयातानामेकस्मिन्नवसीदति ॥ दुःखंभवतिसाधूनांतथास्माकंमहीपते ॥९॥ गार्हस्थ्यमोहमापन्नेसीदत्यस्मिन्नरेश्वर ॥ सम्बन्धिन्यस्यदेहस्यबिभ्रतिभ्रातृकल्पनाम् ॥ १० ॥ ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाद्वैराग्यभावना ॥ भविष्यतीत्यस्यभवानित्युद्योगायसंश्रितः ॥ ११ ॥ तदस्यदुःखाद्वैराग्यंसंबोधादवनीपते ॥ समुद्भूतंकृतंकार्यंभद्रंतेस्तुव्रजाम्यहम् ॥ १२ ॥ उष्ट्वामदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ॥ नान्यनारीसुतैर्यातंवर्त्मयात्विति पार्थिव ॥ १३ ॥ विचार्य्यतन्मयासर्वंयुष्मत्संश्रयपूर्वकम् ॥ कृतंतच्चापिनिष्पन्नंप्रयास्येसिद्धयेपुनः ॥ १४ ॥

यह गर्हस्थ्य मोहमें अभिभूत होकर दुःखको प्राप्त हो रहे थे ॥ १० ॥ इस कारण दुःख होनेपर ही वैराग्यका उदय होगा, इस प्रकार स्थिर करके उद्योगार्थ आपका आश्रय ग्रहण किया था ॥ ११ ॥ हे अवनीपते ! इससे उसको दुःखका संचार हुआ और उस दुःखसे ही तत्त्वज्ञानका उदय होनेपर वैराग्यका संचार हुआहै सुतरां अब मैं कृत कार्य हुआहूं इस समय मैं प्रस्थान करताहूं, आपका कल्याण हो ॥ १२ ॥ हे पार्थिव! यह अलर्क मदालसाके उदरमें स्थित हुआहै और उसका स्तनपान कियाहै; अतएव अन्यस्त्रीगर्भोत्पन्न पुत्रगण जिस मार्गमें जानेको समर्थ नहीं होते, यह उसी मार्गमें गमन करे ॥ १३ ॥ मैंने यह सब विचारकर आपका आश्रयग्रहणपूर्वक उसीके अनुरूप कार्यका अनुष्ठान कियाहै मेरा कार्यभी सम्पन्न हुआहै, अब फिर सिद्धि

लाभके लिये गमन करताहूं ॥१४॥ हे नरेन्द्र ! स्वजन, बांधव, और सुहृज्जनोंके दुःखी होनेपर जो व्यक्ति उनके प्रति उपेक्षा करताहै, मैं उसको विकलेन्द्रिय समझताहूं॥१५॥ सुहृज्जन बन्धु और स्वजन इनके समर्थ होनेपरभी जो मनुष्य (दुःख)को प्राप्तहोताहै, उसके वह सुहृज्जनादिही निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम और मोक्षसे च्युत होते हैं, उसको निन्दनीय होना नहीं पड़ता ॥१६॥ हे सत्तम ! मैंने आपका संगलाभ करके इस प्रकार महत् कार्य सम्पन्न किया है, आप सुखी और ज्ञानमार्गी हो मैं अब जाताहूं ॥१७॥ काशीराजने कहा—आपने साधुमति अलर्कका बडा उपकार साधन किया किन्तु मेरा उपकार करनेमें मन क्यों नहीं लगाते ॥१८॥ साधुओंके संग साधुओंका मिलना फलदायकही होता है कभी

उपेक्ष्यतेसीदमानःस्वजनोबान्धवःसुहृत् ॥ यैर्नरेन्द्रनतान्मंन्येसेन्द्रियाविकलाहिते ॥ १५ ॥ सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्थेयोऽवसीदति॥ धर्मार्थकाममोक्षेभ्योवाच्यास्तेतत्रनत्वसौ ॥ १६ ॥ एतत्त्वत्सङ्गमाद्भूपमयाकार्यंमहत्कृतम् ॥ स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यामिज्ञानभाग्भवसत्तम ॥ १७ ॥ काशिराजउवाच ॥ उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् ॥ ममोपकारायकथंनकरोषिस्वमानसम् ॥ १८ ॥ फलदायीसतांसद्भिःसंगमोनाफलोयतः ॥ तस्मात्त्वत्संश्रयाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नतिः ॥ १९ ॥ सुबाहुरुवाच ॥ धर्मार्थकाममोक्षाख्यं पुरुषार्थचतुष्टयम् ॥ तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपरः ॥ २० ॥ तत्तेसंक्षेपतोवक्ष्येतदिहैकमनाःशृणु ॥ श्रुत्वाचसम्यगालोच्ययतेथाःश्रेयसेनृप ॥ २१ ॥ ममेतिप्रत्ययोभूपनकार्य्योऽहमितित्वया ॥ सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावेनिराश्रयः ॥ २२ ॥ कोवाहमितिसंज्ञेयमित्यालोच्यत्वयात्मना ॥ बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ॥ २३ ॥

विफल होनेवाला नहीं है, अत एव आपके संग मिलनेमें मेरा उन्नतिलाभही संगत है ॥१९॥ सुबाहुने कहा। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष यही चारों पुरुषार्थ कहे गये हैं, तिनमें आपका धर्म, अर्थ और काम सिद्ध हुआ है, मोक्षमात्रका अभाव विद्यमान है॥२०॥ अत एव आपसे कहताहूं एकाग्र चित्तसे सुनो। मुझसे सुनकर उसकी भलीभांति आलोचना करके कल्याणलाभके लिये यत्नवान् होओ ॥२१॥ हे भूप ! "यह मेरा" "यह मैं" इस प्रकार ममता और अहंकारके वशीभूत न होना सम्यक् प्रकारसे धर्मकी आलोचना करना। क्योंकि धर्मके अभावमेंही निराश्रय होना पड़ता है ॥ २२ ॥ आलोचना करनेसेही "मैं किसका हूं" यह सम्यक् प्रकार जाना जाता है। रात्रिके शेष भागमें आलोचना करके

बाह्यान्तर्गत आलोचना करनी आरंभ करो ॥२३॥ अव्यक्तसे प्रकृतिपर्यन्त अविकारी, अचेतन व्यक्ताव्यक्त समस्त विषयको जानकर कौन ज्ञेय, कौन ज्ञाता और मैं कौन हूं, यह जानना चाहिये ॥२४॥ यह सब विदित होनेसेही आप समस्त जानेंगे देहादि अनात्मवस्तुमें आत्मबोध और जो अपना नहीं है, उसको अपना जाननाही मूढता मात्र है ॥ २५ ॥ हे भूपते ! "वही मैं" लौकिक व्यवहारमें सर्वगत हूं । आपने जो विषय पूछा था, वह वर्णन किया । अब मैं जाताहूं ॥ २६ ॥ जब महाबुद्धिमान् सुबाहु काशीराजसे यह कहकर चलेगये । तब काशीपतिनेभी अलर्ककी सम्यक् प्रकार पूजा करके अपने नगरमें प्रस्थान किया ॥ २७ ॥ अलर्कभी अपने ज्येष्ठनंदनको राज्यपदमें प्रतिष्ठित करके सब संगपरित्याग

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ॥ व्यक्ताव्यक्तंत्वयाज्ञेयंज्ञाताकश्चाहमित्युत ॥२४॥ एतस्मिन्नेवविज्ञातेविज्ञातमखिलंत्वया ॥ अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ॥ २५ ॥ सोऽहंसर्वगतोभूपलोकसंव्यवहारतः ॥ मयेदमुच्यतेसर्वंत्वयापृष्टोव्रजाम्यहम् ॥२६॥ एवमुक्त्वाययौधीमान्सुबाहुःकाशिभूमिपम् ॥ काशिराजोऽपिसंपूज्यसोऽलर्कंस्वपुरंययौ ॥ २७ ॥ अलर्कोऽपिसुतंज्येष्ठमभिषिच्यनराधिपम् ॥ वनंजगामसन्त्यक्तसर्वसङ्गःस्वसिद्धये ॥२८॥ ततःकालेनमहतानिर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ॥ प्राप्ययोगर्द्धिमतुलांपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥२९॥ पश्यञ्जगदिदंसर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ पाशैर्गुणमयैर्बद्धंवध्यमानंचनित्यशः ॥ ३० ॥ पुत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभवावितैः ॥ आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्तंभिन्नदर्शनम् ॥३१॥ अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारंमहामतिः ॥ आत्मानंचसमुत्तीर्णं गाथामेतामगायत ॥३२॥ अहोकष्टंयदस्माभिःपूर्वंराज्यमनुष्ठितम् ॥ इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगान्नास्तिपरंसुखम् ॥ ३३ ॥

पूर्वक आत्मसिद्धिके अर्थ वनवासी हुए ॥ २८ ॥ फिर बहुत काल बीतनेपर छन्दरहित और निष्परिग्रह हो अतुल योगसम्पत्तिलाभपूर्वक परमनिर्वाणपदवी लाभ करी ॥ २९ ॥ सुर असुर मनुष्यादि पूर्ण यह दृश्यमान संपूर्ण जगत् गुणमय पाशद्वारा बँधकर नित्यही बध्यमान होता है ॥ ३० ॥ पुत्रादि-भ्रातृ-पुत्रादि एवं अपने और पराये पुरुषोंके द्वारा यह पाश निर्मित है । यह भिन्न-दर्शन जगत् संसार उसी पाशमें आकृष्यमाण होनेके कारण दुःखसे पराभूत होगयाहै ॥३१॥ इसपरभी फिर अज्ञानरूपी कीचडमें निमग्न होनेसे निकलनेका भी उपाय नहीं है । मतिमान् अलर्कने यह सब देखकर और "मेरा उद्धार हुआहै" इस भांति विचारकर यह गाथा गाई थी ॥ ३२ ॥ "अहो क्या कष्ट है ?

मैं प्रथम राज्यभोगा करता था, अंन्तमें जाना—योगकी अपेक्षा परम सुख और कुछ नहीं है" ॥ ३३ ॥ पुत्रने कहा—हे तात ! आप मुक्तिलाभके लिये उस अनुत्तम योगका आचरण कीजिये तो ब्रह्मको प्राप्त हो सकोगे, उसब्रह्मके लाभ होनेसे फिर शोकमें अभिभूत होना नहीं पडेगा मैं भी गमन करूंगा । ॥३४॥ यज्ञ और जपको मुझको क्या आवश्यकता है ! कृतकृत्य मनुष्यका कार्य केवल ब्रह्मलाभके निमित्त है, इसमें सन्देह नहीं ॥३५॥ अतएव मैं आपकी आज्ञा ग्रहण करके द्वन्द्व रहित और परिग्रह शून्य हो जिससे निर्वाण लोभ वह मुक्तिके लिये उस विषयमें सम्यक् प्रकार यत्नवान् हूंगा ॥ ३६ ॥ पक्षी बोले हे द्विज ! महा बुद्धिमान् वह जड़ पितासे इस प्रकार कह उनकी आज्ञा

पुत्रउवाच ॥ तातैनंत्वंसमातिष्ठमुक्तयेयोगमुत्तमम् ॥ प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ॥ ३४ ॥ ततोऽहमपियास्यामिकिंयज्ञैः किंजपेनमे ॥ कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते ॥ ३५ ॥ ततोऽनुज्ञामवाप्याहंनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ॥ प्रयतिष्येनथामुक्तौयथायास्यामिनिर्वृतिम् ॥ ३६ ॥ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ एवमुक्त्वासपितरंप्राप्यानुज्ञांततश्चसः ॥ ब्रह्मजगामसेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः ॥ ३७ ॥ सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ॥ वानप्रस्थंसमास्थायचतुर्थाश्रममभ्यगात ॥ ३८ ॥ तथात्मजंसमासाद्यहित्वाबन्धंगुणादिकम् ॥ प्रापसिद्धिंपरांप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ॥ ३९ ॥ एतत्तेकथितंब्रह्मन्यत्पृष्टोभवतामम ॥ सुविस्तरंयथावत्तुकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ४० ॥ यश्चैतच्छृणुयाद्विप्रपठेद्वासुसमाहितः ॥ ४१ ॥ सदश्वमेधावभृथस्नातःप्राप्नोतितत्फलम् ॥ सकलंतदवाप्नोतिश्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ॥ ४२ ॥ एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ॥ अलर्कात्रेयसंवादंश्रुत्वामुच्यतेनरः ॥ ४२ ॥

ग्रहणपूर्वक निष्परिग्रहण होकर चलागया ॥ ३७ ॥ उसके महामति पिता भी क्रम क्रमसे वानप्रस्थता अवलम्बनपूर्वक चतुर्थ आश्रममें प्रवेश किया ॥ ३८ ॥ वह पुत्रके सहित संगत होकर गुणादिबंधविसर्जनपूर्वक तत्कालोत्पन्न बुद्धिके प्रभावसे परम सिद्धिको प्राप्त हुए ॥ ३९ ॥ हे ब्रह्मन् ! आपने मुझसे जो पूछाथा वह आपके निकट विस्तारसहित यथावत् वर्णन किया । अब और क्या सुननेकी इच्छा है, सो प्रकाश करो ॥ ४० ॥ हे विप्र ! जो इसको सुने वा सावधान होकर पढे ॥ ४१ ॥ सो अश्वमेधके अवभृथस्नानके फलको प्राप्त होता है हे मुनिसत्तम इसके सुननेसे वह सब मिलता है ॥४२॥ यही संसारमें भ्रमणकरनेवालोंको उत्तम रक्षा है इस अलर्क और दत्तात्रेयके संवादको सुनकर मनुष्य

अशुभसे छूटजाता है ॥ ४३ ॥ इति श्रीमर्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामेकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ जैमिनीनें कहा हे द्विजश्रेष्ठगण ! वैदिककर्म दो प्रकारका है; प्रवृत्ति और निवृत्ति ! आपने वह विषय मुझसे सम्यक् प्रकार वर्णन किया ॥१॥ अहो पिताके प्रसादसे आपने ऐसा ज्ञान प्राप्त किया है, उस ज्ञानके बलसे तिर्यक् योनिको प्राप्त होकर भी आपका मोह दूर हुआ है ॥ २ ॥ आपका मन जब सिद्धि लाभार्थ पूर्वावस्थामेंही रहता है, तब आपही धन्य हैं, विषय जनितमोह आपके मनको विचलित नहीं कर सकता ॥३॥ सौभाग्यवशही महामति भगवान् मार्कंडेयजीने आपकी कथा कहीथी, आप सभी संदेह हरण करनेवाले हैं ॥ ४ ॥ इस संकटमय संसारमें जो भ्रमण करते हैं, आपके समान तपस्वियोंसे मिलना

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेपितापुत्रसंवादेजडोपाख्यानेएकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४१ ॥ ॥ जैमिनिरुवाच ॥ सम्यगेतन्ममाख्यातंभवद्भिर्द्विजसत्तमाः ॥ प्रवृत्तंचनिवृत्तंचद्विविधंकर्मवैदिकम् ॥ १ ॥ अहोपितृप्रसादेनभवतांज्ञानमीदृशम् ॥ येनतिर्यक्त्वमप्येतत्प्राप्यमोहस्तिरस्कृतः ॥ २ ॥ धन्याभवन्तःसंसिद्धयैप्रागवस्थास्थितंयतः ॥ भवतांविषयोद्भूतैर्नमोहैश्चाल्यतेमनः ॥ ३ ॥ दिष्ट्याभगवतातेनमार्कण्डेयेनधीमता ॥ भवन्तोवैसमाख्याताःसर्वसन्देहहृत्तमाः ॥ ४ ॥ संसारेऽस्मिन्मनुष्याणांभ्रमतामतिसङ्कटे ॥ भवद्भिर्वैःसमंसङ्गोजायतेनातपस्विनाम् ॥ ५ ॥ यद्यहंसङ्गमासाद्यभवद्भिर्ज्ञानदृष्टिभिः ॥ नस्यांकृतार्थस्तन्नूनंनमेऽन्यत्रकृतार्थता ॥ ६ ॥ प्रवृत्तेचनिवृत्तेचभवतांज्ञानकर्मणि ॥ मतिमस्तमलांमन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ॥ ७ ॥ यदित्वनुग्रहवतीमयिबुद्धिर्द्विजोत्तमाः ॥ भवतांतत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥ ८ ॥ कथमेतत्समुद्भूतंजगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ कथंचप्रलयंकालेपुनर्यास्यतिसत्तमाः ॥ ९ ॥ कथंचवंशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ॥ मन्वन्तराणिचकथंवंशानुचरितंचयत् ॥ १० ॥

उनके भाग्यमें कठिन है ॥ ५ ॥ आप ज्ञानदर्शी हैं आपका संग प्राप्त होकरभी यदि मेरा मनोरथ सिद्ध न हो, तो फिर और कहीं भी होनेकी संभावना नहीं है ॥६॥ आपको प्रवृत्त और निवृत्त, इस दो प्रकारके ज्ञान कर्ममें ऐसी विशद बुद्धि प्राप्त हुई है, मेरे विचारमें ऐसी और किसीको नहीं है ॥ ७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठगण ! आप यदि मेरे प्रति आपकी मति अनुग्रहवती हुई है तो मैं जो पूंछताहूं, वह विस्तारसहित कहिये ॥ ८ ॥ किस प्रकारसे इस स्थावरजंगमात्मक जगतकी सृष्टि हुई ? और फिर किस प्रकार प्रलय कालमें लयको प्राप्त होगी ? ॥९॥ किस प्रकारसे वंशसे

देवता, ऋषि, पितृगण और भूतादिकी उत्पत्ति होती है, किस प्रकारसे सब मन्वन्तरोंका आविर्भाव होता है ? इसके अतिरिक्त वंशोंका आनुपूर्वीक विवरण ॥ १० ॥ समस्त सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्पविभाग, मन्वन्तरों की स्थिति ॥११॥ पृथ्वीका संस्थान, और परिमाण, गिरि, शैल, सरित् और वनोंका विवरण ॥ १२ ॥ मृत्युलोक, स्वर्गलोक, और पातालसमूहका वृत्तान्त, एवं सूर्य चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, ज्योतिष्क इत्यादिकी गति ॥ १३ ॥ यह सब प्रलयपर्यन्त सुननेकी इच्छा करता हूं । जगत संसार प्रलयकालमें उपसंहृत होनेपर जो अवशेष रहता है वह भी सुननेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १४ ॥ पक्षी बोले—हे जैमिने हे मुनिसत्तम ! आपने हमारे ऊपर अतुलनीय प्रश्नभार डालाहै, तुम्हारे

यावत्यःसृष्टयश्चैवयावन्तःप्रलयास्तथा ॥ यथाकल्पविभागश्चयाचमन्वन्तरस्थितिः ॥ ११ ॥ यथाचक्षितिसंस्थानंयत्प्रमाणंचवै भुवः ॥ यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नगाःकाननानिच ॥ १२ ॥ भूर्लोकादिश्चलोकानांगणः पातालसंश्रयः ॥ गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥ १३ ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहंसर्वमेतदाभूतसंप्लवम ॥ उपसंहृतेचयच्छेषंजगत्यस्मिन्भविष्यति ॥ १४ ॥ पक्षिणऊचुः ॥ ॥ प्रश्नभारोऽयमतुलोयस्त्वयामुनिसत्तम ॥ पृष्टस्तंतेप्रवक्ष्यामस्तच्छृणुष्वेहजैमिने ॥१५॥ मार्कण्डेयेनकथितंपुराक्रौष्टुकयेयथा ॥ द्विजपुत्रायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ॥ १६ ॥ मार्कण्डेयंमहात्मानमुपासीनंद्विजोत्तमैः ॥ क्रौष्टुकिःपरिपप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥ १७ ॥ तस्यचाकथयत्प्रीत्यायन्मुनिर्भृगुनन्दनः ॥ तत्ते प्रकथयिष्यामःशृणुत्वंद्विजसत्तम् ॥१८॥ प्रणिपत्यजगन्नाथंपद्मयोनिंपितामहम् ॥ जगद्योनिंस्थितंसृष्टौस्थितौविष्णुस्वरूपिणम् ॥ प्रलयेचान्तकर्त्तारंरौद्रंरुद्रस्वरूपिणम ॥ १९ ॥

पूछनेसे हम कहते हैं सुनो ॥ १५ ॥ पहले मार्कण्डेयजीने जिसप्रकार शान्तवृत्ति विद्यास्नातक क्रौष्टुकिके निमित्त कथन किया है सो कहेंगे ॥१६॥हे प्रभो!आपने जो पूछा, क्रौष्टुकिनेभी ब्राह्मणोंसे उपासित महात्मा मार्कण्डेयके निकट यही प्रश्न किया था॥१७॥हे द्विजश्रेष्ठ! भृगुनन्दनने प्रसन्नचित्त होकर जो कहा था मैं वही तुमसे कहताहूं सुनो॥१८॥ जो जगत कारण पद्मयोनि पितामहरूपसे इस विश्वको उत्पन्न करतेहैं विष्णु स्वरूपसे स्थिति विधान करते हैं रौद्रस्वरूप रुद्र प्रलयकालमें सबका संहार करतेहैं, उन्हीं जगन्नाथको प्रणाम करके हमभी वही सविशेष वर्णन करते हैं सुनो ॥ १९ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—पूर्वकालमें अव्यक्तयोनि ब्रह्माजीके उत्पन्न होते ही उनके चारों मुखसे वेदों और पुराणोंका आविर्भाव हुआ ॥ २० ॥ ऋषियोंने उस पुराणसंहिताको विविध अंशमें और वेदको भी सहस्र सहस्र भागमें विभक्त किया ॥ २१ ॥ उन महात्माके विना उपदेश, धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वरीक भाव, इन चारके सिद्ध होनेकी संभावना नहीं है ॥ २२ ॥ उनके मनसे सप्तर्षिगणोंके उत्पन्न होनेपर उन मानस ऋषियोंने उनके निकटसे समस्त वेद और तदीय मानसोत्पन्न अन्यान्य आद्य ऋषियोंने पुराण ग्रहण किये॥२३॥च्यवनने भृगुके समीपसे उस पुराणको लेकर ऋषियोंके निकट प्रकाश किया, महात्मा ऋषियोंने वह पुराण दक्षसे कहा ॥ २४ ॥ दक्षनही यह हमको प्रदान

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्पन्नमात्रस्यपुराब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः॥पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनिःसृताः॥२०॥पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाः परमर्षयः ॥वेदानांप्रविभागश्चकृतस्तैस्तुसहस्रशः॥२१॥धर्मज्ञानंचवैराग्यमैश्वर्य्यंचमहात्मनः ॥ तस्योपदेशंविनानहिसिद्धंचतुष्टयम् ॥ २२ ॥ वेदान्सप्तर्षयस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः ॥ पुराणंजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसाः ॥ २३ ॥ भृगोःसकाशाच्च्यवनस्तेनोक्तंचद्विजन्मनाम् ॥ ऋषिभिश्चापिदक्षायप्रोक्तमेतन्महात्मभिः ॥२४॥ दक्षेणचापिकथितमिदमासीत्तदामम ॥ तत्तुभ्यंकथयाम्यद्य कलिकल्मषनाशनम् ॥ २५ ॥ सर्वमेतन्महाभागश्रूयतांमेसमाधिना ॥ यथाश्रुतंमयापूर्वंदक्षस्यगदतोमुने ॥२६॥ प्रणिपत्यजगद्योनिमजमव्ययमाश्रयम् ॥ चराचरस्यजगतोधातारंपरमंपदम् ॥ २७ ॥ ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे ॥ यत्कारणमनौपम्यं यत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ २८ ॥ तस्मैहिरण्यगर्भायलोकतन्त्रायधीमते ॥ प्रणम्यसम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥ २९ ॥ महदाद्यं विशेषान्तंसवैरूप्यंसलक्षणम् ॥ प्रमाणैःपंचभिर्गम्यंस्रोतोभिःषड्भिरन्वितम् ॥ ३० ॥

कियाहै, तबसे वह हमारे पास रहताहै अब तुमसे कहतेहैं इसके प्रसादसे कलियुगमें पापसमूह नाशको प्राप्त होते हैं ॥२५॥ हे मुने!हे महाभाग!हमने पहिले दक्षके निकट जिस प्रकार सुनाहै, सावधानचित्त होकर हमसे वह सब सुनो॥२६॥जो जगत्के कारण, जन्मरहित, और अव्यय हैं, जो चराचर जगतके एक मात्र आश्रय और धाता हैं जो परमपदस्वरूप हैं॥२७॥जो सृष्टिस्थिति प्रलयके कारण आदिपुरुष हैं जो उपमारहित और जिनमें समस्तही प्रतिष्ठित रहता है॥२८॥उन धीमान् हिरण्यगर्भको प्रणामकरके अनुत्तम प्रपंच सम्यक् प्रकार वर्णन करतेहैं ॥२९॥ महत्से विशेष

पर्यन्त जितने भौतिक—सृष्टि—विकार लक्षण पंचविध प्रमाण और षट्स्रोतके सहित आनुपूर्विक कहूंगा ॥३०॥हे महाभाग ! यह नूतन सृष्टि पुरुषसे अधिष्ठित और इसी कारण नित्य होकर भी जिस प्रकार अनित्यके समान अवस्थित रहती है वह भी वर्णन करते हैं, तुम सावधान होकर सुनो ॥ ३१ ॥ जो अव्यक्तनामसे कही जातीहैं, महर्षिगण जिसको सदसदात्मिका नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहतेहैं ॥ ३२ ॥ जो नित्य अक्षय, अजर, और अपरिमेय है जो किसीका आश्रय ग्रहण करके अवस्थित नहीं है, जो गंधविहीन, रूपविहीन, रसहीन और शब्दस्पर्शरहित है॥३३॥जो अनादि और अनन्त हैं, जो जगत्के उत्पत्ति स्थान हैं जिनसे तीनों गुण उत्पन्न हुएहैं, जो अविनाशी हैं, जो सदा विद्यमान और अविज्ञेय हैं और जो सबके

पुरुषाधिष्ठितंनित्यमनित्यमिवचस्थितम् ॥ तच्छ्रूयतांमहाभागपरमेणसमाधिना ॥३१॥ प्रधानंकारणंयत्तदव्यक्ताख्यंमहर्षयः ॥ यदा हुःप्रकृतिंसूक्ष्मांनित्यांसदसदात्मिकाम् ॥३२॥ ध्रुवमक्षय्यमजरममेयंनान्यसंश्रयम् ॥ गन्धरूपरसैर्हीनंशब्दस्पर्शविवर्जितम् ॥३३॥ अनाद्यंतंजगद्योनिंत्रिगुणप्रभवाप्ययम्॥असाम्प्रतमविज्ञेयंब्रह्माग्रेसमवर्त्तत ॥३४॥ प्रलयस्यानुतेनेदंव्याप्तमासीदशेषतः ॥ गुणसाम्या त्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ॥ ३५ ॥ गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकालेततःपुनः ॥ प्रधानंतत्त्वमुद्भूतंमहान्तंतत्समावृणोत ॥ ३६ ॥ यथाबीजंत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतोमहान् ॥ सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदितः ॥ ३७ ॥ ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधोवैव्यजायत ॥ वैकारिकस्तैजसश्चभूतादिश्चसतामसः ॥ ३८ ॥

कारण हैं, वह प्रधानस्वरूप ब्रह्मही सबके आगे विराजित रहकर॥३४॥प्रलयके पीछे अखिल जगतको सम्यक् प्रकारसे व्याप्त करके विराजमान रहते हैं। तीनों गुण परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूपसे उनमेंही अधिष्ठित रहते हैं ॥ ३५ ॥ सृष्टिकालमें क्षेत्रज्ञके अधिष्ठानके कारण उनके उस उस गुणकी सहायतासे, सृष्टिकार्यमें उद्यत होनेपर प्रथम तो प्रधानतत्त्व आविर्भूत होकर महत्तत्त्वको आच्छन्न कर देताहै॥३६॥ बीज जिस प्रकार त्वचाद्वारा ढका रहताहै प्रधानभी उसी प्रकार महत्तत्त्वको आवृत करता है यह महत्तत्त्व त्रिविध है सात्विक, राजस और तामस॥३७॥फिर महत्तत्वसे अहंकारकी उत्पत्ति होती है।यह अहंकार भी तीन प्रकार है. वैकारिक, तैजस और तामस।यह तामस अहंकारही भूतादिके नामसे कहाहै ॥३८॥

महत्तत्त्व जिस प्रकार प्रधान तत्त्वके द्वारा समाछन्न होताहै, ऐसेही यह अहंकारभी महत्तत्त्वके द्वारा ढका रहता है और उसीके प्रभावसे विकारको प्राप्तहोकर शब्द तन्मात्रको सृजन कर देताहै॥३९॥शब्दलक्षण आकाश इस शब्द तन्मात्रसेही उत्पन्न होता है तब तामस अहंकार द्वाराशब्द मात्र आकाश आच्छादित होता है॥४०॥ इससे निःसन्देह स्पर्शतन्मात्रकी उत्पत्ति होती है, तब महाबली स्पर्शगुणयुक्त वायु उत्पन्न होता है ॥४१॥ शब्दमात्र आकाशसे स्पर्शमात्र आवृत रहता है इसीसे वायुकी विकृतिके कारण रूपमात्र उत्पन्न होता है वायुमे रूपगुणयुक्त ज्योतिका आविर्भाव हुआ ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्र वायुके द्वारा रूपमात्र आवृत होता है पीछे ज्योति विकृत होकर रस मात्रको उत्पन्न करती है ॥ ४३ ॥ इसीसे

महताचावृतःसोऽपियथाव्यक्तेनवैमहान् ॥ भूतादिस्तुविकुर्वाणःशब्दतन्मात्रकंततः ॥ ३९ ॥ ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाशंशब्दलक्षणम् ॥ आकाशंशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्ततः ॥ ४० ॥ स्पर्शतन्मात्रमेवेहजायतेनात्रसंशयः ॥ बलवाञ्जायतेवायुस्तस्यस्पर्शगुणोमतः ॥ ४१ ॥ वायुश्चापिविकुर्वाणोरूपमात्रंससर्जह ॥ ज्योतिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगुणमुच्यते ॥ ४२ ॥ स्पर्शमात्रस्तुवैवायुरूपमात्रंसमावृणोत् ॥ ज्योतिश्चापिविकुर्वाणंरसमात्रंससर्जह ॥ ४३ ॥ सम्भवन्तिततोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिकाः ॥ रसमात्रन्तुताह्यापोरूपमात्रंसमावृणोत् ॥ ४४ ॥ अपश्चापिविकुर्वत्योगन्धमात्रंससर्जिरे ॥ संघातोजायतेतस्मात्तस्यन्धोगुणोमतः ॥ ॥ ४५ ॥ तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रंतेनतन्मात्रतास्मृता ॥ अविशेषवाचकत्वादविशेषास्ततश्चते ॥ ४६ ॥ नशान्तानापिघोरास्तेन मूढाश्चाविशेषतः ॥ भूततन्मात्रसर्गोऽयमहङ्कारात्तुनामसात् ॥ ४७ ॥ वैकारिकादहंकारात्सत्त्वोद्रिक्तात्तुसात्त्विकात् ॥ वैकारिकः ससर्गस्तुयुगपत्संप्रवर्त्तते ॥ ४८ ॥

रसात्मक जल उत्पन्न होता है, वही रसात्मक जल रूपमात्रसे आवृत होता है ॥ ४४ ॥ फिर रसमात्र जल विकृत होकर गंधमात्रको उत्पन्न करताहै, उसीसे गंधगुणयुक्त पृथ्वी की उत्पत्ति होतीहै ॥४५॥ इस प्रकारसे उन उन पदार्थोंमें जो तन्मात्र है, उसके द्वाराही तन्मात्रताकी गिन्ती होतीहै, इसके लिये कोई विशेष वाचक नहीं होनेसे यह भी अविशेषहैं ॥४६॥ इस अविशेषके कारण वह शान्त, घोर वा मूढ़ भी नहीं हैं तामस अहंकारसेही इस प्रकार भूत तन्मात्राकी उत्पत्ति होतीहै॥४७॥सत्वेद्रिक्त सात्विक और वैकारिक अहंकारसे एक साथ वैकारिक सृष्टि प्रवर्त्तित होती

है ॥४८॥पंचज्ञानेन्द्रिय और पंचकर्मेन्द्रियको तैजसइन्द्रिय कहाहै वहां वैकारिक दश देवता हैं॥४९॥मन ग्यारहवाँ है. उल्लिखित दश इन्द्रिय और ग्यारहवाँ मन, तहां वैकारिक देवता कहे गयेहैं. श्रोत, त्वक्, चक्षु, जीभ और नासिका ॥५०॥ इनके द्वारा शब्दादिका बोध होताहै, इसी कारण यह बुद्धीन्द्रिय कही गई हैं चरण वायु(गुदा)उपस्थ हस्त और वाक्य॥५१॥इत्यादिको कर्मेन्द्रिय कहते हैं, इनके द्वारा गति, मलत्याग, आनन्द, शिल्प और वाक्यकथन यह सब कार्य समापन होतेहैं, शब्दमात्र आकाश स्पर्शमात्रमें आविष्ट होकर॥५२॥ द्विगुण वायुको उत्पन्न करताहै, किन्तु स्पर्शही उसका विशेषगुण है, शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूपमें आविष्ट होकर॥५३॥अग्नि उत्पन्न करतेहैं. यह अग्निशब्द, और रूप इन तीन

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपंचकर्मेन्द्रियाणिच ॥ तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ॥४९॥ एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकाःस्मृताः ॥ श्रोत्रंत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपंचमी ॥ ५० ॥ शब्दादीनामावाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ॥ पादौपायुरुपस्थश्चहस्तौवाक्पंचमी भवेत् ॥५१॥ गतिर्विसर्गोह्यानन्दःशिल्पंवाक्यंचकर्मतत् ॥ आकाशंशब्दमात्रंतुस्पर्शमात्रंसमाविशत् ॥५२॥ द्विगुणोजायतेवायुस्त स्यस्पर्शोगुणोमतः ॥ रूपंतथैवाविशतःशब्दस्पर्शगुणावुभौ ॥५३॥ त्रिगुणस्तुततश्चाग्निःसशब्दस्पर्शरूपवान् ॥ शब्दःस्पर्शश्चरू पंचरसमात्रंसमाविशत् ॥५४॥ तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञेयास्तारसात्मिकाः ॥ शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसोगन्धंसमाविशत् ॥ ५५ ॥ संहतागन्धमात्रेणआवृण्वंस्तेमहीमिमाम्॥तस्मात्पंचगुणाभूमिःस्थूलाभूतेषुदृश्यते॥५६॥ शान्ताघोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः ॥ परस्परानुप्रवेशाद्धारयन्तिपरस्परम् ॥ ५७ ॥ भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकालोकंघनावृतम् ॥ विशेषाश्चेन्द्रियग्राह्यानियतत्वाच्चते स्मृताः ॥ ५८ ॥

गुणसे युक्त है, अनन्तर शब्द, स्पर्श और रूप, यह रसमात्रमें आविष्ट होकर॥५४॥चौगुणे रसात्मक जलको उत्पन्न कर देते हैं, अन्तमें शब्द, स्पर्श, रूप और रस गंधमात्रमें आविष्ट होनेसे ॥५५॥उनके संवहमें महत होकर इस पृथ्वीको समावृत करते हैं इसी कारण भूतगणमें पंचगुणसं-पन्न स्थूलकार भूमि दिखाई देतीहै॥५६॥इसी हेतु वह शान्त,घोर और मूढ़ कहकर परिगणित हैं, वह परस्पर अनुप्रवेशपूर्वक परस्परको धारण करते हैं ॥ ५७ ॥ यह घनावृत समस्त लोकालोक भूमिके अंतरमें सन्निविष्ट रहते हैं, नियतत्वके हेतु यह इन्द्रियग्राह्य "विशेष" नामसे कहेहैं ॥ ५८ ॥

पहले पहले गुण उत्तरोत्तरमें अनुप्रवेश करतेहैं, यह नानावीर्यवान् सातपदार्थ जबतक परस्पर मिलित न होकर पृथक् भावमें अवस्थित रहते हैं ॥५९॥तबतक प्रजासृष्टिमें समर्थ नहीं होते । यह जिस समय परस्परमें मिलित होकर परस्परको अवलम्बनपूर्वक॥६०॥सम्यक् प्रकार ऐक्यताको प्राप्त होते हैं एवं जिस समय पुरुषका अधिष्ठान और प्रकृतिका अनुग्रह लाभ करतेहैं॥६१॥उसी समय महत्से विषयपर्यन्त इन सबमें अण्ड उत्पादन करतेहैं यह अण्ड जलबुद्बुदके समान जलमें आश्रयपूर्वक क्रमशः वर्द्धित होता रहताहै॥६२॥हेमहामते ! सलिलमें स्थित यह अंड भूतगणसे बृहत् है. ब्रह्मसंज्ञक क्षेत्रज्ञभी उस प्राकृत अण्डमें वृद्धिको प्राप्त होतेहैं ॥६३॥ वही प्रथम शरीर और पुरुष नामसे अभिहित हैं; वही भूतगणके

गुणंपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम् ॥ नानावीर्य्याः पृथग्भूताःसप्तैतेसंहतिंविना ॥ ५९ ॥ नाशक्नुवन्प्रजाःस्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः ॥ समेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रयिणश्चते ॥ ६० ॥ एकसंघातचिह्नाश्चसंप्राप्यैक्यमशेषतः ॥ पुरुषाधिष्ठितत्वाच्चअव्यक्तानुग्रहेणच ॥ ६१ ॥ महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्तिते ॥ जलबुद्बुदवत्तत्रक्रमाद्वैवृद्धिमागतम् ॥ ६२ ॥ भूतेभ्योऽण्डंमहाबुद्धेबृहत्तदुदकेशयम् ॥ प्रकृतेऽण्डेविवृद्धःसन्क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञितः ॥ ६३ ॥ सवैशरीरीप्रथमःसवैपुरुषउच्यते ॥ आदिकर्त्ताचभूतानांब्रह्माग्रेसमवर्तत ॥ ६४ ॥ तेनसर्वमिदंव्याप्तंत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ मेरुस्तस्यानुसंभूतोजरायुश्चापिपर्वताः ॥ ६५ ॥ समुद्रागर्भसलिलंतस्याण्डस्यमहात्मनः ॥ तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ ६६ ॥ द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्चसज्योतिर्लोकसंग्रहः ॥ जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनाबहिः ॥ ६७ ॥ वृतमण्डंदशगुणैरेकैकत्वेनतैःपुनः ॥ महतातत्प्रमाणेनसहैवानेनवेष्टितः ॥ ६८ ॥ महांस्तैःसर्वैरव्यक्तेनसमावृतः ॥ एभिरावरणैरण्डंसप्तभिःप्राकृतैर्वृतम्॥६९॥

आदिकर्ता ब्रह्मा हैं, वही इन सबसे आगे विराजित होतेहैं॥६४॥ वही चराचर त्रैलोक्य व्याप्तकर रहे हैं. मेरु उस बृहत् अण्डका पर्वत उसका जरायु॥६५॥और समुद्र उसका गर्भसलिल है सुर असुर और मनुष्योंसे पूर्ण समस्त जगत् उस अंडेमेंही॥६६॥ द्वीपादि,पर्वत, सागर और ज्योतिष्कसहित सब लोक उसमें स्थित । जल, वायु, अग्नि, और आकाश; यह भूतादिसहित॥६७॥प्रत्येक उत्तरोत्तर दशगुण नियमसे बहिर्भागमें उस अंडेको परिवेष्टित किये रहतेहैं इसके अतिरिक्त उसी प्रमाणसे महत्तत्त्वने भी उनके संग अण्डेको आच्छादित किया है ॥६८॥ प्रकृति इस महत्त

त्वके सहित अंडेको आवरण करके शोभा पाती है। इस प्रकार सम प्राकृत आवरण द्वारा उक्त अंड आच्छादित है ॥ ६९ ॥ इसी प्रकारसे अष्ट प्रकृति परस्परको आवरण करके स्थित हैं इन प्रकृतिको नित्य स्वरूप जानना चाहिये इसके अन्तमें वह पुरुष है ॥ ७० ॥ तुम्हारे निकट जो ब्रह्मसंज्ञित पुरुषका उल्लेख किया, उनका विषय संक्षेपसे कहता हूं, सुनो। जलमें डूबाहुवा पुरुष जिस प्रकार जलके भीतरसे उठनेके समयमें जल और जलमें प्रगट॥७१॥द्रव्य फेंक देताहै, ब्रह्माको भी उसी प्रकार प्रकृतिकाविभु जानना चाहिये। यह प्रकृतिही क्षेत्र और ब्रह्माही क्षेत्रज्ञ नामसे कथित हैं ॥७२॥ यही क्षेत्र और क्षेत्रज्ञके लक्षण हैं, इस प्रकारही क्षेत्रज्ञाधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धिपूर्वक प्रथम बिजलीके समान

अन्योन्यमावृत्यचताअष्टौप्रकृतयःस्थिताः ॥ एषासाप्रकृतिर्नित्यातदन्तःपुरुषश्चसः ॥ ७० ॥ ब्रह्माख्यःकथितोयस्तेसमासाच्छ्रूयतां पुनः ॥ यथामग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥ ७१ ॥ वलयंक्षिपतिब्रह्मासतथाप्रकृतीर्विभुः ॥ अव्यक्तंक्षेत्रमुद्दिष्टंब्रह्माक्षेत्रज्ञ उच्यते ॥ ७२ ॥ एतत्समस्तंजानीयात्क्षेत्रक्षेत्रज्ञलक्षणम् ॥ इत्येषप्राकृतःसर्गःक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसः ॥ अबुद्धिपूर्वःप्रथमःप्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥ ७३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे ब्रह्मोत्पत्तिर्नामद्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४२ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथितामम ॥ ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मतथाचोक्तंमहात्मनः ॥ १ ॥ एतदिच्छाम्यहंश्रोतुंत्वत्तोभृगुकुलोद्भव ॥ यदानसृष्टिर्भूतानामस्तिकिंनुनचास्तिवा ॥ कालेवैप्रलयस्यान्तेसर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ यदातुप्रकृतौयातिलयंविश्वमिदंजगत् ॥ तदोच्यतेप्राकृतोऽयंविद्वद्भिःप्रतिसंचरः ॥ ३ ॥

आविर्भूत हुई है ॥७३॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥ क्रौष्टुकि बोले हे भगवन् ! आपने अण्डकी उत्पत्ति और ब्राह्मण्डमें महात्मा ब्रह्माजीका जन्म यथावत् वर्णन किया॥१॥हे भृगुवंशोद्भव ! प्रलयके अवसानमें समस्त संहारको प्राप्त होनेपर जब सृष्टिका कुछभी विद्यमान नहीं था, इसके पीछे फिर किस प्रकारसे भूतगणकी उत्पत्ति हुई ? अब वही विषय आपसे सुननेकी अभिलाषा करता हूं ॥२॥ मार्कण्डेयजी बोले—जिस समय यह विश्व प्रकृतिमें लीन होताहै, तब विद्वद्गण उसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं ॥ ३ ॥

प्रकृतिके आत्मामें अवस्थित होनेसे संपूर्ण सृष्ट पदार्थ संहारको प्राप्त होते हैं जिस समय प्रकृति और पुरुष साधर्म्यमें अवस्थित होते हैं ॥ ४ ॥ उस कालमें सत्व और तम, यह दो गुण समभावसहित अधिष्ठित होते हैं। उस समय उनमें किसीकोभी किसी प्रकारकी वृद्धिवा न्यूनता विद्यमान नहीं रहती,वह दोनों परस्पर समभावसे मिलकर ताने बानेके समान अधिष्ठित रहते हैं ॥ ५ ॥ तिलमें तेल और दूधमें घृतके समान रजोगुणभी सत्व और तमोगुणमें प्राप्त होकर स्थित होता है ॥ ६ ॥ सर्वेश्वर ब्रह्माकी परमायुका परिमाण द्विपरार्द्धपर्यन्त है। उनके दिनका परिमाण जिस प्रकार है, रात्रिका भी उसी प्रकार है ॥ ७ ॥ आठसहस्रयुगका प्रजापतिका दिनरात होता है इसी मानसे ब्रह्माजी सौवर्ष जीते हैं ब्रह्माकी

स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेविकारेप्रतिसंहृते ॥ प्रकृतिःपुरुषश्चैवसाधर्म्येणावतिष्ठतः ॥ ४ ॥ तदातमश्चसत्त्वंचसमत्वेनगुणौस्थितौ ॥ अनुद्रिक्तावनूनौचओतप्रोतौपरस्परम् ॥ ५ ॥ तिलेषुवायथातैलंघृतंपयसिवास्थितम् ॥ तथातमसिसत्त्वेचरजोऽप्यनुसृतंस्थितम् ॥६॥ उत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम् ॥ तावद्दिनंपरेशस्यतत्समासंयमेनिशा ॥७॥ (अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रंप्रजापतेः ॥ अनेनैवतुमानेनशतंब्रह्मासजीवति ॥ पितामहशतेनैवविष्णोर्मानंविधीयते ॥ निमेषार्धेनशंभोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ॥ विनश्यंतितथाविष्णोरसंख्याताःपितामहाः॥) अहर्मुखेप्रबुद्धस्तुजगदादिरनादिमान् ॥ सर्वहेतुरचिन्त्यात्मापरःकोऽप्यपरक्रियः ॥८॥ प्रकृतिंपुरुषंचैवप्रविश्याशुजगत्पतिः ॥ क्षोभयामासयोगेनपरेणपरमेश्वरः ॥९॥ यथामदोनवस्त्रीणां यथावामाधवानिलः ॥ अनुप्रविष्टःक्षोभायतथासौयोगमूर्त्तिमान् ॥१०॥ प्रधानेक्षोभ्यमाणेतुसदेवोब्रह्मसंज्ञितः ॥ समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थोयथातेकथितंमया ॥ ११ ॥

सौ अवस्था बीतनेसे विष्णुकी अवस्थाका प्रमाण है शिवके आधे निमेषमें १४००० चौदहसहस्र विष्णु हो चुकते हैं और ब्रह्मा कितने होते हैं इसकी संख्या नहीं है क्षेपक है। वह जगत्‌के आदि हैं, किन्तु उनका आदि कोई नहीं है। वह सबके कारण,अचिंत्यात्मा,परमेश्वर और क्रियाके अतीत हैं ॥ ८ ॥ वह जगत्पति परमेश्वर परम योग हेतु प्रकृति और पुरुषमें प्रविष्ट होकर उनको विक्षोभित करते हैं ॥ ९ ॥ मदगर्व वा वसन्त वायु जिस प्रकार नव युवतियोंके अन्तरमें प्रविष्ट होकर क्षोभित करते हैं योगमूर्तिमान् ब्रह्माभी इसी प्रकार प्रकृति और पुरुषको विक्षोभित करते हैं ॥१०॥ प्रकृतिके क्षोभित होनेपर वह ब्रह्मा नामधारी देवता अंडकोषमें स्थित होकर समुत्पन्न होते हैं। मैंने तुम्हारे निकट यह कहा है॥११॥

वह प्रथम तो क्षोभित करते हैं, फिर प्रकृतिके पति होकर स्वयं विक्षोभित होते हैं। इस प्रकार संकोच और विकाशद्वारा वह प्रकृतिरूपमें विराजित रहते हैं ॥१२॥ वह जगत्योनि निर्गुण होकरभी प्रगट होकर रजोगुण अवलम्बनपूर्वक ब्रह्माके रूपसे उत्पन्न हो सृष्टि करनेका उद्योग करते हैं॥ १३ ॥ वह ब्रह्मरूपसे प्रजासृजनपूर्वक सत्वगुणकी अधिकताके कारण विष्णुमूर्ति धारण करके न्यायानुसार प्रजाका पालन करते हैं ॥ १४ ॥ तदनन्तर तमोगुणके उद्वेगसे रुद्रमूर्ति ग्रहण करके संपूर्ण विश्वका संहार करते हुए शयन करते हैं इस प्रकारसे वह निर्गुण होकरभी उल्लिखित तीन कालमें तीनों गुणकी भजना करते हैं ॥ १५ ॥ सबके जननक्षेत्र सर्वव्यापी वह ईश्वर इस प्रकारसे सृजन, रक्षण और संहार

सएवक्षोभकःपूर्वंसक्षोभ्यःप्रकृतेःपतिः ॥ ससंकोचविकाशाभ्यांप्रधानत्वेऽपिसंस्थितः ॥ १२ ॥ उत्पन्नःसजगद्योनिरगुणोऽपिरजोगुणम् ॥ भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गेब्रह्मत्वंसमुपाश्रितः ॥ १३ ॥ ब्रह्मत्वेसप्रजाःसृष्ट्वाततःसत्त्वातिरेकवान् ॥ विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम् ॥ १४ ॥ ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत् ॥ उपसंहृत्यवैशेतेत्रैलोक्यंत्रिगुणोऽगुणः ॥ १५ ॥ यथाप्राग्व्यापकःक्षेत्रीपालकोलावकस्तथा ॥ तथाससंज्ञामाप्नोतिब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ॥१६॥ ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्रुद्रत्वेसंहरत्यपि ॥ विष्णुत्वेचाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाःस्वयम्भुवः ॥१७॥ रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णुःसत्त्वंजगत्पतिः ॥ एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ॥१८॥ अयोन्यमिथुनाह्येतेअन्योन्याश्रयिणस्तथा ॥ क्षणंवियोगोनह्येषांनत्यजन्तिपरस्परम् ॥ १९ ॥ एवंब्रह्माजगत्पूर्वोदेवदेवश्चतुर्मुखः ॥ रजोगुणंसमाश्रित्यस्रष्टृत्वेसव्यवस्थितः ॥ २० ॥ हिरण्यगर्भोदेवादिरनादिरुपचारतः ॥ भूपद्मकर्णिकासंस्थोब्रह्माग्रेसमजायत ॥ २१ ॥

करनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर संज्ञाको प्राप्त हुए हैं ॥ १६ ॥ वह ब्रह्मत्वमें संपूर्ण लोकोंको उत्पन्न, रुद्रत्वमें निधन और विष्णुत्वमें उदासीन होकर अवस्थान करते हैं अर्थात् पालन करते हैं, स्वयम्भूकी यह तीन अवस्था हैं ॥ १७ ॥ ब्रह्माही साक्षात् रजोगुण, रुद्र तमोगुण और जगत्पति विष्णु सत्वगुण हैं ॥ १८ ॥ तिस प्रकारसे यह तीनों देवता तीनों गुणरूपमें परस्पर निपुणभावसे परस्परको आश्रयपूर्वक विराजमान रहते हैं, क्षणमात्रकोभी इनका वियोग नहीं है और मुहूर्तमात्रके लिये भी कोई किसीको परित्याग नहीं करता ॥ १९ ॥ इस प्रकार जगत्के आदि देवदेव चतुरानन रजोगुण अवलम्बन करके सबके सृजनकार्यमें प्रवृत्त होते हैं ॥ २० ॥ वह हिरण्यगर्भ देवादि और एक प्रकारसे

अनादि हैं । वह भूपद्मकर्णिका अवलम्बनपूर्वक सबके आगे आविर्भूत होते हैं ॥ २१ ॥ उन महात्माकी परमायुसंख्या ब्राह्म मानके शतवर्ष निरूपित है । उनकी संख्या कहता हूं, सुनो ॥ २२ ॥ पन्द्रह निमेषमें एक काष्ठा, तीस काष्ठामें एक कला, तीस कलामें एक मुहूर्त्त ॥ २३ ॥ और तीस मुहूर्त्तमें मनुष्यका एक दिनरात्र होता है, तीस दिनरात्रमें अथवा दोपक्षमें एकमास होता है ॥ २४ ॥ छः मासमें एक अयन, और दो अयनमें एक वर्ष होता है अयन दो प्रकार है दक्षिणायन और उत्तरायण । इस प्रकार नरमानके एक वर्षमें देवताओंका एक अहोरात्र होता है, तिनमें उत्तरायण उनका दिन है ॥ २५ ॥ दिव्यपरिमाणसे बारह हजार वर्षमें सत्यादि चार युग होते हैं, उन चारों युगका विभाग

तस्यवर्षशतंत्वेकंपरमायुर्महात्मनः ॥ ब्राह्म्येणैवहिमानेनतस्यसंख्यांनिबोधमे ॥ २२ ॥ निमेषैर्दशभिःकाष्ठातथापञ्चभिरुच्यते ॥ कलास्त्रिंशच्चवैकाष्ठामुहूर्त्तंत्रिंशदेवताः ॥ २३ ॥ अहोरात्रंमुहूर्त्तानांनृणांत्रिंशत्तुवैस्मृतम् ॥ अहोरात्रैश्चत्रिंशद्भिःपक्षौद्वौमास उच्यते ॥ २४ ॥ तैःषड्भिरयनंवर्षंद्वेयनेदक्षिणोत्तरे ॥ तद्देवानामहोरात्रंदिनंतत्रोत्तरायणम् ॥ २५ ॥ दिव्यैर्वर्षसहस्रैस्तुकृतत्रेतादि संज्ञितम् ॥ चतुर्युगंद्वादशभिस्तद्विभागंशृणुष्वमे ॥ २६ ॥ चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांकृतमुच्यते ॥ शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्यां शश्चतथाविधः ॥ त्रेतात्रीणिसहस्राणिदिव्याब्दानांशतत्रयम् ॥ तस्यसन्ध्यासमाख्यातामध्यांशश्चतथाविधः ॥ २८ ॥ द्वापरंद्वेसह स्रेतुवर्षाणांद्वेशतेतथा ॥ तस्यसन्ध्यासमाख्याताद्वेशताब्देतदंशकः ॥ २९ ॥ कलिःसहस्रंदिव्यानामब्दानांद्विजसत्तम ॥ सन्ध्या सन्ध्यांशकश्चैवशतकौसमुदाहृतौ ॥३०॥ एषाद्वादशसाहस्रीयुगाख्याकविभिःकृता ॥ एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम् ॥ ३१ ॥

कहता हूं, सुनो ॥ २६ ॥ दिव्य चार हजार वर्षमें सत्ययुग होता है, चार सौ वर्ष उसकी संध्या और ४०० वर्ष संध्यांश है ॥ २७ ॥ तीन हजार दिव्य वर्षमें त्रेतायुग होता है, देवमानके तीन सौ वर्षमें उसकी संध्या और ३०० वर्ष संध्यांश होता है ॥ २८ ॥ द्वापर युगका परिमाण दो हजार दिव्य वर्ष है । दोसौ दिव्य वर्षमें उसकी संध्या और वर्ष २०० संध्यांश होता है ॥ २९ ॥ हे मुनिसत्तम ! एक हजार दिव्यवर्ष वर्षमें कलियुग होता है, एवं उसकी संध्या और संध्यांश, दोनोंही एक शत २ दिव्य वर्ष हैं ॥ ३० ॥ कवियोंने इस प्रकारसे चारों युगका परिमाण बारह हजार दिव्य वर्षमें विभाग किया है, इसको सहस्र गुण करनेसे जो होता है वही ब्रह्माका एक दिन निरूपित है ॥ ३१ ॥

है ब्रह्मन् ! ब्रह्माके इस एक दिनमें यथा विभाग चौदह मनु उत्पन्न होते हैं, उनका सहस्र विभाग कल्पित-होता है ॥ ३२ ॥ इन्द्रादि देवता, सप्तर्षिगण, मनुगण और मनुपुत्र नृपतिगण मन्वन्तरके सहित उत्पन्न होते हैं और पूर्वके समान संहारको प्राप्त होते हैं ॥ ३३ ॥ इकहत्तर चतुर्युगमें एक मन्वन्तर होता है, नरमानके अनुसार इसकी संख्या कहता हूं सुनो ॥ ३४ ॥ संपूर्ण तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस सहस्र ३०६७२०००० मनुष्य वर्ष ही एक मन्वन्तरका परिमाण है, अब दिव्यमानके वर्षानुसार सुनो ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ आठ लाख बावन हजार दिव्य वर्षमें एक मन्वन्तर होता है ॥ ३७ ॥ इस कालको चतुर्दशगुणित करनेसे ११९२८००० दिव्य वर्षका ब्रह्माका एक दिन होता है

ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनवःस्युश्चतुर्दश ॥ भवन्तिभागशस्तेषांसहस्रंतद्विभज्यते ॥३२॥ देवाःसप्तर्षयःसेन्द्रामनुस्तत्सूनवोनृपाः ॥ मनुना सहसृज्यन्तेसंह्रियन्तेचपूर्ववत् ॥३३॥ चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ मन्वन्तरंतस्यसंख्यांमानुषाब्दैर्निबोधमे ॥ ३४ ॥ त्रिंशत्कोट्यस्तुसंपूर्णाःसंख्याताःसंख्ययाद्विज ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥३५॥ विंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयंसाधिकंविना ॥ एतन्मन्वन्तरंप्रोक्तंदिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ॥ ३६ ॥ अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्ययासंख्ययायुतम् ॥ द्विपञ्चाशत्तथान्यानि सहस्राण्यधिकानितु ॥ ३७ ॥ चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्म्यमहःस्मृतम् ॥ तस्यान्तेप्रलयःप्रोक्तोब्राह्मोनैमित्तिकोबुधैः ॥ ३८ ॥ भूर्लोकोऽथभुवर्लोकःस्वर्लोकस्तन्निवासिनः ॥ तदाविनाशमायांतिमहर्लोकश्चतिष्ठति ॥ ३९ ॥ तद्वासिनोऽपितापेनजनलोकंप्रयान्तिवै ॥ एकार्णवेचत्रैलोक्येब्रह्मास्वपितिवैनिशि ॥ ४० ॥ तत्प्रमाणवसारात्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुनः ॥ एवंतुब्रह्मणोवर्षमेकंवर्षशतंतुतत् ॥ ४१ ॥

४२९४०००००० यह मनुष्य वर्षोंका ब्रह्माका एकदिन होता है हे ब्रह्मन ! इस ब्रह्म दिनके अन्तमें जो प्रलय संघटित होता है पण्डितगण उसीको नैमित्तिक प्रलय कहते हैं ॥३८॥ भूर्लोक भुवर्लोक तथा स्वर्लोकके निवासी इन लोकोंके नाशको प्राप्त होने पर महर्लोकमें जाकर रहते हैं ॥ ३९ ॥ महर्लोकके निवासी प्रलयकालजनित तापसे जनलोकमें प्रस्थान करते हैं, तब त्रिभुवन एकार्णव होता है, ब्रह्मा रात्रिकालमें शयन करते हैं ॥ ४० ॥ दिनका परिमाण जिस प्रकार है ब्रह्माजीकी रात्रिका परिमाण भी उसी प्रकार है । रात्रिके अन्तमें फिर सृजन कार्य आरंभ

होता है । इस प्रकार तीनसौ साठ दिनमें अर्थात् इतनी प्रलयमें ब्रह्माका एक वर्ष होता है ॥ ४१ ॥ एक शत वर्षको पर कहते हैं,इसप्रकार पञ्चाशत् वर्षमें एक परार्द्ध होता ॥४२॥ हे द्विजसत्तम ! इस भाँतिसे ब्रह्माका एक परार्द्ध बीत गया है ॥ उसीके अन्तमें पाद्म नामक महाकल्प उपस्थित हुआ था ॥ ४३ ॥ हे द्विज ! अब दूसरा परार्द्ध विद्यमान है इसीको वाराह कल्प कहते हैं, यही प्रथमकल्प कहकर परिकल्पित है ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥ क्रौष्टुकिने कहा । भगवान् प्रजापति प्रभु आदिस्रष्टा ब्रह्माजीने जिसप्रकार प्रजाको उत्पन्न किया था,वह मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये॥ १॥मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन् ! जगत्कारण भगवान अनादिने जिसप्रकार इस स्थावर जंगमपूर्ण

शतंहितस्यवर्षाणांपरमित्यभिवीयते ॥ पंचाशद्भिस्तथावर्षैःपरार्द्धमितिकीर्त्यते ॥ ४२ ॥ एकमस्यपरार्द्धंतुव्यतीतंद्विजसत्तम ॥ यस्यान्तेऽभून्महाकल्पःपाद्मइत्यभिविश्रुतः ॥ ४३ ॥ द्वितीयस्यपरार्द्धस्यवर्त्तमानस्यवैद्विज ॥ वाराहइतिकल्पोऽयंप्रथमःपरिकल्पितः ॥ ४४ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेब्रह्मायुःप्रमाणकथनंनामत्रिचत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४३ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ यथाससर्जवैब्रह्माभगवानादिकृत्प्रजाः ॥ प्रजापतिःपतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथयाम्येपतेब्रह्मन्ससर्ज भगवान्यथा ॥ लोककृच्छाश्वतःकृत्स्नंजगत्स्थावरजंगमम् ॥ २ ॥ पाद्मावसानसमयेनिशासुप्तोत्थितःप्रभुः ॥ सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्मा शून्यंलोकमवैक्षत ॥ ३ ॥ इमंचोदाहरन्त्यत्रश्लोकंनारायणंप्रति ॥ ब्रह्मस्वरूपिणंदेवंजगतःप्रभवाप्ययम् ॥ ४ ॥ आपोनाराइतिप्रोक्ता आपोवैनरसूनवः ॥ तासुशेतेसयस्माच्चतेननारायणःस्मृतः ॥ ५ ॥ विबुद्धःसलिलेतस्मिन्विधायान्तर्गतांमहीम् ॥ अनुमानात्समुद्धारं कर्तुकामस्तदाक्षितेः ॥ ६ ॥ अकरोत्सतनूरन्याःकल्पादिषुयथापुरा ॥ मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहंवपुरास्थितः ॥ ७ ॥

समस्त जगत्को निर्माण किया था,वह आपसे कहताहूं॥२॥पाद्मनामक प्रलयका अवमान होनेपर अर्थात् पाद्मकल्पके शेषहोनेपर सत्वगुणद्वारा उद्रिक्त प्रभु ब्रह्माजी जब रात्रि बीतनेमें सोकर उठे तो संपूर्ण भुवनको शून्य देखा॥३॥उस समय जगत्कारण अव्यय ब्रह्मस्वरूपी नारायणके प्रति यह श्लोक कहा जाताहै कि ॥ ४ ॥ "सुना है. जल शब्दका नाम नार—तनु है । उसमें वह अयन शयन करते हैं, इसकारण वह नारायण नामसे कीर्तित होते हैं" ॥ ५ ॥ नारायणने जागरित होकर पृथ्वीको उस जलमें डूबा हुआ अनुमान किया और उसके उद्धारकी कामनासे ॥ ६ ॥ पूर्व पूर्व कल्पमें

मत्स्य कूर्मादिके समान वाराहमूर्तिधारण की ॥ ७ ॥ वह वेदयज्ञमें प्रभु वेदयज्ञरूप शरीरको धारणकरके वह सर्वगामी सर्वभावन वराहरूपधर जलमें प्रविष्ट हुए ॥ ८ ॥ और फिर पातालसे उद्धारकर पृथ्वीको जलके ऊपर स्थापन किया फिर जनलोकनिवासी महर्षियोंसे चिन्त्य मान वह जगत्पति प्रभु देखने लगे ॥ ९ ॥ कि यह जलमें नौकाके समान डोलती है विस्तार होनेसे यह ठहरती नहीं ॥ १० ॥ इसके पीछे पृथ्वीको बराबर करके प्रथम तो पर्वतोंकी सृष्टि करी । प्रथम सृष्टिको सम्वर्तक अग्निने जलायाथा ॥ ११ ॥ सब पर्वत उस अग्निके सन्तापसे विशिर्ण कलेवर होकर समुद्रमें डूबगये थे तब वहाँका जलभी वायुद्वारा एकत्रित होगया॥१२॥अतएव पर्वत जिस जिस स्थलमें संलग्न हुएथे उसी उसी स्थानमें अचल होगये, अन-

वेदयज्ञमयंदिव्यंवेदयज्ञमयोविभुः ॥ रूपंकृत्वाविवेशाप्सुसर्वगःसर्वसम्भवः ॥ ८ ॥ समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम् ॥ जनलोकस्थितैःसिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पतिः ॥९॥ तस्योपरिजलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता ॥ विस्तृतत्वात्तुदेहस्यनमहीयातिसंप्लवम् ॥१०॥ततःक्षितिंसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन्॥प्राक्सर्गेदह्यमानेतुतदासंवर्तकाग्निना॥११॥तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः॥ शैलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसंहताः ॥१२॥ निषक्तायत्रयत्रासंस्तत्रतत्राचलाभवन् ॥ भूविभागंततःकृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम् ॥१३॥ भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत्॥सृष्टिंचिन्तयतस्तस्यकल्पादिषुयथापुरा॥१४॥ अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः॥तमो मोहोमहामोहस्तामिस्रोह्यन्धसंज्ञितः॥१५॥अविद्यापंचपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः ॥ पंचधावस्थितःसर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ॥१६॥ बहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मकः ॥ मुख्यानगायतश्चोक्तामुख्यसर्गस्ततस्त्वयम् ॥१७॥ तंदृष्ट्वासाधकंसर्गममन्यदपरंपुनः ॥ तस्याभिध्यायतःसर्गस्तिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत ॥ १८ ॥

न्तर सप्तद्वीप रूपमें भूविभाग करके॥१३॥पूर्ववत् भूर्लोकादि चार लोकका विभाग किया।पूर्व पूर्व कल्पके समान सृष्टि-विषयकी चिंता करते करते॥१४॥ तमोमयतमः, मोह, महामोह, तामिस्र और अंधतामिस्रनामक॥१५॥पंच अविद्या उन महात्मासे प्रादुर्भूत हुई, इसप्रकार चिंता करनेमें अप्रतिबोधयुक्त सृष्टि पांचप्रकारसे स्थित हुई॥१६॥वह संवृतात्मक और पर्वतस्वरूप तथा अपने बहिर्भाग और अन्तर देशमें सबहि अप्रकाशित थी,यह सृष्टि पर्वतप्रधान होनेके कारण मुख्य सर्गके नामसे कही गई है ॥१७॥ उन्होंने यह असाधक सृष्टि देखकर फिर दूसरी सृष्टिकी इच्छाकरी तब उनके ध्यानसे तिर्यक्स्रोत

प्रवृत्त हुआ॥१८॥सृष्टिकी चिन्ता करते२उनसे तिर्यक्स्रोत प्रवाहित होनेके कारण यह तिर्यक्स्रोत कहताहै; इससे अधिक तमोगुणवाले पशु आदिक अज्ञानी हुए॥१९॥वह अज्ञानमें ज्ञान माननेवाले उन्मार्गगामी हुए वे अहंकारी अहंमानी अट्ठाईस प्रकारके हुए॥२०॥यह सब अन्तःप्रकाश और परस्परको आवरण करके अवस्थित हैं इस सृष्टिको भी असाधक विचारकर फिर चिन्ता करनेमे अन्य ॥२१॥ ऊर्ध्वपथगामी तीसरा सात्विक स्रोत प्रवाहित होने लगा, उसमें जो उत्पन्न हुए, वह सुख प्रीतिकी अधिकाईवाले बाहर भीतर अनावृत ॥२२॥ भीतर बाहर प्रकाशवाले और तुष्टात्मा थे, इस तीसरी सृष्टिको देवसर्ग कहतेहैं॥२३॥इस सृष्टिके उत्पन्न होनेसे ब्रह्माजीको अत्यन्तसंतोष हुआ, तब वह फिर उत्तम साधक सर्गकी

यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिः सातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृतः ॥ पश्वादयस्तेविख्यातास्तमःप्रायाह्यवेदिनः ॥ १९ ॥ उत्पथग्राहिणश्चैवतेऽज्ञानेज्ञान मानिनः ॥ अहंकृता अहंमानाअष्टाविंशद्विधात्मकाः ॥ २० ॥ अन्तःप्रकाशास्तेसर्वेआवृतास्तुपरस्परम् ॥ तमप्यसाधकंमत्वाध्याय तोऽन्यस्ततोऽभवत् ॥२१॥ ऊर्द्ध्वस्रोतस्तृतीयस्तुसात्त्विकोर्द्ध्वमवर्तत ॥ तेसुखप्रीतिबहुलाबहिरन्तस्त्वनावृताः ॥ २२ ॥ प्रकाशाबहि रन्तश्चऊर्ध्वस्रोतःसमुद्भवाः ॥ तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः ॥ २३ ॥ तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्नेब्रह्मणस्तदा ॥ ततोऽयं सतदादध्यौसाधकंसर्गमुत्तमम् ॥२४॥ तथाभिध्यायतस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्ततः॥प्रादुर्बभौतदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधकः॥२५॥ यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्तततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ॥ तेचप्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्तारजोऽधिकाः ॥ २६ ॥ तस्मात्ते दुःखबहुलाभूयोभूयश्चका रिणः ॥ प्रकाशाबहिरन्तश्चमनुष्याःसाधकाश्चते ॥ २७ ॥ पंचमोऽनुग्रहःसर्गःसचतुर्द्धाव्यवस्थितः ॥ विपर्ययेणसिद्ध्याचशान्त्यातु ष्ट्यातथैवच ॥ २८ ॥ निवृत्तंवर्तमानंचतेऽर्थंजानन्तिवैपुनः ॥ भूतादिकानांभूतानांषष्ठःसर्गःसउच्यते ॥ २९ ॥

चिन्ता करने लगे॥२४॥तब उन यथार्थ चिन्तासमन्वित ब्रह्माजीके चिन्ता करनेपर अव्यक्तसे अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्ग उत्पन्न हुआ॥२५॥ यह अर्वाक् ऊर्ध्वसे उग्र हुए हैं, इस कारण इसको अर्वाक्स्रोत सर्ग कहते हैं, इनमें प्रकाश अधिक तम थोड़ा, और रजोगुण बहुत हैं ॥२६॥ इसीकारण इनमें दुःख अधिक और वारम्वार कार्य करते हैं, यह बाहरभीतर प्रकाशवाले साधक मनुष्य हैं॥२७॥पांचवी सृष्टि अनुग्रहनामक है, विपर्यय, सिद्धि, शान्ति, और सृष्टिद्वारा चार भागमें विभक्त है ॥ २८ ॥ जो भूत और वर्त्तमान समस्त अर्थको जानतेहैं, उन भूतादिकी और

समस्त भूतोंकी सृष्टि छः सर्ग कहा गयाहै ॥ २९ ॥ यह सबही श्री रखनेवाले सम्यक् विभाग निरत रहता, मेरणामें निपुण और कुत्सित स्वभाव हैं, इनको ही भूतादिक कहते हैं ॥ ३० ॥ प्रथम जिसने ब्रह्माजीकी सृष्टि होती है, उसको महत् सृष्टि कहते हैं, तन्मात्राकी सृष्टि दूसरी है, उसको भूतसर्ग कहते हैं ॥ ३१ ॥ ऐन्द्रिय वैकारिक सृष्टि तीसरी है, यही प्राकृत सर्ग और बुद्धिपूर्वक है ॥ ३२ ॥ मुख्य सर्ग चौथा है, स्थावरगणको ही मुख्य कहा गया है, कथित तिर्यक् योनिरूप तिर्यक्स्रोत पंचम सर्ग है ॥ ३३ ॥ ऊर्ध्वस्रोतकी सृष्टि छठी है, वह देवसर्गके नामसे कही गई है, इसके पीछे अर्वाक्स्रोत सातवीं सृष्टि है वह मानुष है ॥ ३४ ॥ अनुग्रह सर्ग आठवां है, वह

तेपरिग्रहिणःसर्वेसंविभागरतास्तथा ॥ चोदनाश्चाप्रशीलाश्चज्ञेयाभूतादिकाश्चते ॥ ३० ॥ प्रथमोमहतःसर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः ॥ तन्मात्राणांद्वितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते ॥ ३१ ॥ वैकारिकस्तृतीयस्तुसर्गऐन्द्रियकःस्मृतः ॥ इत्येषप्राकृतःसर्गःसंभूतोबुद्धिपूर्वकः ॥ ॥ ३२ ॥ मुख्यःसर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यावैस्थावराःस्मृताः ॥ तिर्यक्स्रोतस्तुयःप्रोक्तस्तिर्यग्योन्यःसपंचमः ॥ ३३ ॥ तथोर्ध्वस्रोतसांषष्ठो देवसर्गस्तुसस्मृतः ॥ ततोर्वाक्स्रोतसांसर्गःसप्तमःसतुमानुषः ॥ ३४ ॥ अष्टमोऽनुग्रहःसर्गःसात्त्विकस्तामसश्चसः ॥ पंचैतेवैकृताः सर्गाःप्राकृतास्तुत्रयःस्मृताः ॥ ३५ ॥ प्राकृतोवैकृतश्चैवकौमारोनवमःस्मृतः ॥ इत्येतेवैसमाख्यातानवसर्गाःप्रजापतेः ॥ ३६ ॥ प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतवः ॥ सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे प्राकृतवैकृत सर्गवर्णनंनामचतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४४ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ समासात्कथितासृष्टिःसम्यग्भगवतामम ॥ देवादीनांभवंब्रह्म न्विस्तरात्तुब्रवीहिमे ॥ १ ॥

सात्विक और तामस भेदसे दो प्रकारका है यह पाँच वैकृत सृष्टि और पूर्वोक्त तीन प्राकृत सृष्टि है ॥ ३५ ॥ प्राकृत और विकारी कौमार नामक सृष्टि नवम है, इस भाँति प्रजापतिकी नवसंख्यक सृष्टि कही गई है ॥ ३६ ॥ यह प्राकृत और विकारी ही जगतके मूलकारण हैं, जो जगदीशने सृजन किये हैं, अब और क्या सुनने की इच्छा है ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुश्चत्वारिंशो ध्यायः ॥ ४४ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मुझसे जिस प्रकार सृष्टि प्रकरण वर्णन किया, वह अतिसंक्षेपसे हुआ

है, अतएव हे ब्रह्मन् ! अब देवता इत्यादिकी उत्पत्ति विस्तारसहित कहिये ॥ १ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे ब्रह्मन् ! पूर्वजन्मके शुभ अशुभ कर्मसेही फिर उत्पत्ति होती है, कारण कि वह प्रलयमें संहृत होते हैं, मुक्त नहीं होते ॥ २ ॥ देवता इत्यादिसे स्थावर पर्यन्त चार प्रकारकी प्रजाकेप्रलय कालमें नष्ट होनेपर ब्रह्माजीने फिर उसकी सृष्टिके निमित्त इच्छा की, तब अपने मनसे ॥३॥ देवता, असुर, पितर और मनुष्य, यह चार प्रकार प्रजा उत्पन्न करनेकी इच्छासे उन्होंने जलमें अपना अंश निक्षेप किया ॥ ४ ॥ सृष्टिकी इच्छा करनेवाले प्रजापतिमें तमोगुणका उद्रेक होनेके कारण पहिले उनकी जंघासे असुरगण उत्पन्न हुए ॥ ५ ॥ इसी निमित्त उनको तमोगुणात्मक शरीर प्रदान किया

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भावितापूर्वकर्मभिः ॥ख्यात्यातयाह्यनिर्मुक्ताःप्रलयेह्युपसंहृताः ॥२॥ देवाद्याःस्थावरान्ताश्चप्रजाब्रह्मंश्चतुर्विधाः ॥ ब्रह्मणःकुर्वतःसृष्टिंजज्ञिरेमानसास्तदा ॥ ३ ॥ ततोदेवासुरपितॄन्मानुषांश्चचतुष्टयम् ॥ सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत् ॥ ४ ॥ युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ॥ सिसृक्षोर्जघनात्पूर्वमसुराजज्ञिरेततः ॥ ५ ॥ उत्ससर्जततस्तांतुतमोमात्रात्मिकांतनुम् ॥ सापविद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ॥ ६ ॥ अन्यांतनुमुपादायसिसृक्षुःप्रीतिमापसः ॥ सत्त्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ॥७॥ उत्ससर्जचभूतेशस्तनुंतामप्यसौविभुः ॥ साचापविद्धादिवसंसत्त्वप्रायमजायत ॥ ८ ॥ सत्त्वमात्रात्मिकामेवततोऽन्यांजगृहेतनुम् ॥ पितृवन्मन्यमानस्यपितरस्तस्यजज्ञिरे ॥ ९ ॥ सृष्ट्वापितॄनुत्ससर्जतनुंतामपिसप्रभुः ॥ साचोत्सृष्टाभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता॥१०॥रजोमात्रात्मिकामन्यांतनुंभेजेऽथसप्रभुः ॥ ततोमनुष्याःसम्भूतारजोमात्रसमुद्भवाः॥११॥

और वही शरीर त्यक्त होकर तत्काल तमोगुणात्मिका रात्रिके नामसे विख्यात हुआ ॥ ६ ॥ अनन्तर प्रजापति अन्य शरीर ग्रहण करके प्रसन्नताको प्राप्त हुए, उसमें सत्वगुणका उद्रेक होनेके कारण उनके मुखसे देवताओंकी सृष्टि होनेपर ॥ ७ ॥ उनको सात्विकशरीर दिया; तब त्यागाहुआ सत्वगुणबहुल कलेवरही दिन नामको प्राप्त हुआ ॥८॥ फिर सत्वमय दूसरा शरीरग्रहणपूर्वक पितरोंकी इच्छासे पितरोंको उत्पन्न किया ॥९॥ पितरोंको उत्पन्न करके प्रभुने उस शरीरको भी परित्याग किया, तब वही दिन रात्रिके अभ्यन्तर स्थित संध्यारूपमें परिणत हुआ ॥१०॥ इसके पीछे रजोमात्रात्मिका अन्य तनु ग्रहणपूर्वक रजोगुणबहुल मनुष्य सृष्टि उत्पन्न करी ॥ ११ ॥

मनुष्योंको उत्पन्न करके उस विभुने वह शरीर भी त्याग किया, वही ज्योत्स्ना हुआ, यह ज्योत्स्ना रात्रिके शेष और दिनके प्रथमभागमें प्रादुर्भूत होती है ॥ १२ ॥ हे द्विज ! बुद्धिमान् देवदेवके यह समस्त विग्रहही दिवा, रात्रि संध्या और ज्योत्स्नाके नामसे विख्यात हुए हैं ॥ १३ ॥ ज्योत्स्ना संध्या और दिवा यह तीन सत्वमात्रात्मिका है; रात्रि तामसी है इस कारण ही रात्रि त्रियामा हुई है ॥ १४ ॥ पूर्वोक्त गुणाधिक्यसे ही दिनमें देवता, रात्रिमें असुर, ज्योत्स्नामें मनुष्य और संध्याकालमें पितरगण ॥ १५ ॥ अधिक बलशाली होकर शत्रुओंसे अजेय होतेहैं अर्थात् शत्रु इनको संग्राममें नहीं जीत सकते और विपरीत कालमें विपरीत बलशाली होतेहैं॥१६॥ प्रजापतिने दिन, रात्रि, संध्या-

सृष्ट्वामनुष्यान्सविभुरुत्ससर्जतनुंततः ॥ ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्तांतेऽहर्मुखेचया ॥ १२ ॥ इत्येतास्तनवस्तस्यदेवदेवस्यधीमतः ॥ ख्यातारात्र्यहनीचैवसन्ध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥ १३ ॥ ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाहःसत्त्वमात्रात्मकंत्रयम् ॥ तमोमात्रात्मिकारात्रिः सावैतस्मात्तमोधिका ॥ १४ ॥ तस्माद्देवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विताः ॥ ज्योत्स्नागमेचमनुजास्सन्ध्यायांपितरस्तथा ॥ १५ ॥ भवन्तिबलिनोऽधृष्याविपक्षाणांनसंशयः ॥ तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिंचविपर्ययम् ॥ १६ ॥ ज्योत्स्नारात्र्यहनीसन्ध्याचत्वार्येतानि वैप्रभोः ॥ ब्रह्मस्तुशरीराणित्रिगुणोपसृतानितु ॥ १७ ॥ चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यतनुमन्यांप्रजापतिः ॥ रजस्तमोमयींरात्रौजगृहेक्षुत्तृ डन्वितः ॥ १८ ॥ तदन्धकारेक्षुत्क्षामानसृजद्भगवानजः ॥ विरूपाञ्छ्मश्रुलानत्तुमारब्धास्तेचतांतनुम् ॥ १९ ॥ रक्षामइतितेभ्योऽन्येयउचुस्तेतुराक्षसाः ॥ खादामइतियेचोचुस्तेयक्षायक्षणाद्द्विज ॥ २० ॥ तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यकेशाःशीर्यन्तवेधसः ॥ समारोहण हीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥ २१ ॥

और ज्योत्स्ना, यह चार प्रकारके शरीर उत्पन्न किये, यह ब्रह्माजीका त्रिगुणात्मक शरीर है॥१७॥प्रजापतिने इन चारों शरीरोंको उत्पन्न करके भूँख प्याससे युक्त रज तमोमयी रात्रिको ग्रहण किया ॥१८॥उस अंधकारमें भगवान्‌अज (ब्रह्मा)ने भूखसे कृश विरूप डाढ़ी मूँछवालोंको सृजन किया तब वह उस शरीरके खानेको प्रवृत्त हुए ॥१९॥ हे द्विज।जब वह शरीर भक्षण करनेलगे तब जिन्होंने "रक्षा करो" यह कहा, वह राक्षस और जिन्होंने "भक्षण करूंगा" यह कहा, वह यक्ष नामसे प्रसिद्ध हुए ॥२०॥ उनको देखकर अप्रसन्नता उपस्थित होनेसे विधाताके सब केश

ब्रह्माके मस्तकसे गिरकर ॥ २१ ॥ विचरण करनेके कारण सर्पसंज्ञाको प्राप्त हुए, हीनजाती होनेसे इन्हें अहि भी कहते हैं,सर्पोंके देखनेसे क्रोधयुक्त होकर उनको क्रोधात्मा किया ॥ २२ ॥ कपिलवर्णसे उत्पन्न उग्रस्वभाव पिशितामन (मांसभोजी) गणोंका प्रादुर्भाव हुआ । गौंकी चिन्ताकालमें गंधर्वोंकी उत्पत्ति हुई ॥ २३ ॥ वाक्य ग्रहण करते करते उत्पन्न होनेके कारण वह गंधर्व नामको प्राप्त हुए हैं, । इस प्रकार अष्टविध देवयोनि उत्पन्न करके ॥ २४ ॥ अपने देहसे अन्य समस्त पशु पक्षी उत्पन्न किये मुखसे छाग, हृदयसे पक्षी ॥ २५ ॥ उदर और पार्श्व स्थानसे गौ, दोनों पैरोंसे अश्व, हस्ती, गर्दभ, शशक (खरगोश) मृग ॥ २६ ॥ ऊंट और खच्चर तथा रोमसे फलमूलशाली अनेक प्रकारकी औषधियाँ

सर्पणात्तेऽभवन्सर्पाहीनत्वादहयःस्मृताः सर्पान्दृष्ट्वातनःक्रोधात्क्रोधात्मानोविनिर्ममे ॥ २२ ॥ वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूताःपिशिताशनाः ॥ ध्यायतोगांततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसता ॥ २३ ॥ जज्ञिरेपिततोवाचंगन्धर्वास्तेनतेस्मृताः ॥ अष्टास्वेतासुसृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभुः ॥ २४ ॥ ततःस्वदेहतोऽन्यानिवयांसिपशवोऽसृजत् ॥ मुखतोऽजाःससर्जाथवक्षसश्चावयोऽसृजत् ॥२५॥ गाश्चैवोदरतोब्रह्मापार्श्वाभ्यांचविनिर्ममे ॥ पद्भ्यांचाश्वान्समातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् ॥ २६ ॥ उष्ट्रानश्वतरांश्चैवनानारूपाश्चजातयः ॥ ओषध्यःफलमूलिन्योरोमभ्यतम्यजज्ञिरे ॥२७॥ एवंपश्वोषधीःसृष्ट्वाह्ययजच्चाध्वरेविभुः ॥ नस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखेतदा ॥ २८ ॥ गौरजःपुरुषोमेषोअश्वाश्वतरगर्दभाः ॥ एतान्ग्राम्यान्पशूनाहुरारण्यांश्चनिबोधमे ॥ २९ ॥ श्वापदंद्विखुरंहस्तीवानराःपक्षिपंचमाः ॥ औदकाःपशवःषष्ठाःसप्तमास्तुसरीसृपाः ॥ ३० ॥ गायत्रीश्चत्रृचंचैवत्रिवृत्सामरथन्तरम् ॥ अग्निष्टोमंचयज्ञानांनिर्ममेप्रथमान्मुखात् ॥३१॥ यजूंषित्रैष्टुभंछन्दःस्तोमंपंचदशंतथा ॥ बृहत्सामतथोक्तंचदक्षिणादसृजन्मुखात् ॥ ३२ ॥

उत्पन्न हुई हैं ॥ २७ ॥ भगवान् त्रेतायुगके प्रारंभमें इस प्रकार पशु और औषधी उत्पन्न करके यज्ञसृष्टिमें नियुक्त हुए थे ॥ २८ ॥ गौ, छाग, महिष, मेष, अश्व,खच्चर और गर्दभ, इन सब पशुओंको ग्राम्य कहते हैं, अब आरण्य अर्थात वनके पशु कहताहूं ॥ २९ ॥ श्वापद, द्विखुर, हस्ती, वानर, पक्षी, जलचर, पशु और सरीसृप सर्पादि । इन सातको आरण्यवासी प्राणी कहते हैं ॥ ३० ॥ विधाताने प्रथम मुखसे यज्ञकी गायत्री, त्रि—ऋक्, त्रि—वृत, साम रथन्तर और अग्निष्टोम उत्पन्न किया ॥ ३१ ॥ दक्षिण मुखसे यजुः, त्रैष्टुभछन्द, पंचदश स्तोम बृहत्साम

और उक्थको उत्पन्न किया ॥ ३२ ॥ पश्चिम मुखसे साम जगतीछन्द, पंचदश स्तोम तथा वैरुप और अतिरात्रको उत्पन्न किया ॥ ३३ ॥ उत्तर मुखसे इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनुष्टुभ और वैराजको उत्पन्न किया ॥ ३४ ॥ भगवान् विभुने कल्पके पहिले बिजली, वज्र, मेघ, रोहित (लाल) इन्द्र धनुष, और पक्षियोंकी सृष्टि की है ॥ ३५ ॥ इसके उपरान्त देवता, असुर, पितृ और मनुष्योंके उत्पन्न होनेपर उनके शरीरसे नानाविध प्राणी उत्पन्न हुए हैं ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त स्थावर, जंगम, भूतगण, यक्ष, पिशाच, गंधर्व और अप्सरागण ॥ ३७ ॥ नर, किन्नर राक्षस, पक्षी, पशु, मृग और भुजंग इत्यादि संपूर्ण नश्वर और अविनश्वर स्थावर जंगम पदार्थ उत्पन्न हुए हैं॥३८॥जिनका जो कर्म है, वह सृष्टिके

सामानिजगतीच्छन्दःस्तोमंपंचदशंतथा ॥ वैरूपमतिरात्रंचनिर्ममेपश्चिमान्मुखात् ॥ ३३ ॥ एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच ॥ आनुष्टुभंसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४॥ विद्युतोऽशनिमेघांश्चरोहितेन्द्रधनूंषिच ॥ वयांसिचससर्जादौकल्पस्यभगवान्विभुः ॥३५॥ उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ॥ सृष्ट्वाचतुष्टयंपूर्वंदेवासुरपितॄन्प्रजाः ॥३६॥ ततोऽसृजत्सभूतानिस्थावराणिचराणि च ॥ यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसांगणान् ॥३७॥ नरकिन्नररक्षांसिवयःपशुमृगोरगान् ॥ अव्ययंचव्ययंचैवयदिदंस्थाणुजङ्गमम् ॥३८॥ तेषांयेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे ॥ तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुनः ॥३९॥ हिंस्राहिंस्रेमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृते ॥ तद्भाविताःप्रपद्यन्तेतस्मात्तत्तस्यरोचते ॥ ४० ॥ इंद्रियार्थेषुभूतेषुशरीरेषुचसप्रभुः ॥ नानात्वंविनियोगंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥ ४१ ॥ नामरूपंचभूतानांकृत्यानांचप्रपंचनम् ॥ वेदशब्देभ्यएवादौदेवादीनांचकारसः ॥ ४२ ॥ ऋषीणांनामधेयानियाश्चदेवेषुसृष्टयः ॥ शर्वर्यन्तेप्रसूतानामन्येषांचददातिसः ॥ ४३ ॥

प्रथमही निर्दिष्ट हुआ है, अतएव वह वारंवार उत्पन्न होकर उन्हीं सब कर्मोंको प्राप्त होते हैं ॥ ३९ ॥ प्राणीगण पूर्व जन्ममें अहिंसा, मृदुता (कोमलता) क्रूरता, धर्म, सत्य और मिथ्या इनकी जिस प्रकार चिन्ता करते हैं पर जन्ममें उनको वही प्राप्त होती है ॥४०॥ प्राणियोंमें इन्द्रियोंके अर्थ और शरीरोंमें इंद्रियाँ अनेक प्रकारके कर्मानुसार उस विभुने स्वयं निर्माण कीहै ॥ ४१ ॥ प्राणियोंके नाम और रूप उनके कृत अकृत्य प्रपंच तथा देवताओंके कर्म आदिमें वेद शब्दसे निर्माण किये ॥४२॥ ऋषियोंके नाम तथा देवताओंकी सृष्टि सब उन्होंने प्रलयके उपरान्त पूर्वके

यथर्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये ॥ दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावायुगादिषु ॥ ४४ ॥ एवंविधाःसृष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ शर्वर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवै ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणेपञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ॥ ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ॥ १ ॥ यथाचवर्णानसृजद्यद्गुणांश्च महामते ॥ यच्चयेषांस्मृतंकर्मविप्रादीनांवदस्वतत् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ब्रह्मणःसृजतःपूर्वंसत्याभिध्यायिनस्तथा ॥ मिथुनानांसहस्रंतुमुखात्सोऽथासृजन्मुने ॥ ३ ॥ जातास्तेह्युपपद्यन्तेसत्त्वोद्रिक्ताःस्वतेजसः ॥ सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानांससर्जह ॥ ४ ॥ तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःशुष्मिणश्चाप्यमर्पिणः ॥ ससर्जान्यत्सहस्रंतुद्वंद्वानामूरुतःपुन ॥ ५ ॥ रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुते स्मृताः ॥ पद्भ्यांसहस्रमन्यच्चमिथुनानांससर्जह ॥ ६ ॥ उद्रिक्तास्तमसासर्वेनिःश्रीकाह्यल्पतेजसः ॥ ततःसंघर्षमाणास्तेद्वन्द्वोत्पन्नास्तुप्राणिनः ॥ ७ ॥ अन्योन्यंहृच्छयाविष्टामैथुनायोपचक्रमुः ॥ ततःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसम्भवः ॥ ८ ॥

समान कीहै ॥४३॥ जिस प्रकार ऋतुके बदलनेमें उसके लिङ्गादि दीखने लगते हैं, वैसेही युग युगमें आनेवाले भाव प्रगट होते हैं ॥ ४४ ॥ इस प्रकार अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रतिकल्पमेंही प्रलयान्तके समय सृष्टि करते हैं ॥ ४५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥ क्रौष्टुकिने कहा हे ब्रह्मन् ! आपने अर्वाक्स्रोता मनुष्योंका जो विषय कहा अब फिर उसीको विस्तार सहित कहिये ॥१॥ हे महामते ! जिस गुणयुक्त समस्त वर्णोंकी जिस प्रकार सृष्टि हुई है और ब्राह्मणादिका जो जो कर्तव्य है वह सब कथा प्रकाशित कीजिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी बोले—सृष्टिके प्रथमही ध्यानशील ब्रह्माजीके मुखसे सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई है ॥३॥ यह सब तेजवान् और सत्वकी अधिकतावाले हुए, उनके वक्षस्थल (छाती) से अन्य सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए थे ॥ ४ ॥ वह सब तेजस्वी और क्रोधितस्वभाव तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेशसे जो सहस्र मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ५ ॥ वह रज और तमोगुणोद्रिक्त तथा ईर्षायुक्त हुए और दोनों पैरोंसे जो सहस्र मिथुन हुये ॥ ६ ॥ वह तमोगुणी और लक्ष्मीरहित निस्तेज हुए, फिर संघर्षणसे द्वन्द्वरूप प्राणी हुये ॥ ७ ॥ और वह द्वन्द्वोत्पन्न प्राणी प्रसन्न चित्तसे परस्पर मैथुन करनेमें प्रवृत्त हुए तबसे इस कल्पमें इस भांति मिथुनकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥

पहिले स्त्रियोंका प्रतिमासमें रजोधर्म नहीं होता था, इस कारण वह दूसरे समयमें मैथुन करके भी ॥९॥ सन्तान उत्पन्न नहीं करतीं थीं, केवल अवस्थाके अन्तमें एकबार सन्तान होती थी (कुलिक और कुलका यह अन्त अवस्थामें प्रगट होते थे) तबसे इस कल्पमें मिथुनकी इसी प्रकार उत्पत्ति होती आती है ॥ १० ॥ जब ब्रह्माजीने प्रजाकी चिन्ता करी, तब उनके मनमे एक साथ जो पंचमहाभूत और शब्दादि विषय उत्पन्न हुए ॥ ११ ॥ इसीको प्रजापतिकी मानसी सृष्टि कहते हैं, इस समय उसी सृष्टिसे जगत् परिपूर्ण हो रहा है ॥ १२ ॥ पूर्वयुगमें प्रजागण अल्प शीतोष्ण होकर सरित् सरोवर और समुद्रके समीप तथा पर्वतोंमें विचरण करते थे ॥१३॥ हे महामते ! वह उपभोग विषयमें स्वाभाविक

मासिमास्यार्तवंयत्तुनतदासीत्तुयोषिताम् ॥ तस्मात्तदानसुषुवुःसेवितैरपिमैथुनैः ॥ ९ ॥ आयुषोन्तेप्रसूयन्तेमिथुनान्येवताःसकृत् ॥ (कुलिकंकुलिकाचैवउत्पद्यंतेमुमूर्षतां) ॥ ततःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसम्भवः ॥ १० ॥ ध्यानेनमनसातासांप्रजानांजायते सकृत् ॥ शब्दादिविषयःशुद्धःप्रत्येकंपंचलक्षणः ॥ ११ ॥ इत्येषामानुषीसृष्टिर्यापूर्ववैप्रजापतेः ॥ तस्यान्ववायसम्भूतायैरिदंपूरितं जगत् ॥ १२ ॥ सरित्सरःसमुद्रांश्चसेवन्तेपर्वतानपि ॥ तास्तदाह्यल्पशीतोष्णायुगेतस्मिंश्चरन्तिवै ॥ १३ ॥ तृप्तिंस्वाभाविकीं प्राप्ताविषयेषुमहामते ॥ नतासांप्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सरः ॥ १४ ॥ पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुसर्वशः ॥ तावैनिष्काम चारिण्योनित्यंमुदितमानसाः ॥ १५ ॥ पिशाचोरगरक्षांसितथामत्सरिणोजनाः ॥ पशवःपक्षिणश्चैवनक्रामत्स्याःसरीसृपाः ॥१६॥ अवारकाह्यण्डजाताह्यधर्मप्रसूतयः ॥ नमूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणिच ॥ १७ ॥ सर्वकालसुखःकालोनात्यर्थंघर्मशीतता ॥ कालेनगच्छतातेषांपित्रासिद्धिरजायत ॥ १८ ॥

तृप्तिलाभ करते और उनमें किसी प्रकारका विघ्न, द्वेष वा मत्सरादि नहीं था ॥ १४ ॥ वह घर न बनाकर पर्वत और समुद्रके तटमें वास करते एवं सदा निष्कामचारी और प्रसन्न चित्त थे ॥ १५ ॥ पिशाच उरग, राक्षस, अभिमानी मनुष्य, पशु, पक्षी, नक्र (नाके) मत्स्य, बिच्छू ॥ १६ ॥ अवारक, (प्राणी विशेष) और अंडज प्राणी अधर्मसे उत्पन्न हुए हैं उस काल मूल फल पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ नहीं था, ॥ १७ ॥ उस समय अत्यन्त गरमी वा अत्यन्त शीत कुछ नहीं था, सर्वदाही अत्यन्त सुखका समय था । काल

क्रमसे उनको अद्भुत सिद्धि उत्पन्न हुई ॥१८॥ पूर्वाह्णमें वा मध्याह्नमें उनकी तृप्ति न होनेपर इच्छाकरनेसे सहजमेंही वह तृप्त हो जाते ॥ १९ ॥ और इच्छा करतेही मनमें उनका मनोरथ प्रगट होजाता तब जलकी सूक्ष्मताके कारण उनकी नानाप्रकार रसोल्लासता नामक अन्य सिद्धि ॥२०॥ उपस्थित होकर संपूर्ण अभिलाषा पूर्णकरती । वह 'संस्कारहीन होकरभी' स्थिरयौवनवाले थे ॥ २१ ॥ संकल्पके विनाही उनकी मिथुन प्रजा उत्पन्न होती, यह मिथुन प्रजा जिस प्रकार एक संग उत्पन्न होती, वैसेही रूपादिकी समता लाभ करके एक संगही प्राण त्याग करती ॥ २२ ॥ उनकी परस्परके प्रति अभिलाषा वा द्वेष कुछ नहीं था । सबही समान भावसे समय [illegible] उत्तम वा अधम कोई था नहीं

ततश्चतेषांपूर्वाह्णेमध्याह्नेचवितृप्तता ॥ पुनस्तथेच्छतांतृप्तिस्तायामेनसम्भवत ॥ १९ ॥ इच्छातस्तासामस्तोमनसः सम जायत ॥ अपांसौक्ष्म्यंततस्तासांसिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥ २० ॥ समजायततेवान्यासर्वकामप्रदायिनी ॥ असंस्कार्यैःशरीरैश्चप्रजास्ताःस्थिर यौवनाः ॥ २१ ॥ तासांविनातुसंकल्पंजायन्तेमिथुनाःप्रजाः ॥ समंजन्मचरूपंचम्रियन्तेचैवताःसमम् ॥ २२ ॥ अनिच्छाद्वेषसंयुक्ता वर्तन्तेतुपरस्परम् ॥ तुल्यरूपायुषःसर्वाअधमोत्तमतांविना ॥ २३ ॥ चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणितु ॥ आयुःप्रमाणंजीव न्तिनचक्लेशाद्विपत्तयः ॥ २४ ॥ क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत्क्षितिर्भाग्येनसर्वशः ॥ कालेनगच्छतानाशमुपयान्तियथाप्रजाः ॥ २५ ॥ तथाताःक्रमशोनाशंजग्मुःसर्वत्रसिद्धयः ॥ तासुसर्वासुनष्टासुनभसःप्रच्युतारसाः ॥ २६ ॥ [illegible] ॥ सर्वैप्रत्युपभोगाश्चतासांतेभ्यःप्रजायत ॥ २७ ॥ वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेप्रजाः ॥ [illegible]

भवत् ॥ २८ ॥

सब आयु और रूपादिमें समान भावसे रहते थे ॥ २३ ॥ यह मिथुन प्रजा मनुष्य परिमाणके चारहजार वर्ष जीवित रहती और [illegible] तथा विपत्तिके प्राणत्याग करती थीं ॥ २४ ॥ दैववशतः पृथ्वी किसी किसी स्थानमें इसप्रकार होजाती [illegible] जिससे प्रजा [illegible] विसर्जन करती ॥ २५ ॥ तब क्रमानुसार वह सब सिद्धियें नष्ट होगईं, उनके नष्ट होनेपर आकाशसे रस गिरने लगे ॥ २६ ॥ जल [illegible] प्राप्ति हुई और घरों में कल्पवृक्ष भी उत्पन्न होगये; इन कल्पवृक्षोंसेही उनका समस्त भोग प्राप्त होने लगा ॥ २७ ॥ त्रेतायुगके आरंभ में मनुष्यगण

इस प्रकार जीवनयात्रा निर्वाह करते थे, अनन्तर कालवशतः उनको आकस्मिक राग होगया॥२८॥तब इस प्रकार रागकी उत्पत्ति उनकी मास मासमें ऋतु और इसी कारण वारंवार गर्भोत्पत्ति होने लगी और उनके घरोंमें स्थित कल्पवृक्षोंमें राग उत्पन्न होने लगा॥२९॥तब वह कल्पवृक्ष नष्ट होगये और चार शाखावाले दूसरे वृक्ष उत्पन्न होगये, उनके फलोंमें वस्त्र और आभरण लगते थे ॥ ३० ॥ और उन फलोंके प्रत्येक पुटमें सुन्दर गंध और वर्णयुक्त बलकारक विना मक्खियोंके मधु उत्पन्न होता था ॥ ३१ ॥ त्रेतायुगके प्रारंभमें यह मधुपान करके उस समयकी प्रजा जीवन धारण करती थीं अन्तर काल क्रमसे वह अत्यन्त लोभी होकर ॥३२॥ ममतायुक्त मनसे उन सब वृक्षोंको ग्रहण करने लगे, तब इस

मासिवास्यार्तवोत्पत्त्यागर्भोत्पत्तिःपुनःपुनः ॥ रागोत्पत्त्याततस्तासांवृक्षास्तेगृहसंस्थिताः ॥ २९ ॥ प्रणेशुरपरेचासंश्चतुःशाखामहीरुहाः ॥ वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ॥ ३० ॥ तेष्वेवजायतेतेपांगन्धवर्णरसान्वितम् ॥ अमाक्षिकंमहावीर्यंपुटकेपुटके मधु ॥ ३१ ॥ तेनतावर्तयन्तिस्ममुखेत्रेतायुगस्यवै ॥ ततःकालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुताः ॥ ३२ ॥ वृक्षास्ताःपर्यगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतसः ॥ नेशुस्तेनापचारेणतेहितासांमहीरुहाः ॥ ३३ ॥ (मूलेषुचापरंवासंचक्रुःशालागहीरुहाम् ॥) ततोद्वन्द्वान्यजायन्तशीतोष्णक्षुन्मुखानिवै ॥ तास्तद्वन्द्वोपघातार्थंचक्रुःपूर्वंपुराणितु ॥ ३४ ॥ मरुधन्वसुदुर्गेषुपर्वतेषुदरीषुच ॥ संश्रयन्तिच दुर्गाणिवार्क्षपार्वतमौदकम् ॥ ३५ ॥ कृत्रिमंचतथादुर्गमित्वामित्वात्मनोऽङ्गुलैः ॥ मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वंप्रचक्रिरे ॥ ३६ ॥ परमाणुःपरंसूक्ष्मंत्रसरेणुर्महीरजः ॥ वालाग्रंचैवलिक्षांचयूकांचाथयवोदरम् ॥ ३७ ॥

अपचारसे सब वृक्ष नष्ट होगये ॥ ३३ ॥ (क्योंकि वृक्षोंकी जड़ोंमें रहनेकी जगह शाला बनाली थी) अन्तर शीत, उष्ण, क्षुधा इत्यादि समस्त द्वन्द्व उत्पन्न हुए, उन सब द्वन्द्वको निवारण करनेके लिये उन्होंने पहिले पुर बनाये ॥ ३४ ॥ तब मरुभूमि परवत और गुफा इत्यादिमें सब दुर्ग निर्मित होनेपर वह वृक्षोंके, पर्वतोंके और जल इत्यादिके दुर्गमें वास करने लगे ॥ ३५ ॥ और अपनी अंगुली आदिके परिमाणसे समस्त कृत्रिम दुर्ग परिमित करके परिमाण निरूपणके लिये प्रमाण नियत किया ॥ ३६ ॥ अति सूक्ष्म प्रमाणार्थ परमाणु जालीके छिद्रोंमें किरण पड़नेसे सूक्ष्म रज दीख पड़ती है, उसके तीसरे भागको परमाणु कहते हैं त्रसरेणु (तीस परमाणुका एक त्रसरेणु) और धूलि और स्थूल

प्रमाणार्थ केशाग्र (तीस त्रसरेणुका एक केशाग्र) निष्क (तीनकेशाग्रका एक निष्क) यूका (तीन निष्कका एक यूका) और यव सिद्ध हुआ है ॥ ३७ ॥ आठ यवमें एक अंगुल होता है, छः अंगुलमें एक पद, दो पदमें एक वितस्ति (बिलस्त) ॥ ३८ ॥ दो बिलस्तका एक हाथ, ब्राह्मतीर्थपर्यन्त वेष्टित चार हाथमें धनुर्दण्ड वा नाडिका युग ॥ ३९ ॥ दो हजार धनुमें एक गव्यूति (दोकोस) और चार गव्यूतिमें एक योजन होता है । बुद्धिमान् पुरुषोंने संख्या निरूपण करनेके लिये इस प्रकार निर्धारण किया है ॥ ४० ॥ इनमेंसे चार प्रकारके दुर्गमें तीन स्वाभाविक हैं, अपर कृत्रिम अर्थात् मनुष्यकृत होयही दुर्गकर्त्तव्य है॥४१॥हे द्विज! इसके पीछे उन्होंने उन सब स्थानोंमें पर, खेटक,

क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौनथांगुलम् ॥ षडंगुलंपदंतच्चवितस्तिर्द्विगुणंस्मृतम् ॥ ३८ ॥ द्वौ हस्तौनथाहस्तौब्राह्मतीर्थादिवेष्टितः ॥ चतुर्हस्तंधनुर्दण्डोनाडिकायुगमेवच ॥ ३९ ॥ क्रोशोधनुःसहस्रेद्वेगव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ॥ प्रोक्तंचयोजनंप्राज्ञैःसंख्यानार्थमिदंपरम् ॥ ४० ॥ चतुर्णामथदुर्गाणांस्वमसुत्थानित्रीणितु ॥ चतुर्थंकृत्रिमंदुर्गंतच्चकुर्यत्ततस्त्विव ॥ ४१ ॥ पुरंचखेटकंचैवतद्वद्द्रोणीमुखंद्विज ॥ शाखानगरकंचापितथाखर्वटकंद्रुमी ॥ ४२ ॥ ग्रामसंघोषविन्यासंतेषुचारमथान्पृथक् ॥ सोत्सेधवप्रप्राकारंसर्वतःपरिखावृतम् ॥ ४३ ॥ योजनार्द्धार्द्धविष्कम्भमष्टभागायतंपुरम् ॥ प्रागुदक्प्रवणंशस्तंशुद्धवंशबहिर्गमम् ॥ ४४ ॥ तदर्द्धेनतथाखेटंतत्पादेनचखर्वटम् । न्यूनंद्रोणीमुखंतस्मादष्टभागेनचोच्यते ॥ ४५ ॥ प्राकारपरिखाहीनंपुरंखर्वटमुच्यते ॥ शाखानगरकंचान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत ॥ ४६ ॥

(छोटे ग्राम)द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रुमी,॥४२॥ग्राम और संघोष इन सबको बसा करके उन सबने फिर पृथक्पृथक्(निवासस्थान)बनाये जिनके चारों ओर ऊंची दीवारें और परिखावरण खाई थीं॥४३॥जो लम्बाईमें दोकोश और जो अष्ट भागमें चौड़ा है, उसको पर कहते हैं। इस पुरका पूर्व और उत्तर भाग जलद्वारा प्लावित होनेसे और उसमें विशुद्ध वंश निर्मित बहिर्गम(सेतु)होनेसे वह श्रेष्ठ होता है॥४४॥पुरके आधे लक्षणयुक्त स्थानको खेटक, उससे आधे लक्षणयुक्तको खर्वटक और पुरके अष्ट भाग लक्षणाकान्तको द्रोणीमुख कहतेहैं ॥४५॥ जिस पुरमें प्राकार है और परिखा नहीं है, उसको खर्वट पुर कहते हैं जिसमें मंत्री और सामन्त निज ग्राम करते हों, और उसमें नानाप्रकार भोगके पदार्थ भी हों उसको

शाखानगर कहतेहैं ॥४६॥ जिस स्थानमें शूद्रगण और स्वीय स्वीय समृद्धियुक्त किसान वास करते हैं और जिसके चारों ओर खेत तथा उपभोग्य भूमि (उद्यानादि) विद्यमान हैं उसको ग्राम कहते हैं ॥ ४७ ॥ कोई कार्य उद्देश्य करके अन्यान्य नगरादिसे मनुष्य आकर वास कहते हैं, उसको वसति कहते हैं ॥ ४८ ॥ जहां के सब मनुष्य दुष्टप्राय बलवान् और अपना क्षेत्र न होने पर भी पराया क्षेत्र ग्रहण करते हैं और जहां राजप्रिय मनुष्य वास करते हैं, उस ग्रामको द्रमी कहते हैं ॥ ४९ ॥ गोपाल लोग जहां अपने बर्तन भांडा गाडीपर लादकर रखते हैं और जहां गायें अधिक वास करतीं हैं, एवं जहां बाजार हाट न हो और अपनी इच्छानुसार विना धन धरती मिलती

तथाशूद्रजनप्रायाःस्वसमृद्धकृषीवलाः ॥ क्षेत्रोपभोग्यभूमध्येवसतिर्ग्रामसंज्ञिता ॥ ४७ ॥ अन्यस्मान्नगरादेर्याकार्यमुद्दिश्यमानवैः ॥ क्रियतेवसतिःसावैविज्ञेयावसतिर्नरैः ॥ ४८ ॥ दुष्टप्रायोविनाक्षेत्रैःपरभूमिचरोबली ॥ ग्रामएवद्रमीसंज्ञोराजवल्लभसंश्रयः ॥ ४९ ॥ शकटारूढभाण्डैश्चगोपालैर्विपणंविना ॥ गोसमूहैस्तथाघोषोयत्रेच्छाभूमिकेतनः ॥ ५० ॥ तएवंनगरादींस्तुकृत्वावासार्थमात्मनः ॥ निकेतनानिद्वंद्वानांचक्रुश्चोपशमायवै ॥ ५१ ॥ गृहाकारायथापूर्वंतेषामासन्महीरुहाः ॥ तथासंस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिताःप्रजाः ॥ ॥ ५२ ॥ वृक्षस्यैवङ्गताःशाखास्तथैवंचपरागता ॥ नताश्चैवोन्नताश्चैवनद्धच्छाखाःप्रचक्रिरे ॥ ५३ ॥ याःशाखाःकल्पवृक्षाणांपूर्वमासन्द्विजोत्तम ॥ ताएवशाखागेहानांशालात्वंतेनतासुतत् ॥ ५४ ॥ कृत्वाद्वंद्वोपघातंतेवार्तोपायमचिंतयन् ॥ नष्टेषुमधुनासार्द्धंकल्पवृक्षेष्वशेषतः ॥ ५५ ॥

हो, उसको घोष कहते हैं॥५०॥उन्होंने इस प्रकार अपने रहनेके लिये नगरादि निर्माण करके समस्त द्वन्द्व (दुःख) निवारणके अर्थ और व्यापारादि करनेके लिये घर बनाये॥पहिले समस्त वृक्ष जिस प्रकार उनके गृहतुल्य थे, उनको स्मरण करके उसी प्रकार सब गृह निर्माण किये॥५१॥ ॥५२॥वृक्षकी शाखाएँ जिस भांति एकके पीछे एक नीचे और ऊंचे भावसे अवस्थित होती हैं, इसी भाँति उन्होंने समस्त गृह बनाये ॥५३॥ हे द्विजोत्तम!पूर्वमें कल्पवृक्षकी जो सब शाखाएं थीं; उनसब शाखाओंने इस समय उनके सब गृहोंका शालात्व लाभ किया अर्थात् वैसेही ढालू और ऊँचे शिखरके घर किये॥५४॥जब इन शालाओंने उनके शीत उष्ण इत्यादि सब दुःखोंका विनाश किया, तब वह सब जीविका निर्वाहकी चिंता

करने लगे, क्योंकि उसकाल मधुके सहित समस्त कल्पवृक्ष नष्ट होगयेथे॥ ५४॥तब वह समस्त प्रजा विषादसे व्याकुल और भूख प्याससे व्याकुल अत्यन्त कातर होगई।उसी समय त्रेतायुगके प्रारम्भमें उनकी इसप्रकार सिद्धि उत्पन्न हुई थी ॥५५॥ उस समय उनकी इच्छा होनपरही बहुत वर्षा होती, वह वर्षाके समस्त जल निम्नगामी होकर॥५६॥रुकाहुआ समस्त वृष्टिका जल स्रोतद्वारा खात (गढ़ाई) करता हुआ निम्नगा (नदी)रूपसे परिणत हुआ॥ पहिले जो सामान्य जल पृथ्वीमें गिराथा॥५८॥उस समय वही सब जल मिट्टीके संयोगसे औषधि होगई। ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष एवं समस्त गुल्म विनाही जोते बोये उत्पन्न हुएथे॥ ५९॥वह सब ऋतुकालमें फल और पुष्प उत्पन्न करने लगे।...त्रेतायुगके प्रारम्भमें

विषादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ॥ ततःप्रादुर्बभौतासांसिद्धिस्त्रेतामुखेतदा ॥ ५५ ॥ वार्त्तार्थसाधिकाह्यन्यावृष्टिस्तासां निकामतः ॥ तासांवृष्ट्युदकानीहयानिनिम्नगतानिवै ॥ ५७ ॥ वृष्ट्यावरुद्धैरभवन्स्रोतःखातानिनिम्नगाः ॥ येपुरस्तादपांस्तोका आपन्नाःपृथिवीतले ॥ ५८ ॥ ततोभूमेश्चसंयोगादोषध्यस्तास्तदाभवन् ॥ अफालकृष्टाश्चानुप्ताग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ ५९ ॥ ऋतुपुष्पफलाश्चैववृक्षागुल्माश्चजज्ञिरे ॥ प्रादुर्भावस्तुत्रेतायामाद्योऽयमौषधस्यतु ॥ ६० ॥ तेनौषधेनवर्त्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेमुने ॥ रागलोभौसमासाद्यप्रजास्त्वाकस्मिकौतदा ॥ ६१ ॥ ततस्ताःपर्यगृह्णन्तनदीक्षेत्राणिपर्वतान् ॥ वृक्षगुल्मौषधीश्चैवयथाशक्त्यथाबलम् ॥ ६२ ॥ तेनदोषेणतानेशुरोषध्योमिषतांद्विज ॥ अग्रसद्भूर्युगपत्तास्तदौषधीर्महामते ॥ ६३ ॥ पुनस्ताःसुप्रणष्टासुविभ्रान्तास्ताःपुनःप्रजाः ॥ ब्रह्माणंशरणंजग्मुःक्षुधार्त्ताःपरमेष्ठिनम् ॥ ६४ ॥

संपूर्ण औषधी उत्पन्न हुई ॥ ६० ॥ हे मुने ! प्रजागण अकस्मात राग और लोभको प्राप्त होकर उन औषधियोंमें उत्पन्न पदार्थोंके द्वारा त्रेतायुगके प्रारम्भमें जीवन धारण करने लगे॥६१॥तदनन्तर जिससे अपने शरीर अतिशय बलवान हों, इसकारण नदी, क्षेत्र, पर्वत, वृक्ष, गुल्म और समस्त औषधियोंका आश्रय करने लगे॥६२॥ हेद्विजवर!इसी दोषसे देखते देखते वह सब औषधी, नष्ट होगई अर्थात् हे महामते ! पृथ्वीने एक कालमेंही उन सब औषधियोंको ग्रासकर लिया॥६३॥इसप्रकार सब औषधियोंके नष्ट होनेपर फिर संपूर्ण प्रजा विभ्रान्त होगई और भूखसे आतुर होकर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी शरण ग्रहण करी ॥ ६४ ॥

उन विभु भगवान् ब्रह्माजीने पृथ्वीको सम्यक् प्रकार ग्रासकारिणी जान सुमेरु पर्वतको बछडा बनाकर दुहा ॥ ६५ ॥ तब भूमि पृथ्वीतलमें समस्त धान्य दुहाने लगी उससे सब बीज उत्पन्न हुए एवं ग्राम और वनके वृक्ष उत्पन्न हुए ॥ ६६ ॥ सत्रह प्रकारके फल पकनेपर सूखनेवाली समस्त औषधी उत्पन्न हुई उनके नाम व्रीहि (चावल धान्य)यव गेहूं कोनों तिल ॥ ६७ ॥ प्रियंगुफलिनी राई कोविदार लालकचनार कोदों मटर उरद मूंग मसूर लोबिया कुलथी ॥ ६८ ॥ आढक (अरहर) और चने पहिले सब ग्राम औषधियोंकी यह सत्रह प्रकार जाति उत्पन्न हुई ॥ ६९॥ ग्राम और वनकी जो चौदह प्रकार औषधी हैं वह यज्ञके व्यवहारमें आतीहैं व्रीहि (धान्य)

सचापितत्त्वतोज्ञात्वातदाग्रस्तांवसुन्धराम् ॥ वत्संकृत्वासुमेरुंतुदुदोहभगवान्विभुः ॥ ६५ ॥ दुग्धेयंगौस्तदातेनसस्यानिपृथिवीतले ॥ जज्ञिरेतानिबीजानिग्राम्यारण्यास्तुताःपुनः ॥ ६६ ॥ ओषध्यःफलपाकान्तागणाःसप्तदशस्मृताः ॥ व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥ ६७॥ प्रियङ्गवःकोविदाराःकोरदूषाःसतीनकाः ॥ माषामुद्गामसूराश्चनिष्पावाःसकुलत्थकाः ॥ ६८॥ आढक्यश्चणकाश्चैवशणाःसप्तदशस्मृता ॥ इत्येताओषधीनांतुग्राम्याणांजतयःपुरा ॥ ६९ ॥ ओषध्योयज्ञियाश्चैवग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ॥ व्रीहयश्चयवाश्चैवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥ ७० ॥ प्रियंगुषष्ठावैह्येतेसप्तमास्तुकुलत्थकाः ॥ श्यामाकास्त्वथनीवारायत्तिलाःसगवेधुकाः ॥ ७१ ॥ कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयवाश्चये ॥ ग्राम्यारण्याःस्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥ ७२ ॥ यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिताःपुनः ॥ ततःसतासांवृद्ध्यर्थंवार्त्तोपायंचकारह ॥ ७३ ॥ ब्रह्मास्वयम्भूर्भगवान्हस्तसिद्धिंचकर्मजाम् ॥ ततःप्रभृत्यथौषध्यःकृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥ ७४ ॥ संसिद्धायांतुवार्त्तायांततस्तासांस्वयंप्रभुः॥मर्यादांस्थापयामासयथान्यायंयथागुणम् ॥ ७५ ॥

यव गेहूं अणु (साँवा) तिल ॥ ७० ॥ प्रियंगु (फलिनी) कुलथी श्यामाक (सामा) अलसी जर्त्तिल (तिल) गवेधुक गरहे हुआ धान्य ॥ ७१ ॥ कुरुविन्द (कुलथी) मर्कटक धान्यविशेष और वेणु यव बाँसके चावल यह चौदह प्रकारकी औषधी ग्रामारण्य हैं ॥ ७२ ॥ इसप्रकार जब वह सब श्रेष्ठ औषधियें फिर नहीं उपजीं तब ब्रह्माजी उनकी वृद्धिके लिये जीवनोपायकी चिन्ता करने लगे ॥७३॥ तब भगवान् स्वयम्भू ब्रह्माजीने कर्मसे सिद्ध होनेवाली हस्तसिद्धि करी तबसेही कृष्टपच्या औषधी (जोतनेसे उत्पन्न होनेवाली उत्पन्न हुई) ॥७४॥ इस प्रकार

उनके जीवनका उपाय निर्द्धारित होनेपर स्वयं प्रभु ब्रह्माजीने न्यायानुसार और गुणानुसार मर्यादा स्थापन करी ॥ ७५ ॥ हे धार्मिकश्रेष्ठ! समस्त वर्ण और आश्रमोंका धर्म एवं धर्मार्थपालक सब वर्णोत्पन्न लोकों का धर्म निरूपण किया ॥ ७६ ॥ क्रियानिष्ठ ब्राह्मणोंके लिये उन्होंने प्राजापत्य स्थान नियत किया संग्राममें नहीं भागनेवाले क्षत्रियोंके निमित्त ऐन्द्रस्थान ॥ ७७ ॥ स्वधर्मपरायण वैश्योंके लिये मारुतस्थान और सेवापरायण शूद्रोंके लिये गान्धर्वस्थानकी कल्पना करी ॥ ७८ ॥ ऊर्ध्व रेता अठासी हजार ऋषियोंके जो स्थान कल्पित हुए हैं, गुरुके घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणोंके लिये भी वही स्थान कल्पित हुए ॥ ७९ ॥ जो स्थान सप्तर्षियोंके निमित्त निर्दिष्ट हैं, वनवासियोंके लिये भी वही स्थान कल्पित हुए । गृहस्थके

वर्णानामाश्रमाणांचधर्मान्धर्मभृतांवर ॥ लोकानांसर्ववर्णानांसम्यग्धर्मार्थपालिनाम् ॥ ७६ ॥ प्राजापत्यंब्राह्मणानांस्मृतंस्थानंक्रियावताम् ॥ स्थानमैन्द्रंक्षत्रियाणांसंग्रामेष्वपलायिनाम् ॥ ७७ ॥ वैश्यानांमारुतंस्थानंस्वधर्ममनुवर्तताम् ॥ गान्धर्वंशूद्रजातीनांपरिचर्यानुवर्तिनाम् ॥ ७८ ॥ अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ स्मृतंतेषान्तुयत्स्थानंतदेवगुरुवासिनाम् ॥ ७९ ॥ सप्तर्षीणांतुयत्स्थानंस्मृतंतद्वैवनौकसाम् ॥ प्राजापत्यंगृहस्थानांन्यासिनांब्रह्मणःक्षयम् ॥ योगिनाममृतंस्थानमितिवैस्थानकल्पना ॥ ८० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसृष्टिप्रकरणे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोऽभिध्यायतस्तस्यजज्ञिरेमानसीःप्रजाः ॥ तच्छरीरसमुत्पन्नैःकार्यैस्तैःकारणैःसह ॥ १ ॥ क्षेत्रज्ञाःसमवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमतः ॥ तेसर्वेसमवर्तन्तयेमयाप्रागुदाहृताः ॥ २ ॥ देवाद्याःस्थावरांताश्चत्रैगुण्यविषयाःस्मृताः ॥ एवंभूतानिसृष्टानिस्थावराणिचराणिच ॥ ३ ॥

लिये प्राजापत्य, संन्यासियोंके लिये अक्षय ब्राह्मपद और योगियोंके लिये अमृतमोक्षस्थान कल्पित हुआ ॥ ८० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे सृष्टिप्रकरणे भाषाटीकायां षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि, अनन्तर ब्रह्माजीके पुनर्वार चिन्ता करनेपर उनके शरीरसे कार्य और कारणके सहित मानसी प्रजा उत्पन्न हुई ॥ १ ॥ उन बुद्धिमान् ब्रह्माजीकेगात्रसे समस्त क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए । इसके अतिरिक्त और जो उत्पन्न हुए पूर्वमें उनका उल्लेख किया है ॥ २ ॥ देवतासे स्थावर पर्यन्त सबही त्रिगुणयुक्त हैं । इस प्रकार ब्रह्माजीने स्थावर और जंगम चराचर जीवोंको उत्पन्न किया ॥ ३ ॥

फिर जब बुद्धिमान् ब्रह्माजीने अपनी सब प्रजाको बढ़ता हुआ नहीं देखा, तब अपनेही समान मानस पुत्रोंको उत्पन्न किया ॥ ४ ॥ भृगु, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, अंगिरा, मरीचि, दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ यह ब्रह्माके मानसी पुत्र हुए ॥ ५ ॥ यह नौ ब्रह्माके मानस पुराणोंमें निश्चय किये गये हैं । तब फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्रको उत्पन्न किया ॥ ६ ॥ इसके पीछे संकल्प और धर्मको उत्पन्न किया । जोकि प्रथमसेही प्रगट हैं और सनन्दनादिकोंको स्वयम्भूकी पूर्व सृष्टिमेंही उत्पन्न किया ॥ ७ ॥ यह सब भविष्यत् ज्ञानसंपन्न, वीतराग मत्सरहीन निरपेक्ष और समाधिमान् हुए, प्रजा सृष्टि विषयमें सज्जित हुए ॥ ८ ॥ उनके सृष्टि विषयमें इस प्रकार निरपेक्ष होनेपर महात्मा ब्रह्माजीको

यदास्यताःप्रजाःसर्वान्व्यवर्द्धंतधीमतः ॥ अथान्यान्मानसान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ॥ ४ ॥ भृगुंपुलस्त्यंपुलहंक्रतुमङ्गिरसं तथा ॥ मरीचिंदक्षमत्रिंचवसिष्ठंचैवमानसम् ॥ ५ ॥ नवब्रह्मणइत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गताः ॥ ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ॥ ६ ॥ सङ्कल्पंचैवधर्मंचपूर्वेषामपिपूर्वजम् ॥ सनन्दनादयोयेचपूर्वंसृष्टाःस्वयंभुवा ॥ ७ ॥ नतेलोकेषुसज्जन्तोनिरपेक्षाःसमाहिताः ॥ सर्वेतेऽनागतज्ञानावीतरागाविमत्सराः ॥ ८ ॥ तेष्वेवंनिरपेक्षेषुलोकसृष्टौमहात्मनः ॥ ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निभः ॥ ९ ॥ अर्द्धनारीनरवपुःपुरुषोऽतिशरीरवान् ॥ विभजात्मानमित्युक्त्वासतदान्तर्दधेततः ॥ १० ॥ सचोक्तोवैपृथक्स्त्रीत्वंपुरुषत्वंतथाकरोत् ॥ बिभेदपुरुषत्वंचदशधाचैकधातुसः ॥ ॥ ११ ॥ सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तैःपुंस्त्वंस्त्रीत्वंचसप्रभुः ॥ बिभेदबहुधादेवःपुरुषैरमितैःशितैः ॥ १२ ॥ ततोब्रह्मात्मसम्भूतंपूर्वंस्वायम्भुवंप्रभुः ॥ आत्मनःसदृशंकृत्वाप्रजापाल्येमनुंद्विज ॥ १३ ॥

अत्यन्त क्रोध उदय हुआ । उसी क्रोधसे (भयंकर देहयुक्त) सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुषने जन्म ग्रहण किया ॥९॥ उसके देहका आधा-भाग पुरुष और आधाभाग नारी था तदन्तर 'अपने देहको विभक्तकर' यह कहकर ब्रह्माजी अन्तर्धान हो गये ॥१०॥ उस पुरुषने भी ब्रह्माजीकी इस प्रकार आज्ञा पाय देहको दो भागमें विभक्त किया । उसमें स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक् प्रगट हुआ तिनमें जो भाग पुरुषकार था, उसको सौम्य, असौम्य, शान्त, असित और सित इत्यादि भेदसे ग्यारह भागमें विभक्त किया ॥११॥ १२ ॥ हे द्विज ! अनन्तर प्रभु ब्रह्माजीने उस पूर्वोत्पन्न अपनी समान पुरुषका "स्वायंभुवमनु" नाम रखकर प्रजापालक किया ॥ १३ ॥

शतरूपांचतांनारींतपोनिर्धूतकल्मषाम् ॥ स्वायम्भुवोमनुर्देवःपत्नीत्वेजगृहेविभुः ॥ १४ ॥ तस्माच्चपुरुषात्पुत्रौशतरूपाव्यजायत ॥ प्रियव्रतोत्तानपादौप्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥ १५ ॥ कन्येद्वेचतथाकूतिंप्रसूतिंचततःपिता ॥ ददौप्रसूतिंदक्षायतथाकूतिंरुचेःपुरा ॥१६॥ प्रजापतिः सजग्राहतयोर्यज्ञःसदक्षिणः ॥ पुत्रोजज्ञेमहाभागदम्पतीमिथुनंततः ॥ १७ ॥ यज्ञस्यदक्षिणायान्तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे ॥ यामाइतिसमाख्यातादेवाःस्वायंभुवेऽन्तरे ॥ १८ ॥ तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायांसुभास्वराः ॥ प्रसूत्यांचतथादक्षश्चतस्रोविंशतिस्त था ॥ १९ ॥ ससर्जकन्यास्तासांचसम्यङ्नामानिमेशृणु ॥ श्रद्धालक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिःपुष्टिर्मेधाक्रियातथा ॥ २० ॥ बुद्धिर्लज्जावपुः शान्तिःसिद्धिःकीर्तिस्त्रयोदशी ॥ पत्न्यर्थंप्रतिजग्राहधर्मोदाक्षायणीःप्रभुः ॥२१॥ ताभ्यःशिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचनाः॥ख्यातिः सत्यथसम्भूतिःस्मृतिःप्रीतिस्तथाक्षमा॥२२॥सन्ततिश्चानसूयाचऊर्जास्वाहास्वधातथा॥ भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनिः ॥२३॥

और तपस्या द्वारा जिसने अपने पापोंको नष्ट किया उस कामिनीको 'शतरूपा' नाम प्रदान किया । देव विभु स्वायम्भुव मनुने शतरूपाको अपनी पत्नी बनाया ॥१४॥ उस पुरुषसे शतरूपाके दो पुत्र उत्पन्न हुए। उन दोनोंका नाम प्रियव्रत और उत्तानपाद हुआ। वह दोनों अपने अपने कर्मसे विख्यात हैं ॥ १५ ॥ इनके अतिरिक्त जो शतरूपाके दो कन्या उत्पन्न हुई, उन दोनोंका नाम आकूती और प्रसूती हुआ । पिता स्वायंभुवने प्रसूती नामक कन्या दक्षको और आकूती नामक कन्याको प्रजापति रुचिके ॥ १६ ॥ हाथमें समर्पण किया हे महाभाग ! उनके जो एक पुत्र और कन्याने जन्म ग्रहण किया, उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा हुआ । इन दोनोंने दाम्पत्यभाव धारण किया ॥ १७ ॥ उस दक्षिणामें यज्ञके जो बारह पुत्र उत्पन्न हुए वह स्वायंभुव मन्वन्तरमें याम' नामक देवता कहकर प्रसिद्ध हैं ॥ १८ ॥ भास्वर इत्यादि और भी कितनेही पुत्र दक्षिणाके गर्भसे यज्ञके द्वारा उत्पन्न हुए थे ! इधर दक्षप्रजापतिने प्रसूतीके गर्भमें जो चौबीस ॥१९॥ कन्याको उत्पन्न किया उनके नाम सम्यक् प्रकारसे सुनो । श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया, ॥ २० ॥ बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि, और कीर्ति, इन दक्षकी तेरह कन्याको पत्नीके अर्थ धर्मने ग्रहण किया था ॥२१॥ और अवशिष्ट जो ग्यारह सुलोचना कन्या थीं—जो ख्याति, सती, संभूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा ॥२२॥ सन्तति, अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नामसे विख्यात थीं

उनको भृगु इत्यादि सबने क्रमानुसार ग्रहण किया ॥ २३ ॥ भृगु, महादेव, मरीचि, अंगिरा मुनि, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि, वह्नि और पितृगण ॥ २४ ॥ इन मुनि ऋषि और मुनिसत्तम गणोंने ख्याति इत्यादि इन ग्यारह दक्षकी कन्याओंको यथाक्रमसे ग्रहण किया। तिनमें श्रद्धाने कामको, श्रीने दर्पको, धृतिने नियमको ॥ २५ ॥ तुष्टिने संतोषको, पुष्टिने लोभको, मेधाने श्रुतको, क्रियाने दंडको, ॥ २६ ॥ बुद्धिने बोधको, लज्जाने विनयको, वपुने व्यवसायको, शान्तिने क्षेमको, ॥ २७ ॥ सिद्धिने सुखको, और कीर्तिने यशको उत्पन्न किया। यही धर्मके सन्तान हैं। कामसे अतिहृष्ट हर्ष नामक धर्मका पौत्र उत्पन्न हुआ ॥ २८ ॥ अधर्मकी भार्याका नाम

पुलस्त्यःपुलहश्चैवक्रतुश्चऋषयस्तथा ॥ वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्निःपितरश्चयथाक्रमम् ॥ २४ ॥ ख्यात्याद्याजगृहुःकन्यामुनियोमुनिसत्तमाः ॥ श्रद्धाकामंश्रीश्चदर्पंनियमंधृतिरात्मजम् ॥ २५ ॥ सन्तोषंचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ॥ मेधाश्रुतंक्रियादण्डंनयंविनयमेवच ॥ २६ ॥ बोधंबुद्धिस्तथालज्जाविनयंवपुरात्मजम् ॥ व्यवसायंप्रजज्ञेवैक्षेमंशान्तिरसूयत ॥ २७ ॥ सुखंसिद्धिर्यशःकीर्तिरित्येतेधर्मयोनयः ॥ कामादतिमुदंहर्षंधर्मपौत्रमसूयत ॥ २८ ॥ हिंसाभार्यात्वधर्मस्यतस्यांजज्ञेतथानृतम् ॥ कन्याचनिर्ऋतिस्तस्यां सुतौद्वौनरकंभयम् ॥ २९ ॥ मायाचवेदनाचैवमिथुनंद्वयमेतयोः ॥ तयोर्जज्ञेऽथवैमायामृत्युंभूतापहारिणम् ॥ ॥ ३० ॥ वेदनात्मसुतंचापिदुःखंजज्ञेऽथरौरवात् ॥ मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्चजज्ञिरे ॥ ३१ ॥ दुःखोद्भवाःस्मृताह्येतेसर्वेवाधर्मलक्षणाः ॥ नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासर्वेतेह्यूर्ध्वरेतसः ॥ ३२ ॥ निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्योर्भार्याभवन्मुने ॥ अलक्ष्मीर्नामतस्यांचमृत्योः पुत्राश्चतुर्दश ॥ ३३ ॥

हिंसा हुआ, उसके गर्भसे अनृतकी उत्पत्ति हुई अनृतने उस निर्ऋतिके गर्भसे नरक और भयनामक दो पुत्र ॥ २९ ॥ और माया तथा वेदना नामक दो कन्याको उत्पन्न किया यह परस्पर मिथुनभावापन्न हैं। तिनमें मायाने प्राणियोंका संहार करनेवाला मृत्यु नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥३०॥ और नरकसे दुःखनामक एक पुत्रको वेदनाने उत्पन्न किया। इस मृत्युसे व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए ॥ ॥३१॥ यह सब दुःखसे उत्पन्न और महा अधर्मी हुए, इनके भार्या वा पुत्र कोई नहीं है क्योंकि यह सब ऊर्ध्वरेता हैं ॥ ३२ ॥ हे मुनिवर !

निर्ऋतिनामक मृत्युकी जो और एक भार्या थी जिसको लोकमें अलक्ष्मी कहते हैं मृत्युने उसमें चौदह पुत्र उत्पन्न किये ॥ ३३ ॥ मृत्युके आज्ञावर्त्ती पुत्रगण 'अलक्ष्मी'के नामसे विख्यात हैं, यह विनाशके समय मनुष्योंके जिस जिस अंगमें रहते हैं उनके नाम कहता हूं सुनो ॥ ३४ ॥ यह प्रथम दश दश इंद्रियोंमें वास करते हैं और ग्यारहवां सबके मनके ऊपर वास करता है, यही सब स्त्री और पुरुषोंको अपने अपने विषयमें मिला लेता है ॥ ३५ ॥ हे द्विज ! अनन्तर राग और क्रोधादिद्वारा समस्त इंद्रियोंको आक्रमण करके अधर्मादिके सहित संयोजित करता है, जिससे प्राणियोंकी हानि होती है ॥ ३६ ॥ अपर एक अर्थात् बारहवाँ मृत्युका पुत्र अहंकारको आश्रय करके वर्त्तमान है, अपर प्राणियोंकी बुद्धिके ऊपर अवस्थान करता है, इससेही पुरुषगण मोहित होकर स्त्रियोंका विनाश करनेमें यत्नवान् होते हैं ॥ ३७ ॥ अपर एक अर्थात् चौदहवां जो अलक्ष्मीका पुत्र है, उसका नाम दुःसह है यह पुरुषोंके घर घरमें

अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिणः ॥ विनाशकालेपुनरान्भजन्त्येतेशृणुष्वतान् ॥ ३४ ॥ इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथामनसिच स्थिताः ॥ स्वेस्वेनरंस्त्रियंवापिविषयेयोजयन्तिहि ॥ ३५ ॥ अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ॥ योजयन्तियथाहानिया न्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥ ३६ ॥ अहङ्कारगताश्चान्येतथान्येबुद्धिसंस्थिताः ॥ विनाशायनरस्त्रीणांयतन्तेमोहसंश्रिताः ॥ ३७ ॥ तथैवान्योगृहेपुंसांदुःसहोनामविश्रुतः ॥ क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वनः ॥ ॥ ३८ ॥ समस्तान्खादितुंसृष्टोब्रह्मणातमसो निधिः ॥ दंष्ट्राकरालमत्यर्थंविवृतास्यंसुभैरवम् ॥ ३९ ॥ तमत्तुकाममाहेदंब्रह्मालोकपितामहः ॥ सर्वब्रह्ममयःशुद्धःकारणंजगतो ऽव्ययः ॥ ४० ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ नात्तव्यंतेजगदिदंजहिकोपंशमंव्रज ॥ त्यजैनांतामसींवृत्तिमपास्यरजसःकलाम् ॥ ४१ ॥

वास करता है । यह दुःसह सदाही क्षुधातुर, अधोमुख, नग्न, चीरधारी और काकके समान शब्द करनेवाला है ॥ ३८ ॥ बोध होता है ब्रह्माजीने सब पदार्थको भक्षण करने लियेही इस तपोनिधिको उत्पन्न किया है । अन्तर दुःसहको कराल दाढ़, मुख फैलाये अत्यन्त भयंकर मूर्तिसे शब्द करते ॥ ३९ ॥ सबको भक्षण करनेमें उद्यत देखकर लोक पितामह, सर्व ब्रह्ममय, शुद्ध और जगत्के कारण अविनाशी ब्रह्माजी कहने लगे ॥ ४० ॥ ब्रह्माजी बोले—हे दुःसह ! जगत्को तुम्हारा भक्षण करना उचित नहीं है, कोप परित्याग करके शान्ति लाभ करो । इस तमोगुणकी वृत्तिको त्याग दो, और रजोगुणके अंशको भी त्याग दो ॥ ४१ ॥

॥

दुःसहने कहा—हे जगन्नाथ ! मैं भूंखसे अत्यन्त कृश और प्यासके मारे अत्यन्त दुर्लभ होगया हूं । हे नाथ ! किस प्रकार तृप्ति लाभ करूं ! और किस प्रकारसे बलवान हूं तथा किसका आश्रय करके सुखसे रहूं ! यह आप कृपा करके कहिये ॥ ४२ ॥ ब्रह्माजी बोले-हे वत्स ! पुरुषोंका घरही तुम्हारा आश्रय अधर्मी मनुष्य ही तुम्हारा बल और मनुष्योंके नित्यकृत्यकी हानि होनेसे ही तुम पुष्टिलाभ करोगे ॥ ४३ ॥ मकरीके जाले और सब स्फोट (फोड़े) ही तुम्हारे वस्त्र हैं । अब तुमको आहार प्रदान करताहूं । जिस स्थानमें कीड़े उत्पन्न हुए हैं जिसको कुत्तेने देखलियाहै, ऐसे घावका स्थानही तुम्हारा आहार है ॥ ४४ ॥ और जो पदार्थ फूटे बर्तनमें रक्खा हो,वा मुखसे फूंक मारकर ठंढा किया

॥ दुःसहउवाच ॥ ॥ क्षुत्क्षामोऽस्मिजगन्नाथपिपासुश्चापिदुर्बलः ॥ कथंतृप्तिमियांनाथभवेयंबलवान्कथम् ॥ कश्चाश्रयोममाख्याहिवर्तेयंयत्रनिर्वृतः ॥ ४२ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ तवाश्रयोगृहंपुंसांजनश्चाधार्मिकोबलम् ॥ पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्याभवान्वत्सगमिष्यति ॥ ॥४३॥ लूताःस्फोटाश्चतेवस्त्रमाहारंचददामिते ॥ क्षुतकीटावपन्नंचतथाश्वभिरवेक्षितम् ॥४४॥ भग्नभाण्डगतंतद्वन्मुखवातोपशामितम् ॥ उच्छिष्टापक्कमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ॥ ४५ ॥ भग्नासनस्थितैर्भुक्तमासन्नागतमेवच ॥ विदिङ्मुखंसन्ध्ययोश्चनृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ॥ ४६ ॥ उदक्योपहतंभुक्तमुदक्यादृष्टमेवच ॥ यच्चोपघातवत्किंचिद्भक्ष्यंपेयमथापिवा ॥ ४७ ॥ एतानितवपुष्ट्यर्थमन्यच्चापि ददामिते ॥ अश्रद्धयाहुतंदत्तमस्नातैर्यदवज्ञया ॥ ४८ ॥ यन्नाम्बुपूर्वकंक्षिप्तमनात्मीकृतमेवच ॥ त्यक्तुमाविष्कृतंयत्तुदत्तंचैवातिविस्मयात् ॥ ४९ ॥

हो, अथवा उच्छिष्ट वा कच्चा न हो, या जो अन्न संस्कारहीन हो ॥४५॥ वा फटेहुए आसनपर बैठकर, वा घर आये अतिथिको विना जिमाये या दक्षिणदिशाकी ओरको मुख करके, किंवा संध्याके समय अथवा नृत्यके समय, गानेके समय वा बजानेके समय जो कोई भोजन करता है ॥ ४६ ॥ या रजस्वला स्त्रीका देखा हुआ वा उसका छुआ अथवा किसीका उच्छिष्ट किया हुआ, किंवा कोई दूषित पाक यदि कोई भोजन करता हो ॥४७॥ यह सब पदार्थ तुम्हारे खाद्य और पुष्टिकारक होंगे ? हे दुःसह ! तुम्हारी पुष्टिके लिये और भी देताहूं । जो विना स्नान किये अश्रद्धापूर्वक होम करताहै, जो अज्ञानी मनुष्योंके द्वारा दिया जाता है ॥ ४८ ॥

जल स्पर्श न करके जो दिया हो अर्थात् जो वस्तु बिना जलके पवित्रकी हो, वा जो वस्तु स्वयं पड़ी हो, परित्याग करनेके लिये जो विस्तार की हो फलाई हो, जो अत्यन्त आश्चर्य अर्थात् डरकर दी गई ॥ ४९ ॥ जो दुष्ट, कोधित और आर्त मनुष्योंने दी हो और जो फल हो, यह सब भोग करो। हे यक्ष्म! यही तुम्हारे वशीभूत हैं! जो दूसरेबार विवाही स्त्रीके पुत्रने परलोक सम्बन्धी कार्य किया हो ॥ ५० ॥ और पुनर्भवा स्त्री जो कर्म करती है, हे यक्ष्म! वह तुम्हारी ही तृप्तिके लिये है! हे यक्ष्म! (जो कन्यादि [illegible] द्रव्य लेकर धर्म क्रिया की जाती है) ॥५१॥ इसी प्रकार जो क्रिया असत् शास्त्रद्वारा संपादित होती है, वह तुम्हारी पुष्टि [illegible] है। [illegible] जो [illegible] निमि[illegible] कार्य है जो असत्यतामें पड़ाहै ॥५२॥ हे दुःसह! [illegible] तुम्हारी पुष्टिका हेतु होगा। [illegible] मनुष्य

दुष्टंक्रुद्धार्तदत्तंचयक्ष्मन्नाप्स्यसिनत्फलम् ॥ यत्रपौनर्भवःकिञ्चित्करोत्यामुष्मिकंक्रमम ॥६०॥ यत्रपौन[illegible]नय ॥ कन्याशुल्कोपयानायसमुपास्तेधनक्रियाः ॥६१॥ तथैवयक्ष्मपुष्टयर्थमसच्छास्त्रक्रियाश्चयाः ॥ यच्चार्थनि[illegible]न्यत्र[illegible]न्यतः ॥६२॥तत्सर्वंतवकामांश्चददामिनवमिद्धये ॥ गुर्विण्यभिगमेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे॥६३॥असच्छास्त्रक्रियाल्लापद्[illegible]चदुःसह॥ तवाभिभवसामर्थ्यंभविष्यतिसदानृपु ॥ ६४ ॥ पङ्क्तिभेदवृथापाकपाकभेदेनथाकृते ॥ नित्यंचगेहकलहे[illegible]निवासमनिरन्तव ॥ ६५ ॥ अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोवाहनादिके ॥ असन्ध्याभ्युक्षितागारेकालेत्वत्तोभयंनृणाम ॥६६॥ नक्षत्र[illegible]पानदर्शने ॥ अशान्तिकपरान्यक्ष्मन्नरानभिभविष्यसि ॥ ६७ ॥

गर्भवती स्त्रीसे रमण करतेहैं, जब संध्या वा नित्यकार्यका व्यतिक्रम होताहै ॥५३॥ और जब मनुष्यगण असत् शास्त्रोक्त कार्य [illegible] दूषित होतेहैं, हे दुःसह! उसी समय तुम उनके तिरस्कारकी सामर्थ्य लाभ करोगे ॥ ५४ ॥ जहां पंक्तिभेद हो, जहां वृथा पाक बनताहो अर्थात् अपनेही लिये भोजन बनताहो, वा जहां सदा क्लेश रहताहो वहां तुम्हारा वास होगा ॥ ५५ ॥ जिन घरोंमें बिना अन्न तृण दिये गाय घोडा इत्यादि जो और पशु हैं, उनको भूखा बांध रखतेहैं और जिन घरोंमें सूर्यास्त होनेसे पहले असंध्याकालमें बुहारी नहीं लगती हे दुःसह! वहां के मनुष्योंको तुमसे भय होगा ॥ ५६ ॥ नक्षत्रपीडा, ग्रहपीडा वा त्रिविध उत्पातके दिखाई देनेपर जो मनुष्य शान्ति नहीं करते, उन मनुष्योंको तुम अभिभूत

करोगे ॥ ५७ ॥ जो वृथा उपवास करतेहैं, जूए और स्त्रीमें जो सदा आसक्त हैं वा जो तुम्हारेही उपकारकी बातचीत करतेहैं और बैडालव्रतिक अर्थात्, जो बिल्लीके समान अपना प्रयोजन सिद्ध करतेहैं ॥५८॥ जो लोग विना ब्रह्मचर्यके वेद पाठ करतेहैं, और मूर्खोंका किया यज्ञ, और तपोवनमें गृहस्थियोंके समान कर्म और चंचलचित्त अजितेन्द्रियोंका अध्ययन ॥ ५९ ॥ स्वकर्मभ्रष्ट परलोकमें सुखकी इच्छा करनेवाले ब्राह्मण क्षत्रिय,वैश्य और शूद्रोंकी तपोवनमें चेष्टा॥६०॥और इन सब कार्योंका फल,हे यक्ष्म!तुम्हारे आधीनहैंतुम्हारी पुष्टिके लिये और भी देताहूं॥६१॥ जो वैश्वदेवके (होमाङ्ग विशेषके)अन्तमें तुम्हारा नाम उच्चारण करके 'यह तुम्हारा है'इस प्रकार कह मनुष्यगण तुमको ऊर्जित बलिप्रदान करतेहैं ॥६२॥

वृथोपवासिनोमर्त्याद्यूतस्त्रीषुसदारताः ॥ त्वद्भाषणोपकर्त्तारोबैडालव्रतिकाश्चये ॥ ५८ ॥ अब्रह्मचारिणाधीतमिज्याचाविदुषा कृता ॥ तपोवनेग्राम्यभुजांतथैवानिर्जितात्मनाम् ॥ ५९ ॥ ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचस्वकर्मतः ॥ परिच्युतानांयाचेष्टापर लोकार्थमीप्सताम् ॥ ६० ॥ तस्याश्चयत्फलंसर्वंतत्तेयक्ष्मन्भविष्यति ॥ अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्ट्यर्थंसंनिबोधतत् ॥ ६१ ॥ भवतोवैश्वदेवान्तेनामोच्चारणपूर्वकम् ॥ एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्जितम् ॥ ६२ ॥ यःसंस्कृताशीविधिवच्छुचिरन्तस्था बहिः ॥ अलोलुपोजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥ ६३ ॥ पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यांदेवताःपितरस्तथा ॥ जामयोऽतिथयश्चापि तद्गेहंयक्ष्मवर्जय ॥ ६४ ॥ यत्रमैत्रीगृहेबालवृद्धयोषिन्नरेषुच ॥ तथास्वजनवर्गेषुगृहंतच्चापिवर्जय ॥ ६५ ॥ योषितोऽभिमतायत्र नबहिर्गमनोत्सुकाः ॥ लज्जान्विताःसदागेहंयक्ष्मतत्परिवर्जय ॥ ६६ ॥

जो मनुष्य विधिपूर्वक समस्त संस्कृत पदार्थ भोजन करते हैं अन्तर और बाहरमें सदा पवित्र निर्लोभ और स्त्रियें जिसको वशीभूतकरनेमें समर्थ नहीं होतीं, तुम उनका गृह परित्याग करो ॥६३॥ जिस घरमें हव्य कव्य द्वारा देवता और पितृगण सर्वदा पूजित होते हैं, और जहां अतिथिगण सदा पूजित होते हैं हे यक्ष्म ! तुम उस घरको परित्याग करो ॥६४॥जिस घरमें बालक, वृद्ध, युवक, युवती और स्वजनवर्ग सदा मित्रता संपन्न हैं, उस घरको भी तुम परित्याग करो ॥ ६५ ॥ जिस घरकी स्त्री अनुरक्त हैं बाहर जानेकी इच्छा नहीं करती और सर्वदा लज्जायुक्त हैं, वह घर तुम्हारे त्यागने योग्य है ॥ ६६ ॥

हे यक्ष्म ! जिस घरमें अपनी अवस्था और अपने वैभवानुसार शयन वा भोजन करते हो, तुमको उस घरका भी मेरे वचनसे परित्याग करना उचित है ॥६७॥ जिस घरके मनुष्य अत्यन्त करुणाके वशीभूत हैं सर्वदा सत्कार्यमें अवस्थित और सामान्य (सामग्री) द्वारा संयुक्त हैं हे यक्ष्म ! तुम उसको त्याग देना ॥६८॥ जहां गुरु वृद्ध और ब्राह्मणोंके आसनमें बैठनेपर भी जो आसन ग्रहण नहीं करते । हे यक्ष्म ! उस घरको तुम सर्वदा परित्याग करना ॥६९॥ जिस घरका द्वार वृक्ष गुल्मादिसे रुद्ध न हो जो किसीकी मर्मभेदी बात न कहता हो उस सुन्दर मंदिरमें जानेसे तुम्हारा कभी कल्याण नहीं होगा ॥७०॥ जो पुरुष देवता, पितृ, मनुष्य और अतिथिको भोजन कराकर उनके बचेहुए उच्छिष्ट मात्रसे अपनी जीवन यात्रा

वयःसम्बंधयोग्यानिशयनान्यशनानिच ॥ यत्रगेहेत्वयायक्ष्मतद्वर्ज्यंवचनान्मम ॥ ६७॥ यत्रकारुणिकानित्यंसाधुकर्मण्यवस्थिताः ॥ सामान्योपस्करैर्युक्तास्त्यजेथायक्ष्मतद्गृहम् ॥ ६८ ॥ यत्रासनस्थास्तिष्ठन्तुगुरुवृद्धद्विजातिषु ॥ नतिष्ठन्तिगृहंतत्तुवर्ज्यंयक्ष्मत्व यासदा ॥ ६९ ॥ तरुगुल्मादिभिर्द्वारंनविद्धंयस्यवेश्मनः ॥ मर्मभेदोनवापुंसस्तस्क्रियोभवनंनते ॥ ७० ॥ देवतापितृभृत्यानामति थीनांचवर्तनम् ॥ यस्यावशिष्टनान्नेनपुंसस्तस्यगृहंत्यज ॥ ७१ ॥ सत्यवाक्यान्क्षमाशीलानहिंस्रान्नानुतापिनः ॥ पुरुषानीदृशान्य क्ष्मत्यजेथाश्चानसूयकान् ॥ ७२ ॥ भर्तृशुश्रूषणेयुक्तामसत्संगविवर्जिताम् ॥ कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टांचत्यजयोषितम् ॥ ७३ ॥ यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिंसदा ॥ याजनाध्यापनादानकृतवृत्तिद्विजंत्यज ॥ ७४ ॥ दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तंचदुःसह ॥ क्षत्रियंत्यजसच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ॥ ७५ ॥

निर्वाह करता है, उसका घर तुम छोड़ देना ॥७१॥ जो सत्यवादी, क्षमाशील, अहिंसक, अनुतापरहित, और जो असूयाके वशीभूत नहीहैं, हे यक्ष्म! उन बचे पुरुषोंको तुम सदा परित्याग करना ॥७२॥ जो स्त्री सदा स्वामीकी सेवामें तत्पर है, असतीका संगपरित्याग करतीहै और कुटुम्ब तथा स्वामीके भोजनसे बचे हुए अन्नद्वारा अपना पोषण करतीहै, ऐसी स्त्रीको तुम परित्याग करो ॥७३॥ जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दान विषयमें सदा आसक्त चित्त है, एवं याजन, अध्यापन और दान प्रतिग्रह द्वारा जीविका निर्वाह करतेहैं, उन ब्राह्मणोंको तुम परित्याग करो ॥७४॥ हे दुःसह ! जो क्षत्रिय सर्वदा दान अध्ययन और यज्ञ करनेमें प्रवृत्त रहते हैं और स्वीय पवित्र शस्त्रजीविका द्वारा वेतन ग्रहण करते हैं, उनको तुम परित्याग करो ॥७५॥

जो वैश्य त्रिविध पूर्व गुणयुक्त और पशु पालन, व्यापार और खेती द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं उन निष्पाप वैश्य गणको तुम परित्याग करना ॥७६॥ जो शूद्र दान, यज्ञ और ब्राह्मणोंकी सेवामें तत्पर हैं और ब्राह्मणादिकी सेवा द्वारा अपनी वृत्तिके परिपोषक हैं, हे दुःसह ! ऐसे शूद्रोंको सम्यक् प्रकारसे त्याग देना॥७७॥जो मनुष्य घरमें वास करके श्रुति और स्मृतिके अविरोधमें वृत्ति निर्वाह करते हैं, और उनकी पत्नीभी उनकेही अनुगत होती हैं ॥७८॥जिस घरमें पुत्रगण देवता, गुरु और पितरोंकी पूजा करते हैं, स्त्रियें स्वामीकी सेवा करती हैं, हे यक्ष्म ! उस स्थानमें किस प्रकारसे अलक्ष्मीका भय होगा ॥७९॥ जो घर तीनों संध्यामें लीपाजाय, अथवा जल छिड़ककर पवित्र किया जाय और सुगंधित पुष्पोंके द्वारा देव-

त्रिभिःपूर्वगुणैर्युक्तंपाशुपाल्यवणिज्ययोः ॥ कृषेश्चावाप्तवृत्तिंचत्यजवैश्यमकल्मषम् ॥ ७६ ॥ दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परंयक्ष्मसंत्यज ॥ शूद्रंचब्राह्मणादीनांशुश्रूषावृत्तिपोषकम् ॥ ७७ ॥ श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गृहेगृही ॥ यत्रतत्रचतत्पत्नीतस्यैवानुगतात्मिका ॥७८॥ यत्रपुत्रोगुरोःपूजांदेवानांचतथापितुः ॥ पत्नीचभर्तुःकुरुतेतत्रालक्ष्मीभयंकुतः ॥ ७९ ॥ सदानुलिप्तंसन्ध्यासुगृहमम्बुसमुक्षितम् ॥ कृतपुष्पबलिंयक्ष्मनत्वंशक्तोपिवीक्षितुम् ॥ ८० ॥ भास्करादृष्टशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ॥ सूर्यावलोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिभाजनम् ॥ ८१ ॥ यत्रोक्षाचन्दनंवीणाआदर्शोमधुसर्पिषी ॥ विषाज्यताम्रपात्राणितद्गृहंनतवाश्रयः ॥ ८२ ॥ यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पाववल्लरी ॥ भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्मतवमन्दिरम् ॥ ८३ ॥ यस्मिन्गृहेनगाःपंचस्त्रीत्रयंतावतीश्चगाः ॥ अन्धकारेन्धनाग्निश्चतद्गृहंवसतिस्तव ॥ ८४ ॥

ताओंको बलि दिया जाय, उस घरके देखनेमेंभी तुम समर्थ नहीं होगे ॥८०॥ सूर्य जिस घरकी शय्याको नहीं देखते हों और जिस घरमें अग्नि और जल विद्यमान रहता है, और जो सूर्यके प्रकाशसे प्रकाशित होता है वह घर लक्ष्मीका स्थान है ॥८१॥ जिस घरमें चंदन, वीणा, दर्पण, मधु, घृत, विष और तांबेके वर्तन विद्यमान हों उस घरको तुम अपना आश्रय नहीं कर सकोगे॥८२॥जिस घरमें कंटकयुक्त वृक्ष, निष्पावलता(लोवियेकीवेल) पुनर्भू भार्या और वल्मीक बमई वर्तमान हो, हे यक्ष्म ! वह तुम्हाराही घर है ॥८३॥ जिस घरमें पांच पुरुष तीन स्त्री, तीन गाय अन्धकार काष्ठ और अग्नि अवस्थित है, उसी घरमें तुम्हारा वास होगा ॥ ८४ ॥

हे यक्ष्म ! जिस घरमें एक छाग (बकरी) दो भेड़ी, तीन गाय, पाँच भैंसे, छः घोड़े और सात हाथी रहते हों उस घरको शीघ्र ही शोषित अर्थात विनाश करो ॥ ८५ ॥ जिस घरमें कुदाल दात्र (दराती) पीढ़ा और थाली इत्यादि समस्त पात्र [illegible] बिखरे पड़े रहते हैं, वहांके मनुष्य तुमको अपने घरमें आश्रय देनेकी इच्छा करते हैं ॥८६॥ हे यक्ष्म ! जिस घरमें [illegible] बैठकर वा गूलरके वृक्षको आँगनमें लगाकर उसके नीचे बैठी रहती है और घरके पिछवारे रहनेवाली [illegible] कुमारोंकी उप कारके लियेहैं॥८७॥जिस घरमें पका वा बिना पका हुआ धान्य और सब नाशका अना[illegible] विचरण

एकच्छागंद्विवालेयंत्रिगवंपञ्चमाहिषम् ॥ पडश्वंसप्तमातङ्गंगृहंयक्ष्माशुशोषय ॥ ८५ ॥ [illegible]मानम् ॥ यत्रनत्रैवक्षितानितवदद्युःप्रतिश्रयम् ॥ ८६ ॥ मुशलोलूखलैर्स्त्रीणामाम्यातद्दुद्दुम्बर[illegible] ॥ ८७ ॥ लंघ्यन्तेयत्रधान्यानिपक्वापक्वानिवेश्मनि ॥ तद्गच्छास्त्राणितत्रन्वंयथेष्टंचरदुःसह ॥ ८८ ॥ [illegible] नवा ॥ गृहेतत्रहिरिप्रानामशेषाणांसमाश्रयः ॥ ८९ ॥ मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्र[illegible]न्येषांचरक्षसाम् ॥ ९० ॥ अदत्त्वाभुञ्जतेयेत्रैवन्धोःपिण्डंतथोदकम् ॥ सपिण्डान्सोदकांश्चैवतत्कालेतान्नराञ्भज ॥ ९१ ॥ [illegible]पद्मामहापद्मौ सुरभिर्मोदकाशिनी ॥ वृषभैरावतौयत्रकल्प्यंतेतद्गृहंत्यज ॥ ॥ ९२ ॥ अशस्त्रादेवतायत्र[illegible]विना ॥ कल्प्यन्तेमनुजैरर्च्या स्तत्परित्यजमन्दिरम् ॥ ९३ ॥ पौरजानपदैर्यत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः ॥ क्रियंते पूर्ववद्गेहनत्वंतत्रगृहेचर ॥ ९४ ॥

करो॥८८॥और जिस घरमें थाली ढकना अथवा करछलीसे घरवाली स्त्री किसीको आग देतीहो, वह घर सब अग्निका स्थान है॥८९॥मनुष्य की हड्डी और मृतपदार्थ जिस घरमें दिनरात रहे, वहां और अन्यान्य समस्त राक्षसोंका वास होगा॥९०॥जब मनुष्य बंधु, सपिंड, वा समानोदक पुरुषोंको पिंड, वा जल दान नहीं करते उसी समयमें तुम उनकी भजना करो॥९१॥जिस घरमें पद्म और महापद्म (निधि विशेष) वर्तमान हैं, स्त्रियें सदा मोदक(लड्डू)भोजन करतीहैं एवं बैल और ऐरावत वर्तमान रहता है, उस घरको तुम परित्याग करो॥९२॥जहां अशस्त्र देवता युद्धके विनाही मनुष्योंके द्वारा सशस्त्र अवस्थामें अल्पित होकर पूजे जातेहैं. उस मन्दिरको तुम परित्याग करो॥९३॥पूर्ववत् जिन सब घरोंमें तथा पुरवासी पुरोंमें

और समस्त जनपद पूर्वप्रसिद्ध महोत्सवसे संयुक्त होते हैं. उस घरमें तुम मत जाना ॥९४॥ जो छाजकी वायु कलशके जल वस्त्रके निचोड़े हुए जल और पादाग्रजल चरणके अग्रभागको लगे जलसे स्नान करतेहैं, उन हतलक्षण मनुष्योंके निकट तुम गमन करो॥९५॥ जो मनुष्य देशाचार, समय, ज्ञाति, धर्म, जप, होम, मंगलकार्य, देवपूजा, सम्यक् शौच और यथाविधि समस्त लोकवादका आचरण करतेहैं उन मनुष्योंके सहित तुम्हारा संग न हो॥९६॥मार्कण्डेयजी बोले हे द्विजवर!ब्रह्माजी दुःसहको इस प्रकार आज्ञा देकर उसी स्थानमें अन्तर्धान होगये और वह दुःसहभी पद्मजन्मा ब्रह्माजीका अनुशासन उसी प्रकार पालन करने लगा॥९७॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां यक्ष्मानुशासनंनाम सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

शूर्पवातघटाम्भोभिःस्नानंवस्त्राम्बुविप्रुषैः ॥ नखाग्रसलिलैश्चैवतान्याहिहतलक्षणान् ॥ ९५ ॥ देशाचारान्समयाञ्ज्ञातिधर्मंजपंहोमं मङ्गलंदेवतेष्टिम् ॥ सम्यक्छौचंविधिवल्लोकवादान्पुंसस्त्वयाकुर्वतोमाऽस्तुसङ्गः ॥ ९६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वादुःसहंब्रह्मा तत्रैवान्तरधीयत ॥ चकारशासनंसोऽपितथापंकजजन्मनः ॥ ९७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेयक्ष्मानुशासनंनामसप्तचत्वारिंशो ऽध्यायः ॥ ४७ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ दुःसहस्याभवद्भार्यानिर्माष्टिर्नामनामतः ॥ जाताकलेस्तुभार्यायामृतौचाण्डालदर्श नात् ॥ १ ॥ तयोरपत्यान्यभवञ्जगद्व्यापीनिषोडश ॥ अष्टौकुमाराःकन्याश्चतथाष्टावतिभीषणाः ॥ २ ॥ दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चप रिवर्तस्तथापरः ॥ अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥ ३ ॥ गर्भहासस्यहाचान्यःकुमारास्तनयास्तयोः ॥ कन्याश्चान्यास्त थैवाष्टौतासांनामानिमेशृणु ॥ ४ ॥ नियोजिकाचप्रथमातथैवान्याविरोधिनी ॥ स्वयंहारकरीचैवभ्रामणीऋतुहारिका ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले कि दुःसहकी भार्या निर्माष्टि हुई यह निर्माष्टि यमकी कन्या थी। यमपत्नी ऋतुमती होकर चाण्डालके देखनेपर उस गर्भसे निर्माष्टिने जन्म ग्रहण किया ॥१॥ इसके उपरान्त दुःसहके द्वारा निर्माष्टिके गर्भसे जगत्व्यापी अत्यन्त भीषणाकार सोलह सन्तान हुई तिनमें आठ पुत्र और आठ कन्या ॥ २ ॥ दन्ताकृष्टि, तथोक्ति, परिवर्त्त, अङ्गध्रुक्, शकुनि, गंड, प्रान्तरति, ॥ ३ ॥ गर्भहा, और शस्यहा यह आठ पुत्र हुए अब आठ कन्याओंके नाम कहते हैं सुनो ॥ ४ ॥ नियोजिका, विरोधिनी, स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका ॥ ५ ॥

स्मृतिहरा, बीजहरा, यह दोनों महाभयंकर हुई और आठवीं विद्वेषिणी जो सब लोकोंको महाभय दिखानेवाली थी ॥ ६ ॥ हे द्विजसत्तम ! अब इन आठों कुमारोंके कर्म और उनके दोष शमन करनेका उपाय कहता हूं, सुनो ॥ ७ ॥ दन्ताकृष्टि जो प्रसूत बालकके दांतोंमें रहकर दांतोंको अत्यन्त किड़किड़ाता है इसी के आश्रयसे वहां पर दुःसह भी आता है॥८॥इसके शमन करनेका उपाय यह है कि सोते हुए बालकके दांतों पर और शय्या पर सफेद सरसों डालदे ॥ ९ ॥ वा औषधियोंके जलसे स्नान करावे, मन्त्र शास्त्रका कीर्त्तन करावे या ऊंट वा गेंडेकी अस्थिका यंत्र बनाकर बालकके गलेमें डाले अथवा रेशमी वस्त्र धारण करनेसे बालककी शान्ति होती है ॥ १० ॥ दूसरा कुमार तथोक्ति

स्मृतिबीजहरंचान्येतयोःकन्येसुदारुणे ॥ विद्वेषण्यष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ॥ ६ ॥ एतासांकर्मवक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत ॥ अष्टानांचकुमाराणांश्रूयतांद्विजसत्तम ॥ ७ ॥ दन्ताकृष्टिःप्रसूतानांबालानांदशनस्थितः ॥ करोतिदन्तसंघर्षंचिर्कीर्षुर्दुःसहागमम्॥८॥ तस्योपशमनंकार्य्यंसुप्तस्यसितसर्षपैः ॥ शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ॥ ९ ॥ औषधीदोषस्नानात्तथामन्त्रशास्त्रकीर्त्तनात् ॥ उष्ट्रकण्टकगण्डास्थिक्षौमवस्त्रविधारणात् ॥ १० ॥ तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्वियमकृवदब्रुवन् ॥ शुभाशुभेननृणांयुक्तस्तथोक्तिस्तत्र नान्यथा ॥ ११ ॥ तस्माददुष्टंमङ्गल्यंवक्तव्यंपण्डितैःसदा ॥ दुष्टेश्रुते तथैवोक्ते कीर्त्तनीयोजनार्दनः ॥ १२ ॥ चराचरगुरुर्ब्रह्मा यामस्यकुलदेवता ॥ अन्यगर्भेपरान्गच्छन्सदैवपरिवर्तयन् ॥ १३ ॥ रतिमाप्नोतिवाक्यंचविवक्षोरन्यदेवयत् ॥ परिवर्त्तकसंज्ञोऽयंत स्यापिसितसर्षपैः ॥ १४ ॥ रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्चरक्षांकुर्वीततत्त्ववित् ॥ अन्यश्चानिलवन्नृणामङ्गपुस्फुरणादितम ॥ १५ ॥

"यही हो" इसप्रकार कहकर सब मनुष्योंके शुभाशुभ विषयमें नियुक्त होता है यह सत्य है ॥ ११ इसकी शान्तिके लिये पण्डितगण श्रेष्ठता और मंगल दोनोंको सदा प्रकाश करें और मन्दविषय सुनने वा कहनेपर जनार्दन भगवानके नामका कीर्तन करें ॥ १२ ॥ या चराचर जगत्के गुरु ब्रह्माजीके नामका कीर्त्तन करें अथवा जो जिसका कुलदेवता है, वह उसीका नाम कीर्त्तन करे परिवर्त्तक नामक तीसरा कुमार सदा अन्यगर्भमें अपर गर्भ स्थापन ॥ १३ ॥ और एकप्रकारका कहनेके वचनोंको अन्यरीतीसे कहलाकर प्रसन्न होता है उसके दूर होनेको सफेद सरसों बखेरे ॥१४॥अथवा तत्त्ववित् रक्षोघ्न मंत्रका जप करके रक्षा करे । अंगधुक् नामक चौथा कुमार वायुके समान मनुष्यके अंगमें स्पन्दन(फड़काना)॥१५॥

और लोभ हर्षणके कारण शुभाशुभ विषय प्रकाश करता है, उसकी शान्ति करनी हो तो शरीरमें कुशाघात करे । शकुनी नामक पाँचवाँ कुमार काक इत्यादि पक्षीमें और कुत्ते अथवा गीदड़के शरीरमें रहकर ॥ १६ ॥ मनुष्यके शुभाशुभ प्रकाश करता है इस समय अशुभ–सूचक चिह्न प्रकाशित होनेपर समस्त कार्यका उद्योग परित्याग करना चाहिये ॥ १७ ॥ हे द्विजोत्तम ! शुभसूचक चिह्न प्रकाशित होनेपर अति शीघ्र कर्तव्य कार्यका आरंभ करे । यह प्रजापतिने कहा है । गण्डान्तरति नामक छठाँ कुमार आधे मुहूर्त गण्डान्तमें रहकर ॥ १८ ॥ समस्त कार्यारम्भ माङ्गल्य कर्म, और अनुसूयता (अनिन्द्यता) नष्ट करता है द्विजोत्तम ! उसकी शान्तिके लिये ब्राह्मणका आशिर्वाद, देवताकी

शुभाशुभंसमाचष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम्॥काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यःश्वादेरंगगतोऽपिवा॥१६॥शुभाशुभंचशकुनिःकुमारोऽन्योब्रवीतिवै॥
तत्रापिदुष्टेऽन्याक्षेपःप्रारम्भत्यागएवच ॥१७॥ शुभेद्रुततरंकार्यमितिप्राहप्रजापतिः ॥ गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्तार्द्धंद्विजोत्तम ॥१८॥
सर्वारंभान्कुमारोऽत्तिशमंतस्यनिशामय ॥ विप्रोक्त्यादेवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचद्विज ॥ १९ ॥ गोमूत्रसर्षपस्नानैस्तद्दक्षग्रहपूजनैः ॥
पुनश्चधर्मोपनिषत्करणैःशास्त्रदर्शनैः ॥ २० ॥ अवज्ञयाजन्मनश्चप्रशमंयातिगण्डवान् ॥ गर्भेस्त्रीणांतथाऽन्यस्तुकललाशीसुदारुणः ॥
॥२१॥ तस्यरक्षासदाकार्यानित्यंशौचनिषेवणात् ॥ प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ॥२२॥ विशुद्धगेहावसनादनायासा
च्चवैद्विज ॥ तथैवसस्यहाचान्यःसस्यर्द्धिमुपहन्तियः ॥२३॥ तस्यापिरक्षांकुर्वीतजीर्णोपानद्विधारणात् ॥ तथापसव्यगमनाच्चण्डाल
स्यप्रवेशनात् ॥ २४ ॥

स्तुति मूल नक्षत्रकी शान्ति ॥ १९ ॥ गोमूत्र और सफेद सरसोंसे स्नान उस नक्षत्र और ग्रहकी पूजा धर्मोपनिषद श्रवण शास्त्रदर्शन ॥ २० ॥ और जन्मावज्ञा जन्मका तिरस्कार करनेसे गण्डदोषकी शान्ति होती है । गर्भहा नामक जो भयंकर सातवाँ कुमार है वह स्त्रियोंके गर्भमें कलल नाश करता है ॥ २१ ॥ उसकी शान्तिका उपाय यह है कि सदा शुद्ध भावसे रहना प्रसिद्ध मंत्र (कवचादि) लिखना माल्यादि धारण॥ २२ ॥ विशुद्ध घरमें वास और आयस (परिश्रम) परित्याग करना चाहिये । हे ब्राह्मण इसीप्रकार, शस्यहा नामक आठवाँ कुमार संपूर्ण शस्य (धान्य) नष्ट करता है॥२३॥पुराना जूता शस्य (खेत) में रखने अपसव्य गमन अर्थात् बाईं ओरसे खेतमें जाय चाण्डालका प्रवेश करावे ॥ २४ ॥

बाहिरे बलिप्रदान एवं सोमाम्बु (मंत्रविशेष) का पाठ करानेसे उसकी शान्ति होती है । पहिली कन्या नियोजिका सब मनुष्योंको परस्त्रीगमन और परद्रव्यहरणादि कार्यमें नियोजित करती है । इसकी शांतिके लिये पुण्य ग्रंथ पाठ और गोधलोमादिका परित्याग करे ॥ २५ ॥ २६ ॥ और अन्य किसी मनुष्यके दुर्वचन कहने वा ताड़ना करनेपर भी क्रोधके वशीभूत न हो क्योंकि विचक्षण पण्डितगण उसकी शान्तिका कारण "जो परदारागमनआदि दुष्कर्ममें सदाही नियोजिका प्रेरणा करती है" यह चिन्ताकरके इस असद्वृत्तिसे मनको निवृत्त करे दूसरी कन्या विरोधिनी है । यह अत्यन्त प्रिय दम्पतिमें ॥ २७ ॥ २८ ॥ २९ ॥ एवं सुहृद् बंधु, पिता, माता, पुत्र और अपने मनुष्योंमें विवाद उपस्थित

बहिर्बलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात्॥परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ॥२६॥ नियोजयतिचैवान्यान्कन्यासाचनियोजिका॥२७॥ नियोजयत्येनमितिनगच्छेत्तद्वशंबुधः ॥ परदारादिसंसर्गेचित्तमात्मानमेवच ॥ २८ ॥ नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ॥ विरोधंकुरुतेचान्यादम्पत्योःप्रीयमाणयोः॥२९॥बन्धूनांसुहृदांपित्रोःपुत्रैःसावर्णिकैश्चया॥विरोधिनीसातद्रक्षांकुर्वीतबलिकर्मणा॥३०॥ तथातिवादसहनाच्छास्त्राचारनिषेवणात् ॥ धान्यंखलाद्गृहाद्वाथात्पयःसर्पिस्तथापरा ॥ ३१ ॥ समृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ॥ सास्वयंहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ॥ ३२ ॥ महानसादर्द्धसिद्धमन्नागारस्थितंतथा ॥ परिविष्यमाणंचसदामार्द्धभुङ्क्तेचभुञ्जता ॥ ३३ ॥ उच्छेषणंमनुष्याणांहरत्यन्नंचदुर्हरा ॥ कर्मान्तागारशालाभ्यःसिद्धचृद्धिंहरतिद्विज ॥ ३४ ॥ गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपयःक्षीरहारीसदैवसा ॥ दध्नोघृतंतिलात्तैलंसुरागारात्तथासुराम् ॥ ३५ ॥

कराती है उसकी शान्तिके लिये बलि कर्म करना चाहिये॥३०॥इसी प्रकार सब झगड़ोंको छोड़कर शास्त्रानुसार पवित्र पवित्र क्रियाओंको करना चाहिये।और जो दुःसहकी तीसरी स्वरिहान नामक कन्या है, वह घरके अन्न और गऊ दूध और दूधसे घृत॥३१॥और द्रव्यादिककी हानि करके ऋद्धि और सिद्धिको हरण करतीहै उसका नाम स्वयंहारिणी है और वह सदा गुप्त रहतीहै॥३२॥और रसोई व घरकी वस्तुओंमें प्रवेश करके अन्नको इकट्ठा नहीं होने देती और भोजन करनेवालेके संग आप भोजन करतीहै॥३३॥हेद्विजोत्तम!जिस घरमें अन्नके ढेरसे कोई चोरी करताहै तो उस अन्नको वही चुरातीहै, जो घरमें कोई उत्तम कर्म नहीं होता उस घरकी ऋद्धि और सिद्धिको वही हरतीहै॥३४॥गाय स्त्रियोंके स्तनोंमेंसे

दूध और दहीमेंसे घृत, तिलोंमेंसे तेल और सुराकी भट्टीमेंसे सुरापान करलेतीहै ॥३५॥ कुसुम्भादि पुष्पका राग (रंग) । कपाससे सूत्र (डोरा) स्वयं हरण करतीहै इसी कारण इसका नाम स्वयंहारिका है ॥ ३६ ॥ इसकी शान्तिके लिये अपने घरमें एक स्त्री और दो मोरोंके चित्र लिखने चाहिये और वह चित्र सदा चमकते रहें, घिसने नहीं ॥३७॥ हवन करे देवताओंके लिये अग्निमें धूप दे फिर उसी अग्निकी भस्म लेकर दुग्धादिके बर्तनमें लगादे और स्त्री अपने कुचाओंमें मलदे क्यों कि इस भस्मसे समस्त दोष मिटजातेहैं ॥३८॥ और जो भ्रामणी नामक चौथी कन्या है, वह एक स्थानपर वास करनेवाले मनुष्योंके हृदयमें प्रवेश करके उद्वेग उत्पन्न करातीहै॥३९॥इसकी शान्ति करनी हो तो आस-

रागंकुसुम्भकादीनांकार्पासात्सूत्रमेवच ॥ सास्वयंहारिकानामहरत्यविरतंद्विज ॥ ३६ ॥ कुर्याच्छिखण्डिनोर्द्वन्द्वंरक्षार्थंकृत्रिमांस्त्रियम् ॥ रक्षाश्चैवगृहेलेख्यावर्ज्याचोच्छिष्टतातथा ॥ ३७ ॥ होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिष्क्रिया ॥ कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवंतद्रक्षणंस्मृतम् ॥३८॥ उद्वेगंजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिनः ॥ पुरुषस्यतुयाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ॥ ३९ ॥ तस्याथरक्षांकुर्वीतविक्षिप्तैःसितसर्षपैः॥आसनेशयनेचोर्व्यांयत्रास्तेसतुमानवः ॥४०॥ चिन्तयेच्चनरःपापामामेषादुष्टचेतना ॥ भ्रामयत्यसकृज्जप्यंभुवःसूक्तंसमाधिना ॥४१॥ स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तंसातुकन्यका ॥ तथाप्रवृत्तंसाज्ञेयादुःसहाऋतुहारिका ॥ ४२ ॥ कुर्वीततीर्थंदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ॥ नदीसंगमखातेषुस्नपनंतत्प्रशान्तये ॥ ४३ ॥ मन्त्रविद्भूततत्त्वज्ञःपर्वसूषसिचद्विज ॥ तेषांतुपूजनंकार्यंधूपवत्युपहारकैः ॥ चिकित्साज्ञश्चवैवैद्यःसंप्रयुक्तैर्वरौषधैः ॥ ४४ ॥ स्मृतिंचापहरत्यन्याप्रवृत्तांसातुकन्यका ॥ अथाप्रवृत्तासाज्ञेयानृणांसास्मृतिहारिका ॥ ४५ ॥

नमें शय्यामें और भूमिमें सफेद सरसों बखेरे किसी पापकार्यमें चित्तके दौडनेपर "दुष्टात्मा भ्रामणी मुझको प्रेरण करतीहै" यह विचार समाधियुक्त हो भूमिसूक्त (मंत्रविशेषका जप करे) ॥४१॥ पाँचवी कन्या ऋतुमती स्त्रियोंकी रज हरण करतीहै ॥४२॥ इसकी शान्तिके लिये तत्त्वज्ञ पण्डितगण पर्वतकी कन्दराओंमें और तीर्थोंमें मन्दिर बनवावें और नदीके संगम स्थानमें प्रातः समय स्नान करें॥४३॥मंत्रके ज्ञाता यह सब प्रभातमें करे और धूपादि उपहारसे उनका पूजन करावे और श्रेष्ठ वैद्यसे उत्तम औषधिका प्रयोग करावे ॥ ४४ ॥ छठी कन्या स्मृति हारिका वरा-

ङ्गनाओंकी तथा मनुष्योंकी स्मृतिको हरण करतीहै ॥ ४५ ॥ इसकी शान्तिके लिये उत्तम, पवित्र रमणीय स्थानकी सेवा करे [illegible]
सातवीं कन्या बीजापहारिणी है। यह स्त्री और पुरुष दोनोंकी रतिका विनाश करती है इसकी शांतिके लिये पवित्र [illegible]
स्नान करे ॥ ४६ ॥ यह दुराचारिणी दारुण कठिन भय उत्पन्न करती है उसकी शांतिके अर्थ ब्राह्मण [illegible]
कन्या सर्वलोकभयंकरी द्वेषिणी नामक है। यह कन्या नर नारियोंसे [illegible] करती है ॥ [illegible]
दुग्ध और घृत संयुक्त तिलकी आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे ॥ [illegible] ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! [illegible]

विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चोपशमोभवेत् ॥ बीजापहारिणीचान्यास्त्रीपुंसोरतिभीषणा ॥ [illegible]
भवेत् ॥ ४६ ॥ दारुणाम्दुराचारादारुंकुरुतेभयम् ॥ तत्प्रशांत्यैप्रकुर्वीतद्विजानाम्[illegible] ॥ [illegible]
न्यालोकभयावहा ॥ याकरोतिजनद्विष्टंनरंनारीमथापिवा ॥ ४८ ॥ मधुक्षीरघृताक्तांस्तु[illegible] ॥ [illegible]
चतथेष्टितत्प्रशान्तये ॥ ४९ ॥ एतेषांतुकुमाराणांकन्यानांद्विजसत्तम ॥ अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेशृणु ॥ ५० ॥ दन्ताकृष्टे
रभूत्कन्याविजल्पाकलहातथा ॥ अवज्ञानृतदुष्टोक्तिर्विजल्पातत्प्रशान्तये ॥ ५१ ॥ तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञःप्रयतश्चगृहीभवेत् ॥ कल
हाकलहंगेहेकरोत्यविरतंनृणाम् ॥ ५२ ॥ कुटुम्बनाशहेतुःसातत्प्रशान्तिंनिशामय ॥ दूर्वांकुरान्मधुघृतक्षीराक्तान्बलिकर्मणि ॥५३॥
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलंमित्रंचकीर्तयेत् ॥ भूतानांमातृभिःसार्द्धंबालकानांतुशान्तये ॥ ५४ ॥

त्रिंशत् (३८) संतान हुई, उनके नाम कहताहूं, सुनो ॥ ५० ॥ दन्ताकृष्टिके विजल्पा और कलहा नामक दो कन्या हुई, विजल्पा अवज्ञा (नरादर) मिथ्या और दुष्ट वचन कहलानेवाली है, उसकी शांतिके लिये ॥ ५१ ॥ बुद्धिमान् गृही संयत होकर उसीकी चिन्ता करे। कलहा मनुष्योंके घरमें सदा कलह कराती है ॥५२॥ और उनके कुटुम्ब नाशका हेतुस्वरूप है इसकी शान्तिके लिये दूबके अंकुर, मधु,दुग्ध और बलिपूर्वक॥५३॥अग्निमें हवन करना चाहिये और सब घरमें जल छिड़के, मित्रविन्दका कीर्तन करे और भली भाँति यश विनयके सहित भूतोंकी पूजा वर्णन करे, जिससे बालककी शान्ति होजाय ॥ ५४ ॥

इसके पीछे फिर यह कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि (खेती) और व्यापार लाभमें तुम हमारी सदा रक्षा करो ॥ ५५ ॥ और यथाविधि पूजितहोकर समस्त कूष्माण्ड तथा यातुधान इत्यादि और भी जो अनेक गण हैं, वह मेरी इस पूजाको स्वीकार करके संतुष्ट हों ॥ ५६ ॥ महादेवके अनुग्रह और महेश्वरके अभिमतानुसार समस्त मनुष्योंके प्रति शीघ्र संतुष्ट होकर नित्य रक्षा करो ॥ ५७ ॥ और संतुष्ट होकर मेरे समस्त पाप दुष्ट कर्म, और महापातकसे उत्पन्न जो कष्ट अथवा और भी जो जो विघ्नके कारण हैं, उन सबका विनाश करो ॥ ५८ ॥ और विवाह आदि शुभकार्योंकी वृद्धिमें यदि कुछ विघ्न होजाय तो आपके प्रसादसे वह भी सब नाशको प्राप्त हो ॥ ५९ ॥

विद्यानांतपसांचैवसंयमस्ययमस्यच ॥ कृष्यांवाणिज्यलाभेचशांतिंकुर्वन्तुमेसदा ॥ ५५ ॥ पूजिताश्चयथान्यायंतुष्टिंगच्छन्तु सर्वशः ॥ कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसंज्ञिताः ॥ ५६ ॥ महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ॥ सर्वएतेनृणांनित्यंतुष्टिमाशुव्रजन्तुते ॥ ५७ ॥ तुष्टाःसर्वनिरस्यन्तुदुष्कृतंदुरनुष्ठितम् ॥ महापातकजंसर्वंयच्चान्यद्विघ्नकारणम् ॥ ५८ ॥ तेषामेवप्रसादेनविघ्नानश्यन्तुसर्वशः ॥ उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचैवहि ॥ ५९ ॥ पुण्यानुष्ठानयोगेषुगुरुदेवार्चनेषुच ॥ जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ॥ ६० ॥ शरीरारोग्यभोग्येषुसुखदानधनेषुच ॥ वृद्धबालातुरेष्वेवशांतिंकुर्वंतुमेसदा ॥ ६१ ॥ सोमाम्बुपौतथाम्भोभिःसविताचानिलानलौ ॥ तथोक्तेःकलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतनः ॥ ६२ ॥ सयेषांरनासंस्थस्तानसाधून्विवादयेत् ॥ परिवर्तसुतौद्वौतुविरूपविकृतौद्विज ॥६३॥ तौतुवृक्षाद्रिपरिखाप्राकारांभोधिसंश्रयौ ॥ गुर्विण्याःपरिवर्तंतौकुरुतःपादपादिषु ॥ ६४ ॥

पुण्य कार्यके अनुष्ठानमें, गुरु देवताकी पूजामें, जप, यज्ञादि कर्त्तव्य अनुष्ठानमें, चौदह यात्रामें ॥ ६० ॥ शारीरिक आरोग्य भोगमें, सुख दान और धनविषयमें एवं वृद्ध, बालक और पीडित व्यक्तिके संबंधमें सदा शान्ति स्थापन करो ॥ ६१ ॥ और सोम, वरुण, सागर, सूर्य, वायु, अग्नि इत्यादि भी मेरे रक्षा करें। तथोक्तिका तालवृक्षवासी कालजिह्व नामक एक पुत्र है॥६२॥हे द्विज ! यह कालजिह्व जिस स्त्रीकी रसनामें स्थित होता है, उसके बालकको बहुत पीडा देताहै। परिवर्त्तकके दो पुत्र उत्पन्न हुए, एकका नाम विरूप और दूसरेका नाम विकृत हुआ ॥६३॥ वह वृक्षाग्र (वृक्षके अग्रभागमें) परिखा (खाई) चारदिवारी और (सागर) में वास करके गर्भिणीका परिवर्त्तन करते हैं ॥ ६४ ॥

हे कौष्टुकि ! जो गर्भवती स्त्री ऐसे स्थानोंमें विचरण करती हैं वह उसके गर्भमें महाकष्ट देते हैं अतएव गर्भवती नारीको वृक्षोंमें, कोटरपर नदीके तटपर ॥ ६५ ॥ और खाईमें कभी नहीं जाना चाहिये । अंगध्रुक्ने पिशुन नामक पुत्र लाभ किया है ॥ ६६ ॥ पिशुन अज्ञानान्ध मनुष्यों की अस्थि मज्जामें प्रवेश करके बलभोजन करता है शकुनिके श्येन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक ॥ ६७ ॥ यह पांच शकुनिके पुत्र हैं इनको सुरासुरने ग्रहण किया है । श्येनको मृत्युने काकको कालने ॥ ६८ ॥ उलूकको नैर्ऋतिने गृध्रको व्याधिने और व्याधीश्वर स्वयं यमने कपोतको ग्रहण किया ॥ ६९ ॥ यह सबही पापोत्पादन करते हैं इसलिये बाज इत्यादिक मस्तकपर बैठनेसे ॥ ७० ॥ आत्मरक्षाके

कौष्टुकेपरिवर्तःस्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः ॥ नवृक्षेचैवनैवाद्रिनप्राकारंमहोदधिम् ॥६५॥ परिग्यांवाममाक्रामेदवलागर्भधारिणी ॥ अङ्गध्रुक्तनयंलेभेपिशुनंनाम नामतः ॥ ६६ ॥ सोऽस्थिमज्जागतःपुंसांबलमत्त्यजितात्मनाम ॥ श्येनकाककपोतांश्चगृध्रोलूकौचैवसुतान् ॥६७॥ अवापशकुनिःपंचगृह्णुस्तान्सुरासुराः ॥ श्येनंजग्राहमृत्युश्चकाकंकालोगृहीतवान ॥ ६८ ॥ उलूकंनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम् ॥ गृध्रंव्याधिस्तदीशोऽथकपोतंचस्वयंयमः ॥ ६९ ॥ एतेषामेवचैवोक्ताभूताःपापोपपादने ॥ तस्माच्छ्येनादयोयस्यनिलीयेयुःशिरस्यथ ॥७०॥ तेनात्मरक्षणायालंशांतिंकुर्य्याद्द्विजोत्तम ॥ गेहे प्रसूतिरेतेषांतद्वन्नीडनिवेशनम् ॥ ७१ ॥ नरस्तंवर्जयेद्गेहंकपोताक्रांतमस्तकम् ॥ श्येनःकपोतोगृध्रश्चकाकोलूकौगृहेद्विज ॥ ७२ ॥ प्रविष्टःकथयेदंतंवसतांतत्रवेश्मिनि ॥ ईदृक्परित्यजेद्गेहंशांतिंकुर्याच्चपंडितः ॥७३॥ स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शनंनप्रशस्यते ॥ षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रांतरतेस्तथा ॥ ७४ ॥ स्त्रीणांरजस्यवस्थानंतेषांकालांश्चमेशृणु ॥ चत्वार्य्यहानिपूर्वाणितथैवान्यत्त्रयोदशम् ॥ ७५ ॥

लिये शान्तिकार्य करना चाहिये । जिस घरमें यह घोसला बनावे वा बच्चे उत्पन्न करे ॥ ७१ ॥ मनुष्य उस घरको भी परित्याग करे । हे द्विज ! बाज, कबूतर, गृध्र, काक उलूकगण ॥ ७२ ॥ घर में प्रवेश करके उस गृहवासीके अन्तकालकी सूचना देते हैं अतएव पण्डितगण ऐसे गृहको परित्याग करके शान्ति कार्य करें ॥७३॥ स्वप्नमें भी कबूतरका देखना अमंगलदायक है गंड प्रान्तरतिके जो छः पुत्र कहेहैं ॥७४॥ वह स्त्रियोंकी रजमें वास करते हैंउनका समय कहताहूं सुनो । प्रथम चार दिन त्रयोदश दिन ॥ ७५ ॥

एकादश दिन दिनका अन्त श्राद्धदिन दानकार्यदिवस ॥ ७६ ॥ और पर्वदिन यह सब उनके रहनेका समय है अतएव पण्डितगण इन सब दिनोंको परित्याग करे गर्भहन्ताका विघ्ननामक एक पुत्र और मोहनी नामक एक कन्या हुईथी॥७७॥यह गर्भमें प्रवेश करती है विघ्नरव च्छ गर्भका भोजन करताहै और मोहनी मोह प्रदान करतीहै उस मोहके कारणही सर्प भेड कछुए॥७८॥और विच्छू इत्यादि जन्तुगण तथा पुरीषकी उत्पत्ति होतीहै। गर्भवती छः महीनेतक मांसभोजन करनेसे असंयत होनेसे॥७९॥ रात्रिके समय वृक्ष तलमें त्रिपथ वा चतुष्पथ(चौराहे)में अवस्थित रहनेसे श्मशान इत्यादि उत्कट स्थानमें गमन करनेसे वा उत्तरीयरहित अर्थात् नग्नहोनेसे॥८०॥और रात्रिके समय रोदन करनेसे विघ्न उस स्त्रीमें

एकादशंतथैवान्यदपत्यंतस्यवैदिनेद्दिनाभिगमनेश्राद्धदानेतथापरे ॥ ७६ ॥ पर्व्वस्वथान्यत्तस्मात्तुवर्ज्यान्येतानिपण्डितैः ॥ गर्भह न्तुःसुनोनिघ्नोमोहनीचापिकन्यका ॥ ७७ ॥ प्रविश्यगर्भमत्त्येकोभुक्तामोहयतेऽपरा ॥ जायन्तेमोहनात्तस्याःसर्पमण्डूककच्छपाः ॥ ॥ ७८ ॥ सरीसृपाणिचान्यानिपुरीषमथवापुनः ॥ षण्मासाद्गुर्विणीमांसमश्नुवानामसंयताम् ॥ ७९ ॥ वृच्छायाश्रयांरात्रावथवात्रि चतुष्पथे ॥ श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ॥ ८० ॥ रुद्यमानांनिशीथेऽथआविशेत्तामिमौस्त्रियम् ॥ सस्यहन्तुस्तथैवैकः क्षुद्रकोनामनामतः ॥ ८१ ॥ सस्यर्द्धिंससदाहन्तिलब्ध्वारन्ध्रंशृणुष्वतत् ॥ अमङ्गल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः ॥ ८२ ॥ क्षेत्रे ष्वनुप्रवैशंवेकरोत्यन्तोपसंगिषु ॥ ८३ ॥ अमङ्गल्यादिनारंभंमगलानांचवर्जयेत् ॥ (महद्भयंप्रयच्छंतियत्रैतत्प्रसंगिषु ॥) तस्मा कल्पःसुप्रशस्तेदिनेऽभ्यर्च्यनिशाकरम् ॥ ८४ ॥ कुर्यादारम्भमुप्तिंचहृष्टस्तुष्टःसहायवान् ॥ नियोजिकेतियाकन्यादुःसहस्यमयो दिता ॥ ८५ ॥

प्रवेश करता है। शस्यहन्ताका क्षुद्रक नामक एक पुत्र हुआ ॥८१॥ वह छिद्र पातेही शस्य वृद्धिकी हानि करता है। जो मनुष्य अमंगल दिनमें अतृप्त होकर धान्य बोनेका कार्य प्रारंभ करताहै ॥८२ ॥ उसके उस खेतमें क्षुद्रक प्रवेश करता है ॥ ८३ ॥ वह अमंगलका आरंभकर मंगलोंको वर्ज देताहै (और संगीयोंमें बड़ा भयकरताहै) इसका उपाय यही कहा गयाहै कि अच्छे पवित्रदिनमें चन्द्रमाकी पूजा करके ॥ ८४ ॥ प्रसन्न चित्तसे कृषिकार्यका आरंभ और बीज वपन करे दुःसहकी नियोजिका नामक कन्याथी जिसका वर्णन मैं पहिले आपसे कर चुकाहूं ॥ ८५ ॥

उसकी प्रचोदिका नामक चार कन्या हुई वह सदाही अति प्रमत्त यौवनके मदसे गर्वित नरनारियोंमें प्रवेशकर ॥ ८६ ॥ नाश करनेके निमित्त उनको दारुण रूपसेप्रेरण करतीहै दुर्विनीतभाव (खोटपन) के द्वारा धर्मरूपमें अधर्मको अकामरूपमें कामको ॥८७॥ अर्थरूपमें अनर्थको और अमोक्षरूपमें मोक्षको प्रेरणापूर्वक मनुष्योंको पृथक् पृथक् दर्शन कराकर अत्यन्त दारुण भावसे नाश करनेके लिये प्रवेश करती हैं ॥८८॥ पूर्वोक्त आठ कन्याओंके द्वारा पुरुषार्थसे पृथक् होकर पुरुषभ्रष्ट हो भ्रमण करते हैं इनका प्रवेश घरोंमेंके गृहमें नक्षत्रकी संधिमें होताहै ॥८९॥ और धाता विधाताको जब पूजा नहीं दी जाती उसी समय वह घरमें प्रविष्ट होतीहै संगीगणोंके सहित भोजन और जलपानके समयकलिके सम

जातंप्रचोदिकासंज्ञंतस्याःकन्याचतुष्टयम्॥मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तुनरान्नारीस्तुनाःसदा॥८६॥समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहदारुणम ॥ अधर्मंधर्मरूपेणकामंचाकामरूपिणम्॥८७॥अनर्थंचार्थरूपेणमोक्षंचामोक्षरूपिणम्॥दुर्विनीतान्विनाशोंचंदर्शयन्तिपृथङ्नरान्॥८८॥ भ्रंशत्याभिःप्रविष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ्नराः ॥ तासांप्रवेशश्चगृहेमन्ध्यॄक्षेषुद्युदुम्बरे ॥ ८९ ॥ धात्रेविधात्रेचबलिर्यत्रकालेनदीयते ॥ भुञ्जतांपिबतांवापिसंगिभिर्जलविप्रुषः ॥ ९० ॥ नरनारीषुसंक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ॥ विरोधिन्यास्त्रयःपुत्राश्चोदकोग्राहकस्त था ॥ ९१ ॥ तमःप्रच्छादकश्चान्यस्तत्स्वरूपंशृणुष्वमे ॥ प्रदीपतैलसंसर्गदूषितेलंघितेखले ॥ ९२ ॥ मुसलोलूखलेयत्रपादुकेवास नेस्त्रियः ॥ शूर्पदात्रादिकंयत्रपदाकृष्टंतथासनम् ॥ ९३ ॥ यत्रोपलितेनाभ्यर्च्यविहारःक्रियतेगृहे ॥ दर्वीमुखेनयत्राग्निराहृतोऽन्यत्र नीयते ॥ ९४ ॥ विरोधिनीसुतास्तत्रविजृम्भन्तेप्रचोदिताः एकोजिह्वागतःपुंसांस्त्रीणांचालीकसत्यवान् ॥ ९५ ॥

यमें॥९०॥उनका नर नारियोंमें संक्रमण होताहै विरोधिनीके तीन पुत्र हुए एकका नाम चोदक और दूसरेका नाम ग्राहक ॥९१॥ और जो तीसरा तमःप्रच्छादक पुत्र है, उसका स्वरूप सुनो । जहां मुसल वा ओखली दीपकके तेलसे दूषित वा उलाँघी जाती है ॥९२॥ जहां मुसल ओखली स्त्रियोंकी पादुका और आसन होताहै वा दूषित होताहै अथवा उलाँघा जाता, जहां पगोंसे आसन और छाज, दराती इत्यादि सरकातीहैं॥९३॥ जहां लिपे हुयेमें बिना पूजन किये विहार किया जाताहै और जहां करछलीसे आग निकालकर दूसरेको दी जाती है ॥९४॥ उन सब स्थानोंमें इस विरोधिनीके पुत्र विक्रम प्रकाश करते हैं। एक तो स्त्री और पुरुषोंकी जिह्वामें वास करके मिथ्या और सत्य कहलाता है ॥ ९५ ॥

उसका नाम चोदक है वही मनुष्योंके घरमें पिशुनता अर्थात् कुटिलता और नीचकर्म करताहै, अति दुर्मतिग्राहक कानोंमें वास करके ॥९६॥ उन सब वाक्योंको ग्रहण करता है, तमःप्रच्छादक मनुष्योंके मनको आक्रमण करके ॥ ९७ ॥ तम (अन्धकार) द्वारा आच्छादन पूर्वक क्रोधकी उत्पत्ति करता है स्वयं हारीके तीन पुत्र हुएहैं ॥ ९८ ॥ सर्वाहारी, अर्द्धहारी और यह अपवित्र गृहमें मन्दाचार गृहमें ॥ ९९ ॥ विना पैर धोये पाकशालामें प्रवेश और जिसके खलमें (खरहानमें गोष्ठम और घरमें विद्रोह उपस्थित होता है ॥१००॥ उन सब स्थानों अन्याय रीतिसे विहार और रमण करते हैं। काकजंघ नामक भ्रामणीका पुत्र हुआ ॥१०१॥ उसके प्रविष्ट होनेपर घरमें कोई प्रसन्नताको प्राप्त नहीं होता;

चोदकोनामसप्रोक्तःपैशुन्यंकुरुतेगृहे ॥ अवधानगतश्चान्यःश्रवणस्थोऽतिदुर्मतिः ॥ ९६ ॥ करोतिग्रहणंतेषांवचसांग्राहकस्तुसः ॥ आक्रम्यान्योमनोनृणांतमताच्छाद्यदुर्मतिः ॥ ९७ ॥ क्रोधंजनयतेयस्तुतमःप्रच्छादकस्तुसः ॥ स्वयंहार्यास्तुचौर्येणजनितं तनयत्रयम् ॥ ९८ ॥ सर्वहार्यर्द्धहारीचवीर्यहारीतथैवच ॥ अनाचान्तगृहेष्वेतेमन्दाचारगृहेषुच ॥ ९९ ॥ अप्रक्षालितपादेषुप्रविशत्सुमहानसम् ॥ खलेषुगोष्ठेषुचवैदोहोयेषुगृहेषुवै ॥ १०० ॥ तेषुसर्वेषुयथान्यायंविहरन्तिरमन्तिच ॥ भ्रामण्यास्तनयस्त्वेकः. काकजंघइतिस्मृतः ॥ १०१ ॥ तेनाविष्टोरतिंसर्वोनैवप्राप्नोतिवैमुने ॥ भुञ्जन्योगायतेमैत्रेगायतेहसतेचयः ॥ १०२ ॥ सन्ध्यामैथुनिनंचैवनरमाविशतिद्विज ॥ कन्यात्रयंप्रसूतासायाकन्याऋतुहारिणी ॥ १०३ ॥ एकाकुचहराकन्याअन्याव्यञ्जनहारिका ॥ तृतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ॥ १०४ ॥ यस्यानक्रियतेसर्वःसम्यग्वैवाहिकोविधिः ॥ कालातीतोऽथवातस्याहन्त्येका कुचद्वयम् ॥ १०५ ॥ सम्यक्श्राद्धमदत्त्वाचतथानभ्यर्च्यमातृकाः ॥ विवाहितायाःकन्यायाहरतिव्यञ्जनंतथा ॥ १०६ ॥

जो पुरुष भोजन करनेके समय गान करतेहैं मित्रोंसे बात चीत करतेहैं वा हँसते हैं ॥१०२॥ और जो संध्याकालमें मैथुन करते हैं, उनपर काकजंघ आक्रमण करता है हेद्विज ! ऋतुकालमें हरिणीने तीन कन्या उत्पन्न करी ॥१०३॥ पहली कन्याका नाम कुचहरा, दूसरीका नाम व्यञ्जन हारिका और तीसरी कन्याका नाम जातहारिणी हुआ ॥१०४॥ सम्यक् प्रकारकी विधिसे जिस कन्याका विवाह नहीं किया जाता और विवाहकी लग्नके बीत जानेपर विवाह होता है, उस नारीके दोनों कुचाओंको वह कुचहराहरण करती है ॥१०५॥श्राद्धादि कार्य भली भाँति न करके और

मातकी बिना पूजा किये जो कन्या व्याही जाती है, उसका व्यंजनहारिका हरण करती है ॥ १०६ ॥ सूतिकागृह अर्थात् सौवरमें अग्नि जल, धूप, दीप, शस्त्र, मुसल, भस्म और सरसोंके न होनेसे ॥ १०७ ॥ जात हारिणी वहां प्रवेश करके वहांके बालकोंको हरण कर तत्कालो त्पन्न अन्यबालकोंको उस स्थानमें रख देती है ॥१०८॥ इसकारण पिशिताशन भयंकरी इस जात हारिणीसे सौवरमें यत्नपूर्वक सदा बालककी रक्षा करे ॥ १०९ ॥ उसका पुत्र प्रचण्ड है, सूने घरमें रहनेके कारण असंयतचित्त मनुष्योंकी स्मृति नष्ट करता है॥११०॥उसके पौत्रोंसे सैकडों हजारों लीक उत्पन्न हुए दण्ड पाश धारण करनेवाली महाभयंकर आठ चाण्डालयोनिभी इसी वंशमें उत्पन्न हुई हैं ॥ १११ ॥ लीका और

अग्न्यम्बुशून्येचतथाविधूपेसूतिकागृहे ॥ अदीपशस्त्रमुसलेभूतिसर्षपवर्जिते ॥ १०७ ॥ अनुप्रविश्यसाजातमपहृत्यात्मसम्भवम् ॥ क्षणप्रसविनीबालंतत्रैवोत्सृजतेद्विज ॥ १०८ ॥ साजातहारिणीनामसुघोरापिशिताशना ॥ तस्मात्संरक्षणंकार्यंयत्नतःसूतिकागृहे ॥ १०९ ॥ स्मृतिंचाप्रयतानांचशून्यागारनिषेवणात् ॥ अपहन्तिसुतस्तस्याःप्रचण्डोनामनामतः ॥ ११० ॥ पौत्रभ्यस्तस्य संभूतालीकाशतसहस्रशः ॥ चण्डालयोनयश्चाष्टौदण्डपाशातिभीषणाः ॥ १११ ॥ क्षुधाविष्टास्ततोलीकास्ताश्चचण्डालयोनयः ॥ अभ्यधावन्तचान्योन्यमत्तुकामाःपरस्परम् ॥ ११२ ॥ प्रचण्डोवारयित्वातुयास्ताश्चण्डालयोनयः ॥ समयेस्थापयामासयादृशं तादृशंशृणु ॥ ११३ ॥ अद्यप्रभृतिलोकानामावासंयोहिदास्यति ॥ दंडंतस्याहमतुलंपातयिष्येनसंशयः ॥ ११४ ॥ चण्डालयो न्यावसथेलीकायाप्रसविष्यति ॥ तस्याश्चसन्ततिःपूर्वासाचसद्योनशिष्यति ॥ ११५ ॥ प्रसूतेकन्यकेद्वेतुस्त्रीपुंसोर्बीजहारिणी ॥ वातरूपामरूपांचतस्याःप्रहरणंतुते ॥ ११६ ॥

चाण्डाल जातिगण भूखसे आतुर होकर परस्परको भक्षण करनेकी इच्छासे जब दौडी ॥ ११२ ॥ तब प्रचंडने उसको निवारण करके जिस सम यमें स्थापन किया था, सो सुनो ॥ ११३ ॥ जो पुरुष आजसे लीकोंको स्थान देगा उसको मैं निःसन्देह अत्यन्त दारुण दंड दूंगा ॥११४॥ चाण्डालके घरमें वास करके वा पराये गृह (वेश्यागृह) में जो स्त्री संतान उत्पन्न करती है. वह लीक उसकी समस्त संतानका विनाश करती है, ॥ ११५ ॥ स्त्री पुरुषके वीर्यको हरने वाली बीजापहारिणीने वातरूपा और अरूपा नामक जो दो कन्याको उत्पन्न किया ॥ ११६ ॥

तिनमें वात रूपा अभिषेक समयमें शुक्रको जिसमें निक्षेप करती है. वह पुरुष वा स्त्री वातशुक्रत्व (रोग विशेष) को प्राप्त होते हैं ॥११७॥ जो मनुष्य बिना स्नान किये और बिना भोजन किये स्त्रीसंभोग करता है तथा किसीवियोनिमें मैथुनासक्त होता है अरूपा उसको शीघ्र निर्बीज करती है ॥११८॥ कुटिल मुख और भृकुटि चढ़ानेवाली विद्वेषिणीके दो पुत्र हुए वह सदा पुरुषोंका अपकार प्रकाश करते हैं ॥११९॥ शौचवर्जित अर्थात् अपवित्र रहनेवाले नर नारीगणही निर्बीजता लाभ करते हैं। विद्वेषणीके दोनों पुत्र पैशुन्यरत ॥ पराई निन्दामें रत) लाल (चपल) अशुद्ध जलसेवी ॥१२०॥ और पुरुषद्वेषी पुरुषको आक्रमण करके अवस्थान करते हैं। यथार्थमें किसी माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन और आत्मीय

वातरूपानिषेकान्तेसायस्मैक्षिपतेसुतम् ॥ सपुमान्वातशुक्रत्वंप्रयातिवनितापिवा ॥११७॥ तथैवगच्छतःसद्योनिर्बीजत्वमरूपया ॥ अस्नाताशीनरोयोऽसौतथाचापिवियोगिनः ॥ ११८ ॥ विद्वेषिणीतुयाकन्याभृकुटीकुटिलानना ॥ तस्यद्वौतनयौपुंसामपकारप्रकाशकौ ॥ ११९ ॥ निर्बीजत्वंनरोयातिनारीवाशौचवर्जिता ॥ पैशुन्याभिरतंलोलमसज्जलनिषेवणम् ॥ १२० ॥ पुरुषद्वेपिणंचैतौनरमाक्रम्यतिष्ठतः ॥ मात्राभ्रात्रातथामित्रैरभीष्टैःस्वजनैःपरैः ॥ १२१ ॥ विद्विष्टोनाशमायातिपुरुषोधर्मतोऽर्थतः ॥ एकस्तुस्वगुणाँल्लोकेप्रकाशयतिपापकृत् ॥ १२२ ॥ द्वितीयस्तुगुणान्मैत्रींलोकस्थामपकर्षति ॥ इत्येतेदौःसहाःसर्वेयक्ष्मणःसन्ततावथ ॥ पापाचाराःसमाख्यातायैर्व्याप्तमखिलंजगत् ॥ १२३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदौःसहोत्पत्तिसमापनंनामाष्टचत्वारिंशत्तमोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इत्येषतामसःसर्गोब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ रुद्रसर्गंप्रवक्ष्यामितन्मेनिगदतःशृणु ॥ १ ॥ तनवश्चतथैवाष्टौपत्न्यःपुत्राश्चतेतथा ॥ कल्पादावात्मनस्तुल्यंसुतंप्रध्यायतःप्रभोः ॥ २ ॥

जनोंके ॥ १२१ ॥ विद्वेषी होनेसे धर्म और अर्थका नाश करते हैं। पापाचारी एक पुत्र अपने गुणोंको लोकमें प्रकाशित करता है ॥१२२॥ दूसरा लोकोंका गुण और मैत्री को आकर्षण करलेता है। इस प्रकार पापाचारी दुःसहगण संपूर्ण जगत्को व्याप्त कर रहे हैं ॥ १२३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दौःसहोत्पत्तिसमापनं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीकी यह तामसी सृष्टि कही गई। अब रुद्रसर्गका विषय कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ आठ पुत्र, उनकी पत्नी, और समस्त पुत्र कल्पादिमें आत्मतुल्य पुत्रकी चिन्ता

करनेसे वैसेही हुए ॥ २ ॥ हे द्विजसत्तम ! उन आठों कुमारोंमें जो एक कुमार नीललोहित शरीरवाला ब्रह्माजीके शरीरसे उत्पन्न हुआ था वह प्रभुकी गोदीमें सुस्वरसे रोदन करने लगा ॥ ३ ॥ उसको रोता देखकर ब्रह्माजीने पूछा "तू किस निमित्त रोताहै" कुमारने कहा "हे जगत्पते मुझको नाम प्रदान कीजिये" ॥४॥ ब्रह्माजी बोले तुम्हारा "रुद्र" नाम हुआ अब मत रोओ, धैर्य धारण करो । ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने पर कुमार सातवार फिर रोया ॥ ५ ॥ हे द्विज ! तब क्रमानुसार उसको और भी सात नाम प्रदान किये । फिर उन आठोंके स्थान, पत्नी और पुत्र दान किये ॥६॥ पितामह ब्रह्माजीने रुद्र, भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र, और महादेव ॥७॥ यह आठ नाम प्रदान

प्रादुरासीदथांकेऽस्यकुमारोनीललोहितः ॥ रुरोदसुस्वरंसोऽथद्रवंश्चद्विजसत्तम ॥ ३ ॥ किंरोदिषीतितंब्रह्मारुदन्तंप्रत्युवाचह ॥ नामदेहीतितंसोऽथप्रत्युवाचजगत्पतिम ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ रुद्रस्त्वंदेवनाम्नासिमारोदीर्धैर्यमावह । एवमुक्तस्ततःसोऽथसप्त कृत्वोरुरोदह ॥ ५ ॥ ततोऽन्यानिददौतस्मैसप्तनामानिसप्रभुः ॥ स्थानानिचैषामष्टानांपत्नीःपुत्रांश्चवैद्विज ॥ ६ ॥ भवंशर्वंतथे शानंतथापशुपतिंप्रभुः ॥ भीममुग्रंमहादेवमुवाचसपितामहः ॥ ७ ॥ चक्रेनामान्यथैतानिस्थानान्येषांचकारह ॥ सूर्यो जलंमही वह्निर्वायुराकाशमेवच ॥ ८ ॥ दीक्षितोब्राह्मणःसोमइत्येतास्तनवःक्रमात ॥ सुवर्चलातथैवोमाविकेशीचापरास्वधा ॥ ॥ ९ ॥ स्वाहादिशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ॥ सूर्य्यादीनांद्विजश्रेष्ठरुद्राद्यैर्नामभिःसह ॥ १० ॥ शनैश्चरस्तथाशुक्रोलोहिताङ्गोमनो जवः ॥ स्कन्दःसर्गोऽथसन्तानोबुधश्चानुक्रमात्सुताः ॥ ११ ॥ एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसतींभार्य्यामविन्दत ॥ दक्षकोपाच्चतत्याजसा सतीस्वंकलेवरम् ॥ १२ ॥

करके आठ स्थानका निर्देश किया । सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश ॥८॥ दीक्षित, ब्राह्मण और सोम यह आठ मूर्ति और सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा ॥ ९ ॥ स्वाहा, दिक्, दीक्षा और रोहिणी, यह रुद्रादि नामक रुद्रकी पत्नी हैं. हे द्विजश्रेष्ठ ! अब रुद्रादिके नामसहित सूर्यके पुत्रोंके नाम कहताहूं, सुनो ॥ १० ॥ शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान और बुध यह आठ क्रमशः रुद्रादिके पुत्र हैं ॥११॥ यह रुद्र इस प्रकारसे सतीको भार्यारूपसे प्राप्त हुएथे । फिर दक्षके कोपसे सतीने अपना देह त्याग किया ॥ १२ ॥

(कारण कि जहाँ शिवजीका निरादर होवे वहाँ विद्वानको स्थित रहना नहीं चाहिये यह सब ब्राह्मण जो महेश्वरसे द्वेष करते हैं वे पापसे नष्टचित्त हो वेदसे बाहर हों तथा पाखण्डमें निरत होकर नरकगामी हों यह कलियुग प्राप्त होनेसे दरिद्र और शूद्रोंका जप करने वाले हों) ऐसा शाप दे मेनकाके गर्भमें हिमवान्‌की पुत्री हुई थी, समुद्रका सखा मैनाक उनका भाई था ॥ १३ ॥ भगवान् भवने फिर पार्वतीसे विवाह किया और भृगुजीकी भार्या जो ख्याति नामसे प्रसिद्ध थी, उसके दो पुत्र हुए। एकका नाम धाता और दूसरेका विधाता रक्खा गया ॥ १४ ॥ और जो देवदेव भगवान् नारायण हैं. उनकी पत्नी लक्ष्मीजी हुईं और जो महात्मा मेरुकी आयति और नियति नामक दो कन्या थीं ॥ १५ ॥

शंभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यंनैवसूरिभिः ॥ (एतेचब्राह्मणाःसर्वेयेद्विषंतोमहेश्वरम् ॥ भवंतुतेवेदबाह्याःपापोपहतचेतसः ॥ पाखंडाचारनिरताःसर्वेनिरयगामिनः ॥ कलौयुगेतुसंप्राप्तेदरिद्राःशूद्रजापकाः ॥ हिमवद्दुहितासाभून्मेनायांद्विजसत्तमः ॥) तस्याभ्रातातुमैनाकःसखाम्भोधेरनुत्तमः ॥ १३ ॥ उपयेमेपुनश्चैनामनन्यांभगवान्भवः ॥ देवौधाताविधातारौभृगोःख्यातिरसूयत ॥ १४ ॥ श्रियंचदेवदेवस्यपत्नीनारायणस्ययाः ॥ आयतिर्नियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मनः ॥ १५ ॥ धाताविधात्रोस्तेतयोर्जातौसुतावुभौ ॥ प्राणश्चैवमृकण्डुश्चपितामममहायशाः ॥ १६ ॥ मनस्विन्यामहंतस्मात्पुत्रोवेदशिरामम ॥ धूम्रवत्यांसमभवत्प्राणस्यापिनिबोधमे ॥ १७ ॥ प्राणस्यद्युतिमान्पुत्रउत्पन्नस्तस्यचात्मजः ॥ अजरश्चतयोःपुत्राःपौत्राश्चबहवोऽभवन् ॥ १८ ॥ पत्नीमरीचेःसंभूतिःपौर्णमासमसूयत ॥ विरजाःपर्वतश्चैवतस्यपुत्रौमहात्मनः ॥ १९ ॥

सो धाता विधाताकी भार्या हुई एक पुत्र इन दोनोंके उत्पन्न हुआ आयतिके जो पुत्र हुआ, उसका नाम धाताने प्राण रक्खा और नियतिके पुत्रका नाम विधाताने मृकण्डु रक्खा यही महायशवान् पुत्र मार्कण्डेयके पिता हैं ॥ १६ ॥ मेरे पिता मृकण्डुजीका विवाह मनस्विनीसे हुआ जो मेरी जननी है और मेरे जो पुत्र हुआ, उसका नाम मैंने वेदशिरा रक्खा। प्राणकी पत्नी धूम्रवती हुई उसके जो पुत्र हुए, उनको कहता हूं ॥ १७ ॥ धूम्रवतीके गर्भसे द्युतिमान् और अजरानामक प्राणके दो पुत्र उत्पन्न हुए इनके बेटे पोते अनेक हुएथे ॥ १८ ॥ मरीचिकी पत्नी सम्भूतिने पौर्णमासको उत्पन्न किया। विरजा और पर्वतनामक उसके दो महात्मा पुत्र हुए ॥ १९ ॥

हे द्विजवर ! इनके पुत्रोंकी वंशकीर्तिके लिये रक्षा करूंगा अर्थात् राजवंशके वर्णनमें कीर्तन करूंगा । अंगिराकी पत्नी स्मृतिने ॥ २० ॥ सिनीवाली कुहू, राका और अनुमतिनामक चार कन्याको उत्पन्न किया । अत्रिसे अनसूयाने पापरहित ॥ २१ ॥ सोम, दुर्वासा और दात्तात्रेय नामक तीन योगियोंको पुत्ररूपमें प्राप्त कियाथा । पुलस्त्यकी भार्या प्रीतिके गर्भसे दत्त वा दम्भोलिकी उत्पत्ति हुई ॥ २२ ॥ यही पूर्वजन्म अर्थात् स्वायम्भुव मन्वन्तरमें अगस्त्य नामसे विख्यात थे । प्रजापति पुलहकी भार्या क्षमाने कर्दम अर्ववीर,और सहिष्णु नामक तीन पुत्र उत्पन्न किये । ऋतुकी भार्या सन्नतिने ॥ २३ ॥ २४ ॥ ऊर्द्धरेता साठ हजार वालखिल्यगणको उत्पन्न किया है, उर्ज्जाके गर्भसे वसिष्ठके सात पुत्र

तयोःपुत्रांस्तुःवक्ष्येहंवंशसंकीर्त्तनेद्विज ॥ स्मृतिश्चाङ्गिरसःपत्नीप्रसूताकन्यकास्तथा ॥ २० ॥ सिनीवालीकुहूश्चैवराकाचानुमति स्तथा ॥ अनसूयातथैवात्रेर्जज्ञेपुत्रानकल्मषान् ॥ २१ ॥ सोमंदुर्वाससंचैवदत्तात्रेयंचयोगिनम् ॥ प्रीत्यांपुलस्त्यभार्यायांदत्तोन्य स्तत्सुतोऽभवत् ॥२२॥ पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्यःस्मृतःस्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ कर्दमश्चार्ववीरश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम् ॥ २३ ॥ क्षमातुसुषुवे भार्यापुलहस्यप्रजापतेः ॥ क्रतोस्तुसन्नतिर्भार्यावालखिल्यानसूयत ॥ २४ ॥ षष्टिर्यानिसहस्राणिऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम् ॥ ऊर्जायान्तु वसिष्ठस्यसप्ताजायन्तवैसुताः ॥ २५ ॥ रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्चसबलश्चानघस्तथा ॥ सुतपाःशुक्रइत्येतेसर्वेसप्तर्षयःस्मृताः ॥ २६ ॥ योसावग्निरभीमानीब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः ॥ तस्मात्स्वाहासुताँल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज ॥२७॥ पावकंपवनंचैवशुचिंचापिजलाशिनम् ॥ तेषांतुसन्ततावन्येचत्वारिंशच्चपञ्चच ॥२८॥ कथ्यन्तेबहुशश्चैतेपितापुत्रत्रयंचयत् ॥ एवमेकोनपंचाशद्दुर्जयाःपरिकीर्तिताः ॥ २९ ॥ पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव ॥ अग्निष्वात्ताबर्हिषदोऽनग्नयःसाग्नयश्चये ॥ ३० ॥

उत्पन्न हुए ॥ २५ ॥ उनके नाम रज, गात्र, ऊर्द्धबाहु, सवल, अनघ, सुतपा और शुक्र, यही सप्त ऋषिके नामसे विख्यात हैं ॥ २६ ॥ हे द्विज ! अभिमानी अग्नि ब्रह्माजीके ज्येष्ठ पुत्र हैं, उनका विवाह स्वाहाके संग हुआ और उनके भी तीन पुत्र बड़े प्रतापी और महाबलवान् हुए ॥ २७ ॥ पावक,पवमान और शुचि जो सदा जलका पान करते रहते हैं, उनके पैंतालीस पुत्र उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ और अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नामसे कहे हैं वह अग्निके पोते हैं, यह उनचास (४९) अग्निके पोते दुर्जय कहे गये हैं ॥ २९ ॥ मैंने तुमसे इनकोही पूर्वमें पितरोंके

नामसे व्याख्या करी है अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, अनग्नि और साग्नि ॥३०॥ पितरोंसे स्वधाने मेना और वैधारिणी नामक दो कन्या प्राप्त करी। हे द्विज ! यह दोनों कन्या परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यासमें तत्पर हुई ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपंचाशत्तमो ॥ ४९ ॥ कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने जो यह स्वायंभुव मन्वन्वरका विषय वर्णन किया, उसको सम्यक् प्रकारसे सुननेकी इच्छा करता हूं आप कहो ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! मन्वतरका प्रमाण देवता देवर्षि क्षितीश (राजा) और देवेन्द्रकी कथा विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कंडेयजी बोले—मन्वन्तरकी संख्या कुछ अधिक इकहत्तर (७१) चौयुगी है, उसको मनुष्यके प्रमाणसे कहता हूं

तेभ्यःस्वधासुतेजज्ञेमेनांवैधारिणींतथा ॥ तेउभेब्रह्मवादिन्यौयोगिन्यौचाप्युभेद्विज ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेरुद्रसर्गाभिधानो नामैकोनपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ४९ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ स्वायम्भुवंत्वयाख्यातमेतन्मन्वतरंचयत् ॥ तदहंभगवन्सम्यक् श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥ १ ॥ मन्वन्तरप्रमाणंचदेवादेवर्षयस्तथा ॥ येचक्षितीशाभगवन्देवेन्द्रश्चैवयस्तथा ॥ २ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ मन्वन्तराणांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ मानुषेणप्रमाणेनशृणुमन्वन्तरंचमे ॥ ३ ॥ त्रिंशत्कोट्यस्तुसंख्याताः सहस्राणिचविंशतिः ॥ सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥ ४ ॥ मन्वन्तरप्रमाणंचइत्येतत्साधिकविना ॥ अष्टौशतसहस्रा णिदिव्ययासंख्ययास्मृतम् ॥ ५ ॥ द्विपंचाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानिच ॥ स्वायम्भुवोमनुःपूर्वमनुःस्वारोचिषस्तथा ॥ ६ ॥ औत्तमस्तामसश्चैवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ॥ षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैवस्वतोऽधुना ॥ ७ ॥ सावर्णाःपंचरौच्याश्चभौत्याश्चागामिन स्त्वमी ॥ एतेषांविस्तरंभूयोमन्वंतरपरिग्रहे ॥ ८ ॥

सुनो ॥ ३ ॥ तीसकरोड सडसठलाख, वीस हजार वर्ष मनुष्यके एक मन्वन्तरमें बीतते हैं ॥ ४ ॥ यह मन्वन्तरका प्रमाण अधिकाईके विना है, देवताओंके आठलाख ॥ ५ ॥ बावनसहस्र वर्ष एक मन्वतरमें बीच जाते हैं. पहला मनु स्वायंभुव, दूसरा स्वारोचिष ॥ ६ ॥ औत्तम, तामस रैवत, और चाक्षुष, यह छः मनु बीतगये हैं इससमय वैवस्वत मनु वर्त्तमान है ॥ ७ ॥ और पंचसावर्णि रौच्य और भौत्य यह आगामी हैं अर्थात् अब आगे आवेंगे, इनका संपूर्ण वृत्तान्त मन्वन्तरोंके वर्णनमें विस्तारसहित आपसे कहूंगा ॥ ८ ॥

हे ब्रह्मन् ! देवता, ऋषि, इन्द्र और पितर जो जो मन्वन्तरोंमें होते हैं, उन सबकी उत्पत्ति और संग्रह सन्तानसहित आप सुनिये ॥ ९ ॥ और उन महात्मा पुरुषोंके जो जो स्थान तथा जो जो संतान उत्पन्न हुईं वह भी कहता हूं । स्वायंभुवमनुके दश पुत्र उत्पन्न हुए, सो सब उनकेही समान थे ॥ १० ॥ जिन्होंने सात दीपवाली स पर्वता, ससमुद्रा और आकर (खान) वती इस पृथ्वीको वर्षोंमें विभक्त किया था ॥ ११ ॥ पूर्वमें स्वायम्भुव मन्वन्तर अर्थात् त्रेतायुगके आदिमें प्रियव्रत पुत्र और स्वायम्भुवके पौत्रोंने भी ऐसा ही कियाथा ॥ १२ ॥ कर्दम प्रजापतिकी प्रजावती नामक महाभाग कन्याके गर्भमें औरससे ॥ १३ ॥ दश पुत्र दो कन्याओंने जन्म ग्रहण किया । उन दोनों कन्याओंने

वक्ष्येदेवानृषींश्चैवेन्द्रान्पितरश्चये ॥ उत्पत्तिसंग्रहंब्रह्मन्श्रूयतामस्यसंततिः ॥ ९ ॥ यच्चैतेषामभूत्स्थानंतत्पुत्राणांमहात्मनाम् ॥ मनोःस्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्ततत्समाः ॥ १० ॥ यैरियंपृथिवीसर्वासप्तद्वीपासपर्वता ॥ ससमुद्राऽऽकरवतीप्रतिवर्षनिवेशिता ॥ ॥ ११ ॥ स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वमाद्येत्रेतायुगेतथा ॥ प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रैःस्वायम्भुवस्यतु ॥ १२ ॥ प्रियव्रतात्प्रजावत्यांवीरात्कन्याव्यजायत ॥ कन्यासातुमहाभागाकर्दमस्यप्रजापतेः ॥ १३ ॥ कन्येद्वेदशपुत्रांश्चसम्राट्कुक्षीचतेउभे ॥ तयोर्वैभ्रातरःशूराः प्रजापतिसमादश ॥ १४ ॥ आग्नीध्रोमेधातिथिश्चवपुष्मांश्चतथापरः ॥ ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यःसवनःसप्तएवते ॥ १५ ॥ मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणाः ॥ शातिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधुः ॥ प्रियव्रतोऽभ्यषिंचत्तान्सप्तसप्तसुपार्थिवान् ॥ द्वीपेषु तेनधर्मेणद्वीपांश्चैवनिबोधमे ॥ १६ ॥

सम्राट् और कुक्षि नाम धारण किया था और उपरोक्त दशभ्राता महा शूर और प्रजापतिके समान हुए ॥ १४ ॥ उन दशोंके नाम—अग्नीध्र मेधातीथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य, और सवन ॥ १५ ॥ हे महाभाग इनमें सबसे छोटे मेधा, अग्निबाहु और मित्र इन तीनोंने जातिस्मर होनेसे राज्य नहीं किया, वरन् योगपरायण हुए। तब शेष उन सात पुत्रोंको राजा प्रियव्रतने सातोंद्वीपका राज्य दिया और वह लोग भी धर्मसहित सातों द्वीपोंका राज्य कर करने लगे। अब मैं उन द्वीपोंका वर्णन करता हूं ॥ १६ ॥

अर्थात् राजा प्रियव्रतने अग्नीध्रको जम्बूद्वीपका राजा किया और मेधातिथिको प्लक्षद्वीपका राज्य दिया ॥ १७ ॥ फिर वपुष्मान्को शाल्मलिद्वीपका, ज्योतिष्मान्को कुशद्वीपका, द्युतिमान्को क्रौञ्चद्वीपका और भव्यको शाकद्वीपका राजा किया ॥ १८ ॥ सवन नामक पुत्रको पुष्करद्वीपका अधिपति किया, तब इन पुष्कराधिपति सवनके मेधावी और धातकी नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥१९॥ तब उन दोनों पुत्रोंको महाराज सवनने पुष्करद्वीपके दो भाग करके बांट दिये, और शाकद्वीपके राजा भव्यके सातपुत्र हुए, उन सबके नाम वर्णन करता हूं॥२०॥ जलद, कुमार, सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और सातवाँ महाद्रुम नाम हुआ ॥२१॥ तब शाकद्वीपके सातभाग करके उस राजाने सातों पुत्रोंको

जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्रंराजानंकृतवान्पिता ॥ प्लक्षद्वीपेश्वरश्चापितेनमेधातिथिःकृतः ॥ १७ ॥ शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तंज्योतिष्मन्तंकुशाह्वये ॥ क्रौंचद्वीपेद्युतिमन्तंभव्यंशाकाह्वयेश्वरम् ॥ १८ ॥ पुष्कराधिपतिंचापिसवनंकृतवान्सुतम् ॥ महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपतेःसुतौ ॥ १९ ॥ द्विधाकृत्वातयोर्वर्षंपुष्करेसन्यवेशयत् ॥ भव्यस्यपुत्राःसप्तासन्नामतस्तान्निबोधमे ॥ २० ॥ जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवकः ॥ कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः ॥ २१ ॥ तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारसः ॥ तथाद्युतिमतःसप्तपुत्रास्तांस्तुनिबोधमे ॥ २२ ॥ कुशलोमनुगश्चोष्णःप्राकारश्चार्थकारकः ॥ मुनिश्चदुन्दुभिश्चैवसप्तमःपरिकीर्तितः ॥ ॥ २३ ॥ तेषांस्वनामधेयानिक्रौंचद्वीपेतथाभवन् ॥ ज्योतिष्मतःकुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवै ॥ २४ ॥ (तत्रापिसप्तवर्षाणितेषांनामानिमेशृणु) ॥ तस्यापिसप्तपुत्रास्तुज्ञेयास्तेपिमहौजसः ॥ उद्भिदंवैणवंचैवसुरथंलम्बनंतथा ॥ २५ ॥ धृतिमत्प्राकरंचैवकापिलंचापिसत्तमम् ॥ वपुष्मतःसुताःसप्तशाल्मलेशस्यचाभवन् ॥ २६ ॥

दे दिये, वह सप्तभाग, सप्तवर्ष इन्हींके नामसे प्रसिद्ध हुए । इसी प्रकार क्रौञ्चद्वीपके राजा द्युतिमान्के भी सात पुत्र हुए, उनके भी नाम कहता हूं ॥२२॥ कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारकमुनि, और सातवाँ दुन्दुभि नामक हुआ ॥२३॥ इन सात नामोंके अनुसार क्रौञ्चद्वीपकेभी सातभाग हुए थे । ज्योतिष्मान्ने सप्तपुत्रोंके नामानुयायी सप्तवर्षका कुशद्वीपमें विभाग किया था ॥२४॥ (वहां भी सातवर्ष बनाये उनके नाम मुझसे सुनो) उनके नाम ये हैं उद्भिद, वैष्णव, सुरथ, लम्बन ॥२५॥ धृतिमान, प्रभाकर और कपिल और शाल्मलिद्वीपका जो वपुष्मान् राजा था उसके भी सातपुत्र

उत्पन्न हुए ॥२६॥ उनके नाम-श्वेत, हरित, जीमूत, रोहित, वैद्युत, मानस और सातवाँ केतुमान् हुआ ॥२७॥ इन्हींके नाममें वह शाल्मलिद्वीप भी सप्तभाग होकर वर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ और जो मेधातिथि प्लक्षद्वीपका नरेश्वर था; उसके भी सातपुत्र हुए ॥ २८ ॥ तब इनमे भी अपने सातोंपुत्रोंको प्लक्षद्वीपके सातभाग करके दे दिये और इन्हीं सबके नामसे वर्ष विख्यात हुए उनके नाम—शाकभव, शिशिर और सुखोदय॥२९॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव, तथा प्लक्ष; शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, और शाक इत्यादि इन पांचों द्वीपोंमें ॥३०॥ और इनके विभागोंमें सदा वर्णाश्रमका धर्म बना रहता है तथा नित्य स्वभावसेही वहां हिंसाविधि वर्जित है अर्थात् हिंसा होती ॥३१॥ (और हिमालयको छोड़कर जो

श्वेतश्चहरितश्चैवजीमूतोरोहितस्तथा ॥ वैद्युतोमानसश्चैवकेतुमानन्सप्तमस्तथा ॥ २७ ॥ तथैवशाल्मलेर्नेपांसमनामानिमतवे ॥
सप्तमेधातिथेःपुत्राःप्लक्षद्वीपेश्वरस्यवै ॥ २८ ॥ येषांनामाङ्कितैर्वर्षैःप्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ॥ पूर्वंशाकभवंवर्षंशिशिरंतुसुखोदयम ॥२९॥
आनन्दंचशिवंचैवक्षेमकंचध्रुवंतथा ॥ प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिमेषुवै ॥ ३० ॥ ज्ञेयःपंचसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ॥ नित्यः
स्वाभाविकश्चैवअहिंसाविधिवार्जितः ॥ ३१ ॥ (यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ॥ सुखमायुश्चरूपंचबलंधर्मश्चनि
त्यशः) पंचस्वेतेषुवर्षेषुसर्वसाधारणःस्मृतः ॥ अग्नीध्रायपितापूर्वंजम्बूद्वीपंददौद्विज ॥ ३२ ॥ तस्यपुत्राबभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ॥
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुजः ॥ ३३ ॥ हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ॥ रम्यश्चपंचमःपुत्रोहिरण्यःषष्ठ
उच्यते ॥ ३४ ॥ कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वश्चाष्टमःस्मृतः ॥ नवमःकेतुमालश्चतन्नाम्नावर्षसंस्थितिः ॥ २५ ॥ यानिकिंपुरुषाद्या
निवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ॥ तेषांस्वभावतःसिद्धिःसुखप्रायाह्ययत्नतः ॥ २६ ॥

किम्पुरुषादि वर्ष हैं उनमें सुख पूर्णायुरूप बल और धर्म सदा बना रहता है) हे द्विजोत्तम ! संपूर्ण धर्म इन पांचों द्वीपोंमें साधारण हैं । जिन अग्नीध्रको उनके पिताने जम्बूद्वीप प्रदान किया था ॥ ३२ ॥ उनके प्रजापतिके समान नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे । ज्येष्ठका नाम नाभि, दूसरेका किंपुरुष ॥ ३३ ॥ तीसरेका हरि, चौथेका इलावृत, पांचवेका रम्य, छठेका हिरण्य ॥ ३४ ॥ सातवेंका कुरु आठवेंका भद्र और नवमका नाम केतुमाल है इन सबके नामानुसार वर्षका भी विभाग हुआ है ॥ ३५ ॥ हिमालयके अतिरिक्त जिनको किंपुरुष कहते हैं उनकोस्वभावसे सिद्धि

और विनाही यत्न किये सुख लाभ होता ॥ ३६ ॥ विपर्यय वा जरामृत्यु जनित उनको कोई भय नहीं होता । वहाँ धर्माधर्म, उत्तम मध्यम और अधम विभाग ॥ ३७ ॥ चारों युगकी भिन्न अवस्था विभिन्न ऋतुकी अवस्था वा ऋतुविभाग नहीं है—अग्नीध्रके पुत्र नाभिकी सन्तान ऋषभ हुआ ॥ ३८ ॥ और ऋषभके पुत्र भरत हुए । ऋषभने पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके संन्यास अवलम्बन किया था ॥ ३९ ॥ और पुलहाश्रममें वास करके इस महाभागने तपस्या करी थी । हिम नामक दक्षिणवर्ष भरको उनके पिताने समर्पण किया था ॥ ४० ॥ इसी कारण उनके नामानुसार भारतवर्ष नाम हुआ है । भरतके सुमतिनामक एक धार्मिक पुत्र था ॥ ४१ ॥ वह भी

विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयंनच ॥ धर्माधर्मौनतेष्वास्तांनोत्तमाधमध्यमाः ॥ ३७ ॥ नवैचतुर्युगावस्थानाश्रमाऋतवोनच ॥ आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तुऋषभोऽभूत्सुतोद्विज ॥ ३८ ॥ ऋषभाद्भरतोजज्ञेवीरः पुत्रशताद्वरः ॥ सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रंमहाप्राव्राज्यमास्थितः ॥ ३९ ॥ तपस्तेपेमहाभागःपुलहाश्रमसंश्रयः ॥ हिमाह्वंदक्षिणंवर्षंभरतायपिताददौ ॥ ४० ॥ तस्मात्तुभारतंवर्षंतस्यनाम्ना महात्मनः ॥ भरतस्यान्वभूत्पुत्रः सुमतिर्नामधार्मिकः ॥ ४१ ॥ तस्मिन्राज्यंसमावेश्यभरतोऽपिवनंययौ ॥ एतेषांपुत्रपौत्रैस्तुसप्तद्वीपावसुन्धरा ॥ ४२ ॥ प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तुभुक्तास्वायम्भुवेऽन्तरे ॥ एषस्वायम्भुवःसर्गःकथितस्तेद्विजोत्तम ॥ पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कथयामिते ॥ ४३ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशेस्वायंभुवमन्वन्तरकथनंनामपंचाशत्तमोऽध्मायः ॥ ५० ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ कतिद्वीपाःसमुद्रावापर्वतावाकतिद्विज ॥ कियन्तिचैववर्षाणितेषांनद्यश्चकामुने ॥ १ ॥ महाभूतप्रमाणंचलोकालोकंतथैवच ॥ पर्य्यासंपरिमाणंचगतिचन्द्रार्कयोरपि ॥ २ ॥ एतत्प्रब्रूहिमेसर्वविस्तरेणमहामुने ॥ ३ ॥

सुमतीको राज्य देकर वनको गये थे, इनके पुत्र पौत्रगण और प्रियव्रतके पुत्रगण स्वायंभुव मन्वन्तरमें इस सप्तद्वीपवाली पृथ्वीका भोग करते आते हैं ॥ ४२ ॥ यह स्वायंभुव सर्ग पूर्व मन्वन्तरमें सम्यक् प्रकार कहा है, अब अधिक क्या कहूं ? ॥ ४३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशे स्वायंभुवमन्वन्तरकथनंनाम पंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५० ॥ क्रौष्टुकि बोले हे मुने ! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियें कितनी हैं ?॥ १ ॥ महाभूत और लोकालोकका प्रमाण क्या है ? और चन्द्र सूर्यका व्यास परिमाण और गति किस प्रकार है ? ॥ २ ॥ हे महामुने !

यह सब विस्तार सहित वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विज ! समस्त पृथ्वीका विस्तार पचास करोड़ योजन है, उसके सब स्थानोंके संबंधमें कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥ हे द्विज ! हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि पुष्करान्त जिन सब द्वीपोंका विषय कहा है, वह फिर विस्तारसहित कहता हूं ॥ ५ ॥ जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्करद्वीप, यह पूर्व पूर्व द्वीपसे यथाक्रम द्विगुण हैं ॥ ६ ॥ लवण, इक्षु, सुरा, सर्पि (घृत) दधि, दुग्ध और जलसमुद्र द्वारा द्विगुण द्विगुण वृद्धिभावसे वह परिवेष्टित हैं ॥ ७ ॥ जम्बूद्वीपकी आकृतिका परिमाण कहता हूं, विस्तार दीर्घता, और गोलाईमें एकलक्ष योजन जम्बूद्वीपका परिमाण है ॥ ८ ॥ हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ,

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ॥ तस्याःसंस्थानमखिलंकथयामिशृणुष्वतत् ॥ ४ ॥ येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बुद्वीपादयोद्विज ॥ पुष्करान्तामहाभागशृण्वेषांविस्तरंपुनः ॥ ५ ॥ द्वीपात्तुद्विगुणोद्वीपोजम्बुःप्लक्षोऽथशाल्मलिः ॥ कुशःक्रौंचस्तथाशाकःपुष्करद्वीपएवच ॥ ६ ॥ लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ॥ द्विगुणैर्द्विगुणैर्वृद्ध्यासर्वतःपरिवेष्टिताः ॥ ७ ॥ जम्बुद्वीपस्यसंस्थानंप्रवक्ष्येऽहंनिबोधमे ॥ लक्षमेकंयोजनानांवृत्तोविस्तारदैर्घ्यतः ॥ ८ ॥ हिमवान्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवच ॥ नीलःश्वेतस्तथाशृङ्गीसप्ततद्वर्षपर्वताः ॥ ९ ॥ द्विलक्षयोजनायामौमध्येतत्रमहाचलौ ॥ तयोर्दक्षिणतोयौतुयौतथोत्तरतोगिरी ॥ १० ॥ दशभिर्दशभिन्यूनैःसहस्रैस्तेपरस्परम् ॥ द्विसाहस्रोच्छ्रयाःसर्वेतावद्विस्तारिणश्चते ॥ ११ ॥ समुद्रान्तःप्रविष्टाश्चषडस्मिन्वर्षपर्वताः ॥ दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षितिः ॥ १२ ॥ वेद्यर्द्धेदक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ॥ इलावृतंतयोर्मध्येचन्द्रार्द्धाकारवत्स्थितम् ॥१३॥ ततःपूर्वेणभद्राश्वंकेतुमालंचपश्चिमे ॥ इलावृतस्यमध्येतुमेरुःकनकपर्वतः ॥१४॥

मेरु, नील, श्वेत और शृंगी, यह सात उसके वर्षपर्वत हैं ॥९॥ मध्यस्थलमें दो लाख योजन विस्तृत जो दो महागिरि हैं, उनकी दक्षिण और उत्तरदिशामें जो दो दो गिरि अवस्थित हैं ॥ १० ॥ वह परस्पर दश दश सहस्र न्यून संख्यायुक्त हैं, अन्य अब दो हजार योजन ऊंचे और इसी प्रकार विस्तृत हैं ॥ ११ ॥ इसके बीच समुद्रमें प्रविष्ट छः वर्षपर्वत हैं। यह पृथ्वी उत्तर दक्षिणमें नीची एवं मध्यस्थलमें ऊंची और चौड़ी है ॥१२॥ तीन वर्ष उत्तरमें और तीन वर्ष दक्षिणमें जाने। इन दोनोंके बीचमें इलावृतवर्ष अर्द्धचन्द्राकारसे अवस्थित है ॥१३॥ उसकी पूर्वदिशामें

भद्राश्व और पश्चिममें केतुमाल है । इलावृतके मध्यस्थलमें कनक पर्वत सुमेरु है ॥ १४ ॥ इस महापर्वतकी उंचाई चौरासी हजार योजन है । सोलह हजार योजन भूमिमें प्रविष्ट और वहाँसे सोलह हजार योजन विस्तृत है ॥१५॥ इसकी चोटी शरावेके समान बत्तीस हजार योजन चौड़ी है । इस गिरिका वर्ण पूर्वकी ओर श्वेत, दक्षिणकी ओर पीत, पश्चिमकी ओर नीला और उत्तरकी ओर लाल है ॥ १६ ॥ इसकी पूर्वादिआठों दिशामें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंका क्रमशः वास है॥१७॥उसके ऊपर पूर्वादिके क्रमसे इन्द्रादि लोकपालोंकी और मध्य स्थलमें ब्रह्माकी चौदह हजार योजन विस्तृत सभा शोभायमान है॥१८॥इसके नीचे दश हजार योजन ऊंचे पूर्वआदि चारोंदिशाओंमें चार विष्क

चतुराशीतिसाहस्रस्त स्योच्छ्रायोमहागिरेः ॥ प्रविष्टःषोडशाधस्ताद्विस्तारःषुडशैवतु ॥ १५ ॥ शरावसंस्थितत्वाच्चद्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥ शुक्लपीतोऽसितोरक्तःप्राच्यादिषुयथाक्रमम् ॥ १६ ॥ विप्रोवैश्यस्तथाशूद्रःक्षत्रियश्चस्ववर्णतः ॥ तस्योपरितथैवाष्टौषु यौंदिक्षुयथाक्रमम् ॥ १७ ॥ तस्योपरिसभादिव्याःपूर्वादिषुक्रमेणतु ॥ इंद्रादिलोकपालानांतन्मध्येब्रह्मणःसभा ॥ योजनानांस हस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ॥ १८ ॥ अयुतोच्छ्रायास्तस्याधस्तथाविष्कम्भपर्वतः ॥ प्राच्यादिषुक्रमेणैवमन्दरोगन्धमादनः ॥ ॥ १९ ॥ विपुलश्चसुपार्श्वश्चकेतुपादपशोभिताः ॥ कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वैगन्धमादने ॥ २० ॥ विपुलेचतथाश्वत्थःसुपार्श्वेचवटो महान् ॥ एकादशशतायामायोजनानामिमेनगाः ॥ २१ ॥ जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यांदिशिपर्वतौ ॥ आनीलनिषधायातौपरस्परनि रन्तरौ ॥ २२ ॥ निषधःपारियात्रश्चमेरोःपार्श्वेतुपश्चिमे ॥ यथापूर्वौतथाचैतावानीलनिषधायतौ ॥ २३ ॥ कैलासोहिमवांश्चैवद क्षिणेनमहाचलौ ॥ पूर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २४ ॥

म्भ पर्वत हैं।उनके नाम मन्दार, गंधमादन ॥ १९ ॥ विपुल और सुपार्श्व, इन चारों पर्वतोंके ऊपर केतुके समान शोभायमान चार वृक्ष हैं अर्थात् मन्दर पर कदम्ब, गंधमादन पर जामुन॥२०॥विपुलपर पीपल और सुपार्श्वके ऊपर महान् बरगदका वृक्ष है।इन पर्वतोंका प्रमाण ग्यारहसौ योजन है॥२१॥पूर्व दिशामें जठर और देवकूट पर्वत है, वह परस्पर नील और निषध पर्यन्त दीर्घ है ॥२२॥मेरुके पश्चिम पार्श्वमें निषध और पारियात्र हैं, पूर्वदिशाके समान यह भी नील और निषध पर्यन्त विस्तृत हैं॥२३॥दक्षिण दिशामें कैलास और हिमवान् नामक महागिरि हैं, यह

शृंगवाञ्जारुधिश्चैवतौपश्चोत्तरपर्वतौ ॥ यथैवदक्षिणतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥ २५ ॥ मर्यादापर्वताह्येतेकथ्यन्तेयेऽष्टौद्विजोत्तम ॥ हिमवद्धेमकूटादिपर्वतानांपरस्परम् ॥ २६ ॥ नवयोजनसाहस्त्रंप्रागुदग्दक्षिणोत्तरम् ॥ मेरोरिलावृतेतद्वन्नवचतुर्दिशम ॥ २७ ॥ फलानियानिवैजम्ब्वागन्धमादनपर्वते ॥ गजदेहप्रमाणानिपतन्तिगिरिमूर्द्धनि ॥ २८ ॥ तेषांस्रावात्प्रभवतिख्याताजम्बूनदीतिवै ॥ यत्रजाम्बूनदंनामकनकंसम्प्रजायते ॥ २९ ॥ सापरिक्रम्यवैमेरुंजम्बूमूलंपुनर्नदी ॥ विशतिद्विजशार्दूलतांपिबन्तिजनास्ततः ॥ ३० ॥ भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसंस्थितिः ॥ वराहःकेतुमालेचमत्स्यरूपस्तथोत्तरे ॥ ३१ ॥ तेषुनक्षत्रविन्यासोऽस्यमवस्थिताः॥ चतुर्ष्वपिद्विजश्रेष्ठग्रहाभिभवपाठकाः ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशेजम्बूद्वीपवर्णनंनामैकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वपिद्विजोत्तम ॥ वनानियानिचत्वारिसरांसिचनिबोधमे ॥ १ ॥ पूर्वेचैत्ररथंनामदक्षिणे नन्दनंवनम् ॥ वैभ्राजंपश्चिमेशैलेसावित्रंचोत्तराचले ॥ २ ॥

पूर्व पश्चिममें आयत, (लम्बायमान) होकर समुद्रमें प्रविष्ट हुए हैं ॥ २४ ॥ उत्तरमें शृंगवान् और जारुधि हैं, दक्षिणदिशाके समान यह भी समुद्रपर्यन्त विस्तृत हैं॥२५॥हे द्विजोत्तम!यही आठो पर्वतोंकी मर्यादा है, सो मैंने तुमसे कही और हिमवान् तथा हेमकूट आदि पर्वतोंका परस्परमें ॥२६॥ नौ हजार योजन विस्तार है और मेरुके पूर्व दक्षिणआदि चारों दिशामें इलावृतके बीचमें यह नव पर्वत हैं॥२७॥गंधमादन पर्वतमें हाथीके देहके समान जो जम्बूफल पर्वतके शिखरमें गिरते हैं ॥ २८ ॥ उनकी रसोत्पन्न नदीको जम्बू नदी कहते हैं, इस जम्बूनदीमें जाम्बूनद नामक स्वर्णकी उत्पत्ति हुई है ॥ २९ ॥ हे द्विजशार्दूल ! मेरु पर्वतकी चारों ओर परिक्रमा करके यह जम्बूनदी जम्बूके वृक्षके नीचे आकर बहती है और वहाँके वासकरनेवाले मनुष्य उसीका जल पान करते हैं ॥३०॥ भद्राश्वमें अश्वशिरा भारतमें कूर्माकृति विष्णुकेतुमालमें वराह और उत्तरमें मत्स्य रूपसे नारायण स्थित हैं ॥३१॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! इन चारों पर्वतोंमें नक्षत्रों ऋषियोंकी स्थिति और नक्षत्रोंका गमना, गमन होता है और ग्रहोंका अच्छा बुरा फल भी होता रहता है ॥३२॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपवर्णनंनामैकपंचाशत्तमोऽध्याय, ॥५१॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विजोत्तम ! मन्दरादि चार पर्वतोंमें जो चार वन और सरोवर हैं सो कहताहूं सुनो ॥ १ ॥ पूर्व शैलमें चैत्ररथ,

दक्षिणमें नन्दन, पश्चिममें वैभ्राज और उत्तरमें सावित्र नामक वन है॥२॥मेरुके पूर्वमें अरुणोद, दक्षिणमें मानस, पश्चिममें शीतोद और उत्तरमें महाभद्र नामक सरोवर अवस्थित है ॥३॥ मन्दरकी पूर्वदिशामें शीतार्त, चक्रमुंज, कुलीर, सुकंकवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली, भवाचल ॥ ४ ॥ बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध, और देवशैल, यह सब पर्वत हैं ॥५॥ त्रिकूट, शिखर, कलिंग, पतङ्गक, रुचक, सानुमान्, ताम्रक विशाखवान् ॥६॥ श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एकशृंग, महाशैल, राजशैल, पिपाठक ॥ ७ ॥ पंचशैल, कैलास और पर्वतश्रेष्ठ हिमवान्,

अरुणोदंसरःपूर्वेमानसंदक्षिणेतथा ॥ शीतोदंपश्चिमेमेरोर्महाभद्रंतथोत्तरे ॥ ३ ॥ शीतार्तश्चक्रमुंजश्चकुलीरोऽथश्चकङ्कवान् ॥ मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीभवाचलः ॥ ४ ॥ सुबिन्दुर्मन्दरोवेणुस्तामसोनिषधस्तथा ॥ देवशैलश्चपूर्वेणमन्दरस्यमहाचलः ॥ ॥ ५ ॥ त्रिकूटःशिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपतङ्गकः ॥ रुचकःसानुमांश्चाद्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ॥ ६ ॥ श्वेतोदरःसमूलश्च वसुधारश्चरत्नवान् ॥ एकशृङ्गोमहाशैलोराजशैलःपिपाठकः ॥ ७ ॥ पंचशैलोऽथकैलासोहिमवांश्चाचलोत्तमः ॥ इत्येतेदक्षिणेपार्श्वेमेरोःप्रोक्तामहाचलाः ॥ ८ ॥ सुरक्षःशिशिराक्षश्चवैदूर्यःपिंगलस्तथा ॥ पिंजरोऽथमहाभद्रःसुरसःकपिलोमधुः ॥ ९ ॥ अञ्जनः कुक्कुटःकृष्णःपाण्डुरश्चाचलोत्तमः ॥ सहस्रशिखरश्चाद्रिपारियात्रःसशृंगवान् ॥ १० ॥ पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः ॥ एतेऽचलाःसमाख्याताःशृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ॥ ११ ॥ शङ्खकूटोऽथवृषभोहंसनाभस्तथाचलः ॥ कपिलेन्द्रस्तथाशैलः सानुमान्नीलएवच ॥ १२ ॥ स्वर्णशृङ्गःशातशृंगःपुष्पकोमेघपर्वतः ॥ विरजाक्षोवराहाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा ॥ १३ ॥ इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ॥ एतेषांपर्वतानांतुद्रोण्योतीवमनोहराः ॥ १४ ॥

यह सब महापर्वत मेरुके दक्षिण पार्श्वमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ सुराक्ष, शिशिराक्ष, वैदूर्य, पिङ्गल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल, मधु ॥ ९ ॥ अंजन, कुक्कुट, कृष्ण, पाण्डुर; सहस्रशिखर पारियात्र और शृंगवान् ॥ १० ॥ यह मेरु और विष्कम्भकी पश्चिम दिशासे बाहर स्थित हैं। अब उत्तरदिशाके पर्वतोंका वर्णन करता हूं, सुनो ॥११॥ शंखकूट, वृषभ, हंस नाभ, कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील ॥ १२ ॥ स्वर्णशृंगी, शातशृंग, पुष्पक, मेघपर्वत, विरजाक्ष, वराहाद्रि तथा मयूर और जारुधि ॥१३॥ हे ब्रह्मन्! यह सब पर्वत मेरुके उत्तर भागमें कहे गये हैं। इन पर्वतोंकी

कन्दरा अत्यन्त मनोहर हैं ॥ १४ ॥ हे द्विजोत्तम ! यह संपूर्ण पर्वत, वन और स्वच्छ जलयुक्त सरोवरोंमें अत्यन्त शोभायमान हैं और इस परम पुण्यमय भूमिमें पुण्यवान् मनुष्योंका ही जन्म होता है ॥ १५ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! स्वर्गकी अपेक्षा अधिक गुणवाली यह सब स्थान भौम स्वर्गके नामसे विख्यात है, यहाँ अपूर्व पुण्यपापका उपार्जन नहीं है ॥ १६ ॥ हे द्विजसत्तम ! इन सब शीतान्तादि पर्वतोंका उपभोग देवताओंको भी पुण्यभोग कहा गया है ॥ १७ ॥ वहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस देवता और गन्धर्वोंका शोभायमान ग्राम स्थान है ॥ १८ ॥ यह पृथ्वी महापुण्यरूप और अत्यन्त मनोरम्य है और देवताओंके-उपवन यह सुन्दर सुन्दर मनहरण

वनैरमलपानीयैःसरोभिरुपशोभिनाः ॥ तासुपुण्यकृतांजन्ममनुष्याणांद्विजोत्तम ॥ १५ ॥ एतेभौमाद्विजश्रेष्ठस्वर्गाःस्वर्गगुणाधिकाः ॥ नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ॥ १६ ॥ पुण्योपभोगएवोक्तोदेवानामपितास्वपि ॥ शीतान्ताद्येषुचैतेषुशैलेषुद्विजसत्तम् ॥ १७ ॥ विद्याधरगणांयक्षाणांकिन्नरोरगरक्षसाम् ॥ देवानांचमहावासागन्धर्वाणांचशोभनाः ॥ १८ ॥ महापुण्यामनोज्ञाश्चसदेवोपवनैर्युताः ॥ सरांसिचमनोज्ञानिसर्वर्तुसुखदोनिलः ॥ १९ ॥ नचैतेषुमनुष्याणांवैमनस्यानिकुर्वन्ति ॥ तदेतत्पार्थिवंपद्मंचतुष्पत्रंमयोदितम् ॥ २० ॥ भद्राश्वभारताद्यानिपत्राण्यस्यचतुर्दिशम् ॥ भारतंनामयद्वर्षंदक्षिणेनमयोदितम् ॥ २१ ॥ तत्कर्मभूमिर्नान्यत्रसंप्राप्तिःपुण्यपापयोः ॥ एतत्प्रधानंविज्ञेयंयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ २२ ॥ अस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ॥ तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नरः प्राप्नोतिवैद्विज ॥ २३ ॥ इति श्रीमा०भुवनकोशेजम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनंनामद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः॥५२॥

सरोवरोंसे शोभायमान है और यहांकी पवन भी सब ऋतुओंमें सुख देनेवाली है ॥१९॥ किसी स्थानमेंही मनुष्योंके कुछ वैमनस्यका कारण दिखाई नहीं देता इसीलिये मैंने इसको चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहकर वर्णन किया है ॥ २० ॥ भद्राश्वभारतादि इसके चारों ओर चार पत्ते हैं । पहले दक्षिणदिशामें जो भारतवर्षका वर्णन किया है ॥ २१ ॥ वह कर्मभूमि है, दूसरे किसी स्थानमें पापपुण्यकी प्राप्ति नहीं है, इसमें सब प्रतिष्ठित रहनेके कारण भारतवर्ष प्रधान कहकर प्रसिद्ध है ॥ २२ ॥ हे द्विज ! कर्मभूमिके कारणही मनुष्यगण स्वर्ग, अपवर्ग, मनुष्यता, नरक, पक्षीयोनि वा अन्यान्य अवस्थाको प्राप्त होते हैं ॥२३॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां जम्बूद्वीपान्तर्गतखण्डवर्णनंनाम द्विपंचाश-

त्तमोऽध्यायः ॥ ५२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले कि—जगद्योनि नारायणका जो ध्रुवाधार नामक पद है, उससेही त्रिपथगामिनी गंगादेवी उत्पन्न हुई है ॥ १ ॥ वह समस्त जलकी आधार स्वरूप सुधायोनि चन्द्रमण्डलमें प्रविष्ट होकर वहां सम्बध्यमान सूर्यकी किरणोंके मिलनेसे अति पवित्र हो ॥ २ ॥ सुमेरुपर्वतके ऊपर गिरी है और वहांके समस्त कूट प्रान्तसे निपतित और वर्त्तित होकर चार धारामें निर्गत हुई हैं ॥ ३ ॥ इस प्रकार जलके विस्तारवाली अवलम्बरहित गंगादेवी समस्त मन्दरादि पर्वतमें विभक्त होकर समान भावसे गिरी हैं ॥ ४ ॥ और क्रमशः समस्त पर्वतकी शिलाओंको तोड़ती हुई गई हैं, तिनमें गंगा देवीकी जो जलधारा पूर्वदिशामें प्रवाहित होकर चैत्ररथ वनकी ओर गई है, उसका नाम सीता

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ धराधारंजगद्योनेःपदंनारायणस्यच ॥ ततःप्रवृत्तायादेवीगंगात्रिपथगामिनी ॥ १ ॥ साप्रविश्य सुधायोनिंसोममाधारमम्भसाम् ॥ ततः संवर्द्धमानार्करश्मिसंङ्गतिपावनी ॥ २ ॥ पपातमेरुपृष्ठेचसाचतुर्द्धाततोययौ ॥ मेरुकूटतटान्तेभ्योनिपतन्तीविवर्तिता ॥ ३ ॥ विकीर्यमाणसलिलानिरालम्बापपातसा ॥ मन्दराद्येषुपादेषुप्रविभक्तोदकासमम् ॥ ४ ॥ चतुर्ष्वपिपपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ॥ पूर्वासीतेऽतिविख्याताययौचैत्ररथंवनम् ॥ ५ ॥ तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदंसरोवरम् ॥ शीतान्तंचगिरिंतस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ॥ ६ ॥ गत्वाभुवंसमासाद्यभद्राश्वेजलधिंगता ॥ तथैवालकनन्दाख्यादक्षिणगन्धमादने ॥ ७ ॥ मेरुपादेवनंगत्वानन्दनंदेवनन्दनम् ॥ मानसंचमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ॥ ८ ॥ आसाद्यशैलराजानंरम्यंत्रिशिखरंगता ॥ तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणेयेक्रमोदिताः ॥ ९ ॥

विख्यात है ॥ ५ ॥ वही सीता गंगा चैत्ररथ वनको जलमय करके वरुणोद सरोवरमें गई है, फिर वहांसे शीतान्तपर्वत और अन्यान्य सब पर्वत अतिक्रम करके ॥ ६ ॥ पृथ्वीमें जाय भद्राश्व वर्ष होती हुई समुद्रमें गई है और सुमेरुकी दक्षिणदिशासे गंगाका जो जल गंधमादन पर्वतमें गिरा है उसका नाम अलकनन्दा है ॥ ७ ॥ अलकनन्दाने सुमेरुके निकटवर्त्ती देवताओंके आह्लादजनक नन्दनवनमें जाकर महावेगसे मानस सरोवरको प्लावित किया है ॥८॥ मानसरोवरके प्लावित करनेपर पर्वतराज रम्य पर्वतके शिखर देश और वहांसे दक्षिणके समस्त पर्वतोंको अतिक्रम करके ॥ ९ ॥

और प्लावितकर महाद्रि हिमालयमें गिरी है, तहां वृषध्वज भगवान् शम्भुने गंगाको धारण किया और उन्होंने किसी प्रकार भी उनको नहीं छोड़ा ॥ १० ॥ अनन्तर जब महाराज भागीरथने उपवास और स्तुति आदिसे उसकी आराधना करी, तब उन्होंने गंगाको छोड़ा और गंगा देवीने श्रीमहादेवजीके हाथमें छूटतेही सत भाग होकर दक्षिण समुद्रमें प्रवेश किया है ॥ ११ ॥ तिनमें महा नदीके तीन भाग पूर्वकी और प्लावित करके समुद्रमें प्रविष्ट हुई और एक धारा भागीरथके रथके पीछे पीछे जाकर दक्षिण समुद्रमें मिली है ॥ १२ ॥ सुमेरु पर्वतके पश्चिममें विपुल पाद होकर गंगाकी जो धारा निकली है उस महानदीका नाम सुचक्षु है. वह वैभ्राज पर्वतमें वैभ्राज वनको पवित्र करके॥१३॥ शीतोद

तान्प्लावयित्वासंप्राप्ताहिमवन्तंमहागिरिम् ॥ दधारतत्रतांशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः ॥१०॥ भगीरथेनोपवासैःस्तुत्याचाराधितोविभुः ॥ तत्रमुक्ताचशर्वेणसप्तधादक्षिणोदधिम् ॥ ११ ॥ प्रविवेशत्रिधाप्राच्यांप्लावयन्तीमहानदी ॥ भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणाम् ॥ ॥ १२ ॥ तथैवपश्चिमेपादेविपुलेसामहानदी ॥ सुचक्षुरितिविख्यातावैभ्राजसावनंययौ ॥ १३ ॥ शीतोदंचसरस्तस्मात्प्लावयन्तीमहानदी ॥ तस्मात्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेषुनिपत्यसा ॥ सुचक्षुःपर्वतंप्राप्तातातश्चत्रिशिखंगता ॥ १४ ॥ केतुमालंसमासाद्यप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ॥ १५ ॥ (गत्वोत्तरांदिशंगङ्गादिव्यासाचमहानदी ॥ तस्माच्चऋषभादींश्चक्रमादुत्तरजान्नगान् ॥) सुपार्श्वंतुतथैवाद्रिंमेरुपादंहिसागता ॥ भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ॥१६॥ तत्पावयन्तीसंप्राप्तामहाभद्रंसरोवरम् ॥ ततश्चशङ्खकूटंसाप्रयातावैमहानदी ॥ १७ ॥ तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्यशिलोच्चयान् ॥ महार्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ॥ १८ ॥

सरोवरको प्लावित करती है, और वहांसे क्रमानुसार संपूर्ण पर्वतोंके शिखरपर होकर सुचक्षु पर्वतपर होती हुई त्रिशिखर पर्वतमें गई है ॥ १४ ॥ फिर केतुमालवर्षमें प्रविष्ट होकर दक्षिण समुद्रमें गई है ॥१५॥ इसके पीछे यह महादिव्य गंगा नदी उत्तर दिशामें जाकर फिर ऋषभादिक उत्तर पर्वतोंमें गई है। यह चौथीधार सुपार्श्व और मेरु पर्वतपर होकर सविता वनमें पहुंची, वहां उसका नाम भद्रसोमा विख्यात हुआ वह भद्रसोमा गंगा सवितृवनको ॥१६॥ पवित्रकर महाभद्र सरोवरमें गई है, अनन्तर वह महानदी शंखकूट पर्वत ॥१७॥ और वहांसे वृषभादि पर्वतोंमें जाकर समस्त उत्तर कुरुदेशको पवित्र करती हुई महासागरके संगमिलित हुई है ॥ १८ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे यह गंगाजीका विषय वर्णन किया। जम्बूद्वीपके निवेशमें जो ॥ १९ ॥ किंपुरुषादि समस्त वर्ष वर्णित हुए हैं, उनमें यथावत् जो सब प्राणीवास करते हैं वह प्रायः सुखी, निरातङ्क एवं न्यूनता और अधिकता रहित हैं ॥ २० ॥ जो नववर्ष कहे गये हैं उनमें भी सात सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देशमें ही पर्वत प्रवाहित समस्त नदियें विद्यमान हैं ॥ २१ ॥ हे द्विजोत्तम ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं उनमें जो जल है वह केवल मात्र उद्भिद है क्योंकि इस भारतवर्षमें ही मेघका जल होता है ॥ २२ ॥ और यह जो आठवर्ष हैं वहां वार्क्षी स्वाभाविकी देश्या तोयोत्था मानसी और कर्मजा, यह छः प्रकार मात्र मनकी सिद्धि है ॥ २३ ॥ अभिलाषा

एवमेषामयागंगाकथितातेद्विजर्षभ ॥ जम्बूद्वीपनिवेशश्चवर्षाणिचयथातथम ॥ १९ ॥ वसन्तितेषुसर्वेषुप्रजाःकिंपुरुषादिषु ॥ सुख प्रायानिरातङ्कान्यूनतोत्कर्षवर्जिताः ॥ २० ॥ नवस्वपिचवर्षेषुसप्तसप्तकुलाचलाः ॥ एकैकस्मिंस्तथादेशेनद्यश्चाद्रिविनिःसृताः ॥ ॥ २१ ॥ यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्षाण्यष्टौद्विजोत्तम ॥ तेषूद्भिज्जानितोयानिनैवंवार्यत्रभारते ॥ २२ ॥ वार्क्षीस्वाभाविकीदेश्यातोयो त्थामानसीतथा ॥ कर्मजाचनृणांसिद्धिर्वर्षेष्वेतेषुचाष्टसु ॥ २३ ॥ कामप्रदेभ्योवृक्षेभ्योवार्क्षीसिद्धिःस्वभावजा ॥ स्वाभाविकीस माख्यतातृप्तिर्देश्याचदैशिकी ॥२४॥ अपांसौक्ष्म्याच्चतोयोत्थाद्ध्यानोपेताच्चमानसी॥ उपासनादिकार्यात्तुकर्मजासाप्युदाहृता॥२५॥ नचैतेषुयुगावस्थानाधयोव्याधयोनच ॥ पुण्यापुण्यसमारम्भनैवतेषुद्विजोत्तम ॥ २६ ॥ इति श्रीमा०गङ्गावतरणवर्णनंनामत्रिपंचा शत्तमोऽध्याय ॥ ५३ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितंत्वेतज्जम्बूद्वीपंसमासतः ॥ यदेतद्भवताप्रोक्तंकर्मनान्यत्रपुण्यदम् ॥ १ ॥

प्रदान करनेवाले वृक्षसे जो सिद्धि उत्पन्न होती है उसका नाम वार्क्षी है। स्वभावोत्पन्न सिद्धिका नाम स्वाभाविकी है, देशजात सिद्धि नाम देश्या ॥२४॥ और जलकी सूक्ष्मतावशतः जो सिद्धि होती है वह तोयोत्था सिद्धि है, सिद्धिके नामसे मानसीसिद्धि ध्यानद्वारा संपादित होती है और उपासनादि कार्यद्वारा जो सिद्धिलाभ होती है, वह कर्मजा विख्यात है ॥२५॥ हे द्विजोत्तम ! इन समस्त वर्षमें युगभेद आधिव्याधि और पुण्य वा पापका समारम्भ कुछ नहीं है ॥२६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां गंगावतरणवर्णनं नाम त्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५३ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने इस जम्बूद्वीपका विषय संक्षेपसे वर्णन किया ॥ जो हो हे महाभाग ! आपने कहा कि भारतवर्षके अतिरिक्त अन्य)

किसी स्थानमेंही कोई कर्म ॥१॥ पाप वा पुण्यके निमित्त अनुष्ठित नहीं होता इसी स्थानसे स्वर्ग और मोक्ष मध्यदशा और अन्त्यदशा (मरण दशा)॥२॥ समस्त लाभ होता है अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंका कर्मानुष्ठान नहीं होता। सुनते हैं ब्रह्मन् ! इस भारतवर्षकी कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये॥३॥ हे द्विजशार्दूल! इस भारतवर्षमें जितने भेद हैं उन सब भेदोंका जितना परिणाम है, जिस प्रकार स्थित है उसमें जितने देश और पर्वत हैं सब विस्तारसहित कहिये ॥४॥ मार्कण्डेयजी बोले हे विप्रोत्तम ! इस भारतवर्षके नव भेद हैं, वह समस्तही समुद्रद्वारा अन्तरित और परस्पर अगम्य हैं, उनका वर्णन करताहूं ॥ ५ ॥ इन्द्रद्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व, वारुण ॥ ६ ॥ और नवम भारत है। यह भारत

पापायवामहाभागवर्जयित्वातुभारतम् ॥ इतःस्वर्गश्चमोक्षश्चमध्यश्चान्तश्चगम्यते ॥ २ ॥ नखल्वन्यत्रमर्त्यानांभूमौ कर्मविधीयते ॥ तस्माद्विस्तरशोब्रह्मन्ममैतद्भारतंवद ॥ ३ ॥ येचास्यभेदायावन्तोयथावत्स्थितिरेवच ॥ वर्षोऽयंद्विजशार्दूलयेचास्मिन्देशपर्वताः ॥ ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ भारतस्यास्यवर्षस्यनवभेदान्निबोधमे ॥ समुद्रान्तरिताज्ञेयास्तेत्वगम्याःपरस्परम् ॥ ५ ॥ इन्द्रद्वीपःकशेरूमांस्ताम्रवर्णोगभस्तिमान् ॥ नागद्वीपस्तथासौम्योगान्धर्वोवारुणस्तथा ॥६॥ अयंतुनवमस्तेषांद्वीपःसागरसंवृतः ॥ योजनानांसहस्रंवैद्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरम् ॥७॥ पूर्वेकिरातायस्यान्तेपश्चिमेयवनास्तथा ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्राश्चान्तःस्थिता द्विज ॥ ८ ॥ इज्याध्यायवणिज्याद्यैःकर्मभिःकृतपावनाः ॥ तेषांसंव्यवहारश्चएभिःकर्मभिरिष्यते ॥ ९ ॥ स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्चपुण्यंपापंचवैतदा ॥ महेन्द्रोमलयःसह्यःशुक्तिमानृक्षपर्वतः ॥ १० ॥ विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैवात्रकुलाचलाः ॥ तेषांसहस्रशश्चान्ये भूधरासमीपगाः ॥ ११ ॥

नामक जो नवम द्वीप है, यह सागरसे घिरा है एवं दक्षिण और उत्तरमें सहस्र योजन परिमित है ॥ ७ ॥ हे द्विज ! इसके पूर्वभागमें किरात, एवं पश्चिम सीमामें यवनगण वास करते हैं। तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रगण इसके मध्य भागमें स्थित हैं ॥ ८ ॥ यह यज्ञ, अध्ययन और वाणिज्य इत्यादि अपने अपने कर्मसे पवित्र होते हैं और सब कर्मोंके द्वारा उनका सम्यक् प्रकार व्यवहार ॥ ९ ॥ स्वर्गलाभ, मोक्ष प्राप्ति और पुण्य पापादि समस्त ही उपस्थित होते हैं। महेन्द्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, ऋक्ष ॥ १० ॥ विन्ध्य और पारियात्र नामक सात

कुल पर्वत इसमें वर्तमान हैं। इन सब कुलाचलोंके समीपवर्ती सहस्र सहस्र पर्वत हैं॥ ११ ॥ तिनमें कोलाहल वैभ्राज, मन्दर, दर्दुर, ॥ १२ ॥ वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डुर ॥ १३ ॥ पुष्प, दुर्जयन्त, रैवतक, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूट शैल, कृतस्मर ॥ १४ ॥ श्रीपर्वत और कोरपर्वत यह अत्यन्त ऊंचे, मनोहर, विस्तीर्ण और विपुल हैं। इनमें और भी शतशत जनपद हैं। इन सब पर्वतोंके द्वारा मिलित समस्त जनपद भागानुसार म्लेच्छ और आर्य नामसे विख्यत हुए हैं ॥ १५ ॥ उन जनपदोंमें वास करनेवाले मनुष्य जिन सब श्रेष्ठ नदियोंका जलपान करते हैं, अब उनके नाम कहता हूं भलीभाँति अवगत होओ। गंगा, सरस्वती, सिन्धु,

विस्तारोच्छ्रयिणोरम्याविपुलाश्चित्रसानवः ॥ कोलाहलःसवैभ्राजोमन्दरोदर्दुराचलः ॥ १२ ॥ वातस्वनोवैद्युतश्चमैनाकःस्वर सस्तथा ॥ तुंगप्रस्थोनागगिरीरोचनःपाण्डुराचलाः ॥ १३ ॥ पुष्पोगिरिर्दुर्जयन्तोरैवतोऽर्बुदएवच ॥ ऋष्यमूकःसगोमन्तःकूटशैलः कृतस्मरः ॥ १४ ॥ श्रीपर्वतश्चकोरश्चशतशोऽन्येचपर्वताः ॥ तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाश्चार्याचभागशः ॥ १५ ॥ तैःपीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठायास्ताःसम्यङ्निबोधमे॥ गङ्गासरस्वतीसिन्धुश्चन्द्रभागातथापरा ॥ १६ ॥ यमुनाचशतद्रुश्चवितस्तेरावतीकुहुः ॥ गोमतीधूतपापाचबाहुदाचदृषद्वती ॥ १७ ॥ विपाशादेविकारंक्षुर्निश्चीरागण्डकीतथा ॥ कौशिकीचापगाविप्रहिमवत्पादनिः सृताः ॥ १८ ॥ वेदस्मृतिर्वेदवतीवृत्रघ्नीसिन्धुरेवच ॥ वेणासानन्दनाचैवसदानारीमहीतथा ॥ १९ ॥ पाराचर्मण्वतीनूपीविदिजावे त्रवत्यपि ॥ क्षिप्राह्यवन्तीचतथापारियात्राश्रयास्मृताः ॥ २० ॥ शोणोमहानदश्चैवनर्मदासुरथाद्रिजा ॥ मन्दाकिनीदशार्णाचचित्र कूटातथापरा ॥ २१ ॥

चन्द्रभागा, ॥ १६ ॥ यमुना, शतद्रु, वितस्ता, इरावती कुहू, गोमती, पुण्य सलिला, बाहुदा, दृषद्वती ॥ १७ ॥ विपाशा, देविका, ऋक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी। हे विप्र! यह सब नदियें हिमालयके प्रत्यन्त सब पर्वतोंसे निकली हैं ॥ १८ ॥ और देवस्मृति, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, देवा, सान्दनी, सदानीरा, मही ॥१९॥ पारा, चर्मण्वती, तापी, विदिशा, वेत्रवती, शिवा, और अवर्णी, यह सब नदियें पारियात्र पर्वतमें नीकली हैं ॥ २० ॥ महानद शोणा और नर्मदा, सुरथाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं मन्दाकिनी और दशार्णा नदी चित्रकूट पर्वतसे निकली हैं ॥ २१ ॥

चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलिश्रोणि, विपाशा, मंजुला ॥ २२ ॥ सुमेरुजा, शुक्तिमती, शकुली, त्रिदिवा, और आक्रमु यह वेगवाहिनी सब नदियें स्कन्दपाद वा ऋक्ष पर्वतके उन्नतस्थानोंसे नीकली हैं ॥ २३ ॥ क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निषधावती, वेणवा, वैतरणी, सिनीवाली कुमुद्वती ॥ २४ ॥ करतोया, महागौरी दुर्गा और अन्तशिरा यह पुण्यजलवाली शुभ प्रद समस्त नदियें विन्ध्यपादसे निकली हैं ॥ २५ ॥ गोदावरी, भीमरथी, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाह्या और महानदी कावेरी ॥ २६ ॥ यह भी विंध्यपर्वतसे निकली हैं। और कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्पलावती नदी पुष्प पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २७ ॥

चित्रोत्पलासतमसाकरमोदापिशाचिका ॥ तथान्यापिप्पलश्रोणिर्विपाशावञ्जुलानदी ॥ २२ ॥ सुमेरुजाशुक्तिमतीशकुलीत्रिदिवाक्रमुः ॥ ऋक्षपादप्रसूतास्तथान्यावेगवाहिनी ॥ २३ ॥ क्षिप्रापयोष्णीनिर्विन्ध्यातापीचनिषधावती ॥ वेण्यावैतरणीचैवसिनीवाली कुमुद्वती ॥ २४ ॥ करतोयामहागौरीदुर्गाचान्तःशिवातथा ॥ विन्ध्यपादप्रसूतास्तानद्यःपुण्यजलाःशुभाः ॥ २५ ॥ गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्यातथापगा ॥ तुङ्गभद्रासुप्रयोगावाह्याकावेर्यथापगा ॥ २६ ॥ सह्यपादविनिष्क्रान्ताइत्येताःसरिदुत्तमाः ॥ कृतमालाताम्रपर्णीपुष्पजामुत्पलावती ॥ २७ ॥ मलयाद्रिसमुद्भूतानद्यःशीतजलास्त्विमाः ॥ पितृसोमर्षिकुल्याचइक्षुकात्रिदिवाचया ॥ ॥ २८ ॥ लांगूलिनीवंशकरामहेन्द्रप्रभवाःस्मृताऋषिकुल्याकुमारीचमंदगामन्दवाहिनी ॥ २९ ॥ कुशापलाशिनीचैवशुक्तिमत्प्रभवाः स्मृताः ॥ सर्वाःपुण्याःसरस्वत्यःसर्वागंगाःसमुद्रगाः ॥ ३० ॥ विश्वस्यमातरःसर्वाःसर्वपापहराःस्मृताः ॥ अन्याःसहस्रशश्चोक्ताः क्षुद्रनद्योद्विजोत्तम ॥ ३१ ॥

पितृकुल्या, सोमकुल्या ऋषिकुल्या इक्षुका और त्रिदिवा, यह शीतलजल वाली नदियें मलयाद्रिसे उत्पन्न हुई हैं ॥ २८ ॥ लाङ्गलिनी और वंशकरा नामक दो नदी महेन्द्र पर्वतसे उत्पन्न हुई हैं ॥ ऋषिकुल्या, कुमारी, मन्दगा, मन्दवाहिनी ॥ २९ ॥ कुशा और पलाशिनी, यह सब नदियें शुक्तिमान् पर्वतसे निकली हैं। हे द्विजवर ! यह जो सब नदियोंके नाम कहे, यह सबही अत्यन्त पुण्यप्रद और अधिक जलवाली हैं, इनमें कितनीही गंगा और कितनीही समुद्रमें गिरीं हैं ॥३०॥ हे द्विजोत्तम ! यह सबही विश्व संसारकी मातास्वरूप और समस्त

ही पापोंकी हरनेवाली हैं।इनके अतिरिक्त और भी सहस्र सहस्र छोटी नदियें हैं ॥ ३१॥ तिनमें कोई वर्षाके समय बहतीं हैं और किसीमें सदा जल रहता है।मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुण्डल, काशी, कोशल॥ ३२॥अथर्व, कलिंग, आमलक और वृक, यह संपूर्ण जनपद(देश)प्रायः मध्यदेशके कहे गये हैं॥ ३३॥सह्यपर्वतकी उत्तरदिशाके जिस स्थानमें गोदावरी नदी बहती है, संपूर्ण पृथ्वीमें वही स्थान अत्यन्त मनोरम है॥ ३४॥ वहां महात्मा भार्गवकी गोवर्द्धननामक मनोहर नगरी है और बाह्लीक, वाटधान, आभीर और कालतोयक ॥ ३५॥ यह अपरान्तदेश है।शूद्रपह्लव, चर्मखण्डित,

प्रावृट्कालवहाःकाश्चित्सर्वकालवहाश्चयाः ॥ मत्स्याश्वकूटाःकुल्याश्चकुन्तलाःकाशिकोशलाः ॥ ३२ ॥ अर्बुदाश्चार्कलिंगाश्च मलकाश्चवृकैःसह ॥ मध्यदेश्याजनपदाःप्रायशोमीप्रायकीर्त्तिताः ॥ ३३ ॥ सह्यस्यचोत्तरेयास्तुयत्रगोदावरीनदी ॥ पृथिव्यामपि कृत्स्नायांसप्रदेशोमनोरमः ॥ ३४ ॥ गोवर्द्धनपुरंरम्यंभार्गवस्यमहात्मनः ॥ बाह्लीकावाटधानश्चआभीराःकालतोयकाः ॥ ३५ ॥ अपरान्ताश्चशूद्राश्चपह्लवाश्चर्मखण्डिकाः ॥ गान्धारांयवनाश्चैवसिन्धुसौवीरमद्रकाः ॥ ३६ ॥ शतद्रुजाःकलिङ्गाश्चपारदाहार भूषिकाः ॥ माठराबहुभद्राश्चकैकेयादशमालिकाः ॥ ३७ ॥ क्षत्रियोपनिवेशाश्चवैश्यशूद्रकुलानिच ॥ काम्बोजादरदाश्चैववर्बराअंग लौकिकाः ॥ ३८ ॥ चीनाश्चैवतुपाराश्चपह्लवाबाह्यतोदराः ॥ आत्रेयाश्चभरद्वाजाःपुष्कलाश्चकशेरुकाः ॥ ३९ ॥ लम्पाकाः शूलकाराश्चचुलिकाजागुडैःसह ॥ औषधाश्चानिमद्राश्चकिरातानांचजातयः ॥ ४० ॥ तामसाहंसमार्गाश्चकाश्मीरास्तुगणा स्तथा ॥ शूलिकाःकुहकाश्चैवऊर्णादार्वास्तथैवच ॥ ४१ ॥ एतेदशह्युदीच्यास्तुप्राच्यान्देशान्निबोधमे ॥ अन्धारकामुद्गरकाअन्त र्गिरिबहिर्गिराः ॥ ४२ ॥

गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक॥ ३६॥शतद्रुज, लिंगपाद, हारभूषिक, माठर, बहुभद्र, केकय और दशमालिका॥ ३७॥ इत्यादि सब देशोंमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रकुल वास करते हैं, काम्बोज, दरद, वर्बर, अंगलौकिक (हर्षवर्द्धन)॥ ३८॥चीन, तुषार और बहुल, इन प्रदेशोत्पन्न मनुष्यगण बहिर्देशज कहलाते हैं। आत्रेय, भारद्वाज, पुष्कल, कशेरुक, ॥ ३९॥लम्बाक, शूलकार, चुलिक, जागुड़, औषध और अनिभद्र इत्यादि जातिके मनुष्य किरातजातिका भेदविशेष हैं ॥ ४०॥ और तामस, हंसमार्ग, काश्मीर तङ्गण, शूलिक, कुहक, ऊर्ण और दर्व ॥ ४१॥ इत्यादि समस्त

देश उत्तरमें स्थित हैं । इनके पीछे पूर्वदेश सुनो । अध्रारक, मुदकर, अन्तर्गिरि; बहिर्गिरि ॥ ४२ ॥ प्रवङ्ग, रङ्गय, मानद, मानवर्त्तिक, उत्तरब्रह्म, प्रविजय; भार्गव ज्ञेयमल्लक ॥ ४३ ॥ प्राग्ज्योतिष मद्र; विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध और गोमन्त इत्यादि समस्त जनपद पूर्वदिशामें अवस्थित हैं॥४४॥अनन्तर दक्षिणपथस्थित समस्त जनपदोंका वर्णन करताहूं । पांड्य, केरल, चोल, कुन्त्य ॥४५॥ शैलुष, मूषिक, कुसुम, नामवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिंग ॥४६॥ आभीर, वैशिक, आढकी जहांपर शवरलोग वास करते हैं । पुलिन्द, विन्ध्यमौलेय, वैदर्भ, दण्डक ॥ ४७ ॥ पौरिक, मौलिक, अश्मक, भोगवर्द्धन, नैमिषिक, कुन्तल, अन्ध, उद्भिद और वनदारक

तथाप्रवङ्गारङ्गेयामालदामलवर्त्तिकाः ॥ ब्राह्मोत्तराःप्रविजयाभार्गवाज्ञेयमल्लकाः ॥ ४३ ॥ प्राग्ज्योतिषाश्चमद्राश्चविदेहास्ताम्रलिप्तकाः ॥ मल्लामगधगोमन्दाःप्राच्याजनपदास्मृताः ॥ ४४ ॥ अथापरेजनपदादक्षिणापथवासिनः ॥ पांड्याश्चकेरलाश्चैवचोलाःकुंत्यास्तथैवच ॥ ४५ ॥ शैलूषामूषिकाश्चैवकुमारावानवासकाः ॥ महाराष्ट्रामाहिषिकाःकलिङ्गाश्चैवसर्वशः ॥ ४६ ॥ आभीराःसहवैशिक्याआटव्याःशबराश्चये ॥ पुलिन्दाविन्ध्यमालेयावैदर्भादण्डकैःसह ॥ ४७ ॥ पौरिकामौलिकाश्चैवअश्मकाभोगवर्द्धनाः ॥ नैषिकाःकुन्तलाआन्ध्राउद्भिदावनदारकाः ॥ ४८ ॥ दाक्षिणात्यास्त्वमीदेशाअपरांस्तान्निबोधमे ॥ सूर्यारकाः कालिवलादुर्गाश्चालीकटैःसह ॥ ४९ ॥ पुलिन्दाश्चसुमीनाश्चरूपपाःस्वापदैःसह ॥ तथाकुरुमिनश्चैवसर्वेचैवकठाक्षराः ॥ ५० ॥ (कारस्करालोहजंघावाजेयाराजभद्रकाः) ॥ तोसलाःकोसलाश्चैवत्रैपुराविदिशस्तथा ॥ (तुषारास्तुंबुराश्चवसर्वे चैवकरस्कराः ॥) नासिक्यावाश्चयेचान्येयेचैवोत्तरनर्म्मदाः ॥ ५१ ॥ भीरुकच्छाःसमाहेयाःसहसारस्वतैरपि ॥ काश्मीराश्चसुराष्ट्राश्चआवन्त्याश्चार्बुदैःसह ॥ ५२ ॥

॥ ४८ ॥ इत्यादि भोगवर्द्धन समस्त देश दाक्षिणात्य कहे गये हैं, अब पश्चिदेशकी कथा कहताहूं सुनो । सूर्यारक, कालिवल, दुर्ग, आलीकट॥४९॥पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद और कुरुमिन इत्यादि देशको कटाक्षर॥५०॥(कारस्कर लोहजंघ वाजेय, राजभद्र)तोशल और कोशल, त्रिपुर, विदिश (तुषार और तुबुर यह सब कारस्कार है) वा नासिक्याव कहते हैं । और उत्तर नर्मदा, भीरुकच्छ, माहेय, सारस्वत ॥ ५१ ॥ काश्मीर, सुराष्ट्र, आरम्भ और और अर्बुद इत्यादि समस्त देश अपरान्त अर्थात् पाश्चात्य कहकर विख्यात हैं, अब

विन्ध्यवासी सब देशोंका वर्णन सुनो ॥ ५२ ॥ सरज, करुष, केरल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज्य, किष्किन्धक ॥ ५३ ॥ तुम्बुरु तुम्बुल, पटु, नैषध, ॥५४॥ अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति, यह संपूर्ण जनपद विन्ध्यपर्वतकी पीठमें स्थित हैं ॥५५॥ अब जो देश पर्वत श्रयी अर्थात् पर्वतका आश्रय लेनेवाले हैं, इनके पीछे उन्हींका वर्णन किया जाता है। यथा नदीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस ॥ ५६ ॥ कुन्त, प्रावरण, उर्ण दार्व्व, कृत्रक, त्रिगर्त्त, मालव, तामस और किरात इन सब देशोंको पार्वतीय देश कहते हैं ॥ ५७ ॥ और इसी भारतवर्षमें सत्ययुग, त्रेता, द्वापर इत्यादि चारों युगोंकी विधि विद्यमान रहती है और चार संस्थान करके इस भारतवर्षकी स्थिति है ॥५८॥ इसको पूर्वदक्षिण

इत्येतेह्यपरान्ताश्चशृणुविन्ध्यनिवासिनः ॥ सरजाश्चकरूषाश्चकेरलाश्चोत्कलैःसह ॥ ५३ ॥ उत्तमर्णादशार्णाश्चभोज्याःकिष्किन्धकैःसह ॥ तुम्बरास्तुम्बुलाश्चैवपटवीनैषधैःसह ॥ ५४ ॥ अन्नजास्तुष्टिकाराश्चवीरहोत्राह्यवन्तयः ॥ एतेजनपदाःसर्वेविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥ ५५ ॥ अतोदेशान्प्रवक्ष्यामिपर्वताश्रयिणश्चये ॥ नीहाराहंसमार्गाश्चकुरवोगुर्गणाःखसाः ॥ ५६ ॥ कुन्तप्रावरणाश्चैवऊर्णादार्वाःसकृत्रकाः ॥ त्रिगर्त्तागालवाश्चैवकिरातास्तामसैः ॥ ५७ ॥ कृतत्रेतादिकश्चतुर्युगकृतांविधिः ॥ एतत्तु भारतंवर्षचतुःसंस्थानसंस्थितम् ॥ ५८ ॥ दक्षिणापरतोह्यस्यपूर्वेणचमहोदधिः ॥ हिमवानुत्तरेणास्यकार्मुकस्ययथागुणः ॥ ५९ ॥ तदेतद्भारतंवर्षसर्ववीजंद्विजोत्तम ॥ ब्रह्मत्वममरेशत्वंदेवत्वंमर्त्यतांतथा ॥ ६० ॥ मृगपश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वेसरीसृपाः ॥ स्थावराणांच सर्वेषामितोब्रह्मञ्शुभाशुभैः ॥६१॥ प्रयांतिकर्मभूर्ब्रह्मन्नायलोकेषुविद्यते ॥ देवानामपिविप्रर्षेसदाएषमनोरथः ॥ ६२ ॥

और पश्चिम दिशामें महासागर धनुषाकारसे घेर रहा है और उत्तर दिशामें हिमालय पर्वत धनुषके गुणके समान रहता है ॥ ५९ ॥ हे द्विजवर ! यह वही भारतवर्ष सबका बीजस्वरूप है। इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व देवत्व और मनुष्यत्व सभी वर्त्तमान है ॥ ६० ॥ यही मृग, पशु आदि और अप्सराओंको उत्पन्न करनेवाला, और इसमेंही सरीसृप (विच्छू) आदि उत्पन्न होते हैं। हे ब्रह्मन् ! स्थावर जंगमादि यावतीय पदार्थ, समस्तही इसमें शुभाशुभ कर्मके फलसे उत्पन्न होते हैं ॥ ६१ ॥ हे ब्रह्मन् ! हे विप्रर्षे ! समस्त लोकोंमें यह भारतवर्षही एकमात्र कर्मभूमि है। देवतागणभी सदा अभिलाषा करते हैं ॥ ६२ ॥

कि यदि देवत्वसे कभी भ्रष्ट हो तो पृथ्वीके मध्य इस भारतवर्षमें हो मनुष्य योनि प्राप्त करें, क्योंकि मनुष्यगण जिस कार्य करनेमें समर्थ होते हैं, देवता वा असुर वह कार्य नहीं कर सकते ॥ ६३ ॥ देखो, यह कर्मरूपी बेड़ियोंसे ग्रसित मनुष्यगण लेशमात्र सुखके द्वारा मोहित होकर अपने कर्म विख्यातिके अभिलाषी होकर कुछ कर्म नहीं करते हैं ॥ ६४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नद्यादिवर्णनोनाम चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे भगवन् ! आपने मुझसे भारतवर्षका विषय सम्यक् प्रकार वर्णन किया । और इस भारतमें जो सब नदी, पर्वत देश और उसमें जो वास करते हैं, वह सब कहा ॥ किन्तु आपने पहिले कहा है कि जिस भारतवर्षमें भगवान् हरि

अपिमानुष्यमाप्स्यामोदेवत्वात्प्रच्युताःक्षितौ॥ मनुष्यःकुरुतेतत्तुयन्नशक्यंसुरासुरैः ॥ ६३ ॥ तत्कर्मनिगडग्रस्तैस्तत्कर्मख्यापनोत्सुकैः ॥ नकिंचित्क्रियतेकर्मसुखलेशोपबृंहितैः ॥ ६४ ॥ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणेनद्यादिवर्णनोनामचतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ॥ ५४ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्कथितंसम्यग्भवताभारतंमम ॥ सरित्पर्वतदेशाद्यायेचात्रवसन्तिवै ॥ १ ॥ किन्तुकूर्मस्त्वयापूर्वंभारतेभगवान्हरिः ॥ कथितस्तस्यसंस्थानंश्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ २ ॥ कथंससंस्थितोदेवःकूर्मरूपीजनार्दनः ॥ शुभाशुभंमनुष्याणांव्यज्यतेचततःकथम् ॥ यथामुखंयथापादंतस्यतद्ब्रूह्यशेषतः ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ प्राङ्मुखोभगवान्देवःकूर्मरूपीव्यवस्थितः ॥ आक्रम्यभारतंवर्षंनवभेदमिदंद्विज ॥ ४ ॥ नवधासंस्थितेतस्यनक्षत्राणिसमन्ततः ॥ विषयाश्चद्विजश्रेष्ठयेसम्यक्तान्निबोधमे ॥ ५ ॥

कूर्मरूपसे वास करते हैं उनकी स्थिति ! किस प्रकार है, वह इस समय भलीभाँति सुननेकी इच्छा है ॥ १ ॥ उन देवदेव जनार्दनने किस प्रकार कूर्मरूपमें वास किया था ? और उनके द्वारा मनुष्योंका शुभाशुभ किस प्रकार प्रकाशित हुआ था हे भगवन् ! उनका मुख और चरण कैसे हैं, यह सब कथा भलीभाँतिसे वर्णन कीजिये ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे ब्रह्मन् ! वही देवभगवान् कूर्मरूप धारण पूर्वक इस नवधा भिन्न अर्थात नव खण्डोंमें विभक्त भारतवर्षको आक्रमण करते हुए पूर्वमुखसे वास करते हैं ॥ ४ ॥ नक्षत्र और संपूर्ण विषयभी नवभागोंमें विभक्त होकर उनके चारों ओर वास करते हैं । हे द्विजवर ! यह विवरण भलीभाँतिसे सुनो ॥ ५ ॥

विमाण्डव्य, वेदमंत्र, शाल्व, नीव, शक, उज्जिहान, घोष संख्य, खस ॥ ६ ॥ सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्योतिषिक, गौरग्रीव, गुडाश्मक ॥ ७ ॥ उद्वेहक, पांचाल, संकेत, कंक, मारुत, कालकोटि पाखण्ड, पारियात्र निवासीगण ॥८॥ कापिंगल, बाह्यकुरु, उडुम्बर और गजाह्व यह संपूर्ण देश कूर्मके मध्यस्थलमें वास करते हैं ॥९॥ कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर यह तीनों नक्षत्र उन्हीं मध्यवासी मनुष्यों को शुभाशुभकी सूचना देते रहते हैं ॥१०॥ वृषध्वज, अंजन, जम्बु जम्बुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख खर्मक, कर्वटाशन ॥ ११ ॥

वेदिमद्रारिमाण्डव्याःशाल्वानीपास्तथाशकाः ॥ उज्जिहानास्तथावत्सघोषसंख्यास्तथाखशाः ॥ ६ ॥ मध्येसारस्वतामत्स्याःशूरसे नाःसमाथुराः ॥ धर्म्मारण्याज्योतिषिकागौरग्रीवागुडाश्मकाः ॥ ७ ॥ वैदेहकाःसपांचलाःसंकेताःकङ्कमारुताः ॥ कालकोटिसपा षण्डाःपारियात्रनिवासिनः ॥ ८ ॥ कापिंजलाःकुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बराजनाः ॥ गजाह्वयाश्चकूर्मस्यजनामध्यनिवासिनः ॥ ९ ॥ कृत्तिकारोहिणीसौम्याएतेषांमध्यवासिनाम् ॥ नक्षत्रत्रितयंविप्रशुभाशुभविपाकदम् ॥ १० ॥ वृषध्वजोऽञ्जनश्चैवजम्ब्वाख्योमान वाचलः ॥ शूर्पकर्णोव्याघ्रमुखोखुर्वरःकर्व्वटाशनः ॥ ११ ॥ तथाचन्द्रेश्वराश्चैवखशाश्चमगधास्तथा ॥ शिबयोमैथिलाःशुभ्रास्त थावदनदन्तुराः ॥ १२ ॥ प्राग्ज्योतिषाःसलौहित्याःसामुद्राःपुरुषादकाः ॥ पूर्णोत्कटोभद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ॥ १३ ॥ काशयोमेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः ॥ वर्द्धमानाःकोसलाश्चमुखेकूर्मस्यसंस्थिताः ॥ १४ ॥ रौद्रःपुनर्वसुःपुष्योनक्षत्रत्रितयं मुखे ॥ पादेतद्दक्षिणेदेशाःक्रौष्टुकेवदतःशृणु ॥ १५ ॥ कलिङ्गवंगजठराःकोशलामूषिकास्तथा ॥ चेदयश्चोर्द्ध्वकर्णाश्चमत्स्यांध्रा विन्ध्यवासिनः ॥ १६ ॥

चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ और वदन, दन्तुर॥१२॥समस्तपर्वत, प्राग्ज्योतिष, लौहित्य, सामुद्रक, पुरुषादक, पूर्णोत्कट, भद्रगौर, उदयाचल ॥ १३ ॥ कषाय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एकपादप, वर्द्धमान और कोशल, यह सब कूर्मरूपी भगवानके मुखमें स्थित हैं ॥ १४ ॥ आर्द्रा, पुनर्वसु और पुष्य, यह तीनों नक्षत्रभी मुखमेंही अवस्थित हैं।उनके दक्षिणपदमें जो सब देश हैं. हे क्रौष्टुके।उनका वर्णन करताहूं सुनो ॥१५॥कलिंग, वंग, जठर, कोशक, मूषिक, चेदि, ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्य इत्यादि जो सब देश विन्ध्य पर्वतके निकट अवस्थित हैं ॥ १६ ॥

और विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलीक, व्याघ्रग्रीव, महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी॥१७॥कैष्किन्ध, हैमकूट, निषध, कटकस्थल,दशार्ण, हारिक, काकुलालक, नग्न, निषेध देश॥१८॥और पर्णशबर इत्यादि समस्त देश तथा आश्लेषा, मघा और पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र॥१९॥उनके पूर्व दक्षिण पादमें वास करते हैं। लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट ॥२०॥ महेन्द्र, मलय, और दर्दुर, पर्वतस्थ समस्त जनपद, कर्कोटकवनस्थित संपूर्ण देश, भृगुकच्छ, कोंकण॥२१॥आभीर, वेण्या नदीके तीर स्थित, सब देश अवन्ति दासपुर आकरनी॥२२॥महाराष्ट्र, कर्णाट, गोनर्द, चित्रकूट

विदर्भानारिकेलाश्चधर्मद्वीपास्तथैलिकाः ॥ व्याघ्रग्रीवामहाग्रीवास्त्रैपुराःश्मश्रुधारिणः ॥ १७ ॥ कैष्किन्ध्याहैमकूटाश्चनिषधाः कटकस्थलाः ॥ दशार्णाहारिकानग्नानिषधाःकाकुलालकाः ॥ १८ ॥ तथैवपर्णशबराःपादेवैपूर्वदक्षिणे ॥ आश्लेषर्क्षतथापित्र्यफाल्गुन्यःप्रथमास्तथा ॥ १९ ॥ नक्षत्रत्रितयंपादमाश्रितंपूर्वदक्षिणम् ॥ लंकाकालाजिनाश्चैवशैलिकानिकटास्तथा ॥ २० ॥ महेन्द्रमलयाद्रौचदर्दुरेचवसन्तिये ॥ कर्कोटकवनेयेचभृगुकच्छाःसकोङ्कणाः ॥ २१ ॥ सर्वाश्चैवतथाभीरावेण्यास्तीरनिवासिनः ॥ अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकारिणोजनाः ॥ २२ ॥ महाराष्ट्राःसकर्णाटागोनर्दाश्चित्रकूटकाः ॥ चोलाःकोलगिराश्चैवक्रौञ्चद्वीपजटाधराः ॥ २३ ॥ कावेरीऋष्यमूकस्थानासिक्याश्चैवयेजनाः ॥ शङ्खशुक्त्यादिवैदूर्यशैलप्रान्तचराश्चये ॥ २४ ॥ तथावारिचराःकोलाचर्मपट्टनिवासिनः ॥ गणबाह्याःपराकृष्णाद्वीपवासनिवासिनः ॥ २५ ॥ सूर्याद्रौकुमुदाद्रौचनेवसन्तितथाजनाः ॥ रौद्रस्वनाःसपिशिकास्तथायेकर्मनायकाः ॥ २६ ॥ दक्षिणाःकौरुषायेचऋषिकास्तापसाश्रमाः ॥ ऋषभाःसिंहलाश्चैवतथाकांचीनिवासिनः ॥२७॥ त्रिलंगाःकुञ्जरदरीकच्छवासाश्चयेजनाः ॥ ताम्रपर्णीतथाकुक्षिरितिकूर्मस्यदक्षिणः ॥ २८ ॥

चोल, कोलगिरि, क्रौञ्चद्वीप, जटाधर ॥२३॥कावेरी, और ऋष्यमूक स्थित–संपूर्ण देश शंखशुक्ति इत्यादि वैदूर्य शैल और जो समीपवर्ती, ॥ २४ ॥ वारिचल कोल, चर्मपट्ट, और गणबाह्य कृष्णाद्वीपनिवासी मनुष्य, ॥ २५ ॥ सूर्याद्रि और कुमुदाद्रि इन दोनों पर्वतमें वसनेवाले, मनुष्य और रौद्रशब्दवाले पिशिक, कर्मनायक, ॥ २६ ॥ दक्षिण कौरुष, ऋषिक, ताप साश्रम, ऋषभ, सिंहल, काञ्चीनिवासी ॥ २७ ॥ तिलङ्ग, कुञ्जर, और दरी कच्छस्थित मनुष्य तथा ताम्रपर्णी, यह सब कूर्मकी दक्षिण कुक्षिमें अवस्थित हैं ॥ २८ ॥

उत्तरा फाल्गुनी हस्त, और चित्रा यह तीनों नक्षत्र कूर्मके दक्षिणकी ओर विराजमान हैं । बाह्यपाद ॥२९॥ काम्बोज, पह्लव, वडवामुख, सिन्धु, सौवीर आनर्त्त वनितामुख ॥ ३० ॥ द्रावण, सार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्राधेय, बर्बर, किरात, पारद, पाण्डय, पारशव, कल ॥ ३१ ॥ धूर्तक, हैमगिरिक, सिन्धु कालक वैरत, सौराष्ट्र; दरद, द्राविड और महावर्णव ॥ ३२ ॥ यह संपूर्ण जनपद कूर्मके दक्षिण पदमें वास करते हैं स्वातीविशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इन, सब देशोंके शुभाशुभकी सूचना देते हैं ॥ ३३ ॥ मणिमेघ, क्षुराद्रि, खंजन अस्तगिरि.

फाल्गुन्यश्चोत्तराहस्तश्चित्राचर्क्षत्रयंद्विज ॥ कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौबाह्यपादस्तथापरम् ॥२९॥ काम्बोजाःपह्लवाश्चैवतथैववडवामुखाः ॥ तथाचसिन्धुसौवीराःमानर्त्तावनितामुखाः ॥ ३० ॥ द्रावणाःसार्गिगाःशूद्राःकर्णप्राधेयबर्बराः ॥ किराताःपारदाःपाण्डयास्तथापा रशवाःकलाः ॥ ३१ ॥ धूर्त्तकाहैमगिरिकाःसिन्धुकालकवैरताः ॥ सौराष्ट्रादरदाश्चैवद्राविडाश्चमहार्णवाः ॥ ३२ ॥ एतेजनपदाः पादेस्थितावैदक्षिणेऽपरे ॥ स्वात्योविशाखामैत्रंचनक्षत्रत्रयमेवच ॥ ३३ ॥ मणिमेघक्षुराद्रिश्चखंजयोऽस्तगिरिस्तथा ॥ अपरान्ति कानोहयाश्चशान्तिकाविप्रशस्तकाः ॥ ३४ ॥ कोंकणाः पञ्चनदकावमनाह्यवरास्तथा ॥ तारक्षुराह्यंगनकाःशर्कराःशालमवेश्मकाः ॥ ॥ ३५ ॥ गुरुस्वराःफाल्गुनकावेणुमत्यांचयेजनाः ॥ तथाफल्गुलुकाघोरागुरुहाश्चकलास्तथा ॥ ३६ ॥ एकेक्षणावाजिकेशादीर्घ ग्रीवाःसचूलिकाः ॥ अश्वकेशास्तथापुच्छेजनाःकूर्मस्यसंस्थिताः ॥ ३७ ॥ ऐन्द्रंमूलंतथापाढानक्षत्रत्रयमेवच ॥ माण्डव्याश्चंड खाराश्चअश्वकालनदास्तथा ॥३८॥ कुशात्तालडहाश्चैवस्त्रीबाह्याबालिकास्तथा ॥ नृसिंहवेणुमत्यांचबलावस्थास्तथापरे ॥ ३९ ॥

अपरांतिक, हैहय, शांतिक, विप्रशतस्क, ॥ ३४ ॥ कोंकग, पञ्चनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मल ॥ ३५ ॥ गुरुस्वर, फल्गुनक, वेणुकच्च, फाल्गुलुक, गुरुह, कल ॥ ३६ ॥ एक नेत्रवाले वाजिसे केशवाले दीर्घ गर्दनवाले सचुलिक, और अश्वकेश, यह समस्त देशवासी कूर्मकी पूंछमें अवस्थित हैं ॥ ३७ ॥ ज्येष्ठा, मूल और पूर्वाषाढा, यह तीन नक्षत्रभी कूर्मकी पूंछमें वास करते हैं । माण्डव्य, चण्डखार, अश्मक, लालन ॥३८॥ कुशात्त, लडह, स्त्रीबाह्य, बालिक, नृसिंह, वेणुमती, बलावस्था ॥ ३९ ॥

धर्मबद्ध, उलूक, ऊरुकर्म—स्थित मनुष्य (तथा फल्गुलका, घोरा, घुरल, हेमताग क, एकेक्षण, आजिकोश और दीर्घपाद) यह सब देश भगवान् कूर्मके वामपदमें स्थित हैं॥४०॥उत्तराषाढा, श्रवण और धनिष्ठा यह तीनों नक्षत्र भी उसी स्थानमें स्थित हैं। कैलाश,हिमालय,धनुष्मान,वसुमान॥४१॥ क्रौञ्च,कुरुवक, क्षुद्रवीण, रसालय, भोगप्रस्थ, यामुन॥४२॥अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्निज,अर्दन, अश्वमुख, प्राप्त, चिविड, केशधारी॥४३॥दासेरक, वाटधान, पुष्कल, अधम, कैरात, तक्षशिल ॥४४॥ अम्बाल, मालव, मद्र, वेणुक, वदन्तिन, पिंगल, मानकलह, हूण, कोहल ॥४५॥ माण्डव्य,

धर्मबद्धास्तथोलूका उरुकर्मस्थिता जनाः ॥ (तथा फल्गुलका घोरा घुरला हेमतारकाः ॥ एकेक्षणा आजिकोशा दीर्घपादास्तथैव च)
वामे पर्जनाः पादे स्थिताः कूर्मस्य भागुरे ॥ ४० ॥ आषाढाश्रवणे चैव धनिष्ठा यत्र संस्थिता ॥ कैलासो हिमवांश्चैव धनुष्मान्वसुमांस्तथा ॥
॥ ४१ ॥ क्रौंचाः कुरुवकाश्चैव क्षुद्रवीणाश्च ये जनाः ॥ रसालयाः सकैकेया भोगप्रस्थाः सयामुनाः ॥ ४२ ॥ अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्ताश्च
अग्नीज्याः सार्दना जनाः ॥ तथैवाश्वमुखाः प्राप्ताश्चिविडाः केशधारिणः ॥ ४३ ॥ दासेरका वाटधानाः शवधानास्तथैव च ॥ पुष्कलाध
मकैरातास्तथा तक्षशिलाश्रयाः ॥ ४४ ॥ अम्बष्ठा मालवा मद्रा वेणुकाः सवदन्तिकाः ॥ पिंगला मानकलहा हूणाः कोहलकास्तथा ॥
॥ ४५ ॥ माण्डव्या भूतियुवकाः शातका हेमतारकाः ॥ यशोमत्याः सगान्धाराः खरसागरराशयः ॥ ४६ ॥ यौधेया दासमेयाश्च राजन्याः
श्यामकास्तथा ॥ क्षेमधूर्त्ताश्च कूर्मस्य वामकुक्षिमुपाश्रिताः ॥४७॥ वारुणं चात्र नक्षत्रं तद्वत्प्रोष्ठपदाद्वयम् ॥ येन किन्नरराज्यं च पशुपालं
सकीचकम् ॥ ४८ ॥ काश्मीरकं तथा राष्ट्रमभिसारजनस्तथा ॥ दरदास्त्वंगणाश्चैव कुलटा वनराष्ट्रकाः ॥ ४९ ॥ सैरिष्ठा ब्रह्मपुरकास्त
थैव तनबाह्यकाः ॥ किरातकौशिकानन्दा जनाः पह्लवलोलनाः ॥५०॥

भूतियुवक, शातक, हैमतारक, यशोमत्य, गान्धार, स्वरस, गर, राशि, ॥४६॥ यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक, और क्षेमधूर्त्त, यह सब जनपद कूर्मरूपी भगवान्‌की वामकुक्षिमें वास करते हैं ॥ ४७ ॥ शतभिषा, पूर्वभाद्रपद, और उत्तरभाद्रपद यह तीन नक्षत्र वहांके शुभाशुभकी सूचना देते हैं। किन्नरराज्य, पशुपाल, कीचक ॥ ४८ ॥ काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वंगण, कुलट, वनराष्ट्रक ॥ ४९ ॥ सैरिष्ठ ब्रह्मपुरक, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द, पह्लव, लोलन ॥ ५० ॥

दार्वाद, मरक, कुरट, अन्न, दारक, एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक ॥ ५१ ॥ यवन, हिंग, चिरप्रावरण, त्रिनेत्र, पौरव, और गंधर्व ॥ ५२ ॥ यह समस्त देश कूर्मके पूर्व उत्तरमें अवस्थित हैं रेवती, अश्विनी और भरणी इन तीन नक्षत्रोंसे उक्त देशोंका शुभाशुभ जाना जाता है ॥ ५३ ॥ हे मुनिसत्तम ! हे द्विजोत्तम ! जिस प्रकार मैंने आपसे कथन किया; इतने देशोंमें इतने ही नक्षत्र इतने ही मनुष्य और इतने ही पर्वत हैं ॥ ५४ ॥ हे विप्र ! उक्त देशोंमें क्रमानुसार इन्हीं नक्षत्रोंके बिगड़नेसे मनुष्योंको पीड़ा उपस्थित होती है और वही ग्रह जब सम्यक् प्रकार श्रेष्ठ ग्रहके संग मिलित होते हैं तब पुरुषको सुख प्राप्त होता है ॥ ५५ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! जिस नक्षत्रका

दार्वादामरकाश्चैवकुरटाश्चान्नदारकाः ॥ एकपादाःखशाघोषाःस्वर्गभौमानवद्यकाः ॥ ५१ ॥ तथासयवनाहिंगाश्चीरप्रावरणाश्चये ॥
त्रिनेत्राःपौरवाश्चैवगन्धर्वाश्चद्विजोत्तम ॥५२॥ पूर्वोत्तरंतुकूर्मस्यपादमेतेसमाश्रिताः॥रेवत्यश्चाश्विदैवत्यंयाम्यंचर्क्षमितित्रयम् ॥५३॥
तत्रपादेसमाख्यातंपाकायमुनिसत्तम ॥ देशेष्वेतेषुचैतानिनक्षत्राण्यपिवैद्विज ॥ ५४ ॥ एतत्पीडाअर्मादेशाःपीडयन्तेयेक्रमोदिताः
यान्तिचाभ्युदयंविप्रग्रहैःसम्यगवस्थितैः ॥ ५५ ॥ यस्यर्क्षस्यपतिर्योवैग्रहस्तद्भावतोभयम् ॥ तद्देशस्यमुनिश्रेष्ठतदुत्कर्षेशुभागमः
॥ ५६ ॥ प्रत्येकंदेशसामान्यंनक्षत्रग्रहसम्भवम् ॥ भयंलोकस्यभवतिशोभनंवाद्विजोत्तम ॥ ५७ ॥ स्वर्क्षैरशोभनैर्जन्तोःसामान्यमिति
भीतिदम् ॥ ग्रहैर्भवतिपीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ॥ ५८ ॥ तथैवशोभनःपाकोदुःस्थितैश्चतथाग्रहैः ॥ अल्पोपकारायनृणांदेशज्ञै
रुदितोबुधैः ॥ ५९ ॥ द्रव्येगोष्ठेऽथभृत्येषुसुहृत्सुतनयेषुवा ॥ भार्यायांचग्रहेदुःस्थेभयंपुण्यवतांनृणाम् ॥ ६० ॥

जो अधिपति है. उसके बिगड़नेसे उस देशमें पुरुषोंको दुःख अथवा भय उपस्थित होता है और उसीके श्रेष्ठ स्थानमें होनेसे मनुष्योंको शुभ होता है ॥५६॥ हे द्विजोत्तम ! प्रत्येक देशके समान वहांके मनुष्योंको भी नक्षत्र वा ग्रहजनित भय अथवा शुभ होताहै ॥५७॥ संपूर्ण मनुष्योंको समस्त देशोंमें अपने अपने नक्षत्रके बिगड़नेसे अत्यन्त भय और दुःख उत्पन्न होता है॥५८॥तथा ग्रहोंके वक्र होनेपर जो भय उपस्थित होता है, उस ग्रहभयको मिटानेके लिये बुद्धिमान् ज्योतिषीगण मनुष्योंको जप और दान करनेका उपदेश देते हैं॥५९॥ ग्रहके बिगड़नेमें पुण्यात्मा पुरुषोंको भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, हित पुत्र और स्त्री आदिके सहित पीड़ा होती है ॥ ६० ॥

अल्प पुण्य मनुष्योंको अपने देहमें पीड़ा होती है और पापियोंको सर्वत्र यह पीड़ाका भय होता है, किन्तु पुण्यवानोंको वास्तविक किसी स्थानमें भय नहीं है ॥ ६१ ॥ [illegible], देश, जन नृप, पुत्र सुख, तथा दुःख आदि मनुष्योंको नक्षत्र और ग्रहके अनुकूल तथा प्रतिकूलके अनुसार शुभाशुभ फल प्राप्त होता है ॥ ६२ ॥ हे विप्रेन्द्र ! ग्रहोंके स्वस्थता पूर्वक रहनेसे मनुष्यको [illegible] और ग्रहोंकी दुःस्थिति होनेसे मनुष्योंको अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६३ ॥ यह जो नक्षत्रोंके सहित मैंने कृष्णभगवानके [illegible] [illegible] यह सब देशोंमें शुभाशुभका देनेवाला है ॥ ६४ ॥ हे द्विजसत्तम ! इसी कारण बुद्धिमान मनुष्यको चाहिये कि देश नक्षत्र और ग्रहोंकी [illegible]

आत्मन्यथाल्पपुण्यानांसर्वत्रैवातिपापिनाम ॥ नैकत्रापिह्यपापानांभयमस्तिकदाचन ॥ ६१ ॥ दिग्देश[illegible]
मात्मजम् ॥ नक्षत्रग्रह[illegible]शुभा[illegible] ॥ ६२ ॥ [illegible]नजायते ॥ [illegible]
स्तथाशुभैः ॥ ६३ ॥ यदेतत्[illegible]स्थानंनक्षत्रैः [illegible] ॥ [illegible] ॥ ६४ ॥ [illegible]
डांतथात्मनः ॥ कुर्वीतशान्तिमेधावी[illegible]लोकवादांश्चसत्तम ॥ ६५ ॥ आकाशा[illegible] ॥ [illegible]
केलोकवादाइतिश्रुताः ॥ ६६ ॥ तांतथैवबुधःकुर्याल्लोकवादांश्चशापयेत् ॥ तेपान्तत्कारणान्नृणांयुतोदुष्टागमशान्तः ॥ ६७ ॥ शुभोदयं
प्रहानिंचपापानांद्विजसत्तम ॥ [illegible]हानिंप्रकुर्युस्तेद्रव्यादीनांचकुर्वते ॥ ६८ ॥ तस्माच्छान्तिपरःप्राज्ञोलोकवाद[illegible] ॥ लोक
वादांश्चशान्तीश्चग्रहपीडासुकारयेत् ॥ ६९ ॥

पीड़ाको जानकर उसकी शान्ति करे ॥ ६५ ॥ आकाशमें देवता और दैत्योंका शत्रु जब स्वर्गसे गिरता है और वही लोकवादके नामसे विख्यात है ॥ ६६ ॥ अतएव बुद्धिमान मनुष्यको ग्रह और लोकवाद दोनोंकी शान्ति करनी चाहिये क्योंकि मनुष्योंको इन्ही सबके गिरनेसे यहां शुभ और अशुभ प्राप्त होता है ॥ ६७ ॥ हे द्विजसत्तम ! जब यह ग्रहादिक अनुकूल होते हैं, तब शुभका उदय और पापकी हानि करते हैं और जब यही ग्रहादिक विपरीत होते हैं तब द्रव्य तथा बुद्धिकी हानि करते हैं ॥ ६८ ॥ इसकारण लोकवाद रत बुद्धिमान् मनुष्योंको पीड़ाके समय लोकवाद और ग्रहकी शान्ति अवश्य करनी चाहिये ॥६९॥

और आप किसीसे द्रोह न करे, उपवास (व्रत) करे, शान्तिस्तोत्रका पाठ करे, तथा जप होम, स्नान दान करे और क्रोधादिसे दूर रहना उचित है ॥ ७० ॥ सर्वभूत (संसार) से अद्रोह अर्थात् वैर रहित हो पण्डित होकर सबसे मित्रता करे मिथ्या न बोले और अधिक विवाद भी नहीं करना चाहिये ॥ ७१ ॥ हे द्विजसत्तम ! संपूर्ण पीड़ाओंमें मनुष्यको ग्रहका पूजन करना उचित है क्योंकि इस प्रकार शान्ति और पूजा करनेसे सब घोर पीड़ा भी दूर हो जाती है ॥ ७२ ॥ और जो पुरुष पवित्र हैं उनको भी ग्रहोंके कारणसे शुभ अशुभ फल प्राप्त होता है । इस प्रकारसे भारतवर्षमें यह कूर्मभगवान विभु विद्यमान रहते हैं जिनका वृत्तान्त मैंने आपसे वर्णन किया

अद्रोहानुपवासांश्चशस्तं देवादिवन्दनम् ॥ जपोहोमस्तथादानंस्नानंक्रोधादिवर्जनम् ॥ ७० ॥ अद्रोहंसर्वभूतेषुमैत्रींकुर्याच्चपण्डितः ॥ वर्जयेदसतींवाचमतिवादांस्तथैवच ॥ ७१ ॥ ग्रहपूजांचकुर्वीतसर्वपीडासुमानवः ॥ एवंशाम्यन्त्यशेषाणिघोराणिद्विजसत्तम ॥ ॥ ७२ ॥ प्रयातानांमनुष्याणांग्रहर्क्षोत्थान्यशेषतः ॥ एषकूर्मोमयाख्यातोभारतेभगवान्विभुः ॥ ७३ ॥ नारायणोह्यचिन्त्यात्मा यत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ अत्रदेवाःस्थिताःसर्वेप्रतिनक्षत्रसंश्रयाः ॥ ७४ ॥ तथामध्येहुतवहःपृथ्वीसोमश्चवैद्विज ॥ मेषादयस्त्रयोमध्ये मुखेद्वौमिथुनादिकौ ॥ ७५ ॥ प्राग्दक्षिणेतथापादेकर्किसिंहौव्यवस्थितौ ॥ सिंहकन्यातुलाश्चैवकुक्षौराशित्रयंस्थितम् ॥ ७६ ॥ तुलाथवृश्चिकश्चोभौपादेदक्षिणपश्चिमे ॥ पृष्ठेचवृश्चिकेनैवसहधन्वीव्यवस्थितः ॥ ७७ ॥ वायव्येचास्यवैपादेधनुर्ग्राहादिकंत्रयम् ॥ कुम्भमीनौतथैवास्यउत्तरांकुक्षिमाश्रितौ ॥ ७८ ॥

॥ ७३ ॥ यह नारायण कूर्म अचिन्त्यात्मा हैं इन्हींमें समस्त देव नक्षत्रोंके स्वामी स्थित रहते हैं ॥ ७४ ॥ उनके मध्यमें अग्नि, पृथ्वी और चन्द्र विद्यमान हैं, मेषादि तीन राशि उनके मध्यस्थलमें अवस्थित हैं मिथुनादि दो राशि उनके मुखमें स्थित हैं ॥ ७५ ॥ कर्कट और सिंहराशि उनके पूर्व दक्षिण चरणमें वास करती हैं, सिंह, कन्या और तुला यह तीन राशि उनकी कुक्षिमें विराजमान हैं ॥ ७६ ॥ तुला और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम पदमें विद्यमान हैं वृश्चिक और धनुराशि उनके पृष्ठदेशमें ॥ ७७ ॥ धनु और मकरादि तीनिराशि उनके वायव्य चरणमें कुंभ और मीन राशि उनकी उत्तर कुक्षिमें स्थित रहती हैं ॥ ७८ ॥

हे द्विजोत्तम ! हे विप्र ! पूर्व और उत्तर चरणमें मीन मेष स्थित रहती हैं । इस कूर्ममें देश, देशमें नक्षत्र ॥ ७९ ॥ नक्षत्रमें राशि और ग्रह ग्रहमें राशि स्थित हैं । इस कारण ग्रह नक्षत्रकी पीड़ामें देश पीड़ा समझनी चाहिये ॥ ८० ॥ देश पीड़ादिके होनेपर स्नानकरके दान होमादि संपूर्ण नियम करने चाहिये । यह जो विष्णुके चरणस्वरूप ब्रह्माजी ग्रहोंके बीचमें अवस्थान करते हैं, यही नारायण अचिन्त्यात्मा, जगत्कारण और जगत्के प्रभु हैं ॥ ८१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां कूर्मनिवेशोनामपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! यह मैंने भारतवर्षका विषय यथावत् वर्णन किया इस भारतवर्षमें ही सत्ययुग, त्रेता द्वापर और कलिरूप चारों युग वर्त्तमान

मीनमेषौद्विजश्रेष्ठपादेपूर्वोत्तरेस्थितौ ॥ कूर्मेदेशास्तथर्क्षाणिदेशेष्वेतेषुवैद्विज ॥ ७९ ॥ राशयश्चतथर्क्षेषुग्रहराशिष्वथस्थिताः ॥ तस्माद्ग्रहर्क्षपीडासुदेशपीडांविनिर्दिशेत् ॥ ८० ॥ तत्रस्नात्वाप्रकुर्वीतदानहोमादिकंविधिम् ॥ सएषवैष्णवःपादोब्रह्मन्मध्येग्रहस्ययः ॥ ॥ ८१ ॥ (नारायणाख्योचिन्त्यात्माकारणंजगतःप्रभुः ॥) ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभारतीयकूर्मनिवेशोनामपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंतुभारतंवर्षंयथावत्कथितंमुने ॥ कृतंत्रेताद्वापरंचतथातिष्यंचतुष्टयम् ॥ १ ॥ अत्रैतत् युगानान्तुचातुर्वर्ण्यंचवैद्विज ॥ चत्वारित्रीणिद्वेचैवतथैकंचशरच्छतम् ॥ २ ॥ जीवन्त्यत्रनराब्रह्मन्कृतत्रेतादिषुक्रमात् ॥ देवकूटस्यपूर्वस्यशैलेन्द्रस्यमहात्मनः ॥ ३ ॥ पूर्वेणयत्स्थितंवर्षंभद्राश्वंतन्निबोधमे ॥ श्वेतपर्णश्चनीलश्चशैवालश्चाचलोत्तमः ॥ ४ ॥ कौरञ्जःपर्णशालाग्रःपंचैतेतुकुलाचलाः ॥ तेषांप्रसूतिरन्येयेबहवःक्षुद्रपर्वताः ॥ ५ ॥ तैर्विशिष्टाजनपदानानारूपाःसहस्रशः ॥ ततः कुमुदसंकाशाःशुद्धसानुसुमङ्गलाः ॥ ६ ॥

हैं ॥ १ ॥ और इस स्थानमें ही ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंका भेद है, यहांपर सत्य त्रेता द्वापर और कलि इन चारों युगोंके भेदसे इस स्थानके मनुष्य क्रमानुसार चार सौ, तीन सौ, दो सौ और एक सौ वर्ष जीवित रहते हैं । पूर्व दिशामें देवकूट नामक महापर्वतके ॥ २ ॥ ३ ॥ पूर्वकी ओर जो वर्ष स्थित है, उसका नाम भद्राश्व वर्ष है । अब उसकी कथा वर्णन करताहूं। श्वेतपर्ण, नील, शैवाल ॥ ४ ॥ कौरञ्ज, और पर्णशालाग्र नामक पांच श्रेष्ठ कुलाचल इस वर्षमें स्थित हैं और इन सब पर्वतोंसे उत्पन्न हुए अनेक छोटे छोटे पर्वत भी इस वर्षमें, हैं ॥ ५ ॥ इस वर्षमें कुमुद

संकाश, शुद्धशालु, सुमंगल इत्यादि अन्यान्य शतसहस्र (सैकड़ों हजारों) जनपद छोटे छोटे पर्वतोंसे युक्त होकर नानाभांतिसे अवस्थान करते हैं । सीता शंखावती भद्रा और चक्रावर्त्तादि ॥ ६ ॥ ७ ॥ अनेकानेक अत्यन्त शीतल जलवाहिनी नदियें विस्तीर्ण होकर इस वर्षसे बहतीं हैं । इस वर्षमें मनुष्य जन्म लेते हैं वह समस्तही शंख और निर्मल सुवर्णके समान प्रभायुक्त होतेहैं ॥ ८ ॥ और श्रेष्ठ संग तथा पवित्र होकर हजार वर्ष जीवित रहते हैं,उनमें कोई अधम वा उत्तम नहीं है क्योंकि सभी समदर्शन हैं॥९॥वहांके संपूर्ण मनुष्य स्वभावसेही सहनशीलता आदि आठ गुणोंमें गुणवान् होते हैं ।इस भद्राश्व वर्षमें भगवान् चतुर्बाहु जनार्दन हयग्रीवरूपसे॥१०॥ शिर, हृदय, मेढ़्र, चरण हस्त और तीन युक्त होकर

इत्येवमादयोऽन्येऽपिशतशोऽथसहस्रशः ॥ सीताशङ्खावतीभद्राचक्रावर्त्तादिकास्तथा ॥ ७ ॥ नद्योऽथबह्व्योविस्तीर्णाःशीततोयौघवाहिकाः ॥ अत्रवर्षेनराःशङ्खशुद्धहेमसमप्रभाः ॥ ८ ॥ दिव्यसंगमिनःपुण्यादशवर्षशतायुपः ॥ अधमोत्तमंनतेष्वस्तिसर्वेतेसमदर्शनाः ॥ ९ ॥ तितिक्षादिभिरष्टाभिःप्रकृत्यात्मगुणैर्युताः ॥ तत्राप्यश्वशिरादेवश्चतुर्बाहुर्जनार्दनः ॥ १० ॥ शिरोहृदयमेढ्राङ्घ्रिहस्तैश्चाक्षित्रयान्वितः ॥ तस्याप्यथैवंविपयाविज्ञेयाजगतःप्रभोः ॥११॥ केतुमालमतोवर्षंनिबोधममपश्चिमम् ॥ विशालःकम्बलःकृष्णोजयन्तोहरिपर्वतः ॥ १२ ॥ विशोकोवर्द्धमानश्चसप्तैतेकुलपर्वताः ॥ अन्येसहस्रशःशैलायेपुलोकगणःस्थितः ॥ १३ ॥ मौलयस्तेमहाकायाःशाकपोतकरम्भकाः ॥ अच्चुलप्रमुखाश्चापिवसन्तिशतशोजनाः ॥१४॥ येपिबन्तिमहानद्योवंक्षुश्यामांस्वकम्बलाम् ॥ अमोघांकामिनींश्यामांतथैवान्याःसहस्रशः ॥ १५ ॥

अवस्थान करते हैं उन प्रभु जगदीश्वरका संपूर्ण विषय भी इसी प्रकार जानना चाहिये॥११॥अनन्तर सुमेरुके पश्चिम देशमें स्थित केतुमालवर्षकी कथाका वर्णन करताहूं—इस वर्षमें जो सप्त कुलपर्वत हैं, उनके नाम यथा विशाल, कम्बल, कृष्ण, जयन्त, हरिपर्वत॥१२॥विशोक, और वर्द्धमान । इनके अतिरिक्त पृथ्वीके मौलिकस्वरूप महाकाय और भी हजारों पर्वत हैं जिनमें अनेक लोग रहते हैं ॥ १३ ॥ उनमें शाक, पोत, करम्भक और अच्चुलाख्य इत्यादि अनेक प्रकारके जन वास करतेहैं ॥ १४ ॥ यह मनुष्य जिन महानदियोंका जल पीते हैं उनके नाम—वक्षु, श्यामा, कम्बला, अमोघा, कामिनी और सुमेधा, इसी प्रकार और और भी हजारों नदियें बहती हैं ॥ १५ ॥

वहांपर भी मनुष्योंकी आयु पूर्वके समान है और उस देशमें भगवान् हरि वराहरूपसे विराजमान रहते हैं। उनके चरण, हृदय, मुख, पीठ तथा पार्श्वमें मुख नासिका कण्ठदांत और पुच्छमें तीन नक्षत्रोंसे युक्त होकर संपूर्ण देश स्थित हैं और वहां भी नक्षत्रोंसे शुभ अशुभ विधि होता है ॥ १६ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार जो केतुमाल नामक वर्ष है उसका भी मैंने आपसे वर्णन किया ॥ १७ ॥ अनन्तर उत्तर कुरुदेशकी कथा कहता हूँ सुनो इस उत्तर कुरुदेशमें सर्व कालके फलपुष्पयुक्त, मधुरफलसे युक्त सर्वकामनादायक और सर्वकालफलदायक सुन्दर वृक्ष ॥ १८ ॥ वस्त्र उत्पन्न करते हैं और उनके संपूर्ण फलोंमें नाना प्रकारके गहने उत्पन्न होते हैं ॥ १९ ॥ वहांकी भूमि मणिमयी, वायु

अत्राप्यायुःसमंपूर्वेत्रापिभगवान्हरिः ॥ वराहरूपीपादोस्यहृत्पृष्ठपार्श्वतस्तथा ॥ १६ ॥ (मुखेनासादन्तश्चैवकण्ठःपुच्छतस्तथा)॥
त्रिनक्षत्रयुतेदेशेनक्षत्राणियुतानिच ॥ इत्येतत्केतुमालंतेकथितंमुनिसत्तम ॥ १७ ॥ अतःपरंकुरून्वक्ष्येनिबोधद्विजसत्तम ॥
तत्रवृक्षामधुफलानित्यपुष्पफलोपगाः ॥ १८ ॥ वस्त्राणिचप्रसूयन्तेफलेष्वाभरणानिच ॥ सर्वकामप्रदास्तेहिसर्वकालफलप्रदाः ॥
॥ १९ ॥ भूमिर्मणिमयीवायुःसुगंधःसर्वदासुखः ॥ जायन्तेमानवास्तत्रदेवलोकपरिच्युताः ॥ २० ॥ मिथुनानिप्रसूयन्तेसमकाल
स्थितानिवै ॥ अन्योन्यमनुरक्तानिचक्रवाकोपमानिच ॥ २१ ॥ चतुर्दशसहस्राणितेषांसार्द्धानिवैस्थितिः ॥ चन्द्रकान्तश्चशैलेन्द्रः
सूर्य्यकान्तस्तथापरः ॥ २२ ॥ तस्मिन्कुलाचलेवर्षेतन्मध्येचमहानदी ॥ भद्रसोमाप्रयात्युर्व्यांपुण्यामलजलौघिनी ॥ २३ ॥
सहस्रशस्तथैवान्यानद्योवर्षेऽपिचोत्तरे ॥ तथान्याःक्षीरवाहिन्योघृतवाहिन्यएवच ॥ २४ ॥

सुन्दर गन्धयुक्त और सर्वदा सुखदायक है देवलोकसे भ्रष्ट होकर मनुष्य वहां जन्म लेते हैं ॥ २० ॥ वह चक्रवाकके समान परस्पर प्रीति करते हैं और समकालमें स्थित हुए बालक बालिका उत्पन्न करते हैं ॥ २१ ॥ वह साढ़े चौदह हजार वर्ष पर्यन्त जीवित रहते हैं इस वर्षमें चन्द्रकान्त और सूर्यकान्त नामक दो श्रेष्ठ कुलपर्वत वर्तमान हैं ॥ २२ ॥ उस पर्वतमें पवित्र और निर्मल जल बहनेवाली भद्रसोमानामक महानदी पृथ्वीमें बहती है ॥ २३ ॥ तथा और भी छोटी छोटी हजारों नदियें वहां वर्तमान हैं, दूसरी और जो नदियें हैं उनमें कोई क्षीर वहिनी कोई घृतवाहिनी ॥ २४ ॥

और कोई दधिके तलावसे युक्त हैं । और इन सात कुल पर्वतोंके अतिरिक्त और भी छोटे छोटे बहुत पर्वत हैं इस उत्तर कुरुदेशस्थ सैकडों हजारों वनोंके मध्यवर्त्ती समस्त वृक्षोंमें भांति भांतिके स्वादयुक्त फल फलते हैं इस स्थानमें भी भगवान् नारायण मत्स्यरूप धारणपूर्वक पूर्वको मस्तक कर वास करते हैं ॥२५॥ २६ ॥ हे विप्र ! इस उत्तर कुरुदेशमें नक्षत्र नव भागोंमें विभक्त होकर तीन तीन क्रमानुसार स्थित करते हैं। हे मुनिसत्तम ! इसी प्रकार सब देश भी नव भागमें विभक्त हैं॥२७॥हे महामुने ! इस वर्षमें चन्द्रद्वीप और भद्रद्वीप नामक दो प्रसिद्ध द्वीप हैं, दोनों ही समुद्रके बीचमें अवस्थित और पवित्र हैं ॥ २८ ॥ हे ब्रह्मन् ! यह मैंने तुमसे उत्तर कुरुवर्षकी कथा कही, इसके उपरान्त किम्पुरुषादि

दध्नोह्रदास्तथातत्रतथान्येचानुपर्व्वताः ॥ अमृतास्वादकल्पानिफलानिविविधानिच ॥ २५ ॥ वनेषुतेषुरम्याणिशतशोऽथसहस्रशः ॥ तत्रापिभगवान्विष्णुःप्राक्छिरामत्स्यरूपवान् ॥ २६ ॥ विभक्तोनवधाविप्रनक्षत्राणांत्रयंत्रयम् ॥ देशास्तत्रापिनवधाविभक्तामुनिसत्तम ॥ २७ ॥ चन्द्रद्वीपःसमुद्रेचभद्रद्वीपतस्थापरः ॥ तत्रापिपुण्योविख्यातःसमुद्रान्तर्महामुने ॥ २८ ॥ इत्येतत्कथितंब्रह्मन्कुरुवर्षमयोत्तरम् ॥ शृणुकिंपुरुषादीनिवर्षाणिगदतोमम ॥२९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेउत्तरकुरुकथनंनामषट्पंचाशोऽध्यायः ॥५६॥

॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ यत्तुकिम्पुरुषंवर्षंतत्प्रवक्ष्याम्यहंद्विज ॥ तत्रायुर्दशसाहस्रंपुरुषाणांवपुष्मताम् ॥ १ ॥ अनामयाह्यशोकाश्चनरायत्रतथास्त्रियः ॥ प्लक्षःखण्डश्चयत्रोक्तःसुमहान्नन्दनोपमः ॥ २ ॥ तस्यतेवैफलरसंपिबन्तःपुरुषाःसदा ॥ स्थिरयौवननिष्पन्नांस्त्रियश्चोत्पलगन्धिकाः ॥ ३ ॥ अतःपरंकिंपुरुषाद्धरिहर्षंप्रचक्षते ॥ महारजतसंकाशाजायंतेतत्रमानवाः ॥ ४ ॥

वर्षका विषय वर्णन करता हूं, सुनो ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामुत्तरकुरुकथनं नाम षट्पंचाशोऽध्यायः ॥५६॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम ! अब किम्पुरुष नामक जो वर्ष है, उसकी कथा कहता हूं सुनो वहां शरीर धारी पुरुष दशहजार वर्ष जीवित रहते हैं ॥ १ ॥ वहांके स्त्री पुरुष निरोग और शोकरहित होते हैं । उस स्थानमें नन्दनवनके समान महान एक प्लक्षखंड है ॥ २ ॥ वहांके मनुष्य सदा उन वृक्षोंके फलोंका रस पीकर स्थिर यौवन हुए हैं, और स्त्रियें पद्मके समान गंधयुक्त हुई हैं ॥ ३ ॥ इस किम्पुरुष वर्षके पीछे हरिवर्ष नामक और एक वर्ष है वहां जो पुरुष जन्मलेते हैं वह श्रेष्ठ चांदीके समान वर्णशाली होते हैं ॥ ४ ॥

जो देवरूपी मनुष्य देवलोकसे गिरकर हरिवर्षमें जन्म लेते हैं, वह वहां उत्तम इक्षु (ऊख) का, रस पीते हैं ॥ ५ ॥ बुढ़ापा उनको पीड़ित नहीं करता, अतएव कोई भी जीर्ण नहीं होता। और जितने कालतक वह जीवित रहते हैं तबतक सदा युवा अवस्था बनी रहती है और निरामय रहते हैं ॥ ६ ॥ मेरुवर्ष नामक जो मध्यम वर्ष है जिसको इलावृत कहते हैं वहां सूर्यका ताप नहीं है मनुष्य बुढ़ापेसे जीर्ण नहीं होते ॥ ७ ॥ चन्द्र सूर्य,ग्रह और संपूर्ण नक्षत्रोंकी किरणें वहां आत्मलाभ अर्थात् उज्ज्वलता प्राप्त नहीं कर सकतीं क्यों कि वहां सुमेरुपर्वतकी अत्यन्त ज्योति प्रकाशित होती है ॥ ८ ॥ मेरुवर्षमें जो मनुष्य जन्म लेते हैं, वह समस्तही पद्मके समान प्रभातयुक्त, पद्मगंध पद्मपत्रके समान चौड़े नेत्रोंवाले और

देवलोकच्युताःसर्वेदेवरूपाश्चसर्वशः ॥ हरिवर्षेनराःसर्वेपिबन्तीक्षुरसंशुभम् ॥ ५ ॥ नजराबाधतेतत्रनजीर्यन्तेचकर्हिचित ॥ तावन्त मेवतेकालंजीवन्त्यथनिरामयाः ॥ ६ ॥ मेरुवर्षमयाप्रोक्तंमध्यमंयदिलावृतम् ॥ नतत्रसूर्यस्तपतिनतेजीर्यन्तिमानवाः ॥ ७ ॥ लभ न्तेनात्मलाभंचरश्मयश्चन्द्रसूर्ययोः ॥ नक्षत्राणांग्रहाणांचमेरोस्तत्रपराद्युतिः ॥ ८ ॥ पद्मप्रभाःपद्मगन्धा,जम्बूफलरसाशिनः ॥ पद्म पत्रायताक्षास्तुजायन्तेतत्रमानवाः ॥ ९ ॥ वर्षाणान्तुसहस्राणितत्राप्यायुस्त्रयोदश ॥ शरावाकारसंस्तारोमेरुमध्येइलावृते ॥ १० ॥ मेरुस्तत्रमहाशैलस्तदाख्यातमिलावृतम् ॥ रम्यकंवर्षमस्माच्चकथयिष्येनिबोधतम ॥ ११ ॥ वृक्षस्तत्रापिचोत्तुङ्गोन्यग्रोधोहरित च्छदः ॥ तस्यापितेफलरसंपिबन्तोवर्तयन्तिवै ॥ १२ ॥ वर्षायुतायुषस्तत्रनरास्तत्फलभोगिनः ॥ रतिप्रधानाविमलाजरादौर्गन्ध्य वर्जिताः ॥ १३ ॥ तस्मादथोत्तरंवर्षनाम्नाख्यातंहिरण्मयम् ॥ हिरण्वतीनदीयत्रप्रभूतकमलोज्ज्वला ॥ १४ ॥

जम्बुके फलोंका रस पीनेवाले होते हैं ॥९॥ उन पुरुषोंकी आयु तेरह हजार वर्षकी होती है और उस इलावृतके मध्यमें मेरुनामक जो पर्वत है, उसका आकार शरावेके समान है ॥१०॥ उस वर्षमें महापर्वत मेरुही विख्यात है जो इलावृत कहलाता है अब रम्यकवर्षका वृत्तान्त कहता हूं सुनो ॥ ११ ॥ रम्यकवर्षमें बहुत ऊंचा न्यग्रोध नामक एक वृक्ष है, उसके सब पत्ते हरितवर्ण हैं वहांके मनुष्य उस वृक्षके फलोंका रस पीकर जीवन धारण करते हैं ॥ १२ ॥ जो उस वृक्षके फलोंका भोजन करते हैं वह दश हजार वर्षतक जीवित रहते हैं और वह रति क्रीड़ामें निपुण, सुन्दर तथा जरा दौर्गन्ध्यरहित होते हैं ॥ १३ ॥ उसके उत्तरमें जो वर्ष है उसका नाम हिरण्मय वर्ष है इस वर्षमें अनेक कमलोंके पुष्पोंसे

शोभायमान हिरण्यमान हिरण्वती नामक नदी बहती है ॥ १४ ॥ वहां जो मनुष्य जन्मते हैं वह अत्यन्त बलशाली तेजस्वी, महाकाय, अत्यन्त सत्वसंपन्न धनी और प्रियदर्शन होते हैं ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्यपुराणे भाषाटीकायां भुवनकोशवर्णनं नाम सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥५७॥ क्रौष्टुकिने कहा–हे महामुने ! जो मैंने पूछा था उसको तो आपने भलीभांति वर्णन किया और पृथ्वी समुद्रादिकी स्थिति: परिमाण तथा ग्रहका परिमाण ॥१॥नक्षत्र इत्यादिकी स्थिति और परिमाण और भूरादि सप्तलोक, सप्तपाताल॥२॥और स्वायंभुवनामक प्रसिद्ध मन्वन्तर: इन सबका भी मुझसे वर्णन किया है; अब उक्त मन्वन्तरके पीछेके अपर समस्त मन्वन्तर: उन उन मन्वन्तरोंके अधिपति: तद्वंशीय नृपति: देवता और

महाबलाःसतेजस्काजायन्तेतत्रमानवाः ॥ महाकायामहासत्त्वाधनिनःप्रियदर्शनाः ॥ १५ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभुवनकोशवर्णनंनामसप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ५७ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ कथितंभवतासम्यग्यत्पृष्टोऽसिमहामुने ॥ भूसमुद्रादिसंस्थानंप्रमाणानितथाग्रहाः ॥ १ ॥ तेषांचैवप्रमाणंयन्नक्षत्राणांचसंस्थितिः ॥ भूरादयस्तथालोकाःपातालान्यखिलान्यपि ॥ २ ॥ स्वायम्भुवंतथाख्यातंमुनेमन्वन्तरंमम ॥ तदन्तराण्यहंश्रोतुमिच्छेमन्वन्तराणिवै ॥ मन्वन्तराधिपान्देवानृषींस्तत्तनयान्नृपान् ॥ ३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ मन्वन्तरंमयाख्यातंतवस्वायम्भुवंचयत् ॥ स्वारोचिषाख्यमन्यत्तुशृणुतस्मादनन्तरम् ॥ ४ ॥ कश्चिद्द्विजातिप्रवरःपुरेऽभूदरुणास्पदे ॥ वरुणायास्तटेविप्रोरूपेणात्यश्विनावपि ॥ ५ ॥ मृदुस्वभावःसद्वृत्तोवेदवेदांगपारगः ॥ सदातिथिप्रियोरात्रावागतानांसमाश्रयः ॥ ६ ॥ तस्यबुद्धिरियंत्वासीदहंपश्येवसुन्धराम् ॥ अतिरम्यवनोद्यानांनानानगरशोभिताम् ॥ ७ ॥

ऋषियोंका वृत्तान्त सुननेकी मेरी अत्यन्त अभिलाषा है ॥३॥मार्कण्डेयजी बोले–मैंने तुमसे जिस स्वायंभुव मन्वन्तरका विषय कहा है; उसके पीछे स्वारोचिष नामक अपर मन्वन्तरकी कथा सुनो ॥४॥ दोनों अश्विनी कुमारोंकी अपेक्षा भी रूपवान् शान्तस्वभाव सच्चरित्र वेदवेदाङ्गपारदर्शी कोई एक ब्राह्मण वरुणानदीके तटपर अरुणास्पद नगरमें वास करता था अतिथिके पानेपर वह सदाही प्रसन्न होता । सुतरां रात्रिकालमें आये हुए मनुष्योंका आश्रयस्वरूप था ॥ ५–६ ॥ सदाही उसके मनमें यह इच्छा होती कि, "मैं अतिरमणीय वन और उद्यानोंसे युक्त तथा अनेक नगरोंसे शोभायमान इस पृथ्वीको देखूं" ॥ ७ ॥

अनन्तर एक दिन सब औषधियोंके प्रभावका जाननेवाला और मंत्रविद्यामें पारदर्शी एक अतिथि उसके घर आया ॥ ८ ॥ श्रद्धायुक्त मनसे ब्राह्मणके पूछने पर उस अतिथिने उससे अनेक देश, मनोहर नगर ॥ ९ ॥ वन, नदी, पर्वत और संपूर्ण पवित्र स्थान कहे उससे वह अरुणास्पद नगरमें वास करनेवाला ब्राह्मण आश्चर्ययुक्त होकर कहने लगा॥१०॥हे द्विजवर ! आपने अनेक देशोंमें भ्रमण किया है किन्तु आपके देहमें उसकी कुछभी थकावट विदित नहीं होती आप वृद्ध भी नहीं हैं और न अधिक तरुण ही हैं,आपकी आयु भी अधिक नहीं दीखती, फिर थोड़ेही कालमें आपने किस प्रकार सब पृथ्वीमें भ्रमण किया है ॥११॥ आये हुए ब्राह्मणने कहा हे विप्र!मैं मंत्र और औष-

अथागतोऽतिथिःकश्चित्कदाचित्तस्यवेश्मनि ॥ नानौषधिप्रभावज्ञोमन्त्रविद्याविशारदः ॥८॥ अभ्यर्चितस्तुतेनासौश्रद्धापूतेनचेतसा ॥ तस्याचख्यौसदेशांश्चरम्याणिनगराणिच ॥ ९ ॥ नदीवनानिशैलांश्चपुण्यान्यायतनानिच ॥ ततोविस्मयाविष्टःप्राहतंद्विजसत्त मम् ॥ १० ॥ अनेकदेशदर्शित्वेनास्तिश्रमसमन्वितः ॥ त्वंनातिवृद्धोवयसानातिवृत्तश्चयौवनात् ॥ कथमल्पेनकालेनपृथिवीमटसि द्विज ॥ ११ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ मन्त्रौषधिप्रभावेणविप्राप्रतिहतागतिः॥योजनानांसहस्रंहिदिनार्द्धेनव्रजाम्यहम् ॥१२॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःसविप्रस्तंभूयःप्रत्युवाचेदमादरात ॥ श्रद्दधानोवचस्तस्यब्राह्मणस्यविपश्चितः ॥१३॥ ममप्रसादंभगवन्कुरुमन्त्रप्रभावजम् ॥ द्रष्टुमेतांममहीमतीवेच्छाप्रवर्तते ॥ १४ ॥ प्रादात्सब्राह्मणश्चास्मैपादलेपमुदारधीः ॥ अभिमन्त्रयामासदिशंतेनाख्यातांच यत्नतः ॥ १५ ॥ तेनानुलिप्तपादोऽथसद्विजोद्विजसत्तम ॥ हिमवन्तमगाद्द्रष्टुंनानाप्रस्रवणान्वितम् ॥ १६ ॥

धियोंके प्रभावसे अप्रतिहतगति होकर आधे दिनमें हजार योजन जा सकताहूं॥१२॥मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर उस अरुणास्पदनिवासी ब्राह्मणने विद्वान् अतिथिके वचनमें श्रद्धायुक्त होकर आदरसहित फिर उससे यह वचन कहा ॥१३॥ हेभगवन् ! आप मेरे प्रति औषधि प्रदान रूप कृपा कीजिये । क्योंकि मेरी इस पृथ्वीको देखनेके लिये अत्यन्त इच्छा हुई है ॥१४॥ यह वचन सुनकर उस आये हुए उदारचित्त ब्राह्मणने नगरवासी द्विजवरके पदमें औषधिका लेप कर दिया और कही हुई दिशाओंका यत्नपूर्वक उपदेश भी दिया ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम ! जब उस अतिथिने पैरमें लेप लगा दिया; तब वह ब्राह्मण "दिनके प्रथमार्द्धमें सहस्र योजन जाऊंगा और अपरार्द्ध दिनमें वहांसे आ भी सकता

हूं" इस प्रकार चिन्ताकरके अनेक झरनोंसे युक्त हिमालय पर्वतको देखनेके लिये गया ॥ १६ ॥ १७ ॥ द्विजवर सहजमें ही हिमालयकी पीठपर पहुंचकर उस हिमाचलकी भूमिमें विचरण करने लगा ॥ १८ ॥ वहां विचरण करते करते पैरमें अधिक शीतलताके लगनेसे उसका पर मौषधीसम्भूत पाद लेप धुल गया॥१९॥तब उस ब्राह्मणकी जड़गति हो गई अनन्तर वह इधर उधर विचरण करते उस हिमालय पर्वतके मनोहर मानुप्रान्त भाग देखने लगा ॥२०॥ कि वहांपर सिद्ध, गंधर्व, किन्नर विहार कर रहे हैं और उस पर्वतके किनारे देवताओंके क्रीड़ा और विहारके लिये अत्यन्त रमणीक स्थान बन रहे हैं ॥२१॥ हे मुने ! वह उत्तम ब्राह्मण उस स्थानको सैकड़ों अप्सराओंसे युक्त देखने लगा, कि जिसके देख

सहस्रंयोजनानांहिदिनार्धेनव्रजामियत ॥ आयास्यामीतिसंचिन्त्यतदर्द्धेनापरेणहि ॥ १७ ॥ संप्राप्तोहिमवत्पृष्ठंनातिश्रान्ततनुर्द्विज ॥ विचचारततस्तत्रतुहिमाचलभूतले ॥ १८ ॥ पादाक्रान्तेन[illegible]तुहिनेन[illegible] ॥ [illegible]पादलेपःपरमौषधिसंभवः ॥ १९ ॥ ततोजडगतिःसोऽथइतस्ततश्चपर्यटन् ॥ ददर्शासिमनोज्ञानिमानूनि[illegible] ॥ २० ॥ सिद्धगन्धर्वजुष्टानिकिन्नराभिरतानिच ॥ क्रीडाविहाररम्याणिदेवादीनामितस्ततः ॥ २१ ॥ दिव्याप्सरोगणशतैःसंकीर्णान्यवलोकयन् ॥ नातृप्यत्सद्विजश्रेष्ठःप्रोद्भूतपुलको मुने ॥ २२ ॥ क्वचित्प्रस्रवणाद्भ्रष्टजलपातमनोरमम् ॥ प्रनृत्यच्छिखिकेकाभिरन्यतश्चनिनादितम् ॥ २३ ॥ दात्यूहकोयष्टि काद्यैःक्वचिद्धानिमनोहरैः ॥ पुंस्कोकिलकलापैःश्रुतिहारिभिरन्वितम् ॥ २४ ॥ प्रफुल्लतरुगन्धेनवासितानिलवीजितम ॥ मुदा युक्तःसददर्शहिमवन्तंमहागिरिम् ॥ २५ ॥

नेसे उसका देह पुलकित हुआ और वह अपने मनको किसी प्रकार तृप्त नहीं करसका ॥२२॥ वह ब्राह्मण प्रसन्नतासे देखने लगा कि हिमालय पर्वत किसी स्थानमें पत्थरोंसे छूटी हुई जल राशिके गिरनेसे शोभापाता है; कहीं नाचनेवाले मोरोंके केकाशब्दसे शब्दायमान हो रहा है। और कहीं अन्यान्य पक्षी मनभाविनी सुहाविनी बोलियाँ बोल रहे हैं ॥२३॥ कहीं अत्यन्त मनोहर दात्यूह पपीहा टिटहरी इत्यादि पक्षियोंसे व्याप्त हो रहा है; कहीं पुंस्कोकिलके समान मनोहर मधुरालापसे प्रतिध्वनित हो रहा है ॥२४॥ और कहीं वृक्षोंके खिले हुए पुष्पोंकी गंधसे सुवासित वायुद्वारा वीजित हो रहाहै। वह ब्राह्मण इस प्रकार हिमवन्त नामक महागिरिकी शोभाको देखकर अत्यन्त मुदित हुआ ॥ २५ ॥

इसके पीछे ब्राह्मणकुमार हिमवंतनामक महाचलको देखकर अपने मनमें विचार करने लगा कि "फिर कल प्रातः समय आकर देखूंगा" यह बात अपने चित्तमें स्थिर करके घर चलनेकी इच्छा करी ॥ २६ ॥ वहां विलम्ब होनेके कारण पादलेप धुल जानेसे जड़गति हो ब्राह्मण चिन्ता करने लगा कि मैंने अज्ञानके वश होकर क्या कार्य किया॥२७॥कि, जब मेरा चरणलेप इस शीतलजलसे नष्ट हो गया है, तब यहांसे जाना अत्यन्त कठिन है, क्यों कि यह पर्वत महादुर्गम है और मेरा घर बहुत दूर है॥२८॥अब मुझको महासंकट उपस्थित हुआ है, यहां अग्निशुश्रूषणादि कार्य किस प्रकार करूंगा, अतएव नित्यक्रिया भी सब नष्ट हो गई ॥ २९ ॥ "यह भी रमणीय, यह रमणीय" इस प्रकार करके

दृष्ट्वाचैतंद्विजसुतोहिमवन्तंमहाचलम् ॥ श्वोद्रक्ष्यामीतिसंचिन्त्यमतिंचक्रेगृहंप्रति ॥ २६ ॥ विभ्रष्टपादलेपोऽथचिरेणजडितक्रमः ॥ चिन्तयामासकिमिदंमयाऽज्ञानादनुष्ठितम् ॥ २७ ॥ यदिप्रलेपोनष्टोमेविलीनोहिमवारिणा ॥ शैलोऽतिदुर्गमश्चायंदूरंचाहमिहागतः ॥ २८ ॥ प्रयास्यामिक्रियाहानिमग्निशुश्रूषणादिकम् ॥ कथमत्रकरिष्यामिसंकटंमहदागतम् ॥ २९ ॥ इदम्परमिदंरम्यमित्यस्मिन्वरपर्वते ॥ सक्तदृष्टिरहंतृप्तिंनयास्येऽब्दशतैरपि ॥ ३० ॥ किन्नराणांकलालापाःसमन्ताच्छ्रोत्रहारिणः ॥ प्रफुल्लतरुगन्धांश्च घ्राणमत्यन्तमृच्छति ॥ ३१ ॥ सुखस्पर्शस्तथावायुःफलानिरसवन्तिच ॥ हरन्तिप्रसभंचेतोमनोज्ञानिसरांसिच ॥ ३२ ॥ एवंगते तुपश्येयंयदिकंचित्तपोनिधिम् ॥ समसोपदिशेन्मार्गंगमनायगृहंप्रति ॥ ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सएवंचिन्तयन्विप्रोबभ्राम चहिमाचले ॥ भ्रष्टपादौषधिबलोवैक्लव्यंपरमंगतः ॥ ३४ ॥

इस श्रेष्ठ पर्वतमें आसक्तदृष्टि हो मैं सौ वर्षमें भी तृप्त नहीं हो सकूंगा॥३०॥ अहाहा चारोंओरसे किन्नरोंका कानोंको सुखदायक मधुर आलाप सुनाई आता है।कुसुमित वृक्षोंसे सुगन्धि प्राप्तकर नासिका तृप्त हुई है॥३१॥यहांका वायु सुखस्पर्श, समस्त फल सुरस, मनोहर सरोवरसे मानो बलपूर्वक मेरा चित्त आकर्षित होता है॥३२॥अब इस प्रकार कुछ काल बीतनेपर यदि किसी तपोधनको देखूं, तो उनसे घर जानेका उपदेश ग्रहण करूं॥३३॥मार्कण्डेयजी बोले । पैरमें लगी हुई औषधीकी शक्तिके नष्ट होजानेसे परमदुःखित हो वह द्विजवर इस प्रकार चिन्ता करता करता हिमालयमें विचरण करने लगा ॥ ३४ ॥

तिस काल वरूथिनी नामक मौलेया रूपशालिनी किसी एक महाभाग अप्सरा श्रेष्ठने उस उत्तममुनिको विचरण करते देखा ॥ ३५ ॥ द्विजवरको देखते ही कामबाणोंसे जर्जरित हृदय हो वह वरूथिनी तत्काल उसमें अनुरागवती हुई ॥ ३६ ॥ और विचार करने लगी कि यह मनोहर आकृति कौन पुरुष है, यदि यह मेरा अनादर न करे, तो मेरा जन्म सफल हो॥३७॥अहो!इसकी क्या अपूर्वरूपमाधुरी है,क्या मनोहर गति है दृष्टिकी गंभीरतामें क्या चमत्कार है, भूमण्डलमें इसके समान पुरुष कौन है ? ॥ ३८ ॥ देव, दैत्य, सिद्ध, गंधर्व और पन्नग, यह समस्तही देखे हैं, किन्तु उनमें इन महात्माके समान रूपवान् किसको भी नहीं देखा ॥ ३९ ॥ इनके प्रति जिसप्रकार प्रीतिमती

तंददर्शभ्रमन्तंचमुनिश्रेष्ठंवरूथिनी ॥ वराप्सरामहाभागामौलेयारूपशालिनी ॥ ३५ ॥ तस्मिन्दृष्टेततःसाभूद्द्विजवर्येवरूथिनी ॥ मदनाकृष्टहृदयासानुरागाहितत्क्षणात् ॥ ३६ ॥ चिन्तयामासकोन्वेषरमणीयतमाकृतिः ॥ सफलंमेभवेज्जन्मयदिमांनावमन्यते ॥ ॥ ३७ ॥ अहोऽस्यरूपमाधुर्यमहोऽस्यललितागतिः ॥ अहोगम्भीरतादृष्टेःकुतोऽस्यसदृशोभुवि ॥ ३८ ॥ दृष्टादेवास्तथादैत्याः सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ॥ कथमेकोऽपिनास्त्यस्यतुल्यरूपोमहात्मनः ॥ ३९ ॥ यथाहमस्मिन्मय्येषसानुरागस्तथायदि ॥ भवेदत्रम याकार्यस्तत्कृतःपुण्यसंचयः ॥ ४० ॥ यद्येषमयिसुस्निग्धांदृष्टिमद्यनिपातयेत् ॥ कृतपुण्यानमत्तोऽन्यात्रैलोक्येवनिताततः॥ ४१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंसंचिन्तयन्तीसादिव्ययोषित्स्मरातुरा ॥ आत्मानंदर्शयामासकमनीयतराकृतिम् ॥ ४२ ॥ तांतुदृष्ट्वाद्विज सुतश्चारुरूपांवरूथिनीम् ॥ सोपचारंसमागम्यवाक्यमेतदुवाचह ॥ ४३ ॥ कात्वंकमलगर्भाभेकस्यकिंवानुतिष्ठसि ॥ ब्राह्मणोऽह मिहायातोनगरादरुणास्पदात् ॥ ४४ ॥

हुई हूं, यह भी यदि मुझमें उसी प्रकार अनुरक्त हो,तो मेरे पूर्वजन्मकृत पुण्यसंचयका फल प्राप्त हुआ समझना चाहिये ॥४०॥ यदि यह मुझको स्निग्ध दृष्टिसे देखें, तो तीनों लोकमें मेरी समान स्त्री दूसरी कौन है ? ॥ ४१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । दिव्याङ्गना वरूथिनीने कामातुर हो इस प्रकार चिंता करते करते मनोहर संपूर्ण अङ्गप्रत्यङ्ग उस ब्राह्मणको दिखाये ॥४२॥ ब्राह्मणकुमार उस शोभायमान रूपवती वरू- थिनीको देख, सम्यक् रीतिसे पाद्यादि उपचार ले, उसके निकट आकर कहने लगा ॥४३॥ हे सुन्दरी ! तुम्हारा वर्ण कमलके गर्भके समान

मनोहर है, तुम कौन हो ? किसकी भार्या हो ? यहां क्या कार्य करती हो ? मैं ब्राह्मण अरुणास्पद नगरसे यहां आगया हूं ॥४४॥ हे मदिरे-क्षणे, ! मैं जिसके प्रभावसे यहां आया हूं वह मेरा औषधीका पादलेप शीतलजलसे नष्ट होगया है और (इस बर्फसमूहमें) लीन हो गया है ॥४५॥ वरूथिनी बोली हे महाभाग ! मैं वरूथिनी नामक विख्यात अप्सरा सदाही इस रमणीय पर्वतपर विचरण करती रहती हूं॥४६॥ हे विप्रवर ! अब तुमको देखकर मैं कामके वशीभूत हो निन्दनीय होती हूं, आज्ञा कीजिये, मैं क्या करूं ? क्योंकि अब मैं आपकेही आधीन हुई हूं ॥४७॥ ब्राह्मणने कहा हे शुचिस्मिते ! मैं जिस उपायसे अपने घर जासकूं वही मुझसे कह, हे कल्याणी ! परदेशके कारण यहां मेरे नैमित्तिक

पादलेपोऽत्रमेध्वस्तोविलीनोहिमवारिणा ॥ यस्यानुभावादत्राहमागतोमदिरेक्षणे ॥ ४५ ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ मौलेयाहंमहाभागानाम्नाख्यातावरूथिनी ॥ विचरामिसदैवात्ररमणीयमहाचले ॥ ४६ ॥ साहंत्वद्दर्शनाद्विप्रकामवक्तव्यतांगता ॥ प्रशाधियन्मया कार्यंत्वदधीनास्मिसांप्रतम् ॥ ४७ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ येनोपायेनगच्छेयंनिजगेहंशुचिस्मिते ॥ तन्ममाचक्ष्वकल्याणिहानिर्नोऽखिलकर्मणाम् ॥ ४८ ॥ नित्यनैमित्तिकानांतुमहाहानिर्द्विजन्मनः ॥ भवत्यतस्त्वंहेभद्रेमामुद्धरहिमालयात ॥ ४९ ॥ प्रशस्यतेनप्रवासोब्राह्मणानांकदाचन ॥ अपराध्यनिमेभीरुदेशदर्शनकौतुकम् ॥ ५० ॥ सतोगृहेद्विजाग्र्यस्यनिष्पत्तिःसर्वकर्मणाम ॥ नित्यनैमित्तिकानांचहानिरेवंप्रवासिनः ॥ ५१ ॥ सात्वंकिंबहुनोक्तेनतथाकुरुयशस्विनि ॥ यथानास्तंगतेसूर्येपश्यामिनिजमालयम् ॥ ५२ ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ मैवंब्रूहिमहाभागमाभूत्सदिवसोमम ॥ मांपरित्यज्ययत्रत्वंनिजगेहमुपेष्यसि ॥ ५३ ॥

संपूर्ण कर्मोंकी हानि होती है ॥४८॥ ब्राह्मणके पक्षमें नित्य नैमित्तिक कर्मोंकी हानि महाअनिष्टकारक है, अतएव हे भद्रे ! इस हिमालयसे मुझको निकालो ॥४९॥ ब्राह्मणका परदेशमें रहना कभी प्रशंसनीय नहीं है हे भीरु ! मैंने कोई अपराध नहीं किया है देशोंको देखनेके कौतूहलसे परदेशी हुआ हूं ॥५०॥ घरमें वास करनेवाले ब्राह्मणके नित्यनैमित्तिक संपूर्ण कर्म संपन्न होते हैं, किन्तु परदेशी होनेसे उन सबकी हानि होती है ॥५१॥ हे यशस्विनी ! बहुत कहनेका प्रयोजन क्या है, इस समय जिस प्रकार सूर्यास्तके पहिलेही अपने घरको देखसकूं तू वही कर ॥५२॥ वरूथिनी बोली हे महाभाग ! जिस दिन आप मुझको छोड़कर अपने घर जाँय, वह दिन मेरे लिये उपस्थित न हो ॥ ५३ ॥

है द्विजनन्दन ! स्वर्ग भी इस स्थानकी अपेक्षा मनोहर नहीं है, अतएव मैं स्वर्गको छोड़कर इस स्थानमें वास करूंगी॥५४॥ हे कान्त ! आप इस रमणीय हिमाचलमें मेरे संग विहार करते हुए बांधवोंको भी स्मरण नहीं करेंगे ॥५५॥ यहां मैं तुमको माल्य, वस्त्र, अलंकार, भक्ष्य, भोज्य और अनुलेपन प्रदान करूंगी, क्यों कि कामसे हरी जाकर मैं तुम्हारे वशीभूत हुई हूं ॥५६ हे महाभाग ! इस स्थानमें वास करनेसे वीणा, वेणुका शब्द, किन्नरोंका मनोहर संगीत, आह्लादजनक वायु, उष्ण अन्न, पवित्र जल ॥५७॥ अभिलाषित शय्या, सुगंधित अनुलेपन, यह सब तुमको सुलभ होंगे इन सबकी अपेक्षा तुम्हारे घरमें अधिक क्या है ? ॥५८॥ इस स्थानमें वास करनेसे तुम कभी जराग्रसित अर्थात् बूढे नहीं होगे,

अहोरम्यतरः स्वर्गोनयतोद्विजनन्दन ॥ अतोवयंपरित्यज्यतिष्ठामोऽत्रसुरालयम् ॥ ५४ ॥ सत्वंसहमयाकान्तेऽत्रतुहिनाचले ॥ रममाणोनमर्त्यानांबान्धवानांस्मरिष्यसि ॥ ५५ ॥ स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्भक्ष्यभोज्यानुलेपनम् ॥ दास्याम्यत्रतथाहन्तेस्मरेणवशगाहृता ॥ ५६ ॥ वीणावेणुस्वनंगीतंकिन्नराणांमनोरमम् ॥ अङ्गाह्लादकरोवायुरुष्णान्नमुदकंशुचि ॥ ५७ ॥ मनोभिलषिताशय्यासुगंधमनुलेपनम् ॥ इहासतोमहाभागगृहेकिंतेनिजेऽधिकम् ॥ ५८ ॥ इहासतोनैवजराकदाचित्तेभविष्यति ॥ त्रिदशानामियंभूमिर्यौवनोपचयप्रदा ॥ ५९ ॥ इत्युक्त्वासानुरागासासहसाकमलेक्षणा ॥ आलिलिङ्गप्रसीदेतिवदन्तीकलमुन्मनाः ॥ ६० ॥ ब्राह्मणउवाच॥ मामांस्प्राक्षीर्व्रजान्यत्रदुष्टेयःसदृशस्तत्र ॥ मयान्यथायाचितात्वमन्यथैवाभ्युपैषिमाम् ॥ ६१ ॥ सायंप्रातर्हुतंहव्यंलोकान्यच्छतिशाश्वतान् ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलंमूढेहव्येप्रतिष्ठितम् ॥ ६२ ॥

क्यों कि यह देवभूमि यौवनकी वृद्धि करनेवाली हैं ॥ ५९ ॥ यह कह कर अनुरागवती उस कमलके समान नेत्रोंवाली वरूथिनीने अत्यन्त व्याकुल हो मधुर स्वरसे " प्रसन्न हो " यह बात कहते कहते उसको सहसा आलिंगन किया ॥ ६० ॥ ब्राह्मणने कहा रेदुष्टे ! मुझको स्पर्श मत करो, जो तेरे योग्य हो, उसकेही समीप जा। मैंने तुझसे जो प्रार्थना करी, तू उसके विपरीत विचार कर मुझसे मिलनेकी चेष्टा करती है ॥ ६१ ॥ प्रातः काल और सायंकालमें होम करने से नित्य संपूर्ण शाश्वत लोक प्राप्त होते हैं। रे मूढ़े ! यह समस्त त्रैलोक्य होम द्वारा ही प्रतिष्ठित है ॥ ६२ ॥

अत एव उसका निर्वाह करनेके लिये जिस उपायसे मैं अपने घर पहुंच सकूं, उसको शीघ्र कह। वरूथिनी बोली—हे विप्र! मुझको देखकर क्यों तुम्हें प्रसन्नता नहीं होती यह हिमालय क्या रमणीय नहीं है? गंधर्व किन्नरादिकोंके अतिरिक्त और किस पुरुषकी आप इच्छा करते हैं? ॥ ६३ ॥ आप निःसन्देह यहांसे अपने घर जासकेंगे, किन्तु इस समय मेरे संग यहां कुछ कालतक दुर्लभ सुखभोग कीजिये ॥ ६४ ॥ ब्राह्मणने कहा गार्हपत्य, आवहनीय और दक्षिणाग्नि यह तीन अग्निही मेरी अभीष्ट हैं, अग्निगृहही रमणीयस्थान और विस्तारिणी वेदिही मुझको प्रसन्न करती है ॥ ६५ ॥ वरूथिनी बोली—हे द्विज! आठ प्रकारके आत्मगुणोंमें दयाही प्रधान है, फिर भी प्रीति

तमुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ किंतेनाहंप्रियाविप्ररमणीयोनकिंगिरिः ॥ गन्धर्वान्किन्नरादींश्चत्यक्त्वाभिष्टोद्दिकस्तव ॥ ६३ ॥ निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६४ ॥ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ अभीष्टागार्हपत्याद्याःसततेमेत्रयोऽग्नयः ॥ रम्यंममाग्निशरणंवेदीविष्टरिणीप्रिया ॥ ६५ ॥ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ अष्टावात्मगुणायेहितेषामाद्योदयाद्विज ॥ तांकरोपिकथंनत्वंमयिसद्धर्मपालक ॥ ६६ ॥ त्वद्विमुक्तानजीवामितथाप्रीतिमतीत्वयि ॥ नैतद्वदाम्यहंमिथ्याप्रसीदकुलनन्दन ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ यदिप्रीतिमतीसत्यंनोपचाराद्ब्रवीपिमाम् ॥ तदुपायंसमाचक्ष्वयेनयामिस्वमालयम् ॥ ६८ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ ॥ निजमालयमप्यस्माद्भवान्यास्यत्यसंशयम् ॥ स्वल्पकालंमयासार्द्धंभुङ्क्ष्वभोगान्सुदुर्लभान् ॥ ६९ ॥

दया क्यों मेरे प्रति नहीं करते ॥ ६६ ॥ मैं आपके प्रति जिस प्रकार प्रीतिमती अर्थात् अनुरागिणी हुई हूं, इससे आपके विना जीवित नहीं रह सकती, मैं मिथ्या नहीं कहती हूँ, आप अपने कुलको आनन्द देने वाले हैं अब आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ ६७ ॥ ब्राह्मणने कहा—यदि तू मेरेप्रति सत्यही प्रीतिमति हुई है, और मुझसे जो कहा, वह यदि मिथ्या वचन नहीं है, तो मैं जिस उपायसे अपने घर पहुँचसकूं, वह मुझसे कह ॥ ६८ ॥ वरूथिनी बोली—आप निःसन्देह इस स्थानसे अपने घर जा सकते हैं, किन्तु अब मेरे संग अल्पकालतक दुर्लभसुख भोगिये ॥ ६९ ॥

ब्राह्मणने कहा—हे वरूथिनी ! शास्त्रकी आज्ञा ब्राह्मणके लिये भोग करनेको नहीं है क्योंकि स्त्रीकी चेष्टा ब्राह्मणको इस लोकमें क्लेश और पर लोकमें विपरीत फल प्रदान करती है ॥ ७० ॥ वरूथिनी बोली—मैं मृतप्राय हुई हूं मेरी रक्षा करनेसे आपको परलोकमें उसी पुण्यका फल प्राप्त होगा। और दूसरे जन्ममें आप उसीके द्वारा अनेक भोग प्राप्त करेंगे ॥ ७१ ॥ परलोक और जन्मान्तरमें भोग, इस दोनों प्रकारके पुण्योंका फल आपको लाभदायक है, किन्तु मुझको निराश करनेसे मेरी मृत्यु होगी और आपभी पापके भागी होंगे ॥ ७२ ॥ ब्राह्मणने कहा—मेरे गुरुने कहा है, परस्त्रीमें इच्छा न करना एतएव तू विलापकर अथवा यौवन त्यागकर, मैं तेरी इच्छा नहीं करता ॥७३॥ मार्कण्डेयजी

ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ नभोगार्थायविप्राणांशस्यतेहिवरूथिनि ॥ इहक्लेशायविप्राणांचेष्टाप्रेत्यफलप्रदा ॥ ७० ॥ वरूथिन्युवाच ॥ सन्त्राणंम्रियमाणायाममकृत्वापरत्रते ॥ पुण्यस्यैवफलंभाविभोगाश्चान्यत्रजन्मनि ॥ ७१ ॥ एवंचद्वयमप्यत्रतवोपचयकारणम् ॥ प्रत्याख्यनादहंमृत्युंत्वंचपापमवाप्स्यसि ॥ ७२ ॥ ब्राह्मण उवाच ॥ ॥ परस्त्रियंनाभिलषेदित्यूचुर्गुरवोमम ॥ तेनत्वांनाभिवाञ्छामिकामंविशुलपष्यवा ॥ ७३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वासमहाभागःस्पृष्ट्वापःप्रयतःशुचिः ॥ प्राहेदंप्रणिपत्याग्निंगार्हपत्यमुपांशुना ॥ ७४ ॥ भगवन्गार्हपत्याग्नेयोनिस्त्वंसर्वकर्मणाम् ॥ त्वत्तआहवनीयोऽग्निर्दक्षिणाग्निश्चनान्यतः ॥ ७५ ॥ युष्मदाप्यायनाद्देवावृष्टिसस्यादिहेतवः ॥ भवन्तिसस्यादखिलंजगद्भवतिनान्यतः ॥ ७६ ॥ एवंत्वत्तोभवत्येतद्येनसत्येनवैजगत ॥ तथाहमद्यस्वंगेहंपश्येयंसतिभास्करे ॥ ७७ ॥ यथावैवैदिकंकर्मस्वकालेनोज्झितंमया ॥ तेनसत्येनपश्येयंगृहस्थोऽद्यदिवाकरम् ॥ ७८ ॥

बोले—वरुथिनीसे इसप्रकार कहकर वह नियमवान् महाभाग ब्राह्मण आचमनके अन्तमें शुद्ध हो गार्हपत्य अग्निको प्रणामपूर्वक उपांशु जपद्वारा यह कहने लगा ॥ ७४ ॥ हे भगवान् ! गार्हपत्यअग्ने ! तुम्हीं सब कर्मोंके बीजस्वरूप हो आहवनीय और दक्षिण यह दोनों अग्नि तुमसेही उत्पन्न करनेवाला नहीं है ॥ ७५ ॥ तुम्हारे प्रसन्न होनेपरही देवता वृष्टि और शस्य इत्यादि प्रदान करते हैं, तथा शस्य (धान्य) सेही जगत् प्रतिष्ठित है, अन्य किसी प्रकार नहीं रह सकता ॥७६॥ जिस सत्यद्वारा यह जगत् तुममें इसी प्रकार प्रतिष्ठित है, मैं उसी सत्यद्वारा जिससे अभी सूर्यके विद्यमान रहते रहते अपने घरको देख सकूं ॥ ७७ ॥ जिस सत्यसे संपूर्ण वैदिक कर्म यथोचित कालमें संपादित होते हैं, मैं उसी सत्यसे गृहवासी

होकर अभी दिवाकरको देखूं ॥ ७८ ॥ जिस सत्यसे कभी मेरी मति परद्रव्य अथवा पराई स्त्रीमें अभिलाषिणी नहीं हुइ है, उसी सत्यसे मेरी वह मति अब इस विषयमें सिद्धि लाभ करे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इस प्रकार कहते कहते द्विजपुत्रके शरीरमें गार्हपत्य अग्निने आकर अधिष्ठान किया ॥ १ ॥ उससे प्रभामण्डलमध्यवर्त्ती हो वह ब्राह्मण मूर्त्तिमान् अग्निके समान स्वयं उस देशको प्रकाशित करने लगा ॥ २ ॥ हे विप्र! जब वरूथिनी नामक अप्सराने इस प्रकार उस ब्राह्मणकुमारका रूप देखा, तब अत्यन्त अनुरागसे और भी अधिक मोहित होगई ॥ ३ ॥

यथाचनपरद्रव्येपरदारेचमेमतिः ॥ कदाचित्साभिलाषाभूत्तथैतत्सिद्धिमेतुमे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरे ब्राह्मणवाक्यंनामाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंतुवदतस्तस्यद्विजपुत्रस्यपावकः ॥ गार्हपत्यः शरीरेतुसन्निधानमथाकरोत् ॥ १ ॥ तेनचाधिष्ठितःसोऽथप्रभामण्डलमध्यगः ॥ व्यदीपयततंदेशंमूर्तिमानिवहव्यवाट् ॥ २ ॥ तस्यास्तुसुतरांतत्रताहग्रूपेद्विजन्मनि ॥ अनुरागोऽभवद्विप्रंपश्यन्त्यादेवयोषितः ॥ ३ ॥ ततःसोऽधिष्ठितस्तेनहव्यवाहेनतत्क्षणात् ॥ यथापूर्वंतथागन्तुंप्रवृत्तोद्विजनन्दनः ॥ ४ ॥ जगामचत्वरायुक्तस्तयासास्त्रंनिरीक्षितः ॥ आदृष्टिपातात्तन्वङ्ग्यानिश्वासोत्कम्पिकन्धरम् ॥ ५ ॥ ततःक्षणेनैवतदानिजगेहमवाप्यसः ॥ यथाप्रोक्तंद्विजश्रेष्ठश्चकारसकलाःक्रियाः ॥ ६ ॥ अथसाचारुसर्वाङ्गीतत्रासक्तात्ममानसा ॥ निश्वासपरमानिन्येदिनशेषंतथानिशाम् ॥ ७ ॥

जब इस द्विजनन्दनमें अग्निका अधिष्ठान अर्थात् प्रवेश हुआ तो तत्कालही वह पूर्ववत् शक्तिमान् हो गमन करनेमें प्रवृत्त हुआ ॥४॥ तन्वङ्गी वरूथिनी खड़ी देखती रही और यह विप्रकुमार अत्यन्त शीघ्रतायुक्त गतिसे चलदिया, जब वह इसको दिखाई नहीं दिया, तब यह लम्बे लम्बे श्वास लेती हुई कम्पायमान होने लगी॥५॥तदनन्तर वह उत्तम ब्राह्मण क्षणकालमें अपने घर पहुंचा और पूर्वोक्त नित्य नैमित्तिक संपूर्ण क्रियाकलापका अनुष्ठान करने लगा॥६॥फिर उस सर्वाङ्गमनोहर वरूथिनीने उक्त द्विजवरके प्रति आसक्तचित्त हो दीर्घश्वास छोड़ते छोड़ते उस दिनका शेषभाग और रात्रि बिताई ॥ ७ ॥

मदिरेक्षणा सर्वाङ्गसुन्दरी वह अप्सरा हाहाकार शब्दसे रोदन और वारम्वार दीर्घ श्वास छोड़ते छोड़ते अपने आपको अत्यन्त हतभाग्य जान निन्दा करने लगी ॥ ८ ॥ क्या आहार, क्या विहार, रमणीय वन, क्या मनोहर पर्वतोंकी कन्दरा. किसीसे भी वह तोष प्राप्त नहीं करसकी॥९॥ दो चक्रवाकोंको रमण करता हुआ देखकर उसको रमणविषयमें स्पृहा उत्पन्न हुई; किन्तु वह द्विजवरसे त्यागी गई थी; इस लिये अपने यौवनकी निन्दा करने लगी ॥१०॥ दुष्ट दैवके वशीभूत होकर मैं जो इस पर्वतमें आई; यह क्या कभी संभव था और वह सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुषश्रेष्ठ जो मुझको दिखाई दिया; उसको मैं क्या जानती थी ? ॥११॥ इस समय यदि वह महाभाग मेरे सहित संगत न होंगे, तो मैं

निश्वसन्त्यनवद्याङ्गीहाहेतिरुदतीमुहुः ॥ मन्दभाग्येतिचात्मानंनिनिन्दमदिरक्षणा ॥ ८ ॥ नविहारेनचाहारेरमणीयेनवावने ॥ नकन्दरेषुरम्येषुसाबबंधतदारतिम् ॥ ९ ॥ चकाररममाणेचचक्रवाकयुगेस्पृहाम् ॥ मुक्तातेनवरारोहानिनिंदनिजयौवनम् ॥ १० ॥ क्वागताहमिमंशैलंदुष्टदैवबलात्कृता ॥ क्वचप्राप्तःसमेदृष्टेगोंचरंतादृशोनरः ॥ ११ ॥ यद्यसमहाभागोनमेसंगमुपैष्यति ॥ तत्कामाग्निरवश्यंमांक्षपयिष्यतिदुःसहः ॥ १२ ॥ रमणीयमभूद्यत्तत्पुंस्कोकिलनिनादितम् ॥ तेनहीनंतदेवैतद्दहतीवाद्यमामलम् ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्थंसामदनाविष्टाजगाममुनिसत्तमम् ॥ ववृधेचतदारागस्तस्यास्तस्मिन्प्रतिक्षणम् ॥ १४ ॥ कलिर्नाम्नातु गन्धर्वःसानुरागोनिराकृतः ॥ तयापूर्वमभूत्सोऽथतदवस्थांददर्शताम् ॥ १५ ॥ सचिन्तयामासतदाकिंन्वेषागजगामिनी ॥ निश्वासपवनम्लानागिरावत्रवरूथिनी ॥ १६ ॥ मुनिशापक्षताकिंनुकेनचित्किंविमानिता ॥ बाष्पवारिपरिक्लिन्नमियंधत्तेयतोमुखम्॥ १७ ॥

दुःसह कामाग्निसे भस्म होकर अवश्य जीवन परित्याग करूंगी १२॥पहिले जो मेरा श्रवण रंजन था, इस समय द्विजवरके विरहमें वह कोकिलका शब्द मानो अग्निके समान मुझको दग्ध करता है ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—वरूथिनीने इसप्रकार कामासक्त हो सहसा मुनिसत्तमको मनसे देखा, तब उनमें प्रतिक्षण उसका अनुराग बढ़ने लगा॥१४॥पहिले इस अप्सराने जो कि इसके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था, उस कलिनामक एक गंधर्वका निरादर कर दिया था, वह इस समय इसकी ऐसी अवस्था देखकर॥१५॥चिन्ता करनेलगा "इस पर्वतमें यह जो गजगामिनी प्रतिक्षण निश्वास पवनघातसे परिम्लान होती है, यह क्या वही वरूथिनी है१६॥क्या यह मुनिके शापसे ग्रसित हुई है या किसीने इसका अपमान किया है।

क्योंकि इसके मुखपर आसुओंकी बूँदे दिखाई देती हैं"॥१७॥अनन्तर कलिने कौतूहलके वशीभूत हो, बहुतकालतक उस विषयकी चिन्ता कर ध्यानके द्वारा संपूर्ण यथार्थ वृत्तान्त जान लिया॥१८॥मुनिघटित वह सब वृत्तान्त जानकर फिर चिन्ता करने लगा "मेरे पहिले किये पुण्यके फलसे मेरा यह अभिलाषितविषय सिद्ध हुआ" ॥१९॥ मेरे अनुरक्त होकर वारंवार प्रार्थना करनेपर भी जिसने मेरा निरादर किया था वही वरूथिनी अब मुझको सुलभ होगी अर्थात् प्राप्त होगी॥२०॥यह अप्सरा मनुष्यके प्रति अनुरागवती हुई है. इस समय में यदि मुनिका रूप धारणकरूं तो मेरे प्रति भी निःसन्देह प्रीतिमती होगी॥अब विलम्ब नहीं करना चाहिये ॥ २१ ॥ मार्कण्डयजी बोले–इसके पीछे यह कलि आत्मप्रभावसे उस

ततःसदध्यौसुचिरंतमर्थंकौतुकात्कलिः ॥ ज्ञातवांश्चप्रभावेणसमाधेःसयथातथम् ॥ १८ ॥ पुनःसचिन्तयामासतद्विज्ञायमुनेः कलिः ॥ ममोपपादितंसाधुभाग्यैरेतैःपुराकृतैः ॥ १९ ॥ मय्येषासानुरागेणबहुशःप्रार्थितासती ॥ निराकृतवतीमेयमद्यप्राप्याभविष्यति ॥ २० ॥ मानुषेसानुरागेयंतत्रतद्रूपधारिणि ॥ रंस्यतेमय्यमन्दिग्धंकिंकाले नकरोमितत् ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ आत्मप्रभावेणततस्तस्यरूपंद्विजन्मनः ॥ कृत्वाचचारयत्रास्तेनिषण्णासावरूथिनी ॥२२॥ सातंदृष्ट्वावरारोहाकिंचिदुत्फुल्ललोचना ॥ समेत्यप्राहतन्वंगीप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥२३॥ त्वयात्यक्तानसन्देहः परित्यक्ष्यामिजीवितम् ॥ तत्राधर्मःकष्टतरः क्रियालोपोभविष्यति ॥ २४ ॥ मयासमेत्यरम्येऽस्मिन्महात्मन्वनकन्दरे ॥ मत्परित्राणजंधर्ममवश्यंप्रतिपत्स्यसे ॥ २५ ॥ आयुषःसावशेषंमेनूनमस्तिमहामते ॥ निवृत्तस्तेननूनंहृदयाह्लादकारकः ॥ २६ ॥

ब्राह्मणका रूप धारणकर जिस स्थानमें वरूथिनी बैठीथी, वहां विचरण करने लगा ॥२२॥ कृशाङ्गी वरारोहा उसी मुनिवेशधारी कलिको देख, मुनि जान, आह्लादसे कुछेक प्रफुल्लनेत्र हो उसके समीप जाकर "मुझपर प्रसन्न होओ" यह बात वारंवार कहने लगी ॥ २३ ॥ और यह भी कहा कि, यदि आप मुझको छोड़देंगे तो मैं जीवन परित्याग करूंगी।मेरे जीवन त्याग करनेसे आपको अधर्म होगा और उस अधर्मके कारण क्रिया भी अवश्य लोप होगी ॥ २४ ॥ यदि इस महाकन्दरा युक्त हिमालय पर्वतकी मनोहर गुहामें मेरे संग रमण करके मेरी रक्षा करोगे, तो उस रक्षाकरनेका धर्म भी अवश्य आपको प्राप्त होगा ॥२५॥हे महामते'अबतक मेरी अवस्था शेष नहीं हुई है,इसी कारण

आपने निवृत्त होकर मेरे हृदयमें आनन्द अनुभव कराया॥२६॥कलिने कहा हे कृशोदरि!मैं क्या करूं।इस स्थानमें रहनेसे मेरी क्रियाका लोप तो होवेहीगा और तुम भी इस प्रकारके अनुरोधवचन कहती हो॥२७॥ अतएव संकटको प्राप्त होकर मुझको तुम्हारी बातमें सम्मत होना पड़ा। किन्तु मैं जो कहताहूँ वह यदि स्वीकार करो तो तुम्हारे संग मेरा मिलन हो अन्यथा नहीं॥२८॥ वरूथिनी बोली—आप प्रसन्न हूजिये, आप जो कहेंगे, मैं वहीं करूंगी, इसमें संदेह न कीजिये मैं मिथ्या नहीं कहती हूं आपकी कही बात मैं अभी संपादन करूंगी॥२९॥ कलिने कहा हे प्रभू! तो यह बात अंगीकार करो कि, "वनमें विहारके समय तुम मुझको न देखो, तुमको मेरे संग नेत्र मूद कर संसर्ग करना होगा"॥ ३० ॥

॥ कलिरुवाच ॥ किंकरोमिक्रियाहानिर्भवत्यत्रसतोमम ॥ त्वमप्येवंविधंवाक्यंब्रवीषितनुमध्यमे ॥ २७ ॥ तदहंसंकटंप्राप्तोयद्ब्रवीमिकरोपितत् ॥ यदिस्यात्संगमोमेद्यभवत्यासहनान्यथा ॥ २८ ॥ वरूथिन्युवाच ॥ प्रसीदयद्ब्रवीषित्वंतत्करोमिनतेमृषा ॥ ब्रवीम्येतदनाशङ्क्यंयत्तत्कार्यंमयाधुना ॥ २९ ॥ कलिरुवाच ॥ नाद्यसंभोगसमयेद्रष्टव्योहंत्वयावने ॥ निमीलिताक्ष्याःसंसर्गस्तव सुभ्रुमयासह ॥ ३० ॥ वरूथिन्युवाच ॥ एवंभवतुभद्रंतेयथेच्छसितथास्तुतत् ॥ मयासर्वप्रकारंहिवशेस्थेयंतवाधुना ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेएकोनषष्टितमोध्यायः ॥ ५९ ॥ ॥ छ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसहतयासोथररामगिरिसानुषु ॥ फुल्लकाननहृद्येषुमनोज्ञेषुसरःसुच ॥ १ ॥ कन्दरेषुचरम्येषुनिम्नगापुलिनेषुच ॥ मनोज्ञेषुतथान्येपुदेशेषुमुदितोद्विज ॥२॥ वह्निनाधिष्ठितस्यासीद्यद्रूपंतस्यतेजसा ॥ अचिन्तयद्भोगकालेनिमीलितविलोचना ॥ ३ ॥

वरूथिनी बोली—"यही हो" आपकी जिस प्रकार इच्छा है, वह उसी प्रकार संपन्न होगी। मैं इस समय स्वीकार करती हूं कि सब प्रकारसे आपके वशीभूत हुई। आपका मंगल हो ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषेमन्वन्तरे एकोनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—कलि वरूथिनीके संग पर्वतके कंगूरे, मनोहर कुसुमितवना मनोज्ञ सरोवर ॥ १ ॥ रमणीय गुहा, नदी—पुलिन, और अन्यान्य संपूर्ण देशोंमें प्रसन्न चित्तसे रमण करने लगा ॥ २ ॥ अग्निसे अधिष्ठित होनेके कारण उस ब्राह्मण तेजस्वीका जो रूप होगया था। वरूथिनी संभोगकालमें नेत्र मूंदकर उसीकी चिन्ता करने लगी ॥ ३ ॥

हे मुनिसत्तम ! तदनन्तर उस अप्सराने यथा समयमें गंधर्वके औरससे गर्भधारण किया। विहार कालमें ब्राह्मणके रूपकी चिन्ता करनेसे उस समय उसका रूप भी उसीके समान तेजस्वी हुआ ॥ ४ ॥ वह विप्ररूप धारी गंधर्व गर्भवती वरूथिनीको समझाय उससे विदा होकर चला गया ॥ ५ ॥ सूर्यनारायण जिस प्रकार अपनी किरणोंके द्वारा समस्त दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, इसी प्रकार अंगकी प्रभासे चारों दिशाको दीप्तिमान् कर प्रज्वलित अग्निके समान दीप्तिशाली एक बालकने यथा कालमें जन्मग्रहण किया ॥ ६ ॥ स्वरोचि अर्थात् अपने अंगकी प्रभासे सूर्यके समान दीप्ति पानेके कारण वह बालक 'स्वरोचिः' नामसे प्रसिद्ध हुआ ॥ ७ ॥ हे महाभाग ! चंद्रमाकी कला जिस

ततःकालेनसागर्भमवापमुनिसत्तम ॥ गन्धर्ववीर्य्यतोरूपंचिन्तनाच्चद्विजन्मनः ॥४॥ तांगर्भधारिणींसोऽथमान्त्वयित्वावरूथिनीम् ॥ विप्ररूपधरोयातस्तयाप्रीत्याविसर्जितः ॥ ५ ॥ जज्ञेसबालोद्युतिमाञ्ज्वलन्निवविभावसुः ॥ स्वरोचिभिर्यथासूर्य्योभासयन्सकला दिशः ॥ ६ ॥ स्वरोचिभिर्यतोभातिभास्वानिवसबालकः ॥ ततःस्वरोचिरित्येवंनाम्नाख्यातोबभूवसः ॥ ७ ॥ ववृधेचमहाभागोव यसानुदिनंतथा ॥ गुणौघैश्चयथाबालःकलाभिःशशलाञ्छनः ॥ ८ ॥ सजग्राहधनुर्वेदंवेदांश्चैवयथाक्रमम ॥ विद्याश्चैवमहाभागस्तदा यौवनगोचरः ॥ ९ ॥ मन्दराद्रौकदाचित्सविचरंश्चारुचेष्टितः ॥ ददर्शकांतदाकन्यांगिरिप्रस्थेभयातुराम ॥ १० ॥ त्रायस्वेतिनि रीक्ष्यैनंसातदावाक्यमब्रवीत् ॥ माभैषीरितिसप्राहभयविप्लुतलोचनाम् ॥ ११ ॥ किमेतदितितेनोक्तेवीरवाक्येमहात्मना ॥ ततः साकथयामासश्वासाक्षेपप्लुताक्षरम् ॥ १२ ॥

प्रकार शुक्लपक्षमें दिन दिन बढ़ती है, उसी प्रकार उक्त महानुभाव बालकके गुण भी प्रतिदिन अवस्थाके अनुसार बढ़ने लगे ॥ ८ ॥ उस महाभाग स्वरोचिने क्रमानुसार चारों वेद, संपूर्ण शास्त्र और धनुर्वेदमें सुशिक्षित हो यौवनकी सीमामें पदार्पण किया ॥ ९ ॥ उस शोभनगति स्वरोचिने किसी समय मंदरपर्वतपर विचरण करते करते पर्वत प्रान्तमें एक भयसे आतुर हुई कन्याको देखा ॥ १० ॥ उस कन्याने इनको देखकर 'रक्षा करो' इस प्रकार कहा। तब उन्होंने भी कन्याको भयसे विह्वल देखकर भय नहीं है" यह कहकर समझाया ॥ ११ ॥ इसके पीछे उन महात्माने वीरजलोचित वचनोंसे "तुमको क्या हुआ है।" इस भांति पूछा। तब कन्या श्वास लेती हुई टूटे फूटे शब्दोंसे कहने लगी ॥ १२ ॥

कन्या बोली हे माहाभाग ! इन्दीवर नाम विद्याधरके औरस और मरुधन्वाकी कन्याके गर्भसे मेरा जन्म हुआ है मेरा नाम मनोरमा है ॥ १३ ॥ विभावरी और कलावती नामक मेरी दो सखी हैं। पहली मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या और दूसरी पारमुनिकी कन्या है ॥ १४ ॥ एक दिन मैंने उनके संग अति उत्तम कैलासके तटमें जाकर वहां एक मुनिको देखा था। वह अत्यन्त दुबले उनके अंग तपके क्लेशसे अत्यन्त कृश ॥ १५ ॥ क्षुधासे कंठ क्षीण (नेत्र मानो खखोडलसे हो गये हैं वे मानो चक्षु फाड़कर निकले पडते हैं) जब मैं उन तपस्वीकी हँसी करी तब उन्होंने क्रोधित हो अत्यन्त क्षीण कंठसे कुछेक कम्पायमान होठकर तत्काल मुझको यह शाप दिया

॥ कन्योवाच ॥ ॥ अहमिन्दीवराख्यस्यसुताविद्याधरस्यवै ॥ नाम्नामनोरमाजातासुतायांमरुधन्वनः ॥ १३ ॥ मन्दारविद्याधरजा सखीममविभावरी ॥ कलावतीचाप्यपरासुतापारस्यवैमुनेः ॥ १४ ॥ ताभ्यांसहमयायातंकैलासतटमुत्तमम् ॥ तत्रदृष्टोमुनिःकश्चित्तपसातिकृशाकृतिः ॥ १५ ॥ क्षुत्क्षामकण्ठोनिस्तेजादूरपानाक्षितारकः ॥ मयावहसितःक्रुद्धःसतदामांशशापह ॥ १६ ॥ क्षामक्षामस्वरःकिंचित्कंपिताधरपल्लवः ॥ त्वयावहमितोयस्मादनार्य्येदुष्टतापसि ॥ १७ ॥ तस्मात्त्वामचिरेणैवरा‌क्षसोभिभविष्यति ॥ दत्ते शापेमत्सखीभ्यांसतुनिर्भर्त्सितोमुनिः ॥ १८ ॥ धिक्तेब्राह्मण्यमक्षान्त्याहतंतेनिखिलंतपः ॥ अमर्षेणैर्षपितोऽमितपसानातिकर्शितः ॥ १९ ॥ क्षान्त्यास्पदंवैब्राह्मण्यंक्रोधसंयमनंतपः ॥ एतच्छ्रुत्वाददौशापंतयोरप्यमितद्युतिः ॥ २० ॥ एकस्याःकुष्ठमङ्गेषुभाव्यन्यस्यास्तथाक्षयः ॥ तयोस्तथैवतज्जातंयथोक्तंतेनतत्क्षणात ॥ २१ ॥

"हे अनार्ये ! दुष्टतापसी तैंने मेरी हँसी करी है ॥ १६ ॥ १७ ॥ इस कारण तू शीघ्रही राक्षसके निकटसे पराभवको प्राप्त होगी" मुनिके इस प्रकार शाप देनेपर मेरी उन दोनों सखियोंने उन मुनिकी भर्त्सना (बुराई) करी ॥१८॥ तुम सरीखे क्षमाहीन ब्राह्मणको धिक्कारहै तुमने जो तपस्या करी है वह सब वृथा है। जानपड़ता है क्रोधसे तुम्हारा शरीर कृश हो रहा है तपसे नहीं ॥ १९ ॥ क्योंकि ब्राह्मण क्षमाके आधार हैं और क्रोधसंयमही उनकी तपस्या है तुम तपस्या में परिपक्क न होकर इस बीचमेंही अपने क्रोधसे आप नष्ट हुए। यह तिरस्कार सुनतेही उन अतुलप्रभावशाली मुनिने उनको भी शाप दिया ॥ २० ॥ एकसे कहा "तेरे सर्वाङ्गमें कुष्ठ होगा" और दूसरीसे "तेरे क्षयरोग होगा"

यह कह कर शाप दिया। मुनिके यह वचन कहते कहतेही तत्काल उनके उसी प्रकार रोग उत्पन्न हुए ॥ २१ ॥ और मेरे पीछे भी एक महाराक्षस दौड़ा। आज तीसरा दिन हुआ किसी प्रकारसे भी वह मेरा संग नहीं छोड़ता, यह निकटही महान् गर्जन कर रहा है, वह शब्द क्या आपको सुनाई नहीं आता ? संपूर्ण अस्त्रोंके सार द्वारा बना हुआ यह प्रसिद्ध अस्त्र ॥२२॥२३॥ आपको देती हूं आप इसके द्वारा मेरी विपदसे रक्षा कीजिये। हे महामते ! यह अस्त्र पहले पिनाकपाणि रुद्रने स्वायम्भुव मनुको दिया था ॥२४॥ स्वायम्भुवने वह सिद्ध श्रेष्ठ अस्त्र वशिष्ठको दिया, फिर मेरे नाना चित्रायुधने वशिष्ठजीसे वह अस्त्र प्राप्त कर ॥२५॥ विवाहके यौतुकमें मेरे पिताको दिया हे वीर ! मैंने बाल्यकालमें पितासे

ममाप्येवंमहद्रक्षःसमुपैतिपदानुगम् ॥ नश्रृणोपिमहानादंतस्यादूरेऽपिगर्जतः ॥ २२ ॥ तृतीयमद्यदिवसंयन्मेपृष्ठंनमुंचति ॥ अस्त्रग्रामस्यसर्वस्यहृदयञ्जाहमच्युते ॥ २३ ॥ तंप्रयच्छामिमांरक्षरक्षसोऽस्मान्महामते ॥ प्रादात्स्वायम्भुवस्वयंरुद्रःपिनाकधृक् ॥ २४ ॥ स्वायम्भुवोवसिष्ठायसिद्धवर्यायदत्तवान् ॥ तेनापिदत्तंमन्मातुःपित्रेचित्रायुधायवै ॥ २५ ॥ प्रादादौद्वाहिकंसोऽपिमत्पित्रेश्वशुरःस्वयम् ॥ मयापिशिक्षितंवीरसकाशाद्बालयापितुः ॥ २६ ॥ हृदयंसकलास्त्राणामशेषरिपुनाशनम् ॥ तदिदंगृह्यतांशीघ्रमशेषास्त्रपरायणम् ॥ २७ ॥ ततोजहिदुरात्मानमेनंराक्षसमागतम् ॥ २८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ तथेत्युक्तेततस्तेनवार्य्युपस्पृश्यतस्यतत् ॥ अस्त्राणांहृदयंप्रादात्सरहस्यनिवर्तनम् ॥२९॥ एतस्मिन्नन्तरेरक्षस्तत्तदाभीषणाकृति ॥ नर्दमानंमहानादमाजगामत्वरान्वितम् ॥३०॥ मयाभिभूताकिंत्राणमुपैतिद्रुतमेहिमे ॥ भक्षायकिंचिरेणेतिब्रुवाणंतद्ददर्शसः ॥ ३१ ॥

सब अस्त्रोंके सारभूत इस अस्त्रकी शिक्षा पाई थी ॥२६॥ यह समस्त अस्त्रोंका हृदय जो शत्रुओंका नाश करनेवाला है, इसको आपशीघ्र ग्रहण कीजिये, यह सब अस्त्रोंका काम देता है ॥२७॥ इसको ग्रहणकरके शीघ्र इस दुष्टात्मा राक्षसको मारो जो ब्राह्मणके शापसे मेरे पीछे पड़ा हुआ है ॥२८॥ मार्कण्डेयजी बोले--फिर जब स्वरोचि अस्त्र ग्रहण करनेमें सम्मत हुए, तब उस मनोरमा नामक विद्याधरीने आचमनपूर्वक रहस्य और निवर्तन मंत्रके सहित वह अस्त्र हृदय मंत्र उनको दिया ॥२९॥ इसी अवसरमें स्वरोचिने देखा कि वह भयंकर आकार राक्षस महाशब्दसे गर्जता हुआ शीघ्र आकर उपस्थित हुआ ॥३०॥ वह आकर "मेरे आक्रमण करनेपर क्या कोई रक्षा पासकता है, अब विलम्बकी क्या

आवश्यकता है शीघ्र आओ, मैं भोजन करूं " इस प्रकार कहते हुए उस राक्षसको उन्होंने देखा ॥ ३१ ॥ उसको आया हुआ देखकर स्वरोचि चिंता करने लगे कि " यदि यह राक्षस इस कन्याको ग्रहण करै तो उन महामुनि महर्षिका वचन सत्य होगा " ॥ ३२ ॥ स्वरोचिके इस प्रकार चिंता करते करतेही उस राक्षसने शीघ्र आकर विद्याधरीको ग्रहण किया, इससे वह सुमध्यमा " त्राहि--त्राहि " शब्दद्वारा करुणा-स्वरसे विलाप करने लगी ॥ ३३ ॥ तदनन्तर स्वरोचिने अत्यन्त क्रोधित हो धनुषमें अत्यन्त भयंकर प्रचण्डास्त्र चढ़ाय, उस राक्षसकी ओर एक टक देखा ॥ ३४ ॥ उनको देख भयसे विह्वल हो उस निशाचरने मनोरमा कन्याको छोड़, स्वरोचिसे कहा । आप प्रसन्न हूजिये और अस्त्र

स्वरोचिश्चिन्तयामासदृष्ट्वातंसमुपागतम् ॥ गृह्णात्येषवचःसत्यंतस्यास्त्वितिमहामुनेः ॥ ३२ ॥ जग्राहसमुपेत्यैनांत्वरयासोऽपिराक्षसः ॥ त्राहित्राहीतिकरुणंविलपन्तींसुमध्यमाम् ॥ ३३ ॥ ततःस्वरोचिःसंक्रुद्धश्चण्डास्त्रमतिभैरवम् ॥ दृष्ट्वानिवेश्यतद्रक्षोददर्शानिमिषेक्षणः ॥ ३४ ॥ तदाभिभूतःसतदातामुत्सृज्यनिशाचरः ॥ प्रसीदशाम्यतामस्त्रंश्रूयतांचेत्यभाषत ॥ ३५ ॥ मोक्षितोऽहंत्वयाशापादतिघोरान्महाद्युते ॥ प्रदत्तादतितीव्रेणब्रह्ममित्रेणधीमता ॥ ३६ ॥ उपकारोनमेत्वत्तोमहाभागाधिकोपरः ॥ येनाहंसुमहाकष्टान्महाशापाद्विमोक्षितः ॥ ३७ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ ब्रह्ममित्रेणमुनिनाकिन्निमित्तंमहात्मना ॥ शप्तस्त्वंकीदृशश्चैवशापोदत्तोऽभवत्पुरा ॥ ३८ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ ब्रह्ममित्रोऽष्टधाभिन्नमायुर्वेदमधीतवान् ॥ त्रयोदशाधिकारंचप्रगृह्याथर्वणोद्विजः ॥ ३९ ॥ अहंचेन्दीवराक्षेतिख्यातोऽस्याजनकोऽभवम् ॥ विद्याधरपतेःपुत्रोनलनाभस्यखड्गिनः ॥ ४० ॥

परित्याग कीजिये । मैं अपना वृत्तान्त कहता हूं, सुनिये ॥ ३५ ॥ हे महाद्युतिमान ! अत्यन्त तेजस्वी बुद्धिमान् ब्रह्ममित्रने मुझको जो कठिन शाप दिया था, आपने मुझे उससे छुडाया ॥ ३६ ॥ हे महाभाग ! आपके समान मेरा अधिक उपकार करनेवाला और कोई नहीं है, क्योंकि आपने मुझको महाक्लेशदायक ब्रह्मशापसे छुडाया है ॥३७॥ स्वरोचिने कहा—महात्मा ब्रह्ममित्र मुनिने तुमको पूर्वकालमें किस निमित्त कैसा शाप दिया था ॥३८॥ राक्षसने कहा ब्रह्ममित्र मुनिने अथर्व वेदके त्रयोदश अधिकारमें ज्ञान प्राप्त कर आठ भागमें विभक्त संपूर्ण आयुर्वेद अध्ययन किया था ॥३९॥ मेरा नाम इंदीवर विख्यात है, मैं इस कन्याका पिता और खड्गीनलनाभ नामक विद्याधरका पुत्र हूं ॥ ४० ॥

मैंने पहिले उक्त ब्रह्ममित्र मुनिसे यह प्रार्थना करीथी कि हे भगवन्! मुझको संपूर्ण आयुर्वेद शास्त्र प्रदान कीजिये॥ ४१॥ हे वीर! विनयसे नम्र होकर वारम्वार याचन करने पर भी जब मुनिने मुझको आयुर्वेदविद्या नहीं दी ॥ ४२ ॥ हे अनघ! तब मैंने उनके शिष्यको प्रदान करनेके समय छिपकर उस विद्याका अभ्यास किया अर्थात समस्त आयुर्वेद विद्या ग्रहण की ॥४३॥ आठ महीनेमें समस्त आयुर्वेद विद्याका अभ्यास होजाने पर मैं अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुआ और वारंवार हँसने लगा ॥ ४४ ॥ मुनिने मेरा हँसना जान. क्रोधयुक्त हो कंपायमान गर्दन कर यह निष्ठुर वचन कहे ॥४५॥ हे दुर्मते! तैने राक्षसके समान अदृश्य होकर विद्या हरण करी है, और मेरी अवज्ञा करके हास्य किया है ॥ ४६ ॥ इस

मयाचयाचितःपूर्वंब्रह्ममित्रोऽभवन्मुनिः ॥ आयुर्वेदमशेषंमेभगवन्दातुमर्हसि ॥ ४१ ॥ यदातुबहुशोवीरप्रश्रयावनतस्यमे ॥ नप्रादाद्याचितोविद्यामायुर्वेदात्मिकांमम ॥ ४२ ॥ शिष्येभ्योददतस्तस्यमयान्तर्धानगेनहि ॥ आयुर्वेदात्मिकाविद्यागृहीतानभूत्तदानघ ॥ ॥ ४३ ॥ गृहीतायांतुविद्यायांमासैरष्टाभिरन्तरात् ॥ ममातिहर्षादभवद्धासोऽतीवपुनःपुनः ॥ ४४ ॥ प्रत्यभिज्ञायमांहासान्मुनिः कोपसमन्वितः ॥ विकम्पिकन्धरःप्राहमामिदंपरुषाक्षरम् ॥ ४५ ॥ राक्षसेनेवयस्मान्मेत्वयाऽदृश्येनदुर्मते ॥ हृताविद्यावहासश्चमामवज्ञायवैकृतः ॥ ४६ ॥ तस्मात्त्वंराक्षसःपापमच्छापेननिराकृतः ॥ भविष्यसिनसन्देहःसप्तरात्रेणदारुणः ॥ ४७ ॥ इत्युक्तेप्रणिपाताद्यैरुपचारैःप्रसादितः ॥ समामाहपुनर्विप्रस्तत्क्षणान्मृदुमानसः ॥ ४८ ॥ यन्मयोक्तमवश्यंतद्भाविगन्धर्वनान्यथा ॥ किन्तुत्वंराक्षसोभूत्वापुनःस्वंप्राप्स्यसेवपुः ॥४९॥ नष्टस्मृतिर्यदाक्रुद्धःस्वमपत्यंचिखादिषुः ॥ निशाचरत्वेगन्तासितदस्त्रानलतापितः ॥५०॥

कारण तू मेरे शापद्वारा अपने अधिकारसे गिरकर सातरात्रिमेंही महा दारुण राक्षस होगा इसमें संदेह नहीं ॥ ४७ ॥ जब उन्होंने इस प्रकार कहकर शाप दिया तब मैंने प्रणामादि अनेक उपचारोंसे उनको प्रसन्न किया, इससे वह ब्राह्मण तत्काल प्रसन्नमन होकर कहने लगे ॥ ४८ ॥ हे गंधर्व! मैंने जो कहा है वह अवश्यही होगा। इसके अन्यथा नहीं होगा. किंतु तू राक्षस होकर पुनर्वार अपने देहको प्राप्त होगा ॥ ४९ ॥ तू जब राक्षसपनेको प्राप्त हो नष्ट स्मृति होनेपर क्रोधके वशीभूत हो अपनी पुत्रीके भक्षण करनेकी इच्छा करेगा, तब अपने अस्त्रानलसे परितापित हो ॥ ५० ॥

फिर स्मृति लाभकर अपने देह और गंधर्व लोक तथा अपने अधिकारको प्राप्त होगा ॥ ५१ ॥ हे महाभाग ! आपने इस समय मुझको इस निशाचरत्वरूप महाभयसे छुडाया है, अतएव हे वीरवर ! मुझसे वरकी प्रार्थना करो ॥५२॥ हे महामते ! यह कन्या आपको देता हूँ, आप इसको भार्या रूपमें ग्रहण कीजिये और मुझको उन मुनिसे जो संपूर्ण अष्टांग आयुर्वेद प्राप्त हुआ है, वह भी देता हूं ग्रहण कीजिये ॥ ५३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले दिव्याम्बर दिव्यमाला दिव्यभूषण और पहिलेके समान दिव्यदेहधारी उस गंधर्व ने इस प्रकार कह स्वरोचिको ॥५४॥ आयुर्वेद विद्या प्रदान कर जब कन्या देनेका यत्न किया तब वह कन्या निजरूपधारी अपने पितासे कहने लगी॥५५॥ इन महात्माका

पुनःसंज्ञामवाप्यस्वामवाप्स्यसिनिजंवपुः ॥ तथैवस्वमधिष्ठानंलोकेगन्धर्वसंज्ञिते ॥ ५१ ॥ सोऽहंत्वयामहाभागमोक्षितोऽस्मान्महाभयात् ॥ निशाचरत्वाद्वीरतेनमेप्रार्थनांकुरु ॥ ५२ ॥ इमांतेतनयांभार्यांप्रयच्छामिप्रतीच्छताम् ॥ आयुर्वेदश्चसकलस्त्वष्टांगोयोमयाततः ॥ मुनेःसकाशात्संप्राप्तस्तंगृह्णीष्वमहामते ॥ ५३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वाप्रददौविद्यांसचदिव्याम्बरोज्ज्वलः ॥ स्रग्भूषणधरोदिव्यंपौराणंवपुरास्थितः ॥ ५४ ॥ दत्त्वाविद्यांततःकन्यांसदातुमुपचक्रमे ॥ तमाहसातदाकन्याजनितारंस्वरूपिणम्॥ ॥ ५५ ॥ अनुरागोममाऽप्यत्रतातातीवमहात्मनिः ॥ दर्शनादेवसंजातोविशेषेणोपकारिणी ॥ ५६ ॥ किन्त्वेषामेसखीसाचमत्कृते दुःखपीडिते ॥ अतोनाभिलषेभोगान्भोक्तुमेतेनवैसमम् ॥ ५७ ॥ पुरुषैरपिनोशक्याकर्तुमित्थंनृशंसता ॥ स्वभावरुचिरैर्मादृक्कथंयोषित्करिष्यति ॥ ५८ ॥ साहंयथातेदुःखार्त्तेमत्कृतेकन्यकेपितः ॥ तथास्थास्यामिदुःखार्तातच्छोकानलतापिता ॥ ५९ ॥ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ आयुर्वेदप्रसादेनतेकरिष्येपुनर्नवे ॥ सख्यौतवमहाशोकंसमुत्सृजसुमध्यमे ॥ ६० ॥

दर्शन करतेही इनके प्रति मेरा अत्यन्त अनुराग उत्पन्न हुआ है और विशेष कर यह इस समय उपकारी हैं॥५६॥किंन्तु मेरी दो सखी मेरेही लिये दुख भोगरही हैं, अतएव इस समय इनके संग मुझको भोगकी इच्छा करनी उचित नहीं है ॥५७॥मनोहरस्वभाव पुरुष भी जब इस प्रकार कठोरताका आचरण नहीं कर सकता, तब मेरी समान सरल रमणी वह किस प्रकार कर सकती है ॥ ५८ ॥ वह जिस प्रकार मेरे निमित्त कन्या अवस्थामें दुःख भोगती हैं, मैं भी उसी प्रकार दुःख शोकानलसे संतापित होकर उन्हींके अनुसार अवस्थामें रहूंगी ॥५९॥ स्वरोचिने कहा-हे सुमध्यमे

शोक परित्याग करो। आयुर्वेद शास्त्रके प्रसादसे तुम्हारी दोनों सखीको रोगसे छुडाऊंगा ॥६०॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर स्वरोचिने मन्द-राचलमें पिता की दी हुई उस शोभायमान नेत्रोंवाली कन्याका यथाविधानसे पाणिग्रहण किया ॥ ६१ ॥ गंधर्व, कन्या प्रदान करनेके पीछे उसको समुझाय बुझाय दिव्य विमानमें बैठ अपने गन्धर्व लोकमें चलागया ॥६२॥ मनोरमाकी दोनों सखी मुनिके शापसे रोगाक्रान्त हो जिस उद्यानमें अवस्थान करतीं थीं, स्वरोचि कृशाङ्गी युवती भार्याके सहित वहां गये ॥ ६३ ॥ इसके पीछे आयुर्वेद शास्त्रमें विशारद अप्रतिहतप्रभाव स्वरोचिने रोगघ्न औषधियोंके रसोंसे उन दोनों सखियोंके देहको नीरोगकर दिया ॥ ६४ ॥ तब उन व्याधिविमुक्त अर्थात् रोगसे छुटी हुई

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ततःपित्रास्वयंदत्तांतांकन्यांसविधानतः ॥ उपयेमेगिरौतस्मिन्स्वरोचिश्चारुलोचनाम् ॥ ६१ ॥ दत्त्वांतुतांतदा कन्यामभिसान्त्व्यचभाविनीम् ॥ जगामदिव्ययागत्यागन्धर्वःस्वपुरंततः ॥ ६२ ॥ सचापिसहितस्तन्व्यातदुद्यानंतदाययौ ॥ कन्यकायुगलंयत्रतच्छापोत्थगदातुरम् ॥६३॥ ततस्तयोःसतत्त्वज्ञोरोगघ्नैरौषधैरसैः ॥ चकारनीरुजेदेहेस्वरोचिरपिराजितः ॥६४॥ ततोऽतिशोभनेकन्येविमुक्तव्याधितःशुभे ॥ स्वकान्त्योज्ज्योतिदिग्भागंचक्रातेतन्महीधरम् ॥ ६५ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरेषष्टितमोध्यायः ॥६०॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंविमुक्तरोगातुकन्यकातंमुदान्विता ॥ स्वरोचिषमुवाचेदंशृणुष्ववचनंप्रभो ॥ १ ॥ मन्दारविद्याधरजानाम्नाख्याताविभावरी ॥ उपकारिन्स्वमात्मानंप्रयच्छामिप्रतीच्छमाम् ॥ २ ॥ विद्यांचतुभ्यंदास्यामिसर्वभूतरुतानिते ॥ ययाभिव्यक्तिमेष्यन्तिप्रसादप्रवणोभव ॥ ३ ॥

अत्यन्त रूपवती दोनों कन्याओंके अंगकी कान्तिसे मन्दर पर्वतकी समस्त दिशा दीप्ति पाने लगीं ॥६५॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषमन्वन्तरे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--मानोरमाकी दोनों सखियोंमें से पहिली, उक्त प्रकार रोगसे छूट प्रसन्नचित्त हो स्वरोचिसे इस प्रकार कहने लगी हे प्रभो ! मेरा वचन सुनो ॥ १ ॥ मैं मन्दारनामक विद्याधरकी कन्या हूं और मेरा नाम विभावरी है आपने जो मेरा महान् उपकार किया है, उसका प्रतिदानस्वरूप आपको आत्मा समर्पण करती हूं ॥ २ ॥ और जिससे सब प्राणियोंका स्वर (बोली) जाना जाता है, वह विद्या भी आपको देतीहूं, आप प्रसन्नता पूर्वक ग्रहण कीजिये ॥ ३ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--धर्मके जाननेवाले स्वरोचिने "यही हो" इस प्रकार कहकर विभावरी कन्याका वचन स्वीकार किया तब फिर दूसरी कन्या यह बात कहने लगी कि ॥ ४ ॥ कौमार अवस्थासे ही ब्रह्मचर्यावलम्बी, वेद वेदाङ्गमें पारंगत महाभाग पार नामक ब्रह्मर्षि मेरे पिता हैं ॥ ५ ॥ एक समय मनोहर वसन्त कालमें कामीभजनोंका मन हरनेवाले पुंस्कोकिलके मधुरालापसे तपोवन प्रतिध्वनित हो रहा था, उसी समय प्रसिद्ध पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा उनके समीप आई ॥ ६ ॥ इससे वह मुनि पुंगव काम शत्रुके वशीभूत हो गये इसके उपरान्त उनके सहवास और अप्सराके गर्भसे इस महाचलमें ही मेरा जन्म हुआ है ॥ ७ ॥ अनन्तर सर्व श्वापद (हिंसक जन्तु) युक्त इस निर्जन

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवमस्त्वितितेनोक्तेधर्मज्ञेनस्वरोचिषा ॥ द्वितीयातुतदाकन्याइदंवचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥ कुमारब्रह्मचार्यासीत्पारोनामपितामम ॥ ब्रह्मर्षिःसुमहाभागोवेदवेदांगपारगः ॥ ५ ॥ तस्यपुंस्कोकिलालापरमणीयेमधौपुरा ॥ आजगामाप्सरोभ्याशंप्रख्यातापुञ्जिकस्थला ॥ ६ ॥ कामवैक्लव्यतांनीतःसतदामुनिपुङ्गवः ॥ तत्संयोगेऽहमुत्पन्नातस्यामत्रमहाचले ॥ ७ ॥ विहायमांगतासाचमातास्मिन्निर्जनेवने ॥ बालामेकांमहीपृष्ठेव्यालश्वापदसंकुले ॥ ८ ॥ ततःकलाभिःसोमस्यवर्द्धन्तीभिरहःक्षये ॥ आप्यायमानाहंस्होवृद्धिंयातास्मिसत्तम ॥ ९ ॥ ततःकलावतीत्येतन्ममनाममहात्मना ॥ गृहीतायाःकृतंपित्रागन्धर्वेणशुभात्मना ॥ ॥ १० ॥ नदत्ताहंतदातेनयाचितेनमहात्मना ॥ देवारिणानिशासुप्तस्ततोमेघातितःपिता ॥ ११ ॥ ततोऽहमतिनिर्विण्णाात्मव्यापादनोद्यता ॥ निवारिताशम्भुपत्न्यासत्यासत्यप्रतिश्रवा ॥ १२ ॥

वनमें भूमिके ऊपरही मुझको अकेली छोड़कर माता चली गयी ॥ ८ ॥ फिर एक महात्मा गंधर्व मुझको लेजाकर पालन करने लगा। वहां शुक्लपक्षमें बढती हुई चन्द्रमाकी कलासे परिपुष्ट होकर मैं वृद्धि पाने लगी। किन्तु कृष्णपक्षमें जब चन्द्रमाकी कलाका क्षय होता, तब मेरा क्षय नहीं होता, यह देखकर उस प्रतिपालक गंधर्वने मेरा "कलावती" नाम रक्खा ॥ ९ ॥ १० ॥ कुछ समय पीछे एक दिन अलिनामक असुरने आकर महात्मा पितासे मुझको माँगा और उन्होंने जब उसको नहीं दिया, तब उसने रात्रिमें सोते हुए मेरे पिताको मारडाला ॥ ११ ॥ मैं उससे दुःख दृढ़प्रतिज्ञ होकर आत्म घात करनेमें उद्यत हुई, तब शंभुपत्नी सतीने निवारण करके कहा ॥ १२ ॥

हे शुभ्रू ! शोक मत करो, स्वरोचिनामक एक महाभाग तुम्हारे भर्त्ता होंगे तथा उनका पुत्र मनु होगा ॥ १३ ॥ हे शुभे ! संपूर्ण निधियें सादर तुम्हारी आज्ञा प्रतिपालन करेंगी और तुम्हारा अभिलाषित वित्तादि प्रदान करेंगी॥ १४॥ किन्तु हे वत्से ! जिस विद्याके प्रभावसे निधिगण आज्ञानुवर्त्ती होगीं, वह महापद्माभिपूजिता पद्मिनी नामक विद्या मुझसे ग्रहण करो ॥ १५ ॥ सत्यपरायण दक्षसुता सतीने मुझसे यह बात कही है वह मिथ्या नहीं कहेंगी, अतएव आप निःसंदेह वही स्वरोचि हैं ॥ १६ ॥ मैं आपको देह प्राण और वह विद्या देती हूं, आप मेरे प्रति प्रसन्न होकर ग्रहण कीजिये ॥१७॥ मार्कण्डेयजी बोले--तदनन्तर स्वरोचिने कलावतीसे "यही हो" इस प्रकार अंगीकार--वचन कहा। फिर स्निग्धदृष्टिद्वारा विभावरी

माशुचःसुभ्रुभर्त्तातेमहाभागोभविष्यति ॥ स्वरोचिर्नामपुत्रश्चमनुस्तस्यभविष्यति ॥ १३ ॥ आज्ञांचनिधयःसर्वेकरिष्यंतितवा हताः ॥ यथाभिलषितंवित्तंप्रदास्यन्तिचतेशुभे ॥ १४ ॥ यस्यावत्सेप्रभावेणविद्यायास्तांगृहाणमे ॥ पद्मिनीनामविद्येयंमहा पद्माभिपूजिता ॥ १५ ॥ इत्याहमांदक्षसुतासतीसत्यपरायणा ॥ स्वरोचिस्त्वंध्रुवंदेवीनान्यथामावदिष्यति ॥ १६ ॥ साहंप्राणप्रदायाद्यतांविद्यांस्त्वंतथावपुः ॥ प्रयच्छामिप्रतीच्छत्वंप्रसादसुमुखोभव ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवमस्त्वितितामा हसतुकन्यांकलावतीम् ॥ विभावर्याःकलावत्याःस्निग्धदृष्ट्यानुमोदितः ॥ १८ ॥ जग्राहचततःपाणीसतयोरमरद्युतिः ॥ ननत्सुदेवतू र्येषुनृत्यन्तीस्वप्सरःसुच ॥१९॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वरोचिषेमन्वन्तरेएकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसताभिःसहितःपत्नीभिरमरद्युतिः ॥ रराम तस्मिञ्छैलेन्द्रेरम्य काननिर्झरे ॥ १ ॥ सर्वोपभोगरत्नानिमधूनिमधुराणिच ॥ निधयः समुपाजग्मुःपद्मिन्यावशवर्तिनः ॥ २ ॥ स्रजोवस्त्राण्यलङ्कारान्गंधाढ्यमनुलेपनम् ॥ आसनान्यतिशुभ्राणिकांचनानियथेच्छया ॥३॥

और कलावती दोनोंकी अनुमति पाकर ॥ १८ ॥ देवकान्ति स्वरोचिने उनका भी पाणिग्रहण किया । विवाहके समय देवतूर्य अर्थात् समस्त देव बाजे बजाने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगीं ॥१९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वरोचिषे मन्वतरे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

मार्कण्डेयजी बोले । तदनन्तर अमरकांति स्वरोचि अपनी पत्नियोंके संग उस मलयाचलके रमणीय कानन और निर्झर स्थानोंमें विहारकरने लगे ॥ १ ॥ निधियें पद्मिनी विद्याके वशवर्त्ती होकर उपभोग करनेके लिये विविध रत्न मधुर मद्य ॥२॥ माल्य, वस्त्र, गहने, सुगंधित अनुलेपन,

अन्यभावसे करनेपर मनुष्य पापी होता है मार्कण्डेयजी बोले- सब जीवोंकी बात समझनेवाले अपराजित स्वरोचि ॥ २२ ॥ उनके इस प्रकार वचन सुननेसे लज्जित होकर चिन्ता करने लगे कि "इसने जो कहा वह सत्य है, कुछ भी मिथ्या नहीं है" तो भी पत्नियोंके सहित महाशैलमें विहार करते करते स्वरोचिको सौवर्ष बीत गये । फिर एक दिन पत्नियोंके संग विहार कर रहे थे, इसी समयमें सन्मुखवर्त्ती ॥ २३ ॥ चिकना और स्थूलकाय, सब अवयवोंसे पुष्ट मृगीयूथविहारी एक मृगको देखा । यह मृग--अपनी समान मृगियोंके यूथमें घिरा हुआ था ॥ ॥ २४ ॥ तब मृगियें नासिका सिकोड़कर मृगका गात्र सूंघने लगीं, यह देख उक्त मृग उनसे बोला हे मृगियों ! तुमने लज्जाका त्याग

जगादाथान्यभावेनपापीयाञ्जायतेनरः ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ सर्वसत्त्वरुतज्ञोऽसौस्वरोचिरपराजितः ॥ २२ ॥ निशम्यल ज्जितोदध्यौसत्यमेवहिनानृतम् ॥ ततोवर्षशतेयातेरममाणोमहागिरौ ॥ रममाणःसमन्ताभिर्ददर्शपुरतोमृगम् ॥ २३ ॥ सुस्निग्ध पीनावयवंमृगीयूथविहारिणम् ॥ वासिताभिःस्वरूपाभिर्मृगीभिःपरिवारितम् ॥ २४ ॥ आकृष्टघ्राणपुटकाजिघ्रन्तीस्तास्ततोमृगीः ॥ उवाचसमृगोऽलंवोलज्जात्यागेनगम्यताम् ॥ २५ ॥ नाहंस्वरोचिस्तच्छीलोनचैवाहंसुलोचनाः ॥ निर्लज्जाबहवःसन्तितादृशास्तत्र गच्छत ॥ २६ ॥ एकात्वनेकानुगतायथाहासास्पदंजने ॥ अनेकाभिस्तथैवैकोभोगदृष्ट्यानिरीक्षितः ॥ २७ ॥ तस्यधर्मक्रिया हानिरहन्यहनिजायते ॥ सक्तोऽन्यभार्ययाचान्यकामासक्तःसदैवसः ॥ २८ ॥ यस्तादृशोऽन्यस्तच्छीलःपरलोकपराङ्मुखः ॥ तंकामयतभद्रंवोनाहंतुल्यःस्वरोचिषा ॥ २९ ॥

किया इससे अन्यत्र गमन करो ॥ २५ ॥ हे सुलोचनाओ ! मैं स्वरोचि नहीं हूं और स्वरोचिके समान मेरा स्वभाव भी नहीं है स्वरोचिके समान अनेक निर्लज्ज मिलेंगे, उनके निकट जाओ ॥ २६ ॥ एक स्त्री अनेक पुरुषोंकी अनुगत होनेसे जिस प्रकार वह जनसमाजमें हास्यास्पद होती है, इसी प्रकार एकमात्र पुरुष अनेक रमणीयोंसे भोग दृष्टिसे देखा जाकर हास्यास्पद होता है ॥२७॥ उस पुरुषकी नित्यकर्मक्रियाकी हानि होती है, वह पुरुष एक भार्याके सहित संगत होकर अन्य भार्यासंगमकी सदाही कामना करता है ॥ २८ ॥ अतएव परलोकपराङ्मुख ऐसा स्वरोचिके स्वभावसम्पन्न अन्य जो कोई हो उसकी कामना करो तुम्हारा मंगल हो, मैं स्वरोचिके तुल्य नहीं हूं ॥ २९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले। जब मृगाङ्गना हरिणके द्वारा इस प्रकार निराश हुई तब यह सब सुननेके पीछे स्वरोचि अपने आपको पतित जानने लगे ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! उन्होंने चक्रवाकी और मृगके द्वारा इस प्रकार निन्दाको प्राप्तहो और मृगका आचरण देख, अपनेको निन्दित जान पत्नियोंके त्याग करनेकी अभिलाषाकी ॥ २ ॥ किन्तु पत्नियोंके सहित मिलित होनेही फिर कामप्रवृत्ति बलवती होनेसे उनका वैराग्य नष्ट होगया और इसके पीछे भी इनके संग छैःसो वर्ष पर्यन्त विहार किया ॥ ३ ॥ किंतु उदारबुद्धि स्वरोचि पत्नियोंके सहित जब विषयभोग करते, स्वयं धर्मपथमें रहकर समस्त

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषेमन्वन्तरे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६२ ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंनिरस्यमानास्ता हरिणोनमृगाङ्गनाः ॥ श्रुत्वास्वरचिरात्मानंमेनेसपतितंयथा ॥ १ ॥ त्यागेचकारचमनःसतासांमुनिसत्तम ॥ चक्रवाकीमृगप्रोक्तो मृगचर्याजुगुप्सितः ॥ २ ॥ समेत्यताभिर्भूयश्चवर्द्धमानमनोभवः ॥ आक्षितनिर्वेदकथोरेमेवर्षशतानिषट् ॥ ३ ॥ किन्तुधर्माविरो धेनकुर्वन्धर्माश्रिताःक्रियाः ॥ भुङ्क्तेस्वरोचिर्विषयान्सहताभिरुदारधीः ॥ ४ ॥ ततश्चजज्ञिरेतस्यत्रयःपुत्राःस्वरोचिषः ॥ विजयो मेरुनन्दश्चप्रभावश्चमहाबलः ॥ ५ ॥ मनोरमाचविजयंप्रासूतेन्दीवरात्मजा ॥ विभावरीमेरुनन्दंप्रभावंचकलावती ॥ ६ ॥ पद्मिनी नामयाविद्यासर्वभोगोपपादिका ॥ सतेषांतत्प्रभावेणपिताचक्रेपुरत्रयम् ॥ ७ ॥ प्राच्यांतुविजयंनामकामरूपेनगोत्तमे ॥ विजयायसुता यादौसददौपुरमुत्तमम् ॥ ८ ॥ उदीच्यांमेरुनंदस्यपुरींनन्दवतीमिति ॥ ख्यातांचकारप्रोत्तुङ्गप्रप्राकारमालिनीम् ॥ ९ ॥ कलावती सुतस्यापिप्रभावस्यनिवेशितम् ॥ पुरंतालमितिख्यातंदक्षिणापथमाश्रितम् ॥ १० ॥

धर्माश्रित क्रिया यथाविहित संपन्न करते थे ॥ ४ ॥ अनन्तर विजय, मेरुनन्द, और प्रभावनामक स्वरोचिके तीन महाबलवान् पुत्र हुए ॥ ५ ॥ इन्दीवर विद्याधरकी कन्या मनोरमाके गर्भसे विजय, विभावरीके गर्भसे मेरुनन्दन और कलावतीकेगर्भसे प्रभावका जन्म हुआ॥६॥ सर्वभोगसंपादिनी पद्मिनी नामक विद्याके प्रभावसे पिता स्वरोचिने तीन पुर निर्माण किये ॥७॥ पूर्व दिशामें कामरूप पर्वतके ऊपर बना हुआ विजयनामक श्रेष्ठ पुर विजयनामक पुत्रको प्रदान किया ॥८॥ फिर उत्तर दिशामें अत्यन्त ऊंची दिवार प्राकारसे संयुक्त नन्दवती नाम विख्यात पुरी मेरुनन्दको ॥ ९ ॥ और दक्षिणपथ

स्थित ताल नामक पुर कलावतीके पुत्र प्रभावको दिया ॥ १० ॥ हे विप्र ! उक्त पुरुषश्रेष्ठ इस प्रकार तीनों पुत्रोंको तीनों पुरमें स्थापन करके पत्नियोंके सहित अत्यन्त मनोहर प्रदेशमें विहार करने लगे ॥ ११ ॥ एक समय उन्होंने धनुर्धारी होकर वनमें विहार करते करते अति दूर स्थित वाराहको देखकर धनुष खैंचा ॥१२॥ इसी समयमें एक हरिणी आकर उनसे वारंवार कहने लगी "यह बाण मेरे प्रति चलाओ मेरे ऊपर प्रसन्न होवो ॥१३॥ इस वराहका मारना निष्फल है, शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाओ, आपका चलाया हुआ बाण मेरी दुःखसे रक्षा करेगा" ॥ १४ ॥ स्वरोचिने कहा—तेरा शरीर रोगी दिखाई नहीं देता तो फिर तू किस कारण प्राण त्याग करनेकी इच्छा करती है ॥ १५ ॥ मृगी

एवंनिवेश्यपुत्रान्सपुरेषुपुरुषर्षभः ॥ रेमेताभिःसमंविप्रमनोज्ञास्वद्रिभूमिषु ॥ ११ ॥ एकदातुगतोऽरण्येविहरन्सधनुर्द्धरः ॥ चकर्षधनुरालोक्यवराहमतिदूरगम् ॥ १२ ॥ अथाहकाचिदभ्येत्यतंतदाहरिणांगना ॥ मय्येवपात्यतांबाणःप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ १३ ॥ किमनेनहतेनाद्यमामाशुविनिपातय ॥ त्वयानिपातितोबाणोदुःखान्मांमोक्षयिष्यति ॥ १४ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ नतेशरीरंसरुजमस्माभिरुपलक्ष्यते ॥ किन्नुतत्कारणंयेनत्वंप्राणान्हातुमिच्छसि ॥ १५ ॥ मृग्युवाच ॥ ॥ अन्यास्वासक्तहृदयेयस्मिंश्चेतःकृतास्पदम् ॥ ममतेनविनामृत्युरौषधंकिमिहापरम् ॥ १६ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ कस्त्वांनाभिलषेद्भीरुमानुरागामिकुत्रवा ॥ यदप्राप्तौनिजान्प्राणान्परित्यक्तुंव्यवस्यसि ॥ १७ ॥ मृग्युवाच ॥ त्वामेवेच्छामिभद्रंतेत्वयामेऽपहृतंमनः ॥ वृणोम्यहमतोमृत्युंमयिबाणोनिपात्यताम् ॥ १८ ॥ स्वरोचिरुवाच ॥ ॥ त्वंमृगीचंचलापांगीनररूपधरावयम् ॥ कथंत्वयासमंयोगोमद्विधस्यभविष्यति ॥ १९ ॥

बोली—जिसका हृदय अन्य स्त्रीमें आसक्त है, मेरा चित्त उसीके प्रति आसक्त हुआ है, अतएव उसके न पानेसे मृत्युही मेरे इस रोगकी औषधी है. दूसरा उपाय क्या है? ॥ १६ ॥ स्वरोचिने कहा हे भीरु ! कौन तेरी अभिलाषा नहीं करता किसके प्रति तू अनुरागिनी हुई है जिसको न पानेसे प्राण त्याग करनेका संकल्प किया है ? ॥१७॥ मृगी बोली—मैं आपकीही इच्छा करती हूं, आपका मंगल हो आपनेही मेरा चित्त हरण किया है । इसी कारण मैं मृत्युकी अभिलाषा करती हूं.आप शीघ्र मेरे प्रति बाण चलाइये ॥ १८ ॥ स्वरोचिने कहा तू चंचलापाङ्गी मृगी है

और मैं मनुष्य रूपधारी हूं, अतएव मेरे समान मनुष्यका तुम्हारे संग किस प्रकार संयोग होगा ? ॥ १९ ॥ मृगी बोली यदि मेरे प्रति आपका चित्त सानुराग हुआ है तो मुझे आलिंगन कीजिये। यदि आपका चित्त साधु हो तो मैं आपकी इच्छानुसार कार्य सम्पादन करूंगी ॥२०॥ इससे आपके द्वारा मैं अतिसन्मानित हूंगी। मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर स्वरोचिने उस हरिणाङ्गनाको आलिङ्गन किया ॥२१॥ उनके आलिंगन करतेही वह मृगी तत्काल दिव्य देहधारिणी कामिनी हो गई। इससे स्वरोचिने अत्यन्त आश्चर्य युक्त होकर "तुम कौन हो ?" इस प्रकार कहा ॥२२॥ उस मृगीने भी प्रेम भरी लज्जासे गद्गद वचन द्वारा उससे कहा "मैं इस वनकी अधिदेवता हूं, देवताओंकी प्रार्थनानासे

मृग्युवाच ॥ यदिसापेक्षितंचित्तंमयितेमांपरिष्वज ॥ यदिवासाधुचित्तंतेकरिष्यामियथेप्सितम् ॥ २० ॥ एतावताहंभवताभविष्याम्यतिमानिता ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आलिलिंगततस्तांसस्वरोचिर्हरिणांगनाम् ॥ २१ ॥ तेनचालिंगितामद्यःसाभूद्दिव्यवपुर्धरा ॥ ततःसविस्मयाविष्टःकात्वमित्यभ्यभाषत ॥ २२ ॥ साचास्मैकथयामासप्रेमलज्जाजडाक्षरम् ॥ अहमभ्यर्थितादेवैः काननस्यास्यदेवता ॥ २३ ॥ उत्पादनीयोहिमनुस्त्वयामयिमहामते ॥ प्रीतिमत्यांमयिसुतंभूर्लोकपरिपालकम् ॥ २४ ॥ तमुत्पादयदेवानांत्वामहंवचनाद्वदे ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसतस्यांतनयंसर्वलक्षणलक्षितम् ॥ २५ ॥ तेजस्विनमिवात्मानंजनयामासतत्क्षणात् ॥ जातमात्रस्यतस्याथदेववाद्यानिसस्वनुः ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ २६ ॥ सिषिचुःशीकरैर्नागाऋषयश्चतपोधनाः ॥ २७ ॥ देवाश्चपुष्पवर्षंचमुमुचुश्चसमन्ततः ॥ तस्यतेजःसमालोक्यनामचक्रेपितास्वयम् ॥ २८ ॥

तुम्हारे समीप आई हूं ॥२३॥ हे महामते ! मुझमें मनु उत्पन्न करना तुम्हारा कर्त्तव्य है, मैं तुम्हारे प्रति अनुरागिनी हूं, मुझमें वह भूर्लोकपरिपालक पुत्र उत्पन्न कीजिये ॥२४॥ यह मैंने देवताओंके वचनानुसार कहा। मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर स्वरोचिने उस वनदेवताके गर्भसे तत्काल सर्वलक्षणयुक्त आत्मतुल्य तेजस्वी पुत्र उत्पन्न किया। तब उस पुत्रका जन्म होतेही समस्त देवबाजे बजने लगे, गंधर्वपति गान करने लगे और अप्सराओंके यूथके यूथ नाचने लगे॥२५॥२६॥ दिशाओंके हाथी जलशीकर सिंचन करने लगे एवं तपोधन ऋषिगण॥२७॥ और देवतागण चारों दिशाओंमें पुष्पवृष्टि करने लगे। उस बालकके तेजसे संपूर्ण दिशा प्रकाशमान हुई थीं, ऐसी अंगकी द्युति देखकर पिता स्वरोचिने पुत्रका॥२८॥

" द्युतिमान् " यह सार्थक नाम रक्खा यह द्युतिमान् बालक महाबली पराक्रमी हुआ ॥ २९ ॥ स्वरोचिका पुत्र होनेके कारण उस महाबली द्युतिमान् नामक बालकका " स्वारोचिष " यह नाम भी हुआ था। फिर किसी समय रमणीय गिरिनिर्झरमें विचरण करते करते ॥ ३० ॥ उक्त स्वरोचिने निज पत्नीके सहित एक हंसको देखा वह हंस अभिलाषायुक्त हंसीसे वारम्वार कहने लगा ॥ ३१ ॥ हे जलचरि ! मनको निवृत्त कर, तेरे संग मैंने बहुत कालतक विहार किया है सदा तुम्हारे संग भोग करनेसे क्या लाभ होगा ? अब वृद्ध अवस्था उपस्थित है ॥ ३२ ॥ यह तुम्हारे और मेरे दोनोंके विषयवासना त्यागनेका समय है। हंसी बोली--भोगका कालाकाल क्या ? देखो, यह जगत् सर्व भोगमय है ॥ ३३ ॥

द्युतिमानितियेनास्यतेजसाभासितादिशः ॥ सबालोद्युतिमान्नामहाबलपराक्रमः ॥ २९ ॥ स्वरोचिषःसुतोयस्मात्तस्मात्स्वारोचिषोऽभवत् ॥ सचापिविचरन्रम्येकदाचिद्गिरिनिर्झरे ॥ ३० ॥ स्वरोचिर्ददृशेहंसंनिजपत्नीसमन्वितम् ॥ उवाचसतदाहंसींसाभिलाषांपुनःपुनः ॥ ३१ ॥ उपसंह्रियतामात्माचिरंतेक्रीडितंमया ॥ किंसर्वकालंभोगैस्तेआसन्नंचरमंवयः ॥ ३२ ॥ परित्यागस्यकालोमेतवचापिजलेचरि ॥ हंस्युवाच ॥ ॥ अकालःकोहिभोगानांसर्वंभोगात्मकंजगत् ॥ ३३ ॥ यज्ञाःक्रियन्तेभोगार्थंब्राह्मणैःसंयतात्मभिः ॥ दृष्टादृष्टांस्तथाभोगान्वाञ्छमानाविवेकिनः ॥ ३४ ॥ दानानिचप्रयच्छन्तिपूतान्धर्मांश्चकुर्वते ॥ सत्वंनेच्छसिकिंभोगान्भोगश्चेष्टफलंनृणाम् ॥ ३५ ॥ विवेकिनांतिरश्चांचकिंपुनःसंयतात्मनाम् ॥ ॥ हंस उवाच ॥ ॥ भोगेष्वासक्तचित्तानांपरमार्थान्वितामतिः ॥ भविष्यतिकदासङ्गमुपेतानांचबन्धुषु ॥ ३६ ॥ पुत्रमित्रकलत्रेषुसक्ताःसीदन्तिजन्तवः ॥ सरःपङ्कार्णवेमग्नाजीर्णावनगजाइव ॥ ३७ ॥

क्योंकि संयतात्मा ब्राह्मणगण भोगके निमित्तही यज्ञ करते हैं और ज्ञानीपुरुष दृष्टादृष्ट भोगोंकी कामना करते हुए॥३४॥दान और पूर्त धर्म (वापी कूप देवमंदिर निर्माणका) अनुष्ठान करते हैं। संयतात्मा और विवेकी मनुष्योंका भी जब भोगही कर्म फल है तो तिर्यक् जातिके पक्षमें फिर कहनाही क्या है ॥ ३५ ॥ अतएव उस भोगकी तुम किस कारणसे इच्छा नहीं करते ? हंसने कहा--जिनका चित्त भोगमें आसक्त नहीं है उनकी मति परमात्मानुगामिनी है, बन्धुवर्गके सहित संगतिवाले मनुष्यकी क्या कभी वैसी मति हो सकती है ?॥३६॥पुत्र मित्र और स्त्रीमें आसक्त

प्राणीगण सरोवरकी कीचड़में डूबे हुए बूढ़े वनहाथीके समान दुःखको प्राप्त होते हैं ॥३७॥ हे भद्रे ! बाल्य अवस्था से कामासक्त स्नेहरूपी सजल कीचड़में डूबे हुए जातसंग (विषयानुरागी) स्वरोचिको क्या तुमने नहीं देखा है ? ॥३८॥ यौवनवती भार्या और पुत्र तथा नातियोंमें निमग्न हुए स्वरोचिके मनका किस प्रकार उद्धार होगा ॥ ३९ ॥ हे जलचारि ! मैं स्वरोचिके समान स्त्रीगणोंके वशीभूत नहीं हूं मैं ज्ञानवान् हूं अब भोगसे निवृत्त हुआ हूं" ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—स्वर्गके कहे इस प्रकार वचन सुनकर स्वरोचि तीनों भार्याके सहित तपस्या करनेके लिये तपोवनमें चले गये ॥ ४१ ॥ वहां उदारबुद्धि स्वरोचिने पत्नियोंके सहित घोर तपस्याका आचरण करके संपूर्ण पापोंसे

किंनपश्यसिवाभद्रेजातसङ्गंस्वरोचिषम् ॥ आबाल्यात्कामसंसक्तंमग्नंस्नेहाम्बुकर्दमे ॥ ३८ ॥ यौवनेऽतीवभार्यासुमाम्प्रनंपुत्रनप्तृषु ॥ स्वरोचिषोमनोमग्नमुद्धारंप्राप्स्यतेकुतः ॥ ३९ ॥ नाहंस्वरोचिषतुल्यःस्त्रीवश्योवाजलेचरि ॥ विवेकवांश्चभोगानांनिवृत्तोऽस्मिचसाम्प्रतम् ॥ ४० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ स्वरोचिरेतदाकर्ण्यजातोद्वेगःखगेरितम् ॥ आदायभार्यास्तपसेययावन्यत्तपोवनम् ॥ ४१ ॥ तत्रतप्त्वातपोघोरंसहताभिरुदारधीः ॥ जगामलोकानमलान्निवृत्ताखिलकल्मषः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेस्वारोचिषे मन्वन्तरेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ततःस्वारोचिषंनाम्नाद्युतिमन्तंप्रजापतिम् ॥ मनुंचकारभगवांस्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥ १ ॥ तत्रान्तरेतुयेदेवामुनयस्तत्सुताश्चये ॥ भूपालाःक्रौष्टुकेयेतान्गदतस्त्वंनिशामय ॥ २ ॥ देवाःपारावतास्तत्रतथैवतुषिताद्विज ॥ स्वारोचिषेऽन्तरेचेन्द्रोविपश्चिदितिविश्रुतः ॥ ३ ॥ ऊर्जस्तम्बस्तथाप्राणोदत्तोलिर्ऋषभस्तथा ॥ निश्चरश्चार्ववीरांश्चतत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥

छूट विमललोक (स्वर्गादि) में गमन किया ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषे मन्वन्तरेत्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥
मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर भगवान्ने द्युतिमान् वा स्वारोचिष नामक प्रजापतिको मनु किया था, उनका मन्वन्तर सुनो ॥ १ ॥ हे क्रौष्टुके ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें जो देवता, मुनि, और मनुपुत्र भूपालगण थे, उनका मैं वर्णन करता हूं, तुम मुझसे श्रवण करो ॥ २ ॥ हे द्विज ! उस स्वारोचिष मन्वन्तरमें देवगण पारावत और तुषित नामसे तथा इन्द्र विपश्चित् नामसे विख्यात थे ॥ ३ ॥ ऊर्ज्जस्तम्ब, प्राण दत्तोलि,

ऋषभ निश्चर, और अर्वरीवान् नामसे विख्यात सप्तर्षि थे ॥ ४ ॥ महात्मा स्वारोचिष मनुके चैत्र और किम्पुरुष इत्यादि महावीर्यवान् सातपुत्र पृथ्वीपालक थे॥५॥जितने दिनतक उनका मन्वन्तर था, तबतक उसके वंशके राजाओंने सब पृथ्वीको भोग किया, मन्वन्तरोंमें स्वारोचिष मन्वन्तर दूसरा है॥६॥इन स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुका जन्म श्रद्धा सहित सुननेपर मनुष्य पापोंसे छूट जाता है॥७॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां स्वारोचिषसमाप्तिर्नाम चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! स्वरोचिका चरित्र और स्वारोचिष मनुके जन्मका वृत्तान्त आपने मुझसे विस्तारपूर्वक कहा है ॥ १ ॥ किन्तु सर्वभोगसम्पादिनी पद्मिनीनामक विद्याके आश्रित जो सब निधि हैं,

चैत्रकिंपुरुषाद्यश्चसुतास्तस्यमहात्मनः ॥ सप्तासन्सुमहावीर्याःपृथिवीपरिपालकाः ॥ ५ ॥ तस्यमन्वन्तरंयावत्तावत्तद्वंशविस्तरे ॥ भक्तेयमवनिःसर्वाद्वितीयंवैतदन्तरम् ॥ ६ ॥ स्वरोचिषस्तुचरितंजन्मस्वारोचिषस्यच ॥ निशम्यमुच्यतेपापैःश्रद्दधानोहिमानवः ॥ ॥ ७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे स्वरोचिषसमाप्तिर्नामचतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६४ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितंसर्वं विस्तरेणत्वयामम ॥ स्वरोचिषस्तुचरितंजन्मस्वारोचिषस्यतु ॥ १ ॥ यातुसापद्मिनीनामविद्याभोगोपपादिका ॥ तत्संश्रयायेनिधयस्तान्मेविस्तरतोवद ॥ २ ॥ अष्टौयेनिधयस्तेषांस्वरूपंद्रव्यसंस्थितिः ॥ भवताभिहितंसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यहंगुरो ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पद्मिनीनामयाविद्यालक्ष्मीस्तस्याश्चदेवता ॥ तदाधाराश्चनिधयस्तन्मेनिगदतःशृणु ॥ ४ ॥ यत्रपद्ममहापद्मौ तथामकरकच्छपौ ॥ मुकुन्दोनंदकश्चैवनीलःशङ्खोऽष्टमोनिधिः ॥ ५ ॥ सत्यामृद्धौभवन्त्येतेसिद्धिस्तेषांहिजायते ॥ एतेह्यष्टौसमाख्यातानिधयस्तवक्रौष्टुके ॥ ६ ॥

उनका विषय मुझसे विस्तारसहित वर्णन कीजिये ॥२॥ हे गुरो!आठ प्रकारकी निधियोंका स्वरूप और द्रव्यसंस्थिति भलीभाँति आपके मुखसे सुननेकी अभिलाषा हुई है॥३॥मार्कण्डेयजी बोले—पद्मिनीनामक विद्याकी अधिष्ठात्री देवता लक्ष्मी है यह विद्या आठ प्रकारकी निधिका आधार स्वरूप है।मैं तुमसे इसका विषय कहता हूं सुनो॥४॥पद्म, महापद्म, मकर, कच्छप, मुकुन्द, नन्दक, नील और शंखनामक आठ निधि पद्मिनी विद्याके आश्रित हैं ॥५॥ समृद्धि होनेसे यह निधियें और उनकी सिद्धि लाभ होती है क्रौष्टुके ! यह अष्टविध निधि तुम्हारे निकट कही

मृदंग, इत्यादि चार प्रकारके बाजोंका परिग्रह करता है ॥ २५ ॥ गाने और नाचने वालोंको बहुत धन देता है बन्दी, सूत, मागध, विट, (लम्पट) और लास्यपाठी गान नृत्यविशेषवाले मनुष्योंको ॥ २६ ॥ रातदिन अभिलाषित भोग प्रदान करता है, और उनके संग स्वयं भोजन करता है । हे द्विज ! इस मनुष्यकी कुलटा और आत्मातुल्य मनुष्यके साथ प्रीति होती है ॥२७॥ यह निधि जिसकी भजना करती है उसकी अनुगामी रहती है उसके वंशवालोंकी अनुगामी नहीं होती । नन्दनामक महानिधि रज और तम इन दोनों गुणोंसे युक्त है ॥ २८ ॥ जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पड़ती है, वह अत्यन्त स्तम्भित अर्थात् जड़ताको प्राप्त होता है । नन्दाधिष्ठित मनुष्य समस्त धातु रत्न और

करोतिगायतांवित्तंनृत्यतांचप्रयच्छति ॥ बन्दिमागधसूतानांविटानांलास्यपाठिनाम् ॥ २६ ॥ ददात्यहर्निशंभोगान्भुङ्क्तेतैश्चसमं द्विज ॥ कुलटासुरतिश्चास्यभवत्यन्यैश्चतद्विधैः ॥ २७ ॥ प्रयातिसंगमेकंचयंनिधिर्भजतेनरम् ॥ रजस्तमोमयश्चान्योनन्दोनाममहानिधिः ॥ २८ ॥ उपैतिस्तम्भमधिकंनरस्तेनावलोकितः ॥ समस्तधातुरत्नानांपुण्यधान्यादिकस्यच ॥ २९ ॥ परिग्रहंकरोत्येष तथैवक्रयविक्रयम् ॥ आधारःस्वजनानांचआगताभ्यागतस्यच ॥ ३० ॥ सहतेनापमानोक्तिंस्वल्पामपिमहामुने ॥ स्तूयमानश्चसम इतींप्रीतिंबध्नातियच्छति ॥ ३१ ॥ यंयमिच्छतिवैकामंमृदुत्वमुपयातिच ॥ बह्व्योभार्याभवन्त्यस्यसूतिमत्योऽतिशोभनाः ॥ ॥ ३२ ॥ भजतेसप्तचनरान्निधिर्नन्दोऽनुवर्तते ॥ प्रवर्द्धमानोऽथनरमष्टभागेनसत्तम ॥ ३३ ॥ दीर्घायुष्ट्वंचसर्वेषांपुरुषाणांप्रयच्छति ॥ बन्धूनामेवभरणंयेचदूरादुपागताः ॥ ३४ ॥

धान्यादि पवित्र ॥ २९ ॥ द्रव्यका परिग्रह और क्रय विक्रय करता है । हे महामुने ! वह मनुष्य स्वजनवर्ग एवं आगत और अभ्यागत पुरुषोंका आश्रय स्वरूप होता है ॥३०॥ किंचित् अपमानोक्ति अर्थात् निरादर नहीं सह सकता प्रशंसा करनेसे अत्यन्त आनन्दित होता है ॥ ३१ ॥ अर्थीगण जिस जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, उनको वही वही वस्तु देता है । वह स्वयं मृदुस्वभावसम्पन्न होता है,और पुत्रवती अतिसुन्दरी बहुत भार्यायें उसकी प्रीती संपादन करती हैं ॥ ३२ ॥ हे सत्तम ! नन्दनिधि प्रतिपुरुषमें क्रमशःअष्टम भागमें बढ़ते बढ़ते सात पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है ॥ ३३ ॥ और आश्रित पुरुषको दीर्घायु करती है नन्दाधिष्ठित मनुष्य बंधु—वर्ग और दूर देशसे आये हुए मनुष्योंका भरण

पोषण करता है ॥ ३४ ॥ किन्तु यह परलोकके प्रति यत्नवान् नहीं होता, और जो नगरवासियोंसे वह स्नेह भी नहीं करता ॥ ३५ ॥ और पूर्व मित्रमें शिथिलता और नवीन मित्रसे प्रीति स्थापित होती है । इसी प्रकार सत्व और रजोगुणसम्पन्न महानिधि है ॥३६॥ उसका नाम नीलनिधि है, उससे अधिष्ठित पुरुषभी सत्व और रजोगुणयुक्त होता है । जिस मनुष्यपर इसकी दृष्टि पडती है, वह मनुष्य वस्त्र, कपास, धान्यादि शस्य, फल, पुष्प ॥ ३७ ॥ मोती, मूंगा, शंख, सीपी, इत्यादि तथा जलोत्पन्न वस्तु और काष्ठादि पदार्थोंको ग्रहण करता है ॥३८॥ और अपने भोगने योग्य वस्तुके अतिरिक्त फिर इन सब पदार्थोंका क्रय विक्रय भी करता है इसको छोड़कर अन्य विषयमें इसकी

तेषांकरोतिवैनन्दःपरलोकेनचादृतः ॥ भवत्यस्यनचस्नेहःसहवासिषुजायते ॥ ३५ ॥ पूर्वमित्रेषुशैथिल्यंप्रीतिमन्यैः करोतिच ॥ तथै वसत्त्वरजसीयोबिभर्तिमहानिधिः ॥ ३६ ॥ सनीलसंज्ञस्तत्संगीनरस्तच्छीलवान्भवेत् ॥ वस्त्रकार्पासधान्यादिफलपुष्पपरिग्रहम् ॥ ॥ ३७ ॥ मुक्ताविद्रुमशङ्खानांशुक्त्यादीनांतथामुने ॥ काष्ठादीनांकरोत्येषयच्चान्यज्जलसम्भवम् ॥ ३८ ॥ क्रयविक्रयमन्येषांनान्यत्रर मतेमनः ॥ तडागान्पुष्करिण्याऽथतथारामान्करोतिच ॥ ३९ ॥ बन्धंचसरितांवृक्षांस्तथारोपयतेनरः ॥ अनुलेपनपुष्पादिभोगभुग्वा भिजायते ॥ ४० ॥ त्रिपौरुषश्चापिनिधिर्नीलोनामैषजायते ॥ रजस्तमोमयश्चान्यःशङ्खसंज्ञोहियोनिधिः ॥ ४१ ॥ तेनापिनी यतेविप्रतद्गुणित्वंनिधीश्वरः ॥ एकस्यैवभवत्येषनरंनान्यमुपैतिच ॥ ४२ ॥ यस्यशङ्खोनिधिस्तस्यस्वरूपंक्रौष्टुकेशृणु ॥ एकवात्मना सृष्टमन्नंभुङ्क्तेतथाम्बरम् ॥ ४३ ॥

मानसिक प्रीति उत्पन्न नहीं होती ॥ ३९ ॥ वह मनुष्य मनुष्य तलाव, पुष्करिणी, उपवन और नदीका पुल बँधवाता है, तथा वृक्ष (पंचाम्र इत्यादि) लगाता है और अनुलेपन पुष्पादि भोग्य वस्तुओंको भोगकर ख्याति लाभ करता है ॥ ४० ॥ यह नीलनामक निधि त्रिपौरुष अर्थात् तीन पुरुष पर्यन्त अनुगामी होती है, शंखनामक जो अन्य निधि है, वह रज और तमो गुणमय है ॥ ४१ ॥ इसके संगसे शंख निधीश्वर पुरुष भी रजोगुण और तमोगुणसंपन्न होता है । शंखनिधि एक पुरुषकी अनुगामी है, कभी उसके परवर्त्ती पुरुषमें अधिष्ठान नहीं करती॥४२॥हे क्रौष्टुके!शंखनिधि जिसके वशीभूत होती है, उसका स्वरूप सुनो।शंखनिधीश्वर स्वयं अपना उपार्जित उत्तम अन्न

भोजन और उत्तम वस्त्र पहरता है॥४३॥किन्तु उसके कुटुम्बी मनुष्य, कुत्सित अन्न भोजन और कुवस्त्र पहरकर कष्टमें समय बिताते हैं। ऐसी पुरुष सुहृद, भार्या, भाई, पुत्र और पुत्रवधू आदिका भरण पोषण करनेके लिये कुछ नहीं देता॥४४॥ अपनाही पोषण करनेमें तत्पर होता है. यह निधि सब मनुष्योंकी अर्थ देवता कहकर प्रसिद्ध हैं॥४५॥इनके देखनेसे मनुष्य उल्लिखितस्वभावसंपन्न होता है। किन्तु यह निधिगण मिश्रा वलोकनसे मिश्र फलदायक और स्वतंत्रावलोकनसे अपना अपना फल देनेवाली होती हैं। हे द्विज!यह श्रीरूपिणी पद्मिनी नामक विद्या उक्त आठ प्रकारकी निधिके आधिपत्यमें स्थित है ॥४६॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां निधिवर्णनं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः॥६५॥क्रौष्टुकिने कहा--

कदन्नभुक्परिजनोनचशोभनवस्त्रधृक् ॥ नददातिसुहृद्भार्य्याभ्रातृपुत्रस्नुषादिषु ॥ ४४ ॥ स्वपोषणपरःशश्वन्नरोभवतिमन्दधीः ॥ इत्येतेनिधयःख्यातानराणामर्थदेवताः ॥ ४५ ॥ मिश्रावलोकनान्मिश्राःस्वभावफलदायिनः ॥ यथाख्यातस्वभावस्तुभवत्येवविलोकनात् ॥ सर्वेषामाधिपत्येचश्रीरेषाद्विजपद्मिनी ॥ ४६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनिधिवर्णनंनामपंचषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

क्रोष्टुकिरुवाच ॥ विस्तरात्कथितंब्रह्मन्ममस्वारोचिषंत्वया ॥ मन्वन्तरंतथैवाष्टौयेपृष्टानिधयोमया ॥ १ ॥ स्वायम्भुवंपूर्वमेवमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ मन्वन्तरंतृतीयमेकथयौत्तमसंज्ञितम् ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ उत्तानपादपुत्रोऽभूदुत्तमोनामनामतः ॥ सुरुच्यास्तनयःख्यातोमहाबलपराक्रमः ॥ ३ ॥ धर्मात्माचमहात्माचपराक्रमधनोनृपः ॥ अतीत्यसर्वभूतानित्रभौभानुपराक्रमः ॥ ४ ॥ समःशत्रौचमित्रेचपरेपुत्रेचधर्मवित् ॥ दुष्टेचयमवत्साधौसोमवच्चमहामुने ॥ ५ ॥

हे ब्रह्मन्!आपने स्वारोचिषमन्वन्तर विस्तारसे कहा इसी प्रकार और आठ मन्वन्तर तथा जो निधि मैंने पूछी है, सो कहिये।१॥स्वायम्भुव मन्वन्तर तो आप पहिले कथन कर चुके हैं अब औत्तमनामक तीसरे मन्वन्तरकी कथा कहिये ॥२॥ मार्कण्डेयजी बोले--सुरुचिनामक रानीके गर्भसे उत्तानपादनृपतिके महाबल पराक्रमशाली उत्तमनामक प्रसिद्ध पुत्रका जन्म हुआ॥३॥धर्मशील और पराक्रमशाली वह उत्तमनामक महात्मा नृपति अपने पराक्रमसे सब प्राणियोंमें सूर्यके समान दीप्तिमान् थे ॥४॥ हे महामुनि ! वह धर्मात्मा राजा शत्रुमित्रमें और प्रजापुत्रमें समानदृष्टि थे। वह दुष्टोंके निकट यमके समान उग्र और शिष्टोंके निकट चन्द्रमाके समान सौम्यप्रकृति रहते ॥ ५ ॥

इन्द्रने जिस प्रकार सर्वलोकविख्यात शचीसे विवाह कियाहै ऐसेही उन उत्तानपादतनय धर्मज्ञ उत्तमने बभ्रु--तनया बहुला नामक प्रसिद्ध कन्यासे विवाह किया था॥६॥हे द्विजवर ! शशधर(चन्द्रमा)का चित्त जिस प्रकार रोहिणीके प्रति अत्यन्त आसक्त है इसीप्रकार उन भूपालका चित्तभी उक्त बहुलाके प्रति अत्यन्त अनुरक्त था॥७॥उन राजाका चित्त बहुलाके अतिरिक्त अन्य किसीके प्रति आसक्त नहीं होता, अधिक क्या स्वप्नमें भी उनका मन उस एक मात्र प्रियाकाही अवलम्बी होता, अर्थात् बहुलाके अतिरिक्त अन्य नारी स्वप्नके समयभी उनके मनमे स्थान नहीं पाती॥८॥वह पार्थिव दर्शनमात्रसेही उल्लिखित रूपवती प्रियाका अंग स्पर्श करते और स्पर्श करतेही तन्मय होजाते॥९॥किन्तु रानी उन पृथ्वीपतिके प्रिय वचन भी कानोंको कडवे

बाभ्रव्यांबहुलांनामउपयेमेसधर्मवित् ॥ उत्तानपादतनयःशचीमिन्द्रइवोत्तमः ॥ ६ ॥ तस्यामतीवतस्यासीद्विजवर्यमनःसदा ॥ स्नेहवच्छशिनोयद्वद्रोहिण्यांनिहितास्पदम् ॥ ७ ॥ अन्यप्रयोजनासक्तिमुपैतिनहितन्मनः ॥ स्वप्नेचैवतदालम्बिमनोऽभूत्तस्यभूभृतः ॥ ॥ ८ ॥ सचतस्याःसुचार्वङ्ग्यादर्शनादेवपार्थिवः ॥ ददाहलोचनैर्गात्रैर्गात्रस्पर्शश्चतन्मयः ॥ ९ ॥ श्रोत्रोद्वेगकरंवाक्यंप्रियमप्यवनीपतेः ॥ तस्यापिभूरिसन्मानंमेनेपरिभवंततः ॥ १० ॥ अवमेनेस्रजंदत्तांशुभान्याभरणानिच ॥ उत्तस्थावर्धपीतेवपिबतोऽस्यवरासवम् ॥ ११ ॥ भुञ्जताचनरेन्द्रेणक्षणमात्रकरेधृता ॥ बुभुजेस्वल्पकंभक्ष्यंद्विजनातिमुदावती ॥ १२ ॥ एवंतस्यानुकूलस्यनानुकूलामहात्मनः ॥ प्रभूततरमत्यर्थंचक्रेरागंमहीपतिः ॥ १३ ॥ अथपानगतोभूपःकदाचित्तांमनस्विनीम् ॥ सुरांभृतंपानपात्रंग्राहयामाससादरः ॥ १४ ॥ पश्यतांभूमिपालानांवारमुख्यासमन्वितः ॥ प्रगीयमानोमधुरैर्गेयगायनतत्परैः ॥ १५ ॥

और उनका अत्यन्त सन्मान करनाभी अपना अपमान जानती थी॥१०॥रानी उनकी दी हुई माला और रमणीय आभरणों(गहनों)में अवज्ञा प्रकाश करती अत्यन्त उत्तम आसव पानके समय उनके निकटसे दुःख अनुभव करती व्यथित शरीरवालीके समान उठ जाती॥११॥ हे द्विज ! नरेन्द्र भोजन करते करते यदि हाथ पकड़कर उसको अनुरोध करते,तब वह अप्रसन्न चित्तसे कुछेक थोड़ा भोजन करती॥१२॥इस प्रकार महात्मा महीपतिके प्रति रानीके अनुकूल न होनेपरभी वह अधिकतर अनुराग प्रकाश करते॥१३॥अनन्तर एक समय संगीतमें चतुर श्रेष्ठ वाराङ्गनागण मधुर स्वरसे राजाके समीप गान कर रही थीं उसी समय भूपालने पानासक्त होकर समीपमें स्थित राजवर्गके सामनेही सादर उस मनस्विनी पत्नीको सुरासे भरा हुआ पानपात्र

दिया ॥ १४ ॥ १५ ॥ किन्तु राजाओंके सामनेभी रानीने उनसे विमुख होकर पानपात्र ग्रहण करनेकी इच्छा नहीं की, इससे राजा कोपित होकर ॥ १६ ॥ सर्पके समान श्वास छोड़ते हुये द्वारपालको बुलाकर कहने लगे, हे प्रतिहारिन्! इस प्रियतमा देवी बहुलाने अप्रिय जानकर मेरा निरादर किया ॥ १७ ॥ इस कारण इस दुष्टहृदयाको लेजाकर शीघ्र निर्जन वनमें छोड़ आओ। मेरी यह आज्ञा अच्छी है वा बुरी है इसके विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उक्त द्वारपाल अच्छे बुरेका विचार न करके "राजाकी आज्ञा" केवल इतनाही विचार उस सुभ्रू रानीको रथमें चढ़ाय वनमे छोड़ आया ॥ १९ ॥ महीपतिके वनमें त्याग करनेपर "अब राजाके सामने नहीं होना पड़ेगा" रानी यही राजाका

सातुनेच्छतितत्पात्रमादातुंतत्पराङ्मुखी ॥ समक्षमवनीशानांततःक्रुद्धःसपार्थिवः ॥ १६ ॥ उवाचद्वाःस्थमाहूयनिश्वसन्नुरगोयथा ॥ निराकृतस्तयादेव्याप्रिययापतिरप्रियः ॥ १७ ॥ द्वाःस्थैनांदुष्टहृदयामादायविजनेवने ॥ परित्यज्याशुनैतत्तेविचार्यंवचनंमम ॥ ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोनृपस्यवचनमविचार्यमवेक्ष्यसः ॥ द्वाःस्थस्तत्याजतांसुभ्रूमारोप्यस्यन्दनेवने ॥ १९ ॥ साचतंविपिनेत्यागंनीतातेनमहीभृता ॥ अपश्यमानातंमेनेपरंकृतमनुग्रहम् ॥ २० ॥ सोऽपितत्रानुरागार्तिदह्यमानात्ममानसः ॥ औत्तानपादिर्भूपालोनान्यांभार्यामविन्दत ॥ २१ ॥ सस्मारतांसुचार्वंगीमहर्निशमनिर्वृतः ॥ चकारचनिजंराज्यंप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ ॥ २२ ॥ प्रजाःपालयतस्तस्यपितुःपुत्रानिवौरसान् ॥ आगत्यब्राह्मणःकश्चिदिदमाहार्त्तमानसः ॥ २३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ महाराजभृशार्त्तोऽस्मिश्रूयतांगदतोमम ॥ नृणामार्तिपरित्राणमन्यतोननराधिपात् ॥ २४ ॥

महत् अनुग्रह मानने लगी ॥ २० ॥ इस ओर उन उत्तानपादके पुत्र भूपालने रानीके प्रति अत्यन्त प्रीति होनेके कारण दुःखसे दह्यमानहृदय हो अन्य भार्या ग्रहण नहीं करी २१ ॥ केवल दुःखित चित्तसे उसी शोभायमान अंगवाली पत्नीको स्मरण करने लगे। किन्तु वह ऐसी अवस्थामें भी धर्मानुगत होकर प्रजा पालन करते हुए अपने राज्यका शासन करते ॥ २२ ॥ भूपति औरस पुत्रके समान प्रजा पालन करते थे उसी समय एक दिनको ब्राह्मण उनके समीप आकर दुःखित चित्तसे यह वचन कहने लगा ॥ २३ ॥ हे महाराज! मैं अत्यन्त क्लेश पा रहा हूं, मेरा वचन सुनिये, क्योंकि राजाके अतिरिक्त अन्य किसीसे भी मनुष्योंका क्लेश निवारण नहीं होता ॥ २४ ॥

मैं रात्रिकालमें सो रहाथा, उसीसमय घरका द्वार विना ही खोले किसीने मेरी भार्याको हरण किया है अब आप मेरी उस पत्नीको ला दीजिये ॥ २५ ॥ राजा बोले—हे द्विज ! आपकी भार्याको किसीने हरण किया है ? और कहाँ रक्खा है ? यह जब मैं कुछ भी नहीं जानता तो मैं किससे विरोध करूं और कहाँसे उसको लाऊं ? ॥ २६ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे महीपते ! मेरे सोते हुए गृहद्वार उक्त प्रकारसे बन्द रहने पर भी मेरी भार्याको किस भाँतिसे हरण किया, यह आप ही जाने ॥ २७ ॥ क्योंकि आप ही नृपति हैं, धर्मका छठाँ अंश वेतन स्वरूप है ग्रहण करके रक्षक रूपसे नियुक्त हैं, इसी कारण मनुष्य निश्चिन्त होकर रात्रिकालमें सोते हैं ॥ २८ ॥ राजाने कहा—मैंने

ममभार्याप्रसुप्तस्यकेनाप्यपहृतानिशि ॥ गृहद्वारमनुद्घाट्यतांसमानेतुमर्हसि ॥ २५ ॥ राजोवाच ॥ ॥ नवेत्सिकेनापहृताक्कवानीता तुसाद्विज ॥ यतामिविग्रहेकस्यकुतोवाप्यानयामिताम् ॥ २६ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ तथैवस्थगितेद्वारिप्रसुप्तस्यगृहेमम ॥ हृताहि भार्याकिंकेनेत्येतद्विज्ञायतेभवान् ॥२७॥ त्वंरक्षितानोनृपतेषड्भागादानवेतनः ॥ धर्मस्यतेऽतोनिश्चिन्तास्स्वपन्तिमनुजानिशि ॥२८॥ राजोवाच ॥ नतेदृष्टामयाभार्यायादृग्रूपाचदेहतः ॥ वयश्चैवक्षमाख्याहिकिंशीलाब्राह्मणीचते ॥ २९ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ कठोरनेत्रा सात्युचाह्रस्वबाहुःकृशानना ॥ (लंबोदरींह्रस्वस्फिजंतथाह्रस्वस्तनींनृप) ॥ विरूपरूपाभूपालननिन्दामितथैवताम् ॥ ३० ॥ वाचि भूपातिपरुषानसौम्यासाचशीलतः ॥ इत्याख्यातामयाभार्यासाकरालनिरीक्षणा ॥ ३१ ॥ मनागतीतंभूपालतस्याश्चप्रथमंवयः ॥ तादृग्रूपाहिमेभार्यासत्यमेतन्मयोदितम् ॥ ३२ ॥

आपकी भार्याको कभी नहीं देखा, अब अपनी ब्राह्मणीकी आकृति, अवस्था औ स्वभाव यह सब भली भाँति कहिये ॥ २९ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भूपाल ! मेरी पत्नी कठोर नेत्रवाली, अत्यन्त दीर्घाकृति, छोटी भुजावाली कृशानना (लम्बे उदरवाली, सूक्ष्मकरवाली तथा लघु स्तनों वाली)और अत्यन्त विरूप है किन्तु मैं तो भी उसकी निन्दा नहीं करता ॥३०॥ हे महीपते ! उसका वाक्य और स्वभाव, यह दोनों अत्यन्त कर्कश हैं और पहिली अवस्था कुछेक बीत गई है, अपनी उस दुर्निरीक्षणा भार्याका समस्तही विषय मैंने आपके निकट कहा । मेरी भार्या जो ऐसी है, यह मैंने सत्यही निवेदन किया ॥ ३१—३२ ॥

राजा बोले-हे ब्राह्मण ! आपको ऐसी कुलक्षण भार्याकी क्या आवश्यकता है, मैं आपको अन्य भार्या देता हूं, शुभलक्षणयुक्त भार्या सुखके निमित्त और आपकी भार्याके समान कुलक्षणा पत्नी केवल दुःखके लिये ही होती है ॥ ३३ ॥ हे विप्र ! सौन्दर्य और सत् स्वभाव ही मंगलका कारण है, इस कारण कुरूप और दुःशील भार्याको सम्यक् प्रकार त्याग करनाही उचित है ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणने कहा हे महीपाल ! "भार्या सम्यक् प्रकार रक्षणीय है" यह श्रुति मैं जानता हूं भार्याकी रक्षा करनेसे सन्तानकी रक्षा होती है ॥ ३५ ॥ हे नरेश्वर ! आत्मा ही पुत्ररूपसे भार्याके गर्भमें जन्म ग्रहण करता है इसी कारण सन्तानकी रक्षा करनेसे आत्माकी ही रक्षा होती है ॥ ३६ ॥ अतएव भार्याकी

॥ राजोवाच ॥ अलंतेब्राह्मणतयाभार्यामन्यांददामिते ॥ सुखायभार्याकल्याणीदुःखहेतुर्हिनादृशी ॥ ३३ ॥ अल्पाकुरूपनाविप्र कारणंशीलमुत्तमम् ॥ रूपशीलविहीनायात्याज्यातेन्येनसाहृता ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ रक्ष्याभार्यामहीपालइतिचश्रुतिरुत्तमा ॥ भार्यायांरक्ष्यमाणायांप्रजाभवतिरक्षिता ॥ ३५ ॥ आत्माहिजायतेतस्यमारक्ष्यातोनरेश्वर ॥ प्रजायांरक्ष्यमाणायामात्माभवतिरक्षितः ॥ ३६ ॥ तस्यामरक्ष्यमाणायांभवितावर्णसङ्करः ॥ सपातयेन्महीपालपूर्वान्स्वर्गादधःपितॄन् ॥ ३७ ॥ (अनुज्ञायगुरूंराजन्दत्त्वान्यांजातवेदसे ॥३८॥ समिधंतुमयाभार्यावृतेयंकर्कशायतः ॥ कथमेतांविहायान्यभार्ययाम्हसंचरे ॥३९॥ गृह्यधर्मोयतोब्रह्मप्राप्यतेशाश्वतंनरैः ॥ पूर्वोढयातुधर्मेणगृहीकुर्वन्नसीदति ॥ ४०॥ त्यक्त्वातांचक्रियांकुर्वन्नचकर्मफलंलभेत ॥ अग्निना सहयानूनंसा जगामगृहंशुभा ॥ ४१ ॥ धर्मस्यग्रहणेमातुपूर्वोढैवप्रशस्यते ॥ शठायाचारणात्तस्याजायतेवर्णसङ्कर ॥ ४२ ॥)

सम्यक् प्रकारसे रक्षा करनी चाहिये । हे महीपते ! उस भार्याकी भलीभाँति रक्षा न करनेसे तत्काल वर्णसंकरकी उत्पत्ति होती, है, वह पूर्व पितरोंको स्वर्गसे नीचे गिराता है ॥३७॥ हे राजन् ! गुरुजनोंकी अनुज्ञासे अग्निके समक्षमें ॥ ३८ ॥ यह कर्कश समिधा भार्या मुझको वरी गई है अतएव इसको छोड़कर किस प्रकार अन्य स्त्रीके साथ मेल करूं ? ॥ ३९ ॥ जिस कारण कि ऐसे आचरणसे मनुष्योंको गृहधर्म और शाश्वतब्रह्म प्राप्त होता है इससे पूर्व स्त्रीके साथ धर्म करता हुआ गृहस्थी दुःखी नहीं होता है ॥ ४० ॥ और उसको छोडकर जो क्रिया करता है उसका उसको फल प्राप्त नहीं होता जो शुभाग्निके साथ घर लाई गई है ॥४१॥ धर्मके ग्रहणमें वह पहलीही प्रशंसाके योग्य है

इस शठाके त्यागसे वर्णसंकर उत्पन्न होनेकी संभावना है ॥ ४२ ॥ भार्याविहीन होनेसे मेरे धर्मकी प्रतिदिन हानि होती है, इस प्रकार नित्य क्रिया कलापके नष्ट होनेपर इससे भी मुझको पतित होना पड़ेगा ॥ ४३ ॥ हे पृथ्वीनाथ ! उस भार्याके गर्भसे मेरे जो संतान होगी, वह आपको धर्मपूर्वक छठाँ भाग देगी ॥ ४४ ॥ हे प्रभो ! मैं इन्हीं सब कारणोंसे कहता हूं, कि मेरी हरी हुई पत्नीको ला दीजिये, क्योंकि आप ही हमारी रक्षाके लिये नियुक्त हैं ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--महाराज उत्तम, उक्त ब्राह्मणके यह वचन सुन कुछ काल चिन्ताकर सब सामग्रीसे युक्त एक महारथमें चढ़े ॥ ४६ ॥ राजाने उस रथमें चढ़कर इधर उधर पृथ्वी भ्रमण करते करते महावनमें

धर्महानिश्चानुदिनमभार्यस्यभवेन्मम ॥ नित्यक्रियाणांविभ्रंशात्सचापिपतनायमे ॥ ४३ ॥ तस्यांचपृथिवीपालभवित्रीममसन्ततिः ॥ तवषड्भागदात्रीसाभवित्रीधर्महेतुकी ॥ ४४ ॥ तदेतत्तेमयाख्यातापत्नीयामेहृताप्रभो ॥ तांसमानयरक्षायांभवानधिकृतोयत ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतस्यैवंवचःश्रुत्वाविमृष्यचनरेश्वरः ॥ सर्वोपकरणैर्युक्तमारुरोहमहारथम् ॥ ४६ ॥ इतश्चेतश्चतेनासौपरि बभ्राममेदिनीम् ॥ ददर्शचमहारण्येतापसाश्रममुत्तमम् ॥ ४७ ॥ अवतीर्यचतत्रासौप्रविश्यददृशेमुनिम् ॥ कौश्यांवृष्यांसमासीनंज्वलन्तमिवतेजसा ॥४८॥ सदृष्ट्वानृपतिंप्राप्तंसमुत्थायत्वरान्वितः ॥ संमान्यस्वागतेनैवशिष्यमाहार्घ्यमानय ॥ ४९ ॥ तमाहशिष्यः शनकैर्दातव्योऽर्घ्योऽस्यकिंमुने ॥ तदाज्ञापयसंचिन्त्यतवाज्ञांहिकरोम्यहम् ॥ ततोऽवगतवृत्तान्तोभूपतेस्तस्यसद्द्विजः ॥ सम्भाषासनदानेनचक्रेसम्मानमात्मवान् ॥ ५० ॥

एक अतिउत्तम तापसाश्रम देखा ॥ ४७ ॥ वहाँ रथसे उतर, आश्रममें प्रवेशकर कुशासनपर विराजमान अपने तेजसे जलती हुई अग्निके समान दीप्यमान एक मुनिको देखा ॥४८॥ राजाको आया हुआ देखकर मुनि शीघ्र उठे, और अत्यन्त सन्मानके सहित उनका स्वागत पूछकर तत्काल शिष्यसे कहा "अर्घ्य लाओ" ॥ ४९ ॥ यह सुनकर शिष्यने अत्यन्त मृदुस्वरसे कहा "इन राजाको अर्घ्य देना उचित है वा नहीं यह आप विचार कर आज्ञा दीजिये, आपकी आज्ञा मैं अभी पालन करूंगा" अनन्तर उन आत्मवान् मुनिने समस्त वृत्तान्त जानकर केवल संभाषण और आसन प्रदान द्वारा ही राजाका सन्मान किया ॥ ५० ॥

ऋषिने कहा हे नृप ! आप उत्तानपादके पुत्र उत्तम हैं; यह मैं जानता हूँ, आप किस लिये यहाँ आये हैं और आपका अभिलाषित विषय क्या है ? ॥ ५१ ॥ राजा बोले हे मुने ! कोई अज्ञातमनुष्य ब्राह्मणके घरसे उसकी भार्या हरण करके ले गया है, उस द्विजपत्नीको खोजनेके निमित्त ही मैं यहाँ आया हूं ॥ ५२ ॥ हे भगवन् ! मैं प्रणत होकर आपसे जो पूछता हूं "घर आया हुआ मनुष्य कृपा करने योग्य है" अनुग्रहपूर्वक यह विचार कर उसके कहनेकी अनुमति दीजिये ॥ ५३ ॥ ऋषिने कहा हे पृथ्वीपाल ! पूछनेकी बात आप निःशंक होकर पूछिये, यदि मेरे कहनेकी होगी, तो मैं आपसे वह विषय यथार्थ ही कहूंगा ॥ ५४ ॥ राजा बोले हे मुने ! आपके घर आनेपर प्रथम

ऋषिरुवाच ॥ ॥ किंनिमित्तमिहायातोभवान्किंनेच्चिकीर्षितम् ॥ उत्तानपादतनयंवेद्मित्वामुत्तमंनृप ॥५१॥ राजोवाच ॥ ब्राह्मणस्य गृहाद्भार्याकेनाप्यपहृतामुने ॥ अविज्ञातस्वरूपेणतामन्वेष्टुमिहागतः ॥५२॥ पृच्छामियत्तत्तन्मेत्वंप्रणतस्यानुकम्पया ॥ अभ्यागतस्याद्यगृहंभगवन्वक्तुमर्हसि ॥ ५३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पृच्छमामवनीपालयत्प्रष्टव्यमशङ्कितः वक्तव्यंचेत्तवमयाकथयिष्यामितत्त्वतः ॥ ५४ ॥ राजोवाच ॥ ॥ गृहागताययोमह्यंप्रथमेदर्शनेमुने ॥ त्वयासमुद्यतोदातुंकथंसोऽर्घ्योनिवर्तितः ॥ ५५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ त्वद्दर्शनेनरभसादाज्ञप्तोऽयंमयानृप ॥ यदातदाहमेतेनशिष्येणप्रतिबोधितः ॥ ५६ ॥ एषवेत्तिजगत्यत्रमत्प्रसादादनागतम् ॥ यथाहंसमतीतंचवर्त्तमानंचसर्वतः ॥ ५७ ॥ आलोच्याज्ञापयेत्युक्तेततोज्ञातंमयापितत् ॥ ततोनदत्तवानर्घ्यमहंतुभ्यंविधानतः ॥ ५८ ॥ सत्यंराजंस्त्वमर्घ्यार्हःकुलेस्वायम्भुवस्यच ॥ तथापिनार्घ्ययोग्यंत्वांमन्यामोवयमुत्तमम् ॥ ५९ ॥

देखते ही आप मुझको अर्घ्य देनेमें उद्यत हुए थे, किन्तु फिर किस निमित्त उससे निवृत्त हुए अर्थात् अर्घ्य नहीं दिया ॥ ५५ ॥ ऋषिने कहा हे नृप ! आपको देखते ही उत्सुकताके वश होकर ज्योंही मैंने अर्घ्य प्रदान कहनेकी आज्ञादी, उसी समय इस शिष्यने मुझको समझाया ॥ ५६ ॥ मैं जिस प्रकार अतीत और वर्त्तमान सब विषय, प्रत्यक्ष हों वा गुप्त हों भलीभाँति जानता हूं, इसीप्रकार यह शिष्य भी मेरे प्रसादसे जगत्‌का समस्त भूत, भविष्य और वर्त्तमान विषय जानता है ॥ ५७ ॥ इस शिष्यके "विचार करके आज्ञा दो" यह कहनेपर मैंने सब बात जानली, इसी कारण मैंने आपको यथा विधानसे अर्घ्य नहीं दिया ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! आपने स्वयंभुव मनुके कुलमें जन्म ग्रहण

किया है सुतरां आप अर्घ्यके योग्य हैं. किन्तु तो भी मैं आपको श्रेष्ठ अर्घ्यके योग्य नहीं विचारता ॥ ५९ ॥ राजा बोले—हे ब्रह्मन् ! ज्ञानसे वा अज्ञानसे मैंने ऐसा क्या कार्य किया है, जिससे मैं नवीन आया हुआ होकर भी आपके निकट अर्घ्य योग्य नहीं हुआ ॥ ६० ॥ ऋषिने कहा हे नृप ! आपने जो अपनी पत्नीको वनमें त्याग दिया है, वह क्या इस समय भूल गयेहो ? जान लीजिये कि उस पत्नीके संग संपूर्ण धर्मकोभी आपने त्याग दिया है ॥ ६१ ॥ और देखो, एक पक्षतक भी जिसकी क्रियाकी हानि हो वह मनुष्य उस हानिके कारण जनसमाजमें स्पर्श करनेके योग्य नहीं रहता और फिर तुम्हारी तो वर्षोंसे नित्य कर्मकी हानि है और भार्याके विना आपके नित्य कर्मकी हानि होती है, इससे आपकी अर्घ्ययोग्यता कितनी है, सो आप विचार करके देखिये ॥६२॥ हे नरेश्वर ! स्वामी जिस किसी प्रकार चरित्रयुक्त क्यों न

राजोवाच ॥ किंकृतंहिमयाब्रह्मन्ज्ञानादज्ञानतोऽपिवा ॥ येनत्वत्तोऽर्घ्यमर्हामिनाहमभ्यागतश्चिरात् ॥६०॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ किंविस्मृतंतेयत्पत्नीत्वयात्यक्ताचकानने ॥ परित्यक्तस्तयासार्द्धंत्वयाधर्मोनृपाखिलः ॥ ६१ ॥ पक्षेणकर्मणोहान्याप्रयात्यस्पृश्यतांनरः ॥ किमत्रवार्षिकीयस्यहानिस्तेनित्यकर्मणः ॥६२॥ पत्न्यानुकूलयाभाव्यंयथाशीलेऽपिभर्त्तरि ॥ दुःशीलापितथाभार्य्यापोषणीयानरेश्वर ॥ ६३ ॥ प्रतिकूलाहिसापत्नीतस्यविप्रस्ययाहृता ॥ तथापिधर्मकामोऽसौत्वामुद्योतितवान्नृप ॥६४॥ चलतः स्थापयस्यन्यान्स्वधर्मेषुमहीपते ॥ त्वांस्वधर्माद्विचलितंकोऽपरःस्थापयिष्यति ॥६५॥ (द्वीपेकडंगरीयेवाराज्ञिचान्यायवर्तिनि ॥ पापकृत्सुचविद्वत्सु नियंताजंतुरत्रकः॥) मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ विलक्ष्यःसमहीपालइत्युक्तस्तेनधीमता ॥ तथेत्युक्त्वाचपप्रच्छहृतांपत्नींद्विजन्मनः ॥६६॥

हो, पतिका अनुवर्ती होना जिसभाँति पत्नीको उचित है,ऐसेही भार्याके दुःशील होनेपर भी पतिको पत्नीका भरण पोषण करना अवश्य कर्त्तव्य है ॥ ६३ ॥ हे नृप ! देखो, ब्राह्मणकी जो पत्नी हरी गई है, वह इससे प्रतिकूल होनेपर भी केवल कर्म—कामनावान् होनेके कारण यह ब्राह्मण उसका इतना खोज करता है ॥ ६४ ॥ हे महीपते ! जो धर्मसे भ्रष्ट होता है, आपही उसको स्वधर्ममें स्थापन करते हैं किन्तु जब आप स्वयं स्वधर्मसे विचलित होंगे, तब आपको कौन उस में प्रवृत्त करसकेगा ॥ ६५ ॥ (जंगली गेंडेके खेतके धान्यभक्षण करके अपना निर्वाहकरते रहते वा राजाके अन्यायी होनेपर, और विद्वानोंके पापकरने पर इस संसारमें फिर कौन जीव शिक्षक होगा ?) मार्कण्डेयजी बोले—बुद्धिमान् ऋषि

के इस प्रकार कहनेपर महीपति लज्जित हुए और वह सब स्वीकार कर हरी हुई ब्राह्मणको पत्नीका वृत्तान्त पूछने लगे ॥ ६६ ॥ हे भगवन् ! जगतकी संपूर्ण अतीत और भविष्यत् घटना आप यथार्थ रूपसे जानते हैं, अब उस ब्राह्मणकी स्त्रीको किसने हरण किया है और कहाँ रक्खा है ? आप अनुग्रहपूर्वक बताइये ॥ ६७ ॥ ऋषिने कहा--हे भूपते उस ब्राह्मणीको अद्रि पुत्र बलाक--नामक राक्षसने हरण किया है, आप अभी उसको उत्पलावतनामक वनमें देखेंगे ॥ ६८ ॥ प्रस्थान कीजिये । द्विजोत्तमको उसकी भार्याके सहित शीघ्र मिलाइये जिससे उक्तब्राह्मणको आपके समान दिन दिन पापका भागी होना न पड़े ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तमे मन्वन्तरे ऋषिदर्शनं नाम षट्षष्टितमो

भगवन्केननीतासापत्नीविप्रस्यकुत्रवा ॥ अतीतानागतंवेत्तिजगत्यवितथंभवान् ॥ ६७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ तांजहाराद्रितनयो बलाकोनामराक्षसः ॥ द्रक्ष्यतेचाद्यतांभूपउत्पलावतकेवने ॥ ६८ ॥ गच्छसंयोजयाशुत्वंभार्ययाहिद्विजोत्तमम ॥ मापापास्पद तांयाहित्वमिवासौदिनेदिने ॥ ६९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तमेमन्वन्तरेऋषिदर्शनंनामषट्षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६६ ॥
॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अथारुरोहस्वरथंप्रणिपत्यमहामुनिम् ॥ तेनाख्यातंवनंतच्चप्रययावुत्पावतम ॥ १ ॥ यथाख्यातस्वरूपांच भार्य्यांमत्रांद्विजस्यताम् ॥ भक्षयन्तींददर्शाथश्रीफलानिनरेश्वरः ॥ २ ॥ पप्रच्छचकथंभद्रेत्वमेतद्वनमागता ॥ स्फुटंब्रूहिविशालस्य भार्य्यासुशर्मणः ॥ ३ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ सुताहमतिरात्रस्यद्विजस्यवनवासिनः ॥ पत्नीविशालपुत्रस्ययस्यनामत्वयोदितम ॥४॥ साहंहृताबलाकेनराक्षसेनदुरात्मना ॥ प्रसुप्ताभवनस्यान्तर्भ्रातृमातृवियोजिता ॥ ५ ॥

ऽध्यायः ॥ ६६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर उक्त महर्षिको प्रणामपूर्वक अपने रथमें चढ़ राजा उनमने उनके बताये उत्पलावत नामक वनमें पहुँचकर ॥ १ ॥ देखा कि पतिने जैसा जैसा स्वरूप बताया है. उसीके अनुसार रूपशालिनी द्विजपत्नी श्रीफल भक्षण कर रही है ॥२॥ उसको देखकर पूछा हे भद्रे ! तुम किस प्रकार इस वनमें आई हो ? और तुम विशालके पुत्र सुशर्मानामक ब्राह्मणकी भार्या हो वा नहीं, सो स्पष्ट कहो ॥ ३ ॥ ब्राह्मणीने कहा मैं वनवासी अतिरात्रनामक ब्राह्मणकी कन्या और आपने जिन विशालपुत्रका नाम लिया, मैं उन्हींकी पत्नी हूं ॥ ४ ॥ मैं घरमें सोरही थी. इसी बीचमें दुरात्मा राक्षस भ्राता मातासे वियोग कराकर मुझको हर लाया है ॥ ५ ॥

जननी, भ्राता और अन्य सब आत्मीय पुरुषोंसे अलग होकर अब मैं दुःखित चित्तसे यहाँ स्थिति करती हूं । जिसने मेरी यह दशाकी है, वह राक्षस भस्म हो ॥ ६ ॥ राक्षसने मुझको इस निर्जन गहन वनमें लाकर रक्खा है नहीं जानती कि वह किस कारण मुझको भोजन वा उपभोग नहीं करता ? ॥ ७ ॥ राजा बोले—हे द्विजनन्दिनी ! तुम्हारे भर्तानेही मुझको यहाँ भेजा है,क्या तुम जानती हो कि वह राक्षस तुमको यहाँ छोड़ कर इस समय कहाँ गया है ॥ ८ ॥ ब्राह्मणीने कहा—वह राक्षस इस वनकेही प्रान्तभागमें स्थिति करता है यदि उसका भय न करो, तो प्रवेश करके देखो वह दिखाई देगा ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--ब्राह्मणीके मार्ग दिखाने पर राजाने वहाँ प्रवेश करके

भस्मीभवतुतद्रक्षोयेनास्म्येवंवियोजिता ॥ मात्राभ्रातृभिरन्यैश्चतिष्ठाम्यत्रसुदुःखिता ॥६॥ अस्मिन्वनेऽतिगहनेयेनानीयाहमुज्झिता ॥ नवेद्मिकारणंकिंतन्नोपभुङ्क्तेनखादति ॥ ७ ॥ राजोवाच ॥ अपितज्ज्ञायतेरक्षस्त्वामुत्सृज्यक्ववैगतम् ॥ अहंभर्त्रातवैवात्रप्रेपितोद्विजनन्दिनि ॥ ८ ॥ ब्राह्मण्युवाच ॥ ॥ अस्यैवकाननस्यान्तःसतिष्ठतिनिशाचरः ॥ प्रविश्यपश्यतुभवान्नबिभेतिततोयदि ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ प्रविवेशततःसोथतयावर्त्मनिदर्शिते ॥ ददर्शेपरिवारेणसमवेतंचराक्षसम् ॥ १० ॥ दृष्टमात्रेततस्तस्मिंस्त्वरमाणःसराक्षसः ॥ दूरादेवमहींमूर्ध्नास्पृशन्पादान्तिकंययौ ॥ ११ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ ममात्रागच्छतागेहंप्रसादस्तेमहान्कृतः ॥ प्रशाधिकिंकरोम्येषवसामिविपयेतव ॥ १२ ॥ अर्घ्यंचेमंप्रतीच्छत्वंस्थीयतांचेदमासनम् ॥ वयंभृत्याभवान्स्वामीदृढमाज्ञापयस्व माम् ॥ १३ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कृतमेवत्वयासर्वंसर्वामेपचितिःकृताः ॥ किमर्थंब्राह्मणवधूस्त्वयानीतानिशाचर ॥ १४ ॥

परिवारसे घिरे हुए उस राक्षसको देखा ॥ १० ॥ अनन्तर राजाको देखतेही शीघ्र उठकर दूरसेही मस्तक द्वारा भूमिस्पर्श करता हुआ वह राक्षस उनके चरणोंमें उपस्थित होकर कहने लगा ॥ ११ ॥ राक्षसने कहा मेरे प्रति महाराजका महा अनुग्रह है कि महाराज मेरे घर आये हैं, मैं आपके राज्यमें वास करता हूं, मुझको आज्ञा दीजिये, मैं क्या करूं ! ॥ १२ ॥ यह अर्घ्य ग्रहण करो, इस आसनपर बैठो आप प्रभु और मैं आपका सेवक हूं, आप संकोचरहितचित्तसे मुझको आज्ञा दीजिये ॥ १३ ॥ राजा बोले हे निशाचर ! तैने कर्त्तव्य कार्य समस्तही संपन्न किया है और यथोचित अतिथि सत्कार भी किया है, किन्तु ब्राह्मणकी वधूको किस निमित्त ले आया है ॥ १४ ॥

"भार्या बनानेके लिये हरण किया है" यह भी कैसे कहूं, क्योंकि यह ब्राह्मण पत्नी रूपवती नहीं है, सुतरां तू ऐसी रूपवती भार्याके होते इसको क्यों लाता, और यदि भक्षण करनेके अर्थ लाया है, तो किस अर्थ भक्षण नहीं करता ? यह तू मुझको कह ॥ १५ ॥ राक्षस बोला हे नृप ! मैं मनुष्यभोजी राक्षस नहीं हूं--वह राक्षस अलग हैं, पुण्यका जो फल है, मैं वही भोजन करता हूं ॥ १६ ॥ (हे राजन् ! जो कुछ पुण्यका फल है, वह आपसे कहता हूं, क्रूर और संसारको भय देने वाली राक्षस योनिको प्राप्त हुआ) सन्मानित वा अपमानित जो कोई क्यों न हो, सदा मैं नर नारियोंका स्वभाव भोजन करता हूं मैं जन्तु खानेवाला नहीं हूं ॥ १७ ॥

नेयंसुरूपासन्त्यन्याभार्य्यार्थंचेद्धृतात्वया ॥ भक्ष्यार्थंचेत्कथंनात्तात्त्वयैतत्कथ्यतांमम ॥ १५ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ नवयंमानुषाहाराअन्येतेनृपराक्षसाः ॥ सुकृतस्यफलंयत्तुदश्नीमोवयंनृपः ॥ १६ ॥ (सुकृतस्यफलंयत्तुतत्तेवक्ष्याम्यहंनृप ॥ राक्षसींयोनिमापन्नःक्रूरांलोकभयंकरीम् ॥) स्वभावंचमनुष्याणांयोषितांचविमानिताः ॥ नामिपंचसमश्नीमोनवयंजन्तुखादकाः ॥ १७ ॥ यदस्माभिर्नृणांक्षान्तिर्भुक्ताक्रुध्यन्तितेनदा ॥ भुक्तेदुष्टेस्वभावेचगुणवन्तोभवन्तिच ॥१८॥ सन्तिनःप्रमदाभूपरूपणाप्सरसांसमाः ॥ राक्षस्यस्तासुतिष्ठत्सुमानुषीषुरतिःकथम् ॥ १९ ॥ राजोवाच ॥ यद्येषानोपभोगायनाहारायनिशाचर ॥ गृहंप्रविश्यविप्रस्यतत्किमेषाहृतात्वया ॥२०॥ राक्षसउवाच ॥ मन्त्रवित्सद्विजश्रेष्ठोयज्ञेयज्ञेगतस्यमे ॥ रक्षोघ्नमन्त्रपठनात्करोत्युच्चाटनंनृप ॥ २१ ॥ वयंबुभुक्षितास्तस्यमन्त्रोच्चाटनकर्मणा ॥ क्वयामःसर्वयज्ञेषुसऋत्विग्भवतिद्विजः ॥ २२ ॥

सुतरां क्षमागुणयुक्त स्वभाव भोजन करनेसे मनुष्य क्रोधित होते हैं, और जब दुष्ट स्वभाव भोजन करता हूं तब वह गुणवान् होते हैं ॥ १८ ॥ हे भूपाल ! मेरी अप्सराओंकी समान राक्षसी भार्या अनेक हैं, उनके रहते मानुषीकी अभिलाषा क्यों होगी ? ॥ १९ ॥ राजा बोले हे निशाचर ! यदि यह ब्राह्मणकी पत्नी तुम्हारे भोगने योग्य वा भक्षण करने योग्य नहीं थी, तो किस कारण ब्राह्मणके घरमें घुसकर इसको चुराया ? ॥ २० ॥ राक्षसने कहा- हे नृप ! वह ब्राह्मण श्रेष्ठ मंत्रज्ञ है, वह प्रायः सब यज्ञोंमें गमनपूर्वक रक्षोघ्नमंत्र पाठ करके मुझको उच्चाटित करते हैं ॥ २१ ॥ जब ब्राह्मण इस प्रकार मंत्रद्वारा मेरा उच्चाटन करते हैं, तब मैं भूखा होकर कहाँ जाऊं ? वह सब यज्ञोंमें ऋत्विक् होते हैं ॥२२॥

इस लिये उनके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न कराया है, क्योंकि पत्नीके विना पुरुष कभी यज्ञ कार्यमें समर्थ नहीं हो सकता ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले "महामते ! ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न कराया" राक्षसका कहा यह वचन सुनतेही राजा अत्यन्त विषादको प्राप्त हुए ॥ २४ ॥ और विचारा कि "विप्रके चित्तमें विकलता उत्पन्न हुई है" यह कहकर राक्षस मेरीही निन्दा करता है इसके पहिले उन मुनिसत्तमने भी मुझको इसी निमित्त अर्घ्यके अयोग्य कहा है ॥ २५ ॥ और अब यह राक्षस भी "मेरीही समान पत्नीविहीन होकर उस ब्राह्मणके चित्तमें उद्वेग उत्पन्न हुआ है" कहता है ? अतएव पत्नीविहीन होकर घोर संकटमें पड़ा हूं ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! राजा इस प्रकार चिन्ता करते थे, इसी

ततोऽस्माभिरिदंतस्यवैकल्यमुपपादितम् ॥ पत्न्याविनापुमानिज्याकर्मयोग्योनजायते ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ वैकल्योच्चारणात्तस्यब्राह्मणस्यमहामतेः ॥ ततःसराजातिभृशंविषण्णःसमजायत ॥ २४ ॥ वैकल्यमेषविप्रस्यवदन्मामेवनिन्दति ॥ अनर्हमर्घस्यचगांसोऽप्याहमुनिसत्तमः ॥ २५ ॥ वैकल्यंतस्यविप्रस्यराक्षसोऽप्याहमेयथा ॥ अपत्नीकतयासोऽहंसङ्कटंमहदास्थितः ॥ ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यपुनरप्याहराक्षसः ॥ प्रणामनम्रोराजानंबद्धांजलिपुटोमुने ॥ २७ ॥ नरेन्द्राज्ञाप्रदानेनप्रसादः क्रियतांमम ॥ भृत्यस्यप्रणतस्येत्थंयुष्मद्विषयवासिनः ॥२८॥ राजोवाच ॥ ॥ स्वभावंवयमश्रीमस्त्वयोक्तंयन्निशाचर ॥ तदर्थिनोवयंयेनकार्येणशृणुतान्मम ॥२९॥ अस्यास्त्वयाद्यब्राह्मण्यादौःशील्यमुपभुज्यताम् ॥ येनत्वयात्तदौःशील्यातद्विनीताभवेदियम् ॥ ३० ॥ नीयतांयस्यभार्येयंतस्यवेश्मनिशाचर ॥ अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंगृहमभ्यागतस्यमे ॥ ३१ ॥

समयमें राजाको नम्र भावसे प्रणामकर, हाथ जोड़ वह राक्षस फिर कहने लगा ॥ २७ ॥ हे नरेन्द्र ! मैं आपके राज्यकी प्रजा हूं अतएव इस प्रणत भृत्यको आज्ञा देकर अनुग्रह कीजिये ॥२८॥ राजाने कहा हे निशाचर ! तुमने जो कहा कि, "मैं स्वभाव भोजन करताहूं" अतएव मैं जिस कार्यका प्रार्थी हूं सो कहता हूं सुनो ॥२९॥ अब तुम इस ब्राह्मणीकी दुश्चरित्रता (खुटाई) भोजन करो। क्योंकि तुम्हारे द्वारा इसका दुःस्वभाव भक्षित होनेपर यह विनीत होगी ॥ ३० ॥ इसके पीछे हे निशाचर ! यह जिसकी भार्या है उसीके घर उसको रख आओ । इस प्रकार करनेसे तुम्हारे द्वारा मेरा अतिथि सत्कार हो जायगा ॥ ३१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर उस राक्षसने अपनी मायाके बलसे उस ब्राह्मणीके अन्तरमें प्रवेश करके राजाके आज्ञानुसार निज शक्ति द्वारा ब्राह्मणीका दुःस्वभाव भक्षण कर लिया॥३२॥तब अतिप्रचंड दुःस्वभावसे छूटकर वह द्विजपत्नी राजासे कहने लगी ॥३३॥ मैं अपने कर्म फलके कारण महात्मा स्वामीसे वियोगको प्राप्त हुई थी, यह निशाचर उसको केवल कारण मात्र है॥३४॥इस राक्षसका दोष नहीं और मेरे उन महात्मा पतिका भी दोष नहीं है दोष मेरे अतिरिक्त और किसीका नहीं है, क्योंकि अपने किये कर्मका फल अवश्यही भोगना पड़ता है॥३५॥ जान पड़ता है, मैंने अन्य जन्ममें किसीका वियोग कराया था, इसी कारण मेरा इन स्वामीसे वियोग हुआ, इस महात्मा निशाचरका क्या दोष है ? ॥३६॥राक्षस बोला—हे

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसराक्षसस्तस्याःप्रविश्यान्तःस्वमायया ॥ भक्षयामासदौःशील्यंनिजशक्त्यानृपाज्ञया ॥ ३२ ॥ दौःशी ल्येनातिरौद्रेणपत्नीतस्यद्विजन्मनः ॥ तेनमामस्परित्यक्तातमाहजगतीपतिम् ॥ ३३ ॥ स्वकर्मफलपाकेनभर्तुस्तस्यमहात्मनः ॥ वियोजिताहंतद्धेतुरयमासीन्निशाचरः ॥ ३४ ॥ नास्यदोषोनवातस्यममभर्तुर्महात्मनः ॥ ममैवदोषोनान्यस्यस्वकृतंह्युपभुज्यते ॥ ॥ ३५ ॥ अन्यजन्मनिकस्यापिविप्रयोगःकृतोमया ॥ सोऽयंमयाप्युपगतःकोदोषोऽस्यमहात्मनः ॥ ३६ ॥ राक्षसउवाच ॥ ॥ प्रापयामितवादेशादिमांभर्तृगृहंप्रभो ॥ यदन्यत्करणीयंतेतदाज्ञापयपार्थिव ॥ ३७ ॥ राजोवाच ॥ अस्मिन्कृतेकृतंसर्वंत्वयाम रजनीचर ॥ आगन्तव्यंचतेवीरकार्य्यकालेस्मृतेनमे ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तथेत्युक्त्वातुतद्रक्षस्तामादायद्विजाङ्गनाम् ॥ निन्येभर्तृगृहंशुद्धांदौःशील्यापगमात्तदा ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनंनामसप्तषष्टित मोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

प्रभो! आपकी आज्ञासे अभी इसके पतिके घर इसको लिये जाता हूं हे राजन्! आज्ञा दीजिये अब आपका और क्या कार्य करना होगा?॥३७॥ राजाने कहा हे रजनीचर ! इस कार्यके करनेसे तुमने प्रायः मेरे समस्तही कार्य किये, इसके अतिरिक्त हे वीर! कार्यके समय तुम स्मरण करनेसे उपस्थित होओ॥३८॥मार्कण्डेयजी बोले--इसके पीछे राक्षस यह बात स्वीकार करके दुःस्वभाव नष्ट होनेके कारण शुद्ध हुई उस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर लेगया ॥ ३९ ॥ इति मार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे ब्राह्मणभार्यानयनं नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--राजा उस ब्राह्मणकी पत्नीको उसके पतिके घर भेजकर लम्बे लम्बे श्वांस लेते हुए चिन्ता करने लगे कि, अब क्या करनेसे भला हो ? ॥ १ ॥ उन महामना महर्षिने मुझसे " पत्नी वियोगके कारण तुम अर्घ्य पानेके उपयुक्त पात्र नहीं हो " यह विषाद जनक वचन कहा है और इस निशाचरने भी विप्रको लक्ष्य करके इसी प्रकार पत्नी वियोगके--जनित वैकल्यका विषय कहा ॥ २ ॥ मैंने अपनी पत्नीको त्याग किया है, अब मैं क्या करूं या मैं उन ज्ञान दृष्टिसंपन्न मुनि श्रेष्ठसे पूछूं ॥ ३ ॥ इस प्रकार चिन्ता करके वह राजा रथपर चढ जहां वह त्रिकालज्ञ धर्मात्मा महामुनि वास करते थे, वहाँ गये ॥ ४ ॥ फिर उन्होंने रथसे उतर कर उनके समीप उपस्थित हो उनको

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तांप्रेषयित्वाराजापिस्वभर्तृगृहमंगनाम् ॥ चिन्तयामासनिःश्वस्यकिमत्रसुकृतंभवेत् ॥ १ ॥ अनर्घयोग्यता कथ्थंसयामाहमहामनाः ॥ वैकल्यंविप्रमुद्दिश्यतथाहायंनिशाचरः ॥ २ ॥ सोऽहंकथंकरिष्यामित्यक्तापत्नीमयाहिसा ॥ अथवाज्ञान दृष्टिंतंपृच्छामिमुनिसत्तमम् ॥ ३ ॥ संचिन्त्येत्थंसभूपालःसमारुह्यचतंरथम् ॥ ययौयत्रसधर्मात्मात्रिकालज्ञोमहामुनिः ॥ ४ ॥ अवरुह्यरथात्सोऽथतंसमेत्यप्रणम्यच ॥ यथावृत्तंसमाचख्यौराक्षसेनसमागमम् ॥ ५ ॥ ब्राह्मण्यादर्शनंचैवदौःशील्यापगमंतथा ॥ प्रेषणंभर्तृगेहेचकार्यमागमनेचयत् ॥ ६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ज्ञातमेतन्मयापूर्वंयत्कृतंतेनराधिप ॥ कार्यमागमनेचैवमत्सामीपेतवा खिलम् ॥ ७ ॥ प्रष्टुंमामिहकिंकार्यमयेत्युद्विग्नमानसः ॥ त्वमागतोमहीपालशृणुकार्यंचयत्त्वया ॥ ८ ॥ पत्नीधर्मार्थकामानांकारणं प्रबलंनृणाम् ॥ विशेषतश्चधर्मस्यसंत्यक्तस्त्यजताहिताम् ॥ ९ ॥

प्रणामपूर्वक, राक्षसका समागम ब्राह्मणीका दर्शन, उसके दुष्ट स्वभावका नाश, उसको पतिके घर भेजना और अपने पुनर्वार आनेका उद्देश्य आद्योपान्त वर्णन किया ॥ ५-६ ॥ ऋषि बोले -हे नराधिप ! आपका किया कार्य, और मेरे समीप आपके आनेका उद्देश्य, मैंने यह सब पहिले ही जान लिया है ॥ ७ ॥ तो भी आप मुझसे स्वयं पूछे, यही उद्विग्न मनसे प्रतीक्षा करता था । हे महीपाल ! अब आपका कर्त्तव्य कार्य क्या है ? वह सुनिये ॥ ८ ॥ पत्नीही मनुष्योंकी धर्मार्थ काम साधनका प्रबल कारण है विशेष कर भार्यात्यागी धर्मको भी त्याग करते हैं ॥ ९ ॥

हे भूपते ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी पत्नी त्याग करके निज कार्यके अनुष्ठानमें समर्थ नहीं होते ॥ १० ॥ हे नृपते ! आपने पत्नी त्याग कर अच्छा नहीं किया, जिस भाँति स्त्रीको पतिका त्याग नहीं करना चाहिये, इसी प्रकार पतिको भी भार्याका त्याग करना उचित नहीं है ॥ ११ ॥ राजाने कहा "हे भगवन् ! मैं क्या करूं यह पत्नी--परित्याग दिया है ॥ १२ ॥ हे भगवन् ! उसके वियोगकी यातनासे मेरा अन्तरात्मा भिन्न होता है और चित्त जलता है, इसी कारण उस पत्नीने जो जो अप्रिय आचरण किये वह सब क्षमा किये ॥ १३ ॥ किन्तु अब वनमें त्यागी हुई मेरी वह पत्नी कहां चली गई है, अथवा वनमें सिंह, व्याघ्र वा राक्षस उसको भक्षण कर गये.

अपत्नीकोनरोभूपनयोग्योनिजकर्मणाम् ॥ ब्राह्मणःक्षत्रियोवापिवैश्यःशूद्रोऽपिवानृप ॥ १० ॥ त्यजताभवतापत्नींनशोभनमनुष्ठितम् ॥ अत्याज्योहियथाभर्त्तास्त्रीणांभार्यातथानृणाम् ॥ ११ ॥ राजोवाच ॥ ॥ भगवन्किंकरोम्येषविपाकोममकर्मणाम् ॥ नानुकूलानुकूलस्ययस्मात्त्यक्तातातोमया ॥ १२ ॥ यद्यत्करोतितत्क्षान्तंदह्यमानेनचेतसा ॥ भगवंस्तद्वियोगानितिभिन्नेनान्तरात्मना ॥ ॥ १३ ॥ साम्प्रतंतुवनेत्यक्तानवेद्मिक्वनुसागता ॥ भक्षितावापिविपिनेसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥ १४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ नभक्षितासा भूपालसिंहव्याघ्रनिशाचरैः ॥ सात्वविप्लुतचरित्रासाम्प्रतंतुरसातले ॥ १५ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सानीताकेनपातालमास्तेसाऽदूषिताकथम् ॥ अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्यथावद्वक्तुमर्हसि ॥ १६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ पातालेनागराजोऽस्तिप्रख्यातश्चकपोतकः ॥ तेनदृष्टात्वयात्यक्ताभ्रममाणामहावने ॥ १७ ॥ सारूपशालिनीतेनसानुरागेणपार्थिव ॥ वेदितार्थेनपातालंनीतामायुवतीनदा ॥१८॥

सो नहीं जानता" ॥ १४ ॥ ऋषि बोले--हे भूपाल ! सिंह व्याघ्र वा निशाचर आदिने उसको भक्षण नहीं किया, इस समय आपकी वह पत्नी विशुद्ध चारित्रसे रसातलमें वास करती है ॥ १५ ॥ राजाने कहा--हे ब्रह्मन् ! मेरी वह पत्नी किसके द्वारा रसातलमें पहुँची और किस प्रकारसे अदूषित होकर वहाँ वास करती है ? यह अद्भुत विषय यथावत् वर्णन कीजिये ॥ १६ ॥ ऋषि बोले--हे राजन् ! पातालमें कपोतक नामक विख्यात नागराज वास करते हैं, वह आपके द्वारा त्यागी हुई तुम्हारी उस रूपशालिनी युवती भार्याको महावनमें भ्रमण करता देख, उसके प्रति अनुरागी हो अपना अभिप्राय प्रगटकर उसको पातालमें लेगये हैं ॥ १७--१८ ॥

हे महीमते ! उन बुद्धिमान् नागराजकी सुंदरी कन्याका नाम नन्दा है और उनकी भार्याका नाम मनोरमा है ॥ १९ ॥ उस नागकन्या नन्दाने इस सुंदरीको अपनी माताकी भविष्यत् सपत्नी देख अन्तःपुरमें अपने घरके भीतर ले जाकर छिपा रक्खा ॥ २० ॥ नागराज जब नन्दाके निकट उस सुन्दरीके लिये प्रार्थना करते, तब नन्दा उनको कुछ उत्तर नहीं देती, तदनन्तर नागराजने इस कन्यासे कहा "तू वाक्छक्तिहीन अर्थात् गूँगी होगी" ॥ २१ ॥ हे भूपते ! वह नागराजकी कन्या नन्दा पितासे इस प्रकार शापको प्राप्त हुई है और उन उरगेन्द्रके द्वारा पातालमें पहुँची हुई उस सतीको उनकी कन्याने पकड़ रक्खा है ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर राजाने परम हर्षको प्राप्त होकर उन

ततस्तस्यसुतासुभ्रूर्नन्दानाममहीपते ॥ भार्यामनोरमाचास्यनागराजस्यधीमतः ॥ १९ ॥ तयामातुःसपत्नीयंसाभवित्रीतिशोभना ॥ दृष्टास्वगेहंसानीतागुप्ताचान्तःपुरेशुभा ॥ २० ॥ यदातुयाचितानन्दानददातिनृपोत्तरम् ॥ मूकाभविष्यसीत्याहतदातांतनयांपिता ॥ ॥ २१ ॥ एवंशप्तासुतातेनसाचास्येतत्रभूपते ॥ नीतातेनोरगेन्द्रेणधृतातत्सुतयासती ॥ २२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोराजापरं हर्षमवाप्यतमपृच्छत ॥ द्विजवर्यंस्वदौर्भाग्यकारणेदयितांप्रति ॥ २३ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्सर्वलोकस्यमयिप्रीतिरनुत्तमा ॥ किन्तुतत्कारणंयेनस्वपत्नीनातिवत्सला ॥ २४ ॥ ममचासावतीवेष्टाप्राणेभ्योऽपिमहामुने ॥ साचमांप्रतिदुःशीलाब्रूहितत्कारणं द्विज ॥ ॥ २५ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ पाणिग्रहणकालेत्वंसूर्यभौमशनैश्चरैः ॥ शुक्रवाचस्पतिभ्यांचतत्रभार्यावलोकिता ॥ २६ ॥ तन्मुहूर्तेऽभवच्चन्द्रस्तस्याःसोमसुतस्तथा । परस्परविपक्षौतौततःपार्थिवतेभृशम् ॥ २७ ॥

द्विजश्रेष्ठसे अपने प्रति प्रियाके अप्रिय भावका कारण पूछा ॥ २३ ॥ राजाने कहा—हे भगवन् ! मेरे प्रति संपूर्ण मनुष्योंकी अत्युत्तम प्रीति है, किन्तु मेरी स्वीय पत्नी मुझमें अनुरक्त नहीं है, इसका क्या कारण है ? ॥ २४ ॥ हे महामुने ! हे द्विजोत्तम ! मेरी वह पत्नी प्राणोंकी अपेक्षा प्रियतम होनेपर भी जिस कारण मेरे प्रति बुरा व्यवहार करती है, सो कहिये ॥ २५ ॥ ऋषि बोले—विवाहके समयमें आपके ऊपर रवि, मंगल और शनैश्चरकी दृष्टि थी और आपकी भार्याको शुक्र एवं बृहस्पति देख रहे थे ॥ २६ ॥ और उसी मुहूर्त्तमें आपकी पत्नीके चन्द्र और आपके बुध, यह परस्पर अत्यन्त विपक्ष थे ॥ २७ ॥

अब जाइये और स्वधर्म द्वारा पृथ्वीका पालन तथा भार्याके सहित मिलित होकर सब प्रकार धर्मयुक्त कार्यका अनुष्ठान कीजिये ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले महामना ऋषिके इस प्रकार कहनेपर पृथ्वीपाल उत्तम उनको प्रणामकर रथमें चढ़ अपने पुरमें आगये ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तमन्वन्तरे अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर राजा उत्तमने अपने नगरमें पहुँचकर उस ब्राह्मणको सुशील भार्याके संग स्थित और हर्षयुक्त देखा ॥ १ ॥ ब्राह्मणने राजासे कहा हे राजश्रेष्ठ ! मैं कृतार्थ हुआ हूं क्योंकि आपने धर्म जाननेके कारण मेरी भार्या लाकर मेरे धर्मकी रक्षा की है ॥ २ ॥ राजा बोले—हे द्विजश्रेष्ठ ! अपना धर्म प्रतिपालनके कारण आप कृतार्थ

तद्गच्छत्वंस्वधर्मेणपरिपालयमेदीनीम् ॥ पत्नीसहायःसर्वाश्चकुरुधर्मवतीः क्रियाः ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तःप्रणिपत्यैनमारुह्यस्यन्दनंततः ॥ उत्तमःपृथिवीपालआजगामनिजंपुरम् ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऔत्तममन्वन्तरेअष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःस्वनगरंप्राप्यतंददर्शद्विजंनृपः ॥ ममेतंभार्ययाचैवशीलवत्यामुदान्वितम् ॥ १ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ राजवर्यकृतार्थोऽस्मियतोधर्म्मोहिरक्षितः ॥ धर्मज्ञेनेहभवताभार्यामानयनाम्मम ॥ २ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कृतार्थस्त्वंद्विजश्रेष्ठनिजधर्मानुपालनात् ॥ वयंसङ्कटिनोविप्रयेषांपत्नीनवेश्मनि ॥ ३ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ नरेन्द्रसाहिविपिनेभक्षिताश्वापदैर्यदि ॥ क्रोधस्यवशमागम्यधर्मोनावेक्षितस्त्वया ॥ अलंतयाकिमन्यस्यानपाणिर्गृह्यतेमवया ॥ संतिराज्ञांगृहेकन्याःशोभनानृपनन्दन ॥ ४ ॥ राजोवाच ॥ नभक्षितामेदयिताश्वापदैःसाहिजीवति ॥ अविदूषितचारित्राकथमेतत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥

हुए हैं, किन्तु हे विप्र ! मेरे घरमें पत्नी नहीं है अतएव मैं अत्यन्त संकटमें पड़ा हूँ ॥ ३ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे नरेन्द्र ! यदि उसको वनमें हिंसक जीवोंने भक्षण कर लिया है, तो आपने क्रोधके वशवर्ती होकर धर्मको देखा नहीं अब क्या ? यदि नष्ट होगई हो तो उसके मिलनेकी आशा छोड़कर अन्य कन्याका पाणिग्रहण क्यों नहीं करते ? हे नृपनन्दन ! कारण की राजोंके घरमें अनेक कन्यायें हैं ॥ ४ ॥ राजा बोले—मेरी पत्नीको हिंसक जीवोंने नहीं खाया, अबतक विशुद्ध चरित्रसे जीवित है फिर किस प्रकारसे मैं स्त्री ग्रहण करूं ? ॥ ५ ॥

ब्राह्मणने कहा यदि आपकी पत्नी अभीतक अव्यभिचारिणी होकर जीवित है, तो तुम पत्नी परित्याग करके पाप क्यों करते हो ? ॥ ६ ॥ राजा बोले हे विप्र ! अपनी पत्नीके लानेपर भी वह सदा मेरे प्रतिकूल रहेगी, वह सुखका कारण नहीं है, केवल दुःखका ही कारण है क्योंकि मुझमें उसका स्नेह नहीं है । हे विप्रोत्तम ! जिससे वह मेरी पत्नी मेरे वशीभूत हो, आप उसीमें यत्न कीजिये ॥ ७ ॥ ब्राह्मणने कहा मित्रताकी कामना करनेवाले जो उपकारी श्रेष्ठ यज्ञ करते हैं, मैं तुम्हारी पत्नीकी प्रीतिके लिये वही "मित्रविन्दा" नामक यज्ञ करूंगा ॥ ८ ॥ हे मनुजेन्द्र ! असंतुष्ट स्त्री पुरुषोंकी प्रीतिकारी और परम प्रीति उत्पन्न करनेवाली शक्तिका देनेवाला वह यज्ञ आपके निमित्त करूंगा ॥ ९ ॥ हे

॥ ब्राह्मणउवाच ॥ यदिजीवतितेभार्यानचैवव्यभिचारिणी ॥ अपत्नीकत्वतोजन्मकिंपापंक्रियतेत्वया ॥ ६ ॥ राजोवाच ॥ ॥ आनीतापिहिसाविप्रप्रतिकूलासदैवमे ॥ दुःखायनसुखायालंतस्यामैत्रीनवैमयि ॥ यथातेब्राह्मणीविप्रवशगातवसुंदरी ॥ तथात्वंकुरु यत्नंमेयथासावशगामिनी ॥ ७ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ ॥ त्वयिसंप्रीतयेतस्यावरेष्टिरुपकारिणीक्रियतेमित्रकामैर्यामित्रविन्दांकरोमि ताम् ॥८ ॥ अप्रीतयोःप्रीतिकरीसाहिसंजननीपरम् ॥ भार्यापत्योर्मनुष्येन्द्रतांतवेष्टिंकरोम्यहम् ॥ ९ ॥ यत्रतिष्ठतिसासुभ्रूस्तवभार्या महीपते ॥ तस्मादानीयतांसातेपरांप्रीतिमुपैष्यति ॥ १० ॥ (तस्यास्तवहितार्थायधर्मोयत्रनसीदति ॥) मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्तःसतुसम्भारानवनीपतिः ॥ आनिनायचकारेष्टिंसचतांद्विजसत्तमः ॥ ११ ॥ सप्तकृत्वःसतुतदाचकारेष्टिंपुनःपुनः ॥ तस्यरा ज्ञोद्विजश्रेष्ठोभार्यासम्पादनायवै ॥ १२ ॥ यदारोपितमैत्रांताममन्यतमहामुनिः ॥ स्वभर्त्तरितदाविप्रस्तमुवाचनराधिपम् ॥ १३ ॥

महीपते ! आपकी वह सुभ्रू भार्या जिस स्थानमें वास करती है वहांसे उसको ले आओ, वह आपमें परम प्रीतिवाली होगी ॥ १० ॥ (उसके तुम्हारे हितके अर्थ ऐसे अवसरमें धर्म नष्ट नहीं होता है) मार्कण्डेयजी बोले--वह राजा उत्तम ब्राह्मणका वचन सुनकर संपूर्ण यज्ञकी सामग्री लाई और उस द्विज श्रेष्ठने भी उल्लिखित यज्ञ किया ॥ ११ ॥ अनन्तर उस द्विजोत्तमने राजाकी भार्याको सुशील करनेके लिये पुनः पुनः सातवार वह यज्ञ किया ॥ १२ ॥ जब महामुनिने उस राजमहिषीको स्वीय पतिके प्रति अनुरागवती समझा, तब राजासे कहा ॥ १३ ॥

हे नरश्रेष्ठ ! अब अपनी उस प्रिय भार्याको अपने समीप लाकर उसके संग सांसारिक भोग भोगिये और यत्नसहित यज्ञ संपन्न कीजिये ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उस ब्राह्मणका इस प्रकार वचन सुनकर राजा अत्यन्त अचंभेमें हुए और उसी समय महावीर्य, सत्यप्रतिज्ञ उस निशाचरको स्मरण किया ॥ १५ ॥ हे महामुने ! स्मरण करते ही उस निशाचरने तत्काल वहाँ उपस्थित हो उनको प्रणाम करके कहा कि "मैं क्या करूं" ॥ १६ ॥ अनन्तर राजाके सब विस्तारसहित कहने पर निशाचर पातालमें जाय राजपत्नीको लेकर फिर उपस्थित हुआ ॥ १७ ॥ उसने आकर हार्दिक अत्यन्त प्रणयके सहित अपने पतिका दर्शन किया और प्रीतियुक्त होकर "मेरे प्रति प्रसन्न होओ"

आनीयतांनरश्रेष्ठयातवेष्टात्मनोऽन्तिकम् ॥ भुंक्ष्वभोगांस्तयासार्द्धंयजयज्ञांस्तथाहृतः ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तस्ते नविप्रेणभूपालोविस्मितस्तदा ॥ सस्मारतंमहावीर्यंसत्यसन्धंनिशाचरम् ॥ १५ ॥ स्मृतस्तेनतदासद्यःसमुपेत्यनराधिपम् ॥ किंकरोमीतिसोऽप्याहप्रणिपत्यमहामुने ॥ १६ ॥ ततस्तेननरेन्द्रेणविस्तरेणनिवेदिते ॥ गत्वापातालमादायराजपत्नीमुपाययौ ॥ १७ ॥ आनीताचातिहार्देनसाददर्शतदापतिम् ॥ उवाचचप्रसीदेतिभूयोभूयोमुदान्विता ॥ १८ ॥ ततःसराजारभसापरिष्वज्याहमानिनीम् ॥ प्रियेप्रसन्नएवाहंभूयोऽप्येवंब्रवीषिकिम् ॥ १९ ॥ पत्न्युवाच ॥ ॥ यदिप्रसादप्रवणंनरेन्द्रमयितेमनः ॥ तदेतदभियाचेत्वांतत्कुरुष्व ममार्हणम् ॥ २० ॥ राजोवाच ॥ ॥ निःशंकेब्रूहिमत्तोयद्भवत्याकिंचिदीप्सितम् ॥ तदलभ्यंनतेभीरुतवायत्तोऽस्मिनान्यथा ॥२१ ॥ पत्न्युवाच ॥ मदर्थंतेननागेनसुताशप्तासखीमम ॥ मूकाभविष्यसीत्याहसाचमूकत्वमागता ॥ २२ ॥

इस प्रकार वारंवार कहने लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर राजाने उत्सुकताके सहित मानिनी पत्नीको आलिंगन करके कहा "हे प्रिये ! मैं तुम्हारे प्रति प्रसन्नही हूं तुम वारंवार क्यों कहती हो" ॥ १९ ॥ राजपत्नी बोली--हे नरेन्द्र ! यदि आपका मन मेरे प्रति प्रसन्न हुआ है, तो मैं प्रार्थना करती हूं, आप मेरे यथायोग्य सन्मान की रक्षा कीजिये ॥ २० ॥ राजाने कहा--हे भीरु ! अपना अभिलाषित विषय निःशंक भावसे वर्णन करो । मेरे समीप तुमको कुछ भी अलभ्य नहीं है । मैं ही तुम्हारे आधीन हूं, इसमें अन्यथा नहीं है ॥ २१ ॥ राजपत्नी बोली--मेरी सखी नागराजकी कन्या मेरे ही कारण नागराजके द्वारा "तू गूंगी होगी" इस प्रकार शापको प्राप्त हो वाक्शक्तिविहीन हुई है ॥ २२ ॥

आप मेरे प्रति प्रीतिके कारण यदि उसकी मूकताप्रशमनार्थ प्रतिकार करनेमें समर्थ हों तो मेरा आपने क्या कार्य नहीं किया ॥२३॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनन्तर राजाने उस ब्राह्मणसे पूछा कि नागराजकी कन्याका गूँगापन दूर होनेके लिये इस समय क्या कार्य करना आवश्यक है ? ॥ २४ ॥ ब्राह्मणने कहा—हे भूप ! आपके वचनानुसार सारस्वती इष्टि करूंगा । आपकी यह पत्नी उसको मूकता दूर होनेपर ऋण—मुक्त होगी ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले । उस द्विजश्रेष्ठने उसकी मूकता नष्ट होनेके लिये सारस्वतीइष्टिका आरंभ किया और सावधान होकर सारस्वत सूक्तका जप करने लगा ॥ २६ ॥ तदनन्तर गर्गऋषिने रसातलमें प्रवृत्तवाक्या अर्थात् बोलनेकी शक्तिको प्राप्त हुई

तस्याःप्रतिक्रियांप्रीत्या ममशक्तोतिचेद्भवान् ॥ वाग्विघातप्रशान्त्यर्थंततःकिंनकृतंमम ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसराजा तंविप्रमाहास्मिन्कीदृशीक्रिया ॥ तन्मूकतापनोदायसचतंप्राहपार्थिवम् ॥ २४ ॥ ब्राह्मणउवाच ॥ भूपसारस्वतीमिष्टिंकरोमिवच नात्तव ॥ पत्नीतवेयमानृण्यंयातुतद्वाक्प्रवर्तनात् ॥ २५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इष्टिंसारस्वतींचक्रेतदर्थंसद्द्विजोत्तमः ॥ सारस्वतानिसूक्तानिजजापचसमाहितः ॥ २६ ॥ ततःप्रवृत्तवाक्यांतांगर्गःप्राहरसातले ॥ उपकारःसखीभर्त्राकृतोऽयमतिदुष्करः ॥ २७ ॥ इत्थंज्ञानंसमासाद्यनन्दाशीघ्रगतिःपुरम् ॥ ततोराज्ञींपरिष्वज्यस्वसखीमुरगात्मजा ॥ २८ ॥ तंचसंस्तूयभूपालंकल्याणोक्त्यापुनःपुनः ॥ उवाचमधुरंनागीकृतासनपरिग्रहा ॥ २९ ॥ उपकारःकृतोवीरभवतायोममाधुना ॥ तेनास्म्याकृष्टहृदयायद्ब्रवीमिशृणुष्व तत् ॥ ३० ॥ तवपुत्रोमहावीर्योभविष्यतिनराधिपः ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमस्यांभुविभविष्यति ॥ ३१ ॥ सर्व्वार्थशास्त्रतत्त्वज्ञोधर्मानुष्ठानतत्परः ॥ मन्वन्तरेश्वरोधीमान्भविष्यतिसवैमनुः ॥ ३२ ॥

नागकन्यासे कहा तुम्हारी सखीके पतिने तुम्हारा यह दुष्कर उपकार किया है ॥२७॥ नागकन्या नन्दा यह जानकर शीघ्रगतिसे उस पुरमें जाय अपने सखी राज्ञीको आलिंगन ॥२८॥ और उन भूपालके गुण गान करके आसनपर बैठ कल्याणवचनोंके द्वारा मधुर भावसे वारंवार कहने लगी ॥२९॥ हे वीर ! इस समय आपके द्वारा मेरा जो उपकार साधित हुआ है, उससे आकृष्टहृदय होकर मैं जो कहती हूं सुनो ॥३०॥ हे नराधिप ! आपको महावीर्यवान् पुत्र उत्पन्न होगा और इस पृथ्वीमें उसका अखण्ड राज्यमंडल प्रतिष्ठित होगा ॥ ३१ ॥ आपका सर्वार्थ

आत्ममें तत्त्वज्ञ, धर्मानुष्ठानमें तत्पर, वह बुद्धिमान् पुत्र मन्वन्तराधिपति मनु होगा ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हेमुने ! तदनन्तर नागराजकी कन्या नन्दा उनको इस प्रकार वर दे, और उस सखीको गाढ आलिंगनकर पातालमें चली गई ॥ ३३ ॥ इधर पत्नीके सहित रमण परायण उन पृथ्वी पतिका प्रजा पालन करते करते बहुतकाल बीतगया ॥ ३४ ॥ अनन्तर रानीके गर्भमे महात्मा राजाके पूर्णिमाके संपूर्ण चन्द्रमण्डलके समान मनोहर--कान्ती एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ३५ ॥ उन महात्माके जन्मग्रहणमें समस्त प्रजाने महाआनंद प्राप्त किया था, समस्त देवताओंकी दुन्दुभी बजीं थीं और फूलोंकी वर्षा हुई थी ॥ ३६ ॥ आये हुए मुनियोंने उसके देहकी कांति देखकर और

मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिदत्त्वावरंतस्मैनागराजसुताततः ॥ सखींतांसंपरिष्वज्यपातालमगमन्मुने ॥ ३३ ॥ तत्रतस्यतयासार्द्ध रमतःपृथिवीपतेः ॥ जगामकालःसुमहान्प्रजाःपालयतस्तथा ॥ ३४ ॥ ततःसतस्यांतनयोजज्ञेराज्ञोमहात्मनः ॥ पौर्णमास्यां यथाकान्तश्चन्द्रःसंपूर्णमण्डलः ॥ ३५ ॥ तस्मिंजातेमुदंप्रापुःप्रजाःसर्वाःमहामराः ॥ देवदुन्दुभयोनेदुःपुष्पवृष्टिःपपातच ॥ ३६ ॥ तस्यदृष्ट्वावपुःकान्तंभविष्यंशीलमेवच ॥ औत्तमश्चेतिमुनयोनामचक्रुःसमागताः ॥ ३७ ॥ जातोऽयमुत्तमेवंशेबाल्ःकालेतथोत्तमे ॥ उत्तमावयवस्तेनऔत्तमोऽयंभविष्यति ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ उत्तमस्यसुतःसोऽथनाम्नाख्यातस्तथौत्तमः ॥ मानुरसौ तत्प्रभावोभागुरेश्रूयतांमम ॥ ३९ ॥ उत्तमाख्यानमखिलंजन्मचैवौत्तमस्ययः ॥ नित्यंशृणोतिविद्वेषंमकदाचिन्नगच्छति ॥ ४० ॥ इष्टैर्दारैस्तथापुत्रैर्बन्धुभिर्वाकदाचन ॥ वियोगोनास्यभविताशृण्वतःपठतोऽपिवा ॥ ४१ ॥

भावस्वभाव जानकर उसका ' औत्तम' नामसे नामकरण किया ॥ ३७ ॥ मुनियोंने कहा इस महात्माने उत्तम वंशमें, और उत्तम कालमें, और उत्तम अवयव (अंग) सम्पन्न होकर जन्मग्रहण किया है, इस कारण यह उत्तम नामसे विख्यात होगा ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने भागुरे ! पक्षांतरमें "उत्तमके पुत्र थे" इसी कारण वह औत्तम नामसे अभिहित होकर मनु हुये थे । अब मुझसे उनका प्रभाव सुनो ॥ ३९ ॥ उत्तम नृपतिका आख्यान और औत्तम मनुका जन्म वृत्तान्त जो सुनते हैं, वह कभी विद्वेषको प्राप्त नहीं होते ॥ ४० ॥ जो इसको सुनते हैं वा पढ़ते हैं, उनको कभी इष्ट, पुत्र, स्त्री और बंधु वर्गका वियोग सहना नहीं पड़ता ॥ ४१ ॥

उनके मन्वन्तरकी कथा विस्तारसहित वर्णन करता हूं सुनो। हे ब्रह्मन् उस समय जो देवता, और जो ऋषि थे, वह भी कहता हूं ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरे एकोनसततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ मार्कण्डेय बोले- हे मुने ! औत्तम प्रजापतिके तीसरे मन्वन्वतरके इन्द्र देवता और ऋषियोंका विषय कहता हूं सुनो ॥ १ ॥ प्रथम गण स्वधामा नामक देवताओंके नामानुरूप अपनी ज्योतिसे प्रकाशमान है और देवताओंका दूसरा गण सत्य नामसे विख्यात है ॥ २ ॥ हे मुनिसत्तम ! देवताओंका तीसरा गण "शिव" नामसे विख्यात है। इस नामका स्मरण करते ही वह पाप नाश करके "शिव" नामकी यथार्थता सम्पादन करता है ॥ ३ ॥ हे मुनिवर !

तस्यमन्वन्तरंब्रह्मन्वदतोममविस्तरात् ॥ श्रूयतांतत्रयश्चेन्द्रोयेचदेवास्तथर्षयः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरे एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ६९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ मन्वन्तरेतृतीयेऽस्मिन्नौत्तमस्यप्रजापतेः ॥ देवानिन्द्रमृषीन्भूपान्निबोधगदतोमम ॥ १ ॥ स्वधामानस्तथादेवायथानामानुकारिणः ॥ सत्याख्यश्चद्वितीयोऽन्यस्त्रिदशानांतथागणः ॥ २ ॥ तृतीयेतुगणेदेवाःशिवाख्यामुनिसत्तम ॥ शिवास्वरूपतस्तेतुश्रुताःपापप्रणाशनाः ॥ ३ ॥ प्रतर्दनाख्यश्चगणोदेवानांमुनिसत्तम ॥ चतुर्थस्तत्रकथितऔत्तमस्यान्तरेमनोः ॥ ४ ॥ वशवर्तिनःपंचमेऽपिदेवास्तत्रगणेद्विज ॥ यथाख्यातस्वरूपास्तुसर्वएवमहामुने ॥ ५ ॥ एतेदेवगणाःपंचस्मृतायज्ञभुजस्तथा ॥ मन्वन्तरेमनुश्रेष्ठेसर्वेद्वादशकागणाः ॥ ६ ॥ तेषामिन्द्रोमहाभागस्त्रैलोक्यस्येश्वरोऽभवत् ॥ शतंक्रतूनामाहृत्यसुशान्तिर्नामनामतः ॥ ७ ॥ यस्योपसर्गनाशायनामाक्षरविभूषिता ॥ अद्यापिमानवैर्गाथागीयतेतुमहीतले ॥८॥ सुशान्तिर्देवराट्कान्तःसुशान्तिसंप्रयच्छति ॥ सहितःशिवसत्याद्यैस्तथैववशवर्तिभिः ॥ ९ ॥

औत्तममन्वन्तरमें देवताओंका चौथा गण प्रतर्द्दन नामसे प्रसिद्ध है ॥ ४ ॥ हे महामुने ! पाँचवें गणमें वशवर्त्ती नामक देवता हैं वह सब नामानुरूप कार्यकारी हैं। हे द्विजोत्तम ! इस मन्वन्तरमें यज्ञभुक् देवताओंके पाँच प्रकार गण और प्रत्येक गणमें बारह बारह देवता हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥ उन देवताओंके सुशान्ति नामधारी महाभाग इन्द्र सौ अश्वमेध यज्ञ करके त्रैलोक्यके गुरु होते हैं ॥ ७ ॥ उन देवराज सुशान्तिकी नामाक्षरविभूषित यह गाथा पृथ्वीतलमें मनुष्यगण अबतक गाते हैं ॥ ८ ॥ वह कान्तिमान् देवराज सुशान्ति शिव सत्यादि देवताओंके सहित सुशान्ति

प्रदान करते हैं, वशवर्त्तीनामक देवगण भी इसी प्रकार करते हैं ॥ ९ ॥ इन मनुके अज, परशुचि, और दिव्य नामक देवताओंके समान विख्यात महाबल पराक्रमी तीन पुत्र थे ॥ १० ॥ जितने दिनों उन उत्तम-तेजा मनुका मन्वन्तर था, तबतक उनकी वंशोत्पन्न सन्तान सन्ततिने नरेश्वर होकर पृथ्वीका पालन किया था ॥ ११ ॥ युगकथन कालमें सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि, यह चार युग कहे गये हैं, कुछ अधिक (इकहत्तर) उक्त चारों युगमें मन्वन्तर काल निर्दिष्ट है ॥ १२ ॥ अपने तेजोबलसे महातपोनामक महात्माके सात पुत्र उत्तम मन्वन्तरमें सप्तऋषि हुए थे ॥ १३ ॥ मैंने यह तीसरे मन्वन्तरका वर्णन किया, अब तामस मनुका चौथा मन्वन्तर कहता हूं ॥ १४ ॥ विभिन्नयोनि--उत्पन्न

अजःपरशुचिर्दिव्योमहाबलपराक्रमः ॥ पुत्रास्तस्यमनोरासन्विख्यातास्त्रिदशोपमाः ॥१०॥ तत्सूतिसम्भवैर्भूमिःपालिताभून्नरेश्वरैः ॥
यावन्मन्वन्तरंतस्यमनोरुत्तमतेजसः ॥११॥ चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ॥ कृतत्रेतादिसंज्ञानियान्युक्तानिपुरामया ॥१२॥
स्वतेजसाहितपसोवसिष्ठस्यमहात्मनः ॥ तनयाश्चान्तरेतस्मिन्सप्तसप्तर्षयोभवन् ॥१३॥ तृतीयमेतत्कथितंतवमन्वन्तरंमया ॥ तामस
स्यचतुर्थंतुमनोरन्तरमुच्यते ॥ १४ ॥ वियोनिजन्मनोयस्ययशसाद्योतितंजगत् ॥ जन्मतस्यमनोर्ब्रह्मञ्छ्रूयतांगदतोमम ॥ १५ ॥
अतीन्द्रियमशेषाणांमनूनांचरितंतथा ॥ तथाजन्मापिविज्ञेयंप्रभावश्चमहात्मनाम् ॥१६॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे औत्तममन्वन्तरंनाम
सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ राजाभूद्भुविविख्यातःस्वराष्ट्रोनामवीर्यवान् ॥ अनेकयज्ञकृत्प्राज्ञःसंग्रामेष्व
पराजितः ॥१॥ तस्यायुःसुमहद्दत्तंसूर्येणसुमहाद्युतेः ॥ (पुराभगवताविप्रमंत्रिणाराधितेनवै ॥) पत्नीनांचशतंतस्यधन्यानामभवद्द्विज ॥२॥

जिन मनुके यशद्वारा जगत् प्रकाशित हुआ था उन मनुके जन्मका वृत्तान्त कहता हूं. सुनो ॥ १५ ॥ इन सब महात्मा अनेक मनुगणोंका चरित्र उनके जन्मका प्रभाव भलीभाँतिसे जानना चाहिये ॥ १६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामौत्तममन्वन्तरंनाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनेक यज्ञकारी ज्ञान संपन्न संग्राममें अपराजित वीर्यवान् स्वराष्ट्रनामक जगद्विख्यात एक राजा थे ॥ १ ॥ हे द्विज ! इनके मंत्रियों द्वारा आराधित होकर महाद्युतिमान् भगवान् सूर्यने उनको दीर्घआयु प्रदानकी थी, उन राजाके सुन्दरी धन्या नामक सौ

पत्नी थी॥ २ ॥ किन्तु हे मुने ! उन दीर्घायु राजाकी पत्निये अतिदीर्घायु नहीं थीं, अतएव वह यथा समयमें मृत्युको प्राप्त हुई थीं और भृत्य तथा मंत्रीगण भी कालके वश होकर मृत्युको प्राप्त हुए थे ॥ ३ ॥ वयस्यगण (स्नेही) भृत्यगण और समस्त भार्याओंके वियोगमें उद्विग्नचित्त होकर राजा रात दिन वीर्यहीन होनेलगे ॥ ४ ॥ विमर्दनामक समीपवर्ती अन्य राजाने, वीर्यहीन और विश्वासी भृत्योंके द्वारा छोड़े हुए इस दुःखित राजाको राज्यसे च्युत किया ॥ ५ ॥ वह महाभाग राजा स्वराष्ट्र राज्यसे च्युत होनेके कारण दुःखित चित्तसे वनमें जाय वितस्तानदीके तटपर स्थित होकर तपस्या करने लगे ॥६॥ वह ग्रीष्मके समय पंचाग्निमें पंचतपा, वर्षाके समय खुले स्थानमें बैठकर और शीतकालमें जलशायी होकर निराहार और संयत भावसे व्रत करने लगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर तपस्यानुरक्त राजाकी तपस्या के समय एकदिन वर्षाकालमें मेघोंके चारोंओर निरन्तर जल बरसानेसे महाजलसमूह उपस्थित हुआ था ॥ ८ ॥ तब चारों दिशा अंधकारसे आच्छादित होगई, यहीं नहीं, बरन् उसकाल; दक्षिण; पूर्व, पश्चिम वा उत्तर कुछ नहीं जाना जाता था ॥ ९ ॥ अनन्तर वह राजा अति प्लावनकालमें नदीके तटसे प्रेरित होकर अत्यन्त वेगशाली जलधारासे खिंचकर भी प्रार्थित नदीके तटको प्राप्त नहीं हुए ॥ १० ॥ फिर महीपति जलके प्रवाहसे हरे जाकर एक रौही (मृगी विशेष) को प्राप्त हुए और उसकी पुच्छ पकड़ी ॥ ११ ॥ तदन्तर उस जलसमूहमें खिंचे हुए राजा महीतलमें पहुँचे । अंध-

तस्यदीर्घायुषःपत्न्योनातिदीर्घायुषोमुने ॥ कालेनजग्मुर्निधनंभृत्यमन्त्रिजनास्तथा ॥ ३ ॥ सभार्याभिस्तथामुक्तोभृत्यैश्चसहजन्मभिः ॥ उद्विग्नचेताःसंप्रापवीर्यहानिमहर्निशम् ॥ ४ ॥ तंवीर्यहीनंनिभृतैर्भृत्यैस्त्यक्तंसुदुःखितम् ॥ अनन्तरोविमर्दाख्योराज्याच्च्यावितवांस्तदा ॥ ५ ॥ राज्याच्च्युतःसोऽपिवनंगत्वानिर्विण्णमानसः ॥ तपस्तेपेमहाभागोवितस्तापुलिनेस्थितः ॥ ६ ॥ ग्रीष्मेपंचतपाभूत्वावर्षास्वभ्रावकाशकः ॥ जलशायीचशिशिरेनिराहारोयतव्रतः ॥ ७ ॥ ततस्तपस्यतस्तस्यप्रावृट्कालेमहान्प्लवः ॥ बभूवानुदिनंमेघैर्वर्षद्भिरनुसन्ततम् ॥ ८ ॥ नदिग्विज्ञायतेपूर्वादक्षिणावानपश्चिमा ॥ नोत्तरातमसासर्वमनुलिप्तमिवाभवत् ॥ ९ ॥ ततोऽतिपूरेणनृपःसनद्याप्रेरितस्तटम् ॥ प्रार्थयन्नपिनावापह्रियमाणोऽतिवेगिना ॥ १० ॥ अथदूरेजलौघेनह्रियमाणोमहीपतिः ॥ आससादजलेरौहींसपुच्छेजगृहेचताम् ॥ ११ ॥ तेनप्लवेनसययावूह्यामनोमहीतले ॥ इतश्चेतश्चान्धकारेआससादतटंततः ॥ १२ ॥

कारमें इधर उधर ढूँढ़कर किनारेपर पहुँचे ॥ १२ ॥ मृगीके द्वारा आकृष्यमाण वह राजा बहुत विस्तारवाली दुस्तर कीचडको तरकर एक मनो हर वनमें पहुँचे ॥ १३ ॥ अंधकारमें वह मृगी पुच्छमें लगे नाड़ियोंसे व्याप्त देहवाले महाभाग वसुधाधिपतिको खैंचने लगी ॥ १४ ॥ राजा स्वराष्ट्र अंधकारमें भ्रमण करते करते उसके स्पर्शसे कामासक्तचित्त हो अत्यन्त आनन्दको प्राप्त हुए ॥ १५ ॥ जब राजाने उस वनमें उसकी पीठका स्पर्श किया, तब मृगीने उनको अनुरागी जानकर कहा ॥ १६ ॥ हे भूपाल ! काँपते हुए हाथोंमे मेरी पीठका स्पर्श क्यों करते हो ? इस स्पर्शका भाव अन्य प्रकार विदित होता है ॥ १७ ॥ हे नरेश्वर ! अयोग्यके प्रति आपकी अभिलाषा नहीं हुई है मैं आपकी अगम्या नहींहूं

विस्तारिपङ्कमत्यर्थंदुस्तरंमनृपस्तरम् ॥ तथैवकृष्यमाणोऽन्यद्रम्यंवनमवापसः ॥ १३ ॥ तत्रान्धकारेमार्गेहीत्वकपेवसुधाधिपम ॥ पुच्छेलग्नमहाभागंकृशंधमनिसन्ततम् ॥ १४ ॥ तस्याश्वस्पर्शसंभूतामवापमुदमुत्तमाम् ॥ सोऽन्धकारेभ्रमन्भूपोमदनाकृष्टमानसः ॥ ॥ १५ ॥ विज्ञायसानुरागंतंपृष्ठस्पर्शनतत्परम् ॥ नरेन्द्रंतंवृषस्यंतंमामृगीतमुवाचह ॥ १६ ॥ किंपृष्ठंत्वपथुमनाकरेणस्पृशसेमम ॥ अन्यथैवास्यकार्यस्यसञ्जातानृपतेगतिः ॥ १७ ॥ नास्थानेवामनोयातंनागम्याहंतवेश्वर ॥ किंतुत्वन्सङ्गमेविघ्नमेषलालेःकरोतिमे ॥ ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तस्यामृग्याश्चजगतोपतिः ॥ जातकौतूहलोराजेहीमिदंवचनमब्रवीत ॥ १९ ॥ कात्वं ब्रूहिमृगीवाक्यंकथंमानुषवद्वदेत् ॥ कश्चैवलोलोयोविघ्नंत्वत्सङ्गकुरुतेमम ॥ २० ॥ मृग्युवाच ॥ ॥ अहन्नेदयिताभूपप्रागासमुत्प लावती ॥ भार्य्याशताग्रमहिषीदुहिताद्दढधन्वनः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ किन्तुयावत्कृतंकर्मयेनेमांयोनिमागता ॥ पतिव्रताश्रमं परासाचेत्थंकथमीदृशी ॥ २२ ॥

अर्थात् गमन करनेकी योग्यही हूं किन्तु आपके समागममें यह लोल विघ्न करते हैं ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन राजाने उस मृगीका इस प्रकार वचन सुन कौतूहलयुक्त होकर मृगीसे कहा ॥ १९ ॥ तुम कौन हो ? मृगी होकर किस प्रकार मनुष्यके समान बात कहती हो ? और तुम्हारे संग समागममें जो विघ्न उत्पन्न करते हैं, वह लोग कौन हैं ? सो कहो ॥ २० ॥ मृगीने कहा--हे भूपते ! मैं दृढ़धन्वाकी कन्या हूं मैं ही सैकडों रानियोंमें श्रेष्ठ थी मेरा नाम उत्पलावती है मैं आपकी प्रियतमा महिषी हूं ॥ २१ ॥ राजा बोले--तुमने ऐसा क्या कार्य किया है

जिससे ऐसी योनि प्राप्त हुई है ? मेरी वह पत्नी पतिव्रता और धर्मपरायण होकर किस प्रकार ऐसी दशाको प्राप्त हुई ? ॥ २२ ॥ मृगी बोली--मैंने पतिके घर बाल्य अवस्थामें सखियोंके संग क्रीड़ा करनेके लिये वनमें जाकर मृगीके सहित संगत एक मृगको देखा था ॥ २३ ॥ अनन्तर मैंने. निकट जाकर मृगीको ताड़न (प्रहार) किया, तब मृगी डरकर अन्यत्र चली गई, इस कारण मृगने क्रोधित होकर कहा ॥२४॥ हेमूढे ! किसलिये ऐसी मत्त हुई दुःशीलताको धिक्कार है, क्योंकि मेरे इस गर्भाधान कालको तैंने विफल किया ॥ २५ ॥ मनुष्यके समान वचन बोलने वाले उस मृगका वचन सुननेपर मैंने डरकर उससे पूछा कि, आप किस प्रकार इस मृगयोनिको प्राप्त हुए हैं ? ॥ २६ ॥

मृग्युवाच ॥ ॥ अहंपितृगृहेबालासखीभिःसहितावनम् ॥ रन्तुंगतादद्दर्शैकंमृगंमृग्यासमागतम् ॥ २३ ॥ ततःसमीपवर्तिन्यामयासा ताडितामृगी ॥ मयात्रस्तागतान्यत्रकुद्धःप्राहततोमृगः ॥ २४ ॥ मूढेकिमेवंमत्तासिधिक्तेदौःशील्यमीदृशम् ॥ आधानकालोयेनायं त्वयामेविफलीकृतः ॥ २५ ॥ वाचंश्रुत्वाततस्तस्यमानुषस्येवभाषतः ॥ भीतातमब्रुवंकोऽसीत्येतांयोनिमुपागतः ॥ २६ ॥ ततःसप्राह पुत्रोऽहमृषेर्निर्वृतिचक्षुषः ॥ सुतपानाममृग्यान्तुसाभिलाषोमृगीऽभवम् ॥ २७ ॥ इमांचानुगतःप्रेम्णावांच्छितश्चानयावने ॥ त्वयावि योजितादुष्टेतस्माच्छापंददामिते ॥ २८ ॥ मयाचोक्तंतवाज्ञानादपराधःकृतोमुने ॥ प्रसादंकुरुशापंमेनभवान्दातुमर्हति ॥ २९ ॥ इत्युक्तःप्राहमांसोऽपिमुनिरित्थंमहीपते ॥ नप्रयच्छामिशापंतेयद्यात्मानंददासिते ॥ ३० ॥ मयाचोक्तंमृगीनाहंमृगरूपधरावने ॥ लप्स्यसेऽन्यांमृगींतावन्मयिभावोनिवर्त्यताम् ॥ ३१ ॥

तब उसने कहा मैं निर्वृत्तिचक्षु मुनिका पुत्र हूं, मेरा नाम सुतपा है, मैंने मृगीमें अभिलाषा करके मृगरूप धारण किया है ॥ २७ ॥ इस वनमें इस मृगीके अभिलाषा करनेसे प्रीतिके वश होकर इसका अनुगमन किया था । हे दुष्टे ! तैंने उस मृगीसे मेरा वियोग कराया इस कारण तुझको शाप दूंगा॥ २८॥मैंने कहा हे मुनिवर!अज्ञानके वश होकर मैंने आपका अपराध किया है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ, मुझको शाप मतदो॥ २९॥हे महीपते!इस प्रकार कहनेपर उन मुनिने भी मुझसे कहा, मैं यदि तुझमें आत्मप्रदान करसकूं तो तुझको शाप नहीं दूंगा ॥३०॥ मैंने कहा मैं मृगरूपधारिणी वा मृगी नहीं हूं, आपको वनमें अन्य मृगी मिलेगी, मेरे प्रति यह अभिलाषा निवृत्त कीजिये ॥ ३१ ॥

यह बात सुन उन्होंने कोपसे लाल नेत्र कर होठ कँपाते हुए कहा तैने "मैं मृगी नहीं हूं" यह बात कही,इस कारण तू मृगीही होगी ॥ ३२ ॥ तब मैंने अत्यन्त व्यथित हो,उन स्त्रीयरूपधारी अति क्रुद्ध मुनिको प्रणाम करके वारम्वार कहा, मैं बाला हूं अत एव वचन बोलना नहीं जानती इसीसे ऐसा कहा है, मेरे प्रति प्रसन्न होओ। पिताके न होनेमें स्त्री पतिको स्वयं वरती है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ किन्तु हे मुनिसत्तम ! पिताके वर्तमान रहते मैं किस प्रकार स्वयं वरूं अथवा हे प्रभो ! मैंने अपराध किया है, आपके चरणोंकी वन्दना करके नमस्कार करती हूं, आप प्रसन्न हूजिये ॥ ३५ ॥ हे महामते ! इस प्रणतके प्रति प्रसन्न होओ प्रसन्न होओ । मुझको इस भाँति वारम्वार कहता देखकर वह मुनिवर बोले

इत्युक्तःकोपरक्ताक्षः सप्राहस्फुरिताधरः ॥ नाहंमृगीत्वयेत्युक्तंमृगीमूढेभविष्यसि ॥ ३२ ॥ ततोभृशंप्रव्यथिताप्रणम्युनिमब्रुवम् ॥ स्वरूपस्थमतिक्रुद्धंप्रसीदेतिपुनःपुनः ॥ ३३ ॥ बालानभिज्ञावाक्यानांततःप्रोक्तमिदंमया ॥ पितर्यसतिनारीभिर्व्रियतेहिपतिःस्वयम् ॥ ३४ ॥ सतितातेकथंचाहंवृणोमिमुनिसत्तम ॥ मापराधाथवापादौप्रसीदेशानमाम्यहम् ॥ ३५ ॥ प्रसीदेतिप्रसीदेतिप्रणतायांमहामते ॥ इत्थंलालप्यमानायाःसप्राहमुनिपुङ्गवः ॥ ३६ ॥ नभवत्यन्यथाप्रोक्तंममवाक्यंकदाचन ॥ मृगीभविष्यसिमृतात्वनेऽस्मिन्नेवजन्मनि ॥ ३७ ॥ मृगत्वेचमहाबाहुस्तवगर्भमुपैष्यति ॥ लोलोनाममुनेःपुत्रःसिद्धवीर्यस्यभाविनि ॥ ३८ ॥ जातिस्मरभवित्रीत्वंतस्मिन्गर्भमुपागते ॥ स्मृतिंप्राप्यतथावाचंमानुषीमीरयिष्यसि ॥ ३९ ॥ तस्मिञ्जातेमृगत्वात्त्वंविमुक्तापतिनार्चिता ॥ लोकानवाप्स्यसिप्राप्यायेनदुष्कृतकर्मभिः ॥ ४० ॥

॥ ३६ ॥ कभी मेरा कहा हुआ वचन मिथ्या नहीं होगा तुम मृत्युके पीछे दूसरे जन्ममें इसी वनमें मृगी होगी ॥ ३७ ॥ हे भामिनी ! जब तुम मृगत्वको प्राप्त होगी तब सिद्धवीर्य किसी मुनिका पुत्र महाबाहु लोल तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण करेगा ॥ ३८ । जब तुम उस लोलको गर्भमें प्राप्त करोगी, तब तुम जातिस्मरा होगी और पूर्वजन्मका वृत्तान्त स्मरण करनेमें समर्थ होनेपर मनुष्यके समान वचन कह सकोगी ॥ ३९ ॥ उस महाबाहुके जन्म ग्रहण करनेपर तुम शापसे छूट और पतिके द्वारा अर्चित होकर पापकर्मकारी मनुष्य जो लोक प्राप्त नहीं कर सकते, तुम उसी लोकको प्राप्त करोगी ॥ ४० ॥

तदनन्तर वह महावीर्यवान् लोल ही पिताके शत्रुओंको मार और समस्त वसुन्धराको जीतकर मनु होगा ॥ ४१ ॥ हे महाराज ! मैंने इस प्रकार शापको प्राप्त हो तिर्यक् योनि लाभ की है, तुम्हारे स्पर्शके कारण मेरे जठरमें उस गर्भने जन्म ग्रहण किया है ॥४२॥ इसी निमित्त मैंने कहा था कि "मेरे प्रति जो आपकी अभिलाषा हुई है, वह अयोग्यस्थानमें नहीं है, आप भी मुझको अगम्य नहीं हैं, किंतु यह गर्भस्थित लोलही विघ्न करता है" ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनन्तर "यह पुत्र मेरे शत्रुओंको जीतकर पृथ्वीमें मनु होगा" इस प्रकार वचन सुनकर वह राजा परमहर्षको प्राप्त हुए ॥ ४४ ॥ इसके उपरांत उस मृगीने सुलक्षणयुक्त पुत्र प्रसव किया। बालकके जन्म ग्रहण करनेपर संपूर्ण प्राणी

सोऽपिलोलोमहावीर्यःपितृशत्रून्निपात्यवै ॥ जित्वावसुन्धरांकृत्स्नांभविष्यतिततोमनुः ॥ ४१ ॥ एवंशापमहंलब्ध्वामृतातिर्यक्त्वमागता ॥ त्वत्संस्पर्शाच्चगर्भोऽसौसंभूतोजठरेमम ॥ ४२ ॥ अतोब्रवीमिनास्थानेतवयातंमनोमयि ॥ नचाप्यगम्यागर्भस्थोलोलोविघ्नंकरोत्यसौ ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवमुक्तस्ततःसोऽपिराजाप्राप्यपरांमुदम् ॥ पुत्रोममारीञ्जित्वेतिपृथिव्यांभवितामनुः ॥ ४४ ॥ ततस्तंसुषुवेपुत्रंसामृगीलक्षणान्वितम् ॥ तस्मिञ्जातेचभूतानिसर्वाणिप्रययुर्मुदम् ॥ ४५ ॥ विशेषतश्चराजासौपुत्रेजातेमहावने ॥ साविमुक्तामृगीशापात्प्रापलोकाननुत्तमान् ॥ ४६ ॥ ततस्तस्यर्षयःसर्वेसमेत्यमुनिसत्तम ॥ अवेक्ष्यभाविनीमृद्धिंनामचक्रुर्महात्मनः ॥ ४७ ॥ तामसींभजमानायांयोनिंमातर्यजायत ॥ तमसाचावृतेलोकेतामसोऽयंभविष्यति ॥ ४८ ॥ ततःसतामसस्तेनपित्रासंवर्द्धितोवने ॥ जातबुद्धिरुवाचेदंपितरंमुनिसत्तम ॥ ४९ ॥

आनन्दित हुए थे ॥ ४५ ॥ इस महाबलवान् पुत्रके जन्म लेनेपर विशेषकर राजा आनंदित हुए और वह मृगी भी शापसे छूटकर अति उत्तम लोकको प्राप्त हुई ॥४६॥ हे मुनिसत्तम ! इसके पीछे सब ऋषियोंने आय, उस महात्माकी भविष्यत ऋद्धि देखकर नामकरण किया ॥४७॥ उन्होंने कहा। जगत्के तमः अर्थात् अन्धकारद्वारा आवृत होनेपर यह तामसी योनिके प्राप्त हुई माताके गर्भसे उत्पन्न हुआहै, इस कारण यह बालक "तामस" नामसे विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! वनमें पिताके द्वारा उस तामसने वर्द्धित होकर यथासमयमें बुधिका उदय होनेपर पितासे कहा ॥ ४९ ॥

हे ! तात ! आप कौन हैं ? किस प्रकारसे मैं आपका पुत्र हुआ ? तथा मेरी माता कौन है ? और आप किस निमित्त यहां आये हैं ? यह सब मुझसे सत्य कहो ॥ ५० ॥ उन महाबाहु जगतीपति पिताने, पुत्रके प्रति स्वीयराज्यसे भ्रष्ट होना इत्यादि संपूर्ण विषय यथावत् वर्णन किया ॥ ५१ ॥ उन तामसने पिताके यह सम्मत वचन सुन, भास्करदेवकी आराधना कर निवर्त्तन मंत्रके सहित नाना प्रकारके सब दिव्य अस्त्र मंत्र लाभ किये ॥ ५२ ॥ उन्होंने अस्त्रप्रयोगमें निपुण हो उन शत्रुओंको पराजय कर, पिताके समीप लाय उनकी आज्ञानुसार उनको छोड़ दिया इस प्रकार उन्होंने अपने धर्मकी रक्षा की ॥ ५३ ॥ इसके पीछे उनके पिता भी पुत्रका मुख देख सुखपूर्वक देह छोड तप और यज्ञकी प्रभावसे

कस्त्वंतातकथंत्राहंपुत्रोमाताचकामम ॥ किमर्थमागतश्चत्वमेतत्सत्यंब्रवीहिमे ॥५०॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःपितायथावृत्तंस्वराज्यच्यावनादिकम् ॥ तस्याचष्टेमहाबाहुःपुत्रस्यजगतीपतिः ॥५१॥ श्रुत्वातत्सकलंसोऽपिसमाराध्यचभास्करम् ॥ अवापदिव्यान्यस्त्राणिसमंहाराण्यशेषतः ॥ ५२ ॥ कृतास्त्रस्तानरीञ्जित्वापितुरानीयचान्तिकम् ॥ अनुज्ञातान्मुमोचाथमत्रस्वंधर्ममास्थितः ॥ ५३ ॥ पितापितस्यस्वाँल्लोकांस्तपोयज्ञसमार्जितान् ॥ विसृष्टदेहःसंप्राप्तोदृष्ट्वापुत्रमुखंसुखम् ॥ ५४ ॥ जित्वामसमस्तांपृथिवींतामसाख्यः सपार्थिवः ॥॥ तामसाख्योमनुरभूत्तस्यमन्वन्तरंशृणु ॥ ५५ ॥ येदेवास्तत्पतिर्यश्चदेवेन्द्रोयेतथर्षयः ॥ येपुत्राश्चमनोस्तस्यपृथिवीपरिपालकाः ॥५६॥ सत्यास्तथान्येसुधियःसुरूपाहरयस्तथा ॥ एतेदेवगणास्तत्रसप्तविंशतिकामुने ॥५७॥ महाबलोमहावीर्यःशतयज्ञोपलक्षितः ॥ शिखिरिन्द्रस्तथातेषांदेवानामभवद्विभुः ॥ ५८ ॥ ज्योतिर्धर्मापृथुःकाव्यश्चैत्रोऽग्निर्वलकस्तथा ॥ पीवरश्चतथाब्रह्मन्सप्तसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ५९ ॥

आर्जित स्वर्गादि लोकोंमें चले गये ॥ ५४ ॥ वह तामस नृपति संपूर्ण पृथ्वीको जीतकर तामस नामक मनु हुए थे, उनका मन्वन्तर सुनो ॥ ५५ ॥ उस मन्वतरमें जो जो देवता, देवताओंके अधिपति जो इन्द्र, जो जो ऋषि, और उन मनुके जिन जिन पुत्रोंने पृथ्वीका पालन किया था, सो सुनो ॥५६॥ हे मुने ! इस मन्वन्तरमें सत्य गण, सुधीगण, सुरूपगण और हरिगण, यह चार प्रकारके देवता हैं इनके प्रत्येक गणमें सत्ताईस देवता हैं ॥५७॥ इस मन्वन्तरमें महाबल, महावीर्य शिखी नामक इन्द्र शत यज्ञ करके उन सब देवताओंके प्रभु हुए थे ॥५८॥ हे ब्रह्मन् ! ज्योतिर्धामा,

पृथु, काव्य, चैत्र, अग्नि, बलक और पीवर, यह सात जन सप्तर्षि थे ॥ ५९ ॥ नर, क्षान्ति, शान्त, दान्त, जानु, जंघा इत्यादि मनुके महाबल पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुए ॥ ६० ॥ हे विप्र ! इस प्रकार तामस मन्वन्तरका वृत्तान्त है सो मैंने आपसे वर्णन किया । जो मनुष्य इसको पढेंगे अथवा सुनेंगे, उनको अज्ञानरूपी अंधकार बाधा नहीं देगा ॥ ६१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां तामसमन्वन्तरे एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन् ! अब रैवतनामक विख्यात पांचवें मनुकी उत्पत्तिका वृन्तान्त तुमसे विस्तारसहित वर्णन करता हूं, सुनो ॥ १ ॥ ऋतवाक् नामक विख्यात महाभाग ऋषि पहिले तो अपुत्र थे, फिर रेवतीनक्षत्रके शेषमें उन ऋषिके

नरःक्षान्तिःशान्तदान्तजानुजङ्घादयस्तथा ॥ पुत्रास्तुतामसस्यासन्राजानःसुमहाबलाः ॥ ६० ॥ इत्येतत्तामसंविप्रमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ यःपठेच्छृणुयाद्वापितमसासनबाध्यते ॥ ६१ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेतामसमन्वन्तरेएकसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ॥ ७१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ पंचमोपिमनुर्ब्रह्मन्रैवतोनामविश्रुतः ॥ तस्योत्पत्तिंविस्तरशःशृणुष्वकथयामिते ॥ १ ॥ ऋषिरासीन्महाभागऋतवागितिविश्रुतः ॥ तस्यापुत्रस्यपुत्रोऽभूद्रेवत्यन्तेमहात्मनः ॥ २ ॥ सतस्यविधिवच्चक्रेजातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ तथोपनयनादींश्चसचाशीलोऽभवन्मुने ॥३॥ यतःप्रभृतिजातोऽसौततःप्रभृतिसोऽप्यृषिः ॥ दीर्घरोगपरामर्शमवापमुनिपुङ्गवः ॥ ४ ॥ मातातस्यपरामार्तिंकुष्ठरोगादिपीडिता ॥ जगामसपिताचास्यचिन्तयामासदुःखितः ॥ ५ ॥ किमेतदितिसोऽप्यस्यपुत्रोऽप्यत्यन्तदुर्मतिः ॥ जग्राहभार्यामन्यस्यमुनिपुत्रस्यसंमुखीम् ॥ ६ ॥

एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ २ ॥ हे मुने ! ऋषिने उस पुत्रकी विधिके अनुसार जातकर्मादि क्रिया और उपनयन आदि समस्त क्रिया संपन्न की । किन्तु वह पुत्र शीलवान् नहीं हुआ अर्थात् असच्चरित्र हुआ था ॥ ३ ॥ हे मुनिवर ! जबसे उक्त बालकका जन्म हुआ तबसेही वह ऋषि दिर्घकालव्यापी रोगद्वारा ग्रसित हुये थे, ॥ ४ ॥ उसकी माता भी कुष्ठ (कोड) रोगसे पीड़ित होकर अत्यन्त क्लेश भोगने लगी। तब उसके पिता दुःखित होकर चिन्ता करने लगे ॥ ५ ॥ कि "क्यों ऐसा हुआ ?" अनन्तर उस अत्यन्त दुर्मति पुत्रने एकसमय अन्य एक मुनिके सन्मुख हो उसकी भार्याको हरण किया ॥ ६ ॥

इससे ऋतवाक् ऋषि दुःखित चित्त होकर कहने लगे कि, "मनुष्यकी कुपुत्रतासे अपुत्रता श्रेष्ठ है" ॥७॥ क्योंकि कुपुत्र मातापिताके हृदयमें सदाही कष्ट प्रदान करता है और स्वर्गमें वास करनेवाले अपने पितरोंको भी नीचे गिराता है ॥ ८ ॥ इसके द्वारा सुहृद्गणोंका भी उपकार नहीं होता पितृ पुरुषोंको भी तृप्ति नहीं होती। मातापिताके दुःखका हेतु दुष्कर्मकारी कुपुत्रके जन्मको धिक्कार है ॥९॥ जिसकी संतान सर्व जनादृत (अर्थात् जिसका सब कोई आदर करे) परोपकारी, शान्तप्रकृति और सत्कर्ममें अनुरक्त हैं, वही धन्य हैं ॥ १० ॥ हमारा परलोकपराङ्मुख, कुपुत्रावलंबी और यह मन्द जन्म केवल नरकके ही लिये है सद्गतिके लिये नहीं ॥ ११ ॥ कुपुत्र, सुहृद्गणोंकी दीनता, अपकारी शत्रुओंका आनन्द और अकालमें पिता

ततोविषण्णमनसाऋतवागिदमुक्तवान् ॥ अपुत्रतामनुष्याणांश्रेयसेनकुपुत्रता ॥ ७ ॥ कुपुत्रोहृदयायासंसर्वदाकुरुतेपितुः ॥ मातुश्च स्वर्गसंस्थांश्चस्वपितॄन्पातयत्यधः ॥ ८ ॥ सुहृदांनोपकारायपितॄणांचनतृप्तये ॥ पित्रोर्दुःखायधिग्जन्मतस्यदुष्कृतकर्मणः ॥ ९ ॥ धन्यास्तेतनयायेषांसर्वलोकाभिसंमताः ॥ परोपकारिणःशान्ताःसाधुकर्मण्यनुव्रताः ॥१०॥ अनिर्वृतंतथामन्दंपरलोकपराङ्मुखम् ॥ नरकायनसद्गत्यैकुपुत्रालम्बिजन्मनः ॥ ११ ॥ करोतिसुहृदांदैन्यमहितानांतथामुदम् ॥ अकालेचजरांपित्रोःकुसुतःकुरुतेध्रुवम् ॥१२॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंमत्यन्तदुष्टस्यपुत्रस्यचरितैर्मुनिः ॥ दह्यमानमनोवृत्तिर्वृत्तंगर्गमपृच्छत ॥१३॥ ऋतवागुवाच ॥ सुव्रतेनपुरावेदागृहीताविधिवन्मया ॥ समाप्यवेदान्विधिवत्कृतोदारपरिग्रहः ॥१४॥ सदारेणक्रियाःकार्याःश्रौताःस्मार्त्तावषट्क्रियाः ॥ नमेन्यूनाः कृताःकाश्चिद्यावदद्यमहामुने ॥ १५ ॥ गर्भाधानविधानेननकाममनुरुध्यता ॥ पुत्रार्थंजनितश्चायंपुन्नाम्नोबिभ्यतामुने ॥ १६ ॥

माताकी जरा (बुढापा) निश्चय ही संपादन करता है ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन ऋषिने अत्यन्त दुष्टचारित्र पुत्रके कुव्यवहारसे इस प्रकार मनमें दग्ध हो सब वृत्तान्त कह कर गर्गऋषिसे इस भांति पूछा ॥ १३ ॥ ऋतवाक्ने कहा " पूर्वमें मैंने सद्व्रतोंमें रत होकर यथाविधि वेद पढे हैं, और वेद पढनेके पीछे विधिपूर्वक स्त्री ग्रहण की है ॥१४॥ हे महामुने ! श्रौत, स्मार्त और वषट्कार क्रियास्वरूप जो सब कार्य भार्याके सहित करने चाहिये, स्त्री ग्रहण करने तकसे आज पर्यन्त उन सब व्रतके किसी अनुष्ठानमें त्रुटि नहीं की है ॥ १५ ॥ हे मुने ! मैंने पुन्नाम नरकके भयसे भीत होकर रक्षा पानेके लिये गर्भाधान विधानानुसारकर इस पुत्रको उत्पन्न किया है, कामानुरुद्ध होकर पुत्र उत्पन्न नहीं किया ॥१६॥

॥

हे मुने ! तो भी यह बालक जो हमको दुःखदेनेवाला और दुःस्वभावयुक्त बन्धुगणोंको शोकप्रद होकर उत्पन्न हुआ है, यह क्या अपने आत्मदोषसे अथवा मेरे दोषसे ? ऐसा है" ॥ १७ ॥ गर्गजी बोले -हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम्हारे पुत्रने रेवतीके अन्तमें जन्म ग्रहण किया है, यहदुष्ट कालमें जन्मा है, इसी कारण तुमको दुःख देता है ॥ १८ ॥ यह तुम्हारे वा तुम्हारी स्त्रीके, अथवा तुम्हारे वंशके स्वधर्मके व्यतिक्रमका फल नहीं है रेवतीका अन्त भाग ही इसके दुःस्वभावका कारण है ॥ १९ ॥ ऋतवाक्‌ने कहा--जब कि, रेवतीके अन्तमें जन्म होनेके कारण मेरे एक मात्र पुत्रका यह दुःस्वभाव हुआ है,इसी निमित्त वह रेवती शीघ्र पतित हो ॥२०॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब उन ऋतवाक्‌ने

सोयंकिमात्मदोषेणममदोषेणवामुने ॥ अस्मद्दुःखावहोजातोदौःशील्याद्बन्धुशोकदः ॥ १७ ॥ ॥ गर्गउवाच ॥ रेवत्यन्तेमुनिश्रेष्ठ जातोऽयंतनयस्तव ॥ तेनदुःखायतेदुष्टेकालेयस्मादजायत ॥ १८ ॥ नतेऽपचारोनैवास्यमातुर्नायंकुलस्यते ॥ तस्यदौःशील्यहेतुत्वं रेवत्यन्तमुपागतम् ॥ १९ ॥ ऋतवागुवाच ॥ ॥ यस्मान्ममैकपुत्रस्यरेवत्यन्तसमुद्भवम् ॥ दौःशील्यमेतत्सातस्मात्पततामाशुरेवती ॥ २० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तेनैवंव्याहृतेशापेरेवत्यृक्षंपपातह ॥ पश्यतःसर्वलोकस्यविस्मयाविष्टचेतसः ॥ २१ ॥ रेवत्यृक्षंचपतितंकुमुदाद्रौसमन्ततः ॥ भासयामाससहसावनकन्दरनिर्झरान् ॥ २२ ॥ कुमुदाद्रिश्चतत्पातात्ख्यातोरैवतकोऽभवत् ॥ अतीवरम्यःसर्वस्यांपृथिव्यांपृथिवीधरः ॥ २३ ॥ तस्यर्क्षस्यतुयाकान्तिर्जातापङ्कजिनीसरः ॥ ततोजज्ञेतदाकन्यारूपेणातीवशोभना ॥ २४ ॥

यह शाप दिया तब मनुष्योंके सामने ही रेवतीनक्षत्रको पतित हुआ देखकर सबका ही चित्त आश्चर्ययुक्त हुआ[1] ॥ २१ ॥ उस रेवती नक्षत्रने कुमुदपर्वतमें गिरकर उसकी चारों दिशाके वन, कन्दरा और झरने इन सबको सहसाप्रकाशित किया ॥ २२ ॥ संपूर्ण पृथ्वीमें अत्यन्त मनोहर कुमुद पर्वत भी उसके गिरनेके कारण "रैवतक" नामसे विख्यात हुआ ॥ २३ ॥ उस नक्षत्रकी कान्तिसे पंकजयुक्त सरोवर हुआ और उस सरोवरसे अत्यन्त स्वरूपवान् एक कन्याने जन्म ग्रहण किया ॥ २४ ॥

---

१ यह रेवती देवी पतित हुई थी ।

हे भागुरे ! प्रमुचमुनिने उस कन्याको रेवतीकी कान्तिसे उत्पन्न हुआ देखकर उसका नाम 'रेवती' रक्खा ॥ २५ ॥ वह महाभाग प्रमुच रैवतक पर्वतमें अपने आश्रमके समीप उत्पन्नहुई कन्याका प्रतिपालन करने लगे ॥ २६ ॥ फिर वह मुनि उस रूपशालिनी कन्याको यौवनसंपन्न देख कर "कौन इसका भर्त्ता होगा" यह चिंता करने लगे ॥ २७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार चिंता करते करते उनको बहुत दिन बीत गये, किन्तु उन महामुनिको उनके समान वर नहीं मिला ॥ २८ ॥ अनन्तर प्रमुचमुनि अग्निसे उसके वरविषयको पूछनेके लिये वह्निशालामें गये वहां मुनिके पूछनेपर हुताशनने मुनिसे कहा ॥ २९ ॥ कि, महाबल महावीर्य, प्रियवादी, धर्मवत्सल, दुर्गमनामक पृथ्वीपति इसका भर्त्ता होगा॥३०॥

रेवतीकान्तिसम्भूतांतांदृष्ट्वाप्रमुचोमुनिः ॥ तस्यानामचकारेत्थंरेवतीनामभागुरे॥ २५ ॥ पोषयामासचैवतांस्वाश्रमाभ्याशसम्भवाम् ॥ प्रमुचःसमहाभागस्तस्मिन्नेवमहाचले ॥ २६ ॥ तांतुयौवनिनींदृष्ट्वाकन्यकांरूपशालिनीम् ॥ समुनिश्चिन्तयामासकोऽस्याभर्ताभवे दिति ॥ २७ ॥ एवंचिन्तयतस्तस्यययौकालोमहान्मुने ॥ नचाससादसदृशंवरंतस्यामहामुनिः ॥ २८ ॥ ततस्तस्यावरंप्रष्टुमग्निंसप्र मुचोमुनिः ॥ विवेशवह्निशालांवैपृष्टस्तंप्राहहव्यभुक् ॥ २९ ॥ महाबलोमहावीर्यःप्रियवाग्धर्मवत्सलः ॥ दुर्गमोनामभर्तावैनाभर्त्ता ह्यस्यामहीपतिः ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अनन्तरञ्चमृगयाप्रसङ्गेनागतोमुने ॥ तस्याश्रमपदंधीमान्दुर्गमःसनराधिपः ॥ ३१ ॥ प्रियव्रतान्वयभवोमहाबलपराक्रमः॥पुत्रोविक्रमशीलस्यकालिन्दीजठरोद्भवः ॥३२॥ सप्रविश्याश्रमपदंतांतन्वींजगतीपतिः॥ अपश्य मानस्तमृषिंप्रियेत्यामन्त्र्यपृष्टवान् ॥३३॥ राजोवाच ॥ ॥ क्वगतोभगवानस्मादाश्रमान्मुनिपुङ्गवः ॥ तंप्रणन्तुमिहेच्छामितत्त्वंप्रब्रूहि शोभने ॥३४॥ मार्कण्डेयउवाच ॥॥ अग्निशालांगतोविप्रस्तच्छ्रुत्वातस्यभाषितम् ॥ प्रियेत्यामन्त्रणंचैवनिश्चक्रामत्वरान्वितः॥३५॥

मार्कण्डेयजी बोले -हे मुने ! अनंतर स्वायम्भुवमनुके ज्येष्ठपुत्र, प्रियव्रतके वंशमें जन्मे विक्रमशीलराजाकी कालिन्दीनामक महिषीके गर्भसे उत्पन्न, बुद्धिमान् महाबलपराक्रमशाली वह नराधिपति दुर्गम मृगया खेलते हुए मुनिके उस आश्रमपदमें उपस्थित हुए थे ॥३१॥३२॥ वह भूमिपति आश्र ममें प्रवेशपूर्वक ऋषिका दर्शन न पाया उस कृशाङ्गी कन्याको प्रिया कहकर पूछने लगे॥३३॥हे सुन्दरी ! वह भगवान् मुनिश्रेष्ठ इस आश्रमसे कहां गये हैं ? सो तुम कहो मैं उनको प्रणाम करनेकी इच्छा करताहूं॥३४॥मार्कण्डेयजी बोले--वह अग्निशालामें गये हुए विप्र राजाका कहा यह वचन

और "प्रिया" यह संबोधन सुनकर शीघ्र निकले॥३५॥उन मुनिने निकलतेही प्रथम नरेन्द्र चिह्नसहित विनयसे नम्र हुए महात्मा राजा दुर्गमको देखा ॥३६॥ उन्होंने उनको देखनेके पीछे गौतम नामक शिष्यसे कहा "हे गौतम ! इन भूपालके लिये शीघ्र अर्घ्य लाओ ॥ ३७ ॥ एक तो यह राजा बहुत दिनोंके पीछे आश्रममें आये हैं, इस परभी फिर यह जामाता हैं अत एव मेरे मतसे यह यथार्थ ही अर्घ्यके योग्य पात्र हैं" ॥३८॥मार्कण्डेयजीबोले।--तदनंतर राजा, ऋषिके जामाता कहनेके कारणकी चिंता करने लगे, किंतु कुछ नहीं समझसके, तब नृपतिने मौनाव लम्बनपूर्वक वह अर्घ्य ग्रहण किया ॥ ३९ ॥ उन महामुनि विप्रने आसनपर बैठेहुए अर्घ्यग्रहणकारी राजेन्द्रसे पूछा हे नरेश्वर।आप कुशलसे तो

सददर्शमहात्मानंराजानंदुर्गमंमुनिः ॥ नरेन्द्रचिह्नसहितंप्रश्रयावनतंपुरः ॥३६॥ तस्मिन्दृष्टेततःशिष्यमुवाचसतुगोतमम् ॥ गौतमानीयतांशीघ्रमर्घोऽस्यजगतीपतेः ॥ ३७ ॥ एकस्तावदयंभूपश्चिरकालादुपागतः ॥ जामाताचविशेषेणयोग्योऽर्घस्यमतोमम ॥३८॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसचिन्तयामासराजाजामातृकारणम् ॥ त्विवेदचनतन्मौनीजगृहेऽर्घंचतन्नृपः ॥ ३९ ॥ तमासनगतंविप्रो गृहीतार्घमहामुनिः ॥ स्वागतंप्राहराजेन्द्रमपितेकुशलंगृहे ॥ ४० ॥ कोशेबलेऽथमित्रेषुभृत्यामात्येनरेश्वर ॥ तथात्मनिमहाबाहोयत्र सर्वंप्रतिष्ठितम् ॥ ४१ ॥ पत्नीचतेकुशलिनीयतएवानुतिष्ठति ॥ पृच्छाम्यस्यास्ततोनाहंकुशलिन्योऽपरास्तव ॥ ४२ ॥ राजोवाच ॥ ॥ त्वत्प्रसादादकुशलंनकचिन्ममसुव्रत ॥ जातकौतूहलश्चास्मिममभार्य्यात्रकामुने ॥ ४३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ रेवतीसुमहाभागात्रैलोक्यस्यापिसुन्दरी ॥ तवभार्य्यावरारोहातांत्वंराजन्नवेत्सिकिम् ॥ ४४ ॥

आये हैं ? हे महाबाहो ! आपके गृह कोशागार (खजाना) सैन्यगण, मित्रगण, एवं भृत्यगण और आमात्यगणकी कुशलता है ? आप सबके अवलम्बन स्थानके आपकी भी कुशलता है ? ॥ ४० ॥ ४१ ॥ आपकी पत्नी यहां कुशलपूर्वक अवस्थान करती है इसीसे मैंने उसके विषयमें नहीं पूछा। इसके अतिरिक्त आपके पुरकी अन्य स्त्रियें कुशलिनी तो हैं ॥ ४२ ॥ राजा बोले—हे सत्यनारायण ! आपके प्रसादसे मेरी किसी प्रकार अकुशल नहीं है, किन्तु हे मुने ! इस स्थानमें मेरी भार्या कौन है ? यह जाननेके लिये मुझको कौतूहल उत्पन्न हुआ है ॥ ४३ ॥ ऋषिने कहा हे राजन् ! रेवती नामक महाभागा त्रैलोक्य सुन्दरी वरारोहा आपकी भार्या है, उसको क्या आप नहीं जानते हैं ? ॥ ४४ ॥

राजाने कहा हे विभो ! सुभद्रा, शान्ततनया, कावेरी तनया, सुराष्ट्रजा, सुजाता, कदम्बा, वरूथजा ॥ ४५ ॥ विपाठा और नंदिनी इन प्रत्येकको भार्या जानता हूं, हे द्विज ! वह हमारे ही घर वास करतीं हैं किंतु हे भगवन् ! इस रेवती नामक भार्याको मैं नहीं जानता, यह कौन है ? ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले--हे भूपाल ! अभी जिस वरवर्णिनीको "प्रिया" कहकर आपने संबोधन किया है, वह वरवर्णिनी ही आपकी श्लाघनीय गृहणी है आप क्या भूल गये ? ॥ ४७ ॥ राजाने कहा हे मुने ! सत्य ही मैंने यह कहा है किन्तु मेरे इस वचनमें मेरा दुष्टभाव नहीं है, आप इसके कारण मेरे प्रति कोप न करें यही प्रार्थना है ॥ ४८ ॥ ऋषि बोले--हे भूपाल ! आपने कहा कि, "मेरा भाव दूषित

॥ राजोवाच ॥ ॥ सुभद्रांशान्ततनयांकावेरीतनयांविभाम् ॥ सुराष्ट्रजांसुजातांचकदम्बांचवरूथजाम ॥ ४५ ॥ विपाठांनन्दिनीं चैववेद्मिभार्यांगृहेद्विज ॥ तिष्ठन्तिमेनभगवन्रेवतीवेद्मिकान्वियम् ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ प्रियेतिसाम्प्रतंयेयंत्वयोक्तावरवर्णिनी किंविस्मृतंतेभूपालश्लाघ्येयंगृहिणीतव ॥ ४७ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सत्यमुक्तंमयाकिन्तुभावोदुष्टोनमेमुने ॥ नात्रकोपंभवान्कर्तुमर्हत्यस्मासुयाचितः ॥ ४८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ यत्त्वंब्रवीषिभूपालनभावस्तवदूषितः ॥ व्याजहारभवानेतद्वह्निनानृपचोदितः ॥ ४९ ॥ मयापृष्टोहुतवहःकोऽस्याभर्त्तेतिपार्थिव ॥ भवितातेनचाप्युक्तोभवानेवद्यवैवरः ॥ ५० ॥ तद्गृह्यतांमयादत्तातुभ्यंकन्यानराधिप ॥ प्रियेत्यामन्त्रिताचेयंविचारंकुरुषेकथम् ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोऽसावभवन्मौनीतेनोक्तःपृथिवीपतिः ॥ ऋषिस्तथोद्यतःकर्तुतस्यावैवाहिकंविधिम् ॥ ५२ ॥

नहीं है" यह सत्य है, किन्तु हे नृपते ! यह आपने अग्निकी प्रेरणासे ही कहा है ॥ ४९ ॥ हे पृथ्वीपते ! मैंने अग्निसे पूछा था "कौन इसका पति होगा" हे भूपाल ! "आप ही अब इसके पति होंगे" अग्निने यही कहा था ॥ ५० ॥ अतएव हे नराधिपते ! जिसको आपने प्रिया कहकर संबोधन किया है, मैं आपको वही कन्या देता हूं, ग्रहण कीजिये, आप विचार क्यों करते हैं ॥ ५१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तदनंतर वह राजा ऋषिके इस प्रकार कहनेपर मौन होगये। तब ऋषि उस कन्याके विवाहकी विधि संपादन करनेमें उद्यत हुए ॥ ५२ ॥

हे महामुने ! पिताको विवाह करनेमें उद्यत देखकर विनयसे (मस्तक झुकाये हुए) कन्याने संक्षेपसे कहा ॥ ५३ ॥ हे तात ! यदि मुझमें आपकी प्रीति हो, तो मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आप प्रसन्न होकर रेवती नक्षत्रमें मेरा विवाह कार्य संपन्न कीजिये ॥ ५४ ॥ ऋषि बोले हे भद्रे ! रेवती नक्षत्र चन्द्रयोगी होकर स्थित नहीं है, इसके अतिरिक्त विवाहमें अन्य सब श्रेष्ठ नक्षत्र वर्त्तमान हैं॥५५॥कन्या बोली–हे तात । वह रेवतीनक्षत्र वर्जित काल मेरे सम्बन्धमें विकल बोध होता है,मेरी समान कन्याका विवाह विकलकालमें किस प्रकार होगा ?॥५६॥ऋषिने कहा--पूर्वमें ऋतवाक् नामक विख्यात तपस्वीने रेवतीनक्षत्रके प्रति कुपित होकर उक्त नक्षत्रको आकाशसे गिरा दिया है ॥५७॥ मैंने इसके पहिले राजासे प्रतिज्ञा करी

तमुद्यतंसापितरंविवाहायमहामुने ॥ उवाचकन्यायत्किंचित्प्रश्रयावनतानना ॥ ५३ ॥ यदिमेप्रीतिमांस्तातप्रसादंकर्तुमर्हसि ॥ रेवत्यृक्षेविवाहंमेतत्करोतुप्रसादितः ॥ ५४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ रेवत्यृक्षंनवैभद्रेचन्द्रयोगिव्यवस्थितम् ॥ अन्यानिसन्तिऋक्षाणिसुभ्रु वैवाहिकानिते ॥ ५५ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ तात तेनविनाकालोविफलःप्रतिभातिमे ॥ विवाहोविफलेकालेमद्विधायाःकथंभवेत् ॥५६॥ ऋषिरुवाच ॥ ऋतवागितिविख्यातस्तपस्वीरेवतींप्रति ॥ चकारकोपंक्रुद्धेनतेनर्क्षंविनिपातितम् ॥५७॥ मयाचास्मैप्रतिज्ञाताभार्येतिम दिरेक्षणा ॥ नचेच्छसिविवाहंत्वंसंकटंनःसमागतम् ॥५८॥ कन्योवाच ॥ ऋतवाक्समुनिस्तातकिमेवंतप्तवांस्तपः ॥ नत्वयाममतातेन ब्रह्मबन्धोःसुतास्मिकिम् ॥५९॥ ऋषिरुवाच ॥ ब्रह्मबन्धोःसुतानत्वंबालेनैवतपस्विनःसुतात्वंममयोदेवान्कर्त्तुमन्यान्समुत्सहे ॥६०॥ कन्योवाच ॥ तपस्वीयदिमेतातस्तत्किमृक्षमिदंदिवि ॥ समारोप्यविवाहोमेतदृक्षेक्रियतेनतु ॥ ६१ ॥

है कि, इस मदिरेक्षणाको भार्यारूपमें तुम्हें प्रदान करूंगा, किन्तु तुम इस समय विवाहकरनेमें सम्मत नहीं होती हो,इस कारण मुझको संकट उपस्थित हुआ है ॥ ५८ ॥ कन्या बोली हे तात ! उन ऋतवाक् मुनिने ऐसी क्या तपस्या की है, जो मेरे पिता आपके द्वारा वैसी तपस्या साधित नहीं हुई, तो मैं क्या ब्रह्मबन्धुकी कन्याहूं ? ॥ ५९ ॥ ऋषिने कहा–हे बाले ! तुम ब्राह्मणाधमकी कन्या नहीं हो और सामान्य तपस्वीकी कन्याभी नहींहो, जो ऋषि अन्य देवताओंके उत्पन्न करनेमें समर्थ है, तुम उसी मुझ ऋषिकी कन्या हो ॥ ६० ॥ कन्या बोली । यदि मेरे पिता ऐसे तपस्वी हैं, तो रेवती नक्षत्रको आकाशमें स्थितकर उस नक्षत्रमें मेरा विवाहकार्य सम्पादन क्यों नहीं करते ? ॥ ६१ ॥

॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंभवतुभद्रन्तेभद्रेप्रीतिमतीभव ॥ आरोपयामीन्दुमार्गेरेवत्यृक्षंकृतेनव ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तपः प्रभावेणरेवत्यृक्षंमहामुनिः ॥ यथापूर्वन्तथाचक्रेसोमयोगिद्विजोत्तम ॥ ६३ ॥ विवाहञ्चैवदुहितुर्विधिवन्मन्त्रयोगिनम ॥ निष्पाद्य प्रीतिमान्भूयोजामातरमथाब्रवीत् ॥ ६४ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ औद्वाहिकंतेभूपालकथ्यतांकिंददाम्यहम् । दुर्लभ्यमपिदास्यामिम माप्रतिहतंतपः ॥ ६५ ॥ राजोवाच ॥ ॥ मनोस्वायम्भुवस्याहमुत्पन्नःसन्ततौमुने ॥ मन्वन्तराधिपंपुत्रंत्वत्प्रसादाद्वृणोम्यहम् ॥ ॥ ६६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ भविष्यत्येषतेकामोमनुस्त्वत्तनयोमहीम् ॥ सकलांभोक्ष्यतेभूपधर्मविच्चभविष्यति ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तामादायततोभूपःस्वमेवनगरंययौ ॥ तस्मादजायतसुतोरेवत्यांरैवतोमनुः ॥ ६८ ॥ समेतःसकलैर्धर्मैर्मानवैरपरा जितः ॥ विज्ञाताखिलशास्त्रार्थोवेदविद्यार्थशास्त्रवित् ॥ ६९ ॥ तस्यमन्वन्तरेदेवान्मुनिदेवेन्द्रपार्थिवान् ॥ कथ्यमानान्मयाब्रह्मन्नि बोधसुसमाहितः ॥ ७० ॥

ऋषिने कहा हे भद्रे ! ऐसा ही हो, तुम्हारा मंगल हो, अब प्रीतिमती होओ, मैं तुम्हारे निमित्त रेवती नक्षत्रको चन्द्र मार्गमें स्थित करूंगा ॥ ६२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे द्विजोत्तम ! इसके उपरान्त उन महामुनि प्रमुचने तपस्याके प्रभावसे रेवती नक्षत्रको पूर्वके समान चंद्रसंयुक्त किया ॥ ६३ ॥ फिर यथाविहित मंत्रोंके द्वारा दुहिताका विवाह कार्य संपन्न करके अत्यन्त प्रसन्न चित्त हो जामातासे कहने लगे ॥ ६४ ॥ ऋषिने कहा--हे भूपाल ! मैं विवाहका यौतुक स्वरूप तुमको क्या दूं ? सो कहो। तुम्हारी मांगी हुई दुर्लभ वस्तु भी मैं अप्रतिहत तपके प्रभावसे तुम्हें दूंगा ॥ ६५ ॥ राजा बोले हे मुने ! मैंने स्वायम्भुव मनुके वंशमें जन्म ग्रहण किया है, आपके प्रसादसे मन्वन्तराधिपति पुत्र प्राप्त करूं यही मेरी प्रार्थना है ॥ ६६ ॥ ऋषिने कहा -हे भूप ! तुम्हारी कामना पूर्ण होगी तुम्हारा पुत्र मनु होकर संपूर्ण पृथ्वीका भोग करेगा और धर्मज्ञ होगा ॥ ६७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले ! इसके पीछे वह राजा भार्या रेवतीके सहित अपनी राजधानीमें चले गये। अनन्तर रेवतीके गर्भसे रैवतमनुने जन्म ग्रहण किया ॥ ६८ ॥ यह धर्मोंके जाननेवाले मनुष्योंसे अपराजित, संपूर्ण शास्त्रार्थमें पारगामी, और वेदविद्या और अर्थ शास्त्रके ज्ञाता हुए थे ॥ ६९ ॥ हे ब्रह्मन् ! उनके मन्वन्तरके देवता, मुनि, इंद्र और भूपालगणका विषय कहता हूं,सावधान होकर सुनो ॥७०॥

हे द्विज ! देवगण, सुमेधा, भूपति, वैकुण्ठ और अभिमताभ, यह चार गण मुक्त हैं प्रत्येक गणमें चौदह देवता हैं ॥ ७१ ॥ उन चार गणमुक्त देवताओंके अधिपति शतयज्ञकारी विभु नामक इन्द्र थे ॥ ७२ ॥ हिरण्यरोमा, वेदश्री, ऊर्ध्वबाहु, सुधामा महामुनि पर्ज्जन्य ॥ ७३ ॥ और वेदवेदांगपारगामी महाभाग वसिष्ठ रैवत मन्वन्तरमें यह सप्तर्षि थे ॥ ७४ ॥ बलबन्धु, महावीर्य सुयष्टव्य और सत्यक इत्यादि रैवतमनुके पुत्र थे ॥ ७५ ॥ रैवत मनुपर्यन्त जिन समस्त मनुगणोंका विषय मैंने तुमसे कहा, स्वारोचिष मनुके अतिरिक्त यह सब ही स्वायंभुव मनुके वंशमें उत्पन्न हुए थे ॥ ७६ ॥ जो मनुष्य इस उत्तम आख्यानको नित्य सुनते हैं, वा पढ़ते हैं, वह संपूर्ण पापोंसे छूटकर अभिलाषितलोकको प्राप्त

सुमेधसस्तत्रदेवास्तथाभूतनयाद्विज ॥ वैकुण्ठश्चामिताभाश्चचतुर्दशचतुर्दश ॥ ७१ ॥ तेषांदेवगणानांतुचतुर्णामपिचेश्वरः ॥ नाम्ना विभुरभूदिन्द्रःशतयज्ञोपलक्षकः ॥ ७२ ॥ हिरण्यलोमावेदश्रीरूर्ध्वबाहुस्तथापरः ॥ वेदबाहुःसुधामाचपर्जन्यश्चमहामुनिः ॥ ७३ ॥ वसिष्ठश्चमहाभागोवेदवेदांगपारगः ॥ एतेसप्तर्षयश्चासन्रैवतस्यान्तरेमनोः ॥ ७४ ॥ बलबन्धुर्महावीर्यःसुयष्टव्यस्तथापरः ॥ सत्यकाद्यास्तथैवासन्रैवतस्यमनोःसुताः ॥ ७५ ॥ रैवतान्तास्तुमनवःकथितायेमयातव ॥ स्वायम्भुवाश्रयाह्येतेस्वारोचिषमृतेमनुम् ॥ ॥ ७६ ॥ (यएषांशृणुयान्नित्यंपठेदाख्यानमुत्तमम् ॥ विमुक्तःसर्वपापेभ्योलोकंप्राप्नोत्यभिप्सितम् ॥ ७७ ॥) इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरैवतमन्वन्तरेद्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्येतत्कथितंतुभ्यंपञ्चमंमन्वन्तरंमया ॥ चाक्षुषस्यमनोः षष्ठंश्रूयतामिदमन्तरम् ॥ १ ॥ अन्यजन्मनिजातोऽसौचक्षुषःपरमेष्ठिनः ॥ चाक्षुषत्वमतस्तस्यजन्मन्यस्मिन्नपिद्विज ॥ २ ॥ (अनमित्रस्यराजर्षेर्भद्राभार्यामहात्मनः ॥ जज्ञेसुतंसुविद्वांसंशुचिंजातिस्मरंविभुम् ॥ ३ ॥)

होते हैं ॥ ७७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रैवतमन्वन्तरे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे द्विजोत्तम ! यह पांच मन्वन्तरका विषय तुमसे वर्णन किया अब चाक्षुष मनुके छठे मन्वन्तरका वृत्तान्त कहता हूं, सुनो ॥ १ ॥ हे द्विज ! अन्य जन्ममें यह परमेष्ठी ब्रह्माजीके चक्षुसे उत्पन्न हुए थे, इसी कारण इस जन्ममें भी उनका नाम चाक्षुष हुआ ॥ २ ॥ (महात्मा राजर्षि अनमित्रकी भद्रा नामक भार्याने विद्वान्, शुचि, जातिस्मर, और विभु गुणयुक्त एक पुत्र उत्पन्न किया) ॥ ३ ॥

अपनी गोदीमें बैठे हुए उस नवीन उत्पन्न पुत्रका आदर करके जननीने फिर आनन्दमें भरकर आलिंगन किया। तदनन्तर फिर आदर करने लगी ॥ ४ ॥ इससे माताकी गोदीमें स्थित उस जातिस्मर पुत्रने हास्य किया तब माता अत्यन्त क्रोधित होकर उससे कहने लगी ॥ ५ ॥ हे वत्स ! मैं भीत हुई हूं, तुम्हारे वदनमें हँसी कैसी है इस बालकपनमें ज्ञानोत्पन्न करके क्या कोई शुभ देखते हो ? ॥ ६ ॥ माताके यह वचन सुनकर पुत्र हँसकर कहने लगा) पुत्र बोला--सन्मुख मार्जारी जो मुझको भक्षण करनेकी इच्छा करती है, यह क्या तुम नहीं देखती हो ? और यह जात हारिणी जो गुप्तभावसे विद्यमान है, इसको भी क्या नहीं जान सकती ॥ ७ ॥ जब तुमने पुत्र प्रीतिद्वारा स्नेहमती होकर

जातंमातानिजोत्सङ्गेस्थितमुल्लाप्यतंपुनः ॥ परिष्वजतिहार्देनपुनरुल्लापयत्यथ ॥ ४ ॥ जातिस्मरःसजातोवैमातुरुत्सङ्गमास्थितः ॥ जहासतंतदामातासंक्रुद्धावाक्यमब्रवीत् ॥ ५ ॥ भीतास्मिकिमिदंवत्सहासोयद्वदनेतव ॥ अकालबोधसम्भूतःकच्चित्पश्यसिशोभनम् ॥ ६ ॥ (तन्मातुर्वचनंश्रुत्वाप्रहस्येदमथाब्रवीत्) पुत्रउवाच ॥ मामत्तुमिच्छतिपुरोमार्जारीकिंनपश्यसि ॥ अन्तर्द्धानगताचेयं द्वितीयाजातहारिणी ॥ ७ ॥ पुत्रप्रीत्याचभवतीसहार्दामामवेक्षती ॥ उल्लाप्योल्लाप्यबहुशःपरिष्वजनिमांयतः ॥ ८ ॥ उद्भूतपुलकास्नेहसम्भवास्राविलेक्षणा ॥ ततोममागतोहासःशृणुचाप्यत्रकारणम् ॥ ९ ॥ स्वार्थप्रसक्तामार्जारीप्रसक्तंमामवेक्षते ॥ तथान्तर्द्धानगाचैवद्वितीयाजातहारिणी ॥ १० ॥ स्वार्थायस्निग्धहृदयेयथैवैतेममोपरि ॥ प्रवृत्तस्वार्थमास्थायतथैवप्रतिभासिमे ॥ ११ ॥ किन्तुमदुपभोगायमार्जारीजातहारिणी ॥ त्वन्तुक्रमेणोपभोग्यंमत्तःफलमभीप्ससि ॥ १२ ॥

मुझको देखते देखते पुलकायमान और स्नेहसे प्रगट आँसुओंके द्वारा नेत्रोंको पूर्णकर वारम्वार आदरपूर्वक मुझको आलिंगन किया, तब मुझको हँसी आगई, अब उसका कारण कहता हूं, सुनो ॥ ८ ॥ ९ ॥ मार्जारी और दूसरी छिपी हुई जात हारिणी अपने अर्थमें आसक्त होकर मुझको स्वार्थमें तत्पर होकर देखती हैं ॥ १० ॥ यह दोनों जिस प्रकार स्वार्थके लिये मेरे प्रति नम्र हृदयवाली हुई हैं, तुमभी उसी प्रकार स्वार्थके निमित्त मेरे प्रति स्नेहवती हुई हो, मुझको यही बोध होता है ॥ ११ ॥ यह मार्जारी और जातहारिणी मुझको भोजन करनेके लिये हरण करेंगी, किन्तु तुम मुझसे क्रमशः अभिलाषित उपभोग्य काल प्राप्त करनेकी कामना करती हो ॥ १२ ॥

मुझको जानती नहीं हो, मैं कौन हूं ! मैंने तुम्हारा कोई उपकार भी नहीं किया है, बहुत दिनोंका मिलन भी नहीं है, केवल पांच सात दिन माता पुत्ररूपमें मिलन हुआ है ॥ १३ ॥ किन्तु तो भी नेत्रोंमें आँसू भरकर मुझसे स्नेह करती हो, अलिंगन करती हो और अकपट हृदयसे मुझको "हे तात ! हे वत्स ! ! हे भद्र ! ! ! इस प्रकार कहती हो ॥ १४ ॥ माता बोली--हे वत्स ! उपकारकी आशासे मैं तुमको आलिंगन नहीं करती हूं, इस आलिङ्गन और खिलाने आदिके द्वारा यदि तुम्हारी प्रीतिका संचार नहीं होता, अर्थात् तुम प्रसन्न नहीं होते, तो मुझको परित्याग करो ॥१५॥ तुमसे मेरा जो स्वार्थ सिद्ध होगा, मैंने भी उसको परित्याग किया । इस प्रकार कहकर प्रसूति जड़वत् बाह्ये

नमांजानासिकोप्येषनचैवोपकृतंमया ॥ सङ्गतंनातिकालीनंपंचसप्तदिनात्मकम् ॥ १३ ॥ तथापिस्निह्यसेसास्रापरिष्वजसिचाप्यति ॥ तातेतिवत्सभद्रेतिनिर्व्यलीकंब्रवीषिमाम् ॥ १४ ॥ मातोवाच ॥ नत्वाहमुपकारार्थंवत्सप्रीत्यापरिष्वजे ॥ नचेदेतद्भवत्प्रीत्यैपरित्यक्तास्म्यहंत्वया ॥ १५ ॥ स्वार्थोमयापरित्यक्तोयस्त्वत्तोमेभविष्यति ॥ इत्युक्त्वासातमुत्सृज्यनिष्क्रान्तासूतिकागृहात् ॥ १६ ॥ जडाङ्गबाह्यकरणंशुद्धान्तःकरणात्मकम् ॥ जहारतंपरित्यक्तंसातदाजातहारिणी ॥ १७ ॥ साहित्वातंतदाबालंविक्रान्तस्यमहीभृतः ॥ प्रसूतपत्नीशयनेन्यस्यतस्याददेसुतम् ॥ १८ ॥ तमप्यन्यगृहेन्नीत्वगृहीत्वातस्यचात्मजम् ॥ तृतीयंभक्षयामाससाक्रमाज्जातहारिणो॥ ॥ १९ ॥ हृत्वाहृत्वातृतीयंतुभक्षयत्यतिनिर्घृणा ॥ करोत्यनुदिनंसातुपरिवर्ततथान्ययोः ॥ २० ॥ विक्रान्तोऽपिततस्तस्यसुतस्यैवमहीपतिः ॥ कारयामाससंस्कारान्राजन्यस्यभवन्तिये ॥ २१ ॥

न्द्रियसपन्न और विशुद्ध अन्तःकरण उस पुत्रको परित्याग करके सूतिकागृह (सोवर)से निकली। तदनन्तर जातहारिणीने उस माताके त्यागे हुए पुत्रको हरण किया॥१६॥१७॥जातहारिणीने इस बालकको हरण करके विक्रान्त नामक महीपालकी पत्नीकी शय्यामें स्थानपूर्वक उसका नवप्रसूत पुत्र हरण किया ॥१८॥ उस जात हारिणीने उस राजपुत्रको भी अन्यके घर रख, उसके पुत्रको हरण कर अन्तमें तीसरेको भक्षण किया ॥ ॥ १९ ॥ अत्यन्त निर्दयी वह जातहारिणी प्रतिदिन इस प्रकार नवप्रसूत बालक हरणपूर्वक प्रथम दोका परिवर्त्तन करके तीसरेको भक्षण करती थी ॥ २० ॥ इसके पीछे उन महीपती विक्रान्तने, क्षत्रियोंके जो जो संस्कार हैं, उस परिवर्त्तित पुत्रके भी वह वह सब संस्कार किये ॥ २१ ॥

विक्रान्त नरपति अत्यन्त आनन्दित हुए थे, इस कारण विधानानुसार "आनंद" इस नामसे पुत्रका नामकरण किया॥ २२ ॥ गुरुजीने उस यज्ञोपवीत किये कुमारसे जननीके समीप जाकर प्रथम प्रणाम करनेको कहा ॥ २३ ॥ आनंद गुरुजीका वचन सुनकर हँसता हुआ कहने लगा। आनंद बोला -मैं किस माताकी वंदना करूं? जननीको अथवा पालनेवालीको प्रणाम करूं? ॥ २४ ॥ गुरुजी बोले हे महाभाग! यह जारुथात्मजा हैमिनी नामक विक्रांतराजाकी प्रधान महिषी क्या तुम्हारी जननी नहीं है? ॥ २५ ॥ आनंदने कहा। यह बोध नामक विप्र श्रेष्ठके पुत्र विशाल ग्रामनिवासी चैत्रकी माता है, इनके गर्भमें वह चैत्रही उत्पन्न हुआ था, मैंने अन्यत्र जन्म ग्रहण किया है ॥ २६ ॥

आनन्देतिचनामास्यपिताचक्रेविधानतः ॥ मुदापरमयायुक्तोविक्रान्तःसनराधिपः ॥ २२ ॥ कृतोपनयनंतंतुगुरुराहकुमारकम ॥ जनन्याःप्रागुपस्थानंक्रियतांचाभिवादनम् ॥ २३ ॥ सगुरोस्तद्वचःश्रुत्वाविहस्यैवमथाब्रवीत् ॥ आनंदउवाच ॥ वंद्यामेकतमामाता जननीपालनीतुकिम् ॥ २४ ॥ गुरुरुवाच ॥ नन्वियंतेमहाभागजनित्रीजारुजात्मजा ॥ विक्रान्तस्याग्रमहिषीहैमिनीनामनामतः ॥ ॥ २५ ॥ आनंदउवाच ॥ इयंजनित्रीचैत्रस्यविशालग्रामवासिनः ॥ विप्राग्र्यबोधपुत्रस्ययोस्यांजातोन्यतोगमम् ॥ २६ ॥ ॥ गुरुरुवाच ॥ ॥ कुतस्त्वंकथयानन्दचैत्रःकोवात्वयोच्यते ॥ संकटंमहदाभातिक्वजातोऽत्रब्रवीषिकिम् ॥२७॥ आनंदउवाच ॥ जातोऽहमनमित्रस्यक्षत्रियस्यगृहेद्विज ॥ तत्पत्न्यांगिरिभद्रायामाददेजातहारिणी ॥ २८ ॥ तयात्रमुक्तोहैमिन्यागृहीत्वाचसुतंचमा ॥ बोधस्य द्विजमुख्यस्यगृहेनीतवतीपुनः ॥ २९ ॥ भक्षयामासचसुतंतस्यबोधद्विजन्मनः ॥ सतत्रद्विजसंस्कारैःसंस्कृतोहैमिनीसुतः ॥ ३० ॥

गुरुजी बोले--हे आनंद! तुम कहांसे आये हो? तुमने जिस चैत्रकी बात कही, वह चैत्र कौन है? तुमने कहां जन्म लियाथा? और यहां कैसे आये? तथा यहां जो उत्पन्न हुआ था, वह कहां गया? तुम क्या कहते हो? यह तो महा संकट देखा जाता है ॥२७॥ आनन्दने कहा--हे द्विज! मैंने अवनीपति अनमित्र नामक क्षत्रियके घर उनकी पत्नी गिरिभद्राके गर्भसे जन्म ग्रहण कियाहै और मुझको जातहारिणी हरण करके इस स्थानमें रखगई है ॥२८॥ और उस हैमिनीके पुत्रको हरण करके पुनर्वार द्विजश्रेष्ठ बोधके घर लेजाकर॥२९॥ उस द्विजोत्तम बोधकी संतानको भक्षण कर गई थी। हैमिनीसुत वह बालक विशाल ग्राममें द्विजके संस्कारसे संस्कृत हुआ है ॥ ३० ॥

और आपके द्वारा मैं यहां संस्कृत हुआ हूं । हे महाभाग ! आप मेरे गुरु हैं । आपकी आज्ञा मुझको सम्यक्प्रकार पालनीय है हे गुरो ! मैं किस जननीको प्रणाम करूं ? ॥ ३१ ॥ गुरुजीबोले-हे वत्स ! अत्यन्त विषम महासंकट उपस्थित हुआ है कुछ भी नहीं समझ सकता मानों मोहके कारण बुद्धि भ्रमण करती है ॥ ३२ ॥ आनंदने कहा--हे विप्रर्षे ! इस प्रकार व्यवस्थावाले इस जगत्में मोहका विराम क्या है ? अतएव कौन किसका पुत्र है ? और जब प्राणी जन्मसे लेकर प्राणियोंके संग विविध सम्बंधको प्राप्त होते हैं तब कोई किसीका बांधव नहीं है । संबंधयुक्त मनुष्यगण जिस भांति मृत्युके द्वारा लौटते रहते हैं ॥३३॥३४॥ इस संसारमें बांधवगणोंके सहित उत्पन्न हुए मनुष्योंका जो अखिल क्रम (सर्वा-

वयमत्रमहाभागसंकृतागुरुणात्वया ॥ मयातववचःकार्य्यमुपैमिकतमांगुरो ॥ ३१ ॥ गुरुरुवाच ॥ ॥ अतीवगहनंवत्ससंकटं महदागतम् ॥ नवेद्मिकिंचिन्मोहेनभ्रमन्तीवहिबुद्धयः ॥ ३२ ॥ आनन्दउवाच ॥ मोहस्यावसरःकोऽत्रजगत्येवंव्यवस्थिते ॥ कःकस्यपुत्रोविप्रर्षेकोवाकस्यनबान्धवः ॥३३॥ आरभ्यजन्मनोनृणांसम्बन्धित्वमुपैतियः ॥ अन्यसंबंधिनोविप्रमृत्युनासन्निवर्तिताः॥ ॥ ३४ ॥ अत्रापिजातस्यसतःसम्बन्धोयोऽस्यबान्धवैः ॥ सोप्यस्तमन्तेदेहस्यप्रयात्येषोऽखिलक्रमः ॥ ३५ ॥ अतोब्रवीमिसंसारेव सतःकोनबान्धवः ॥ कोवापिसततंबन्धुःकिंत्रोविभ्राम्यतेमतिः ॥ ३६ ॥ पितृद्वयंमयाप्राप्तमस्मिन्नेवहिजन्मनि ॥ मातृद्वयंचकिंचित्रंयदन्यदेहसम्भवे ॥ ३७ ॥ सोऽहंतपःकरिष्यामित्वयायोह्यस्यभूपतेः ॥ विशालग्रामतःपुत्रश्चैत्रआनीयतामिह ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसविस्मितोराजासभार्य्यःसहबन्धुभिः ॥ तस्मान्निवर्त्यममतामनुमेनेवनायतम् ॥ ३९ ॥

नुगामी) संबंध है वहभी इसी प्रकार देहके विनाशके पीछे विनाशको प्राप्त होता है ॥ ३५ ॥ इसी कारण कहता हूं संसारमें वास करनेवालोंका कोई बंधु नहीं है और नित्य बंधुही कौनहै ? अतएव किस निमित्त अपनी बुद्धि भ्रान्त होतीहै ॥ ३६ ॥ मैं इसी जन्ममें दो पिता और दो माताको प्राप्त हुआ हूं, अन्य देहधारणमें जो ऐसा संबंध होगा तो फिर आश्चर्यही क्या है? ॥ ३७ ॥ अब मैं तपस्या करूंगा । आप विशालग्रामसे इन भूपतिके पुत्र उस चैत्रको इस स्थानमें लेआइये ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनंतर राजाने भार्या और बंधुगणोंके सहित विस्मित हो, उस पुत्रसे मोह छोड उसको वन जानेकी अनुमति दी ॥ ३९ ॥

और जिस ब्राह्मणने चैत्रको पाला था, उस ब्राह्मणको सन्मानित कर अपने पुत्रको लाय, राजाने उसको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥ ४० ॥ इधर वह आनंद मोक्षविरोधी सब कर्मोंको क्षय करनेकी इच्छासे बाल्य अवस्थामे ही महावनमें तपस्या करने लगा ॥ ४१ ॥ जब आनंद इस प्रकार तपस्या करनेमें प्रवृत्त हुआ, तब देव प्रजापतिने उससे कहा--हे वत्स ! किस निमित्त ऐसी तीव्र तपस्या करते हो ? सो कहो ॥ ४२ ॥ आनंदने कहा--हे भगवन् ! जो सब कर्म मेरे संसारबंधनका हेतुस्वरूप हैं, उनके नाश करनेकी इच्छासे मैं आत्मशुद्धिके लिये तपस्या करता हूं ॥ ४३ ॥ ब्रह्माजी बोले--क्षीणाधिकार मनुष्यगण मुक्तिके योग्य होते हैं, वह कर्मवान् नहीं होते तो तुम सत्त्वाधिकारी (प्राणियोंके ऊपर

चैत्रमानीयतनयंराज्ययोग्यंचकारसः ॥ संमान्यब्राह्मणंयेनपुत्रबुद्ध्यासपालितः ॥ ४० ॥ सोऽप्यानन्दस्तपस्तेपेबालएवमहावने ॥ कर्मणांक्षपणार्थायविमुक्तेःपरिपन्थिनाम् ॥ ४१ ॥ तपस्यन्तंततस्तंचप्राहदेवःप्रजापतिः ॥ किमर्थंतप्यसेवत्सतपस्तीव्रंवदस्वतत् ॥ ॥ ४२ ॥ आनन्दउवाच ॥ आत्मनःशुद्धिकामोऽहंकरोमिभगवंस्तपः ॥ बन्धायममकर्माणियानितत्क्षपणोन्मुखः ॥ ४३ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ क्षीणाधिकारोभवतिमुक्तियोग्योनकर्मवान् ॥ सत्त्वाधिकारवान्मुक्तिमवाप्स्यतिततोभवान् ॥ ४४ ॥ भवतामनुनाभाव्यंषष्ठेनव्रजतत्कुरु ॥ अलंतेतपसानस्मिन्कृतेमुक्तिमवाप्स्यसि ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तोब्रह्मणासोऽपितथेत्युक्त्वामहामतिः ॥ तत्कर्माभिमुखोयस्तुतपसोविररामह ॥ ४६ ॥ चाक्षुषेत्याहतंब्रह्मातपसोविनिवर्तयन् ॥ पूर्वनाम्नाबभूवाथप्रख्यातश्चाक्षुषोमनुः ॥ ४७ ॥ उपयेमेविदर्भांससुतामुग्रस्यभूभृतः ॥ तस्यांचोत्पादयामासपुत्रान्प्रख्यातविक्रमान् ॥ ४८ ॥

आधिपत्य शाली) होकर किस प्रकार मुक्तिको प्राप्त होंगे ? ॥ ४४ ॥ तुम छठे मनु होंगे अब जाओ--वैसाही कार्य करो, तो मुक्त होंगे, अब तुम्हें तपस्या करनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ ४५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- ब्रह्माजीके इस प्रकार कहने पर वह महामति "यही हो" इस प्रकार कह उस कर्मके अभिमुख हो तपस्यासे विरत हुए ॥ ४६ ॥ ब्रह्माजीने उनको तपस्यासे निवृत्त करके "चाक्षुष" इस पहिले नामसे अभिहित किया; अनन्तर वह 'चाक्षुषमनु' नामसे विख्यात हुए ॥ ४७ ॥ इसके पीछे उन्होंने उग्र नामक राजाकी कन्या विदर्भासे विवाह करके उसके गर्भसे अनेक विक्रमशाली पुत्र उत्पन्न किये ॥ ४८ ॥

हे द्विज ! उन मन्वन्तराधिपतिके मन्वन्तरमें जो जो ऋषि, जो इन्द्र और इनकी जो जो सन्तान हुई, वह सुनो ॥ ४९ ॥ हे विप्र ! इस मन्वन्तरमें देवताओंका प्रथमगण आर्यनामक है, उसगणमें विख्यात कर्म और यज्ञमें हव्यभोजी आठ देवता थे ॥ ५० ॥ विख्यात बलवीर्य और प्रभामण्डलमध्यस्थ होनेसे दुर्दर्श अपर देवताओंका प्रसूत नामक दूसरा गण है, इसमें भी आठ देवता हैं ॥ ५१ ॥ हे द्विज ! तीसरे मन्याख्य देवतागणमें आठ और चौथे यूथग नामक गणमें आठ देवता थे ॥ ५२ ॥ पंचमगणमें देवता अमृताशी नामसे विख्यात हैं। हे द्विज ! उस मन्वन्तरमें अन्य देवगण लेखसंज्ञक हैं। इस पंचम गणमें भी अमृतभोजी देवता पूर्वके समान अष्टसंज्ञक हैं ॥५३॥ शत यज्ञ करके, यज्ञभागभुक् "मनोजव"

तस्यमन्वन्तरेशस्ययेऽन्तरेत्रिदशाद्विज ॥ येचर्षयस्तथैवेन्द्रोयेसुताश्चास्यताञ्छृणु ॥ ४९ ॥ आप्यानामसुरास्तत्रतेषामेकोऽष्टको गणः ॥ प्रख्यातकर्मणांविप्रयज्ञेहव्यभुजामयम् ॥ ५० ॥ प्रख्यातबलवीर्य्याणांप्रभामण्डलदुर्दृशाम् ॥ द्वितीयश्चप्रसूताख्योदेवाना मष्टकोगणः ॥ ५१ ॥ तथैवाष्टकएवान्योभव्याख्योदेवतागणः ॥ चतुर्थश्चगणस्तत्रयूथगाख्यस्तथाष्टकः ॥ ५२ ॥ लेखसंज्ञास्तथैवा न्येतत्रमन्वन्तरेद्विज ॥ पंचमेचगणेदेवास्तत्संज्ञाह्यमृताशिनः ॥ ५३ ॥ शतंक्रतूनामाहृत्ययस्तेषामधिपोभवत ॥ मनोजवस्तथैवे न्द्रःसंख्यातोयज्ञभागभुक् ॥ ५४ ॥ सुमेधाविरजाश्चैवहविष्मानुन्नतोमधुः ॥ अतिनामासहिष्णुश्चसप्तासन्निति चर्षयः ॥ ५५ ॥ ऊरू पुरुशतद्युम्नप्रमुखाःसुमहाबलाः ॥ चाक्षुषस्यसनोःपुत्राःपृथिवीपतयोभवन् ॥ ५६ ॥ एतत्तेकथितंषष्ठंमयामन्वन्तरंद्विज ॥ चाक्षुष स्यतथाजन्मचरितंचमहात्मनः ॥ ५७ ॥ साम्प्रतंवर्त्ततेयोऽयंनाम्नावैवस्वतोमनुः ॥ सप्तमोयेन्तरेतस्यदेवाद्यास्ताञ्छृणुष्वमे ॥ ५८ ॥ (यइदंकीर्तयेद्धीमांश्चाक्षुषस्यांतरंभुवि ॥ शृणुतेचलभेत्पुत्रानारोग्यसुखसंपदम्) ॥ ५९ ॥

नामक इंद्र उनके अधिपति हुए थे ॥ ५४ ॥ सुमेधा, विरजा, हविष्मान्, उन्नत, मधु, अति और सहिष्णु, यह सप्तर्षि थे चाक्षुष मनुके उरू, पूरु, शतद्युम्न; इत्यादि महाबलवान् पुत्र गण पृथ्वीपति हुए थे ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ हे द्विज ! मैंने इस छठे मन्वन्तरका विषय और महात्मा चाक्षुष मनुका जन्म एवं चरित्र तुमसे कहा ॥ ५७ ॥ अब वैवस्वतनामक जो सप्तम मनु वर्त्तमान है, उनके मन्वन्तरके देवता इत्यादिका विषय मुझसे सुनो ॥ ५८ ॥ जो बुद्धिमान् मनुष्य पृथ्वीमें इस चाक्षुषमन्वन्तरका कीर्त्तन करेंगे अथवा इसको सुनेंगे, वह पुत्र आरोग्यता और सुख संपदाको

प्राप्त होगे ॥ ५९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां षष्ठमन्वन्तरं नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महाभाग ! विश्वकर्माकी संज्ञा नामक कन्या मार्त्तण्डदेवकी पत्नी थी । उसके गर्भ द्वारा भास्करके आगमसे ॥ १ ॥ विख्यात यश अत्यन्त ज्ञान संपन्न मनुने जन्मग्रहण किया था । यह विवस्वानके पुत्र हुए, इस कारण इन मनुका वैवस्वत नाम विख्यात हुआ था ॥ २ ॥ सूर्यको देखते ह संज्ञा दोनों नेत्र मूँद लेती थी इस निमित्त सूर्यदेवने एक दिन क्रोध करके उससे यह निष्ठुरवचन कहा ॥ ३ ॥ हे मूढे । जब कि तू सदा मुझको देखकर नेत्र संयम करती है, अर्थात् बंद करती है तो इसी प्रकार तू प्रजासंयमपरायण यमको उत्पन्न करेगी ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले ! तबसे

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेषष्ठमन्वन्तरंनामत्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मार्त्तण्डस्यरवेर्भार्यातनयाविश्वकर्मणः ॥ संज्ञानाममहाभागतस्यांभानुरजीजनत् ॥ १ ॥ मनुंप्रख्यातयशसमनेकज्ञानपारगम् ॥ विवस्वतःसुतोयस्मात्तस्माद्वैवस्वतस्तुसः ॥ २ ॥ संज्ञाचरविणादृष्टानिमीलयतिलोचने ॥ यतस्ततःसरोषोऽर्कःसंज्ञांनिष्ठुरमब्रवीत् ॥ ३ ॥ मयिदृष्टेसदायस्मात्कुरुषेनेत्रसंयमम् ॥ तस्माज्जनिष्यसेमूढप्रजासंयमनंयमम् ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसाचपलांदृष्टिंदेवीचक्रेभयाकुला ॥ विलोलितदृशंदृष्ट्वापुनराहचतांरविः ॥ ५ ॥ यस्माद्विलोलितादृष्टिर्मयिदृष्टेत्वयाधुना ॥ तस्माद्विलोलांतनयांनदींत्वंप्रसविष्यसि ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तस्यांतुसंजज्ञेभर्तृशापेनतेनवै ॥ यमश्चयमुनाचेयंप्रख्यातासुमहानदी ॥ ७ ॥ साचसंज्ञारवेस्तेजःसेहेदुःखेनभाविनी ॥ असहन्तीचसातेजश्चिन्तयामासवैतदा ॥ ८ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिक्वगतायाश्चनिर्वृतिः ॥ भवेन्ममकथंभर्ताकोपमर्कश्चनैष्यति ॥ ९ ॥

वह संज्ञा देवी भयाकुल होकर सूर्यके प्रति चंचलदृष्टि करने लगी । तब रविने चंचलनेत्रवाली देखकर फिर कहा ॥ ५ ॥ अब तुम मुझको देखकर जब दृष्टि चंचल करती हो तब तुम इसी प्रकार विलोला नदीरूपिणी कन्या प्रसव करोगी ॥ ६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले तदनंतर इस प्रकार पतिके शाप देनेपर उसके गर्भसे यमने जन्म ग्रहण किया और यमुना नामक विख्यात महानदी भी उत्पन्न हुई ॥ ७ ॥ उस संज्ञानामक कामिनीने उतने समयपर्यंत दुःखके सहित रविका तेज सहन किया था किंतु अब वह तेज नहीं सहन कर सकनेके कारण चिन्ता करने लगी ॥ ८ ॥ "क्या करूं

कहां जाऊं ? कहां जानेसे निवृत्त हो ? और किस किस प्रकारसे मेरे भर्ता कोपके वशीभूत न हो ?" ॥ ९ ॥ तब प्रजापतिकी कन्या उस महाभाग संज्ञाने इस प्रकार अनेक भाँति चिन्ताकरके पिताके गृहका ही आश्रय लेना अच्छा समझा ॥ १० ॥ फिर उस यशस्विनीने पिताके घर जानेका निश्चय कर अपने देहसे रविकी प्रियतमा स्वीय छायामय शरीर निर्माण किया ॥ ११ ॥ और फिर उस छायासे कहा, इन सूर्यके घर जिस प्रकार मैं रहती हूं तुमभी वैसेही भावसे रहना तथा पुत्र और स्वामी रविके प्रति मेरी ही समान आचरण करना ॥ १२ ॥ भानुके पूँछनेपरभी मेरे इस जानेकी बात मत कहना, बरन् "वह संज्ञा मैं ही हूं" सदा यही बात कहना ॥ १३ ॥ छाया संज्ञा बोली

इतिसंचिन्त्यबहुधाप्रजापतिसुतातदा ॥ बहुमेनेमहाभागापितृसंश्रयमेवसा ॥ १० ॥ ततःपितृगृहेगन्तुंकृतबुद्धिर्यशस्विनी ॥ छाया मयीमात्मतनुंनिर्ममेदयितांरवे ॥ ११ ॥ तांचोवाचत्वयावेश्मन्यत्रभानोर्यथामया ॥ तथासम्यगपत्येषुवर्तितव्यंयथारवौ ॥ १२ ॥ पृष्टयापिनवाच्यंतेतद्गमनंमम ॥ सैवास्मिनामसंज्ञेतिवाच्यमेतत्सदावचः ॥ १३ ॥ छायासंज्ञोवाच ॥ आकेशग्रहणाद्देविआशापाच्च वचस्तव ॥ करिष्येकथयिष्यामिवृत्तंतुशापकर्षणात् ॥ १४ ॥ इत्युक्तासातदादेवीजगामभवनंपितुः ॥ ददर्शतत्रत्वष्टारंतपसाधूतक ल्मषम् ॥ १५ ॥ बहुमानाच्चतेनापिपूजिताविश्वकर्मणा ॥ तस्थौपितृगृहेसातुकंचित्कालमनिन्दिता ॥ १६ ॥ ततस्तांप्राहचार्वङ्गी पितानातिचिरोषिताम् ॥ स्तुत्वाचतनयांप्रेमबहुमानपुरःसरम् ॥ १७ ॥ त्वांतुमेपश्यतोवत्सेदिनानिसुबहून्यपि ॥ मुहूर्त्तार्द्धसमा निस्युःकिन्तुधर्मोविलुप्यते ॥ १८ ॥

हे देवी! जबतक वह मेरे केसग्रहण नहीं करेंगे और शाप नहीं देंगे तबतक मैं तुम्हारे वचनानुसार कार्य करूंगी किन्तु शाप और केशाकर्षण होनेपर संपूर्ण वृत्तांत कह दूंगी ॥ १४ ॥ छाया संज्ञाके इस प्रकार कहनेपर संज्ञादेवी पिताके घर चली गई और वहां तपस्याद्वारा विधूतपाप अर्थात् पाप रहित विश्वकर्माको देखा ॥ १५ ॥ उन विश्वकर्माने इसका बहुत मान करके पूजन किया, तब आनन्दित होकर संज्ञा कुछकाल पिताके घर रही ॥ १६ ॥ फिर थोडेकालके उपरांत अपनी कन्या उस सुन्दरीसे उसके पिता विश्वकर्माने अत्यन्त स्नेहभाव और अत्यन्त मानके सहित मोटे वचनों द्वारा कहा ॥ १७ ॥ हे वत्से ! तुमको देखते देखते मेरे बहुत दिन बीतने परभी वह आधे मुहूर्त्तके समान जान पड़ते हैं, किंतु इससे धर्म लुप्त

होता है ॥१८॥ बांधवगणोंमें सदा वास करना स्त्रियोंके पक्षमें यशकारी कार्य नहीं है, स्त्रियोंका भर्त्ताके घरही वास करना बांधवोंको अभिमत है ॥१९॥हे पुत्रिके!त्रैलोक्यनाथ सूर्य तुम्हारे भर्त्ता हैं, तुम उनके संग विवाहसूत्रमें मिलित हुई हो। पिताके घर सदा वास करना तुमको उचित नहीं है ॥ २० ॥ अतएव हे शुभे ! अब तुम पतिके घर जाओ, मैं संतुष्ट हुआ हूं, और मेरे द्वारा तुम भी संमानित हुई हो, मेरे देखनेके निमित्त फिर आजाना ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने ! पिता विश्वकर्माके इस प्रकार कहने पर वह संज्ञा "वहीहो" ऐसा कह और पिताकी भली भांति पूजा करके उत्तरकुरुदेशमें चली गई ॥२२॥ सूर्यके तेजसे डरी हुई वह संज्ञा सूर्यके तापमें अनिच्छुक हो, वहां वड़वा (घोड़ी) का रूप

बान्धवेषुचिरंवासोनारीणांनयशस्करः ॥ मनोरथोबान्धवानांनार्य्याभर्तृगृहेस्थितिः ॥१९॥ सात्वंत्रैलोक्यनाथेनभर्त्रासूर्य्येणसंगता ॥ पितृगेहेचिरंकालंवस्तुंनार्हसिपुत्रिके ॥ २० ॥ सात्वंभर्तृगृहंगच्छतुष्टोऽहंपूजितासिमे ॥ पुनरागमनंकार्यंदर्शनायशुभेमम ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तासातदापित्रातथेत्युक्त्वाचसामुने ॥ संपूजयित्वापितरंजगामाथोत्तरान्कुरून् ॥ २२ ॥ सूर्यतापमनिच्छन्तीतेजसस्तस्यबिभ्यती ॥ तपश्चचारतत्रापिवडवारूपधारिणी ॥ २३ ॥ संज्ञेयमितिमन्वानोद्वितीयायामहस्पतिः ॥ जनयामासतनयौकन्यांचैकांमनोरमाम् ॥२४॥ छायासंज्ञात्वपत्येषुयथास्वेष्वतिवत्सला ॥ तथानसंज्ञाकन्यायांपुत्रयोश्चान्ववर्त्तत ॥२५॥ लालनाद्युपभोगेषुविशेषमनुवासरम् ॥ मनुस्तत्क्षान्तवानस्यायमस्तस्यानचक्षमे ॥२६॥ ताडनायचवैकोपात्पादस्तेनसमुद्यतः ॥ तस्याःपुनःक्षांतिमतानतुदेहेनिपातितः ॥२७॥ ततःशशापतंकोपाच्छायासंज्ञायमंद्विज ॥ किंचित्प्रस्फुरमाणोष्ठीविचलत्पाणिपल्लवा ॥२८॥

धारण करके तपस्या करने लगी ॥ २३ ॥ इस ओर "यही संज्ञा है" ऐसा मनमें समझ दिनपति सूर्यने दूसरी पत्नीमें दो पुत्र और एक मनोहर कन्या उत्पन्न करी ॥२४॥ किंतु छायासंज्ञा अपनी संतानके प्रति जिस प्रकार स्नेहवती थी, प्रकृत संज्ञाकी कन्या और दोनों पुत्रोंके प्रति वैसी नहीं थी ॥ २५ ॥ नित्यही लालनादि उपभोगके समय दोनों संतानमें भिन्न भाव दिखाती। मनुने तो उसको क्षमा कियाथा, किंतु यमने उसके इस विषमभावकी क्षमा नहीं की ॥ २६ ॥ उन्होंने कोपके वशीभूत हो प्रहार करनेके लिये चरण उठा लिया, किंतु फिर उसी समय क्षमा करके उक्त चरण छायासंज्ञाके देहमें निपतित नहीं किया ॥ २७ ॥ हे द्विज ! तदनन्तर उस छायासंज्ञाने, क्रोधित हो अपना हाथ उठाय होठ कंपाय यमको यह शाप दिया ॥२८॥

कि, मैं तुम्हारे पिताकी पत्नी हूं। मेरी मर्यादा तोड चरण उद्यत करके मुझको घुडकता है, इस कारण अभी तेरा यह चरण पृथ्वीमें गिरे ॥२९॥ मार्कण्डेयजी बोले—यम माताका दिया इस प्रकार शाप सुन भयातुर हो, पिताके समीप जाकर प्रणामपूर्वक कहने लगे ॥ ३० ॥ यमने कहा—हे तात! माता स्नेह त्यागकर पुत्रको शाप दे, यह अत्यंत आश्चर्य है और कभी किसीने यह बात नहीं देखी है ॥ ३१ ॥ मनुने मुझसे जिस प्रकार कहा है, यह माता वैसी नहीं है, पुत्र असद्गुणयुक्त होनेपर भी माता कभी उसके प्रति विपरीत नहीं होती ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—भगवान् तिमिरारि (सूर्य) ने यमका वचन सुन छायासंज्ञाको सादर बुलाकर पूछा "संज्ञा कहां गई है" ॥ ३३ ॥ उसने कहा—हे विभावसो! मैं विश्वकर्माकी कन्या,

पितुःपत्नीममर्य्यादंयन्मांतर्ज्जयसेपदा ॥ भुवितस्मादयंपादस्तवाद्यैवपतिष्यति ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्याकर्ण्यंयमःशापं मात्रादत्तंभयातुरः ॥ अभ्येत्यपितरंप्राहप्रणिपातपुरःसरम् ॥ ३० ॥ यमउवाच ॥ ॥ तातैतन्महदाश्चर्य्यंनदृष्टमितिकेनचित् ॥ मातावात्सल्यमुत्सृज्यशापंपुत्रेप्रयच्छति ॥३१॥ यथामनुर्ममाचष्टेनेयंमातानथामम ॥ विगुणेष्वपिपुत्रेषुनमाताविगुणाभवेत् ॥३२॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥यमस्यैतद्वचःश्रुत्वाभगवांस्तिमिरापहः ॥ छायासंज्ञांसमाहूयप्रच्छक्वगतेतिसा ॥३३॥ साचाहतनयात्वष्टुरहंसंज्ञा विभावसो ॥ पत्नीतवत्वयापत्यान्येतानिजनितानिमे ॥ ३४ ॥ इत्थंविवस्वतःसातुबहुशःपृच्छतोयदा ॥ नाचचक्षेततःक्रुद्धोभा स्वांस्तांशप्तुमुद्यतः ॥ ३५ ॥ ततःसाकथयामासयथावृत्तंविवस्वतः ॥ विदितार्थश्चभगवाञ्जगामत्वष्टुरालयम् ॥ ३६ ॥ ततःसपूज यामासतदात्रैलोक्यपूजितम् ॥ भास्वन्तंपरयाभक्त्यानिजगेहमुपागतम् ॥ ३७ ॥ संज्ञांपृष्टस्तदातस्मैकथयामासविश्वकृत् ॥ आगतै वेहमेवेश्मभवतःप्रेपितेतिवै ॥ ३८ ॥

तुम्हारी पत्नी संज्ञाहूं। मेरेही गर्भसे आपकी इस सन्तानने जन्म ग्रहण किया है ॥ ३४ ॥ विवस्वान् सूर्यके जब इस प्रकार बहुत बार पूँछने पर भी उसने उसका यथार्थ उत्तर नहीं दिया। तब भास्वान् सूर्य क्रोधित होकर उसको शाप देनेमें उद्यत हुए ॥ ३५ ॥ तब जो जो बात हुईथी, वह सब उसने विवस्वानसे कहदी भगवान् मार्त्तण्डदेव यह सब बात जानकर विश्वकर्मा के घर गये ॥ ३६ ॥ इसके उपरान्त विश्वकर्माने अपने घर आये हुए त्रैलोक्यपूजित द्युतिमान् सूर्यकी परम भक्ति सहित पूजा करी ॥ ३७ ॥ अनन्तर जब विश्वकर्मासे सूर्यने संज्ञाका वृत्तान्त

पूछा, तब उन्होंने कहा संज्ञा मेरे घर आई तो थी किंतु मैंने उसको आपकेही घर भेज दिया ॥ ३८ ॥ तब दिवाकरने ध्यानमें स्थित होकर देखा कि, संज्ञा उत्तर कुरुवर्षमें घोडीका रूप धारण किये तपस्या कररही है ॥ ३९ ॥ और दिवाकरने यहभी देखा कि, "मेरे भर्ता सुन्दराकृति और सौम्यमूर्तिहों" यह उसके तपस्याकरनेकी अभिलाषा है ॥४०॥ हे द्विज ! भगवान् भास्करने फिर संज्ञाके पिता विश्वकर्मासे कहा मेरा तेज क्षीण कीजिये ॥ ४१ ॥ तब विश्वकर्माने देवताओंके स्तुति करनेपर संवत्सरभ्रमणकारी उन रविका तेज क्षय किया था ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—तदनंतर देवता और ऋषिगण समागत होकर सब

दिवाकरःसमाधिस्थोवडवारूपधारिणीम् ॥ तपश्चरन्तींददृशेउत्तरेषुकुरुष्वथ ॥ ३९ ॥ सौम्यमूर्तिः शुभाकारो ममभर्त्ताभवेदिति ॥ अभिसन्धिश्चतपसोबुबुधेऽस्यादिवाकरः ॥ ४० ॥ शातनंतेजसोमेऽद्यक्रियतामितिभास्करः ॥ तेनाशरीरं शातनंते विश्वकर्मा पितरं द्विज ॥ ४१ ॥ संवत्सरभ्रमेस्तस्यविश्वकर्माविवस्वतः ॥ तेजसःशातनंचक्रेस्तूयमानश्चदेवतैः ॥ ४२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे वैवस्वतमन्वन्तरेचतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तंतुष्टुवुर्देवास्तथादेवर्षयस्तिनि ॥ वाग्भिरीड्यमशेषस्यत्रैलोक्यस्यसमागताः ॥ १ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ नमस्तेऋक्स्वरूपायसामरूपायतेनमः ॥ यजुःस्वरूपरूपायसाम्नांधामवतेनमः॥ ॥ २ ॥ ज्ञानैकधामभूतायनिर्धूततमसेनमः ॥ शुद्धज्योतिःस्वरूपायविशुद्धायामलात्मने ॥ ३ ॥ (चक्रिणेशंखिनेशार्ङ्गिणेपद्मिनेनमः) वरिष्ठायवरेण्यायपरस्मैपरमात्मने॥नमोऽखिलजगद्व्यापिस्वरूपायात्ममूर्त्तये ॥४॥ सर्वकारणभूतायनिष्ठायैज्ञानचेतताम्॥५॥

त्रैलोक्यके पूज्य रविकी वाक्य द्वारा स्तुती करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले--हे देव ! तुम ऋक् स्वरूप हो, तुमको नमस्कार है । तुम सामस्वरूप हो तुमको नमस्कार है तुम्हीं यजुः स्वरूप और सामके द्युतिमान हो तुमको नमस्कार है ॥ २ ॥ तुम्हीं ज्ञानके एकमात्र आधार स्वरूप हो तमोनाशक हो शुद्ध ज्योतिःस्वरूप हो विशुद्ध और अमलात्मा हो, तुमको नमस्कार है ॥ ३ ॥ तुम शंख चक्र शार्ङ्ग और पद्म धारण करने वाले हो तुम्हें नमस्कार है ॥ तुम्हीं वरिष्ठ वरेण्य, पर और परमात्मा तुम्हीं संपूर्ण जगद्व्यापिस्वरूप और आत्ममूर्ति हो तुमको नमस्कार है ॥ ४ ॥ तुम्हीं ज्ञानचेता मनुष्योंकी निष्ठा हो, सर्वभूतोंके करणस्वरूप हो ॥ ५ ॥

तुम्हीं सूर्य स्वरूप प्रकाशआत्मरूपी भास्कर और दिनकर हो तुमको नमस्कार है ॥ ६ ॥ तुम्ही रात्रिके कारणस्वरूप हो एवं तुम्हीं संध्या और तुम्हीं ज्योत्स्नाकारी हो, तुमको नमस्कार है तुम्हीं भगवान् हो, तुम्हारे द्वाराही जगत् जाग्रत् हो भ्रमित होता है ॥ ७ ॥ तुम्हारे द्वाराही यह चराचरयुक्त अखिल ब्रह्माण्ड विद्रुत होकर भ्रमण करता है । यह स्पर्शयोग्य संपूर्ण द्रव्य तुम्हारी किरणोंके स्पर्शसे ही पवित्र होते हैं ॥ ८ ॥ तुम्हारे किरणों द्वारा ही जलादिकी पवित्रता साधित होती है । तबतक होमदानादि धर्म उपकारके निमित्त नहीं होता ॥ ९ ॥ हे देव ! यह जगत् जबतक तुम्हारे किरणोंके संयोगको प्राप्त नहीं होता, तुम्हारे अंगसे जो किरणें निकलती हैं, वह समस्तही ऋक्‌यजुः और साम हैं ।

नमःसूर्य्यस्वरूपायप्रकाशात्मस्वरूपिणे ॥ भास्करायनमस्तुभ्यंतथादिनकृतेनमः ॥ ६ ॥ शर्वरीहेतवेचैवसन्ध्याज्योत्स्नाकृतेनमः ॥ त्वंसर्वमेतद्भगवञ्जगदुद्भ्रमतात्वया ॥ ७ ॥ भ्रमत्याविद्धमखिलंब्रह्माण्डंसचराचरम् ॥ त्वदंशुभिरिदंस्पृष्टंसर्वंसंजायतेशुचिः ॥ ८ ॥ क्रियतेत्वत्करैःस्पर्शाज्जलादीनांपवित्रता ॥ होमदानादिकोधर्मोनोपकारायजायते ॥ ९ ॥ तावद्यावन्नसंयोगिजगदेवत्त्वदंशुभिः ॥ ऋचस्तेसकलाह्येतायजूंष्येतानिचान्यतः ॥ १० ॥ सकलानिचसामानिनिपतन्तित्वदङ्गतः ॥ ऋङ्मयस्त्वंजगन्नाथत्वमेवचयजुर्मयः ॥ ११ ॥ यतःसाममयश्चैवततोनाथत्रयीमयः ॥ त्वमेवब्रह्मणोरूपंपरंचापरमेवच ॥ १२ ॥ मूर्त्तामूर्त्तस्तथासूक्ष्मःस्थूलरूपस्तथास्थितः ॥ निमेषकाष्ठादिमयःकालरूपःक्षयात्मकः ॥ प्रसीदस्वेच्छयारूपंस्वतेजःशमनंकुरु ॥ १३ ॥ (इदंस्तोत्रवरंरम्यंश्रोतव्यंश्रद्धयानरैः ॥ शिष्योभूत्वासमाधिस्थोदत्त्वादेयंगुरोरपि ॥ १४ ॥) मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंसंस्तूयमानस्तुदेवैर्देवर्षिभिस्तथा ॥ मुमोचस्वंतदातेजस्तेजसांराशिरव्ययः ॥ १५ ॥

हे जगन्नाथ ! तुम्हीं ऋक्‌मय, तुम्हीं यजुर्मय ॥ १० ॥ ११ ॥ और तुम्हीं साममयहो, अत एव हे प्रभो ! तुम्हीं त्रयीमयहो । तुम्हीं ब्रह्मरूपी, तथा तुहीं प्रधान औ अप्रधानहो ॥१२॥ तुम्हीं मूर्तिधारी और मूर्तिहीन हो, स्थूल और सूक्ष्मरूपसे तुम्हीं निमेषकाष्ठादिस्वरूप क्षयात्मक कालरूपी हो, तुम प्रसन्न होओ, अपनी इच्छासे रूप और तेज क्षय करो॥१३॥यह मनोहर स्तोत्र मनुष्योंको श्रद्धासे सुनना चाहिये और गुरु कोभी समाधिमें स्थितहो अपने शिष्यके निमित्त देना चाहिये ॥१४॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर, देवता और देवर्षियोंके इस प्रकार स्तुति करनेपर तेजोराशि

अव्यय सूर्यने अपना तेज मुक्त किया ॥१५॥ उन रविके ऋक् मय तेजसे पृथ्वी,यजुर्मय तेजसे आकाश और साममय तेजसे स्वर्ग हुआ॥१६॥ त्वष्टाने जो सूर्यके तेजका पंचदश भाग छीलदिया था, महात्मा त्वष्टाने उस तेजमेंही महादेवका शूल॥१७॥विष्णुका चक्र, और वसुगण, शंकर और पावककी दारुणशक्ति निर्माण की और उसीके द्वारा कुबेरकी पालकी॥१८॥ और अन्यान्य देवगणोंके तथा यक्ष विद्याधरोंके जो सब उग्र अस्त्र हैं, वह समस्तही विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ १९ ॥ अनन्तर भगवान विभु सूर्यने अपने तेजका षोडशभागमात्र धारण किया । विश्वकर्मा ने उसको भी फिर पन्द्रहवार छीला ॥ २० ॥ इनके पीछे भानुने अश्वरूप धारण कर, उत्तरकुरुमें जाय बडवारूपधारिणी संज्ञाको

यत्तस्यर्क्ङ्मयंतेजोभविनातेनमेदिनी ॥ यजुर्मयेनापिदिवंस्वर्गःसाममयंरवेः ॥ १६ ॥ शातिनास्तेजसोभागास्ते पञ्चदश ॥ त्वष्ट्रैवतेनशर्वस्यकृतंशूलंमहात्मना ॥ १७ ॥ चक्रंविष्णोर्वसूनांचशंकरोथसुदारुणाः ॥ पावकस्यतथाशक्तिःशिबिकाधनदस्य च ॥ ॥ १८ ॥ अन्येषामसुरारीणामस्त्राण्युग्राणियानिवै ॥ यक्षविद्याधराणांचतानिचक्रेसविश्वकृत ॥ १९ ॥ ततश्चषोडशंभागंबिभर्ति भगवान्विभुः ॥ तत्तेजःपंचदशधाशातिनंविश्वकर्मणा ॥ २० ॥ ततोऽश्वरूपधृग्भानुरुत्तरानगमत्कुरून् ॥ ददर्शतत्रसंज्ञांचवड वारूपधारिणीम् ॥ २१ ॥ साचदृष्ट्वातमायान्तंपरपुंसोविशङ्कया ॥ जगामसंमुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥ २२ ॥ ततश्चनासि कायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ॥ नासत्यदस्त्रौतनयावश्वीवक्त्रविनिर्गतौ ॥ २३ ॥ रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीचर्म्मीतनुत्रधृक् ॥ अश्वारूढ समुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः ॥ २४ ॥ ततःस्वरूपमतुलंदर्शयामासभानुमान् ॥ तस्यैपाचसमालोक्यस्वरूपंमुदमाददे ॥ २५ ॥ स्वरूपधारिणींचेमामानिनायनिजाश्रमम् ॥ संज्ञांभार्यांप्रीतिमतींभास्करोवारितस्करः ॥ २६ ॥

देख ॥ २१ ॥ वह संज्ञा उनको आता हुआ देख, पराये पुरुषकी आशंकासे; पीठकी रक्षामें तत्पर हो उनके सन्मुख गई ॥ २२ ॥ तदनंतर उसी स्थानमें उन दोनोंकी नासिका मिलनेपर घोड़ीके मुखसे नासत्य और दस्र नामक दो पुत्र बाहर निकले ॥ २३ ॥ और उस वीर्यके शेष भागसे चर्म (ढाल) वर्म (कवच) और खड्गधारी बाणतूणयुक्त अश्वारूढ रेवंत नामक एकपुत्र उत्पन्न हुआ ॥२४॥ तदनंतर सूर्यने उसको (अश्विनीको) अपना अतुलरूप दिखाया तब बड़वारूपधारिणी संज्ञाने,उनका यथार्थ स्वरूप देख,प्रसन्न हो अपना स्वरूप धारण किया ॥२५॥ तब जलशोषक

भास्कर स्वरूपधारिणी संज्ञानाम्नी इस प्रीतिमती भार्याको अपने घर ले आये ॥ २६ ॥ तदनंतर इसका ज्येष्ठ पुत्र ही वैवस्वत नामक मनु हुआ था; दूसरे पुत्र यम शापके कारण धर्मदृष्टि हुए ॥ २७ ॥ "तुम्हारे चरणसे मांसके सहित समस्त कृमि पृथ्वीतलमें गिरेंगे" इस शापका प्रतीकार उनके पिताने स्वयं किया था ॥ २८ ॥ यमको धर्मदृष्टि और शत्रुमित्रमें समदृष्टि देखकर तिमिरारि सूर्यने उनको यमत्वमें नियुक्त किया ॥ २९ ॥ यमुना नामक कन्या नदी रूपसे कलिंद देशके मध्यमें बहने लगी और दोनों अश्विनीकुमार महात्मा पिताके द्वारा नियुक्त होकर स्वर्गके वैद्य हुए ॥ ३० ॥ और रेवंत गुह्यकाधिपतित्वमें नियुक्त हुए अब छायासंज्ञाके पुत्रोंका नियोग मुझसे सुनो ॥ ३१ ॥ इसके उपरांत

ततःपूर्वंसुतोयोऽस्याःसोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ॥ द्वितीयश्चयमःशापाद्धर्मदृष्टिरभूत्सुतः ॥२७॥ कृमयोमांसमादायपादतोऽस्यमहीतले ॥ पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रेपितास्वयम् ॥ २८ ॥ धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥ ततोनियोगंतंयाम्येचकारतिमिरापहः ॥ २९ ॥ यमुनाचनदीजज्ञेकलिन्दान्तरवाहिनी ॥ अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥ ३० ॥ गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोऽपिनियोजितः ॥ छायासंज्ञासुतानांचनियोगःश्रूयतांमम ॥ ३१ ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यश्छायासंज्ञासुतोऽग्रजः ॥ ततःसावर्णिकींसंज्ञामवापतनयोरवेः ॥ ३२ ॥ भविष्यतिमनुःसोपिबलिरिन्द्रोयदातदा ॥ शनैश्चरोग्रहाणांचमध्येपित्रानियोजितः ॥ ३३ ॥ तयोस्तृतीयाकन्यातुतपतीनामसाकुरुम् ॥ नृपात्संवरणात्पुत्रमवापमनुजेश्वरम् ॥ ३४ ॥ तस्यवैवस्वतस्याहंमनोःसप्तममन्तरम् ॥ कथयामिसुतान्भूपानृषीन्देवान्सुराधिपम् ॥ ३५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्वतमन्वन्तरेवैवस्वतोत्पत्तिर्नामपंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

पूर्वज वैवस्वतमनुके तुल्य छायासंज्ञाके गर्भसे उत्पन्न रविके ज्येष्ठ पुत्र सावर्णिक नामको प्राप्त हुए थे ॥ ३२ ॥ जिस समय बलि इंद्र होंगे, तब यहभी मनु होंगे, शनैश्चरभी पिताके द्वारा ग्रहोंमें नियुक्त हुए ॥ ३३ ॥ सबसे छोटी एक कन्या थी, जिसका नाम तपती है, उसने संवरण नामक राजासे कुरुनामक एक पुत्र प्राप्त किया था ॥ ३४ ॥ अब मैं उन सातवें मनु वैवस्वतके अनंतर समस्त ऋषि, देवगण, इंद्र और उनके भूपाल पुत्रोंका विषय कहता हूं ॥ ३५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतोत्पत्तिर्नाम पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्व, मरुत्, भृगु और अंगिरा, इस मन्वन्तरमें यह आठ देवता हैं ॥ १ ॥ तिनमें आदित्य, वसु और रुद्र गण कश्यपजीकी संतान हैं और साध्य, वसु एवं विश्वगण, यह तीनगण धर्मके पुत्र हैं ॥ २ ॥ भृगुगण देवता भृगुके पुत्र हैं, और अङ्गिरागण अंगिराके पुत्र हैं । हे द्विज ! इस सर्गको सम्प्रति मारीचसर्ग जानना चाहिये ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें महात्मा ऊर्जस्वी इंद्र होकर यज्ञ भागभुक् (यज्ञभाग भोगनेवाले) हुए थे, पूर्वमें इंद्र हुए थे, तथा पीछे जो इंद्र होंगे और अब जो इंद्रत्वमें वर्त्तमान हैं ॥ ४ ॥ यह सब देवेन्द्र ही सलक्षण कहकर विख्यात हैं । सबही सहस्राक्ष, वज्रधारी और पुरंदर हैं ॥ ५ ॥ सब ही मघवा, वृष, शृंगधारी और गजगामी

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ आदित्यावसवोरुद्राःसाध्याविश्वेमरुद्गणाः ॥ भृगवोऽङ्गिरसश्चाष्टौयत्रदेवगणाःस्मृताः ॥ १ ॥ आदित्यावसवोरुद्राविज्ञेयाःकश्यपात्मजाः ॥ साध्याश्चवसवोविश्वेधर्मपुत्रगणास्त्रयः ॥ २ ॥ भृगोस्तुभृगवोदेवाःपुत्राह्यङ्गिरसःसुताः ॥ एषसर्गश्चमारीचोविज्ञेयःसाम्प्रताधिपः ॥ ३ ॥ ऊर्जस्वीनामचैवेन्द्रोमहात्मायज्ञभागभुक् ॥ अतीतानागतायेचवर्त्तन्तेसाम्प्रतंचये ॥ ॥ ४ ॥ सर्वेतेत्रिदशेन्द्रास्तुविज्ञेयास्तुल्यलक्षणाः ॥ सहस्राक्षाःकुलिशिनःसर्वएवपुरन्दराः ॥ ५ ॥ मघवन्तोवृषाःसर्वेशृंगिणोगजगामिनः ॥ तेशतक्रतवःसर्वेभूताभिभवतेजसः ॥ ६ ॥ धर्माद्यैःकारणैःशुद्धैराधिपत्यगुणान्विताः ॥ भूतभव्यभवन्नाथाःशृणुचैतत्त्रयंद्विज ॥ ७ ॥ भूर्लोकोऽयंस्मृताभूमिरन्तरिक्षंदिवःस्मृतम् ॥ दिव्याख्यश्चतथास्वर्गस्त्रैलोक्यमितिगद्यते ॥ ८ ॥ अत्रिश्चैववसिष्ठश्च कश्यपश्चमहानृषिः ॥ गौतमश्चभरद्वाजोविश्वामित्रोऽथकौशिकः ॥ ९ ॥ तथैवपुत्रोभगवानृचीकस्यमहात्मनः ॥ जमदग्निस्तुसप्तैतेमनुयोऽत्रतथान्तरे ॥ १० ॥ इक्ष्वाकुर्नाभगश्चैवधृष्टःशर्यातिरेवच ॥ नरिष्यन्तश्चविख्यातोनाभागोदिष्टएवच ॥ ११ ॥

हैं और वह सब ही शतयज्ञकारी एवं भूत पराभवकारी तेजयुक्त हैं ॥ ६ ॥ हे द्विज ! वह सबही शुद्ध धर्मादिके कारण होनेसे आधिपत्यगुण युक्त एवं भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानके अधिपति हैं । अब त्रैलोक्यका विभाग सुनो ॥ ७ ॥ इस भूमिको "भूर्लोक" अंतरिक्षको "दिव" और स्वर्गको "दिव्य" कहते हैं इन्हीं तीनोंको त्रैलोक्य कहा है ॥ ८ ॥ अत्रि, वसिष्ठ, महर्षि कश्यप, गौतम, भरद्वाज, कुशिक नंदन विश्वामित्र ॥ ९ ॥ और महात्मा भगवान् ऋचीकनंदन जमदग्नि, यही सातमुनि इस मन्वन्तरमें सप्तर्षि हैं ॥ १० ॥ इक्ष्वाकु, नभग, धृष्ट, शर्याति,

नरिष्यन्त; नाभाग, दिष्ट ॥ ११ ॥ करूष और पृषध्र, यह नौ वैवस्वतमनुके दीप्तिमान् और जगत् विख्यात् पुत्र थे ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! मैंने वैवस्वतमन्वन्तरका तुमसे वर्णन किया । इसका श्रवण और पाठ करनेपर मनुष्य शीघ्र ही सब पापोंसे छूटकर पुण्य भोग करते हैं ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां वैवस्वतमन्वन्तरे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७६ ॥ क्रौष्टुकिने कहा,--स्वायम्भुवादि सात मनुका विषय और उनके मन्वन्तरमें, जो जो देवता, जो जो राजा और जो जो ऋषि थे, वह तो आपने मुझसे कहा ॥ १ ॥ हे महामुने ! इस कल्पमें और जो सात मनु होंगे उनका विषय और उस समय जो देवादि होंगे उनका वर्णन कीजिये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—छाया संज्ञाके

करूषश्चपृषध्रश्चवसुमाँल्लोकविश्रुतः ॥ मनोर्वैवस्वतस्यैतेनवपुत्राःप्रकीर्तिता ॥ १२ ॥ वैवस्वतमिदंब्रह्मन्कथितंतेमयान्तरम् ॥ अस्मिञ्छ्रुतेनरःसद्यःपठितेचैवसत्तम ॥ मुच्यतेपातकैःसर्वैःपुण्यंचमहदश्नुते ॥ १३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवैवस्तमन्वन्तरेषट्सप्ततितमोध्यायः ॥ ७६ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ स्वायम्भुवाद्याःकथिताःसप्तैतेमनवोमम ॥ तदन्तरेषुयेदेवाराजानोमुनयस्तथा ॥ ॥ १ ॥ अस्मिन्कल्पेसप्तयेऽन्येभविष्यन्तिमहामुने ॥ मनवस्तान्समाचक्ष्वतथादेवादयश्चये ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कथितस्तवसावर्णिश्छायासंज्ञासुतश्चयः ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसमनुभविताष्टमः ॥ ३ ॥ रामोव्यासोगालवश्चदीप्तिमान्कृपएवच ॥ ऋष्यशृङ्गस्तथाद्रोणस्तत्रसप्तर्षयोऽभवन् ॥ ४ ॥ सुतापाश्चामिताभाश्चमुख्याश्चैवत्रिधासुराः ॥ त्रिंशकःकथिताश्चैषांत्रयाणांत्रिगुणो गणः ॥ ५ ॥ तपस्तपश्चशक्रश्चद्युतिर्ज्योतिःप्रभाकरः ॥ प्रभासोदयितोधर्मस्तेजोरश्मिश्चवक्रतुः ॥ ६ ॥

गर्भसे उत्पन्न पूर्वजात वैवस्वतमनुके तुल्य जिन सावर्णिका विषय तुमसे कहा है, वही आठवें मनु होंगे ॥ ३ ॥ इस मन्वन्तरमें राम, व्यास, गालव, दीप्तिमान्, कृप, ऋष्यशृंग, और द्रौणि (अश्वत्थामा) यह सात जन सप्तर्षि होंगे ॥ ४ ॥ इस मन्वन्तरमें सुतपा, अमिताभ, और मुख्य; यह तीन प्रकारके देवगण हैं, इन देवताओंके प्रत्येक बीस गण हैं. सुतरां वह सब त्रिगुणित त्रिंशक अर्थात् साठ हैं ॥ ५ ॥ तिनमें तपस्तपः, शक्र, द्युतिः ज्योतिः प्रभाकर, प्रभास, दयित, धर्म, तेजः, रश्मि और वक्रतु ॥ ६ ॥

इत्यादि समस्त देवतासुतापा देवताओंके बीस गणोंके अन्तर्गत हैं । प्रभु, विभु, और विभामादि देवता, अमिताभ देवताओंके विंशक गण हैं॥७॥ इसके पीछे तीसरे गणका विषय सुनो । दम, दांत, रित सोन और विन्त इत्यादि देवतागण मुख्य नामक तीसरे विंशक गणके अन्तर्गत हैं ॥८॥ यह सब मन्वंतराधिपति और सब मरीचि--तनय प्रजापति कश्यपजीकी संतानहैं ॥९॥ यह सावर्णि मन्वंतरमें देवता होंगे और हे मुने !विरोचनके पुत्र बलि उस समयमें इनके इंद्र होंगे ॥१०॥जो दैत्यराज अब भी प्रतिज्ञा पाशसे बँधकर पातालमें वास करते हैं । सावर्णिमनुके विरजा,अर्व्ववीर निर्मोह, सत्यवाक्, कृति और विष्णु इत्यादि नामधारी पुत्र उस समयमें राजा होंगे ॥११॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सावर्णिके मन्वंतरे

इत्यादिकस्तुसुतपादेवानांविंशकोगणः ॥ प्रभुर्विभुर्विभासाद्यस्तथान्योविंशकोगणः ॥ ७ ॥ सुराणाममिनानांतुतृतीयमपिमेशृणु ॥ दमोदान्नलतःसोसौविन्ताद्याश्चैवविंशतिः ॥ ८ ॥ मुख्याह्यतेसमाख्यातादेवामन्वन्तराधिपाः ॥ मारीचस्यैवतेपुत्राःकाश्यपस्यप्रजापतः ॥ ९ ॥ भविष्याश्चभविष्यन्तिसावर्णस्यान्तरेमनोः ॥ तेषामिन्द्रोभविष्यस्तुबलिर्वैरोचनिर्मुने ॥ १० ॥ पातालआस्तेयोऽद्यापिदैत्यःसमयबन्धनः ॥ विरजाश्चार्ववीरश्चनिर्मोहःसत्यवाक्कृतिः ॥ विष्णवाद्याश्चैवतनयाःसावर्णस्यमनोर्नृपाः ॥ ११ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेसप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ ॐ नमश्चण्डिकायै ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सावर्णिःसूर्यतनयोयोमनुःकथ्यतेष्टमः ॥ निशामयतदुत्पत्तिंविस्तराद्गदतोमम ॥१॥ महामायानुभावेनयथामन्वन्तराधिपः ॥ सबभूवमहाभागःसावर्णिस्तनयोरवेः ॥ २ ॥ स्वारोचिषेंतरेपूर्वंचैत्रवंशसमुद्भवः ॥ सुरथोनामराजाभूत्समस्तेक्षितिमंडले ॥ ३ ॥ तस्यपालयतःसम्यक्प्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ बभूवुःशत्रवोभूपाःकोलाविध्वंसिनस्तदा ॥ ४ ॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--सूर्यका पुत्र सावर्णि (अर्थात् सूर्यकी छायासे उत्पन्न)कि, जिसको अष्टम मनु कहते हैं. उसकी उत्पत्ति मैं विस्तार सहित कहताहूं सुनो॥१॥महामाया भगवतीके अनुग्रहसे वह महाभाग सूर्यका पुत्र सावर्णि जिस भाँति समस्त ऐश्वर्यसे युक्त होकर मन्वंतरका अधिपति होगया, सो सुनो ॥२॥ स्वारोचिष नामक दूसरे मनुके राज्याधिकारमें कथासे पूर्व चैत्रके वंशमें उत्पन्न सुरथ नाम सब पृथ्वी मंडलका राजा हुआ ॥ ३ ॥ जब वह सुरथ नामक नरपति अपनी प्रजाको नीतिसहित और अपने पुत्रोंकी भाँति पालने लगा, तब उसकाल

उसके कोला विध्वंस नामक राजा वैरी हो गये ॥४॥ और उनका, अत्यन्त प्रबल दंड देनेवाले सुरथके संग संग्राम हुआ। यद्यपि कोलाविध्वंसी राजा थोडे थे किंतु तो भी उन्होंने उसे युद्धसे परास्त किया, अर्थात् जीत लिया ॥ ५ ॥ अनन्तर प्रबल वैरियोंसे दबकर वह महाभाग राजा सुरथ अपने पुरमें आकर अपने देशका राज्य करने लगा ॥ ६ ॥ इसके उपरान्त उस पुरमें भी बलवान् और दुष्ट मन्त्रियोंने उस दुर्बल राजाका कोशागार (खजाना) और सेना समस्त हरण करी ॥ ७ ॥ तदनन्तर वह राज्य हरण होजाने पर मृगयाके बहाने अकेला घोडेपर चढ गहन वनमें गया ॥ ८ ॥ वहां उसने पराई हिंसा न करने वाले पशुओंसे पूर्ण और मुनि एवं उनके शिष्योंसे शोभित मेधा

तस्यतैरभवद्युद्धमतिप्रबलदंडिनः ॥ न्यूनैरपिसतैर्युद्धेकोलाविध्वंसिभिर्जितः ॥ ५ ॥ ततःस्वपुरमायातोनिजदेशाधिपोभवत् ॥ आक्रांतःसमहाभागस्तैस्तदाप्रबलारिभिः ॥ ६ ॥ अमात्यैर्बलिभिर्दुष्टैर्दुर्बलस्यदुरात्मभिः ॥ कोशोबलंचापहृतंतत्रापिस्वपुरेततः ॥ ॥ ७ ॥ ततोमृगयाव्याजेनहृतस्वाम्यःसभूपतिः ॥ एकाकीहयमारुह्यजगामगहनंवनम् ॥ ८ ॥ सतत्राश्रममद्राक्षीद्द्विजवर्यःसुमेधसः ॥ प्रशांतश्वापदाकीर्णंमुनिशिष्योपशोभितम् ॥ ९ ॥ तस्थौकंचित्सकालंचमुनिनातेनसत्कृतः ॥ इतश्चेतश्चविचरंस्तस्मिन्मुनिवराश्रमे ॥ १० ॥ सोऽचिंतयत्तदातत्रममत्वाकृष्टमानसः ॥ मत्पूर्वैःपालितंपूर्वमयाहीनंपुरंहितत् ॥ मद्भृत्यैस्तैरसद्वृत्तैर्धर्मतःपाल्यतेनवा ॥ ११ ॥ नजानेसुप्रधानोमेशूरोहस्तीसदामदः ॥ ममवैरिवशंयातःकान्भोगानुपलप्स्यते ॥ १२ ॥ येममानुगतानित्यंप्रसादधनभोजनैः ॥ अनुवृत्तिंध्रुवंतेद्यकुर्वन्त्यमहीभृताम् ॥ १३ ॥

नामक महर्षिका आश्रम देखा ॥ ९ ॥ उस स्थानमें उन मुनिने उसका अत्यन्त सतकार किया। तब वह राजा इधर उधर विचरण करता हुआ कुछ कालतक उन मुनिवरके आश्रममें रहा ॥ १० ॥ अनन्तर जब उस मनको वहांभी ममताने घुमाया तब वह चिन्ता करने लगा कि, जिस पुरका मेरे पुरखोंने पालन किया था, अब वह मुझ करके रहित होरहा है, वह मेरे दुराचारी सेवक उसकी धर्मपूर्वक रक्षा करते होंगे वा नहीं, यह मैं नहीं जानता हूं ॥ ११ ॥ सदा मदयुक्त मेरा वह प्रधान शूर हाथी शत्रुओंके वश होकर इस समय किस प्रकार भोगको प्राप्त होगा ? ॥ १२ ॥ और जो प्रतिदिन प्रसाद, धन ओर भोजनके देनेसे मेरे अनुगत अर्थात् आज्ञाकारी थे, वह अब निस्सन्देह

अन्य राजाओंकी सेवा करते होंगे ॥ १३ और अन्याय रीतिसे व्यय करने वाले निरन्तर व्यय करते हुए उन सेवकोंके द्वारा अतीवकष्टसे संचित किया खजाना नष्ट हो जायगा ॥१४॥ सुरथ राजा इस भाँति और अन्यान्य नाना प्रकारकी चिन्ता करने लगे। अनन्तर राजाने उन मुनिके आश्रमके निकट एक वैश्यको देखकर ॥ १५ ॥ पूछा तुम कौन हो ? और तुम्हारे यहा आनेका कारण क्या है ? और शोकयुक्तके समान तुम उदास क्यों दीखते हो ? ॥ १६ ॥ राजाके इस प्रकार प्रणययुक्त वचन सुनकर वैश्यने अत्यन्त नम्रभावसे राजाको उत्तर दिया ॥१७॥ वैश्य बोला--मैं धनवान् पुरुषों के कुलमें उत्पन्न हुआ समाधि नामक वैश्य हूं, असज्जन स्त्रीपुत्रोंने धनके लालचसे ॥ १८ ॥ मेरा सब धन हरण करके

असम्यग्व्ययशीलैस्तैःकुर्वद्भिःसततंव्ययम् ॥ संचितःसोतिदुःखेनक्षयंकोशोगमिष्यति ॥ १४ ॥ एतच्चान्यच्चसततंचिंतयामासपार्थिवः ॥ तत्रविप्राश्रमाभ्याशेवैश्यमेकंददर्शसः ॥ १५ ॥ सपृष्टस्तेनकस्त्वंभोहेतुश्चागमनेत्रकः ॥ सशोकइवकस्मात्त्वंदुर्मनाइवलक्ष्यसे ॥ १६ ॥ इत्याकर्ण्यवचस्तस्यभूपतेःप्रणयोदितम् ॥ प्रत्युवाचसतंवैश्यःप्रश्रयावनतोनृपम् ॥ १७ ॥ वैश्यउवाच ॥ ॥ समाधिर्नामवैश्योहमुत्पन्नोधनिनांकुले ॥ पुत्रदारैर्निरस्तश्चधनलोभादसाधुभिः ॥ १८ ॥ विहीनःस्वजनैर्दारैःपुत्रैरादायिमेधनम् ॥ वनमभ्यागतोदुःखीनिरस्तश्चाप्तबंधुभिः ॥ १९ ॥ सोहंनवेद्मिपुत्राणांकुशलाकुशलात्मिकाम् ॥ प्रवृत्तिंस्वजनानांचदाराणांचात्रसंस्थितः ॥ २० ॥ किंनुतेषांगृहेक्षेममक्षेमंकिंनुसांप्रतम् ॥ कथंतेकिंनुसद्वृत्तादुर्वृत्ताःकिंनुमेसुताः ॥ २१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ यैर्निरस्तोभवाल्लुँब्धैःपुत्रदारादिभिर्धनैः ॥ तेषुकिंभवतःस्नेहमनुबध्नातिमानसम् ॥ २२ ॥ वैश्यउवाच ॥ एवमेतद्यथाप्राहभवानस्मद्गतंवचः ॥ किंकरोमिनबध्नातिममनिष्ठुरतांमनः ॥ २३ ॥

मुझे घरसे निकाल दिया है और पुत्र स्त्री तथा धन हीन मुझको मेरे मित्र और भाई बंधुओंने भी त्याग दिया, इस कारण मैं दुःखी होकर इस वनमें आया हूं, ॥ १९ ॥ और यहां वनमें बैठा हुआ अपने पुत्रों बान्धवों तथा स्त्रियोंके कुशलाकुशलकी वार्त्ता नहीं जानता ॥ २० ॥ किन्तु उनके घरमें कुशल है, या कोई पीडा है और मेरे पुत्रोंका आचरण अब अच्छा है वा बुरा है ? ॥ २१ ॥ राजाने कहा--जिन लालची पुत्र स्त्री इत्यादिने तुमको धनके लालचसे निकाल दिया, उनके प्रति अब तुम्हारा चित्त किस लिये स्नेह करता है ? ॥ २२ ॥ वैश्यने कहा--आपने मेरे

संबंधमें जो कहा सो सत्य है, किन्तु मैं क्या करूं ? मेरा मन किसी प्रकार भी निष्ठुर नहीं होता ॥ २३ ॥ जिन पुत्रोंने धनके लालचसे पितृस्नेह छोडकर मुझे दूर किया, जिन पत्नियोंने पति प्रेम और बंधुगणोंने बंधुके स्नेहको त्यागकर मुझको घरसे निकाल दिया, उन्हीं असज्जन पुत्र, स्त्री और बंधुवर्गमें मेरा मन फँस रहा है, हे महामते ! प्रतिकूल बांधवोंमें मेरा चित्त क्यों इतना प्रेम परायण होता है, यह मैं जानकर भी नहीं समझ सकता ॥ २४ ॥ २५ ॥ उन्हींके निमित मेरा दीर्घ निःश्वास और चित्त खिन्न होता है, किंतु क्या करूं उन निर्मोहियोंमें मेरा मन कठोर नहीं होता ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! इसके उपरांत राजा सुरथ और समाधि नामक वैश्य दोनों एकत्र मिलित

यैःसंत्यज्यपितृस्नेहंधनलुब्धैर्निराकृतः ॥ पतिस्वजनहार्दंचहार्दितेष्वेवमेमनः ॥ २४ ॥ किमेतन्नाभिजानामिजानन्नपिमहामते ॥ यत्प्रेमप्रवणंचित्तंविगुणेष्वपिबंधुषु ॥२५॥ तेषांकृतेमेनिःश्वासोदौर्मनस्यंचजायते ॥ करोमिकिंयन्नमनस्तेष्वप्रीतिषुनिष्ठुरम् ॥२६॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तौसहितौविप्रतंमुनिंसमुपस्थितौ ॥ समाधिर्नामवैश्योसौसचपार्थिवसत्तमः ॥ २७ ॥ कृत्वातुतौयथान्यायं यथार्हंतेनसंविदम् ॥ उपविष्टौकथाःकाश्चिच्चक्रतुर्वैश्यपार्थिवौ ॥ २८ ॥ राजोवाच ॥ भगवंस्त्वामहंप्रष्टुमिच्छाम्येकंवदस्वतत् ॥ दुःखाययन्मेमनसः स्वचित्तायत्ततांविना ॥ २९ ॥ ममत्वंगतराज्यस्यराज्यांगेष्वखिलेष्वपि ॥ जानतोपियथाज्ञस्यकिमेतन्मुनिसत्तम ॥ ३० ॥ अयंचनिकृतःपुत्रैर्दारैर्भृत्यैस्तथोज्झितः ॥ स्वजनेनचसंत्यक्तस्तेषुहार्दीतथाप्यति ॥ ३१ ॥ एवमेषतथाहंचद्वावप्यत्यंतदुःखितौ ॥ दृष्टदोषेपिविषयेममत्वाकृष्टमानसौ ॥ ३२ ॥

होकर उन मेधा मुनिके निकट उपस्थित हुए ॥ २७ ॥ तब राजा और वैश्य मुनिका यथोचित संमान कर पूजानुक्रमसे अधिकारानुसार बैठ उनके संग अनेक प्रकारकी बात चीत करने लगे ॥ २८ ॥ राजाने कहा—हे भगवन् ! जो विषय न समझ सकनेसे मेरा मन दुःखी रहता है, उसी विषयको आपसे पूछनेकी इच्छा करता हूं, वह आप मुझको समझा दीजिये ॥ २९ ॥ मैं पूछता हूं कि, यह भ्रम है, तथापि अज्ञके समान मेरी राज्य और संपूर्ण राज्याङ्गके ऊपर ऐसी ममता है हे मुनिश्रेष्ठ ! यह किस प्रकार है ? ॥ ३० ॥ और इस वैश्यको इसके पुत्रोंने अपमानित किया है स्त्री, भृत्य और बांधवोंने परित्याग किया है, तो भी यह वैश्य उन सब दुष्ट पुत्रादिमें अनुरक्त है ॥ ३१ ॥ इस प्रकार मैं और यह वैश्य

दोनों ही इस भाँति दृश्यमान दोषपूर्ण विषयमें ममतायुक्त चित्त होकर अत्यंत दुःख पाते हैं ॥ ३२ ॥ हे महाभाग ! हम दोनों ज्ञानी होकर भी जो इस प्रकार विवेकांधके समान मोहको प्राप्त होते हैं, इसका कारण क्या है ? ॥ ३३ ॥ ऋषि बोले—समस्त जंतुओंको विषयके दृष्टिगोचर होने पर ज्ञान है । किंतु हे महाभाग ! विषय इस पृथक् पृथक् प्रकारसे ज्ञानको प्राप्त होता है ॥ ३४ ॥ देखो कोई कोई प्राणी दिनमें नहीं देख सकता कोई कोई रात्रिमें नहीं देख सकता, और कोई कोई दिन रात्रिमें समान दृष्टिवाले हैं अर्थात् उन्हें दिन और रात्रिमें एकसा दीखता है ॥ ३५ ॥ आप जिस प्रकार ज्ञानकी बात कहते हैं यद्यपि मनुष्योंको ऐसा ज्ञान है यह सत्य है, किंतु केवल जो मनुष्यमात्र ही इस प्रकार ज्ञानके अधिकारी हैं, ऐसा नहीं है, क्योंकि पशु, पक्षी और मृगादि भी इसी प्रकार ज्ञानवान् हैं ॥ ३६ ॥ विषयगोचर ज्ञान जिस प्रकार पशु

तत्किमेतन्महाभागयन्मोहोज्ञानिनोरपि ॥ ममास्यचभवत्येषाविवेकांधस्यमूढता ॥ ३३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ज्ञानमस्तिसमस्तस्य जंतोर्विषयगोचरे ॥ विषयाश्चमहाभागयांतिचैवंपृथक्पृथक् ॥ ३४ ॥ दिवांधाःप्राणिनःकेचिद्रात्रावंधास्तथापरे ॥ केचिद्दिवातथा रात्रौप्राणिनस्तुल्यदृष्टयः ॥ ३५ ॥ ज्ञानिनोमनुजाःसत्यंकिंतुतेनहिकेवलम् ॥ यतोहिज्ञानिनःसर्वेपशुपक्षिमृगादयः ॥ ३६ ॥ ज्ञानं नतन्मनुष्याणांयत्तेषांमृगपक्षिणाम् ॥ मनुष्याणांचयत्तेषांतुल्यमन्यत्तथोभयोः ॥ ३७ ॥ ज्ञानेपिसतिपश्यैतान्पतंगाञ्छावचंचुषु ॥ कणमोक्षादृतान्मोहात्पीडयमानानपिक्षुधा ॥ ३८ ॥ मानुषामनुजव्याघ्रसाभिलाषाःसुतान्प्रति ॥ लोभात्प्रत्युपकारायनन्वेतान्किंनपश्यसि ॥ ३९ ॥ तथापिममतावर्त्तेमोहगर्त्तेनिपातिताः ॥ महामायाप्रभावेणसंसारस्थितिकारिणा ॥ ४० ॥

पक्षी इत्यादिका है, मनुष्योंका भी उसी प्रकार है और मनुष्योंका जो विषय गोचर ज्ञान है, पशु पक्षियोंका भी वही है, अतएव इस प्रकार ज्ञान मनुष्य और इतर प्राणियोंका समान है ॥ ३७ ॥ इस प्रकार ज्ञान होनेपर भी परस्परमें विषयकी कितनी विभिन्नता है, देखो यद्यपि यह पक्षी भूखसे पीडित हैं किंतु तो भी अपने बच्चोंकी चोंचमें मोहसे धान्यादिका कण देते हैं, ॥ ३८ ॥ और हे मनुजश्रेष्ठ ! मनुष्य अपने पुत्रोंके प्रति अभिलाषी होकर उनका भरण पोषण करते हैं मनुष्य केवल प्रत्युपकारके लोभसे ऐसा करते हैं, यह क्या नहीं देखते हो ?॥३९॥ इस प्रकार उपकार आदिकी आशा न होनेपर भी महामायाके संसारस्थितिकारी प्रभावसे संपूर्ण प्राणी वासनारूप भँवरवाले मोहरूपी गढेमें गिरते

हैं ॥ ४० ॥ अतएव इस विषयमें आश्चर्य करना उचित नहीं है "महामाया जगत्पति हरिकी योगनिद्रा स्वरूप है वही इस जगत्को मोहित करती हैं ॥ ४१ ॥ वह भगवती महामाया ही ज्ञानियाके चित्तको बलपूर्वक खैंचकर मोहमें डालती है ॥ ४२ ॥ उसी देवीने इस चराचर जगत्को उत्पन्न किया है वही प्रसन्न होकर मनुष्योंको मुक्तिप्रद वर देती हैं ॥ ४३ ॥ वही मुक्तिकी उत्कृष्ट हेतुस्वरूप सनातनी ब्रह्मज्ञान स्वरूपा विद्या हैं, वही संसार बंधन अर्थात् जन्म और मृत्यु इत्यादिका हेतु हैं वही ईश्वरकी भी ईश्वरी हैं" ॥ ४४ ॥ राजा बोले हे भगवन् ! आपने जिसको महामाया कहा है वह देवी कौन हैं ? हे द्विज ! उनकी उत्पत्तिका वृत्तांत किस प्रकार है और उनके कर्म किस प्रकार हैं ॥ ४५ ॥

तन्नात्रविस्मयःकार्योयोगनिद्राजगत्पतेः ॥ महामायाहरेश्चैषातयासंमोह्यतेजगत् ॥ ४१ ॥ ज्ञानिनामपिचेतांसिदेवीभगवतीहिसा ॥ बलादाकृष्यमोहायमहामायाप्रयच्छति ॥ ४२ ॥ तयाविसृज्यतेविश्वंजगदेतच्चराचरम् ॥ सैषाप्रसन्नावरदानृणांभवतिमुक्तये ॥ ४३ ॥ साविद्यापरमामुक्तेर्हेतुभूतासनातनी ॥ संसारबंधहेतुश्चसैवसर्वेश्वरेश्वरी ॥ ४४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ भगवन्काहिसादेवीमहामायेति यांभवान् ॥ ब्रवीतिकथमुत्पन्नाकर्मचास्याश्चकिंद्विज ॥ ४५ ॥ यत्प्रभावाचसादेवीयत्स्वरूपायदुद्भवा ॥ तत्सर्वंश्रोतुमिच्छामित्वत्तो ब्रह्मविदांवर ॥ ४६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ नित्यैवसाजगन्मूर्त्तिस्तयासर्वमिदंततम् ॥ तथापितत्समुत्पत्तिर्बहुधाश्रूयतांमम ॥ ४७ ॥ देवानांकार्यसिद्ध्यर्थमाविर्भवतिसायदा ॥ उत्पन्नेतितदालोकेसानित्याप्यभिधीयते ॥४८॥ योगनिद्रांयदाविष्णुर्जगत्येकार्णवीकृते ॥ आस्तीर्यशेषमभजत्कल्पांतेभगवान्प्रभुः॥४९॥तदाद्वावसुरौघोरौविख्यातौमधुकैटभौ ॥ विष्णुकर्णमलोद्भूतौहंतुंब्रह्माणमुद्यतौ ॥५०॥

इसके अतिरिक्त उन देवीका स्वभाव और स्वरूप और वह जिससे उत्पन्न हैं, हे ब्रह्मज्ञश्रेष्ठ ! वह मैं सब विषय आपसे सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ ४६ ॥ ऋषि बोले—वह जगन्मूर्त्ति नित्य अर्थात् उत्पत्ति विनाशरहित हैं वह संपूर्ण विश्वमें व्याप्त होरही हैं, किन्तु तो भी उनके बहुत प्रकार उत्पन्न होनेकी कथा कहता हूं सुनो ॥ ४७ ॥ देवताओंकी कार्य सिद्धिके लिये वह जब आविर्भूत होती हैं, तब नित्य होनेपर भी लोकमें "उत्पन्न हुई कही जाती हैं" ॥ ४८ ॥ और कल्पके अन्तमें जब जगत जलमय होगया, तब भगवान् विष्णुने शय्याका आश्रय कर योगनिद्रा अवलम्बन की ॥ ४९ ॥ उसी समय दो अत्यन्त भयंकर असुर कि, जिनका नाम मधु और कैटभ विख्यात था विष्णुके कानके मलसे उत्पन्न

होकर ब्रह्माजीका संहार करनेके लिये उद्यत हुए ॥ ५० ॥ विष्णुके नाभिकलमें स्थित अति दीप्तिमान् प्रजापति ब्रह्मा उन दोनों भयंकर असुरोंको देख विष्णुको सोता हुआ देख ॥ ५१ ॥ विष्णुके जगानेको एकाग्र हृदयसे भगवान्‌के नेत्रोंमें प्राप्त हुई, विष्णुकी निद्रा स्वरूप विश्वेश्वरी, जगत्‌की रचनेवाली स्थित, संहार करनेवाली और विष्णुके तेजकी अतुल मूर्ति ऐसी निद्रा भगवतीकी स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥ ५३ ॥ ब्रह्माजी बोले—हे ब्रह्मस्वरूपे ! हे नित्ये ! तुम देवताओंके हवि देनेके मंत्र स्वाहास्वरूप हो, तुम ही पितरोंके श्राद्धादिमें स्वधा रूप हो, तुम ही वषट्कार इन्द्रके हविर्दान मंत्रकी स्वरस्वरूप हो, हे देवि ! तुम ही सुधास्वरूप हो और तुम ही अक्षरोंमें ह्रस्व, दीर्घ,

सनाभिकमलेविष्णोःस्थितोब्रह्माप्रजापतिः ॥ दृष्ट्वातावसुरौचोग्रौप्रसुप्तंचजनार्दनम् ॥ ५१ ॥ तुष्टावयोगनिद्रांतामेकाग्रहृदय स्थितः ॥ प्रबोधनार्थायहरेर्हरिनेत्रकृतालयाम् ॥५२॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ विश्वेश्वरींजगद्धात्रीस्थितिसंहारकारिणीम् ॥ स्तौमिनिद्रांभग वतींविष्णोरतुलतेजसः ॥ ५३ ॥ त्वंस्वाहात्वंस्वधात्वंहिवषट्कारःस्वरात्मिका ॥ सुधात्वमक्षरेनित्येत्रिधामात्रात्मिकास्थिता ॥ ॥ ५४ ॥ अर्धमात्रास्थितानित्यायानुच्चार्याविशेषतः ॥ त्वमेवसंध्यासावित्रित्वंदेविजननीपरा ॥ ५५ ॥ त्वयैतद्धार्यतेविश्वंत्वयैत त्सृज्यतेजगत् ॥ त्वयैतत्पाल्यतेदेवित्वमत्स्यंतेचसर्वदा ॥ ५६ ॥ विसृष्टौसृष्टिरूपात्वंस्थितिरूपाचपालने ॥ तथासंहृतिरूपांते जगतोस्यजगन्मये ॥ ५७ ॥ महाविद्यामहामायामहामेधामहास्मृतिः ॥ महामोहाभगवतीमहादेवीमहेश्वरी ॥ ५८ ॥ प्रकृतिस्त्वं चसर्वस्यगुणत्रयविभाविनी ॥ कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्चदारुणा ॥ ५९ ॥

प्लुत रूप तीन मात्रास्वरूप हो ॥ ५४ ॥ जिस अर्द्ध मात्राका उच्चारण विशेष रूपमें स्थित हो हे देवि ! तुमही वह प्रसिद्ध गायत्री स्वरूप हो। हे देवि ! तुम ही वह सर्वोत्कृष्ट जगज्जननी प्रकृति स्वरूप हो ॥ ५५ ॥ हे देवि ! तुम हीं इस जगत्‌को उत्पन्न करती हो, तुमही इसको धारण करती हो, तुमही इसको पालन करती हो और प्रलयकालमें तुमही इस जगत्‌को सदा ग्रास करती हो ॥ ५६ ॥ तुमही सर्वकालमें सृष्टि रूप, पालनमें स्थिति रूप और हे जगन्मयि ! इस जगत्‌के विनाशकालमें तुमही संसाररूपहो ॥ ५७ ॥ हे देवि ! तुमही महाविद्या, तुमही महामेधा तुमही महामाया और तुमही महास्मृति हो हे देवि ! तुमही महामोहा, महादेवी और महासुरी हो ॥ ५८ ॥ हे देवि ! तुमही सत्व, रज,

तमोगुण स्वरूपमें समस्त चराचरकी प्रकृति हो । तुमही कालरात्रि अर्थात् भयंकर यमस्वरूप हो । तुमही महारात्रि अर्थात् वस्तु मात्राकी आवरक तमोमय प्रलयस्वरूप हो । तुमही भयंकर मोहरात्रि अर्थात् जगत्की मोहजनक संसारस्वरूप हो ॥ ५९ ॥ हे देवि ! तुमही श्री अर्थात् लक्ष्मी बीज हो, तुमही ईश्वरी, तुमही लज्जा, तुमही बुद्धि और तुमही दिव्यज्ञानकी एक मात्रलक्ष्य हो ॥ तुमही लज्जा, पुष्टि, तुष्टि, शांति और क्षांतिस्वरूप हो ॥ ६० ॥ तुमही खड्गिनी (खड्गधारिणी) शूलिनी, (शूलधारिणी) तथा भयंकर स्वरूपा हो । तुमही गदिनी, चक्रिणी, शंखिनी और चापिनी अर्थात् धनुष धारिणी हो । हे देवि ! बाण भुशुंडी और परिघभी तुम्हारे अस्त्र हैं ॥ ६१ ॥ हे देवि ! तुमही सौम्या और सौम्यतरा हो, अधिक क्या जगत्में जितने सुन्दर पदार्थ हैं तुम उन सबकी अपेक्षा सुन्दरी हो । हे देवि ! श्रेष्ठ, श्रेष्ठसेभी श्रेष्ठतर, और

त्वंश्रीस्त्वमीश्वरीत्वंह्रीस्त्वंबुद्धिर्बोधलक्षणणा ॥ लज्जापुष्टिस्तथातुष्टिस्त्वंशान्तिःक्षांतिरेवच ॥ ६० ॥ खड्गिनीशूलिनीघोरागदिनीचक्रिणीतथा ॥ शंखिनीचापिनीबाणाभुशुंडीपरिघायुधा ॥ ६१ ॥ सौम्यासौम्यतराशेषसौम्येभ्यस्त्वतिसुन्दरी ॥ परापराणांपरमात्वमेवपरमेश्वरी ॥ ६२ ॥ यच्चकिंचित्क्वचिद्वस्तुसदसद्वाऽखिलात्मके ॥ तस्यसर्वस्ययाशक्तिःसात्वंकिंस्तूयसेमया ॥ ६३ ॥ ययात्वयाजगत्स्रष्टाजगत्पात्यत्तियोजगत् ॥ सोपिनिद्रावशंनीतःकस्त्वांस्तोतुमिहेश्वरः ॥ ६४ ॥ विष्णुःशरीरग्रहणमहमीशानएवच ॥ कारितास्तेयतोऽतस्तस्त्वांकस्तोतुंशक्तिमान्भवेत् ॥ ६५ ॥ सात्वमित्थंप्रभावैःस्वैरुदारैर्देविसंस्तुता ॥ मोहयैतौदुराधर्षावसुरौमधुकैटभौ ॥ ६६ ॥ प्रबोधंचजगत्स्वामीनीयतामच्युतोलघु ॥ बोधश्चक्रियतामस्यहंतुमेतौमहासुरौ ॥ ६७ ॥

तुमही श्रेष्ठतरोंकी भी ईश्वरी हो ॥ ६२ ॥ हे अखिलात्मिके ! जो कुछ सत् और असत् वस्तुहै, उनकी जो शक्ति है, तुमही वह शक्तिस्वरूप हो, अत एव तुम्हारी किस प्रकारसे स्तुति करूं ?॥६३॥ हे देवि ! जगत्की सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्त्ता उन भगवान् विष्णुको ही जब तुमने निद्राभिभूत कर रक्खा है, तब और कौन तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा ?॥६४॥हे देवि ! विष्णु, ईशान, और मुझको जब तुमनेही शरीर ग्रहण कराया है, तब दूसरा कौन पुरुष तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा ? ॥ ६५ ॥ हे देवि! वह तुम इस प्रकार स्वकीय उदार प्रभाव वर्णन द्वारा संतुष्ट होकर इन दुरधर्ष मधु कैटभ नामक दोनों असुरोंको मोहित करो ॥ ६६ ॥ और जगत्के स्वामी विष्णुभगवान्को शीघ्र जगाओ तथा इन महा असुरोंको

मारनेके लिये ज्ञान प्रदान करो ॥ ६७ ॥ ऋषि बोले जब ब्रह्माजीने उन दोनों असुरोंके विनाशार्थ विष्णुको जगानेके लिये इस प्रकारसे उन तमोगुणमयी निद्रारूपा देवीकी स्तुति करी ॥ ६८ ॥ तब अव्यक्त जन्म ब्रह्माजीके देखते हुए भगवान् विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका बाहु, हृदय और वक्षःस्थलसे निकल कर देवी स्थित हुई ॥६९॥ अनन्तर निद्रारूपा देवीके छोडदेने पर भगवान् विष्णुने एकार्णवस्थित अनन्तशय्यासे उठकर देखा ॥ ७० ॥ कि, वह दुरात्मा अत्यन्त वीर्य पराक्रमशाली क्रोधसे लाल लाल नेत्र किये मधु और कैटभ नामक दोनों असुर । ब्रह्माजीके विनाशमें उद्यत हुए हैं ॥ ७१ ॥ उठनेके पीछे भगवान् विभु हरिने उन दोनों असुरोंके संग पांचहजार वर्षतक बाहु युद्ध किया ॥ ७२॥ फिर

॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ एवंस्तुतातदादेवीतामसीतत्रवेधसा ॥ विष्णोःप्रबोधनार्थायनिहंतुंमधुकैटभौ ॥ ६८ ॥ नेत्रास्यनासिकाबाहुहृदयेभ्यस्तथोरसः ॥ निर्गम्यदर्शनेतस्थौब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ६९ ॥ उत्तस्थौचजगन्नाथस्तयामुक्तोजनार्दनः ॥ एकार्णवेऽहिशयनात्ततःसददृशेचतौ ॥ ७० ॥ मधुकैटभौदुरात्मानावतिवीर्यपराक्रमौ ॥ क्रोधरक्तेक्षणावत्तुंब्रह्माणंजनितोद्यमौ ॥ ७१ ॥ समुत्थायततस्ताभ्यांयुयुधेभगवान्हरिः ॥ पंचवर्षसहस्राणिबाहुप्रहरणोविभुः ॥ ७२ ॥ तावप्यतिबलोन्मत्तौमहामायाविमोहितौ । उक्तवंतौवरोस्मत्तोव्रियतामितिकेशवम् ॥ ७३ ॥ श्रीभगवानुवाच ॥ भवेतामद्यमेतुष्टौममवध्यावुभावपि ॥ किमन्येनवरेणात्रएतावद्धिवृतंमया ॥ ७४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ वंचिताभ्यामितितदासर्वमापोमयंजगत् ॥ विलोक्यताभ्यांगदितोभगवान्कमलेक्षणः ॥ ७५ ॥ प्रीतौस्वस्तवयुद्धेनश्लाघ्यस्त्वंमृत्युरावयोः ॥ आवांजहिनयत्रोर्वीसलिलेनपरिप्लुता ॥ ७६ ॥

उन अति बलोन्मत्त दोनों असुरोंने महामायाके द्वारा मोहित होकर केशवसे कहा "तुम हमसे वर ग्रहण करो"॥ ७३ ॥ भगवान् बोले—तुम यदि मेरे ऊपर संतुष्ट हुए हो, तो दोनों मेरे वध्य होओ अर्थात् मेरे हाथसे मारे जाओ, मेरा यही वर है, दूसरे वरसे कोई प्रयोजन नहीं है, ॥ ७४ ॥ ऋषि बोले—जब भगवानने इस प्रकार दोनोंको छला, तब उन दोनों असुरोंने संपूर्ण जगत्को जलमय देखकर भगवान् पुण्डरीकाक्षसे कहा ॥ ७५ ॥ हे केशव ! तुम्हारे संग युद्धमें हम प्रसन्न हुए हैं, अतएव तुम्हारे हाथसे हमारी मृत्यु श्लाघनीय है किन्तु जो स्थान जलमें डुबा हुआ न हो हमको उसी स्थानमें वध करो ॥ ७६ ॥

ऋषि बोले--"यही हो" यह कहकर भगवान्‌ने शंख, चक्र, गदा, धारणपूर्वक अपनी जंघापर रख चक्रसे उन दोनों असुरोंका मस्तक काटडाला॥७७॥ स्वयं ब्रह्माजीके स्तवन करनेपर यह माया देवी इस प्रकारसे उत्पन्न हुई थी अब तुमसे इन देवीके प्रभावका वर्णन करता हूं सुनो ॥ ७८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मधुकैटभवधोनाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः॥७८॥ ऋषि बोले--पूर्वकालमें जब पुरन्दर (इन्द्र) देवताओंके अधिपति और महिष नामक असुर असुरोंका स्वामी था, उस समय एकसौवर्षपर्यन्त देवता और असुरोंका परस्पर युद्ध हुआ ॥ १ ॥ उस युद्धमें महावीर्यवान् असुरोंने देवताओंकी सेनाको पराजित किया और सब देवताओंको जीतकर फिर महिषासुर आप इन्द्र बन बैठा॥२॥इसके पीछे पराजित देवता

॥ ऋषिरुवाच ॥ तथेत्युक्त्वा भगवता शंखचक्रगदाभृता ॥ कृत्वाचक्रेणवैच्छिन्नेजघनेशिरसीतयोः ॥ ७७ ॥ एवमेषासमुत्पन्नाब्रह्मणासंस्तुतास्वयम् ॥ प्रभावमस्यादेव्यास्तुभूयःशृणुवदामिते ॥ ७८ ॥ इति श्रीमा० सावर्णिकेमन्वंतरेदेवीमाहात्म्येमधुकैटभवधोनामअष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥ ७८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ देवासुरमभूद्युद्धंपूर्णमब्दशतंपुरा ॥ महिषेसुराणामधिपेदेवानांचपुरंदरे ॥ १ ॥ तत्रासुरैर्महावीर्यैर्देवसैन्यंपराजितम् ॥ जित्वाचसकलान्देवानिंद्रोभून्महिषासुरः ॥ २ ॥ ततःपराजितादेवाःपद्मयोनिंप्रजापतिम् ॥ पुरस्कृत्यगतास्तत्रयत्रेशगरुडध्वजौ ॥ ३ ॥ यथावृत्तंतयोस्तद्वन्महिषासुरचेष्टितम् ॥ त्रिदशाःकथयामासुर्देवाभिभवविस्तरम् ॥ ४ ॥ सूर्येंद्राग्न्यनिलेंदूनांयमस्यवरुणस्यच ॥ अन्येषांचाधिकारान्सस्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ५ ॥ स्वर्गान्निराकृताः सर्वेतेनदेवगणाभुवि ॥ विचरंतियथामर्त्यामहिषेणदुरात्मना ॥ ६ ॥ एतद्वःकथितंसर्वममरारिविचेष्टितम् ॥ शरणंवःप्रपन्नाःस्मोवधस्तस्यविचिंत्यताम् ॥ ७ ॥

पद्मयोनि प्रजापति ब्रह्माजीको आयकरके जहां महादेव और विष्णु थे, उस स्थानमें गये ॥ ३ ॥ देवताओंने शिवजी और भगवान्‌के सन्मुख जो कुछ वृत्तान्त हुआ था और जैसी कुछ महिषासुरने चेष्टा की थी, जिस भांति देवता पराजित हुए थे, वह सब विस्तार सहित कह सुनाया॥४॥ कि, वह महिषासुर स्वयंही सूर्य, इन्द्र, अग्नि, पवन चंद्रमा यम वरुण और अन्यान्य देवताओंके अधिकारमें अधिष्ठान करता है ॥ ५ ॥ उस दुरात्मा महिषके द्वारा स्वर्गसे निकले जाकर देवता मर्त्यलोकके मनुष्योंके समान पृथ्वीमें विचरण करते हैं ॥ ६ ॥ आपके निकट उन

असुरोंका सब पराक्रम कहा गया। हम आपकी शरणमें आये हैं. अब आप असुरके मारनेका उपाय विचारिये ॥ ७ ॥ ऋषि बोले--देवताओंके इस प्रकार वचन सुनकर विष्णु और महादेवजी अत्यंत क्रोधित हुए और क्रोधसे उनका मुख तथा भ्रुकुटी कुटिल होगई ॥ ८ ॥ इसके उपरांत अत्यंत कोपमें पूर्ण विष्णु, महादेव और ब्रह्माजीके मुखसे एक बड़ा तेज निकला ॥ ९ ॥ और इंद्रादि अन्यान्य देवताओंके शरीरसे भी इसी प्रकार तेज निकला। फिर वह निकला हुआ संपूर्ण तेज एकत्र मिलित हुआ॥१०॥अनंतर उन देवताओंने उस अधिक तेजके पुंजको कि, जिसकी ज्वाला समस्त दिशाओंमें फैलगई थी, पर्वतके समान जलते हुए देखा॥११॥इसके पीछे देवताओंको देहमें उत्पन्न हुआ और इकट्ठा हुआ

॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्थंनिशम्यदेवानांवचांसिमधुसूदनः ॥ चकारकोपंशंभुश्चभ्रुकुटीकुटिलाननौ ॥ ८ ॥ ततोतिकोपपूर्णस्यचक्रिणो वदनात्ततः ॥ निश्चक्राममहत्तेजोब्रह्मणःशंकरस्यच ॥ ९ ॥ अन्येषांचैवदेवानांशक्रादीनांशरीरतः ॥ निर्गतंसुमहत्तेजस्तच्चैक्यंसमगच्छत ॥ १० ॥ अतीवतेजसःकूटंज्वलंतमिवपर्वतम् ॥ ददृशुस्तेसुरास्तत्रज्वालाव्याप्तदिगंतरम् ॥ ११ ॥ अतुलंतत्रतत्तेजःसर्वदेवशरीरजम् ॥ एकस्थंतदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयंत्विषा ॥ १२ ॥ यदभूच्छांभवंतेजस्तेनाजायततन्मुखम् ॥ याम्येनचाभवन्केशाबाहवोविष्णुतेजसा ॥ १३ ॥ सौम्येनस्तनयोर्युग्मंमध्यमैंद्रेणचाभवत् ॥ वारुणेनचजंघोरूनितंबस्तेजसाभुवः ॥ १४ ॥ ब्रह्मणस्तेजसापादौतदंगुल्योर्कतेजसा ॥ वसूनांचकरांगुल्यःकौबेरेणचनासिका ॥ १५ ॥ तस्यास्तुदंताःसंभूताःप्राजापत्येनतेजसा ॥ नयनत्रितयंजज्ञेतथापावकतेजसा ॥ १६ ॥ भ्रुवौचसंध्ययोस्तेजःश्रवणावनिलस्यच ॥ अन्येषांचैवदेवानांसंभवस्तेजसांशिवा ॥ १७ ॥

तथा अपनी कांतिसे तीनों लोकको प्रकाशित करनेवाला वह तेज एक स्त्रीरूप होगया॥१२॥महादेवजीके मुखसे जो तेज निकला था उसके द्वारा उस स्त्रीका मुख बना। यमके तेजसे केश और विष्णुके तेजसे दोनों उसकी बाहु बनी॥१३॥चंद्रमाके तेजसे दोनों स्तन, इंद्रके तेजसे मध्यप्रदेश, वरुणके तेजसे जंघा और ऊरू, पृथ्वीके तेजसे नितम्ब ॥१४॥ ब्रह्माके तेजसे दोनों चरण, सूर्यके तेजसे पैरोंकी अंगुली और वसुगणोंके तेजसे उसके हाथोंकी अंगुली बनी। कुबेरके नाशिका ॥ १५ ॥ प्रजापतिके तेजसे उसके दांत, पावकके तेजसे तीनों नेत्र ॥ १६ ॥ दोनों संध्याओंके तेजसे भ्रुकुटि और वायुके तेजसे उसके दोनों कान बने और अन्यान्य विश्वकर्मादि देवताओंके तेजसे भी वह

मंगलमयी देवी उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ तदनंर सब देवताओंके तेजसमूहसे उत्पन्न हुई उन देवीजीको देखकर महिषासुरके द्वारा पीडित हुए देवता अतिशय हर्षको प्राप्त हुए ॥ १८ ॥ तब देवताओंने उनके निमित्त अपने २ आयुध दिये और वह जयकी इच्छा करनेवाले जयन्तीके प्रति जय२शब्द उच्चारण करने लगे॥ १९॥ अनंतर महादेवजीने अपने शूलसे शूल उत्पन्न करके उनको दिया । नारायणने अपने चक्रसे चक्र उत्पन्न करके उनको दिया॥ २०॥ वरुणने उनको शंख दिया, हुताशनने शक्ति दी, और वायुने उनको धनुष और बाणोंसे पुर्णतर कर दिया ॥ २१॥ अमरेश्वर सहस्राक्ष इन्द्रने अपने वज्रसे वज्र उत्पन्न करके उनको दिया और ऐरावत हाथीसे घंटा खोलकर दिया॥ २२॥ यमने कालदण्डसे

ततःसमस्तदेवानांतेजोराशिसमुद्भवाम् ॥ तांविलोक्यमुदंप्रापुरमरमहिषार्दिताः ॥ १८ ॥ ततोदेवाददुस्तस्यैस्वानिस्वान्यायुधानिच ॥ ऊचुर्जयजयेत्युच्चैर्जयंतीतेजयैषिणः ॥ १९ ॥ शूलंशूलाद्विनिष्कृष्यददौतस्यैपिनाकभृत् ॥ चक्रंचदत्तवान्कृष्णःसमुत्पाट्यस्वच क्रतः ॥ २० ॥ शंखंचवरुणःशक्तिंददौतस्यैहुताशन ॥ मारुतोदत्तवांश्चापंबाणपूर्णेतथेषुधी ॥ २१ ॥ वज्रमिन्द्रःसमुत्पाट्यकुलि शादमराधिपः ॥ ददौतस्यैसहस्राक्षोघंटामैरावताद्गजात् ॥ २२ ॥ कालदंडाद्यमोदंडंपाशंचांबुपतिर्ददौ ॥ प्रजापतिश्चाक्षमालांददौ ब्रह्माकमंडलुम् ॥ २३ ॥ समस्तरोमकूपेषुनिजरश्मीन्दिवाकरः ॥ कालश्चदत्तवान्खड्गंतस्यैचर्मचनिर्मलम् ॥ २४ ॥ क्षीरोदश्चामलं हारमजरेचतथांबरे ॥ चूडामणिंतथादिव्यंकुंडलेकटकानिच ॥ २५ ॥ अर्द्धचंद्रंतथाशुभ्रंकेयूरान्सर्वबाहुषु ॥ नूपुरौविमलौतद्वद्ग्रैवेय कमनुत्तमम् ॥ अंगुलीयकरत्नानिसमस्तास्वंगुलीषुच ॥ २६ ॥

दंड उत्पन्न करके उनको दिया, वरुणने उनको पाश दिया, दक्षप्रजापतिने उनको अक्षमाला दी, ब्रह्माजीने उनको कमण्डलू दिया ॥ २३ ॥ दिवाकर सूर्यने उन महादेवीके संपूर्ण रोम रोम कूपमें अपनी किरणें प्रदान की । कालने उनको निर्मल खड्ग और चर्म (ढाल) प्रदान किया ॥ २४ ॥ क्षीरोद समुद्रने उनको निर्मल मोतियोंका हार दो उज्वल वस्त्र, सुंदर चूडामणि, दिव्य कुण्डल और कंगन दिये ॥ २५ ॥ इसके अतिरिक्त अर्द्धचंद्र (स्वेतवैना) सब भुजाओंमें बाजूबंद अत्यन्त सुन्दर पाजेबे और एक अनुपम कंठका आभूषण तथा संपूर्ण अंगु लियोंमें सुन्दर अँगूठियां दीं ॥ २६ ॥

अत्यन्त निर्मल परशु अनेक प्रकारके अस्त्र और जो किसीसे न कटसके ऐसा कवच विश्वकर्माजीने उनको दिया ॥ २७ ॥ और समुद्रने नवीन खिले हुए कमलपुष्पोंकी माला कंठके लिये, और शिर पर धारण करनेके लिये और दूसरी शोभायमान माला दी ॥ २८ ॥ हिमालयने उनको वाहन सिंह और अनेक रत्न दिये । कुबेरने उनको सुरापूर्ण पानपात्र दिया ॥ २९ ॥ जो इस पृथ्वीको धारण कर रहे हैं, उन सर्व नागेस अनंतने उन देवीको महामणिसे विभूषित नागहार दिया ॥ ३० ॥ अन्यान्य देवताओंने भी उनको अनेक प्रकारके अलंकार और शस्त्र दिये । इस भाँति उनके द्वारा सन्मानित होकर देवी अट्टहासके सहित वारम्वार गर्जना करने लगी ॥ ३१ ॥ उनके उस घोर

विश्वकर्माददौतस्यैपरशुंचातिनिर्मलम् ॥ अस्त्राण्यनेकरूपाणितथाभेद्यंचदंशनम् ॥२७॥ अम्लानपंकजांमालांशिरस्युरसिचापराम् ॥
अददाज्जलधिस्तस्यैपंकजंचातिशोभनम्॥२८॥हिमवान्वाहनंसिंहंरत्नानिविविधानिच ॥ ददावशून्यंसुरयापानपात्रंधनाधिपः ॥२९॥
शेषश्चसर्वनागेशोमहामणिविभूषितम् ॥ नागहारंददौतस्यैधत्तेयःपृथिवीमिमाम् ॥ ३० ॥ अन्यैरपिसुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ॥ संमा
नितानानादोच्चैःसाट्टहासंमुहुर्मुहुः ॥ ३१ ॥ तस्यानादेनघोरेणकृत्स्नमापूरितंनभः ॥ अमायतातिमहताप्रतिशब्दोमहानभूत् ॥३२॥
चुक्षुभुःसकलालोकाः समुद्राश्चचकंपिरे ॥ चचालवसुधाचेलुः सकलाश्चमहीधराः ॥३३॥ जयेतिदेवाश्चमुदातामूचुःसिंहवाहिनीम् ॥
तुष्टुवुर्मुनयश्चैनांभक्तिनम्रात्ममूर्त्तयः ॥ ३४ ॥ दृष्ट्वासमस्तंसंक्षुब्धंत्रैलोक्यममरारयः ॥ सन्नद्धाखिलसैन्यास्तेसमुत्तस्थुरुदायुधाः
॥ ३५ ॥ आःकिमेतदितिक्रोधादाभाष्यमहिषासुरः ॥ अभ्यधावततंशब्दमशेषैरसुरैर्वृतः ॥ ३६ ॥

गर्जनसे संपूर्ण आकाश मण्डल भरगया और फिर आकाशसे एक असंभव और बड़ा भारी प्रतिशब्द हुआ ॥ ३२ ॥ उससे संपूर्ण लोक क्षुब्ध हुए अर्थात डिगमिगा गये सब समुद्र काँपगये पृथ्वी हिलने लगी और संपूर्ण पर्वत भी चलायमान होगये ॥ ३३ ॥ तब देवता उन सिंहवाहिनी भगवतीके सामने प्रसन्नतासे जय जय शब्द कर उठे । मुनिगण भक्ति नम्र शरीर होकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ ३४ ॥ संपूर्ण त्रैलोक्यको इस प्रकार संचलित हुआ देखकर असुरगण सब सेनाको सजाय हाथोंमें अस्त्र शस्त्र लेकर उठ खडे हुए ॥ ३५ ॥ "आः ! यह क्या होता है !" क्रोधसे इस प्रकार कह संपूर्ण असुरोंको साथ लिये महिषासुर उस शब्दकी ओर दौड़ा ॥ ३६ ॥

दौड़कर उस महिषासुरने देखा कि, वह देवी अपनी प्रभासे तीनों लोकको व्याप्त करके स्थित हैं। और जो अपने चरणके आक्रमणसे पृथ्वीको दबा रही हैं, मुकुटसे आकाशको छू रही हैं ॥ ३७ ॥ धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे संपूर्ण पाताल कंपायमान होरहा है, और देवी हजार भुजाओंसे समस्त दिशाओंको आच्छादन करके स्थिति करती हैं ॥ ३८ ॥ इसके पीछे उन उन देवीके संग असुरोंका युद्ध आरंभ हुआ, उस युद्धमें छूटे हुए बहुत प्रकारके अस्त्र शस्त्रोंसे आकाश प्रकाशित हो गये ॥ ३९ ॥ महिषासुरका चिक्षुर नामक सेनापती महासुर युद्ध करने लगा। चतुरंगिनी सेनासे युक्त चामर नामक असुर अनुगामी सेनाके सहित मिलकर युद्ध करने लगा ॥ ४० ॥ छै अयुत अर्थात् साठ हजार

सददर्शततोदेवींव्याप्तलोकत्रयांत्विषा ॥ पादाक्रांत्यानतभुवंकिरीटोल्लिखितांबराम् ॥ ३७ ॥ क्षोभिताशेषपातालांधनुर्ज्यानिःस्वेनताम् ॥ दिशोभुजसहस्रेणसमंताद्व्याप्यसंस्थिताम् ॥ ३८ ॥ ततःप्रववृतेयुद्धंतयादेव्यासुरद्विषाम् ॥ शस्त्रास्त्रैर्बहुधामुक्तैरादीपितादिगंतरम् ॥ ३९ ॥ महिषासुरसेनानीश्चिक्षुराख्योमहासुरः ॥ युयुधेचामरश्चान्यश्चतुरंगबलान्वितः ॥ ४० ॥ रथानामयुतैःषड्भिरुदग्राख्योमहासुरः ॥ अयुध्यतायुतानांचसहस्रेणमहाहनुः ॥ ४१ ॥ पंचाशद्भिश्चनियुतैरसिलोमामहासुरः ॥ अयुतानांशतैःषड्भिर्बाष्कलोयुयुधेरणे ॥ ४२ ॥ गजवाजिसहस्रौघैरनेकैरुग्रदर्शनः ॥ वृतोरथानांकोटयाचयुद्धेतस्मिन्नयुध्यत ॥ ४३ ॥ बिडालाख्योमहादैत्यःपंचाशद्भिरथायुतैः ॥ युयुधेसंयुगेतत्ररथानांपरिवारितः ॥ ४४ ॥ वृतःकालोरथानांचरणेपंचाशतायुतैः ॥ युयुधेसंगेतत्रतावद्भिःपरिवारितः ॥ ४५ ॥ अन्येचतत्रायुतशोरथानागहयैर्वृताः ॥ युयुधुःसंयुगेदेव्यासहतत्रमहासुराः ॥ ४६ ॥

रथ लेकर उदग्र नामक महा असुर युद्ध करने लगा । महाहनुनामक असुर हजार अयुत अर्थात् एक करोड रथ लेजाकर लडने लगा ॥४१॥ असुलोभ नामक महा असुर पांच करोड रथ सेनासे साथ लेकर युद्ध करने लगा । बाष्कलनामक महाअसुर साठ हजार रथ लेकर युद्ध करने लगा ॥ ४२ ॥ और अनेक हजार हाथी घोडोंसे युक्त होकर परिवारित नामक महाअसुर उस युद्ध क्षेत्रमें करोड रथोंके सहित मिलित होकर युद्ध करने लगा ॥ ४३ ॥ बिडाल नामक महाअसुर पांच लाख रथोंको लेकर उस रणस्थलमें युद्ध करने लगा ॥ ४४ ॥ और इतने ही रथोंको लेकर महासेनाके साथ काल नामक दैत्य युद्ध करने लगा ॥ ४५ ॥ और अन्यान्य अनेक महासुर उस रणस्थलमें अयुत अयुत

रथ हाथी और घोडोंसे वेष्टित होकर उन देवीके संग युद्ध करने लगे ॥ ४६ ॥ करोड करोड़ हजार रथ हाथी और घोडोंसे वेष्टित होकर महिषासुर उस युद्धमें गया ॥ ४७ ॥ तब असुरगण तोमर, भिन्दिपाल, शक्ति, मुसल, खड्ग फरसा और पट्टिश द्वारा देवीके संग युद्ध करने लगे ॥ ४८ ॥ किसीने शक्ति चलाई, किसीने पाश और कोई खड्ग प्रहारसे उन देवीको हनन करनेमें उद्यत हुआ ॥ ४९ ॥ फिर उन देवीने अस्त्रशस्त्रोंकी वर्षा करके उनके अस्त्र शस्त्र लीला पूर्वक ही काट डाली ॥ ५० ॥ उस काल प्रसन्न वदना देवीका देवता और ऋषिगण स्तव करने लगे। अनन्तर देवी असुरोंके देहमें अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगी ॥ ५१ ॥ देवीका वह वाहन केसरी भी केसर कंपित करके वनमें

कोटिकोटिसहस्रैस्तुरथानांदंतिनांतथा ॥ हयानांचवृतोयुद्धेतत्राभून्महिषासुरः ॥ ४७ ॥ तोमरैर्भिंदिपालैश्चशक्तिभिर्मुसलैस्तथा ॥ युयुधुःसंयुगेदेव्याखड्गैःपरशुपट्टिशैः ॥ ४८ ॥ केचिच्चचिक्षिपुःशक्तीःकेचित्पाशांस्तथापरे ॥ देवींखड्गप्रहारैस्तुतेतांहंतुंप्रचक्रमुः ॥ ॥ ४९ ॥ सापिदेवीततस्तानिशस्त्राण्यस्त्राणिचंडिका ॥ लीलयैवप्रचिच्छेदनिजशस्त्रास्त्रवर्षिणी ॥५०॥ अनायस्तानना देवी स्तूयमाना सुरर्षिभिः ॥ मुमोचासुरदेहेषुशस्त्राण्यस्त्राणिचेश्वरी ॥ ५१ ॥ सोपिक्रुद्धोधुतसटोदेव्यावाहनकेसरी ॥ चचारासुरसैन्येषुवनेष्विवहुताशनः ॥ ५२ ॥ निश्वासान्मुमुचेयांश्चयुध्यमानारणेंबिका ॥ तएवसद्यःसंभूतागणाःशतसहस्रशः ॥ ५३ ॥ युयुधुस्तेपरशुभिर्भिंदिपालासिपट्टिशैः ॥ नाशयंतोसुरगणान्देवीशक्त्युपबृंहिताः ॥ ५४ ॥ अवादयंतपटहान्गणाःशंखांस्तथापरे ॥ मृदंगांश्चतथैवान्येतस्मिन्युद्धमहोत्सवे ॥ ५५ ॥ ततोदेवीत्रिशूलेनगदयाशरवृष्टिभिः ॥ खड्गादिभिश्चशतशोनिजघानमहासुरान् ॥ ५६ ॥ पातयामासचैवान्यान्घंटास्वनविमोहितान् ॥ असुरान्भुविपाशेनबद्ध्वाचान्यानकर्षयत् ॥ ५७ ॥

अग्निके समान उस असुरसैन्यमें विचरण करने लगा॥५२॥युद्ध करते करते देवीने जो निःश्वास छोड़े; उसके द्वारा शत सहस्रगण तत्काल उत्पन्न होकर असुरोंसे युद्ध करने लगे ॥५३देवीकेप्रभावसे वर्द्धित होकर वह गण फरशा भिंदिपाल, असि और पट्टिशके द्वारा असुरोंको हनन करने लगे५४॥किसी किसी गणने उस युद्धमहोत्सवमें शंखनाद किया कोई कोई ढोल और कोई कोई मृदंग बजाने लगा॥५५॥अनंतर देवीने त्रिशूल गदा, शक्ति, वृष्टि और खड्गादि द्वारा शत शत महा असुरोंका विनाश किया॥५६॥किसीको घंटेके शब्दसे मोहित करके मार डाला और अन्य

असुरोंको पाशद्वारा बांधकर पृथ्वीमें खींचा ॥५७॥ किसी किसीको अपने खड्गकी तीक्ष्ण धारसे दो खंड कर दिया और किसी किसीको गदाके प्रहारसे ऐसा मारा कि, वह पृथ्वीमें लोट गया॥५८॥ कोई कोई मुसलके द्वारा ताडित होकर अतिशय रुधिरको वमन करने लगा और कितनेही छातीमें त्रिशूलद्वारा विदारित होकर पृथ्वीमें गिरपडे॥५९॥कोई कोई युद्धभूमिमें देवीके बाणसमूहसे निरंतर अर्थात् मध्यदेशहीन हुए। असुरोंकी सेनाके साथवाले देवशत्रुगण इस प्रकार प्राणत्याग करनेलगे ॥६०॥किसी किसी असुरकी भुजाएँ कट गई, किसी किसीकी ग्रीवा छिन्न होगई, अन्यान्य अनेक असुरोंके मस्तक कटगये, कोई कोई बीचमेंसे कटगया॥६१॥ किसी महाअसुरकी जंघा कटगकर पृथ्वीमें गिरपडी। देवीने किसी

केचिद्द्विधाकृतास्तीक्ष्णैःखड्गपातैस्तथापरे ॥ विपोथितानिपातेनगदयाभुविशेरते ॥ ५८ ॥ वेमुश्चकेचिद्रुधिरंमुसलेनभृशंहताः ॥ केचिन्निपतिताभूमौभिन्नाःशूलेनवक्षसि ॥ ५९ ॥ निरंतरशरौघेणकृत्ताःकेचिद्रणाजिरे ॥ शैलानुकारिणःप्राणान्मुमुचुस्त्रिदशार्दनाः ॥ ॥ ६० ॥ केषांचिद्बाहवश्छिन्नाश्छिन्नग्रीवास्तथापरे ॥ शिरांसिपेतुरन्येषामन्येमध्येविदारिताः ॥ ६१ ॥ विच्छिन्नजंघास्त्वपरे पेतुरुर्व्यांमहासुराः ॥ एकबाह्वक्षिचरणाःकेचिद्देव्याद्विधाकृताः ॥ ६२ ॥ छिन्नेपिचान्येशिरसिपतिताःपुनरुत्थिताः ॥ कबंधायुयुधुर्देव्यागृहीतपरमायुधाः ॥ ६३ ॥ ननृतुश्चापरेतत्रयुद्धेतूर्यलयाश्रिताः ॥ कबंधाश्छिन्नशिरसःखड्गशक्त्यृष्टिपाणयः ॥ ६४ ॥ तिष्ठ तिष्ठेतिभाषंतोदेवीमन्येमहासुराः ॥ रुधिरौघविलुप्तांगाःसंग्रमोलोमहर्षणे ॥ ६५ ॥

किसीकी एक एक बाहु अक्षि (आंख) और चरण विनष्ट करडाला किसीका मध्यदेश दो टुकडे कर दिया॥६२॥ कोई२मस्तक कटनेसे पृथ्वीमें गिरकर फिर उठे कोई कबन्ध उत्कृष्ट अस्त्र ग्रहण करके देवीके संग युद्ध करने लगे ॥६३॥ कितनेही कबंध बाजेकी लयके अनुसार नाचने लगे और उस युद्धमें कितनेही बड़े बड़े असुर कि, जिनके मस्तक कटगये थे, और कबन्ध रह गये थे। वह हाथोंमें खड्ग,शक्ति और दोनों ओर धार वाली तलवार लेकर ॥६४॥ देवीसे 'ठहरो ठहरो' इस प्रकार कहने लगे। जिस स्थानमें यह लोमहर्षण महा संग्राम हुआ, वह स्थान उन गिरे हुए रथ,

१ "नागानामयुतं तुरंगनियुतं सांगं रथानां शतम्। पत्तीनां दशकोटयो निपतिता एकः कबंधो रणे।" अर्थात् अयुत (१०००० हाथी, नियुत (१०००००) घोडे, डेढ़सौ रथ और दश करोड पैदलोंके निहत होनेपर युद्धमें एक कबंध उठता है।

हाथी, घोडे और असुरोंके द्वारा अगम्य होगया अर्थात् ऐसा होगया कि, जिसमें कोई जान सके॥६५॥६६॥ और वहां शीघ्रही उस रणके मध्यमें असुरोंकी सेनाके हाथी, असुर और घोडे इनके रुधिरसमूहसे बडी नदियां बहने लगी॥६७॥अग्नि जिस प्रकार तृण काष्ठके समूहको क्षण भरमें भस्म करती है, ऐसेही अम्बिका देवीने उन असुरोंके महासैन्यको क्षण मात्रमें क्षय किया ॥६८॥ देवीका वाहन सिंहभी बडा नाद करता हुआ अपने सटाके बालोंको कंपाता हुआ अत्यन्त क्रोधसे सब असुरोंके प्राण हरण करने लगा ॥ ६९. ॥ और असुरोंके शरीरोंमेंसे मानों प्राणोंहीको ढूंढने लगा । और देवीके सब गणोंनेभी उन महा असुरोंके संग ऐसा संग्राम किया कि, जिससे स्वर्गवासी देवता अत्यन्त सन्तुष्ट होकर उनके

पातितैरथनागाश्वैरसुरैश्चवसुंधरा ॥ अगम्यासाऽभवत्तत्रयत्राभूत्समहारणः ॥ ६६ ॥ शोणितौघामहानद्यःसद्यस्तत्रविसुस्रुवुः मध्येचासुरसैन्यस्यवारणासुरवाजिनाम् ॥ ६७ ॥ क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणांतथांबिका ॥ निन्येक्षयंयथावह्निस्तृणदारुमहाचयम् ॥ ६८ ॥ सचसिंहोमहानादमुत्सृजन्धुतकेसरः ॥ शरीरेभ्योमरारीणामसूनिवविचिन्वति ॥ ६९ ॥ देव्यागणैश्चतैस्तत्रकृतंयुद्धंमहासुरैः ॥ यथैतांतुष्टुवुर्देवाःपुष्पवृष्टिमुचोदिवि ॥७०॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेमन्वन्तरेदेवीमाहात्म्येएकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ निहन्यमानंतत्सैन्यमवलोक्यमहासुरः ॥ सेनानीश्चिक्षुरःकोपाद्ययौयोद्धुमथांबिकाम् ॥१॥ सदेवीं शरवर्षेणववर्षसमरेऽसुरः ॥ यथामेरुगिरेःशृंगंतोयवर्षेणतोयदः ॥ २ ॥ तस्यच्छित्त्वाततोदेवीलीलयैवशरोत्करान् ॥ जघानतुरगान्बाणैर्यंतारंचैववाजिनाम् ॥ ३ ॥ चिच्छेदचधनुःसद्योध्वजंचातिसमुच्छ्रितम् ॥ विव्याधचैवगात्रेषुच्छिन्नधन्वानमाशुगैः ॥ ४ ॥

ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगे ॥ ७० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकोनाशीतितमोऽध्यायः ॥ ७९ ॥ उस सब सेनाको निहत हुआ देखकर सेनापति महासुर चिक्षुर युद्ध करनेके लिये क्रोधसे अम्बिकाके निकट आया ॥ १ ॥ जलधर जिस प्रकार सुमेरु पर्वतके शृंगमें जलकी वर्षा करते हैं, वह असुर भी इसी प्रकार देवीके ऊपर बाणोंकी वर्षा करने लगा ॥२॥ फिर देवीने लीलापूर्वकही उसके बाणोंको छेदन करके, रथके घोडे और सारथीको बाणोंसे मार डाला ॥ ३ ॥ देवीने उसी समय फिर उसका धनुष और अत्यन्त ऊंची ध्वजा काटकर उस टूटे हुए धनुषवाले चिक्षुरका शरीर मारे बाणोंके वींध डाला ॥ ४ ॥

फिर जब उसका धनुष कट गया, रथ टूट गया, तथा घोडे और सारथी मर गये। तब वह असुर अपनी ढाल तलवार लेकर देवीकी ओर धावमान हुआ ॥ ५ ॥ और अत्यन्त वेगसे अपनी पैनीधारवाली तलवारके द्वारा सिंहके मस्तकमें आघात करके देवीके भी बांये हाथमें आघात किया ॥ ६ ॥ हे नृपनन्दन! उस असुरकी वह तलवार देवीके हाथका स्पर्श होते ही टूट गई। फिर क्रोध सहित लाल लाल नेत्र किये उस महा असुरने शूल ग्रहण करके ॥ ७ ॥ उसने उसे भद्र कालीपर फेंका। तब देवीने उस त्रिशूलको तेजसे जाज्वल्यमान और आकाशसे गिरते हुए दूसरे सूर्य मण्डलके ॥ ८ ॥ समान देखकर अपना शूल चलाया। उस देवीके चलाये शूलने असुरके चलाये

सच्छिन्नधन्वाविरथोहताश्वोहतसारथिः ॥ अभ्यधावततांदेवींखड्गचर्मधरोसुरः ॥ ५ ॥ सिंहमाहत्यखड्गेनतीक्ष्णधारेणमूर्धनि ॥ आजघानभुजेसव्येदेवीमप्यतिवेगवान् ॥ ६ ॥ तीस्याःखड्गोभुजंप्राप्यपफालनृपनंदन ॥ ततोजग्राहशूलंसकोपादारुणलोचनः ॥ ७ ॥ चिक्षेपचततस्तत्तुभद्रकाल्यांमहासुरः ॥ जाज्वल्यमानंतेजोभीरविबिंबमिवांबरात् ॥ ८ ॥ दृष्ट्वातदापतच्छूलंदेवीशूलममुंचत ॥ तेन तच्छतधानीतंशूलंसचमहासुरः ॥ ९ ॥ हतेतस्मिन्महावीर्येमहिषस्यचमूपतौ ॥ आजगामगजारूढश्चामरस्त्रिदशार्दनः ॥ १० ॥ सोपिशक्तिंमुमोचाथदेव्यास्तामम्बिकाद्रुतम् ॥ हुंकाराभिहतांभूमौपातयामासनिष्प्रभाम् ॥ ११ ॥ भग्नांशक्तिंनिपतितांदृष्ट्वाक्रोध समन्वितः ॥ चिक्षेपचामरःशूलंबाणैस्तदपिसाच्छिनत् ॥ १२ ॥ ततःसिंहःसमुत्पत्यगजकुंभांतरेस्थितः ॥ बाहुयुद्धेनयुयुधेतेनोच्चैस्त्रि दशारिणा ॥ १३ ॥

हुए शूलके शतखंड करके महाअसुर चिक्षुरके भी शत खंड कर डाले ॥ ९ ॥ महिषासुरका सेनापति वह महावीर्यवान् चिक्षुर नामक असुर जब मारा गया, तब देवताओंका शत्रु चामर नामक असुर हाथीपर चढकर युद्धार्थ देवीके सन्मुख आया ॥ १० ॥ फिर उस महाअसुरने देवीको लक्ष्य करके शक्ति छोडी, किंतु वह शक्ति देवीके हुंकार शब्दसे अभिहित और प्रभाहीन होकर पृथ्वीमें गिरगई ॥ ११ ॥ अपनी शक्तिको टूटकर गिरता हुआ देखकर चामर असुरने क्रोध पूर्वक शूल चलाया पर देवी अपने बाणोंसे उस शूलको भी छेदन किया ॥ १२ ॥ अनन्तर देवीका वाहन सिंह उछलकर गजके मस्तकपर चढगया और हाथीकी पीठपर बैठे हुए उस देव शत्रु असुरसे बाहुयुद्ध

करने लगा ॥ १३ ॥ सिंह और चामरासुर दोनों युद्ध करते करते उस हाथीकी पीठसे नीचे गिरे और परस्पर अत्यन्त क्रोधित होकर दारुण प्रहारोंके द्वारा युद्ध करने लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर कुछ कालोपरान्तही सिंहने आकाशमें उछल और फिर वहाँसे पृथ्वीमें गिरकर अपने पंजोंके प्रहार द्वारा चामर असुरके मस्तकको देहसे पृथक् करदिया ॥ १५ ॥ देवीने उदग्रनामक असुरको पत्थर और वृक्षोंकी वृष्टि करके मारडाला। दांत और घूसोंके प्रहारसे कराल नामक असुरको विनाश किया ॥ १६ ॥ क्रोधमें भरी हुई देवीने गदापात द्वारा उद्धत नामक असुरको चूर्ण करडाला । फिर बाष्कल नामक असुरको भिंदिपालसे तथा ताम्र और अन्धक नामक दोनों असुरोंके बाणोंसे विनाश किया ॥ १७ ॥

युध्यमानौततस्तौतुतस्मान्नागान्महींगतौ ॥ युयुधातेतिसंरब्धौप्रहारैरतिदारुणैः ॥ १४ ॥ ततोवेगात्खमुत्पत्यनिपत्यचमृगारिणा ॥
करप्रहारेणशिरश्चामरस्यपृथक्कृतम् ॥१५॥ उग्रश्चरणेदेव्याशिलावृक्षादिभिर्हतः ॥ दंतमुष्टितलैश्चैवकरालश्चनिपातितः ॥ १६ ॥
देवीक्रुद्धागदापातैश्चूर्णयामासचोद्धतम् ॥ बाष्कलंभिन्दिपालेनबाणैस्ताम्रंतथांधकम् ॥ १७ ॥ उग्रास्यमुग्रवीर्यंचतथैवचमहाहनुम् ॥
त्रिनेत्राचत्रिशूलेनजघानपरमेश्वरी ॥ १८ ॥ बिडालस्यासिनाकायात्पातयामासवैशिरः ॥ दुर्धरंदुर्मुखंचोभौशरैर्निन्येयमक्षयम् ॥
कालंचकालदंडेनकालरात्रिरपातयत् ॥ १९ ॥ "उग्रदर्शनमत्युग्रैःखड्गपातैरताडयत ॥ असिनैवासिलोमानमच्छिदत्सारणोत्सवे ॥
गणैःसिंहेनदेव्याचजयक्ष्वेडाकृतोत्सवैः" ॥ २० ॥ एवंसंक्षीयमाणेतुस्वसैन्येमहिषासुरः ॥ माहिषेणस्वरूपेणत्रासयामासतान्गणान्
॥ २१ ॥ कांश्चित्तुंडप्रहारेणखुरक्षेपैस्तथापरान् ॥ लांगूलताडितांश्चान्याञ्छृंगाभ्यांचविदारितान् ॥ २२ ॥

त्रिनेत्रा परमेश्वरी देवीने त्रिशूलसे उग्रास्य, उग्रवीर्य और महाहनुनामक तीन असुरोंको संहार किया ॥ १८ ॥ असिद्वारा बिडालनामक असुरका मस्तक देहसे काटकर गिरा दिया । दुर्धर और दुर्मुख नामक दोनों असुरोंको बाणोंके द्वारा यमालयमें भेज दिया । और कालरात्रिने काल असुरको कालदण्डसे नष्टकर गिरा दिया ॥ १९ ॥ और उग्रदर्शनको बडे उग्रखड्गपातसे ताडन किया, और असिलोमाको असि द्वारा युद्धस्थलमें नष्ट करदिया, और गणोंने तथा सिंहने जयपूर्वक सिंहनाद किया ॥२०॥ इस प्रकारसे अपनी सेनाको क्षय होता हुआ देख महिषासुर अपना महिषरूप धारणकर देवीके उन गणोंको भय दिखाने लगा ॥ २१ ॥ किसीको मुखके प्रहारद्वारा किसीको खुरके प्रहारद्वारा किसीको पूंछके

प्रहारद्वारा और किसीको सींगोंसे विदारण करने लगा ॥ २२ ॥ किसीको वेगद्वारा, किसीको गर्जनाद्वारा किसीको भ्रमणद्वारा और किसी किसीको श्वासकी पवनसे मारकर भूमिमें गिरादिया ॥२३॥ इस प्रकार प्रमथ सैन्य अर्थात् देवीके गणोंको गिराकर वह असुर महादेवीके सिंहको मारनेकी इच्छासे दौड़ा, तब अम्बिका कुपित हुई ॥ २४ ॥ महावीर्यवान् महिषासुरभी अत्यन्त क्रोधित हो खुरोंसे पृथ्वीको खोदता हुआ दोनों सींगोंसे संपूर्ण ऊंचे पर्वतोंको फेंककर गर्जना करने लगा ॥२५॥ और उसके वेगसहित भ्रमण करनेपर खुदी हुई भूमि मृदुल होगई तथा पूंछसे ताडितसमुद्र चारों ओर फैलने लगा ॥२६॥ कंपायमान सींगोंसे फाडे हुए मेघोंके टुकडे टुकडे हो गये और इसके श्वासकी पवनद्वारा

वेगेनकांश्चिदपरान्नादेनभ्रमणेनच ॥ निश्वासपवनेनान्यान्पातयामासभूतले ॥ २३ ॥ निपात्यप्रमथानीकमभ्यधावतसोसुरः ॥ सिंहं हंतुंमहादेव्याःकोपंचक्रेततोंबिका ॥ २४ ॥ सोपिकोपान्महावीर्यःक्षुरक्षुण्णमहीतलः ॥ शृंगाभ्यांपर्वतानुच्चैश्चिक्षेपचननादच ॥ २५ ॥ वेगभ्रमणविक्षुण्णमहीतस्यव्यशीर्यत ॥ लांगूलेनाहतश्चाब्धिःप्लावयामाससर्वतः ॥ २६ ॥ धुतशृंगविभिन्नाश्चखंडंखंडंययुर्घनाः ॥ श्वासानिलास्ताःशतशोनिपेतुर्नभसोऽचलाः ॥ २७ ॥ इतिक्रोधसमाध्मातमापतंतंमहासुरम् ॥ दृष्ट्वासाचंडिकाकोपंतद्वधायतदाकरोत् ॥ २८ ॥ साक्षिप्त्वातस्यवैपाशंतंबबंधमहासुरम् ॥ तत्याजमाहिषंरूपंसोपिबद्धोमहामृधे ॥ २९ ॥ ततःसिंहोभवत्सद्योयावत्तस्यांबिकाशिरः ॥ छिनत्तितावत्पुरुषःखड्गपाणिरदृश्यत ॥ ३० ॥ ततएवाशुपुरुषंदेवीचिच्छेदसायकैः ॥ तंखड्गचर्मणासार्धंततःसोभून्महागजः ॥ ३१ ॥ करेणचमहासिंहंतचकर्षजगर्जच ॥ कर्षतस्तुकरंदेवीखड्गेननिरकृंतत ॥ ३२ ॥

सैंकडों पर्वत आकाशसे गिरपडे ॥२७॥ इस प्रकार कोपमें भरे हुए असुरको निकट आता देखकर चण्डिकादेवीने भी कुपितहो उसी समय उसके मारनेकी इच्छा करी ॥२८॥ फिर देवीने पाश फेंककर उस महा असुरको बांधलिया और उस महिषासुरने भी उस युद्धक्षेत्रमें अपना महिषरूप त्याग ॥ २९ ॥ तत्काल सिंहरूप धारण किया अनन्तर ज्योंही अम्बिका देवी उसका मस्तक काटनेमें उद्यतहुई, तब वह खड्ग हाथमें लिये पुरुषरूपमें दिखाई देने लगा ॥३०॥ इसके उपरान्त देवीने बाणोंसे ढाल और तलवारके सहित उस पुरुषको छेदन करडाला, तब वह अत्यन्त बड़े हाथीका रूप धारण करके सूंडसे देवीके वाहन महासिंहको खैंचता हुआ गर्जने लगा । तब देवीने खड्गसे उस सिंहको खैंचते हुए

हाथीकी सूंड काटडाली ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ अनन्तर महा असुर पुनर्वार महिषरूप धारणकरके पूर्वोक्त प्रकारसे सचराचर त्रैलोक्यको फिर क्षोभित (दुःखित) करने लगा ॥ ३३ ॥ इसके पीछे जगत्की माता चण्डिका कुपित होकर उत्तम मधु पीने लगी और लाल लाल नेत्र किये बारंबार हँसने लगी ॥३४॥ तब वह बल, वीर्य, मतवाला असुरभी गर्जता हुआ दोनों सींगोंके द्वारा चण्डिकादेवीके ऊपर पर्वत फेंकने लगा ॥ ३५ ॥ देवी चण्डिका अपने बाणोंके द्वारा उसके चलाये सब पर्वतोंको चूर्ण करके उस असुरसे कहने लगी। किन्तु उस समय मद्य पीनेके कारण चण्डिकाका वदन रक्तवर्ण हो गया और समस्त अक्षरोंका स्पष्ट उच्चारण नहीं हुआ ॥ ३६ ॥ देवी बोली–रे मूढ! जबतक

ततोमहासुरोभूयोमाहिषंवपुरास्थितः ॥ तथैवक्षोभयामासत्रैलोक्यंसचराचरम् ॥ ३३ ॥ ततःक्रुद्धाजगन्माताचंडिकापानमुत्तमम् ॥
पपौपुनःपुनश्चैवजहासारुणलोचना ॥ ३४ ॥ ननर्दचासुरःसोपिबलवीर्यमदोद्धतः ॥ विषाणाभ्यांचचिक्षेपचंडिकांप्रतिभूधरान् ॥
॥ ३५ ॥ साचतान्प्रहितांस्तेनचूर्णयंतीशरोत्करैः ॥ उवाचतंमदोद्धूतमुखरागाकुलाक्षरम् ॥ ३६ ॥ देव्युवाच ॥ ॥ गर्जगर्जक्षणंमूढ
मधुयावत्पिबाम्यहम् ॥ मयात्वयिहतेत्रैवगर्जिष्यंत्याशुदेवताः ॥ ३७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवमुक्त्वासमुत्पत्यसारूढातंमहासुरम् ॥
पादेनाक्रम्यकंठेचशूलेनैनमताडयत् ॥ ३८ ॥ ततःसोपिपदाक्रांतस्तयानिजमुखात्ततः ॥ अर्द्धनिष्क्रांतएवासीद्देव्यावीर्येणसंवृतः ॥
॥ ३९ ॥ अर्द्धनिष्क्रांतएवासौयुध्यमानोमहासुरः ॥ तयामहासिनादेव्याशिरश्छित्त्वानिपातितः ॥ ४० ॥ एवंसमहिषोनामससैन्यः
ससुहृद्गणः ॥ त्रैलोक्यंमोहयित्वातुतयादेव्याविनाशितः ॥ ४१ ॥

मैं मधुपान करती हुई, तबतक तू गर्जले' मेरेसे तुझको शीघ्र विनाश करनेपर देवतागण इसी स्थानमें गर्जना करेंगे ॥३७॥ ऋषि बोले–देवी इस प्रकार कह फिर उछलकर उस महा असुरके ऊपर चढगई और उसको अपने पैरोंसे दबाकर उसके कंठमें त्रिशूलसे छेदन करने लगी ॥ ३८ ॥ अनन्तर वह असुरभी देवीके पैरोंसे दबनेके कारण देवीके पराक्रमके सन्मुख अस्त होगया और उसके मुखकी कान्ति आधी रहगई ॥ ३९ ॥ तदनन्तर आधीकांतिवाले लडते हुए उस महा असुरका देवीने उसे महाअसिके द्वारा मस्तक काटकर विनाश किया ॥ ४० ॥ इस प्रकारसे वह महिषासुर अपनी सेना और सुहृद्गणोंके सहित त्रिलोकीको मोहितकर अन्तमें देवीके हाथसे निहत हुआ ॥ ४१ ॥

उस समय महिषासुरके मरनेपर त्रिलोकीके देवता मनुष्य और पातालवासी बलि आदि असुरोंने देवीका जयजयकार किया ॥ ४२ ॥ तदनन्तर देवीने हाहाकार करती हुई दैत्योंकी सब सेनाको नाश कर दिया जिससे कि, सब देवतागण अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुए ॥ ४३ ॥ देवता और दिव्य महर्षिगण देवीकी स्तुति करने लगे । गन्धर्व पतिगण गाने लगे और अप्सरायें नाचने लगीं ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये महिषासुरवधोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषिबोले—उस समय इन्द्रको आदिले सब देवता महिषासुरके मरनेसे प्रसन्न हो देवीकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ जब भगवती देवीने देवताओंके वैरी अत्यन्त वीर्यवान् उस दुष्ट

त्रैलोक्यस्थैस्तदाभूतैर्महिषेविनिपातिते ॥ जयेत्युक्तंततःसर्वैःसदेवासुरमानवैः ॥ ४२ ॥ ततोहाहाकृतंसर्वंदैत्यसैन्यंननाशयत् ॥ प्रहर्षंचपरंजग्मुः सकलादेवतागणाः ॥ ४३ ॥ तुष्टुवुस्तांसुरादेवींसहदिव्यैर्महर्षिभिः ॥ जगुर्गंधर्वपतयोननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ४४ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमहात्म्ये महिषासुरवधोनामाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८० ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ततःसुरगणाःसर्वेदेव्याइंद्रपुरोगमाः ॥ स्तुतिमारेभिरेकर्त्तुंनिहतेमहिषासुरे ॥ १ ॥ शक्रादयःसुरगणानिहतेतिवीर्येतस्मिन्दुरात्मनिसुरारिबलेचदेव्या ॥ तांतुष्टुवुः प्रणतिनम्रशिरोधरांसावाग्भिःप्रहर्षपुलकोद्गमचारुदेहा ॥ २ ॥ देवाऊचुः ॥ देव्याययाततमिदंजगदात्मशक्त्यानिःशेषदेवगणशक्तिसमूहमूर्त्या ॥ तामंबिकामखिलदेवमहर्षिपूज्यांभक्त्यानताःस्मविदधातुशुभानिसानः ॥ ३ ॥ यस्याःप्रभावमतुलंभगवाननंतोब्रह्माहरश्चनहिवक्तुमलंबलंच ॥ साचंडिकाखिलजगत्परिपालनायनाशायचाशुभभयस्यमतिंकरोतु ॥ ४ ॥

महिषासुरका वध किया, तब इंद्र इत्यादि देवताओंके समूह कि, जिनके शोभायमान शरीर अतिप्रसन्नताके कारण पुलकित हो गयेथे, अपने मस्तक कंठ और कंधोंको झुकाकर नमस्कारपूर्वक नानाप्रकारके बचनोंसे दुर्गाका स्तवन करने लगे ॥२॥ देवता बोले-जिन्होंने अपने प्रभावसे इस चराचर जगत्को विस्तारित किया है, संपूर्ण देवताओंके शक्तिसमूहसे मिलित होकर जो मूर्त्तिरूपमें परिणत हुई है और जो संपूर्ण देवता तथा महर्षियोंकी पूजनीय हैं हम भक्तिसहित उन अम्बिकादेवीको प्रमाण करते हैं वह हमारा मंगल करे॥३॥ भगवान् अनन्तदेव, ब्रह्मा और महादेव जिनके प्रभाव और बलका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं होते; वह चण्डिका देवी संपूर्ण जगत्का पालन करनेके निमित्त तथा अमंगल और भय

विनाशके निमित्त इच्छा करो॥४॥जो पुण्यवान् मनुष्योंके घरमें सम्पदस्वरूप हैं; जो पापियोंके घरमें अलक्ष्मीस्वरूप हैं; जो समन्न पढ़नेमें निमल अंतःकरणवालेके हृदयमें बुद्धिस्वरूप हैं जो श्रेष्ठ आचरणवालोंकी श्रद्धास्वरूप और जो सत्कुलोत्पन्न मनुष्योंकी लज्जास्वरूप हैं, हम उन्हीं तुमको नमस्कार करते हैं, हे देवि!तुम विश्वका पालन करो ॥५॥तुम्हारे इस प्रकार अचिन्त्यरूपका वर्णन करनेमें हम कैसे समर्थ हों। हे देवि! तुम्हारा असुरक्षयकारी अपरिमित वीर्य तथा असुर और देवताओंके प्रति युद्धक्षेत्रमें वह सब अति अद्भुत व्यवहार हम किस भांतिसे वर्णन करें ॥६॥ हे देवि!तुम विकार रहित आद्याप्रकृति हो अथ च सत्व, रज और तमोगुणात्मिका होनेपरभी जगत्का हेतु हो, राग द्वेषादि युक्त विष्णु, महादेव आदि

याश्रीःस्वयंसुकृतिनांभवनेष्वलक्ष्मीःपापात्मनांकृतधियांहृदयेषुबुद्धिः ॥ श्रद्धासतांकुलजनप्रभवस्यलज्जातांत्वानताःस्मपरिपालयदेविविश्वम् ॥ ५ ॥ किंवर्णयामतवरूपमचिंत्यमेतत्किंचातिवीर्यमसुरक्षयकारिभूरि ॥ किंचाहवेषुचरितानितवाद्भुतानिसर्वेषुदेव्यसुरदेवगणादिकेषु ॥ ६ ॥ हेतुःसमस्तजगतांत्रिगुणापिदोषैर्नज्ञायसेहरिहरादिभिरप्यपारा ॥ सर्वाश्रयाखिलमिदंजगदंशभूतमव्याकृताहिपरमाप्रकृतिस्त्वमाद्या ॥ ७ ॥ यस्याःसमस्तसुरताःसमुदीरणेनतृप्तिंप्रयांतिसकलेषुमखेषुदेवी ॥ स्वाहासिवैपितृगणस्यचतृप्तिहेतुरुच्चार्यसेत्वमतएवजनैःस्वधाच ॥ ८ ॥ यामुक्तिहेतुरविचिंत्यमहाव्रतात्वमभ्यस्यसेसुनियतेंद्रियतत्त्वसारैः ॥ मोक्षार्थिभिर्मुनिभिरस्तसमस्तदोषैर्विद्यासिसाभगवतीपरमाहिदेवि ॥ ९ ॥ शब्दात्मिकासुविमलर्ग्यजुषांनिधानमुद्गीथरम्यपदपाठवतांचसाम्नाम् ॥ देवीत्रयीभगवतीभवभावनायवार्त्तासिसर्वजगतांपरमार्त्तिहंत्री ॥ १० ॥

भी तुम्हारा प्रकृत तत्त्व नहीं जानते, हे देवि ! तुम अपार और सब पदार्थोंकी आश्रयस्वरूप हो, यह जगत् तुम्हाराही अंशभूत है ॥ ७ ॥ हे देवि!संपूर्ण यज्ञोंमेंही तुम्हारा नाम उच्चारण करनेसे समस्त देवता तृप्तिलाभ करते हैं, क्योंकि तुम्ही देवता और ऋषियोंकी तृप्तिकारक स्वाहा और स्वधास्वरूप कहकर उच्चारित होती हो॥८॥हे देवि! तुम्हारी बृहत् उपासनाका विषय अचिन्त्य है और जितेंद्रिय तत्त्वसार तथा दोषहीन मोक्षार्थी मुनिगण तुमको मुक्तिका कारण कहकर सेवन करते हैं, हे देवि ! अतएव तुम्हीं भगवती सर्वोत्कृष्ट मोक्षविद्या हो ॥ ९ ॥ हे देवि ! तुम शब्दमय तीनों वेदस्वरूप हो और प्रणवयुक्त मनोहर पद पाठशाली ऋक् यजु और सामवेदका आश्रयस्वरूप हो, तुम्हीं देवी, सर्वैश्वर्य युक्त हो,

तुम्हीं संसारकी जीवन रक्षाके निमित्त कृषिस्वरूप हो, हे देवि! तुम्हीं संपूर्ण जगत्की विषम पीडाका विनाश करनेवाली हो॥ १०॥ हे देवि! तुम्हीं बुद्धि स्वरूप हो, क्योंकि तुम दुर्गम भवसागरमें अद्वितीय नौकास्वरूप हो, तुम्हीं कैटभ शत्रुके मारनेवाले विष्णुभगवान्के हृदयमें वास करनेवाली लक्ष्मी हो और तुम्हीं शिवजीसे अपने वामभागमें प्रतिष्ठा कीगई गौरी हो ॥ ११॥ तथापि तुम्हारा मंद मंद मुसकुराता हुआ निर्मल, पूर्णचन्द्रमाके समान सुवर्णकांति और मनोहर मुख देखकरभी जो महिषासुरने क्रोधित होकर अस्त्रप्रहार किया था, यही अत्यन्त आश्चर्य है, तात्पर्य यह है की, तुम्हारा मुख संसारको मोहित करनेवाला है, सो वह मोहित नहीं हुआ, सुतरां वह बडाही दुष्ट था ॥ १२॥ हे देवि ! क्रोधसे युक्त और भ्रुकुटि

मेधासिदेविविदिताखिलशास्त्रसारादुर्गासिदुर्गभवसागरनौरसंगा ॥ श्रीःकैटभारिहृदयैककृताधिवासागौरीत्वमेवशशिमौलिकृतप्रतिष्ठा ॥ ११ ॥ ईषत्सहासममलंपरिपूर्णचंद्रबिंबानुकारिकनकोत्तमकांतिकांतम् ॥ अत्यद्भुतंप्रहृतमात्तरुषातथापिवक्त्रंविलोक्यसहसामहिषासुरेण ॥ १२ ॥ दृष्ट्वातुदेविकुपितंभ्रुकुटीकरालमुद्यच्छशांकसदृशच्छवियन्नसद्यः ॥ प्राणान्मुमोचमहिषस्तदतीवचित्रंकैर्जीव्यतेहिकुपितांतकदर्शनेन ॥ १३ ॥ देविप्रसीदपरमाभवतीभवायसद्योविनाशयसिकोपवतीकुलानि ॥ विज्ञातमेतदधुनैवयदस्तमेतन्नीतंबलंसुविपुलंमहिषासुरस्य ॥ १४ ॥ तेसंमताजनपदेषुधनानितेषांयशांसिनचसीदतिबंधुवर्गः ॥ धन्यास्तएवनिभृतात्मजभृत्यदारायेषांसदाभ्युदयदाभवतीप्रसन्ना ॥ १५ ॥ धर्म्याणिदेविसकलानिसदैवकर्माण्यत्यादृतःप्रतिदिनंसुकृतीकरोति ॥ स्वर्गंप्रयातिचततोभवतीप्रसादाल्लोकत्रयेपिफलदाननुदेवितेन ॥ १६ ॥

योंसे भीषण तथा उदय होते हुए पूर्णिमाके चन्द्रकी सदृश, ऐसे तुम्हारे मुखको देखकर जो सद्यही महिषासुरने प्राण नहीं छोडे यह बडाही अचंभा है, क्योंकि कुपित यमराजको देखकर कौन जीवित रहसकता है ?॥ १३॥ हे देवि ! तुम प्रसन्न होओ, तुम परमा अर्थात लक्ष्मी हो और संसारका मंगल करनेके लियेही उत्पन्न होती हो. हे देवी! तुम क्रोध करनेपर संपूर्ण कुलोंको नाश कर देती हो, यह अभी जानागया क्योंकि महिषासुरकी अत्यन्त बड़ी सेना और उसको तुमने विनाश किया॥ १४॥ हे देवि! तुम प्रसन्न होकर जिनको अभ्युदय (कल्याण) प्रदान करती हो, वही देशमें पूजित होते हैं, उनकोही धन और यश मिलता है, उनकाही धर्म नहीं घटता, वही धन्य और उनकेही पुत्र, स्त्री तथा सेवक उद्वेगहीन होतेहैं॥ १५॥ हे देवि !

तुम्हारेही प्रसादसे पुण्यशाली मनुष्य प्रतिदिन अत्यन्त आदरके सहित धर्मजनक कार्य करते हैं और मृत्युके पीछे तुम्हारेही अनुग्रहसे स्वर्गमें जाते हैं, अतएव हे देवि ! तुम्हीं तीनों लोकमें फलप्रदान करतीहो ॥१६॥ हे देवि ! तुम दुर्गत मनुष्योंके स्मरण करनेमें उनका भय हरण करती हो और जो स्वस्थचित्त मनुष्य तुमको स्मरण करतेहैं, तुम उनको अत्यन्त मंगलजनक बुद्धि प्रदान करती हो, हे दरिद्र दुःस्वभय हरने वाली ! तुम्हारे अतिरिक्त और किसका चित्त सबका उपकार करनेके लिये सदा आर्द्र अर्थात् दयामें कृपालु रहता है?॥१७॥ "इन सब असुरोंके मरनेसे जगत् सुखलाभ करे और फिर वह नरकके लिये बहुत कालतक पाप करे तो भी इस समय रणक्षेत्रमें मरकर वह स्वर्गमें जाँय" हे देवि ! तुम यही विचारकर निश्चय शत्रुओंके विनाश करती हो १८॥ केवल देखनेमात्रसेही क्या तुम शत्रुओंको भस्म नहीं करसकतीहो? किंतु "शत्रुगण शास्त्रमें पवि-

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजंतोः स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि ॥ दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या सर्वोपकारकरणाय सदा र्द्रचित्ता ॥ १७ ॥ एभिर्हतैर्जगदुपैति सुखं तथैते कुर्वंतु नाम नरकाय चिराय पापम् ॥ संग्राममृत्युमधिगम्य दिवं प्रयांतु मत्वेति नूनमहितान्विनिहंसि देवि ॥ १८ ॥ दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म सर्वासुरानरिपु यत्प्रहिणोषि शस्त्रम् ॥ लोकान्प्रयांतु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता इत्थं मतिर्भवति तेष्वहितेषु साध्वी ॥ १९ ॥ खड्गप्रभानिकरविस्फुरणैस्तथोग्रैः शूलाग्रकांतिनिवहेन दृशोऽसुराणाम् ॥ यन्नागता विलयमंशुमदिंदुखंडयोग्याननं तव विलोकयतां तदेतत् ॥ २० ॥ दुर्वृत्तवृत्तशमनं तव देवि शीलं रूपं तथैतदविचिंत्यमतुल्यमन्यैः ॥ वीर्यं च हंतृ हृतदेवपराक्रमाणां वैरिष्वपि प्रकटितैव दया त्वयेत्थम् ॥ २१ ॥

त्र होकर स्वर्गमें जाँय" तुमने यही विचारकर शत्रुओंके ऊपर शस्त्र चलाया है मरे हुए असुरोंका भी उपकार करनेकेलिये जो तुम्हारी ऐसी मति है; वह अतिसाध्वी अर्थात् श्रेष्ठ है इसमें संदेह नहीं॥ १९॥ हे देवि! खड्गकी उग्र प्रभासमूहके निकलनेसे और त्रिशूलके अग्रभागकी कांतिसमूहसे उनसब असुरोंकी दृष्टि जो विनाशको प्राप्त नहीं हुई, इसका कारण अन्य कुछ नहीं है, केवल तुम्हारे किरणोंसे शोभायमान चंद्रखंडकी सदृश मुखको देखनेसे उनके नेत्र अत्यन्त शीतल होगये थे ॥२०॥ हे देवि! तुम्हारा स्वभाव दुष्ट पुरुषोंके दुराचारको नष्ट करनेवाला है एवं तुम्हारा रूप तुलनारहित और अचिन्त्य है । हे देवि ! तुम्हारा वीर्य देवताओंका पराक्रम हरनेवाले असुरोंका नाशक है, इस प्रकार शत्रुओंके ऊपरभी तुम्हारी कृपा स्पष्ट प्रगट है ॥ २१ ॥

हे देवि ! किसके संग तुम्हारे इस पराक्रमकी तुलना हो सकती है ? तुम्हारा रूप शत्रुओंको भयकारी और अत्यन्त मनोहर है । ऐसा रूप स्वर्ग, मर्त्य वा पातालमें और किसका है ! हे वर देवि ! तीनों भुवनके मध्य तुम्हारे ही चित्तमें एकत्र दया और समरमें निष्ठुरता देखी जाती है और कहीं नहीं ॥ २२ ॥ हे देवि ! तुमने शत्रुको मारकर त्रिभुवनकी रक्षा की तथा रणक्षेत्रमें उन शत्रुओंको मारकर स्वर्ग प्रदान किया और मदोद्धत असुरोंसे उत्पन्न हुआ हमारा भी भय दूर हुआ अतएव हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि ! हमारी शूल द्वारा रक्षा करो हे अम्बिके ! हमारी खड्ग द्वारा रक्षा करो । हे देवि ! घंटा और धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे हमारी रक्षा करो ॥ २४ ॥ हे चण्डिके ! हे

केनोपमाभवतुतेस्यपराक्रमस्यरूपंचशत्रुभयकार्यतिहारिकुत्र ॥ चित्तेकृपासमरनिष्ठुरताचदृष्टात्वय्येवदेविवरदेभुवनत्रयेपि ॥ २२ ॥ त्रैलोक्यमेतदखिलंरिपुनाशनेनत्रातंत्वयासमरमूर्द्धनितेपिहत्वा ॥ नीतादिवंरिपुगणाभयमप्यपास्तमस्माकमुन्मदसुरारिभवंनमस्ते ॥ ॥ २३ ॥ शूलेनपाहिनोदेविपाहिखड्गेनचांबिके ॥ घंटास्वनेननःपाहिचापज्यानिःस्वनेनच ॥ २४ ॥ प्राच्यांरक्षप्रतीच्यांचचंडिके रक्षदक्षिणे ॥ भ्रामणेनात्मशूलस्यउत्तरस्यांतथेश्वरि ॥ २५ ॥ सौम्यानियानिरूपाणित्रैलोक्येविचरंतिते ॥ यानिचात्यंतघोराणिते रक्षास्मांस्तथाभुवम् ॥ २६ ॥ खड्गशूलगदादीनियानिचास्त्राणितेंबिके ॥ करपल्लवसंगीनितैरस्मान्रक्षसर्वतः ॥ २७ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंस्तुतासुरैर्दिव्यैःकुसुमैर्नंदनोद्भवैः ॥ अर्चिताजगतांधात्रीतथागंधानुलेपनैः ॥ २८ ॥ भक्त्यासमस्तैस्त्रिदशैर्दिव्यधूपैः सुधूपिता ॥ प्राहप्रसादसुमुखासमस्तान्प्रणतान्सुरान् ॥ २९ ॥

ईश्वरी ! अपना शूल घुमाकर हमारी पूर्वमें, पश्चिममें दक्षिणमें और उत्तरमें रक्षा करो ॥ २५ ॥ तुम्हारे जितने सौम्यरूप और जितने अत्यन्त भयंकर रूप त्रिभुवनमें विचरण करते हैं; तुम उन सब रूपोंसे हमारी और पृथ्वीकी रक्षा करो ॥ २६ ॥ हे अम्बिके ! तुम्हारे करपल्लवमें खड्ग, शूल, गदादि जो अस्त्र रहते हैं, उन सब अस्त्रोंसे चारों ओर हमारी रक्षा करो ॥ २७ ॥ ऋषि बोले-देवताओंने इस प्रकार उनकी स्तुति करी और नंदनवनमें उत्पन्न हुए पुष्प, दिव्य गंधानुलेपन और दिव्य धूप द्वारा भक्ति सहित उन जगज्जननीका पूजन किया ॥ २८ ॥ उसकाल वर देनेकी इच्छासे उनका मुखमण्डल अत्यन्तही सुन्दर होगया, तब वह सम्पूर्ण प्रणत देवताओंसे कहने लगी ॥ २९ ॥

देवी बोली—हे त्रिदशगण ! तुम मुझसे अपना अभिलाषित वर मांगो, मैं तुम्हारे इस स्तवसे संमानित हुई हूं, मैं तुमको अत्यन्त प्रीतिके सहित वह वर दूंगी ॥ ३० ॥ जो इस महिषासुर वधके उपरान्त कर्तव्य है सो हम नहीं जानती हूँ जो कुछ तुमको दुस्साध्य हो वह हमसे कहो यह देवीके वचन सुनकर देवता कहने लगे ॥ ३१ ॥ देवता बोले—हे भगवती ! जब तुमने हमारे इस प्रबल शत्रु महिषासुरका वध किया तो आपने हमारा समस्त कार्यही सम्पादन किया है, अब कुछ अवशिष्ट नहीं हैं ॥ ३२ ॥ और यदि तुम हमको वर देना ही चाहती हो, तो यह वर दो कि, हम जब तुमको स्मरण करें, तभी तुम हमारी परम आपदा नष्ट करो ॥ ३३ ॥ हे अमलानने ! जो मनुष्य हमारे किये इस

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ व्रियतांत्रिदशाःसर्वेयदस्मत्तोभिवांछितम् ॥ ददाम्यहमतिप्रीत्यास्तवैरेभिःसुपूजिता ॥ ३० ॥ कर्त्तव्यमपरंयच्चदुष्करंतन्नविद्महे ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्याःप्रत्यूचुस्तेदिवौकसः ॥ ३१ ॥ देवाऊचुः ॥ भगवत्याकृतंसर्वंनकिंचिदवशिष्यते ॥ यदयंनिहतःशत्रुरस्माकंमहिषासुरः ॥ ३२ ॥ यदिचापिवरोदेयस्त्वयास्माकंमहेश्वरि ॥ संस्मृतासंस्मृतात्वंनोहिंसीथाःपरमापदः ॥ ३३ ॥ यश्चमर्त्यस्तवैरेभिस्त्वांस्तोष्यत्यमलानने ॥ तस्यवित्तर्द्धिविभवैर्धनदारादिसंपदाम् ॥ वृद्धयेस्मत्प्रसन्नात्वंभवेथाःसर्वदाम्बिके ॥ ३४ ॥ ॥ऋषिरुवाच ॥ इतिप्रसादितादेवैर्जगतोर्थेतथात्मनः ॥ तथेत्युक्त्वाभद्रकालीबभूवांतर्हितानृप ॥ ३५ ॥ इत्येतत्कथितंभूपसंभूतासायथापुरा ॥ देवीदेवशरीरेभ्योजगत्त्रयहितैषिणी ॥ ३६ ॥ पुनश्चगौरीदेहात्सासमुद्भूतायथाभवत् ॥ वधायदुष्टदैत्यानांतथाशुंभनिशुंभयोः ॥ ३७ ॥ रक्षणायचलोकानांदेवानामुपकारिणी ॥ तच्छृणुष्वमयाख्यातंयथावत्कथयामिते ॥ ३८ ॥

स्तवद्वारा तुम्हारी स्तुति करें, उनको तुम हमारे ऊपर प्रसन्न होकर ज्ञानकी अधिकता और ऐश्वर्यके सहित धन, दारा इत्यादि सम्पत्तिकी वृद्धि करना । क्योंकि हे अम्बिके ! तुम सब वस्तुके देनेमें समर्थ हो ॥ ३४ ॥ ऋषि बोले—हे नृप ! देवताओंसे जगत्के लिये और अपने अर्थ प्रसन्न की हुई भद्र काली यह कहकर कि "ऐसाही होगा" अन्तरधान होगई ॥ ३५ ॥ हे भूपते ! देवताओंके शरीरसे तीनों जगत्का हित करनेके लिये जिस प्रकार देवी पूर्व कालमें उत्पन्न हुई थी, वह तुमसे कहा ॥ ३६ ॥ अब पार्वतीके देहसे जिस प्रकार उत्पन्न होकर शुंभ, निशुंभ और अन्यान्य दुष्ट दैत्योंका नाश ॥ ३७ ॥ लोकोंकी रक्षा और देवताओंका उपकार किया वह तुमसे यथावत् कहता हूं सुनो ॥ ३८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥ ऋषि बोले--पूर्वकालमें शुंभ और निशुंभ नामक दो असुरोंने अपने घमंडके बलका आश्रय पाकर शचीपति इन्द्रके त्रैलोक्यका राज्य और संपूर्ण यज्ञ भाग हरण किया ॥ १ ॥ वह शुंभ और निशुंभ सूर्य, चन्द्र, कुबेर और वरुणके अधिकारका कार्य स्वयं करने लगे और वही पवनका अधिकार तथा अग्निका कार्य करने लगे और अन्य सबकाभी अधिकार उन्होंने अपने ही हाथमें लिया ॥२॥ अनन्तर उन दोनों महाअसुरोंके द्वारा हताधिकार तिरस्कार किये राज्य हीन, पराजित ॥ ३ ॥ और निकाले हुये देवता उन अपराजिता देवीको स्मरण करने लगे ॥ ४ ॥ "विपद् कालमें

इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमाहात्म्येएकाशीतितमोऽध्यायः ॥८१॥ छ ॥ ऋषिरुवाच ॥ पुराशुंभनिशुंभाभ्यामसुराभ्यांशचीपतेः ॥ त्रैलोक्यंयज्ञभागाश्चहृतामदबलाश्रयात् ॥ १ ॥ तावेवसूर्यतांतद्वदधिकारंतथैंदवम् ॥ कौबेरमथयाम्यंचचक्रातेवरुणस्यच ॥ २ ॥ तावेवपवनर्द्धिंचचक्रतुर्वह्निकर्मच ॥ अन्येषांचाधिकारान्सःस्वयमेवाधितिष्ठति ॥ ततोदेवाविनिर्धूताभ्रष्टराज्याःपराजिताः ॥ ३ ॥ हृताधिकारास्त्रिदशास्ताभ्यांसर्वेनिराकृताः ॥ महासुराभ्यांतांदेवींसंस्मरंत्यपराजिताम् ॥ ४ ॥ तयास्माकंवरादत्तोयथापत्सुस्मृताखिलाः ॥ भवतांनाशयिष्यामितत्क्षणात्परमापदः ॥ ५ ॥ इतिकृत्वामतिंदेवाहिमवंतंनगेश्वरम् ॥ जग्मुस्तत्रततोदेवींविष्णुमायांप्रतुष्टुवुः ॥ ६ ॥ देवाऊचुः ॥ ॥ नमोदेव्यैमहादेव्यैशिवायैसततंनमः । नमःप्रकृत्यैभद्रायैनियताःप्रणताःस्मताम् ॥ ७ ॥ रौद्रायैनमोनित्यायैगौर्य्यैधात्र्यैनमोनमः ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥ ८ ॥

मुझको स्मरण करनेसे मैं तत्काल तुम्हारी परम आपदा नष्ट करूंगी" पूर्वमें हमको इस प्रकार देवीने वर दिया है. इस समय घोर विपद उपस्थित है, अत एव सम्यक् रीतिसे उनकी ही शरण लेनी चाहिये ॥ ५ ॥ देवता इस प्रकार बुद्धि स्थिरकर पर्वतोंमें शिरोमणि हिमालय पर्वतमें जाय उन विष्णुमायाकी स्तुति करने लगे ॥ ६ ॥ देवता बोले--देवीको नमस्कार है, महा देवीको नमस्कार है, शिवाको सर्वदा नमस्कार है, प्रकृतीको नमस्कार है, भद्राको नमस्कार है, हम प्रणत होकर उन देवीको नमस्कार करते हैं ॥ ७ ॥ रौद्राको नमस्कार है, नित्या, गौरी और धात्रीको वारम्वार नमस्कार है, । जगत्की प्रतिष्ठा और कृत्याको नमस्कार है ॥ ८ ॥

उन प्रकाशरूप, चन्द्ररूप और परमान्दरूप देवीको सदा नमस्कार करते हैं। कल्याणी और बुद्धिरूपा देवीको नमस्कार है, सिद्धिरूपा देवीको वारम्वार नमस्कार करते हैं ॥ ९ ॥ नैर्ऋतिस्वरूपा देवीको नमस्कार है। राजाओंके घरमें लक्ष्मीरूपा देवीको नमस्कार है। शर्वाणी स्वरूप तुमको नमस्कार है। नमस्कार है। दुर्गा दुर्गपारा, सारा, सर्वकारिणी, ख्याति, कृष्णा और धूम्रास्वरूप देवीको हम सदा नमस्कार करते हैं ॥१०॥जो अत्यन्त सौम्य और अत्यन्त रौद्र, है, उन देवीको हम अति विनय सहित वारम्वार नमस्कार करते हैं। जगत्की प्रतिष्ठा रूप देवीको नमस्कार है, कृतिस्वरूप अर्थात् कार्यरूपिणी देवीको नमस्कार है ॥ ११ ॥ जो देवी संपूर्ण प्राणियोंमें विष्णुमाया नामसे कही जाती है,

ज्योत्स्नायैचंद्ररूपिण्यैसुखायैसततंनमः ॥ कल्याण्यैप्रणतावृध्यैसिद्ध्यैकूर्म्यैनमोनमः ॥ ९ ॥ नैर्ऋत्यैभूभृतांलक्ष्म्यैशर्वाण्यैतेनमो नमः ॥ दुर्गायैदुर्गपारायैसारायैसर्वकारिणि ॥ ख्यात्यैतथैवकृष्णायैधूम्रायैसततंनमः ॥ १० ॥ अतिसौम्यातिरौद्रायैनमस्तस्यैन मोनमः ॥ नमोजगत्प्रतिष्ठायैदेव्यैकृत्यैनमोनमः ॥ ११ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुविष्णुमायेतिशब्दिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्त स्यैनमोनमः ॥ १२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुचेतनेत्यभिधीयते ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १३ ॥ यादेवीसर्वभूतेषु बुद्धिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १४ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुनिद्रारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्त स्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १५ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुक्षुधारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १६ ॥ यादेवी सर्वभूतेषुच्छायारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १७ ॥

उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें चेतना नामसे कही जाती है उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें बुद्धिरूपसे स्थित है, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें निद्रारूपसे अवस्थित है; उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षुधारूपसे अवस्थान करती हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १६ ॥ जो देवी संपूर्ण भूतमें छायारूपसे स्थिति करती हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १७ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें शक्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १८ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तृष्णा रूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ १९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें क्षान्तिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें जातिरूपसे विराजित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लज्जारूपसे निवास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें शान्तिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें श्रद्धारूमसे स्थित हैं, उनको नमस्कार।

यादेवीसर्वभूतेषुशक्तिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १८ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुतृष्णारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ १९ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुक्षांतिरूपेणमंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ॥ २० ॥ यादेवीसर्वभूतेषुजातिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २१ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुलज्जारूपेण संस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुशांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यै नमस्तस्यैनमोनमः ॥ २३ ॥ यादेवीमर्वभूतेषुश्रद्धारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २४ ॥ यादेवी सर्वभूतेषुकांतिरूपेणमंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥२५॥ यादेवीमर्वभूतेषुलक्ष्मीरूपेणमंस्थिता ॥ नमस्तस्यै नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २६ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुधृतिरूपेणमंस्थिता ॥ नमम्नम्यैनमस्तस्यैनमम्तस्यैनमोनमः ॥ २७ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुवृत्तिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तयैनमोनमः ॥ २८ ॥

नमस्कार। नमस्कार ॥ २४ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें कांतिरूपसे अधिष्ठान करती हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २५ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें लक्ष्मीरूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २६ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें धृतिरूपसे स्थित हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २७ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें वृत्तिरूपसे विराजमान हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २८ ॥

जो देवी सब प्राणियोंमें स्मृतिरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ २९ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें दयारूपसे अवस्थान करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३० ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें नीतिरूपसे अधिष्ठित है, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३१ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें तुष्टिरूपसे अवस्थान करती हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३२ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें पुष्टिरूपसे वास करती हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३३ ॥ जो देवी सब प्राणियोंमें मातृरूपसे स्थित हैं, उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥३४॥ जो देवी सब प्राणियोंमें भ्रान्तिरूपसे अवस्थित, हैं उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥३५॥

यादेवीसर्वभूतेषुस्मृतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ २९ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुदयारूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३१ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुतुष्टिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ॥ ३२ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुपुष्टिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३३ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुमातृरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३४ ॥ यादेवीसर्वभूतेषुभ्रांतिरूपेणसंस्थिता ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः ॥ ३५ ॥ इन्द्रियाणामधिष्ठात्रीभूतानामखिलेषुया ॥ भूतेषुसततंतस्यैव्याप्त्यैदेव्यैनमोनमः ॥ ३६ ॥ चितिरूपेणया कृत्स्नमेतद्व्याप्यस्थिताजगत् ॥ नमस्तस्यैनमस्तस्यैनमस्तस्यैनमोनमः॥३७॥स्तुतासुरैःपूर्वमभीष्टसंश्रयात्तथासुरेन्द्रेणदिनेषुसेविता ॥ करोतुसानःशुभहेतुरीश्वरीशुभानिभद्राण्यभिहंतुचापदः ॥ ३८ ॥ यासांप्रतंचोद्धतदैत्यतापितैरस्माभिरीशाचसुरैर्नमस्यते ॥ याच स्मृतातत्क्षणमेवहंतिनःसर्वापदोभक्तिविनम्रमूर्तिभिः ॥ ३९ ॥

जो देवी संपूर्ण इंद्रियों और सब प्राणियोंकी अधिष्ठात्री है तथा, जो सब प्राणियोंमें व्याप्तिरूपसे विद्यमान है। उनको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥३६॥ जो चैतन्यरूपसे समस्त जगत्में व्याप्त होकर अवस्थिति करती हैं, उन देवीको नमस्कार। नमस्कार। नमस्कार ॥ ३७ ॥ पूर्वकालमें हमने अभीष्टलाभ करके जिनकी स्तुतीकी है, देवराज इन्द्रने जिनकी बहुतदिनों सेवा करी है और जो मंगलके समूहका कारण हैं, प्रचण्डदैत्योंसे पीडित होकर हम इस समय जिन ईश्वरीको नमस्कार करते हैं, भक्तिनम्र शरीर होकर हमारे स्मरण करनेपर जो तत्काल हमारी

संपूर्ण विपद नष्ट करती है, वह ईश्वरी देवी हमारा सब प्रकार मंगल करें और संपूर्ण विपत्तियोंका नाश करें ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ ऋषि बोले—हे नृपनन्दन ! देवतालोग इस प्रकार स्तुति करते थे इसी समय पार्वतीदेवी गंगाजलमें स्नान करनेके लिये जानेको उनके सन्मुख आईं ॥ ४० ॥ वह सुन्दर भ्रुकुटिसे शोभित पार्वती देवताओंसे बोली "तुम लोग किसकी स्तुति करतेहो ? उसी समयमें उन पार्वतीके शरीरकोशसे शिवा देवीने उत्पन्न होकर कहा ॥ ४१ ॥ " समरमें निशुंभके द्वारा हारेहुए और फिर शुंभके द्वारा निकाले हुए देवता एकत्र मिलित होकर मेरीही स्तुति करते हैं " ४२ ॥ अम्बिका उन पार्वतीके शरीरकोशसे उत्पन्न हुई, इस कारण समस्त भुवनमें वह " कौशिकी " नामसे कही गई है ॥४३॥

॥ ऋषिरुवाच ॥ एवंस्तवाभियुक्तानांदेवानांतत्रपार्वती ॥ स्नातुमभ्याययौतोयेजाह्नव्यानृपनंदन ॥ ४० ॥ साऽब्रवीत्तान्सुरान्सुभ्रूर्भवद्भिःस्तूयतेत्रका ॥ शरीरकोशतश्चास्याःसमुद्भूताब्रवीच्छिवा ॥ ४१ ॥ स्तोत्रंममैतत्क्रियतेशुंभदैत्यनिराकृतैः ॥ देवैःसमस्तैःसमरेनिशुंभेनपराजितैः ॥ ४२ ॥ शरीरकोशाद्यत्तस्याःपार्वत्यानिःसृतांबिका ॥ कौशिकीतिसमस्तेषुततोलोकेषुगीयते ॥ ४३ ॥ तस्यांविनिर्गतायांतुकृष्णाभूत्सापिपार्वती ॥ कालिकेतिसमाख्याताहिमाचलकृताश्रया ॥ ४४ ॥ ततोंबिकांपरंरूपंबिभ्राणांसुमनोहरम् ॥ ददर्शचंडोमुंडश्चभृत्यौशुंभनिशुंभयोः ॥ ४५ ॥ ताभ्यांशुंभायचाख्याताअतीवसुमनोहरा ॥ काप्यास्तेस्त्रीमहाराजभासयंतीहिमाचलम् ॥ ४६ ॥ नैवतादृक्क्वचिद्रूपंदृष्टंकेनचिदुत्तमम् ॥ ज्ञायतांकाप्यसौदेवीगृह्यतांचासुरेश्वर ॥ ४७ ॥ स्त्रीरत्नमतिचार्वंगीद्योतयंतीदिशस्त्विषा ॥ सातुतिष्ठतिदैत्येन्द्रताभवान्द्रष्टुमर्हति ॥ ४८ ॥

उन कौशिकी देवीके शरीरसे निकल जानेपर पार्वतीदेवीने कृष्णवर्ण धारण किया, तबसे वह कालिकाके नामसे विख्यात होकर हिमाचलमें वास करने लगी ॥४४॥ फिर अम्बिकाने परममनोहर रूप धारण किया । अनन्तर शुंभ और निशुंभ असुरके भृत्य चण्ड और मुण्डनामक दो असुरोंने उनका वह मनोहर रूप देखा ॥ ४५ ॥ तब चण्ड और मुण्डने शुम्भासुरके समीप जाकर कहा—हेमहाराज ! अत्यन्त मनोहर कोई स्त्री हिमालय पर्वतको शोभित करती हुई वास करती है ॥ ४६ ॥ हे असुरेश्वर ! ऐसा उत्तम रूप कहीं किसीने नहीं देखा, अतएव यह नारी कौन है ? ऐसा जानकर आप इस स्त्री को ग्रहण कीजिये ॥ ४७ ॥ वह सुन्दर अंगवाली नारी स्त्रियोंमें रत्नरूप है । हे दैत्येन्द्र ! वह नारी अपने

देहकी कांतिसे संपूर्णदिशाओंको प्रकाशितकरके वासकर रही है, उसका आपको देखना उचित है ॥४८॥ हे प्रभो ! त्रैलोक्यमें श्रेष्ठ हाथी घोडे इत्यादि जो सब रत्न हैं, वह इस समय समस्तही आके घरमें शोभा पाते हैं ॥४९॥ हाथियोंमें रत्न ऐरावत, मनोहर पारिजात वृक्ष और उच्चैः श्रवा घोडा इन्द्रके यहांसे लाया गया ॥ ५० ॥ विधाताका रत्नस्वरूप जो अद्भुत हंस युक्त विमान है, वह भी लाया जाकर आपके आँगनमें रक्खा हुआ है ॥ ५१ ॥ यह महापद्म नामक निधि भी कुबेरके निकटसे लाई गई है, किञ्जल्किनी नाम बिना मुरझाये कमलोंकी माला समुद्रने आपको अर्पणकी है ॥ ५२ ॥ वरुणका कांचनस्रावि नामक छत्र और यह जो श्रेष्ठ रथ पहिले प्रजापतिके निकट था, वहभी आपके घरमें

यानिरत्नानिमणयोगजाश्वादीनिवैप्रभो ॥ त्रैलोक्येतुसमस्तानिसांप्रतंभान्तितेगृहे ॥ ४९ ॥ ऐरावतःसमानीतोगजरत्नंपुरंदरात् ॥ पारिजाततरुश्चायंतथैवोच्चैःश्रवाहयः ॥ ५० ॥ विमानंहंससंयुक्तमेतत्तिष्ठतितेंगणे ॥ रत्नभूतमिहानीतंयदासीद्वेधसोद्भुतम् ॥ ५१ ॥ निधिरेषमहापद्मःसमानीतोधनेश्वरात् ॥ किंजल्किनींददौचाब्धिर्मालामम्लानपंकजाम् ॥ ५२ ॥ छत्रंतेवारुणंगेहेकांचनस्रावितिष्ठति ॥ तथायंस्यंदनवरोयःपुरासीत्प्रजापतेः ॥ ५३ ॥ मृत्योरुत्क्रांतिदानामशक्तिरीशत्वयाहृता ॥ पाशःसलिलराजस्यभ्रातुस्तवपरिग्रहे ॥ ५४ ॥ निशुंभस्याब्धिजाताश्चसमस्तारत्नजातयः ॥ वह्निश्चापिददौतुभ्यमग्निशौचेचवाससी ॥ ५५ ॥ एवंदैत्येंद्ररत्नानिसमस्तान्याहृतानिते ॥ स्त्रीरत्नमेषाकल्याणीत्वयाकस्मान्नगृह्यते ॥ ५६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निशम्येतिवचःशुंभःसतदाचण्डमुण्डयोः ॥ प्रेषयामाससुग्रीवंदूतंदेव्यामहासुरः ॥ ५७ ॥ शुंभउवाच ॥ इतिचेतिचवक्तव्यासागत्वावचनान्मम ॥ यथाचाभ्येतिसंप्रीत्यातथाकार्यंत्वयालघु ॥ ५८ ॥

विद्यामान है ॥ ५३ ॥ यमकी मरणप्रदा जो शक्तिथी; हे ईश ! वहभी आपने हरण की है । और आपके भ्राता निशुंभके यहां वरुणका पाश ॥५४॥ और समुद्रमें उत्पन्न हुए संपूर्ण रत्न हैं, अग्निने उनको वह्नि द्वारा पवित्र करके वस्त्र और उत्तरीय प्रदान किया है॥५५॥हे दैत्येन्द्र ! इस प्रकार यह संपूर्ण रत्न आपने हरण किये हैं,अब इस स्त्रीरत्न कल्याणीको आप किस लिये ग्रहण नहीं करते हैं ! ॥५६॥ ऋषि बोले—चण्ड और मुण्डके इस प्रकार वचन सुनकर महासुर शुंभने सुग्रीव नामक दूतको देवीके निकट भेजा॥५७॥ शुंभने कहा "तुम जाकर मेरे वचनानुसार उससे

इस प्रकार कहना और जिस भाँति वह अत्यन्त प्रसन्न होकर शीघ्र यहां आजाय, तुम वैसाही कार्य करना"॥५८॥अत्यन्त शोभायमान पर्वत प्रदेशमें जहां पार्वती स्थित थीं, वह दूत उस स्थानमें जाकर मधुर वचनोंके द्वारा उनसे कहने लगा ॥५९॥ दूत बोला।हे देवि ! दैत्येश्वर शुंभ त्रैलोक्यके परमेश्वर हैं,उन्होंने ही तुम्हारे निकट मुझको दूत बनाकर भेजा है, इसी कारण मैं इस स्थानमें आयाहूं ॥६०॥ समस्त देवताओंमें उनकी आज्ञा अटल है,उन्होंने सब देवताओंको जीतलिया है, अब उन्होंने मुझसे जो कहा है,वह सुनो ॥६१॥ उन्होंने कहा है, संपूर्ण त्रैलोक्य मेरा है, समस्त देवताभी मेरे वशीभूत और अनुगत हैं, मैं ही पृथक् पृथक् समस्त यज्ञभाग भोजन करताहूं॥६२॥और त्रिलोकीमें जितने सुंदर रत्न हैं, सो सब

सतत्रगत्वायत्रास्तेशैलोद्देशेतिशोभने ॥ तांचदेवींततःप्राहश्लक्ष्णंमधुरयागिरा ॥५९॥ दूतउवाच ॥ ॥ देविदैत्येश्वरःशुंभस्त्रैलोक्येपरमेश्वरः ॥ दूतोहंप्रेषितस्तेनत्वत्सकाशमिहागतः ॥ ६० ॥ अव्याहताज्ञःसर्वासुयःसदादेवयोनिषु ॥ निर्जिताखिलदैत्यारिःसयदाहश्शृणुष्वतत् ॥ ६१ ॥ ममत्रैलोक्यमखिलंममदेवावशानुगाः ॥ यज्ञभागानहंसर्वानुपाश्नामिपृथक्पृथक् ॥ ६२ ॥ त्रैलोक्येवररत्नानिममवश्यान्यशेषतः ॥ तथैवगजरत्नंचहृतंदेवेंद्रवाहनम् ॥६३॥ क्षीरोदमथनोद्भूतमश्वरत्नंममामरैः ॥ उच्चैःश्रवसंज्ञंतुप्रणिपत्यसमर्पितम् ॥ ६४ ॥ यानिचान्यानिदेवेषुगन्धर्वेषूरगेषुच ॥ रत्नभूतानिभूतानितानिमय्येवशोभने ॥ ६५ ॥ स्त्रीरत्नभूतांत्वांदेविलोकेमन्यामहेवयम् ॥ सात्वमस्मानुपागच्छयतोरत्नभुजोवयम् ॥ ६६ ॥ मांवाममानुजंवापिनिशुंभमुरुविक्रमम् ॥ भजत्वंचंचलापांगिरत्नभूतासिवैयतः ॥ ६७ ॥ परमैश्वर्यमतुलंप्राप्स्यसेमत्परिग्रहात् ॥ एतद्बुद्ध्यासमालोच्यमत्परिग्रहतांव्रज ॥ ६८ ॥

मेरे वशमें हैं और संपूर्ण गजरत्न तथा इन्द्रका वाहन ऐरावत है, सो भी मैंने हरकर लेलिया है ॥६३॥ और समुद्रके मंथनसे निकला हुआ जो उच्चैःश्रवा नामक अश्वरत्न है, उसको भी देवताओंने प्रणामपूर्वक मेरे अर्पण किया है॥६४॥अन्यान्य जो सब रत्न देवता, गंधर्व अथवा सर्पोंके थे, हे शोभने ! इस समय वह सब मेरेही हैं ॥६५॥ हे देवि!तुमको हम लोकमें स्त्री रत्न समझते हैं अतएव तुम रत्नस्वरूप हो, तुम हमारे घर चलो, क्योंकि इस समय हमी रत्नोंके भोगनेवाले हैं ॥ ६६ ॥ हे चंचलकटाक्षवाली ! मुझे वा मेरे बड़े पराक्रमी छोटे भाई निशुंभको भजो. क्योंकि तुम रत्नस्वरूप हो ॥ ६७ ॥ मेरी भजना करनेसे तुम अतुलनीय परमैश्वर्यको प्राप्त होगी यह सब बात बुद्धि पूर्वक विचार कर मेरी भजना

करो॥६८॥ऋषि बोले—दूतके इस प्रकार कहनेपर जो इस जगतको धारण कर रही है वह भगवती भद्रा दुर्गादेवी गंभीर और गूढ भावसे कुछेक हँसकर कहने लगीं ॥६९॥देवी बोली—हे दूत ! तुमने सत्य कहा, इस तुम्हारे कहनेमें कुछभी मिथ्या नहीं है, शुम्भ त्रैलोक्यके अधिपति और निशुंभभी उनकेही समान हैं, इसमें संदेह नहीं ॥७०॥किंतु मैंने जो पूर्वमें एक प्रतिज्ञा की है, उसको इस स्थलमें कैसे मिथ्या करूं ? मैंने अल्प बुद्धिके वश होकर जो प्रतिज्ञा करी है, वह सुनो॥७१॥"जो पुरुष मुझको युद्धमें जीतलेगा, जो मेरे अभिमानको तोडेगा और जो पुरुष संसारमें मेरे समान बली होगा, वही मेरा स्वामी होगा" ७२॥ अब महा असुर शुंभ वा निशुंभ आवें, उनमें जो समर्थ हो, वह मुझको जीतकर शीघ्र

ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्तासातदादेवीगंभीरांतःस्मिताजगौ ॥ दुर्गाभगवतीभद्राययेदंधार्यतेजगत् ॥६९॥ सत्यमुक्तंत्वयानात्रमिथ्याकिंचित्त्वयोदितम् ॥ त्रैलोक्याधिपतिःशुंभोनिशुंभश्चापिताहशः ॥ ७० ॥ किंत्वत्रयत्प्रतिज्ञातंमिथ्यातत्क्रियतेकथम् ॥ श्रूयतामल्पबुद्धित्वात्प्रतिज्ञायाकृतापुरा ॥ ७१ ॥ योमांजयतिसंग्रामेयोमेदर्पंव्यपोहति ॥ योमेप्रतिबलोलोकेसमेभर्ताभविष्यति ॥ ७२ ॥ तदागच्छतुशुंभोत्रनिशुंभोवामहासुरः ॥ मांजित्वाकिंचिरेणात्रपाणिंगृह्णातुमेलघु ॥७३॥ दूतउवाच ॥ ॥ अवलिप्तासिमैवंत्वंदेविब्रूहिममाग्रतः ॥ त्रैलोक्येकःपुमांस्तिष्ठेदग्रेशुंभनिशुंभयोः ॥ ७४ ॥ अन्येषामपिदैत्यानांसर्वेदेवानवैयुधि ॥ तिष्ठन्तिसंमुखेदेविकिंपुनःस्त्रीत्वमेकिका ॥ ७५ ॥ इंद्राद्याःसकलादेवास्तस्थुर्यैषांनसंयुगे ॥ शुंभादीनांकथंतेषांस्त्रीप्रयास्यसिसंमुखम् ॥ ७६ ॥ सात्वंगच्छमयैवोक्तापार्श्वंशुम्भनिशुंभयोः ॥ केशाकर्षणनिर्धूतगौरवामागमिष्यसि ॥ ७७ ॥

विवाह करले, विलम्बका क्या प्रयोजन है ? ॥ ७३ ॥ दूत बोला—हे देवि ! तुम अत्यन्त गर्वित हुई हो । मेरे निकट ऐसी बात मत कहो,तीनों लोकमें शुंभ और निशुंभके आगे कौन पुरुष ठहर सकता है ॥ ७४ ॥ शुंभ अथवा निशुंभकी बात तो दूर रहै, उनके अनुचर अन्यान्य दैत्योंके सन्मुख देवता मिलित होकर भी स्थिर नहीं रह सकते, फिर तुम अकेली स्त्री होकर किस प्रकार स्थिर रहोगी ? ॥ ७५ ॥ इन्द्रादि देवतागण जिन शुंभादिके संमुख खडे नहीं रह सकते, तो तू स्त्री होकर उनसे किस प्रकार युद्ध करने जाओगी ! ॥ ७६ ॥ अत एव तुम मेरे वचनानुसार शुंभ निशुंभके समीप चलो और नहीं तो मैं तुम्हारे केश पकडकर ले चलूंगा कि, जिससे तुम्हारा समस्त गौरव नष्ट हो जायगा ॥ ७७ ॥

देवी बोली—हे दूत ! शुंभ ऐसे ही बली और निशुंभ भी निसन्देह अत्यन्त वीर्यवान् हैं, किन्तु क्या करूं ? अल्प बुद्धिसे पहिले इस प्रतिज्ञाके विषयमें मैंने विचार नहीं किया ॥ ७८ ॥ सो तुम जावो और मैंने जो कहा है वह सब आदरपूर्वक असुरेन्द्र शुंभसे कहो। फिर वह जो उचित समझेंगे, सो करेंगे ॥ ७९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८२ ॥ ऋषि बोले—देवीके इस प्रकार वचन सुन उस दूतने अत्यन्त क्रोधमें भर दैत्येश्वरके निकट जाकर सब वृत्तान्त विस्तारसहित कहा ॥ १ ॥ दूतके यह वचन सुनकर असुरराज शुंभने क्रोधपूर्वक दैत्याधिपति धूम्रलोचनसे कहा ॥ २ ॥ हे धूम्रलोचन ! तुम अपनी सेनासहित वहां जाय, उस दुष्ट स्त्रीके केश

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ एवमेतद्बलीशुंभोनिशुम्भश्चातिवीर्यवान् ॥ किंकरोमिप्रतिज्ञामेयदनालोचितापुरा ॥ ७८ ॥ सत्वं गच्छमयैवोक्तंयदेतत्सर्वमादृतः ॥ तदाचक्ष्वासुरेंद्रायसचयुक्तंकरोतुतत् ॥ ७९ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदेवीमाहात्म्येद्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ॥ ८२ ॥ ॥ छ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्याकर्ण्यवचोदेव्याःसदूतोमर्षपूरितः ॥ समाचष्टेसमागम्यदैत्यराजायविस्तरात् ॥ १ ॥ तस्यदूतस्यतद्वाक्यमाकर्ण्यासुरराट्ततः ॥ सक्रोधःप्राहदैत्यानामधिपंधूम्रलोचनम् ॥ २ ॥ हेधूम्रलोचनाशुत्वं स्वसैन्यपरिवारितः ॥ तमानयबलाद्दुष्टांकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ३ ॥ तत्परित्राणदःकश्चिद्यदिवोत्तिष्ठतेपरः ॥ सहन्तव्योमरोवापियक्षोगंधर्वएववा ॥ ४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तेनाज्ञप्तस्ततःशीघ्रंसदैत्योधूम्रलोचनः ॥ वृतःषष्ट्यासहस्राणामसुराणांद्रुतंययौ ॥ ५ ॥ सदृष्ट्वातां ततोदेवींतुहिनाचलसंस्थिताम् ॥ जगादोच्चैःप्रयाहीतिमूलंशुंभनिशुंभयोः ॥ ६ ॥ नचेत्प्रीत्याद्यभवतीमद्भर्तारमुपैष्यसि ॥ ततोत्वांनयाम्येषकेशाकर्षणविह्वलाम् ॥ ७ ॥

खैंचकर विह्वल करते हुए शीघ्र उसको लेआवो ॥ ३ ॥ यदि उसकी रक्षा करनेके लिये कोई अपर उद्यत हो, वह देवता यक्ष वा गन्धर्व हो क्यों न हो, हनन उसको करो ॥४॥ ऋषि बोले। शुंभकी इस प्रकार आज्ञा पाय वह धूम्रलोचन नामक असुर साठ हजार असुरोंके सहित शीघ्र गया ॥ ५ ॥ फिर धूम्रलोचनने हिमाचलमें बैठी हुई देवी देखकर उच्चस्वरसे कहा—हे देवि ! शुंभ और निशुंभके निकट चलो ॥ ६ ॥ यदि तुम इस समय प्रीतिसहित मेरे स्वामी शुंभके निकट नहीं चलोगी तो मैं तुम्हारे केश खैंच विह्वल करता हुआ बलपूर्वक लेजाऊंगा ॥ ७ ॥

देवी बोली । दैत्येश्वर शुंभने तुमको भेजा है, स्वयं बलवान् और सेनासे युक्त हो, तुम यदि मुझको बलपूर्वक ले जाओगे, तो मैं, तुम्हारा क्या करूंगी ॥ ८ ऋषि बोले । देवीके इस प्रकार कहते ही वह धूम्रलोचननामक असुर उनके ऊपरको दौडा ॥ तब अम्बिका देवीने हुंकार द्वारा उस असुरको भस्म कर दिया ॥ ९ ॥ अनंतर उस असुरकी सेना क्रोधित होकर अम्बिकाके ऊपर तीक्ष्ण शर, शक्ति और फरशेकी वृष्टि करने लगी ॥ १० ॥ तब देवीका वाहन सिंह क्रोधसे केसर कंपित करके भयंकर गर्जना करता हुआ असुरोंकी सेनाके ऊपर गिरा ॥ ११ ॥ और किसीको पंजोंके प्रहारसे, किसीको मुख द्वारा किसीको आक्रमण द्वारा और किसी किसी महाअसुरको होठसे पकड

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ दैत्येश्वरेणप्रहितोबलवान्बलसंवृतः ॥ बलान्नयसिमामेवंततःकिंतेकरोम्यहम् ॥ ८ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्तः सोभ्यधावत्तामसुरोधूम्रलोचनः ॥ हुंकारेणैवतंभस्मसाचकाराम्बिकाततः ॥ ९ ॥ अथक्रुद्धंमहासैन्यमसुराणांतथाम्बिका ॥ ववर्षसायकैस्तीक्ष्णैस्तथाशक्तिपरश्वधैः ॥ १० ॥ ततोधुतसटःकोपात्कृत्वानादंसुभैरवम् ॥ पपातासुरसेनायांसिंहोदेव्यास्तुवाहनः ॥ ११ ॥ कांश्चित्करप्रहारेणदैत्यानास्येनचापरान् ॥ आक्रम्यचरणेनान्यान्निजघानमहासुरान् ॥ १२ ॥ केषांचित्पाटयामासनखैःकोष्ठानिकेसरी ॥ तथातलप्रहारेणशिरांसिकृतवान्पृथक् ॥ १३ ॥ विच्छिन्नबाहुशिरसःकृतास्तेनतथापरे ॥ पपौचरुधिरंकोष्ठादन्येषांधुतकेसरः ॥ १४ ॥ क्षणेनतद्बलंसर्वंक्षयंनीतंमहात्मना ॥ तेनकेसरिणादेव्यावाहनेनातिकोपिना ॥ १५ ॥ श्रुत्वातमसुरंदेव्यानिहतंधूम्रलोचनम् ॥ बलंचक्षयितंकृत्स्नंदेवीकेसरिणाततः ॥ १६ ॥ चुकोपदैत्याधिपतिःशुंभःप्रस्फुरिताधरः ॥ आज्ञापयामासचतौचण्डमुण्डौमहासुरौ ॥ १७ ॥

कर मारने लगा ॥ १२ ॥ सिंहने किसी किसी महा असुरका हृदय नखद्वारा फाड डाला और किसी किसी असुरका मस्तक हथेलीके प्रहार द्वारा देहसे पृथक् कर दिया ॥ १३ ॥ कितने ही असुरोंकी बाहु और मस्तक काट डाले और केसर कंपित करके अन्यान्य असुरोंके हृदयसे रक्त पी लिया ॥ १४ ॥ क्षणकालमें ही उस देवीके वाहन महात्मा केशरीने अत्यन्त कुपित होकर असुरोंकी उस महासैन्यको विनाश कर डाला ॥ १५ ॥ धूम्रलोचन असुरको देवीने विनाश किया और संपूर्ण सेनाका देवीके वाहन सिंहने संहार कर डाला यह सुनकर ॥ १६ ॥ दैत्याधिपति शुंभ

अत्यन्त कुपित हुआ । क्रोधसे उसके होठ फडकने लगे, तब शुंभने चण्ड और मुण्डको आज्ञा दी ॥१७॥ हे चण्ड ! हे मुण्ड ! तुम बहुतसी सेनासे युक्त होकर उस स्थानमें जाओ और जाकर उस स्त्रीको शीघ्रले आओ॥१८॥उसको केश पकडकर अथवा बांध कर लेआओ और यदि इस प्रकार लानेमें तुम असमर्थ हो तो संपूर्ण अस्त्रोंसे युक्त असुरोंके द्वारा उसको मार डालना ॥ १९ ॥ उस दुष्टा और सिंहके मारेजानेपर उस अम्बिकाको उसी दशामें बांधकर और लेकर शीघ्र आओ ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां धूम्रलोचनवधस्त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥
ऋषि बोले—अनंतर शुंभकी इस प्रकार आज्ञा पातेही चंड मुंड इत्यादि चतुरंगिनीसेनासहित अस्त्र ग्रहण करके गये उन्होंने जाकर देखा कि, बडे

हेचण्डहेमुण्डबलैर्बहुभिःपरिवारितौ ॥ गच्छतंतत्रगत्वाचसासमानीयतांलघु ॥ १८ ॥ केशेश्वाकृष्यबद्ध्वावायदिवःसंशयोयुधि ॥ तदाशेषायुधैःसर्वैरसुरैर्विनिहन्यताम् ॥ १९ ॥ तस्यःहतायांदुष्टायांसिंहेचविनिपातिते ॥ शीघ्रमागम्यतांबद्ध्वागृहीत्वातामथांबिकाम् ॥ २० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये धूम्रलोचनवधोनामत्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥ ॥ छ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ आज्ञप्तास्तेततोदैत्याश्चंडमुंडपुरोगमाः ॥ चतुरंगबलोपेतायययुरभ्युद्यतायुधाः ॥ १ ॥ ददृशुस्तेततोदेवीमीषद्धासांव्यवस्थिताम् ॥ सिंहस्योपरिशैलेंद्रशृंगेमहतिकांचने ॥ २ ॥ तेदृष्ट्वातांसमादातुमुद्यमंचक्रुरुद्यताः ॥ आकृष्टचापासिधरास्तथान्येतत्समीपगाः ॥ ३ ॥ ततःकोपंचकारोच्चैरंबिकातानरीन्प्रति ॥ कोपेनचास्यावदनंमषीवर्णमभूत्तदा ॥ ४ ॥ भृकुटीकुटिलात्तस्याललाटफलकाद्द्रुतम् ॥ कालीकरालवदनाविनिष्क्रांतासिपाशिनी ॥ ५ ॥ विचित्रखट्वांगधरानरमालाविभूषणा ॥ द्वीपिचर्मपरीधानाशुष्कमांसातिभैरवा ॥ ६ ॥ अतिविस्तारवदनाजिह्वाललनभीषणा ॥ निमग्नारक्तनयनानादापूरितदिङ्मुखा ॥ ७ ॥

सुवर्णमय हिमाचलके शिखरमें सिंहके ऊपर स्थित हुई देवी मंदमंद मुसकुरा रहीहैं॥१॥२॥वह असुर और उनके समीपवर्ती अन्यान्य असुरगण देवीको इसप्रकार देखनेपर धनुष खैंच और तलवार ग्रहणकर उनको पकडनेके लिये उद्योग करने लगे ॥३॥तब अंबिकाने उन सब शत्रुओंपर अत्यन्त क्रोध किया।उस क्रोध करनेके कारण देवीका मुख श्यामवर्ण होगया॥४॥अनंतर भ्रुकुटीके चढानेमे उनके ललाटसे शीघ्र एक भयंकर मुखवाली खड्ग और पाशको धारण किये; करालवदन काली प्रगट हुई ॥५॥ वह विचित्र खट्वाङ्गको लिये; मुडोंकी मालासे शोभायमान, बाघम्बर

पहिरे अत्यन्त भयानक सूखे मांसवाली मुखको खोलेहुए, जिह्वाको लहलहाती भयंकर रूप, भीतरको धुसे हुए लाल लाल नेत्रवाली और अपने घोर शब्दसे दिशाओंके मुखोंको पूरित करती हुई उत्पन्न हुई ॥ ६ ॥७॥ फिर वह भयंकरी देवी दैत्योंके सैन्यसमूहके ऊपर वेगसहित गिरकर संपूर्ण महाअसुरोंको विनाश करते करते असुरोंकी सेनाको भक्षण करने लगी ॥ ८ ॥ और पार्श्वरक्षक, अंकुशवाले योद्धा तथा घंटा इनके सहितही हाथियोंको एकही हाथसे पकड़ पकड़ कर मुखमें फेंकने लगीं ॥ ९ ॥ एवं अश्व रथ और सारथीके सहित योद्धाओंको ग्रहणपूर्वक मुखमें डालकर अत्यन्त भयंकररूपसे चर्वण करने लगी ॥ १० ॥ किसीके केश पकडी किसी किसी असुरकी ग्रीवा पकडी और किसी

सावेगेनाभिपतिताघातयंतीमहासुरान् ॥ सैन्येतत्रसुरारीणामभक्षयततद्बलम् ॥ ८ ॥ पार्ष्णिग्राहांकुशग्राहयोधघंटासमन्वितान् ॥ समादायैकहस्तेनमुखेचिक्षेपवारणान् ॥ ९ ॥ तथैवयोधंतुरगैरथंसारथिनासह ॥ निःक्षिप्यवक्त्रेदशनैश्चर्वयंत्यतिभैरवम् ॥ १० ॥ एकंजग्राहकेशेषुग्रीवायामथचापरम् ॥ पादेनाक्रम्यचैवान्यमुरसान्यमपोथयत ॥ ११ ॥ तैर्मुक्तानिचशस्त्राणिमहास्त्राणितथासुरैः ॥ मुखेनजग्राहरुषादशनैर्मथितान्यपि ॥ १२ ॥ बलिनांतद्बलंसर्वमसुराणांदुरात्मनाम् ॥ ममर्दाभक्षयच्चान्यानन्यांश्चाताडयत्तथा ॥ ॥१३॥ असिनानिहताःकेचित्केचित्खट्वांगताडिताः ॥ जग्मुर्विनाशमसुरादंताग्राभिहतास्तथा ॥ १४ ॥ क्षणेनतन्महासैन्यमसुराणां निपातितम् ॥ दृष्ट्वाचंडोभिदुद्रावतांकालीमतिभीषणाम् ॥ १५ ॥ शरवर्षैर्महाभीमैर्भीमाक्षींतांमहासुरः ॥ छादयामासचक्रैश्चमुंड क्षिप्तैःसहस्रशः ॥ १६ ॥

असुरकी छातीको चरणसे दबाकर मसल डाला ॥ ११ ॥ उन सब असुरोंके चलाये शस्त्र और महाअस्त्रों को देवी क्रोधपूर्वक मुखमें ग्रहण कर दांतोंसे चाबने लगीं ॥१२॥ बलवान् और अत्यन्त बड़े शरीरवाले असुरोंकी उस समस्त सेनाको इस प्रकार मसलती हुई देवीने किसीको भक्षण करलिया और किसी किसीको मार भगाया ॥१३॥ कोई कोई असुर खड्गके आघातसे नष्ट हुये, और कोई कोई खट्वांगसे ताडित तथा कोई कोई असुर दांतोंके अग्रभागसे चीथे जाकर विनाशको प्राप्त हुए ॥१४॥ असुरोंके उस बडी भारी सेनाको क्षणकालमें नष्ट हुआ देखकर चण्डासुर अत्यन्त भीषण उन काली देवीकी ओर वेगसहित दौडा ॥१५॥ और मुण्डासुरने उन भीमाक्षी देवीके प्रति भयंकर बाणोंकी वर्षा और हजार

हजार चक्र चलाकर उनको आच्छन्न कर दिया ॥१६॥ वह समस्त चक्रभी उन देवीके मुखम प्रविष्ट होने लगे और प्रवेशकालमें वह सब चक्र मेघमें प्रवेश करते हुए अनेक सूर्यमण्डलके सामन शोभा पाने लगे॥१७॥अनंतर घोरनादिनी कालीदेवी अत्यन्त क्रोधसे भयंकर हास्य करने लगीं। हँसनेके समय कराल मुखसे दुर्दर्श दांतोंकी प्रभासे वह उज्ज्वल हुई ॥ १८ ॥ तब देवी महासिंहके ऊपर खड़ी होकर चण्डासुरके ऊपर दौडी और केश खेंचकर अपनी असिसे उसका मस्तक काट डाला ॥ १९ ॥ उन दैत्येन्द्रने शिर कटनेके समय अत्यन्त भयंकर गर्जना करी, उस महत्‌गर्जनासे तीनों भुवन त्रसित होगये ॥ २० ॥ चण्डको गिरता देखकर मुण्डको देवीकी ओर दौडा, तब देवीने उसकोभी खट्वांगसे काटकर

तानिचक्राण्यनेकानिविशमानानितन्मुखम् ॥ बभुर्यथार्कबिंबानिसुबहूनिवनोदरम् ॥ १७ ॥ ततोजहासातिरुषाभीमंभैरवनादिनी ॥ कालीकरालवक्रांतदुर्दर्शदशनोज्ज्वला ॥ १८ ॥ उत्थायचमहासिंहंदेवीचंडमधावत ॥ गृहीत्वाचास्यकेशेषुशिरस्तेनासिनाच्छिनत् ॥ १९ ॥ छिन्नेशिरसिदैत्येंद्रश्चक्रेनादंसुभैरवम् ॥ २० ॥ अथमुंडोभ्यधावत्तांदृष्ट्वाचंडंनिपातितम् ॥ तमप्यपातयद्भूमौखट्वांगाभिहतंरुषा ॥ २१ ॥ हतशेषंततःसैन्यंदृष्ट्वाचंडंनिपातितम् ॥ मुंडंचसुमहावीर्यंदिशोभेजेभयातुरम् ॥ २२ ॥ शिरश्चंडस्यकालीसागृहीत्वामौंडमेवच ॥ प्राहप्रचंडाट्टहासमिश्रमभ्येत्यचंडिकाम् ॥ २३ ॥ मयातवात्रोपहृतौचंडमुंडौमहापशू ॥ युद्धयज्ञेस्वयंशुंभंनिशुंभंचहनिष्यसि ॥ २४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ तावानीतौततोदृष्ट्वाचंडमुण्डौमहासुरौ ॥ उवाचकालींकल्याणीललितंचंडिकावचः ॥ ॥ २५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ यस्माच्चंडंचमुण्डंचगृहीत्वात्वमुपागता ॥ चामुंडेतिततोलोकेख्यातादेवीभविष्यसि ॥ २६ ॥

धराशायी किया ॥ २१ ॥ अनंतर मरनेसे बची हुई सेना महावीर्यवान् चण्ड और मुण्डको मरा हुआ देख कर भयातुर होकर चारों ओर दिशाओंमें भागने लगी ॥२२॥ इसके पीछे चण्ड और मुण्डासुरका मस्तक ग्रहणकर काली चंडिकाके निकट उपस्थित होकर प्रचण्ड अट्टहासके सहित कहने लगी ॥ २३ ॥ "मैंने महापशु चण्ड मुण्ड नामक दो असुरोंका हनन करके तुमको उपहार प्रदान किया किंतु तुम युद्धयज्ञमें स्वयंही शुंभ और निशुंभको हनन करना ॥ २४ ॥ ऋषि बोले—उन चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महाअसुरोंको उस अवस्थामें लाया हुआ देखकर कल्याणी चण्डिका देवी कालीसे अत्यन्त मधुर वचनोंके द्वारा कहने लगी ॥ २५ ॥ देवी बोली—तुम चण्ड और मुण्डको ग्रहण करके आई हो.

इस कारण हे देवि ! लोकमें तुम " चामुण्डाके नामसे विख्यात होगी " ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चण्डमुण्डवधश्चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ऋषि बोले—चण्ड और मुण्डके नाशको प्राप्त होनेपर तथा समस्त सेनाके मारे जानेपर असुरोंके स्वामी ॥ १ ॥ प्रतापवान् शुंभने अत्यन्त क्रोधके वशी भूत होकर असुरोंकी समस्त सेनाको युद्ध करनेकी आज्ञा दी ॥ २ ॥ कि, अभी अपनी सब प्रकारकी सेनाको संग लेकर छियासी (८६) उदायुध नामक दैत्य और कम्बु नामक चौरासी (८४) दैत्य जाय ॥ ३ ॥ कोटिवीर्य नामक असुरोंकी पचास कुल और धूम्रवंश जात एकसौ कुलोत्पन्न असुरगण मेरी आज्ञासे निर्गतहों ॥ ४ ॥ कालक, दौहृत, मुरवंशोत्पन्न और कालकेय असुरगण शीघ्र मेरी आज्ञासे सज्जित

इति श्रीमार्कण्डेय पुराणेचंडमुंडवधोनामचतुरशीतितमोऽध्यायः ॥ ८४ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चंडेचनिहतेदैत्येमुंडेचविनिपातिते ॥ बहुलेषुचसैन्येषुक्षयितेष्वसुरेश्वरः ॥ १ ॥ ततःकोपपराधीनचेताःशुंभःप्रतापवान् ॥ उद्योगंसर्वसैन्यानांदैत्यानामादिदेशह ॥ २ ॥ अद्यसर्वबलैर्दैत्याःषडशीतिरुदायुधाः ॥ कंबूनांचतुराशीतिर्निर्यांतुस्वबलैर्वृताः ॥ ३ ॥ कोटिवीर्याणिपंचाशदसुराणांकुलानिवै ॥ शतंकुलानिधौम्राणांनिर्गच्छंतुममाज्ञया ॥ ४ ॥ कालकादौर्हृदामौर्याःकालकेयास्तथासुराः ॥ युद्धायसज्जानिर्यांतुआज्ञयात्वरिताममम ॥ ५ ॥ इत्याज्ञाप्यासुरपतिःशुम्भोभैरवशासनः ॥ निर्जगाममहासैन्यसहस्रैर्बहुभिर्वृतः ॥ ६ ॥ आयांतंचंडिकादृष्ट्वातत्सैन्यमतिभीषणम् ॥ ज्यास्वनैःपूरयामासधरणीगगनांतरम् ॥ ७ ॥ सचसिंहोमहानादमतीवकृतवान्नृप ॥ घंटास्वनेनतन्नादमंबिकाचाप्यबृंहयत् ॥ ८ ॥ धनुर्ज्यासिंहघंटानांनादापूरितदिङ्मुखा ॥ निनादैर्भीषणैःकालीजिग्येविस्तारितानना ॥ ९ ॥

होकर युद्धमें जाय ॥ ५ ॥ असुरपति भैरवशासन शुंभ इस प्रकार आज्ञा देकर सहस्रों महासेनाको साथ लेकर युद्धके लिये निकला ॥ ६ ॥ अत्यन्त भयंकर उस सेनाके समूहको आता हुआ देखकर चण्डिकाने धनुषके प्रत्यंचाकी टंकारसे पृथ्वी और आकाशको परिपूर्ण कर दिया॥ ७ ॥ हे नृप ! अनन्तर देवीके वाहन सिंहने अत्यन्त महानाद किया तब अम्बिकाने भी अपने घंटेके शब्दसे उस सिंहनादको दूना करदिया ॥ ८ ॥ धनुषके प्रत्यंचाकी टंकार तथा सिंह और घंटेके नादसे दिशाओंके मुख भरगये । फिर कालीने अपने मुखको चौडा कर अत्यन्त भयंकर नादसे जय जय शब्द किया ॥ ९ ॥

उस शब्दको सुनकर दैत्योंकी सेनाने क्रोधपूर्वक चण्डिकादेवी काली देवी और सिंहको चारों ओरसे घेर लिया ॥ १० ॥ हे भूप ! इसी अवसरमें असुरोंका विनाश करनेके लिये और देवताओंका कल्याण करनेके निमित्त अत्यन्त वीर्य और बलसे युक्त ॥ ११ ॥ ब्रह्मा, शिव, स्वामि कार्तिक, विष्णु तथा इन्द्रके शरीरसे पृथक् पृथक् शक्तियां निकल कर और उन्हीं देवताओंके समान रूपधारण पूर्वक चण्डिकाके पास आई ॥ १२ ॥ जिस देवताका जैसा रूप जैसा भूषण और जैसा वाहन था, उस देवताके शरीरसे निकली हुई शक्तिभी उसी प्रकार रूप, उसी प्रकार भूषण और उसी प्रकार वाहनसे मण्डित होकर असुरोंसे युद्ध करनेके लिये आई ॥ १३ ॥ हंसयुक्त विमानके ऊपर

तन्निनादमुपश्रुत्यदैत्यसैन्यैश्चतुर्दिशम् ॥ देवीसिंहस्तथाकालीशरोघैःपरिवारिताः ॥ १० ॥ एतस्मिन्नंतरेभूपविनाशायसुरद्विषाम् ॥ भवायामरसिंहानामतिवीर्यबलान्विताः ॥ ११ ॥ ब्रह्मेशगुहविष्णूनांतथेंद्रस्यचशक्तयः ॥ शरीरेभ्योविनिष्क्रम्यतद्रूपैश्चंडिकांययुः ॥ ॥ १२ ॥ यस्यदेवस्ययद्रूपंयथाभूषणवाहनम् ॥ तद्वद्देवहितच्छक्तिरसुरान्योद्धुमाययौ ॥ १३ ॥ हंसयुक्तविमानस्थासाक्षसूत्रकमंडलुः ॥ आयाताब्रह्मणःशक्तिर्ब्रह्माणीसाभिधीयते ॥ १४ ॥ माहेश्वरीवृषारूढात्रिशूलवरधारिणी ॥ महाहिवलयाप्राप्ताचन्द्ररेखाविभूषणा ॥ १५ ॥ कौमारीशक्तिहस्ताचमयूरवरवाहना ॥ योद्धुमभ्याययौदैत्यानंबिकागुहरूपिणी ॥ १६ ॥ तथैववैष्णवीशक्तिर्गरुडोपरिसंस्थिता ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गखड्गहस्ताभ्युपाययौ ॥ १७ ॥ यज्ञवाराहमतुलंरूपंयाबिभ्रतीहरेः ॥ शक्तिःसाप्याययौतत्रवाराहींबिभ्रतीतनुम् ॥ १८ ॥ नारसिंहीनृसिंहस्यबिभ्रतीसदृशंवपुः ॥ प्राप्तातत्रसटाक्षेपक्षिप्तनक्षत्रसंहतिः ॥ १९ ॥

हाथमें अक्षमाला और कमण्डलु लेकर जो ब्रह्माजीकी शक्ति आई वह ब्रह्माणीके नामसे विख्यातहै ॥ १४ ॥ और बैलपर चढी हुई त्रिशूल तथा वरको धारण किये, चन्द्र रेखासे शोभायमान और बड़े बड़े सर्पोंके कंकण पहिरे शिवकी शक्ति माहेश्वरी आई ॥ १५ ॥ शक्ति हाथमें लिये गुहरूपिणी कौमारी शक्ति सुंदर मोरके वाहनपर चढकर युद्ध करनेके लिये आई ॥ १६ ॥ गरुडके ऊपर स्थित हुई वैष्णवी शक्ति शंख, चक्र, गदा, शार्ङ्ग और खड्ग धारण करके आई ॥ १७ ॥ यज्ञवराहरूपधारी भगवान् विष्णुकी जो शक्ति है, वहभी वराहरूप धारण करके आई ॥ १८ ॥ नारसिंही शक्ति नृसिंहरूप धारण करके आई और उनके सटाकेशोंके हिलनेसे नक्षत्रोंकी पंक्ति

इधर उधर हिलने लगी ॥ १९ ॥ गजराजके ऊपर चढी हुई हजार नेत्रवाली ऐन्द्री शक्ति हाथमें वज्र लिये हुए आई, उसकी आकृति इन्द्रकेही अनुरूप थी ॥ २० ॥ अन्तर उन सब देवताओंकी शक्तियोंके समेत महादेवजीने चण्डिकासे कहा--"इन सब असुरोंको मेरी प्रसन्नताके लिये शीघ्र हनन करो" ॥२१॥ इसके उपरान्त देवीके शरीरसे अत्यन्त उग्र अत्यन्त भयंकर सौ शिवाओंके समान नाद करनेवाली चण्डिका शक्ति निकली ॥ २२ ॥ उन अपराजिता चण्डिका देवीने धूम्रवर्ण जटाशाली महेश्वरसे कहा--हे भगवन् ! तुम शुंभ और निशुंभके निकट दूत होकर जाओ ॥ २३ ॥ और जाकर अत्यन्त गर्वित शुंभ निशुंभ तथा युद्धके निमित्त उपस्थितदानवोंसे कहो कि ॥२४॥ "हे दानवो इन्द्र त्रैलोक्य

वज्रहस्तातथैवैंद्रीगजराजोपरिस्थिता ॥ सहस्रनयनाप्राप्तायथाशक्रस्तथैवसा ॥ २० ॥ ततःपरिवृतस्ताभिरीशानोदेवशक्तिभिः ॥ हन्यंतामसुराःशीघ्रंममप्रीत्याहचंडिकाम् ॥ २१ ॥ ततोदेवीशरीरात्तुविनिष्क्रांतातिभीषणा ॥ चंडिकाशक्तिरत्युग्राशिवाशतनिनादिनी ॥ २२ ॥ साचाहधूम्रजटिलमीशानमपराजिता ॥ दूतत्वंगच्छभगवन्पार्श्वंशुम्भनिशुंभयोः ॥ २३ ॥ ब्रूहिशुम्भंनिशुम्भंचदानवावतिगर्वितौ ॥ येचान्येदानवास्तत्रयुद्धायसमुपस्थिताः ॥ २४ ॥ त्रैलोक्यमिंद्रोलभतांदेवाःसंतुहविर्भुजः ॥ यूयंप्रयातपातालंयदि जीवितुमिच्छथ ॥ २५ ॥ बलावलेपादथचेद्भवंतोयुद्धकांक्षिणः ॥ तदागच्छततृप्यंतुमच्छिवाः पिशितेनवः ॥ २६ ॥ यतोनियुक्तो दूत्येनतयादेव्याशिवःस्वयम् ॥ शिवदूतीतिलोकेस्मिंस्ततः साख्यातिमागता ॥ २७ ॥ तेपिश्रुत्वावचोदेव्याः शर्वाख्यातं महासुराः अमर्षापूरिताजग्मुर्यत्रकात्यायनीस्थिता ॥ २८ ॥ ततःप्रथममेवाग्रेशरशक्त्यृष्टिभिः ॥ ववर्षुरुद्धतामर्षास्तांदेवीममरारयः ॥ २९ ॥

लाभ करे, देवता पुनर्वार हवि भोजन करें,और तुम यदि जिवित रहनेकी इच्छा करते हो तो पातालमें चले जाओ" ॥२५॥ अथवा बलके गर्वसे गर्वित होकर यदि तुम युद्धकी इच्छा रखते हो तो आओ, मेरी यह शिवागण तुम्हारे रुधिरसे तृप्तिलाभ करें ॥ २६ ॥ उन देवीने स्वयं शिवको दूतकार्यमें नियुक्त किया. इस कारण वह इस लोकमें शिव दूतीके नामसे विख्यात हुई ॥ २७ ॥ महेश्वरके इस प्रकार वचन सुनकर वह महाअसुर क्रोधपूर्वक जहां कात्यायनी स्थित थी वहां गये ॥२८॥ तदन्तर वह अत्यन्त क्रोधित असुर प्रथम उन देवीके आगे शर, शक्ति और ऋष्टि इत्यादिकी वर्षा करने लगे ॥ २९ ॥

उन सब असुरोंके चलाये हुए बाण, शूल, चक्र और फरशे इत्यादि सबको चण्डिका देवीने धनुष खैंच कर छोडे हुए बडे बडे बाणोंसे लीला पूर्वक ही काट डाला ॥ ३० ॥ उसी समयमें उन चण्डिका देवीके सन्मुख काली किसी किसी असुरको शूलसे चीरती और किसीको खट्वांगसे कुचलती हुई विचरण करने लगी ॥ ३१ ॥ शत्रुगण जिस जिस ओरके दौडने लगे उसी उसी ओरमें ब्रह्माणी शक्ति उनके ऊपर कमण्डलका जल वर्षाकर उनको हतवीर्य और हततेज करने लगी ॥ ३२ ॥ माहेश्वरी शक्ति त्रिशूल द्वारा और वैष्णवी शक्ति चक्र द्वारा दैत्योंको हनन करने लगीं। अत्यन्त क्रोधित कौमारी शक्तिने, शक्तिद्वारा अनेक दैत्योंको हनन किया ॥ ३३ ॥ और ऐन्द्रीके वज्र प्रहारसे

साचतत्प्रहितान्बाणाञ्छूलशक्तिपरश्वधान् ॥ चिच्छेदलीलयाध्मातधनुर्मुक्तैर्महेषुभिः ॥ ३० ॥ तस्याग्रतस्तथाकालीशूलपातवि दारितान् ॥ खट्वांगपोथितांश्चारीन्कुर्वतीव्यचरत्तदा ॥ ३१ ॥ कमंडलुजलाक्षेपहतवीर्यान्हतौजसः ॥ ब्रह्माणीचाकरोच्छत्रून्ये नयेनस्मधावति ॥ ३२ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनतथाचक्रेणवैष्णवी ॥ दैत्याञ्जघानकौमारीतथाशक्त्यातिकोपना ॥ ३३ ॥ ऐंद्रीकु लिशपातेनशतशोदैत्यदानवाः ॥ पेतुर्विदारिताःपृथ्व्यांरुधिरौघप्रवर्षिणः ॥ ३४ ॥ तुंडप्रहारविध्वस्तादंष्ट्राग्रक्षतवक्षसः ॥ वाराह मूर्त्यान्यपतंश्चक्रेणचविदारिताः ॥३५॥ नखैर्विदारितांश्चान्यान्भक्षयंतीमहासुरान् ॥ नारसिंहीचचाराजौनादापूर्णदिगंबरा ॥ ३६ ॥ चंडाट्टहासैरसुराःशिवदूत्यभिदूषिताः ॥ पेतुःपृथिव्यांपतितांस्तांश्चखादाथसातदा ॥ ३७ ॥ इतिमातृगणंक्रुद्धंमर्दयंतंमहासुरान् ॥ दृष्ट्वाभ्युपायैर्विविधैर्नेशुर्देवारिसैनिकाः ॥ ३८ ॥

विदारित सैकडों दैत्य दानव रुधिरके वमन करते करते पृथ्वीमें गिरने लगे ॥ ३४ ॥ वराहमूर्त्ति शक्तिके मुखप्रहारसे विदारित, और दंष्ट्राके अग्र भागसे छातीके कटजानेपर दैत्य गण गिरने लगे ॥ ३५ ॥ गर्जन द्वारा दिशा और आकाशको पूर्ण करके नारसिंही शक्ति नखविदारित असुरोंको भक्षण करते करते युद्धक्षेत्रमें विचरण करने लगी ॥३६॥ शिवदूतीके प्रचंड अट्टहासद्वारा अभिहत होकर असुरगण पृथ्वीमें गिरने लगे। तब देवी शिवदूती भी उन गिरे हुए असुरोंको भक्षण करने लगी॥३७॥ इस प्रकार अनेक उपाय क्रोधसहित मर्दन करती हैं यह देखकर संपूर्ण असुरोंकी सेना भागने लगी ॥ ३८ ॥

मातृगणोंके द्वारा पीडित होकर दैत्यगण भागते हैं. यह देखकर रक्तबीज नामक महाअसुर क्रोधपूर्वक युद्ध करनेके लिये आया ॥ ३९ ॥ इस रक्तबीज महाअसुरके शरीरसे एक बूंद रक्त जब भूमिमें गिरता तब उसी समय भूमिसे उसके अनुरूप एक असुर उत्पन्न होजाता है ॥ ॥ ४० ॥ वही महाअसुर रक्तबीज गदा हाथमें ले इन्द्रकी शक्तिके संग युद्ध करने लगा। तब ऐन्द्रीने अपने वज्रसे रक्तबीजको ताडित किया ॥ ४१ ॥ फिर वज्रपीडित रक्तबीजके शरीरसे जैसे ही रुधिरसे उसीके अनुरूप और समान पराक्रमशाली अनेक योद्धा उत्पन्न होगये ॥ ४२ ॥ रुधिर टपका वैसेही टपकेहुए उसके शरीरसे रक्तकी जितनी बूँदे गिरीं उतनेही पुरुष उत्पन्न हुए वह पुरुष बल, वीर्य और पराक्रममें रक्तबीजके ही

पलायनपरान्दृष्ट्वादैत्यान्मातृगणार्दितान् ॥ योद्धुमभ्याययौक्रुद्धोरक्तबीजोमहासुरः ॥ ३९ ॥ रक्तबिंदुर्यदाभूमौपतत्यस्यशरीरतः ॥ समुत्पततिमेदिन्यास्तत्प्रमाणोमहासुरः ॥ ४० ॥ युयुधेसगदापाणिरिंद्रशक्त्यामहासुरः ॥ ततश्चैंद्रीस्ववज्रेणरक्तबीजमताडयत ॥ ॥ ४१ ॥ कुलिशेनाहतस्याशुबहुसुस्रावशोणितम् ॥ समुत्तस्थुस्ततोयोधास्तद्रूपास्तत्पराक्रमाः ॥ ४२ ॥ यावंतःपतितास्तस्यशरीराद्रक्तबिंदवः ॥ तावंतःपुरुषाजातास्तद्वीर्यबलविक्रमाः ॥ ४३ ॥ तेचापियुयुधुस्तत्रपुरुषारक्तसम्भवाः ॥ समंमातृभिरत्युग्रंशस्त्रपातातिभीषणम् ॥ ४४ ॥ पुनश्चवज्रपातेनक्षतमस्यशिरोयदा ॥ ववाहरक्तंपुरुषास्ततोजाताःसहस्रशः ॥ ४५ ॥ वैष्णवीसमरेचैनंचक्रेणाभिजघानह ॥ गदयाताडयामासऐंद्रीतमसुरेश्वरम् ॥ ४६ ॥ वैष्णवीचक्रभिन्नस्यरुधिरस्रावसम्भवैः ॥ सहस्रशोजगद्व्याप्तंतत्प्रमाणैर्महासुरैः ॥ ४७ ॥ शक्त्याजघानकौमारीवाराहीचतथासिना ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनरक्तबीजंमहासुरम् ॥ ४८ ॥

सदृश थे ॥ ४३ ॥ वह रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्नहुए पुरुषभी मातृगणोंके संग उस रणक्षेत्रमें अत्यन्त उग्र शस्त्र चलाकर अतिभयंकर युद्ध करने लगे ॥ ४४ ॥ पुनर्वार जब ऐन्द्रीने वज्रपातसे इस असुरका मस्तक काटा, तब उस क्षतस्थानसे रक्त प्रवाह बहने लगा, और उससे हजार हजार असुर उत्पन्न हुए ॥ ४५ ॥ वैष्णवी शक्तिने युद्धस्थलमें उसको चक्रसे काटा और ऐन्द्रीने गदासे इस असुरेश्वरको ताडन किया ॥ ४६ ॥ वैष्णवीके चक्रसे कटे हुए उस असुरके रुधिर बहनेसे उत्पन्न हुए उसीके सदृश हजारों बडे बडे असुरोंसे जगत् व्याप्त होगया ॥ ४७ ॥ कौमारी शक्ति द्वारा वाराही, असि द्वारा और माहेश्वरी त्रिशूलद्वारा उस महाअसुर रक्तबीजको मारने लगीं ॥ ४८ ॥

और वह महा असुर रक्तबीज भी क्रोध युक्त होकर गदा द्वारा समस्त मातृगणोंको पृथक् पृथक् मारने लगा ॥ ४९ ॥ शक्ति, शूल आदि नाना प्रकारके अस्त्रोंसे आहत उस रक्तबीजके शरीरसे जो रक्त भूमिमें गिरा उससे सैकडों असुर उत्पन्न हुए ॥ ५० ॥ उस असुरके रक्तसे उत्पन्न हुए असुरोंने संपूर्ण जगत्को व्याप्त कर दिया । तब देवता अत्यन्त भीत हुए ॥ ५१ ॥ अनन्तर देवताओंको इस प्रकार डरा हुआ देखकर चंडिकाने शीघ्रतासहित कालीसे कहा हे चामुण्डे ! तुम अपना मुख फैलाओ ॥ ५२ ॥ और मेरे शस्त्रघातसे उत्पन्न हुई रक्तकी बूँदोंको तथा रक्तकी बूँदोंसे उत्पन्न हुए महा असुरोंको तुम इस मुखमें वेग सहित ग्रहण करो ॥५३॥ और उससे उत्पन्न हुए

सचापिगदयादैत्यः सर्वाएवाहनत्पृथक् ॥ मातृःकोपसमाविष्टोरक्तबीजोमहासुरः ॥४९॥ तस्याहतस्यबहुधाशक्तिशूलादिभिर्भुवि ॥
पपातयोवैरक्तौघस्तेनासञ्छतशोसुराः॥ ५० ॥ तैश्चासुरसृक्संभूतैरसुरैःसकलंजगत ॥ व्याप्तमासीत्ततोदेवाभयमाजग्मुरुत्तमम् ॥५१॥
तान्विषण्णान्सुरान्दृष्ट्वाचंडिकाप्राहसत्त्वरा ॥ उवाचकालींचामुंडेविस्तीर्णंवदनंकुरु ॥ ५२ ॥ मच्छस्त्रपातसम्भूतान्रक्तबिंदून्महासु
रान् ॥ रक्तबीजात्प्रतीच्छत्वंवक्त्रेणानेनवेगिना ॥५३॥ भक्षयंतीचररणेतदुत्पन्नान्महासुरान् ॥ एवमेषक्षयंदैत्यःक्षीणरक्तोगमिष्यति ॥
भक्ष्यमाणास्त्वयाचोग्रानैवोत्पत्स्यंतिचापरे ॥ ५४ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वातांततोदेवीशूलेनाभिजघानतम् ॥ मुखेनकाली
जगृहेरक्तबीजस्यशोणितम् ॥ ५५ ॥ ततोसावाजघानाथगदयातत्रचंडिकाम् ॥ नचास्यावेदनांचक्रेगदापातोल्पिकामपि ॥ ५६ ॥
तस्याहतस्यदेहात्तुबहुसुस्रावशोणितम् ॥ यतस्ततःस्ववक्त्रेणचामुंडासंप्रतीच्छति ॥ ५७ ॥

महाअसुरोंका भक्षण करती हुई रणमें विचरती रहो, ऐसा करनेसे जब इस दैत्यका रुधिर क्षीण हो जायगा, तब यह विनाशको प्राप्त होगा ॥५४ जब तुम उसको भक्षण करना आरंभ करोगी, फिर वह उत्पन्न नहीं हो सकेगा। ऋषि बोले—कालीसे यह बात कहकर चण्डिकादेवीने त्रिशूलसे उस असुरको घायल किया और काली उस घायल रक्तबीजका शोणित मुखमें ग्रहण करने लगी॥५५ तब उस रक्तबीज असुरने रणक्षेत्रमें गदासे देवीको आघात किया, किन्तु उस गदाके प्रहारसे देवीको अल्प मात्र वेदनाभी उत्पन्न नहीं करासका॥५६॥इधर उस घायलहुए असुरके शरीरसे जो रुधिर गिरा, चामुण्डाने वह सब शोणित मुखमें ग्रहण किया ॥ ५७ ॥

चामुण्डादेवीके मुखमें रक्त गिरनेसे जो महाअसुर उत्पन्न हुए वह उन सब असुरोंको रुधिरके सहित भक्षण करने लगीं ॥ ५८ ॥ जब चामुण्डाने इस प्रकार रक्तबीजका शोणित पान किया तब चण्डिकादेवीने उसको शूल, चक्र, बाण असि और ऋष्टिसे हनन किया ॥ ५९ ॥ अनंतर हे महीपाल ! वह महाअसुर रक्तबीज शस्त्रोंके समूहसे मारा हुआ नीरक्त अर्थात रुधिरहीन होकर पृथ्वीतलमें गिर पड़ा ॥ ६० ॥ हे नृप ! तदनन्तर देवताओंने अतुलहर्ष प्राप्त किया और मातृगण असुरोंका रक्त पीनेसे मदोद्धत होकर नृत्य करने लगीं ॥ ६१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायां पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ राजाने कहा—हे भगवन् ! आपने रक्तबीज वध विषयक

मुखेसमुद्गतायेस्यारक्तपातान्महासुराः ॥ तांश्चखादाथचामुण्डापपौतस्यचशोणितम् ॥ ५८ ॥ देवीशूलेनचक्रेणबाणैरसिभिरृष्टिभिः ॥ जघानरक्तबीजंतंचामुण्डापीतशोणितम् ॥ ५९ ॥ सपपातमहीपृष्ठेशस्त्रसंघसमाहतः ॥ नीरक्तश्चमहीपालरक्तबीजोमहासुरः ॥ ६० ॥ ततस्तेहर्षमतुलमवापुस्त्रिदशानृप ॥ तेषांमातृगणोमत्तोननर्त्तासृङ्मदोद्धतः ॥ ६१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्येरक्तबीजवधोनामपञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८५ ॥ राजोवाच ॥ विचित्रमिदमाख्यातंभगवन्भवतामम ॥ देव्याश्चरितमाहात्म्यंरक्तबीजवधाश्रितम् ॥ १ ॥ भूयश्चेच्छाम्यहंश्रोतुंरक्तबीजेनिपातिते ॥ चकारशुम्भोयत्कर्मनिशुम्भश्चातिकोपनः ॥२॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ चकारकोपमतुलंरक्तबीजेनिपातिते ॥ शुम्भासुरोनिशुम्भश्चहतेष्वन्येषुचाहवे ॥ ३ ॥ हन्यमानंमहासैन्यंविलोक्यामर्षमुद्वहन् ॥ अभ्यधावन्निशुम्भोथमुख्ययासुरसेनया ॥ ४ ॥ तस्याग्रतस्तथापृष्ठेपार्श्वयोश्चमहासुराः ॥ संदष्टौष्ठपुटाःक्रुद्धाहंतुंदेवीमुपाययुः ॥ ५ ॥

अद्भुत देवी चरित्रका माहात्म्य मुझसे वर्णन किया ॥ १ ॥ अब रक्तबीजके मारे जाने पर अत्यन्त क्रोधित शुंभ और निशुंभने जो कार्य किया, उसके सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ ऋषि बोले—समरमें रक्तबीजके मारेजाने पर और अन्यान्य सेनाके निहत होनेपर शुंभ और निशुंभ दोनों असुर अत्यन्त क्रोधयुक्त हुए ॥ ३ ॥ अनन्तर उस सब सेनाको निहत होता देखकर अत्यन्त क्रोधसे असुरोंकी मुख्य सेनाको साथ लेकर निशुंभासुर देवीके सन्मुख दौड़ा ॥ ४ ॥ और उस दैत्यके आगे तथा पीछे और दोनों ओर बड़े बड़े असुर अपने २ होठोंको

चबाते हुए क्रोधपूर्वक देवीको विनाश करनेके निमित्त आये ॥ ५ ॥ फिर अपनी सेनाको साथ लिये महावीर्यवान् शुंभासुरभी मातृगणोंके संग युद्ध करके देवीको मारनेके अर्थ क्रोधित होकर आया ॥ ६ ॥ तब देवीके संग जलवर्षणकारी दो मेघोंके समान अत्यन्त प्रचंड शर वर्षण करी शुंभ और निशुंभका भयंकर युद्ध होने लगा ॥ ७ ॥ चण्डिका उन दोनों असुरोंके चलाये शर समूहको अपने शरसमूह द्वारा शीघ्र काटकर शस्त्रोंसे दोनों असुरेश्वरोंके अंगोंमें ताडना करने लगीं ॥ ८ ॥ पैनी तलवार और चमकती हुई ढाल लेकर निशुंभने देवीके उत्तम वाहन सिंहके मस्तकमें मारी ॥ ९ ॥ वाहनको ताडित देखकर देवीने क्षुरप्र नामक अस्त्रसे निशुंभकी उत्तम तलवार काट

आजगाममहावीर्यःशुंभोपिस्वबलैर्वृतः ॥ निहंतुंचंडिकांकोपात्कृत्वायुद्धंतुमातृभिः ॥६॥ ततोयुद्धमतीवासीद्देव्याःशुंभनिशुम्भयोः ॥ शरवर्षमतीवोग्रंमेघयोरिववर्षतोः ॥ ७ ॥ चिच्छेदास्ताञ्छरांस्ताभ्यांचंडिकास्वशरोत्करैः ॥ ताडयामासचांगेषुशस्त्रौघैरसुरेश्वरौ ॥ ॥ ८ ॥ निशुम्भोनिशितंखड्गंचर्मचादायसुप्रभम् ॥ अताडयन्मूर्ध्निसिंहंदेव्यावाहनमुत्तमम् ॥ ९ ॥ ताडितेवाहनेदेवीक्षुरप्रेणासिमुत्तमम् ॥ निशुम्भस्याशुचिच्छेदचर्मचाप्यष्टचंद्रकम् ॥ १० ॥ छिन्नचर्मणिखड्गेचशक्तिंचिक्षेपसोसुरः ॥ तामप्यस्यद्विधाचक्रेचक्रेणाभिमुखागताम् ॥ ११ ॥ कोपाध्मातोनिशुम्भोथशूलंजग्राहदानवः ॥ आयांतंमुष्टिपातेनदेवीतच्चाप्यचूर्णयत् ॥ १२ ॥ अथादाय गदांसोपिचिक्षेपचंडिकांप्रति ॥ सापिदेव्यात्रिशूलेनभिन्नाभस्मत्वमागता ॥ १३ ॥ ततःपरशुहस्तंतमायांतंदैत्यपुङ्गवम् ॥ आहत्यदेवीबाणौघैरपातयतभूतले ॥ १४ ॥ तस्मिन्निपतितेभूमौनिशुम्भेभीमविक्रमे ॥ भ्रातर्यतीवसंक्रुद्धःप्रययौहंतुमंबिकाम् ॥ १५ ॥

कर अष्टचन्द्रक ढाल भी काट डाली ॥ १० ॥ तलवार और ढालके कटजाने पर निशुंभासुरने शक्ति छोडी किन्तु देवीने उस सामने आती हुई शक्तिकेभी चक्रद्वारा दो खंड कर दिये ॥ ११ ॥ अनन्तर कोपमें भरे हुए असुर दानवने शूल ग्रहण करके चलाया और देवीने आते हुए उस शूलको भी मुष्टिपातसे चूर्ण कर डाला ॥ १२ ॥ तब उस असुरने गदा घुमाकर चलाई, किन्तु उस गदाको भी देवीने त्रिशूलसे तोडकर भस्म करदिया ॥ १३ ॥ फिर फरसा हाथमें लेकर आये हुए उस दैत्यश्रेष्ठ निशुंभको देवीने बाणोंसे घायल करके पृथ्वीमें गिरादिया ॥ १४ ॥ भयंकर विक्रम भ्राता निशुंभको भूमिमें गिरता हुआ देखकर शुंभासुर अत्यन्त क्रोधसे देवीके मारनेको गया ॥ १५ ॥

और बड़े बड़े आयुध लेकर तथा अत्यन्त लम्बी लम्बी अतुल पराक्रमवाली आठ भुजाओंसे युक्त वह रथमें बैठकर और समस्त आकाश मण्डलमें व्याप्त होकर दीखने लगा ॥ १६ ॥ उसको आता हुआ देखकर देवीने शंख बजाया और अत्यन्त दुःसह धनुष्यकी प्रत्यंचाका शब्द किया ॥ १७ ॥ तथा समस्त दैत्योंकी सेनाका तेज विनाश करनेवाले अपने घंटके शब्दसे संपूर्ण दिशाओंको पूरित कर दिया ॥ १८ ॥ फिर हाथियोंके महामदको दूर करनेवाले महानादसे सिंहनेभी आकाश, पृथ्वी और दशों दिशाओंको पूरित कर दिया ॥१९॥ अनन्तर कालीने आकाशमें उछलकर फिर दोनों हाथोंसे पृथ्वीमें आघात किया, उस आघातके शब्दसे पहला संपूर्ण शब्द मन्द होगया ॥२०॥ शिवदूतीने भी शत्रुओंका

सरथस्थस्तदात्युच्चैर्गृहीतपरमायुधैः ॥ भुजैरष्टाभिरतुलैर्व्याप्याशेषंबभौनभः ॥१६॥ समयांतंतमालोक्यदेवीशंखमवादयत् ॥ ज्याशब्दंचापिधनुषश्चकारातीवदुःसहम् ॥१७॥ पूरयामासककुभोनिजघंटास्वनेनच॥ समस्तदैत्यसैन्यानांतेजोवधविधायिना ॥१८॥ ततः सिंहोमहानादैस्त्याजितेभमहामदैः ॥ पूरयामासगगनंगांतथैवदिशोदश ॥ १९ ॥ ततःकालीसमुत्पत्यगगनंक्ष्मामताडयत् ॥ कराभ्यांतन्निनादेनप्राक्स्वनास्तेतिरोहिताः ॥ २० ॥ अट्टाट्टहासमशिवंशिवदूतीचकारह ॥ तैःशब्दैरसुरास्त्रेसुःशुम्भःकोपंपरंययौ ॥ २१ ॥ दुरात्मंस्तिष्ठतिष्ठेतिव्याजहारांबिकायदा ॥ तदाजयेत्यभिहितंदेवैराकाशमंस्थितैः ॥ २२ ॥ शुम्भेनागत्ययाशक्तिर्मुक्ताज्वालातिभीषणा ॥ आयांतीवह्निकूटाभासानिरस्तामहोल्कया ॥ २३ ॥ सिंहनादेनशुम्भस्यव्याप्तंलोकत्रयांतरम् ॥ निर्घातनिःस्वनोघोरोजितवानवनीपते ॥ २४ ॥ शुम्भमुक्ताञ्छरान्देवीशुम्भस्तत्प्रहिताञ्छरान् ॥ चिच्छेदस्वशरैरुग्रैःशतशोथसहस्रशः ॥ २५ ॥

अमंगलकारी अत्यन्त उच्च हास्य किया, उस शब्दसे असुरगण त्रसित (दुःखी) हुए और फिर शुंभ अतिशय क्रोधित हुआ ॥ २१ ॥ जब अम्बिकाने शुंभसे "दुरात्मन् ! ठहर, ठहर" इस प्रकार कहा, तब आकाशमें स्थित हुए देवता जय जय शब्द करने लगे ॥ २२ ॥ शुंभासुरने आकर उग्रदीप्ति अतिभयंकर जो शक्ति छोड़ी उस अग्निके समान आती हुई शक्तिको देवीने महोल्कानाम्नी शक्तिसे काट कर दूर फेंकदी ॥ ॥ २३ ॥ अनन्तर शुम्भके सिंहनादसे तीनोंलोक व्याप्त हो गये, तब हे अवनीपाल ! आकाशसे उत्पन्न हुए विद्युत्के घोर शब्दने उस शुंभके नादको जीत लिया ॥ २४ ॥ शुंभके चलाये शतसहस्र बाण देवीने अपने उग्र बाणोंसे काट डाले और शुंभने भी देवीके चलाये सैकड़ों

हजारों बाणोंको अपने उग्र बाणोंसे काट डाले ॥ २५ ॥ इसके पीछे उन चण्डिका देवीने क्रोधित होकर शूल द्वारा घायल किया और शूलाहत शुंभासुर मूर्च्छित होकर पृथ्वीमें गिर गया ॥ २६ ॥ अनन्तर निशुंभासुर चेतना प्राप्त कर धनुष धारणपूर्वक बाणोंसे देवी काली और सिंहको घायल करने लगा ॥ २७ ॥ फिर दनुजपति निशुंभ दैत्यने दश हजार बाहु धारण करके चक्र और आयुधोंके द्वारा चण्डिका देवीको आच्छादित कर दिया ॥२८॥ तब संघटनाशिनी भगवती दुर्गाने क्रोधित होकर उन समस्त चक्र और बाणोंसे काट डाला ॥२९॥ तदनंतर दैत्योंकी सेना साथ लिये निशुंभ उन देवीको हनन करनेके लिये गदा ग्रहण करके अत्यन्त वेगसे दौडा ॥३०॥ तब आती हुई निशुंभासुरकी उस गदाको देवी चण्डिकाने

ततःसाचंडिकाक्रुद्धाशूलेनाभिजघानतम् ॥ सतदाभिहतोभूमौमूर्छितोनिपपातह ॥ २६ ॥ ततोनिशुंभः संप्राप्यचेतनामात्तकार्मुकः ॥ आजघानशरैर्देवींकालींकेसरिणंतथा ॥ २७ ॥ पुनश्चकृत्वाबाहूनामयुतंदनुजेश्वरः ॥ चक्रायुतेनदितिजश्छादयामासचंडिकाम् ॥ ॥ २८ ॥ ततोभगवतीक्रुद्धादुर्गादुर्गार्तिनाशिनी ॥ चिच्छेदतानिचक्राणिस्वशरैः सायकांश्चतान् ॥ २९ ॥ ततोनिशुंभोवेगेनगदामादायचंडिकाम् ॥ अभ्यधावतवैहंतुंदैत्यसेनासमावृतः ॥ ३० ॥ तस्यापततएवाशुगदांचिच्छेदचंडिका ॥ खड्गेनशितधारेणसच शूलंसमाददे ॥ ३१ ॥ शूलहस्तंतमायांतंनिशुंभममरार्दनम् ॥ हृदिविव्याधशूलेनवेगाविद्धेनचंडिका ॥ ३२ ॥ भिन्नस्यतस्य शूलेनहृदयान्निःसृतोपरः ॥ महाबलोमहावीर्यस्तिष्ठेतिपुरुषोवदन् ॥ ३३ ॥ तस्यनिष्क्रामतोदेवीप्रहस्यस्वनवत्ततः ॥ शिरश्चिच्छेदखड्गेनततोसावपतद्भुवि ॥ ३४ ॥ ततःसिंहश्चखादोग्रदंष्ट्राक्षुण्णशिरोधरान् ॥ असुरांस्तांस्तथाकालीशिवदूतीतथापरान् ॥ ३५ ॥

तीक्ष्णधारवाले खड्गसे काट डाली फिर निशुंभने शूल ग्रहण किया ॥ ३१ ॥ अनंतर शूल ग्रहण करके संमुख आते हुए निशुंभासुरको देवीने अत्यन्त वेगसे अपना त्रिशूल चलाकर हृदयमें विद्ध किया ॥ ३२ ॥ फिर शूल द्वारा भिन्न उस असुरके हृदयसे अन्य एक पुरुष महाबल और महावीर्यवान् देवीसे "ठहर" यह बात कहता हुआ निकला ॥ ३३ ॥ तब देवीने नादपूर्वक हँसकर उस बाहर निकले हुए असुरका मस्तक खड्गसे काट डाला और वह भूमिमें गिर गया ॥ ३४ ॥ अनंतर तीक्ष्ण दांतोंके द्वारा गर्दन चाबकर सिंह असुरोंको भक्षण करने लगा तथा शिवदूती और काली अन्यान्य असुरोंको भक्षण करने लगीं ॥ ३५ ॥

कोई कोई महाअसुर कौमारी शक्तिकी शक्तिसे कटकर मर गये। ब्रह्माणीके मंत्रपूत जलका स्पर्श करनेसे अपरापर अनेक असुर नष्ट होगये ॥ ३६ ॥ अपर अनेक असुर माहेश्वरीके त्रिशूलाघातसे भिन्न होकर गिरपड़े और कोई कोई असुर वाराहीके मुखके प्रहारसे चूर्ण होकर भूमिमें गिरगये ॥ ३७ ॥ अन्यान्य दानवोंको वैष्णवीने चक्रसे खंड२कर डाला और ऐन्द्रीके हाथसे छुटे हुए वज्रद्वारा आहत होकर अपर असुरोंमें ॥३८॥ कोई नष्ट हुए, कोई कोई महायुद्धसे भाग गये। तथा जो असुर बचे थे, उनको काली शिवदूती और सिंहने भक्षण कर लिया ॥३९॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमहात्म्येभाषाटीकायां षडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ऋषि बोले–प्राणतुल्य भ्राता निशुंभ और सेनाको मरा हुआ

कौमारीशक्तिनिर्भिन्नाःकेचिन्नेशुर्महासुराः ॥ ब्रह्माणीमंत्रपूतेनतोयेनान्येनिराकृताः ॥ ३६ ॥ माहेश्वरीत्रिशूलेनभिन्नाःपेतुस्तथापरे ॥ वाराहीतुंडघातेनकेचिच्चूर्णीकृताभुवि ॥३७॥ खंडंखंडंचचक्रेणवैष्णव्यादानवाःकृताः ॥ वज्रेणचैंद्रीहस्ताग्रविमुक्तेनतथापरे ॥३८॥ केचिद्विनेशुरसुराःकेचिन्नष्टामहाहवात् ॥ भक्षिताश्चापरेकालीशिवदूतीमृगाधिपैः ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये निशुम्भवधोनामषडशीतितमोऽध्यायः ॥ ८६ ॥ ऋषिरुवाच ॥ निशुम्भंनिहतंदृष्ट्वाभ्रातरंप्राणसंमितम ॥ हन्यमानंबलंचैवशुम्भः क्रुद्धाब्रवीद्वचः ॥ १ ॥ बलावलेपाद्दुष्टेत्वंमादुर्गेगर्वमावह ॥ अन्यासांबलमाश्रित्ययुध्यसेयातिमानिनी ॥ २ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ एकैवाहंजगत्यत्रद्वितीयाकाममापरा ॥ पश्यैतादुष्टमय्येवविशंत्योमद्विभूतयः ॥ ३ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ ततःसमस्तास्तादेव्याब्रह्माणीप्रमुखालयम् ॥ तस्यादेव्यास्तनौजग्मुरेकैवासीत्तदांबिका ॥ ४ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ अहंविभूत्याबहुभिरिहरूपैर्यदास्थिता ॥ तत्संहृतंमयैकैवतिष्ठाम्याजौस्थिरोभव ॥ ५ ॥

देखकर शुंभने क्रोधित होकर कहा ॥ १ ॥ हे दुष्टे दुर्गे! तू बलके अभिमानसे गर्व मतकरे, तू औरोंके बलके आश्रयसे अत्यन्त मानवती होकर युद्ध करती है ॥२॥ देवी बोली–रे दुष्ट! इस जगत्में एक मैं ही विद्यमान हूं, मेरे अतिरिक्त दूसरा कौन है? देख यह सब मेरी विभूति मुझमेंही प्रवेश करती है॥३॥ऋषि बोले–अनन्तर ब्रह्माणी इत्यादि समस्त शक्तिमें देवीके शरीरमें विलीन होगई तब अम्बिका अकेलीही विद्यमान रहगई ॥ ४ ॥ फिर देवीने कहा–रे शुंभ! मैं अपनी विभूतिके द्वारा इस स्थानमें बहुतरूपसे स्थित थी अब उन सब

रूपोंका संहार करके युद्धक्षेत्रमें अकेलीही रहगई हूं तू स्थिर हो॥५॥ऋषि बोले—अनन्तर देखते हुए देवता और असुरोंके संमुख देवी और शुम्भासुर, इन दोनोंका दारुण युद्ध उपस्थित हुआ॥६॥ फिर उन देवी और शुंभासुरकी शरवृष्टि शाणित शस्त्र और दारुण अस्त्रोंके परस्पर प्रहारद्वारा संपूर्ण लोकोंको भय उत्पन्नकरनेवाला युद्ध आरंभ हुआ॥७॥ अम्बिकाने जो शत शत दिव्यास्त्र छोड़े उन समस्त दिव्य अस्त्रोंको उस दैत्येन्द्र शुंभासुरने, उन अस्त्रोंको काटनेवाले अस्त्रोंके द्वारा काटडाला ॥८॥और शुंभासुरने जो दिव्यास्त्र छोडे उन सब दिव्य अस्त्रोंको परमेश्वरी चण्डिकानेभी लीलापूर्वकही उस हुंकारोच्चारणादिद्वारा तोडडाला ॥९॥फिर उस महाअसुरने सैकड़ों बाण वर्षाकर देवीको ढकदिया।तब देवीनेभी कुपित होकर

षिरुवाच ॥ ॥ ततःप्रवृत्तेयुद्धंदेव्याःशुम्भस्यचोभयोः ॥ पश्यतांसर्वदेवानामसुराणांचदारुणम् ॥ ६ ॥ शरवर्षैःशितैःशस्त्रैस्तथा चास्त्रैः सुदारुणैः ॥ ततोर्युद्धमभूद्भूयःसर्वलोकभयंकरम् ॥ ७ ॥ दिव्यान्यस्त्राणिशतशोमुमुचेयान्यथांबिका ॥ बभंजतानिदैत्येंद्रस्त तत्प्रतीघातकर्तृभिः ॥ ८ ॥ मुक्तानितेनचास्त्राणिदिव्यानिपरमेश्वरी ॥ बभञ्जलीलयैवोग्रहुंकारोच्चारणादिभिः ॥ ९ ॥ ततःशरशतै र्देवीमाच्छादयतसोसुरः ॥ साचतत्कुपितादेवीधनुश्चिच्छेदचेषुभिः ॥ १० ॥ छिन्नेधनुषिदैत्येंद्रस्तथाशक्तिमथाददे ॥ चिच्छेददेवी चक्रेणतामप्यस्यकरेस्थिताम् ॥ ११ ॥ ततःखड्गमुपादायशतचन्द्रंचभानुमत् ॥ अभ्यधावततांहंतुंदैत्यानामधिपेश्वरः ॥ १२ ॥ तस्यापततएवाशुखड्गंचिच्छेदचंडिका ॥ धनुर्मुक्तैःशितैर्बाणैश्चर्मचार्ककरामलम् ॥ १३ ॥ अश्वांश्चपातयामासरथंसारथिनासह ॥ हताश्वः सतदादैत्यश्छिन्नधन्वाविसारथिः ॥ जग्राहमुद्गरंघोरमंबिकानिधनोद्यतः ॥ १४ ॥

बाणोंसे उसका धनुष काट डाला ॥ १० ॥ धनुषके कट जानेपर दैत्यपतिने शक्ति ग्रहण की, किन्तु देवीने शुंभके हाथमें स्थित उस शक्तिको भी चक्रसे काट डाला ॥ ११ ॥ तब दैत्याधिपति शुंभ खड्ग और दीप्तियुक्त शतचन्द्र विशिष्ट ढाल ग्रहण करके देवीके ऊपर दौडा ॥ १२ ॥ तब आते हुए शुंभके खड्ग और सूर्यकी किरण सदृश निर्मल चर्म (ढाल) को चण्डिकाने धनुषसे छोड़े हुए पैने बाणोंसे काट डाला ॥ १३ ॥ जब उस दैत्य पतिके रथके घोडे मर गये, धनुष टूट गया और सारथी निहत होगया, तब वह घोर मुद्गर ग्रहणकरके अम्बिकाके मारनेको उद्यत हुआ ॥ १४ ॥

तब देवीने सन्मुख आते हुए असुरका मुद्गर पैने बाणोंसे काट डाला, किन्तु तो भी वह महाअसुर घूँसा तानकर अत्यन्त वेगसे देवीकी ओर दौडा ॥ १५ ॥ दैत्यश्रेष्ठने वह घूँसा देवीके हृदयमें मारा । तब देवीने भी थप्पड द्वारा उसकी छातीमें प्रहार किया ॥ १६ ॥ थप्पडके प्रहारसे पीडित होकर दैत्यराज महीतलमें गिरगया और तत्कालही फिर उठा ॥ १७ ॥ अनन्तर देवीको ग्रहणपूर्वक उछल करशुंभ आकाशमें स्थित हुआ और देवीभी आकाशमें निरालम्ब होकर उसके संग नियुद्ध[1] करने लगी ॥१८॥ फिर आकाशमें शुंभ और चण्डिकादेवी प्रथम सिद्ध और मुनियोंका आश्चर्य करानेवाला युद्ध करने लगी ॥ १९ ॥ उस असुरके संग बहुत कालतक नियुद्ध करके उसे ऊपरको उछालकर घुमाया और

चिच्छेदापततस्तस्यमुद्गरंनिशितैःशरैः ॥ तथापिसोऽभ्यधावत्तांमुष्टिमुद्यम्यवेगवान् ॥ १५ ॥ समुष्टिंपातयामासहृदयेदैत्यपुङ्गवः ॥ देव्यास्तंचापिसादेवीतलेनोरस्यताडयत् ॥ १६ ॥ तलप्रहाराभिहतोनिपपातमहीतले ॥ सदैत्यराजःसहसापुनरेवतथोत्थितः ॥१७॥ उत्पत्यचप्रगृह्योच्चैर्देवींगगनमास्थितः ॥ तत्रापिसानिराधारायुयुधेतेनचंडिका ॥ १८ ॥ नियुद्धंखेतदादैत्यश्चण्डिकाचपरस्परम् ॥ चक्रतुःप्रथमंसिद्धमुनिविस्मयकारकम् ॥१९॥ ततोनियुद्धंसुचिरंकृत्वातेनांबिकासह ॥ उत्पात्यभ्रामयामासचिक्षेपधरणीतले ॥२०॥ सक्षिप्तोधरणींप्राप्यमुष्टिमुद्यम्यवेगितः ॥ अभ्यधावतदुष्टात्माचंडिकानिधनेच्छया ॥ २१ ॥ तमायांततोदेवीसर्वदैत्यजनेश्वरम् ॥ जगत्यांपातयामासभित्त्वाशूलेनवक्षसि ॥ २२ ॥ सगतासुःपपातोर्व्यांदेवीशूलाग्रविक्षतः ॥ चालयन्सकलांपृथ्वींसाब्धिद्वीपांसपर्वताम् ॥ २३ ॥

फिर पृथ्वीमें पटक दिया ॥ २० ॥ तब वह दुष्टात्मा असुर पृथ्वीमें गिरकर अत्यन्त वेगसे घूँसा उठाय चण्डिकाको मारनेकी इच्छासे दौडा ॥ २१ ॥ उस सर्व दैत्येश्वर शुंभको आता हुआ देखकर देवीने अपने शूलसे उसका हृदय वेधकर उसको भूमिमें गिरा दिया ॥ २२ ॥ देवीके शूलाग्रद्वारा शुंभासुरका हृदय घायल हुआ और जब वह प्राणरहित होकर भूमिमें गिरा, उस समय समुद्र द्वीप और पर्वतोंके सहित संपूर्ण पृथ्वी विचलित हुई ॥ २३ ॥

[1] शस्त्र हाथमें लिये विना केवल भुजासे युद्ध करनेको "नियुद्ध" कहते हैं ।

फिर उस दुरात्मा असुरके मारे जानेपर सब प्रसन्न हुए, जगत् अत्यन्त स्वस्थ हुआ और आकाश भी अत्यन्त निर्मल होगया ॥ २४ ॥ जो सब अनिष्ट सूचक मेघ और उल्कागण शुंभके रहते विद्यमान थे, शुंभके मारे जानेपर वह अदृश हुए और नदियें अपने अपने मार्गोंमें बहने लगीं ॥ २५ ॥ और उसके निहत होनेपर समस्त देवतागण अत्यन्त हर्षित चित्त हुए और गंधर्व मधुर मधुर गान करने लगे ॥ २६ ॥ कोई कोई बाजा बजाने लगे और अप्सरागण नृत्य करने लगीं, सुंदर शीतल वायु चलने लगी और दिवाकर (सूर्य) ने भी सुन्दर प्रभा धारण करी ॥ २७ ॥ बुझी हुई होमकी अग्नि जलने लगी और दिशाओंमें शांत शांत शब्द होने लगे ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये

ततःप्रसन्नमखिलंहतेतस्मिन्दुरात्मनि ॥ जगत्स्वास्थ्यमतीवापनिर्मलंचाभवन्नभः ॥ २४ ॥ उत्पातमेघाःसोल्कायेप्रागासंस्तेशमंययुः॥ सरितोमार्गवाहिन्यस्तथाशुंभेनिपातिते ॥२५॥ ततोदेवगणाःसर्वेहर्षनिर्भरमानसाः ॥ बभूवुर्निहतेतस्मिन्गंधर्वाललितंजगुः ॥ २६ ॥ अवादयंस्तथैवान्येननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ ववुःपुण्यास्तथावाताःसुप्रभोभूद्दिवाकरः ॥ २७ ॥ जज्वलुश्चाग्नयःशांताःशांतदिग्जनित स्वनाः ॥ २८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे देवीमहात्म्येशुम्भवधोनाम सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ देव्याहतेतत्र महासुरेंद्रेसेंद्राः सुरावह्निपुरोगमास्ताम् ॥ कात्यायनींतुष्टुवुरिष्टलाभाद्विकाशिवक्त्राब्जविकाशिताशाः ॥ १ ॥ देवाऊचुः देविप्रपन्नार्ति हरेप्रसीदप्रसीदमातर्जगतोखिलस्य ॥ प्रसीदविश्वेश्वरिपाहिविश्वंत्वमीश्वरीदेविचराचरस्य ॥ २ ॥ आधारभूताजगतस्त्वमेकामहीस्व रूपेणयतःस्थितासि ॥ अपांस्वरूपस्थितयात्वयैतदाप्याय्यतेकृत्स्नमलंघ्यवीर्ये ॥ ३ ॥

भाषाटीकायां शुम्भवधोनामसप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥ ८७ ॥ ऋषि बोले–जब देवीने उस महा असुरेन्द्रका संहार कर डाला, तब इन्द्र और अग्निको आगे करके समस्त देवता अपने इष्ट फलकी प्राप्ति हो जानेके कारण अपने प्रसन्न मुख कमलोंसे दिशाओंको प्रकाशित करते हुए उन कात्यायनी देवीका स्तव करने लगे ॥ १ ॥ देवता बोले--हे शरणागत दुःखहरे देवि ! प्रसन्न होओ, हे अखिल जगज्जननि ! प्रसन्न होओ, हे विश्वेश्वरि ! प्रसन्न होओ, तुम विश्वकी रक्षा करो, हे देवि ! तुम्हीं चराचर विश्वकी ईश्वरी हो ॥ २ ॥ हे देवि ! तुम्हीं जगत्‌की अद्वितीय आधारस्वरूप हो, क्योंकि मही (भूमि) स्वरूपसे स्थिति करती हो, हे देवि ! तुम्हीं जलस्वरूपसे अवस्थान करती हुई इस

संपूर्ण विश्वको तृप्त करती हो हे देवि ! तुम्हारा वीर्य उल्लंघन करनेके अयोग्य है ॥ ३ ॥ हे देवि ! तुम्हीं अनन्त वीर्य वैष्णवी शक्ति हो, तुम्हीं संसारकी हेतुभूत परममाया हो, तुमनेही संपूर्ण विश्वको मोहितकर रक्खा है, हे देवि ! पृथ्वीमें तुम्हीं प्रसन्न होकर मुक्तिका कारण होती हो ॥४॥ हे देवि ! संपूर्ण विद्याही तुम्हारी मूर्त्तिविशेष हैं,और त्रिभुवनमें जितनी स्त्री हैं,सबहीं तुम्हारी मूर्तिविशेष हैं हे जननि ! तुम एकही इस विश्वमें व्याप्त हो रही हो अधिक और तुम्हारी क्या स्तुति करें, तुम स्तुतिसे परे और स्तुतिकी परमउक्ति हो ॥५॥ तुम्हीं सर्वभूतस्वरूपमें प्रकाशमान हो तुम्हीं स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हो इस कारण तुम्हारी स्तुति करते हैं, किन्तु हे देवि ! तुम्हारे निर्गुण ब्रह्मस्वरूपकी स्तुति करनेमें कौनसी उक्ति श्रेष्ठ है, कोई भी नहीं, क्योंकि तुममें गुण नहीं है निर्गुणकी गुणकीर्त्तनरूप स्तुति किस प्रकारसे संभव हो सकती है ? ॥ ६ ॥ तुम बुद्धिरूपसे

त्वंवैष्णवीशक्तिरनंतविर्याविश्वस्यबीजंपरमासि ॥ मायासंमोहितंदेविसमस्तमेतत्त्वंवैप्रसन्नाभुविमुक्तिहेतुः ॥ ४ ॥ विद्याःसमस्तास्त वदेविभेदाःस्त्रियःसमस्ताःसकलंजगच्च ॥ त्वयैकयापूरितमंबयैतत्कातेस्तुतिःस्तव्यपरापरोक्तिः ॥ ५ ॥ सर्वभूतायदादेवीभुक्तिमुक्ति प्रदायिनी ॥ त्वंस्तुतास्तुतयेकावाभवंतिपरमोक्तयः ॥ ६ ॥ सर्वस्यबुद्धिरूपेणजनस्यहृदिसंस्थिते ॥ स्वर्गापवर्गदेदेविनारायणिन मोस्तुते ॥ ७॥ कलाकाष्ठादिरूपेणपरिणामप्रदायिनी ॥ विश्वस्योपरतौशक्तेनारायणिनमोस्तुते ॥ ८ ॥ सर्वमंगलमांगल्येशिवे सर्वार्थसाधिके ॥ शरण्येत्र्यंबकेगौरिनारायणिनमोस्तुते ॥ ९ ॥ सृष्टिस्थितिविनाशानांशक्तिभूतेसनातनि ॥ गुणाश्रयेगुणमयेना रायणिनमोस्तुते ॥ १० ॥ शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे ॥ सर्वस्यार्तिहरेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥ ११ ॥

सबके हृदयमें वास करती हो, हे स्वर्गमुक्तिदेनेवाली ! हे देवि ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ७ ॥ हे विश्वविनाशमें समर्थ ! तुम कला और काष्ठादिरूपसे जगत्‌का परिणामविधान करती हो अर्थात् क्षणमुहूर्त्तादि कालकरके मनुष्योंको अंतकी देनेवाली हो हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ८ ॥ हे सर्वमंगलमाङ्गल्ये ! हे शिवे ! हे सर्वार्थसाधिके ! हे शरणदेनेवाली ! हे तीन नेत्रवाली ! हे गौरी ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ ९ ॥ हे सनातनि ! हे गुणाश्रये ! हे गुणमये ! हे नारायणि ! तुम सृष्टि, स्थिति और विनाशकी शक्तिस्वरूप हो, तुमको नमस्कार है ॥ १० ॥ हे देवि ! हे नारायणि ! तुम शरणागत, दीन और आर्त मनुष्योंकी रक्षा करनेवाली हो और सबका दुःख हरती हो,

तुमको नमस्कार है ॥ ११ ॥ हे देवि ! नारायणि ! तुमको ब्रह्माणीरूपसे हंसयुक्त विमानमें स्थित होकर युद्धक्षेत्रमें कुशाभिमंत्रित जल छिड-कती हो तुमको नमस्कार है ॥ १२ ॥ हे देवि ! तुमने माहेश्वरीरूपसे बैलपर चढकर अर्द्धचन्द्र और नागभूषणसे विभूषित होकर त्रिशूल धारण किया था, तुमको नमस्कार है ॥ १३ ॥ हे अनघे ! हे नारायणि ! तुमने कौमारीरूप धारणपूर्वक मयूर और कुक्कुटसे युक्त होकर महाशक्ति धारण की थी, तुमको नमस्कार है ॥ १४ ॥ हे नारायणि ! तुमने वैष्णवी शक्तिरूपसे रणस्थलमें शंख, चक्र, गदा और शार्ङ्गधनुरूप महा अस्त्रोंको धारण किया था तुमको नमस्कार है, तुम प्रसन्न होओ ॥ १५ ॥ हे शिवे ! हे नारायणि ! तुमनेही महावराहरूप धर दांतोंके द्वारा जलमें डूबी हुई पृथ्वीको पातालसे उखाड़कर प्रचण्ड महाचक्र धारण किया था, तुमको नमस्कार है ॥ १६ ॥ हे नारायणि ! तुमने भयंकर

हंसयुक्तविमानस्थेब्रह्माणीरूपधारिणि ॥ कौशांभःक्षीरकेदेविनारायणिनमोस्तुते ॥१२॥ त्रिशूलचन्द्राहिधरेमहावृषभवाहिनि ॥ माहेश्वरीस्वरूपेणनारायणिनमोस्तुते ॥ १३ ॥ मयूरकुक्कुटवृतेमहाशक्तिधरेनघे ॥ कौमारीरूपसंस्थानेनारायणिनमोस्तुते ॥ १४ ॥ शंखचक्रगदाशार्ङ्गगृहीतपरमायुधे ॥ प्रसीदवैष्णवीरूपेनारायणिनमोस्तुते ॥ १५ ॥ गृहीतोग्रमहाचक्रेदंष्ट्रोद्धृतवसुंधरे ॥ वराहरूपिणिशिवेनारायणिनमोस्तुते ॥ १६ ॥ नृसिंहरूपेणोग्रेणहंतुंदैत्यान्कृतोद्यमे ॥ त्रैलोक्यत्राणसहितेनारायणिनमोस्तुते ॥ १७ ॥ किरीटिनिमहावज्रेसहस्रनयनोज्ज्वले ॥ वृत्रप्राणहरेचैंद्रिनारायणिनमोस्तुते ॥ १८ ॥ शिवदूतीस्वरूपेणहतदैत्यमहाबले ॥ घोररूपेमहारावेनारायणिनमोस्तुते ॥ १९ ॥ दंष्ट्राकरालवदनेशिरोमालाविभूषणे ॥ चामुंडेमुंडमथनेनारायणिनमोस्तुते ॥ २० ॥

नृसिंहरूपसे दैत्योंके वध करनेमें उद्यत होकर तीनों लोककी रक्षा करी थी तुमको नमस्कार है ॥ १७ ॥ हे किरीट धारण करनेवाली ! हे महावज्रवाली ! हे सहस्र नेत्रोंसे उज्ज्वल ! हे वृत्रासुरके प्राण हरनेवाली ! हे ऐन्द्री ! हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे नारा-यणि ! तुमने शिवदूती स्वरूपसे भयंकररूप धारण करके उत्कट शब्दके द्वारा ही दैत्योंकी बडीभारी सेनाको नाश किया था, तुमको नमस्कार है ॥ १९ ॥ हे नारायणि ! तुम दंष्ट्राकरालमुखसे चामुण्डारूप धारण करके शिरोमाला द्वारा विभूषित हुई थीं एवं चण्ड और मुण्ड नामक दोनों असुरोंको विनाश किया था, तुमको नमस्कार है ॥ २० ॥

हे नारायणि ! तुम्हीं लक्ष्मी, लज्जा, महाविद्या, श्रद्धा, पुष्टि, स्वधा, महारात्रि और महामोहस्वरूप और तुम्हीं ध्रुवा अर्थात् नित्या हो, तुमको नमस्कार है॥२१॥ हे नारायणि ! तुम्हीं मेधा, सरस्वती, श्रेष्ठा, बाभ्रवी, भूति और तामसी हो तुमको नमस्कार है । हे नियते! हे ईशे! तुम प्रसन्न होओ॥२२॥ तुम सब ओर हाथ, पैर, नेत्र, शिर, मुख, श्रवण, नासिकावाली हो अर्थात् यह समष्टि शिर आदि तुम्हारेही स्वरूप हैं हे नारायणि ! तुमको नमस्कार है ॥ २३ ॥ हे देवि ! तुम सर्वस्वरूप ईश्वरी सर्वशक्तिसमन्वित हो, अतएव हमारी भयसे रक्षा करो. हे दुर्गे ! हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥ २४ ॥ हे कात्यायनि ! तुम्हारा यह तीन नेत्रोंसे विभूषित सौम्य मुख सब प्राणियोंसे हमारी रक्षा करे, हे देवि ! तुमको नमस्कार है ॥२५॥ हे

लक्ष्मिलज्जेमहाविद्येश्रद्धेपुष्टेस्वधेध्रुवे ॥ महारात्रेमहामायेनारायणिनमोस्तुते ॥ २१ ॥ मेधेसरस्वतिवरेभूतिबाभ्रवितामसि ॥ नियते त्वंप्रसीदेशेनारायणिनमोस्तुते ॥ २२ ॥ सर्वतःपाणिपादांतेसर्वतोक्षिशिरोमुखे ॥ सर्वतःश्रवणघ्राणेनारायणिनमोस्तुते ॥ २३ ॥ सर्वस्वरूपेसर्वेशेसर्वशक्तिसमन्विते ॥ भयेभ्यस्त्राहिनोदेविदुर्गेदेविनमोस्तुते ॥ २४ ॥ एतत्तेवदनंसौम्यंलोचनत्रयभूषितम् ॥ पातुनः सर्वभीतिभ्यःकात्यायनिनमोस्तुते ॥ २५ ॥ ज्वालाकरालमत्युग्रमशेषासुरसूदनम् ॥ त्रिशूलंपातुनोभीतेर्भद्रकालिनमोस्तुते ॥२६॥ हिनस्तिदैत्यतेजांसिस्वनेनापूर्ययाजगत् ॥ साघंटापातुनोदेविपापेभ्योनःसुतानिव ॥२७॥ असुरासृग्वसापंकचर्चितस्तेकरोज्ज्वलः ॥ शुभायखड्गोभवतुचंडिकेत्वांनतावयम् ॥२८॥ रोगानशेषानपहंसितुष्टादशामिकामान्सकलानभीष्टान् ॥ त्वामाश्रितानांनविपन्नराणां त्वामाश्रिताह्याश्रयतांप्रयांति ॥ २९ ॥

भद्रकालि ! तुम्हारा यह ज्वालाओंसे कराल अतिउग्र और संपूर्ण असुरोंको नाश करनेवाला त्रिशूल हमारी भयसे रक्षा करे, तुमको नमस्कार है ॥ ॥ २६ ॥ शब्दद्वारा संपूर्ण जगत्को पूर्ण करके जो घंटा दैत्योंके तेजका नाश करता है, तुम्हारा वह घंटा पुत्रके समान हमारी संपूर्ण पापोंसे रक्षा करे ॥२७॥ हे चण्डिके ! हम तुमको नमस्कार करते हैं, असुरोंके रक्त और वसा (चरबी) रूप पंकद्वारा चर्चित और किरणोंसे उज्ज्वल यह तुम्हारे हाथका शोभायमान खड्ग हमारा मंगल करे ॥२८॥ हे देवि ! संतुष्ट होनेपर संपूर्ण रोग विनाश करती हो और रुष्ट होनेपर सब अभिलाषित और प्रियवस्तु हरण करती हो ! हे देवि ! तुम्हारे आश्रित मनुष्योंको विपद नहीं रहती और जो तुमको आश्रय करते हैं, वह सबके आश्रयस्वरूप होते

हैं॥२९॥और हे देवि! अनेक प्रकारकी मूर्त्ति धारण करके जो आज तुमने धर्मके शत्रु ऐसे बड़े बड़े असुरोंका वध कियाहै, सो क्या कोई अन्य स्त्री करसकती है?॥३०॥और चतुर्दश विद्याओंके तथा षट्शास्त्रोंके और ज्ञानरूपी दीपक ऐसे आद्यवाक्यकहिये वेदोंके वर्त्तमान रहनेपरभी घोर अंधकारवाले इस ममता-रूपी गढेमें इसजगत्को तुम्हारे अतिरिक्त और दूसरा कौन अधिक घुमासकताहै॥३१॥हे देवि! जिस स्थानमें राक्षसहैं, जिस स्थानमें क्रूर सर्पहैं, जिस स्थानमें शत्रुहैं, जिसस्थानमे चोरोंके झुंडहैं. और जिस स्थानमें दावानलहै, तुम उसी उसीस्थान और समुद्रमें स्थितहोकर विश्वकी रक्षा करती हो॥३२॥हे देवि! तुम विश्वेश्वरी हो. क्योंकि इस विश्वकी रक्षा करती हो. तुम्हीं विश्वात्मिका हो. कारण कि, विश्वको धारण कर रही हो और विश्वेश्वरादि अर्थात्

एतत्कृतंयत्कदनंत्वयाद्यधर्मद्विषांदेविमहासुराणाम् ॥ रूपैरनेकैर्बहुधात्ममूर्त्तिंकृत्वांबिकेतत्प्रकरोतिकान्या ॥ ३० ॥ विद्यासुशास्त्रेषु विवेकदीपेष्वाद्येषुवाक्येषुचकात्वदन्या ॥ ममत्वगर्त्तेतिमहांधकारेविभ्रामयस्येतदतीवविश्वम् ॥ ३१ ॥ रक्षांसियत्रोग्रविषाश्चनागायत्रारयोदस्युबलानियत्र ॥ दावानलोयत्रतथाब्धिमध्येतत्रस्थितात्वंपरिपासिविश्वम् ॥ ३२ ॥ विश्वेश्वरीत्वंपरिपासिविश्वंविश्वात्मिकाधारयसीतिविश्वम् ॥ विश्वेशवंद्याभवतीभवंतिविश्वाश्रयायेत्वयिभक्तिनम्राः ॥ ३३ ॥ देविप्रसीदपरिपालयनोरिभीतेर्नित्यंयथासुरवधादधुनैवसद्यः ॥ पापानिसर्वजगतांप्रशमंनयाशुउत्पातपाकजनितांश्चमहोपसर्गान् ॥ ३४ ॥ प्रणतानांप्रसीदत्वंदेविविश्वार्त्तिहारिणि ॥ त्रैलोक्यवासिनामीड्येलोकानांवरदाभव ॥ ३५ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वरदाहंसुरगणावरंयंमनसेच्छथ ॥ तंवृणुध्वंप्रयच्छामिजगतामुपकारकम् ॥ ३६ ॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकी भी वन्दनीया हो. क्योंकि जो ब्रह्मादि देवता विश्वका आश्रय हैं, वहभी तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होते हैं और जो मनुष्य तुम्हारे प्रति भक्तिनम्र होतेहैं, वह विश्वका आश्रय होते हैं॥३३॥हे देवि! प्रसन्न होओ और जिसप्रकार असुरोंका वधकरके इस समय रक्षा करी है, इसी प्रकार शत्रुभयसे हमारी सदा रक्षा करो। और संपूर्ण जगत्के पापोंका तथा उत्पातोंके होनेसे उठे हुए जो जो महामारी आदि उपद्रव हैं, उनको शीघ्र शान्तकरो॥३४॥हे संसारकी आपत्तिको दूर करनेवाली देवी! प्रणत मनुष्योंके ऊपर प्रसन्न होओ, हे त्रैलोक्यवासियोंकी पूजनीय. तुम समस्त मनुष्योंको वर देनेवाली होओ॥३५॥देवीने कहा—हे सुरगण! मैं वरदा अर्थात् वर देनेवाली हूं, तुम तीनों जगत्के उपकार करनेवाली जिस वरकी

मनमें इच्छा करते हो, वह माँगो मैं उसको दूंगी ॥ ३६ ॥ देवता बोले–हे अखिलेश्वरि ! त्रैलोक्यके सर्व प्रकार विघ्नोंकी शांति करो और इसी भाँति हमारे शत्रुओंको विनाश करती रहो, यही हमारा वर है ॥ ३७ ॥ देवीने कहा—वैवस्वत मन्वन्तरमें जब अट्ठाईसवां युग आवेगा, तब शुंभ और निशुंभ नामक अन्य दो महाअसुर जन्म ग्रहण करेंगे ॥ ३८ ॥ तब मैं नन्दगोपके घर यशोदाके गर्भसे जन्मग्रहणपूर्वक विन्ध्याचलवासिनी होकर उनको भी विनाश करूंगी ॥ ३९ ॥ फिर पृथ्वीतलमें अत्यन्त भयंकररूपसे अवतीर्ण होकर मैं वैप्रचित्त नामक दानवोंका हनन करूंगी ॥ ४० ॥ उन वैप्रचित्त नामक उग्र असुरोंके भक्षण कालमें मेरे दांत दाडिमी कुसुमके समान रक्तवर्ण हो जायँगे ॥ ४१ ॥ अनन्तर

॥ देवाऊचुः ॥ ॥ सर्वबाधाप्रशमनंत्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि ॥ एवमेतत्त्वयाकार्यमस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ३७ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ वैवस्वतेंतरेप्राप्तेअष्टाविंशतिमेयुगे ॥ शुम्भोनिशुम्भश्चैवान्यावुत्पत्स्येतेमहासुरौ ॥ ३८ ॥ नंदगोपकुलेजातायशोदागर्भसंभवा ॥ ततस्तौनाशयिष्यामिविंध्याचलनिवासिनी ॥ ३९ ॥ पुनरप्यतिरौद्रेणरूपेणपृथिवीतले ॥ अवतीर्यहनिष्यामिवैप्रचित्तांस्तुदानवान् ॥ ४० ॥ भक्षयंत्याश्चतानुग्रान्वैप्रचित्तान्सुदानवान् ॥ रक्तादंताभविष्यंतिदाडिमीकुसुमोपमाः ॥ ४१ ॥ ततोमांदेवताःस्वर्गे मर्त्यलोकेचमानवाः ॥ स्तुवंतोव्याहरिष्यंतिसततंरक्तदन्तिकाम् ॥ ४२ ॥ भूयश्चशतवार्षिक्यामनावृष्ट्यामनंभसि ॥ मुनिभिःसंस्तुताभूमौसंभविष्याम्ययोनिजा ॥ ४३ ॥ ततःशतेननेत्राणांनिरीक्षिष्यामियन्मुनीन् ॥ कीर्त्तयिष्यंतिमनुजाःशताक्षीमितिमांततः ॥ ॥४४॥ ततोहमखिलंलोकमात्मदेहसमुद्भवैः ॥ भरिष्यामिसुराःशाकैरावृष्टेःप्राणधारकैः ॥४५॥ शाकंभरीतिविख्यातिंतदायास्याम्यहंभुवि॥तत्रैवचवधिष्यामिदुर्गमाख्यंमहासुरम्॥(दुर्गादेवीतिविख्यातंतन्मेनामभविष्यति॥पुनश्चाहंयदाभीमंरूपंकृत्वाहिमाचले) ॥४६॥

स्वर्गमें देवता और मर्त्यमें मनुष्यगण स्तव करनेके समय सदा मुझको "रक्तदन्तिका" कहकर कीर्त्तन करेंगे ॥ ४२ ॥ और फिर जब सौ वर्ष पर्यन्त वर्षा नहीं होगी, तब जलके अभावमें मुनिगण मेरी स्तुति करेंगे, उस काल मैं मनुष्य योनिके विना ही उत्पन्न हूंगी ॥४३॥ तब मैं सौ नेत्रोंके द्वारा मुनियोंको देखूंगी, इसलिये मुनिगण मुझको "शताक्षी" कहेंगे ॥ ४४ ॥ इसके पीछे जबतक वर्षा नहीं होगी, तबतक हे देवताओ ! स्वकीय देहसे उत्पन्न प्राणधारक शाक द्वारा संपूर्ण लोकोंका पोषण करूंगी ॥ ४५ ॥ इस कारण मैं पृथ्वीमें "शाकम्भरी" नामसे विख्यात हूंगी

और उस अनावृष्टिकालमेंही दुर्गम नामक महाअसुरको वध करूंगी ॥ फिर जब मैं मुनियोंकी रक्षा करनेके लिये हिमाचलमें भयंकररूप धारण करके राक्षसोंको मारूंगी ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ उस काल समस्त मुनिगण नम्रमूर्ति होकर मेरी स्तुति करेंगे और मेरा "भीमादेवी" यह नाम विख्यात होगा ॥ ४८ ॥ और जिस समयमें अरुण नामक महाअसुर त्रैलोक्यको महाबाधा करेगा, उसकालमें असंख्य षट्पद समन्वित भ्रमरोंकारूप धारण करके ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यका हित करनेके लिये उस असुरका वध करूंगी, इसकारण मनुष्य मेरा (भ्रामरी)के नामसे स्तव करेंगे॥५०॥इसप्रकार जब जब दानवोंकी करी हुई बाधा उपस्थित होगी, तब तब मैं अवतार लेकर शत्रुओंका विनाश करूंगी॥५१॥ इति

रक्षांसिभक्षयिष्यामिमुनीनांत्राणकारणात् ॥ ४७ ॥ तदामांमुनयःसर्वेस्तोष्यंत्यानम्रमूर्तयः ॥ भीमादेवीतिविख्यातंतन्मेनामभविष्यति ॥ ४८ ॥ यदारुणाख्यस्त्रैलोक्येमहाबाधांकरिष्यति ॥ तदाहंभ्रामरंरूपंकृत्वासंख्येयषट्पदम् ॥ ४९ ॥ त्रैलोक्यस्यहितार्थाय वधिष्यामिमहासुरम् ॥ भ्रामरीतिचमांलोकास्तदास्तोष्यंतिसर्वतः ॥ ५० ॥ इत्थंयदायदाबाधादानवोत्थाभविष्यति ॥ तदातदावतीर्याहंकरिष्याम्यरिसंक्षयम् ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे देवीमाहात्म्ये नारायणीस्तुतिर्नामाष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

॥ श्रीदेव्युवाच ॥ एभिःस्तवैश्चमांनित्यंस्तोष्यतेयःसमाहितः ॥ तस्याहंसकलांबाधांनाशयिष्याम्यसंशयम् ॥ १ ॥ मधुकैटभनाशंचमहिषासुरघातनम् ॥ कीर्त्तयिष्यंतियेतद्वद्वधंशुम्भनिशुम्भयोः ॥ २ ॥ अष्टम्यांचचतुर्दश्यांनवम्यांचैकचेतसः ॥ स्तोष्यंतिचैवये भक्त्याममममाहात्म्यमुत्तमम् ॥ ३ ॥ नतेषांदुष्कृतंकिंचिद्दुष्कृतोत्थानचापदः ॥ नभविष्यतिदारिद्र्यंनचैवेष्टवियोजनम् ॥ ४ ॥ शत्रुतोनभयंतेषांदस्युतोवानराजतः ॥ नशस्त्रानलतोयौघात्कदाचित्संभविष्यति ॥ ५ ॥

श्रीमा०पु० देवीमाहात्म्ये भाषाटीकायामष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥ देवी बोली-इन सब स्तवोंसे सावधान होकरजो मनुष्य मेरी नित्य स्तुति करेगा, मैं उसकी संपूर्ण बाधा नष्ट करूंगी, इसमें सन्देह नहीं ॥१॥ मधुकैटभ महिषासुर और शुंभ निशुंभवधरूप मेरा उत्तम माहात्म्य एकाग्रचित्तसे भक्ति सहित जो अष्टमी, चतुर्दशी अथवा नवमी तिथिमें कहेंगे वा सुनेंगे ॥२॥३॥उनका कुछ पाप वा पापसे उत्पन्न हुई कोई आपत्ति नहीं रहेगी और दारिद्र्य तथा प्रिय जनोंका वियोग नहीं होगा ॥४॥ शत्रुसे, चोरोंसे, अथवा राजासे किसी स्थलमें भय नहीं होगा और शस्त्र, अनल

तथा जलसेभी कभी भय नहीं होगा॥५॥इस कारण मेरा माहात्म्य सावधानहोकर पढे और सुने। मेरा यह माहात्म्यही सर्वोत्तम स्वस्त्ययन है॥६॥ यह मेरा माहात्म्य महामारीसे उत्पन्नहुए समस्त उपद्रवोंको और तीन प्रकारके उत्पातको शमन करता है ॥ ७ ॥ जिस घरमें मेरा यह माहात्म्य सम्यक् प्रकार पढा जाता है, मैं उस घरको परित्याग नहीं करती और उसीके समीप स्थित रहती हूं ॥ ८ ॥ बलि देनेके समय, पूजाके समय तथा होमकार्य इत्यादि महोत्सवमें मेरा यह संपूर्ण चरित्र उच्चारण और श्रवण करना चाहिये ॥ ९ ॥ मनुष्यगण जानकर वा बिना जाने जो कुछ बलि पूजा करते हैं, वा अग्निमें होम करते हैं, उस सबको मैं प्रसन्नतासहित ग्रहण करती हूं ॥ १० ॥ शरत्कालमें जो वार्षिकी महापूजा

तस्मान्ममैतन्माहात्म्यंपठितव्यंसमाहितैः ॥ श्रोतव्यंचसदाभक्त्यापरंस्वस्त्ययनंमहत् ॥६॥ उपसर्गानशेषांस्तुमहामारीसमुद्भवान् ॥ तथात्रिविधमुत्पातंमाहात्म्यंशमयेन्मम ॥ ७ ॥ यत्रैतत्पठ्यतेसम्यङ्नित्यमायतनेमम ॥ सदानतद्विमोक्ष्यामिसांनिध्यंतत्रमेस्थितम् ॥ ८ ॥ बलिप्रदानेपूजायामग्निकार्येमहोत्सवे ॥ सर्वंममैतच्चरितमुच्चार्यंश्राव्यमेवच ॥ ९ ॥ जानताजानतावापिबलिपूजांतथाकृताम् ॥ प्रतीच्छिष्याम्यहंप्रीत्यावह्निहोमंतथाकृतम् ॥ १० ॥ शरत्कालेमहापूजाक्रियतेयाचवार्षिकी ॥ तस्यांममैतन्माहात्म्यंश्रुत्वाभक्तिसमन्वितः ॥ ११ ॥ सर्वबाधाविनिर्मुक्तोधनधान्यसमन्वितः ॥ मनुष्योमत्प्रसादेनभविष्यतिनसंशयः ॥ १२ ॥ श्रुत्वाममैतन्माहात्म्यंतथोत्पत्तीःपृथक्शुभाः ॥ पराक्रमांश्चयुद्धेषुजायतेनिर्भयःपुमान् ॥ १३ ॥ रिपवःसंक्षयंयांतिकल्याणंचोपपद्यते ॥ नन्दतेचकुलंपुंसांमाहात्म्यंममशृण्वताम् ॥ १४ ॥ शांतिकर्मणिसर्वत्रतथादुःस्वप्नदर्शने ॥ ग्रहपीडासुचोग्रासुमाहात्म्यंशृणुयान्मम ॥ १५ ॥ उपसर्गाः शमंयांतिग्रहपीडाश्चदारुणाः ॥ दुःस्वप्नंचनृभिर्दृष्टंसुस्वप्नमुपजायते ॥ १६ ॥

करी जाती है, उस पूजाके समय मेरा यह माहात्म्य भक्तियुक्त होकर श्रवण करनेपर ॥११॥ मनुष्य मेरे प्रसादसे संपूर्ण विपदसे छूट जाते हैं, और धन, धान्य तथा पुत्रयुक्त होते हैं, इसमें सन्देह नहीं ॥ १२ ॥ मेरा यह माहात्म्य, इस शुभ उत्पत्तिकी कथा और युद्धमें पराक्रम सुननेसे मनुष्य निर्भय होता है॥१३॥उसके शत्रु नष्ट होते हैं और कल्याण होता है। मेरे महात्म्य सुननेवाले पुरुषका कुल आनन्दयुक्त होता है॥१४॥सब शांति कर्मोंमें, दुःस्वप्न देखनेमें और भयंकर ग्रहपीडाके समय मेरा माहात्म्य सुने॥१५॥इसके सुननेसे उपद्रव और दारुण ग्रहपीडा शान्त होती है और

मनुष्यको दीखे हुए दुःस्वप्नके समान श्रेष्ठफल प्रदान करते हैं ॥१६॥ यह मेरा माहात्म्य पूतना, डाकिनी, शाकिनी, बालग्रहोंसे ग्रसितहुए बालकोंकी शांति करानेवाला है, और यदि मनुष्योंमें परस्पर फूट होजाय, तो उत्तमरीतिसे मित्रता करनेवाला है॥१७॥और संपूर्ण दुराचारी जनोंके परमबलकी हानि करनेवाला है, इसके पाठकरनेसेही राक्षस, भूत और पिशाचोंका नाश होजाता है ॥ १८ ॥ यह मेरा संपूर्ण माहात्म्य पाठकको मेरे समीप करनेवाला है। यह आदि, मध्य, अवसानमें सर्वथा मेरी सब प्रकार प्रसन्नता करता है ॥ १९ ॥ उत्कृष्ट पशु, पुष्प, अर्घ्य, धूप, गंध, दीप, ब्राह्मणभोजन, होम, प्रोक्षणीय ॥२०॥ और अन्यान्य विविध भोग द्वारा एक वर्षतक रातदिन पूजा करनेसे मैं

बालग्रहाभिभूतानांबालानांशांतिकारकम् ॥ संघातभेदचनृणांमैत्रीकरणमुत्तमम् ॥ १७ ॥ दुर्वृत्तानामशेषाणांबलहानिकरंपरम् ॥ रक्षोभूतपिशाचानांपठनादेवनाशनम् ॥ १८ ॥ सर्वंममैतन्माहात्म्यंममसंनिधिकारकम् ॥ १९ ॥ पशुपुष्पार्घ्यधूपैश्चगन्धदीपैस्तथोत्तमैः ॥ विप्राणांभोजनैर्होमैःप्रोक्षणीयैरहर्निशम् ॥ २० ॥ अन्यैश्चविविधैर्भोगैःप्रदानैर्वत्सरेणया ॥ प्रीतिर्मेक्रियतेसास्मिन्सकृदुच्चरितेश्रुते ॥ २१ ॥ श्रुतंहरतिपापानितथारोग्यंप्रयच्छति ॥ रक्षांकरोतिभूतेभ्योजन्मनांकीर्त्तनंमम ॥ २२ ॥ युद्धेषुचरितंयन्मेदुष्टदैत्यनिबर्हणम् ॥ तस्मिञ्छ्रुतेवैरिकृतंभयंपुंसांनजायते ॥ २३ ॥ युष्माभिःस्तुतयोयाश्चयाश्चब्रह्मर्षिभिः कृताः ॥ ब्रह्मणाचकृतायास्ताः प्रयच्छंतिशुभांगतिम् ॥ २४ ॥ अरण्येप्रांतरेवापिदावाग्निपरिवारितः ॥ दस्युभिर्वावृतःशून्येगृहीतोवापिशत्रुभिः ॥२५॥ सिंहव्याघ्रानुयातोवावनेवावनहस्तिभिः ॥ राज्ञाक्रुद्धेनचाज्ञप्तोवध्योबन्धगतोपिवा ॥ २६ ॥

जितनी प्रसन्न होती हूं, इस माहात्म्यको केवल एक वार सुननेसेही उतनी प्रसन्न होजाती हूं॥२१॥मेरा माहात्म्य सुना जानेसे सब पापोंको हरता है और आरोग्यता प्रदान करता है, मेरे जन्मका कीर्त्तन करनेपर भूतोंसे रक्षा होती है॥२२॥तथा युद्धोंमें जो दुष्ट दैत्योंके नाशका चरित्र है,उसके श्रवण करनेपर पुरुषको शत्रुसे किया हुआ भय नहीं होता है॥२३॥ तुमने जो स्तुति की है, तथा ब्रह्मर्षियोंने जो स्तुतियां करीं हैं और ब्रह्माजीने जो स्तव किया है, उन सब स्तुतियोंके पढ़नेपर वह शुभमती देती हैं ॥ २४ ॥ चोरोंसे घिरनेपर, मित्ररहित स्थानमें शत्रुओंसे घिरनेपर वनमें वा प्रान्तरमें दावाग्निसे पीडित होनेपर ॥ २५ ॥ सिंह वा व्याघ्रके पीछे दौडनेपर वनमें वनके हाथियोंसे घिरनेपर अग्निमें गिरनेपर क्रुद्ध

राजाके द्वारा वधकी आज्ञा दी जानेपर बंधनमें प्राप्त होनेपर ॥ २६ ॥ महासमुद्रमें छोटी डोंगीपर बैठनेके कारण वायुद्वारा आघूर्णित होनेपर, अत्यन्त भयंकर संग्राममें शस्त्र समूहके गिरनेपर ॥ २७ ॥ अधिक क्या ! सब प्रकारकी विपत्तियोंमें ही यंत्रणासे श्रमित होनेपर मनुष्य यदि मेरा चरित्र स्मरण करे तो संपूर्ण संकटसे छूट जाता है ॥ २८ ॥ मेरे चरित्रको जो मनुष्य स्मरण करता है, उसको देखकर मेरे प्रभावसे सिंहादि हिंसक जन्तु, चोर और शत्रुगण दूर भागजाते हैं ॥ २९ ॥ ऋषि बोले—इस प्रकार कहकर उग्र पराक्रमवाली चण्डिका देखते हुए देवताओंके सामनेसे उसी स्थानमें अन्तर्धान होगई ॥ ३० ॥ तब वह शत्रुरहित देवताभी निर्भय यज्ञभाग भोजन करते हुए अपने अपने विषयका अधिकार

आघूर्णितोवावातेनस्थितःपोतेमाहार्णवे ॥ पतत्सुचापिशस्त्रेषुसंग्रामेभृशदारुणे ॥ २७ ॥ सर्वाबाधासुघोरासुवेदनाभ्यर्दितोपिवा ॥ स्मरन्ममैतच्चरितंनरोमुच्येतसंकटात ॥ २८ ॥ ममप्रभावात्सिंहाद्यादस्यवोवैरिणस्तथा ॥ दूरादेवपलायंतेस्मरतश्चरितंमम ॥ २९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ इत्युक्त्वासाभगवतीचण्डिकाचण्डविक्रमा ॥ पश्यतामेवदेवानांतत्रैवांतरधीयत ॥ ३० ॥ तेपिदेवानिरातंकाः स्वाधिकारान्यथापुरा ॥ यज्ञभागभुजःसर्वेचक्रुर्विनिहतारयः ॥ ३१ ॥ दैत्याश्चदेव्यानिहतेशुम्भेदेवरिपौयुधि ॥ जगद्विध्वंसकेतस्मि न्महोग्रेतुलविक्रमे ॥ निशुंभेचमहावीर्येशेषाःपातालमाययुः ॥ ३२ ॥ एवंभगवतीदेवीसानित्यापि पुनःपुनः ॥ सम्भूयकुरुतेभूपज गतःपरिपालनम् ॥ ३३ ॥ तयैतन्मोह्यतेविश्वंसैवविश्वंप्रसूयते ॥ सायाचिताचविज्ञानंतुष्टाऋद्धिंप्रयच्छति ॥ ३४ ॥ व्याप्तंतयैतत्स कलंब्रह्माण्डंमनुजेश्वर ॥ महाकाल्यामहाकालेमहामारीस्वरूपया ॥ ३५ ॥

करने लगे ॥ ३१ ॥ जगत्के विध्वंस करनेवाले अतुल विक्रम देवशत्रु शुंभ और महा वीर्यवान् निशुंभ जब युद्धक्षेत्रमें देवीके हाथसे मारे गये, तब बचे हुए दैत्योंने पातालमें गमन किया ॥ ३२ ॥ हे भूप ! वह देवी भगवती नित्या होनेपर भी इसप्रकार वारंवार उत्पन्न होकर जगत्का पालन करती है ॥ ३३ ॥ वही भगवती इस विश्वको मोहित करती है, वही इस विश्वको प्रसव (उत्पन्न) करती है और उनके निकट प्रार्थना करनेसे वह संतुष्ट होकर तत्त्वज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करती हैं ॥ ३४ ॥ हे मनुजेश्वर ! यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड उनसे ही व्याप्त होरहा है और प्रलयकालमें महामारी स्वरूपा महाकालीसे व्याप्त होता है ॥ ३५ ॥

और वही, जब काल आता है, तो महामारीरूप होजाती है, तथा संसारोत्पत्तिके समय वही सृष्टिरूप होजाती है और रक्षाकालमें वही सनातनी देवी प्राणियोंकी रक्षा करती हैं ॥ ३६ ॥ मंगलके समयमें वही मनुष्योंके घरमें अनेक प्रकारका ऐश्वर्य प्रदान करती हैं और उसीके अभावमें विनाशके निमित्त लक्ष्मी अन्तर्धान होजाती हैं ॥ ३७ ॥ उसकी स्तुति करने और गन्ध, पुष्प, धूप, दीपादि द्वारा पूजा करनेसे वह धन, पुत्र और धर्ममें शुभमति प्रदान करती हैं ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां फलश्रुतिर्नामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ऋषि बोले–राजन् ! आपके निकट मैंने यह उत्तम देवीमाहात्म्य कहा । जो इस जगत्को धारण कर रही हैं, उनका

सैवकालेमहामारीसैवसृष्टिर्भवत्यजा ॥ स्थितिंकरोतिभूतानांसैवकालेसनातनी ॥ ३६ ॥ भवकालेनृणांसैवलक्ष्मीर्वृद्धिप्रदागृहे ॥ सैवाभावेतथालक्ष्मीर्विनाशायोपजायते ॥३७॥ स्तुतासंपूजितापुष्पैर्गंधधूपादिभिस्तथा ॥ ददातिवित्तंपुत्रांश्चमतिंधर्मेगतिंशुभाम् ॥ ॥ ३८ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसावर्णिकेदेवीमाहात्म्येशुंभनिशुंभवधोनामैकोननवतितमोऽध्यायः ॥ ८९ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ एतत्तेकथितंभूपदेवीमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ एवंप्रभावासादेवीययेदंधार्यतेजगत् ॥ १ ॥ विद्यातथैवक्रियतेभगवद्विष्णुमायया ॥ तथा त्वमेषवैश्यश्चतथैवान्येविवेकिनः ॥ मोह्यंतेमोहिताश्चैवमोहष्यंतिचापरे ॥ २ ॥ तामुपैहिमहाराजशरणंपरमेश्वरीम् ॥ आराधिता सैवनृणांभोगस्वर्गापवर्गदा ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितस्यवचःश्रुत्वासुरथःसनराधिपः ॥ प्रणिपत्यमहाभागंतमृषिंसंशितव्रतम् ॥ ४ ॥ निर्विण्णोतिममत्वेनराज्यापहरणेनच ॥ जगामसद्यस्तपसेसचवैश्योमहामुने ॥ ५ ॥

प्रभाव इस प्रकार है वही भगवती विष्णु माया ही तत्त्वज्ञान देती हैं वही तुमको इस वैश्यको और अन्यान्य विवेकी पुरुषोंको भी मोहित करती हैं और किया है तथा उनके द्वारा ही भविष्य प्राणी मोहित होंगे ॥ १ ॥ २ ॥ हे महाराज ! उन भगवती परमेश्वरीकी ही शरणमें आओ । उनकी आराधना करनेसेही वह मनुष्यको भोग, स्वर्ग और मुक्ति प्रदान करती हैं ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे महामुने ! अतिशय ममता और राज्य हरण हो जानेसे अत्यन्त दुःखित वह नराधिप सुरथ ऋषिके यह वचन सुन कठोर व्रत संपन्न उन महाभाग ऋषिको प्रणामकर तत्काल तपस्याके लिये चले गये और वह वैश्यभी इसी प्रकार तपस्याके लिये चला गया ॥ ४ ॥ ५ ॥

वह राजा और वैश्य नदीके किनारे स्थित हो भगवतीके दर्शनार्थ उत्कृष्ट देवीसूक्तका जप करते हुए तपस्यामें रत हुए ॥६॥ वैश्य और राजाने उसपुलिनमें देवीकी मिट्टीके द्वारा मूर्त्ति बनाय, पुष्प, धूप, होम और तर्पण इत्यादिसे उसकी पूजाकरी ॥७॥ उन्होंने कभी निराहार और नियमिताहारपूर्वक उसमें चित्त लगाय तथा सावधानहो अपने अपने देहसे रक्त टपकाकर बलि दी ॥ ८ ॥ इसप्रकार संयतचित्त हो तीन वर्ष आराधना करनेपर जगद्धात्रीचण्डिकाने संतुष्ट होकर उनसे प्रत्यक्ष कहा ॥ ९ ॥ देवी बोली—हे राजन् ! तुम जो प्रार्थना करतेहो, और हे कुलनन्दन वैश्य ! तुमभी जो प्रार्थना करतेहो, तुम मेरे निकटसे उन सबको प्राप्त होंगे, मैं संतुष्ट होकर वह प्रदान करती हूं ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--

संदर्शनार्थमंबाया नदीपुलिनसंस्थितः ॥ सचवैश्यस्तपस्तेपेदेवीसूक्तंपरंजपन् ॥ ६ ॥ तौतस्मिन्पुलिनेदेव्याः कृत्वामूर्तिमहीमयीम् ॥ अर्हणांचक्रतुस्तस्याः पुष्पधूपाग्नितर्पणैः ॥ ७ ॥ निराहारौयतात्मानौतन्मनस्कौसमाहितौ ॥ ददतुस्तौबलिंचैवनिजगात्रासृगुक्षितम् ॥ ८ ॥ एवंसमाराधयतोस्त्रिभिर्वर्षैर्यतात्मनोः ॥ परितुष्टाजगद्धात्रीप्रत्यक्षंप्राहचंडिका ॥ ९ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ यत्प्रार्थ्यतेत्वयाभूपत्वयाचकुलनन्दन ॥ मत्तस्तत्प्राप्यतांसर्वंपरितुष्टाददामितत् ॥ १० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोवव्रेनृपोराज्यमविभ्रंश्यन्यजन्मनि ॥ अत्रैवचनिजंराज्यंहतशत्रुबलंबलात् ॥ ११ ॥ सोपिवैश्यस्ततोज्ञानंवव्रेनिर्विण्णमानसः ॥ ममेत्यहमितिप्राज्ञःसंगविच्युतिकारकम् ॥ १२ ॥ ॥ श्रीदेव्युवाच ॥ ॥ स्वल्पैरहोभिर्नृपतेस्वंराज्यंप्राप्स्यतेभवान् ॥ हत्वारिपूनस्खलितंतवतत्रभविष्यति ॥१३॥ मृतश्चभूयः संप्राप्यजन्मदेवाद्विवस्वतः ॥ सावर्णिकोनाममनुर्भवान्भुविभविष्यति॥ १४ ॥ वैश्यवर्यत्वयायश्चवरोस्मत्तोभिवांछितः॥ तंप्रयच्छामिसंसिद्ध्यैतवज्ञानंभविष्यति ॥ १५ ॥

अनन्तर राजाने दूसरे जन्ममें अखंडित राज्य और इस जन्ममें बलप्रकाशपूर्वक शत्रुओंको वधकरके जिससे अपना राज्य प्राप्त कर सकूं यह वर माँगा ॥११॥ और दुःखित चित्त उस बुद्धिमान् वैश्यनेभी "यह मेरा" और "यह मैं" इस प्रकारके मोहके संगका नाशक ज्ञान माँगा ॥१२॥ देवी बोली—हे नृपते ! तुम थोडेही दिनोंमें शत्रुकुल निर्मूल न करके अपने राज्यको प्राप्त होंगे और इसके पीछे फिर तुमको राज्यसे भ्रष्ट होना नहीं पडेगा ॥१३॥ फिर मृत्युके उपरान्त तुम सूर्य देवसे उत्पत्ति लाभ करके पृथ्वीमें सावर्णिनामसे विख्यात मनु होंगे ॥ १४ ॥ हे वैश्यश्रेष्ठ !

तुमने भी मुझसे जिस वरकी प्रार्थना करी तुम्हारी सिद्धिके लिये वह तुमको देती हूं, तुमको ज्ञान होगा ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले— देवी उनको इस प्रकार यथाभिलाषित वर देकर तत्काल अन्तर्धान हो गई अन्तर्धान होनेके पहिले उन्होंनेभी उनका भक्ति पूर्वक स्तव किया था ॥१६॥ इस प्रकार क्षत्रिय श्रेष्ठ सुरथ देवीके निकटसे वरपाय सूर्यदेवसे उत्पत्ति लाभकर पृथ्वीमें सावर्णिनामक मनु होंगे ॥ १७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां देवीमाहात्म्यंनाम नवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुनिसत्तम ! यह सावर्णिक मन्वन्तर तुमसे कहागया और इसीके प्रसंगमें देवीमाहात्म्य, महिषासुर--विनाश ॥ १ ॥ महायुद्धमें मातृगणोंकी और देवीकी उत्पत्ति चामुण्डा देवीकी

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिदत्त्वातयोर्देवीयथाभिलषितंवरम् ॥ बभूवांतर्हितासद्योभक्त्याताभ्यामभिष्टुता ॥ १६ ॥ एवंदेव्यावरंलब्ध्वा सुरथः क्षत्रियर्षभः ॥ सूर्याज्जन्मसमासाद्यसावर्णिर्भवितामनुः ॥ १७ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसूर्यसावर्णिकेमन्वंतरेदेवीमाहात्म्यनवतितमोऽध्यायः ॥ ९० ॥ संपूर्णदेवीमहात्म्यम् ॥ छ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सावर्णिकमिदंसम्यक्प्रोक्तंमन्वन्तरंतव ॥ तथैवदेवीमाहात्म्यंमहिषासुरघातनम् ॥ १ ॥ उत्पत्तयश्चयादेव्यामातृणाश्चमहाहवे ॥ तथैवसंभवोदेव्याश्चामुण्डायायथाभवः ॥ २ ॥ शिवदूत्याश्चमाहात्म्यंवधः शुंभनिशुंभयोः ॥ रक्तबीजवधश्चैवसर्वमेतत्तवोदितम् ॥ ३ ॥ श्रूयतांमुनिशार्दूलसावर्णिकमथापरम् ॥ दत्तपुत्रश्चसावर्णिर्भावीयोनवमोमनुः ॥ ४ ॥ कथयामिमनोस्तस्ययेदेवामुनयोनृपाः ॥ पारामरीचिभर्गाश्चसुधर्माणस्तथासुराः ॥५॥ एतेत्रिधाभविष्यन्तिसर्वेद्वादशकागणाः ॥ तेषामिंद्रोभविष्यस्तुसहस्राक्षोमहाबलः ॥ ६ ॥ साम्प्रतंकार्तिकेयोयोवह्निपुत्रःषडाननः ॥ अद्भुतोनामशक्रोऽसौभावीतस्यान्तरेमनोः ॥ ७ ॥

उत्पत्ति ॥ २ ॥ शिवदूतीका माहात्म्य, शुंभ--निशुंभवध और रक्तबीजवध, इस सबका भी सम्यक् प्रकार तुमसे वर्णन किया ॥ ३ ॥ हे मुनि शार्दूल ! अब होनेवाले नवम मनु दक्ष--पुत्र सावर्णके मन्वन्तरका वर्णन करता हूं, सुनो ॥ ४ ॥ उस मनुके मन्वन्तरमें जो जो देवता, जो जो ऋषि और जो जो राजा होंगे, वह कहता हूं । पाराशर मरीचि, भर्ग और सुधर्मा देवताओंके ॥ ५ ॥ यह तीन गण और प्रत्येक गणमें द्वादश संख्यक देवता हैं । इस समय जो वह्नि--पुत्र षडानन कार्त्तिकेय वर्त्तमान हैं, वही इस भावीमन्वन्तरमें अद्भुत नामक महाबलशाली सहस्राक्ष इन्द्र

होंगे ॥ ६ ॥ ७ ॥ मेधातिथि, वसु, सत्य, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, सबल और हव्यवाहन यह उस समय सप्तर्षि होंगे ॥ ८ ॥ धृष्टकेतु, बर्हकेतु, पञ्चहस्त, निरामय, पृथुश्रवाः अर्चिष्मान्, भूरिद्युम्न और बृहद्भय ॥ ९ ॥ यह कई दक्षपुत्र सावर्णमनुके पुत्र राजा होंगे ! हे द्विज ! इसके पीछे दशवें मनुके अन्यमन्वन्तरको सुनो ॥ १० ॥ इस मन्वन्तरमें बुद्धिमान् ब्रह्माजीके पुत्र दशवें मनु होंगे तथाउनके मन्वन्तर सुखासीन और निरुद्धादि नामक तीन प्रकारके देवता होंगे॥ ११॥भावी मनुके मन्वन्तरमें भविष्य देवता शतसंख्यक अर्थात् सौ हैं,क्योंकि इस मन्वन्तरमें प्राणियोंकी संख्या शत है, इस कारण देवताओंकी संख्याभी शत होगी॥ १२॥इन्द्रके संपूर्ण गुणोंसे युक्त शांतिही उस समय इन्द्र होंगे और जो सप्तर्षि होंगे,

मेधातिथिर्वसुःसत्योज्योतिष्मान्द्युतिमांस्तथा ॥ सप्तर्षयोऽन्यःसबलस्तथान्योहव्यवाहनः ॥ ८ ॥ धृष्टकेतुर्बर्हकेतुःखङ्गहस्तोनिरामयः ॥ पृथुश्रवास्तथार्चिष्मान्भूरिद्युम्नोबृहद्भयः ॥ ९ ॥ एतेनृपसुतास्तस्यदत्तपुत्रस्यवैनृपाः ॥ मनोस्तुदशमस्यान्यच्छृणुमन्वन्तरं द्विज ॥ १० ॥ मन्वन्तरेचदशमेब्रह्मपुत्रस्यधीमतः ॥ सुखासीनानिरुद्धाश्चद्विप्रकारासुराःस्मृताः ॥ ११ ॥ शतसंख्याहितेदेवाभविष्याभाविनोमनोः ॥ यत्पुत्राणांशतंभावितदेवानांतदाशतम् ॥ १२ ॥ शान्तिरिन्द्रस्तथाभावीसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥ सप्तर्षीन्ता न्निबोधत्वंयेभविष्यन्तिवैतदा ॥ १३ ॥ आपोमूर्तिर्हविष्मांश्चसुकृतीसत्यएवच ॥ नाभागोऽप्रतिमश्चैववासिष्ठश्चैवसप्तमः ॥ १४ ॥ सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्चभूरिषेणश्चवीर्य्यवान् ॥ शतानीकोऽथवृषभोह्यनमित्रोजयद्रथः ॥ १५ ॥ भूरिद्युम्नःसुपर्वाचतस्यैतेतनयामनोः ॥ भविष्याधर्मपुत्रस्यसावर्णस्यान्तरंशृणु ॥ १६ ॥ विहंगमाःकामगाश्चनिर्माणरतयस्तथा ॥ त्रिःप्रकाराभविष्यन्तिएकैकस्त्रिंशको गणः ॥ १७ ॥ मासर्तुदिवसायेतुनिर्माणपतयस्तुते ॥ विहङ्गमारात्रयोऽथमौहूर्त्ताःकामगागणाः ॥ १८ ॥

उनका विषय कहताहूं,सुनो॥ १३॥आपोमूर्त्ति, हविष्मान्, सुकृत, सत्य, नाभाग, अप्रतिम, और सप्तम वसिष्ठ, यह सप्तर्षि हैं॥ १४॥सुक्षेत्र, उत्तमौजा भूरिषेण, वीर्यवान्, शतानीक, वृषभ, अनमित्र, जयद्रथ ॥ १५॥ भूरिद्युम्न और सुपर्वा यह कई दशम मनुके पुत्र हैं, भावी मनु धर्मपुत्र सावर्णका मन्वन्तर सुनो ॥ १६॥ विहंगम, कामग और निर्माणपति,--देवताओंके यह तीन प्रकारके गण हैं और प्रत्येक गणमें तीस देवता रहेंगे ॥ १७ ॥ जो मास, ऋतु और दिवस है, वही निर्माण पति हैं; रात्रि विहङ्गम देवता और समस्त मुहूर्तजात विषय कामग देवताओंके गण हैं ॥ १८ ॥

प्रसिद्ध पराक्रम वृषाख्य उनके इन्द्र होंगे । इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, वरिष्ठ, अरुणतनय ऋषि ॥ १९ ॥ निश्चर, अनघ, महामुनि विष्टि और सत्तम अग्नि देव,यही सप्तर्षि हैं॥२०॥ सर्वत्रग, सुशर्मा,देवानिक,पुरूद्वह, हेमधन्वा और दृढायु,यह उस मनुके पुत्र और भावी नरपति होंगे ॥२१॥ रुद्र पुत्र सावर्णमनुके बारहवें मन्वन्तरमें जो देवता और मुनि होंगे,अब उनका विषय सुनो॥२२॥ सुधर्मा, सुमना, हरित, रोहित और सुवर्ण, उस मन्वन्तरमें यह पांच प्रकारके देवगण हैं और प्रत्येक गणमें दश देवता रहेंगे॥२३॥संपूर्ण इन्द्रके गुणोंसे युक्त महाबलवान् ऋतधामाको उनका इन्द्र जानना चाहिये । अब मुझसे सप्तर्षियोंका विषय सुनो ॥२४॥ द्युति, तपस्वी, सुतपाः, तपोमूर्त्ति, तपोनिधि, तपोरति और सप्तम तपोधृति, यही सप्तर्षि हैं

इन्द्रोवृषाख्योभवितातेषांप्रख्यातविक्रमः ॥ हविष्मांश्चवरिष्ठश्चऋषिरन्यस्तथारुणिः ॥ १९ ॥ निश्चरश्चानघश्चैवविष्टिश्चान्योमहामुनिः ॥ सप्तर्षयोऽन्तरेतस्मिन्नग्नितेजाश्चसत्तमः ॥ २० ॥ सर्वत्रगःसुशर्माचदेवानीकःपुरूद्वहः ॥ हेमधन्वादृढायुश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥ २१ ॥ द्वादशेरुद्रपुत्रस्यप्राप्तेमन्वन्तरेमनोः ॥ सावर्णाख्याश्चयेदेवामुनयश्चशृणुष्वतान् ॥ २२ ॥ सुधर्माणःसुमनसोहरितोरोहितस्तथा ॥ सुवर्णाश्चसुरास्तत्रपञ्चैतेदशकागणाः ॥ २३ ॥ तेषामिन्द्रस्तुविज्ञेयऋतधामामहाबलः ॥ सर्वैरिन्द्रगुणैर्युक्ताःसप्तर्षीनपिमेशृणु ॥ २४ ॥ द्युतिस्तपस्वीसुतपास्तपोमूर्तिस्तपोनिधिः ॥ तपोरतिस्तथैवान्यःसप्तमस्तुतपोधृतिः ॥ २५ ॥ देववानुपदेवश्चदेवश्रेष्ठोविदूरथः ॥ मित्रवान्मित्रविन्दश्चभाविनस्तत्सुतानृपाः ॥ २६ ॥ त्रयोदशस्यपर्य्यायेरौच्याख्यस्यमनोःसुरान् ॥ सप्तर्षींश्चनृपांश्चैवगदतोमेनिशामय ॥ २७ ॥ सुधर्माणःसुरास्तत्रसुकर्माणस्तथापरे ॥ सुशर्माणःसुराह्येतेमस्तामुनिसत्तम ॥ २८ ॥ महाबलोमहावीर्य्यस्तेषामिन्द्रोदिवस्पतिः ॥ भविष्यानथसप्तर्षीन्गदतोमेनिशामय ॥ २९ ॥

॥ २५ ॥ देववान्, उपदेव देवश्रेष्ठ; विदूरथ, मित्रवान् और मित्रविन्द यही उस भावी मनुके पुत्र और राजा होंगे ॥ २६ ॥ रौच्य नामक तेरहवें मनुकी पर्य्यायप्राप्तिमें सप्तर्षि और उसके जो पुत्र राजा होंगे, उनका विषय कहता हूं, सुनो ॥ २७ ॥ हे मुनिसत्तम ! उस मन्वन्तरमें सुधर्मा, सुकर्मा, यह सब देवता हैं ॥ २८ ॥ महाबल महावीर्य दिवस्पति उनके इन्द्र होंगे । अब भविष्यत् सप्तर्षियोंका विषय कहता हूं, सुनो ॥ २९ ॥

धृतिमान्, अव्यय, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, निर्मोह, सुतपा और सप्तम निष्प्रकम्प यही सात जन सप्तर्षि हैं ॥ ३० ॥ चित्रसेन, विचित्र, नियति, निर्भय, दृढ, सुनेत्र, क्षत्रबुद्धि, और सुव्रत, यही रौच्यमनुके पुत्र होंगे ॥ ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रौच्यमन्वन्तरे एकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--पूर्वकालमें प्रजापति रुचि ममतारहित, अहंकाररहित और पर्यटनमें जहां सूर्यास्त होय वहां शयन करनेवाला होकर इस पृथ्वीमें विचरण करते थे ॥१॥ उनके पितर उनको अग्निहीन, गृहहीन, एकाहार, आश्रमहीन, और संग त्यागी मुनि व्रतचारी देखकर इस प्रकार कहने लगे ॥ २ ॥ पितरोंने कहा हे वत्स ! तुमने दारपरिग्रह (विवाहरूप पवित्र कार्य) क्यों नहीं किया वह स्वर्ग

धृतिमानव्ययश्चैवतत्त्वदर्शीनिरुत्सुकः ॥ निर्मोहःसुतपाश्चान्योनिष्प्रकम्पश्चसप्तमः ॥ ३० ॥ चित्रसेनोविचित्रश्चनियतिर्निर्भयो दृढः ॥ सुनेत्रःक्षत्रबुद्धिश्चसुव्रतश्चैवतत्सुताः ॥ ३१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणेरौच्यमन्वन्तरएकनवतितमोऽध्यायः ॥ ९१ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ रुचिःप्रजापतिःपूर्वंनिर्ममोनिरहंकृतः ॥ यत्रास्तमितशायीचचचारपृथिवीमिमाम् ॥ १ ॥ अनग्निमनिके तन्तमेकाहारमनाश्रमम् ॥ विमुक्तसङ्गंतंदृष्ट्वाप्रोचुस्तत्पितरोमुनिम् ॥ २ ॥ ॥ पितरऊचुः ॥ ॥ वत्सकस्मात्त्वयापुण्योनकृतोदारसं ग्रहः ॥ स्वर्गापवर्गहेतुत्वाद्बन्धस्तेनानिशंविना ॥ ३ ॥ गृहीसमस्तदेवानांपितॄणाञ्चतथार्हणाम् ॥ ऋषीणामतिथीनाञ्चकुर्वंल्लोकानु पाश्नुते ॥ ४ ॥ स्वाहोच्चारणतोदेवान्स्वधोच्चारणतःपितॄन् ॥ विभजत्यन्नदानेनभूताद्यानतिथीनपि ॥ ५ ॥ सत्वंदैवादृणाद्बन्धंबन्ध मस्मदृणादपि ॥ आवाप्नोषिमनुष्यर्षिभूतेभ्यश्चदिनेदिने ॥ ६ ॥ अनुत्पाद्यसुतान्देवानसन्तर्प्यपितॄंस्तथा ॥ भूतादींश्चकथंमौढ्या त्सुगतिंगन्तुमिच्छसि ॥ ७ ॥

और मुक्तिका कारण होनेसे विवाहकेविना समस्तही बंधन है॥३॥संपूर्ण देवता, पितर, पूज्य ऋषि और अतिथि गणोंका सत्कार करके गृही पुरुष स्वर्गादि लोक भोग करते हैं॥४॥"स्वाहा" उच्चारण करके देवताओंकी "स्वधा" उच्चारण करके पितरोंकी और अन्नदानद्वारा अतिथिकी सेवारूप तीन ऋण निवटाकर पुरुष गृही होताहै, किन्तु तुम दिन दिन (गृही न होकर)देवऋण, पितृऋण, मनुष्य और संपूर्ण प्राणियोंके निकट बंधनको प्राप्त होते हो ॥५॥६॥ बिना पुत्र उत्पन्न किये तथा देवता और पितरोंका बिना तर्पण किये और बिना कर्मकिये मूर्खतासे किस प्रकार श्रेष्ठगति प्राप्तकरनेकी

इच्छा करते हो ? ॥ ७ ॥ हे पुत्र ! तुमको जो जो क्लेश होगा, उस प्रत्येकको हम जानते हैं, मृतपुरुषके नरक भोगनेके समान तुमको अन्य जन्ममें अनेक प्रकारका क्लेश होगा ॥ ८ ॥ रुचिने कहा--दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करना अत्यन्त दुःखप्रद और पापका कारणस्वरूप है, उससेही अधोगति होती है इसीलिये पूर्वमें मैंने विवाह नहीं किया॥९॥इन्द्रियदमनहेतु जो आत्मसंयम किया जाता है, वही मुक्तिका कारण है, विवाह करना कभी मुक्तिका कारण नहीं हो सकता ॥ १० ॥ परिग्रहहीन पुरुष ममतारूपी कीचड़में लिप्त आत्माको प्रतिदिन जो चित्तरूप जलसे धोतेहैं, वही उत्तम हैं ॥ ११ ॥ अनेक जन्मजनित कर्मरूपी कीचड़में लिप्त आत्माको सद्वासनारूपी जलसे धोनाही संयतेन्द्रिय बुद्धिमानोंका

क्लेशमेवैहिकंपुत्रमन्यामोऽत्रभवेत्तव ॥ मृतस्यनरकंतद्वत्क्लेशमेवान्यजन्मनि ॥ ८ ॥ रुचिरुवाच ॥ परिग्रहोऽतिदुःखायपापायाधोगतेस्तथा ॥ भवत्यतोमयापूर्वंनकृतोदारसंग्रहः ॥ ९ ॥ आत्मनःसंयमोयोऽयंक्रियतेक्षनियन्त्रणात् ॥ समुक्तिहेतुर्नभवत्यसावपिपरिग्रहात् ॥ १० ॥ प्रक्षाल्यतेऽनुदिवमंयदात्मानिष्परिग्रहैः ॥ ममत्वपङ्कदिग्धोऽपिचित्ताम्भोभिर्वरंहितत् ॥ ११ ॥ अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितोबुधैः ॥ आत्मासद्वासनातोयैःप्रक्षाल्योनियतेन्द्रियैः ॥ १२ ॥ ॥ पितरऊचुः ॥ ॥ युक्तंप्रक्षालनंकर्तुमात्मनोनियतेन्द्रियैः ॥ किन्तुलेपायमार्गोऽयंयत्रत्वंपुत्रवर्तसे ॥ १३ ॥ पंचर्णदानैरशुभंनुद्यतेऽनभिसन्धितैः ॥ फलैस्तथोपभोगैश्चपूर्वंकर्मशुभाशुभैः ॥ १४ ॥ एवंनबन्धोभवतिकुर्वनःकारणात्मकः ॥ नचबन्धायतत्कर्मभवत्यनभिसन्धितम् ॥ १५ ॥ पूर्वकर्मकृतंभोगैःक्षीयतेऽहर्निशंतथा ॥ सुखदुःखात्मकैर्वत्सपुण्यापुण्यात्मकैर्नृणाम् ॥ १६ ॥

कर्त्तव्य है ॥ १२ ॥ पितरोंने कहा यद्यपि संयतेन्द्रिय पुरुषोंको आत्माका प्रक्षालन करना कर्तव्यहै, किन्तु हे पुत्र ! तुमने जिस मार्गका अवलम्बन किया है यह क्या मोक्ष प्राप्त होनेका मार्ग है ? ॥ १३ ॥ जिस प्रकार कामनारहित दानसे अशुभ नष्ट होता है इसी प्रकार शुभाशुभ फलभी उसका उपभोग करनेसे पूर्वजन्मार्जित कर्म क्षय होता है ॥ १४ ॥ इस प्रकार करुणात्मक कर्मकारियोंको संसार बंधन नहीं होता, क्योंकि अनभिसंधि तो उस कर्म बंधनका हेतु नहीं है ॥ १५ ॥ हे वत्स ! सुख दुःखात्मक भोग द्वारा मनुष्योंके पूर्वजन्मकृत पुण्यापुण्यात्मक कर्म रात दिन क्षयको प्राप्त होते हैं ॥ १६ ॥

बुद्धिमान् मनुष्य आत्माको इस प्रकार प्रक्षालन करें और बन्धनसे रक्षा करें, किन्तु अविवेक रूप पापपंक द्वारा आत्माको लिप्त न करें ॥ १७ ॥ रुचिने कहा हे पितामहगण ! वेदमें कर्म मार्गको अविद्या कहकर पढा है, तो फिर किस निमित्त आप मुझको कर्म मार्गमें प्रवृत्त करते हैं ? ॥ १८ ॥ पितर बोले--यह कर्ममार्ग जो अविद्या है सो सत्य है और कर्म द्वारा ही यह वचन मिथ्या होता है. क्योंकि कर्म जो विद्याप्राप्तिका हेतु है, इसमें सन्देह नहीं है ॥ १९ ॥ समस्त कर्त्तव्य कार्य बिना किये असत् पुरुष मुक्तिके निमित्त जो संयम करते हैं, वह अन्तकालमें अधोगति प्रधान करते हैं ॥ २० ॥ हे वत्स ! तुम मनमें यह समझते हो कि, मैं "आत्माको

एवंप्रक्षाल्यतेप्राज्ञैरात्माबन्धाच्चरक्ष्यते ॥ नत्वेवमविवेकेनपापपङ्केनलिप्यते ॥ १७ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ अविद्यापठ्यतेवेदैःकर्ममार्गःपितामहाः ॥ तत्कथंकर्मणोमार्गेभवन्तोयोजयन्तिमाम् ॥ १८ ॥ पितरऊचुः ॥ ॥ अविद्यासत्यमेवैतत्कर्मनैतन्मृषावचः ॥ किन्तुविद्यापरिप्राप्तौहेतुःकर्मनसंशयः ॥ १९ ॥ विहिताकरणात्पुंभिरसद्भिःक्रियतेतुयः ॥ संयमोमुक्तयेनासौप्रत्युताऽधोगतिप्रदः ॥ ॥ २० ॥ प्रक्षालयामीतिभवान्वत्सात्मानन्तुमन्यते ॥ विहिताकरणोद्भूतैःपापैस्त्वन्तुविलिप्यसे ॥ २१ ॥ अविद्याप्युपकारायविषवज्जायतेनृणाम् ॥ अनुष्ठिताभ्युपायेनबन्धायान्यायतोहिसा ॥ २२ ॥ तस्माद्वत्सकुरुष्वत्वंविधिवद्दारसंग्रहम् ॥ माजन्मविफलंतेऽस्तुअसम्प्राप्यतुलौकिकम् ॥ २३ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ वृद्धोऽहंसाम्प्रतंकोमेपितरःसम्प्रदास्यति ॥ भार्य्यांतथादरिद्रस्यदुष्करोदारसंग्रहः ॥ २४ ॥ पितरऊचुः ॥ अस्माकंपतनंवत्सभवतश्चाप्यधोगतिः ॥ नूनंभाविभवित्रीचनाभिनन्दसिनोवचः ॥ २५ ॥

प्रक्षालन करता हूं" किन्तु विहित कर्म सम्पादन न करनेसे उसके पापमें दग्ध होते हो ॥ २१ ॥ अपकारक विष जिस प्रकार मनुष्यका उपकार साधन करता है, इसी प्रकार यह अविद्याभी मनुष्यका उपकार करनेवाली है।यह अन्यरूप होनेपरभी अनुष्ठित कार्य कल्याणकारी उपायके सहित हमारे पक्षमें मंगलदायक है ॥२२॥हे वत्स! इस कारण तुम विधिवत् दारपरिग्रह अर्थात् विवाह करो, जिससे लौकिकधर्म सम्यक् प्रकार प्राप्त न होनेके कारण तुम्हारा जन्म विफल न हो ॥२३॥ रुचिने कहा--हे पितृगण!अब मैं वृद्ध होगया हूं अतएव कौन मुझको स्त्री देगा ? विशेष कर दरिद्रके पक्षमें भार्याग्रहण अत्यन्त दुष्कर (कठिन)है ॥२४॥ पितर बोले--हे वत्स ! यदि तुम हमारे वचनका अनुमोदन नहीं करोगे

अर्थात् स्वीकार नहीं करोगे तो हमारा पतन और तुम्हारीभी अधोगति होगी ॥२५॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुनिसत्तम ! यह कहकर उनके पितर देखते देखते वायुसे बुझे हुए दीपकके समान सहसा अन्तर्धान होगये ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुच्युपाख्यानंनाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--वह विप्रर्षि रुचि इसप्रकार पितरोंका वचन सुन अत्यन्त उद्विग्नमन हो और कन्याकी अभिलाषाकरके पृथ्वीमें भ्रमण करने लगे ॥ १ ॥ पितरोंकी वचनरूपी अग्निमें दीप्तिमान् होकर वह कन्या प्राप्त न कर सकनेके कारण अत्यन्त उद्विग्नमनसे बडी चिन्तामें प्राप्त हुए ॥ २ ॥ "क्या करूं ? कहां जाऊं ! किस प्रकारसे मेरे पितरोंका अभ्युदय

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वापितरस्तस्यपश्यतोमुनिसत्तम ॥ बभूवुःसहसाऽदृश्यादीपावाताहताइव ॥ २६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरुच्युपाख्यानेद्विनवतितमोऽध्यायः ॥ ९२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतेनपितृवाक्येनभृशमुद्विग्नमानसः ॥ कन्याभिलाषीविप्रर्षिःपरिबभ्राममेदिनीम् ॥ १ ॥ कन्यामलभमानोऽसौपितृवाक्याग्निदीपितः ॥ चिन्तामवापमहतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥२॥ किंकरोमिक्वगच्छामिकथंमेदारसंग्रहः ॥ क्षिप्रंभवेत्पितृणांयोममाभ्युदयकारकः ॥ ३ ॥ इतिचिन्तयतस्तस्यमतिर्जातामहात्मनः॥ तपसाराधयाम्येनंब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥ ४ ॥ ततोवर्षशतंदिव्यंतपस्तेपेसवैयसम् ॥ दिदृक्षुःसुचिरंकालंपरंनियममास्थितः ॥ ५ ॥ ततःस्वंदर्शयामासब्रह्मालोकपितामहः ॥ उवाचतंप्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥ ६ ॥ ततोऽसौप्रणिपत्याहब्रह्माणंजगतोगतिम् ॥ पितृणांवचनात्तेनयत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥ ब्रह्माचाहरुचिंविप्रंश्रुत्वातस्याभिवाञ्छितम् ॥ ७ ॥

करनेवाला मेरा दारपरिग्रह (विवाह) कार्य शीघ्र संपन्न हो !" ॥३॥ इस प्रकार चिन्ता करते करते उन महात्माको यह बुद्धि उत्पन्नहुई कि, "मैं तपस्याद्वारा भगवान् कमलयोनि ब्रह्माजीकी आराधना करूं" ॥ ४ ॥ तब उन्होंने विधाताकी आराधनाके कारण यथावत् नियममें स्थित होकर दिव्य शतवर्षतक तपस्या की थी ॥ ५ ॥ तब लोकपितामह ब्रह्माजीने उनको अपनी मूर्तिका दर्शन देकर कहा "मैं प्रसन्न हुआहूं अब तुम अपना अभीष्ट विषय वर्णन करो" ॥ ६ ॥ तब रुचिने जगत्के गतिस्वरूप भगवान् ब्रह्माजीको प्रणाम करके पितरोंके वचनानुसार जो करनेकी इच्छा करी है, वह कहा । तब ब्रह्माजीने विप्रर्षि रुचिका अभीष्ट विषय सुनकर उनसे कहा ॥ ७ ॥

ब्रह्माजी बोले--हे विप्र ! तुम प्रजापति होंगे तुम्हारे द्वारा प्रजा उत्पन्न होगी, प्रजासृष्टि और सन्तान उत्पादन पूर्वक समस्त क्रिया ॥ ८ ॥ करके जब तुम अधिकार रहित होगे, तब सिद्धि लाभमें समर्थ होगे, इसकारणही तुमसे पितृगण विवाह करनेको कहते हैं ॥ ९. ॥ "यह अवश्य कर्तव्य है" इस प्रकार विचार कर तुम पितरोंकी पूजा करो । वह पितृगण सन्तुष्ट होनेपर तुमको अभीष्ट पत्नी और पुत्र प्रदान करेंगे, क्योंकि पितर सन्तुष्ट होनेपर क्या नहीं देते हैं ? ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले- अव्यक्तजन्मा ऋषि ब्रह्माका इस प्रकार वचन सुनकर उन्होंने नदीके निर्जन पुलिनमें पितरोंका तर्पण किया ॥ ११ ॥ हे विप्र ! उन्होंने आदरसहित, एकाग्रचित्त, प्रयत और भक्तिसे नत्रशीर हो इस स्तोत्रसे पितरोंको

॥ ब्रह्मोवाच ॥ ॥ प्रजापतिस्त्वंभवितास्रष्टव्याभवताप्रजाः ॥ सृष्ट्वाप्रजाःसुतान्विप्रसमुत्पाद्यक्रियास्तथा ॥ ८ ॥ कृत्वाकृताधिकार स्त्वंततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ सत्वंयथोक्तंपितृभिःकुरुदारपरिग्रहम् ॥ ९ ॥ कामंचेममभिध्यायक्रियतांपितृपूजनम् ॥ तएवतुष्टाः पितरःप्रदास्यन्तितवेप्सितान् ॥ पत्नींसुतांश्चसन्तुष्टाः किंनदद्युःपितामहाः ॥ १० ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वाब्रह्मणो ऽव्यक्तजन्मनः ॥ नद्याविविक्तपुलिनेचकारपितृतर्पणम् ॥ ११ ॥ तुष्टावचपितॄन्विप्रःस्तवैरेभिस्तथादृतः ॥ एकाग्रःप्रयतोभूत्वाभक्ति नम्रात्मकन्धरः ॥ १२ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ नमस्येऽहंपितॄन्श्राद्धेयेवसन्त्यधिदेवताः ॥ देवैरपिहितर्प्यन्तेयेचश्राद्धेस्वधोत्तरैः ॥ ॥ १३ ॥ नमस्तेऽहंपितॄन्स्वर्गेयेतर्प्यन्तेमहर्षिभिः ॥ श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्याभुक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥ १४ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्स्वर्गे सिद्धाःसन्तर्पयन्तियान् ॥ श्राद्धेषुदिव्यैःसकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥ १५ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्भक्त्यायेऽर्च्यन्तेगुह्यकैरपि ॥ तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिमात्यन्तिकींपराम् ॥ १६ ॥

संतुष्ट किया॥१२॥रुचिने कहा--श्राद्धमें जो अधिदेवता रूपसे वास करते हैं, देवताभी श्राद्धमें स्वाहा उच्चारण करके जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥१३॥स्वर्गमें भुक्ति मुक्तिकी अभिलाषा करनेवाले मनोमय श्राद्धद्वारा महर्षिगण भक्तिपूर्वक जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ १४ ॥ स्वर्गमें सिद्धगण श्राद्धके समय अति उत्तम दिव्य सब उपहारोंसे जिनको तृप्त करतेहैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ १५ ॥ अत्युत्कृष्ट अत्यन्त समृद्धिके अभिलाषी गुह्यकगण तन्मयभावसे भक्तिसहित जिनकी अर्चना करते हैं, उन पित-

रोंको नमस्कार करता हूं ॥ १६ ॥ मर्त्यलोकमें मनुष्य श्राद्धमें जिन अभीष्ट लोकोंके देनेवाले पितरोंकी श्रद्धासहित अर्चना करते हैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ १७ ॥ जो प्राजापत्य पद प्रदान करनेवाले पितरगण वांछित विषय प्राप्त होनेके निमित्त ब्राह्मणोंके द्वारा पृथ्वीमें पूजित होते हैं, उनको नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥ यताहारी और तपके द्वारा नष्ट होगये हैं पाप जिनके, ऐसे अरण्यवासी गण वन्यश्राद्धद्वारा जिनको तृप्त करते हैं उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ १९ ॥ संयतात्मा नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्राह्मण समाधिद्वारा जिनको तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २० ॥ राजन्य गण अर्थात् क्षत्रिय लोग जिन तीनों लोकमें फल प्रद पितरोंको श्रद्धापूत अशेष कव्य (श्रद्धान्न) द्वारा

नमस्येऽहंपितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ॥ श्राद्धेषुश्रद्धयाभीष्टलोकप्राप्तिप्रदायिनः ॥ १७ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्विप्रैरर्च्यन्तेभुवियेसदा ॥ वाञ्छिताभीष्टलाभायप्राजापत्यप्रदायिनः ॥ १८ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्येवैतर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः ॥ वन्यैःश्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूत किल्बिषैः ॥ १९ ॥ नमस्यऽहंपितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकव्रतचारिभिः ॥ येसंयतात्मभिर्नित्यसंतर्प्यन्तेसमाधिभिः ॥ २० ॥ नमस्येऽहंपितॄ ञ्छ्राद्धैराजन्यास्तर्पयन्तियान् ॥ काव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकत्रयफलप्रदान् ॥ २१ ॥ नमस्येऽहंपितॄन्वैश्यैरर्च्यंतेभुवियेसदा ॥ स्वक र्माभिरतैर्नित्यंपुष्पधूपान्नवारिभिः ॥ २२ ॥ नमस्येहंपितॄञ्छ्राद्धैर्येशूद्रैरपिभक्तितः ॥ सन्तर्प्यन्तेजगत्यत्रनाम्नाख्याताःसुकालिनः ॥ ॥ २३ ॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैःपातालेयेमहासुरैः ॥ सन्तर्प्यन्तेस्वधाहारास्त्यक्तदम्भमदैःसदा ॥ २४ ॥ नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैरर्च्य न्तेयेरसातले ॥ भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैःकामानभीप्सुभिः ॥ २५ ॥

तृप्त करते हैं, उन पितरोंको मैं प्रणाम करता हूं ॥ २१ ॥ अपने कर्ममें आसक्त वैश्यगण पृथ्वीमें जिनको पुष्प, धूप अन्न और जलद्वारा संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २२ ॥ इस जगत्में शूद्रगण जिन सुकालीन नामक विख्यात पितरोंको भक्तिसहित श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥ २३ ॥ पातालमें दम्भ मदत्यागी महासुरगण जिन स्वधाहार पितरोंको सदा श्राद्धद्वारा तृप्त करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ २४ ॥ रसातलमें कामाभिलाषी नागकुल जिनको अशेष भोग और श्राद्धद्वारा सर्वदा यथाविधि संतुष्ट करते हैं, उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ २५ ॥

मंत्र, भोग और सम्पत्संयुक्त सर्पगण पातालमें सदा जिन पितरोंको श्राद्धद्वारा विधिवत मन्तर्पित करते हैं, उन पितरोंको प्रणाम करता हूं ॥ २६ ॥ जो देवलोक और अंतरिक्षमें प्रत्यक्ष भावसे वास करते हैं और पृथ्वीतलमें जो देवताओंके द्वारा पूजित होते हैं, उन पितरोंको प्रणाम करता हूं, वह मेरी दी हुई पूजा ग्रहण करें ॥ २७ ॥ जो मूर्तिमान परमात्माभूत और विमानमें वास करते हैं और योगीश्वरगण विमल मनसे क्लेश विमोचक ज्ञान द्वारा जिनकी यज्ञमें आराधना करते हैं उन पितरोंको प्रणाम करता हूं ॥ २८ ॥ जो स्वर्गमें मूर्तिमान काम्यफल प्राप्ति विषयमें स्वधाभोजी हैं, जो सब प्रार्थी गणोंको इष्ट प्रदानमें समर्थ हैं और जो कामनावर्जित कार्यमें विमुक्ति प्रदान करते हैं.

नमस्येऽहंपितॄञ्छ्राद्धैःसर्पैःसन्तर्पितान्सदा ॥ तत्रैवविधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥ २६ ॥ पितॄन्नमस्येनिवसन्तिसाक्षाद्येदेव लोकेचतथान्तरिक्षे ॥ महीतलेयेचसुरादिपूज्यास्तेमेप्रतीच्छन्तुमयोपनीतम् ॥ २७ ॥ पितॄन्नमस्येपरमात्मभूतायेवैविमानेनिवसन्ति मूर्त्ताः ॥ यजन्तियानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥ २८ ॥ पितॄन्नमस्येदिवियेचमूर्त्ताःस्वधाभुजःकाम्यफलाभि सन्धौ ॥ प्रदानशक्ताःसकलेप्सितानांविमुक्तिदायेऽनभिसंहितेषु ॥ २९ ॥ तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरःसमस्ताइच्छावतांयेप्रदिशन्ति कामान् ॥ सुरत्वमिन्द्रत्वमतोऽधिकंवासुतान्पशून्स्वानिबलंगृहाणि ॥ ३० ॥ सोमस्ययेरश्मिषुयेऽर्कबिम्बेशुक्लेविमानेचसदावसन्ति॥ तृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिनापुष्टिमितोव्रजन्तु ॥ ३१ ॥ येषांहुतेऽग्नौहविषाचतृप्तिर्येभुञ्जतेविप्रशरीरसंस्थाः ॥ येपिण्डदा नेनमुदंप्रयान्तितृप्यन्तुतेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥ ३२ ॥

उन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ २९ ॥ जो प्रार्थीगणोंको प्रार्थनाकी हुई वस्तु देते हैं और जो सुरत्व, इन्द्रत्व, वा इससे भी अधिक हैं अथवा पुत्र, पशु, अर्थ, बल, गृह इत्यादि कामानुरूप दान करते हैं, मेरी इस पूजासे वह तृप्त हों ॥ ३० ॥ जो सदा चन्द्रमाकी किरणोंमें सूर्य बिम्बमें और शुक्ल विमानमें वास करते हैं वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों और वह अन्न, जल तथा गन्धादि द्वारा पुष्टिको प्राप्त हों ॥ ३१ ॥ अग्निमें घृतकी आहुति देनेसे जो तृप्त होते हैं, जो ब्राह्मणके शरीरमें स्थित होकर भोजन करते हैं और पिण्डदान करनेसे जो संतुष्ट होते हैं, वही पितृगण इस अन्न, जल द्वारा इस विषयमें तृप्त हों ॥ ३२ ॥

देवता मैंडेके मांस और अभीष्ट दिव्य मनोहर काले तिलोंसे जिनको प्रसन्न करते हैं और महर्षिगण वर्षके पीछे कालशाक द्वारा जिनको तृप्त करते हैं, वह पितृगण इस विषयमें संतुष्ट हों ॥ ३३ ॥ देवताओंसे अर्चित उन पितृगणोंके जो समस्त अभीष्ट कव्य हैं, मैंने वही पुष्प, गन्ध, अन्न, भोज्य संग्रह किया है, वह इनके समीप उपस्थित हों ॥ ३४ ॥ जो प्रतिदिन पूजा ग्रहण करते हैं पृथ्वीमें जो प्रतिमास तीनों अष्टकाओंमें[1] पूजित होते हैं, और जो वर्षके अन्तमें उत्सवके दिन पूजे जाते हैं, वह पितृगण मेरी इस पूजासे तृप्त हों ॥ ३५ ॥ जो पितृगण (कुमुद और चन्द्रमा) के सदृश शुक्लवर्ण प्रभायुक्त होकर देवताओंके पूज्य होते हैं, जो नवीन उदय हुए सूर्यके समान रक्तवर्णयुक्त होकर क्षत्रियोंके पूज्य होते हैं,

येखड्गिमांसेनसुरैरभीष्टैःकृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ॥ कालेनशाकेनमहर्षिवर्यैःसंप्रीणितास्तेमुदमत्रयान्तु ॥ ३३ ॥ कव्यान्यशेषाणिचयान्यभीष्टान्यतीवतेषाममरार्चितानाम् ॥ तेषांतुसान्निध्यमिहास्तुपुष्पगन्धान्नभोज्येषुमयाकृतेषु ॥ ३४ ॥ दिनेदिनेयेप्रतिगृह्णतेऽर्चांमासांतपूज्याभुवियेऽष्टकासु ॥ येवत्सरांतेऽभ्युदयेचपूज्याःप्रयान्तुतेमेपितरोऽत्रतृप्तिम् ॥ ३५ ॥ पूज्याद्विजानांकुमुदेन्दुभासोयेक्षत्रियाणांचनवार्कवर्णाः ॥ तथाविशांयेकनकावदातानीलीनिभाःशूद्रजनस्ययेच ॥ ३६ ॥ तेऽस्मिन्समस्तामम पुष्पगंधधूपान्नतोयादिनिवेदनेन ॥ तथाग्निहोमेनचयांतुतृप्तिसदापितृभ्यःप्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥ ३७ ॥ येदेवपूर्वाण्यतितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानिशुभाहुतानि ॥ तृप्ताश्चयेभूतिसृजोभवंतितृप्यन्तुतेस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥ ३८ ॥ रक्षांसिभूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तस्त्वशिवंप्रजानाम् ॥ आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यंतुतेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मितेभ्यः ॥ ३९ ॥

जो कनकके सदृश सुन्दर कांतियुक्त होकर वैश्योंके पूज्य और जो (नीलीकी समान) रूपसे शूद्रोंके पूज्य होते हैं ॥ ३६ ॥ वह सम्पूर्ण पितृगण मेरे पुष्प, गन्ध, धूप, अन्न और जलादि निवेदन तथा अग्निहोम द्वारा मुझसे तृप्त हों, मैं सदा उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ३७ ॥ जो अतितृप्तिहेतु देवताओंके आगे आहुत होमे हुए समस्त शुभ कव्य अन्न आहार करते हैं और जो तृप्त होकर अणिमादि अष्टैश्वर्यकी सृष्टि करते हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त हों मैं उनको प्रणाम करता हूं ॥ ३८ ॥ जो राक्षस, भूत और उग्र असुरोंके घातक तथा प्रजाके अमंगलका

[1] शाकाष्टका, मांसाष्टका और पूपाष्टका ।

नाश करते हैं, जो देवताओंके आदि पुरुष हैं और जो अमरेश इंद्रके पूज्य हैं, वह पितृगण मेरे द्वारा तृप्त हों, मैं उनको प्रणाम करता हूं ॥ ॥ ३९ ॥ अग्निष्वात्ता, बर्हिषद, आज्यपा और सोमपा पितृगण मेरे द्वारा तर्पित होकर इस श्राद्धमें तृप्ति लाभ करें ॥ ४० ॥ अग्निष्वात्ता पितर मेरी पूर्वदिशामें और बर्हिषद पितर दक्षिण दिशामें रक्षा करें ॥ ४१ ॥ आज्यपा पितर पश्चिमदिशामें और सोमपा पितृगण इसी प्रकार उत्तर दिशामें राक्षस, भूत, पिशाच और असुरोत्पन्न दोषसे रक्षा करें ॥ ४२ ॥ जिन पितरोंके विश्व, विश्वभुक्, आराध्य, धर्म, धन्य, शुभानन, भूतिद, भूतिकृत् और भूति यह नव संख्याकगण हैं, उनके अधिपति यम मेरी सब दिशाओंमें रक्षा करें। कल्याण कल्यता

अग्निष्वात्ताबर्हिषदआज्यपाःसोमपास्तथा ॥ व्रजंतुतृप्तिंश्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पितामया ॥ ४० ॥ अग्निष्वात्ताःपितृगणाःप्राचींरक्षन्तुमेदिशम् ॥ तथाबर्हिषदःपान्तुयाम्यांयेपितरःस्मृताः ॥ ४१ ॥ प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपिसोमपाः ॥ रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः ॥ ४२ ॥ सर्वतश्चाधिपस्तेषांयमोरक्षांकरोतुमे ॥ विश्वोविश्वभुगाराध्योधर्म्मोधन्यःशुभाननः ॥ ४३ ॥ भूतिदोभूतिकृद्भूतिःपितृणांयेगणानव ॥ कल्याणःकल्यतांकर्त्ताकल्यःकल्यतराश्रयः ॥ ४४ ॥ कल्यताहेतुरनघःषडिमेतेगणाःस्मृताः ॥ वरोवरेण्योवरदःपुष्टिदस्तुष्टिदस्तथा ॥ ४५ ॥ विश्वपातातथाधातासप्तैवैतेतथागणाः ॥ महान्महात्मामहितोमहिमावान्महाबलः ॥ ॥ ४६ ॥ गणाःपञ्चतथैवैतेपितृणांपापनाशनाः ॥ सुखदोधनदश्चान्योधर्मदोऽन्यश्चभूतिदः ॥ ४७ ॥ पितृणांकथ्यतेचैतत्तथागणचतुष्टयम् ॥ एकत्रिंशत्पितृगणायैर्व्याप्तमखिलंजगत् ॥ तेमेऽनुतृप्तास्तुष्यंतुयच्छन्तुचसदाहितम् ॥ ४८ ॥

कर्त्ता कल्य, कल्यतराश्रय ॥ ४३ ॥ ४४ ॥ कल्यता हेतु और अनघ, जिन पितृपुरुषोंके यह छे प्रकारके गण हैं, जिन पितृपुरुषोंके वर, वरेण्य, वरद, पुष्टिद, तुष्टिद ॥ ४५ ॥ विश्वपाता और धाता यह सप्तविधि गण हैं, महान्, महात्मा, महित महिमावान् और महाबल नामक ॥ ४६ ॥ जो पितरोंके पापनाशक यह पांच प्रकारके गण हैं और सुखद, धनद, धर्मद और भूतिदाता गण हैं ॥ ४७ ॥ पितरोंके यह जो चार गण कहे गये हैं, सब समेत वह एकत्रिंशत् अर्थात् एकतीस पितृगण हैं, जो संपूर्ण जगत्को व्याप्त कररहे हैं, वह मेरे द्वारा तृप्त होकर मुझको संतुष्ट करें और मेरा सदा हित करें ॥ ४८ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां रुचिकृतपितृस्तवनं नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब रुचिने इस प्रकार स्तवन किया, तब सहसा उनके निकट उच्छ्रित (उच्च शिखायुक्त) और गगन व्यापक तेज प्रादुर्भूत हुआ ॥ १ ॥ समस्त जगत्को आच्छादन करके अवस्थित उस तेजको देखकर रुचि जानु द्वारा पृथ्वी स्पर्श पूर्वक यह स्तोत्र कीर्तन करने लगे ॥ २ ॥ रुचिने कहा--उन ध्यानरत, दिव्यचक्षु, दीप्ततेजा, अर्चित और मूर्तिहीन पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥ दक्ष, मरीचि, सप्तर्षि गण तथा इन्द्रादि अन्यान्य सबके नेता, उन कामदाता पितरोंको नमस्कार करता हूं ॥ ४ ॥ मनु इत्यादि मुनींद्रगणोंके तथा सूर्य एवं चन्द्रमाके

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्यमन्वंतरे रुच्युपाख्यानेपितृस्तवनंनामत्रिनवतितमोऽध्यायः ॥ ९३ ॥ ॥ छ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ एवंतुस्तुवतस्तस्यतेजसोराशिरुच्छ्रितः ॥ प्रादुर्बभूवसहसागगनव्यातिकारकः ॥ १ ॥ तद्दृष्ट्वासुमहत्तेजःसमासाद्यस्थितं जगत् ॥ जानुभ्यामवनिंगत्वारुचिःस्तोत्रमिदंजगौ ॥ २ ॥ रुचिरुवाच ॥ अमूर्तानांचमूर्त्तानांपितॄणांदीप्ततेजसाम् ॥ नमस्यामि सदातेषांध्यानिनांदिव्यचक्षुषाम् ॥ ३ ॥ इन्द्रादीनांचनेतारोदक्षमारीचयोस्तथा ॥ सप्तर्षीणांतथान्येषांतान्नमस्यामिकामदान् ॥ ॥ ४ ॥ मन्वादीनांमुनीन्द्राणांसूर्याचन्द्रमसोस्तथा ॥ तान्नमस्याम्यहंसर्व्वान्पितरश्चार्णवेषुये ॥ ५ ॥ नक्षत्राणांग्रहाणांचवाय्वग्न्यो र्नभसस्तथा ॥ द्यावापृथिव्योश्चतथानमस्यामिकृतांजलिः ॥ ६ ॥ देवर्षीणांग्रहाणांचसर्वलोकनमस्कृतान् ॥ अक्षय्यस्यसदादातॄन्न मस्येऽहंकृतांजलिः ॥ ७ ॥ प्रजापतेःकश्यपायसोमायवरुणायच ॥ योगेश्वरेभ्यश्चसदानमस्यामिकृतांजलिः ॥ ८ ॥ नमोगणेभ्यः सप्तभ्यस्तथालोकेषुसप्तसु ॥ स्वयंभुवेनमस्यामिब्रह्मणेयोगचक्षुषे ॥ ९ ॥

नेता और कामदाता तथा समुद्र और जलमें स्थित उन समस्त पितरोंको प्रणाम करता हूं ॥ ५ ॥ जो नक्षत्र, ग्रह, वायु, अग्नि, आकाश, स्वर्ग और पृथ्वीके नेता तथा कामदाता हैं, उन पिरोंको कृताञ्जलि हो अर्थात् हाथ जोडकर नमस्कार करताहूं ॥ ६ ॥ जो देवर्षियोंके उत्पन्न करनेवाले, सर्वलोकनमस्कृत अक्षयवत्व अर्थात् अक्षय फलके दाता हैं, उन पितरोंको सदा हाथ जोडकर प्रणाम करताहूं ॥ ७ ॥ जो प्रजातियोंमें कश्यप, एवं सोम, वरुण और योगेश्वर रूपी हैं, सदा हाथ जोडकर मैं उन पितरोंको नमस्कार करताहूं ॥८॥ जो सप्तलोकके मध्य

सप्तगणोंमें स्थित हैं उनको नमस्कार करताहूं और योगचक्षु स्वयम्भू ब्रह्माके स्वरूप उन पितरोंको प्रणाम करताहूं ॥ ९ ॥ जो सोमके आधार, योगमूर्तिधारी सोमरूपी और जगत्के पिता हैं, उन पितरोंको मैं नमस्कार करता हूं ॥ १० ॥ जिन अशेष पितरोंसे अग्नि सोम यह विश्व उत्पन्न है, उन अग्निरूपी और अन्यान्य पितरोंको मैं नमस्कार करताहूं ॥ ११ ॥ जो तेजःस्थित होकर सोम सूर्याग्निमूर्ति अवलम्बन करनेसे जगत्स्वरूपी और ब्रह्मस्वरूपी हैं उन संपूर्ण योगी पितरोंको मैं संयतमन होकर वारम्वार नमस्कार करताहूं, वह स्वधा भोजी पितृगण मेरेप्रति प्रसन्न हों ॥ १२ ॥ ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुनिसत्तम ! रुचिके इस प्रकार स्तुति करनेपर पितृगण तेजद्वारा दशों दिशाओंको प्रकाशमान करते हुए निकले

सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्तिधरांस्तथानमस्यामितथासोमंपितरंजगतामहम् ॥ १० ॥ अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामिपितृनहम् ॥ अग्नीषोममयंविश्वंयतएतदशेषतः ॥ ११ ॥ येतुतेजसियेचैतेसोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः ॥ जगत्स्वरूपिणश्चैवतथाब्रह्मस्वरूपिणः ॥१२॥ तेभ्योऽखिलेभ्योयोगिभ्यःपितृभ्योयतमानसः ॥ नमोनमोनमस्तेमेप्रसीदंतुस्वधाभुजः ॥ १३ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ एवं स्तुतास्ततस्तेनतेजसामुनिसत्तम ॥ निश्चक्रमुस्तेपिततोभासयन्तोदिशोदश ॥ १४ ॥ निवेदितंचयत्तेनपुष्पगंधानुलेपनम् ॥तद्भूपि तानथसतान्ददृशेपुरतःस्थितान् ॥ १५ ॥ प्रणिपत्यपुनर्भक्त्यापुनरेवकृतांजलिः ॥ नमस्तुभ्यंनमस्तुभ्यमित्याहपृथगादृतः ॥ १६ ॥ ततःप्रसन्नाःपितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् ॥ वरंवृणीष्वेतिसतानुवाचानतकंधरः ॥ १७ ॥ ॥ रुचिरुवाच ॥ ॥ साम्प्रतंसर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणामम ॥ सोऽहंपुत्रीमभीप्सामिधन्यांदिव्यंप्रजावतीम् ॥ १८ ॥

॥ १४॥ अनन्तर उन्होंने जो पुष्पगन्धानुलेपन कव्य निवेदन किया था, विप्रवर रुचिने उनको उसके द्वारा विभूषित होकर सन्मुख आते देखा ॥ १५ ॥ और फिरभी हाथ जोडकर भक्ति सहित प्रणाम पूर्वक पृथक् पृथक् प्रत्येकसे, " तुमको नमस्कार तुमको नमस्कार " इस प्रकार आदरसे कहनेलगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पितरोंने प्रसन्न होकर उन मुनिश्रेष्ठसे कहा—वर मांगो । तब विप्रवर रुचि गर्दन झुकाकर उनसे बोले ॥ १७ ॥ रुचिने कहा—इस समय ब्रह्माजीने मुझको सृष्टि उत्पन्न करनेकी आज्ञा दी है । इस कारण अब मैं धन्या दिव्य (सुंदरी) और संतान उत्पन्न करनेमें समर्थ पत्नीके प्राप्त करनेकी अभिलाषा करताहूं ॥ १८ ॥

पितर बोले- तुमको अभी इस स्थानमें मनोहर पत्नी प्राप्त होगी, उसके गर्भसे तुम्हारे श्रेष्ठ मनु पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १९ ॥ हे रुचे ! मन्वन्तराधिप बुद्धिमान् तुम्हारा पुत्र तुम्हारे नामानुसारही विख्यात होगा। अर्थात् तीनों जगतमें रौच्यनामसे प्रसिद्ध होगा ॥ २० ॥ उस रौच्यके भी महाबल पराक्रमी महात्मा पृथ्वी पालक बहुत पुत्र जन्म ग्रहण करेंगे ॥ २१ ॥ तुम भी प्रजापति हो चार प्रकारकी प्रजा उत्पन्न करके जब धर्मज्ञ और क्षीणाधिकार होंगे, तब तुमको सिद्धि प्राप्त होगी ॥ २२ ॥ जो नर इस स्तोत्रके द्वारा भक्ति सहित हमारी स्तुति करेंगे, हम उनके प्रति संतुष्ट होकर भोग और उत्तम आत्म ज्ञान प्रदान करेंगे ॥ २३ ॥ शरीरकी आरोग्यता धन और पुत्र पौत्रादिकके चाहने वाले तथा और भी

॥ पितरऊचुः ॥ ॥ अद्यैवसद्यःपत्नीतेभवत्वतिमनोरमा ॥ तस्यांचपुत्रोभविताभवतोमनुरुत्तमः ॥ १९ ॥ मन्वन्तराधिपोधीमांस्त्वन्नाम्नैवोपलक्षितः ॥ रुचेरौच्यइतिख्यातिंयोयास्यतिजगत्त्रये ॥ २० ॥ तस्यापिबहवःपुत्रामहाबलपराक्रमाः ॥ भविष्यन्तिमहात्मानःपृथिवीपरिपालकाः ॥ २१ ॥ त्वंचप्रजापतिर्भूत्वाप्रजाःसृष्टाचतुर्विधाः ॥ क्षीणाधिकारोधर्मज्ञततःसिद्धिमवाप्स्यसि ॥ २२ ॥ स्तोत्रेणानेनचनरोयोऽस्मांस्तोष्यतिभक्तितः ॥ तस्यतुष्टावयंभोगानात्मज्ञानंतथोत्तमम् ॥ २३ ॥ शरीरारोग्यमर्थंचपुत्रपौत्रादिकन्तथा ॥ प्रदास्यामोनसंदेहोयच्चान्यदभिवांछितम् ॥२४॥ तस्मात्पुण्यफलंलोकेवांछद्भिःसततंनरैः ॥ पितृणांचाक्षयांतृप्तिंस्तव्याः स्तोत्रेणमानवैः ॥ २५ ॥ वांछद्भिःसततंस्तव्याःस्तोत्रेणानेनवैयतः ॥ श्राद्धेचयइमंभक्त्याअस्मत्प्रीतिकरंस्तवम् ॥ २६ ॥ पठिष्यतिद्विजाग्र्याणांभुंजतांपुरतःस्थितः ॥ स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्यासन्निधानेपरेकृते ॥ २७ ॥ अस्माकमक्षयंश्राद्धंतद्भविष्यत्यसंशयम् ॥ यद्यप्यश्रोत्रियंश्राद्धंयद्यप्युपहतंभवेत् ॥ २८ ॥

वांछित अभिलाषाके चाहने वाले इस स्तोत्रके द्वारा सदा हमारी स्तुति करें, तो हम निःसंदेह उनको अभीष्ट वस्तु प्रदान करेंगे ॥ २४ ॥ इस कारण लोकमें पुण्यफलकी इच्छा करनेवालोंको इस स्तोत्रसे पितरोंकी अक्षयतृप्ति करनी चाहिये ॥ २५ ॥ हमारी प्रीतिकी इच्छा वालोंको यह निरन्तर पढना चाहिये श्राद्धकालमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सन्मुख स्थित होकर जो हमारे प्रीतिकर ॥ २६ ॥ इस स्तोत्रको भक्ति सहित पढेगा और स्तोत्रश्रवणसे उत्पन्न हुई प्रीति द्वारा समीपमें ॥ २७ ॥ स्थितिको इष्ट समझेगा, उसके द्वारा निःसंदेह हमारा अक्षय श्राद्ध

सम्पन्न होगा। यद्यपि श्राद्ध श्रोत्रियहीन वा दूषित हो ॥ २८ ॥ अथवा यदि अन्यान्यसे उत्पन्न किये धनसे संपादित वा अन्यथा किया जाय, या अकालमें अदेशमें अविहितरूपसे श्रद्धासे हीन दूषित उपहारके द्वारा किया जाय अथवा श्रद्धाहीन दंभी पुरुषोंके द्वारा किया जाय ॥ ॥ २९ ॥ ३० ॥ किन्तु तो भी इस स्तोत्रपाठके कारण वह श्राद्ध हमारी तृप्ति करनेवाला होगा जिस श्राद्धमें हमारा सुखकर यह स्तोत्र पढा जाता है॥ ३१॥ उस श्राद्धसे हमको बारह वर्षतक तृप्ति प्राप्त होती है. यह स्तोत्र हेमन्तकालमें हमको द्वादश वार्षिकी तृप्ति प्रदान करताहै ॥ ३२॥ यह शुभ स्तोत्र शीतकालमें हमको चौवीस वर्ष पर्यन्त तृप्ति प्रदान करता है। वसन्तके समय श्राद्धकालमें इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्ष

अन्यायोपात्तवित्तेनयदिवाकृतमन्यथा ॥ अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथाकृतम् ॥ २९ ॥ अकालेप्यथवाऽदेशेविधिहीनमथापिवा ॥ अश्रद्धयावापुरुषैर्दम्भमाश्रित्यवाकृतम् ॥ ३० ॥ अस्माकंतृप्तयेश्राद्धंतथाप्येतदुदीरणात् ॥ यत्रैतत्पठ्यतेश्राद्धेस्तोत्रमस्मत्सुखाव हम् ॥ ३१ ॥ अस्माकंजायतेतृप्तिस्तत्रद्वादशवार्षिकी ॥ हेमंतेद्वादशाब्दानितृप्तिमेतत्प्रयच्छति ॥ ३२ ॥ शिशिरेद्विगुणाब्दांश्चतृप्तिं स्तोत्रमिदंशुभम् ॥ वसंतेषोडशसमास्तृप्तयेश्राद्धकर्मणि ॥ ३३ ॥ ग्रीष्मेचषोडशैवैतत्पठितंतृप्तिकारकम् ॥ विकलेऽपिकृतेश्राद्धेस्तो त्रेणानेनसाधिते ॥ ३४ ॥ वर्षासुतृप्तिरस्माकमक्षयाजायतेरुचे ॥ शरत्कालेऽपिपठितंश्राद्धकालेप्रयच्छति ॥ ३५ ॥ अस्माकमेत त्पुरुषस्तृप्तिंपंचदशाब्दिकीम् ॥ यस्मिन्गृहेचलिखितमेतत्तिष्ठतिनित्यदा ॥ ३६ ॥ सन्निधानंकृतेश्राद्धेतत्रास्माकंभविष्यति ॥ तस्मादेतत्त्वयाश्राद्धेविप्राणांभुञ्जतपुरः ॥ ३७ ॥

तक तृप्तिप्रदान करता है ॥ ३३ ॥ और ग्रीष्मकालमें भी इस स्तोत्रका पाठ करनेसे सोलह वर्षपर्यन्त तृप्तिकारक होता है किसी कारणसे श्राद्धके विकृत होनेपर इस स्तोत्रपाठद्वारा वह सम्पन्न होता है ॥ ३४ ॥ हे रुचे ! वर्षाकालमें श्राद्धके समय इस स्तोत्रका पाठकरनेमे हमारी अक्षय तृप्ति होती है । पुरुष यदि शरत्कालमें इस स्तोत्रका पाठ करके श्राद्धीय द्रव्य प्रदान करे ॥ ३५ ॥ तो पंचदश (१५) वर्ष पर्यन्त हमारी तृप्ति होती है, जिस घरमें यह स्तोत्र लिखा हुआ सदा रक्खा रहता है ॥ ३६ ॥ उस घरमें श्राद्ध करनेसे हमारा सन्निधान होता है, अर्थात् श्राद्धके समय हम उस घरमें उपस्थित होते हैं; इस कारण तुम श्राद्धमें भोजन करते हुए ब्राह्मणोंके सन्मुख खडे होकर ॥ ३७ ॥

हे महाभाग ! हमारी पुष्टिका हेतु यह स्तोत्र सुनाओ । हे मुनिसत्तम ! पितर गण रुचिसे इस प्रकार कहकर स्वर्गमें चले गये ॥३८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पितृवरप्रदानं नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसके उपरान्त उस नदीमेंसे प्रम्लोचानामक क्षीणाङ्गी मनोहर उत्तम अप्सरा रमणी निकलकर उन रुचिके समीप उपस्थित हुई ॥ १ ॥ फिर श्रेष्ठ अप्सरा प्रम्लोचा नामक सुन्दरीने विनयसे नम्र हो महात्मा रुचिके निकट मधुर वचनोंके द्वारा कहा ॥ २ ॥ हे तापसश्रेष्ठ ! वरुणपुत्र महात्मा पुष्करके द्वारा उत्पन्न हुई अत्यन्तरूपवती मेरी एक कन्या है ॥ ३ ॥ मैं उस वरवर्णिनीको देती हूं, आप उसको भार्याके लिये ग्रहण कीजिये । उसके गर्भसे तुम्हारा पुत्र मनु जन्म ग्रहण करेगा ॥

श्रवणीयंमहाभागअस्माकंपुष्टिहेतुकम् ॥ इत्युक्त्वापितरस्तस्यस्वर्गंतामुनिसत्तम ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरौच्येमन्वन्तरे पितृवरप्रदानंनामचतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥ ९४ ॥ ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौमनोरमा ॥ प्रम्लोचानामतन्वङ्गीतत्समीपेवराप्सराः ॥ १ ॥ साचोवाचमहात्मानंरुचिंसुमधुराक्षरम् ॥ प्रश्रयावनतासुभ्रूःप्रम्लोचात्वैवराप्सराः ॥ ॥ २ ॥ अतीवरूपिणीकन्यामत्सुतातपनांवर ॥ जातावरुणपुत्रेणपुष्करेणमहात्मना ॥ ३ ॥ तांगृहाणमयादत्तांभार्य्यार्थेवरवर्णिनीम् ॥ मनुर्महामतिस्तस्यांसमुत्पत्स्यतितेसुतः ॥ ४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तथेतितेनसाऽप्युक्तातस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् ॥ उज्जहारतनःकन्यांमालिनींनामनामतः॥ ५ ॥ नद्याश्चपुलिनेतस्मिन्सरुचिर्मुनिसत्तमः ॥ जग्राहपाणिंविधिवत्समानाय्यमहामुनीन् ॥६॥ तस्यांतस्यसुतोजज्ञेमहावीर्योमहामतिः ॥ रौच्योऽभवत्पितुर्नाम्नाख्यातोऽत्रवसुधातले ॥७॥ तस्यमन्वन्तरेदेवास्तथासप्तर्षयश्चये ॥ तनयाश्चनृपाश्चैवतेसम्यक्कथितास्तव ॥८॥ धर्मवृद्धिस्तथारोग्यंधनधान्यसुतोद्भवः ॥ नृणांभवत्यसन्दिग्धमस्मिन्मन्वंतरेश्रुते ॥९॥

॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब रुचिने " यही हो " इस प्रकार कहा, तब उस प्रम्लोचाने जलसे सुन्दर कान्तियुक्त मालिनीनामक कन्याको निकाला ॥ ५ ॥ मुनिवर रुचिने उस नदीके पुलिनमें महामुनियोंको बुलाकर विधिवत् पाणिग्रहण किया ॥ ६ ॥ उसके गर्भसे महात्मा रुचिके एक महावीर्य महामति पुत्र उत्पन्न हुआ । वह पुत्र पितृनामानुसार रौच्यनामसे वसुधातलमें विख्यात हुआ ॥ ७ ॥ उनके मन्वन्तरमें देवता सप्तर्षि और उनके समस्त नृपति पुत्रोंका विषय तुमसे सम्यक प्रकार कहा गया है ॥ ८ ॥ इस मन्वन्तरकी कथा सुननेमें मनुष्यकी धर्मवृद्धि, आरोग्य,

धन, धान्य और पुत्रोत्पत्ति होती है ॥९॥ हे महामुने ! पितरोंकी स्तुति और पितरोंके गण श्रवण करनेपर उनके प्रसादसे संपूर्ण कामना सिद्ध होती है॥१०॥इति श्रीमा०पुराणे भाषाटीकायां मालिनीपरिणयोनाम पंचनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥ मार्कण्डेयजी बोले—इसके उपरान्त भौत्य मनुकी उत्पत्ति तथा उस मन्वन्तरके देवता, ऋषि और उनके वसुधाधिपति पुत्रोंका विषय सुनो ॥ १ ॥ मुनिश्रेष्ठ अंगिराके भूतिनामक एक शिष्य थे, वह अत्यन्त कोपन स्वभाव और अल्प अर्थ अर्थात् थोडे अपराधपरही तीक्ष्ण शाप देते तथा निरपराध पुरुषके प्रति भी वह कटुवचन प्रयोग करते ॥ २ ॥ उन कोपनस्वभाव अमिततेजा ऋषिके भयसे उनके आश्रममें वायु अत्यन्त निष्ठुरभावसे नहीं बहता सूर्य अत्यन्त तेज ताप प्रदान नहीं

पितॄस्तवंतथाश्रुत्वापितॄणांचतथागणान् ॥ सर्वान्कामानवाप्नोतितत्प्रसादान्महामुने ॥ १० ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमालिनीपरिणयोनामपंचनवतितमोऽध्यायः ॥ ९५ ॥ इतिरौच्यमन्वन्तरंसमाप्तम् ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःपरंतुभौत्यस्यमनुत्पत्तिंनिशामय ॥ देवानृषींस्तथापुत्रांस्तथैववसुधाधिपान् ॥ १ ॥ बभूवाङ्गिरसःशिष्योभूतिर्नाम्नातिकोपनः ॥ चण्डशापप्रदोऽल्पेऽर्थेमुनिरागस्यसौम्यवाक् ॥ २ ॥ तस्याश्रमेमातरिश्वानववावतिनिष्ठुरम् ॥ नातितापंरविश्चक्रेपर्जन्योनातिकर्दमम् ॥ ३ ॥ नातिशीतंचशीतांशुःपरिपूर्णोऽपिरश्मिभिः ॥ चकारभीत्यावैतस्यकोपनस्यातितेजसः ॥ ४ ॥ ऋतवश्चक्रमंत्यक्त्वावृक्षेष्वाश्रमजन्मसु ॥ तस्यपुष्पफलंचक्रुराज्ञयासार्वकालिकम् ॥ ५ ॥ ऊहुरापश्चछन्देनतस्याश्रमसमीपगाः ॥ कमण्डलुगताश्चैवतस्यभीतामहात्मनः ॥ ६ ॥ नातिक्लेशसहोविप्रःसोऽभवत्कोपनोभृशम् ॥ अपुत्रश्चमहाभागःसतपस्यकरोन्मनः ॥ ७ ॥

करते, और पर्जन्यदेव (इन्द्र) भी अधिक जलवर्षाकर कीचड नहीं करते ॥ ३ ॥ और परिपूर्ण चन्द्रमाभी अपनी किरणोंसे अत्यन्त शीतलता नहीं करते और उन कोपनस्वभाव मुनिके भयसे शीतलता विशेष नहीं करते थे ॥ ४ ॥ उनकी आज्ञानुसार ऋतुगण पर्याय त्यागकर उनके आश्रमस्थ वृक्षोंमें सर्वकालके फल, पुष्प उत्पन्न करती ॥ ५ ॥ आश्रमसमीपगामी जल महात्मा भूतिके भयसे उनकी इच्छानुसार मुहूर्तमात्रके बीच उनके कमण्डलुमें आजाता ॥ ६ ॥ हे विप्र ! वह अत्यन्त कोपनस्वभाव मुनि क्लेश नहीं सह सकतेथे, किन्तु तो उन महाभागने अपुत्र होनेके कारण मनमें तपस्या करनेकी इच्छा करी ॥ ७ ॥

पुनः पुत्रकी कामना करनेवाले ऋषिने "संयताहार और शीत वायु अग्निका कष्ट सहकर तपस्याकरूंगा" इस प्रकार चिन्ता करके तपस्यामें ही मन लगाया ॥ ८ ॥ हे महामुने ! तपस्याकालके समयभी उनके पक्षमें चन्द्र अत्यन्त शीतका कारण और सूर्य अत्यन्त तापका कारण न हुए अर्थात् चन्द्रमा अधिक शीतलता और सूर्य अधिक उष्णता नहीं करते थे तथा वायुभी अत्यन्त प्रबलभावसे नहीं बहताथा ॥ ९ ॥ वह मुनिसत्तम भूति जब द्वन्द्वभाव शीत उष्णसे पीडित होकर भी अपनी अभिलाषाको प्राप्त नहीं हुए, तब तप करना छोड दिया ॥ १० ॥ सुवर्चा नामक उनके एक भाई थे, उन्होंने इनको यज्ञमें निमन्त्रण दिया। तब यह वहां जानेकी इच्छाकर महामति, शान्तिनाम अपने शिष्यसे बोले ॥ ११ ॥

पुत्रकामोयताहारःशीतवातानलाहतः ॥ तपस्यामितिचिन्त्येतितपस्येवमनोदधे ॥ ८ ॥ तस्येन्दुर्नातिशीतायनातितापायभास्करः ॥ अभवन्मातरिश्वाचववौनातिमहामुने ॥९॥ आपीड्यमानोद्वन्द्वैश्चसभूतिर्मुनिसत्तमः ॥ अनवाप्याभिलाषंततपसःसन्यवर्त्तत ॥१०॥ तस्यभ्रातासुवर्च्चाऽभूद्यज्ञेतेनाभिमन्त्रितः ॥ यियासुःशान्तिनामानंशिष्यमाहमहामतिम् ॥ ११ ॥ प्रशान्तमक्षप्रतिमंविनीतंगुरुकर्मणि ॥ सदोद्युक्तंशुभाचारमुदारंमुनिसत्तमम् ॥ १२ ॥ भूतिरुवाच ॥ ॥ अहंयज्ञंगमिष्यामिभ्रातुःशान्तेसुवर्च्चसः ॥ तेनाहूतस्त्वयाचेहयत्कर्त्तव्यंशृणुष्वतत् ॥ १३ ॥ अतिजागरणंवह्नेस्त्वयाकार्य्यममाश्रमे ॥ तथानथाप्रयत्नेनयथाग्निर्नशमंव्रजेत् ॥ ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्याज्ञाप्यनथेत्युक्तोगुरुःशिष्येणशान्तिना ॥ जगामयज्ञंतंभ्रातुराहूतःस्वयवीयसः ॥ १५ ॥ सचशान्तिर्वनाद्यावत्समित्पुष्पफलादिकम् ॥ उपानयतिभूत्यर्थंगुरोस्तस्यमहात्मनः ॥ १६ ॥

हे मुनिसत्तम ! यह अक्षरके समान शान्त गुरुके कार्यमें विनीत सदा कामको उद्यत और शुभाचार तथा परमोदार थे ॥ १२ ॥ भूतिने कहा--हे शान्ते ! भ्राता सुवर्चाके बुलानेसे मैं उनके यज्ञमें जाताहूं, अब तुमको यहां रहकर जो करना चाहिये, सो सुनो॥१३॥ तुम मेरे आश्रममें नित्य अग्नि जगाये रखना और जिससे अग्नि न बुझे, यत्नपूर्वक वही करना॥१४॥मार्कण्डेयजी बोले कि, गुरुजीकी इस प्रकार आज्ञा पाय शिष्य शान्तिने "ऐसाही होगा" यह कहा। तब भूति कनिष्ठ भ्राताके बुलानेपर भ्राताके उस यज्ञमें गये ॥१५॥ वह शान्ति जब महात्मा गुरुकी अग्निसेवाके लिये वनसे समिध, पुष्प, फलादि लाने लगे ॥ १६ ॥

और गुरुकी भक्तिके वशीभूत होकर अन्यान्य कार्य संपादन करने लगे, उसी समयमें उनके भूतिकी यत्न पूर्वक रक्खी हुई अग्नि शान्त होगई ॥ १७ ॥ वह महामति शान्ति उस अनलको शान्त हुआ देखकर अत्यन्त दुःखित हुए और भूतिके भयभीत होकर अनेक भाँतिकी चिन्ता करने लगे ॥ १८ ॥ क्या करूं ? इस स्थानमें किस प्रकारसे गुरुका आगमन होगा अब मुझको क्या करना उचित है क्या करनेसे भला हो ॥ १९ ॥ यदि मेरे गुरु इस अग्निको गृहमें शान्त अर्थात् बुझा हुआ देखेंगे, तो उसी समय निःसंदेह मुझको विषम दुःखमें नियोजित करेंगे ॥ २० ॥ यदि मैं इस अग्निके स्थानमें अन्यअग्नि स्थापन करूं, तो वह सर्व प्रत्यक्षदर्शी मुनि मुझको अवश्य ही

अन्यच्चकुरुतेकर्मगुरुभक्तिवशानुगः ॥ प्रशान्तस्तावदनलोयोऽसौभूतिपरिग्रहः ॥१७॥ तंदृष्ट्वासोऽनलंशान्तंशान्तिरत्यन्तदुःखितः ॥ भीतश्चभूतेर्बहुधाचिन्तामापमहामतिः ॥ १८ ॥ किंकरोमिकथंवात्रभविनागमनंगुरोः ॥ मयाद्यप्रतिपत्तव्यंकिंकृतेसुकृतंभवेत् ॥१९॥ प्रशान्ताग्निमिमंधिष्ण्यंयदिपश्यतिमेगुरुः ॥ ततोमांविषमेह्यद्यव्यसनेनियोक्ष्यति ॥ २० ॥ यद्यन्यमग्निमत्राहसम्भिस्थानेकरोमि तत् ॥ सर्वप्रत्यक्षदृग्भस्मसोऽवश्यंमांकरिष्यति ॥ २१ ॥ सोऽहंपापोगुरोस्तस्यनिमित्तंकोपशापयोः ॥ तथात्मानंनशोचामियथा पापंकृतंगुरोः ॥ २२ ॥ दृष्ट्वाप्रशान्तमनलंनूनंशप्स्यतिमांगुरुः ॥ यथावापावकःक्रुद्धस्तथावीर्योहिसद्विजः ॥ २३ ॥ यस्यप्रभा वाद्बिभ्यन्तोदेवास्तिष्ठन्तिशासने ॥ कृतागसंसमांयुक्त्याकयानोधर्षयिष्यति ॥ २४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ बहुधैवंवि चिन्त्यासौभीतस्तस्यसदागुरोः ॥ ययौमतिमतांश्रेष्ठःशरणंजातवेदसम् ॥ २५ ॥

भस्म कर देंगे ॥ २१ ॥ यह पापात्मा मैं उन गुरुके कोप और शापका हेतुभूत वैसा शोक नहीं करता जिस प्रकार गुरुके निकट किये पापका शोक है ॥ २२ ॥ गुरु अग्निको शान्त देखकर निश्चय ही मुझको शाप देंगे अथवा पावकही कोधित होंगे अर्थात् उनके भयसे अग्निभी मुझको शाप देसकते हैं क्योंकि मेरे गुरुका वीर्यही ऐसा है ॥ २३ ॥ देवताभी जिनके प्रभावसे भीत होकर शासनाधीन हुए हैं, वह मुझको अपराधी देखकर किस युक्तिद्वारा अवमानित नहीं करेंगे ? ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन गुरुके भयसे सदा भीत वह बुद्धिमान् शान्ति इस प्रकार अनेक भाँतिकी चिन्ता करके जातवेदाः अग्निकी शरणागत हुए ॥ २५ ॥

तदनन्तर वह शान्ति संयत मनसे एकाग्रचित्त हो पृथ्वीमें घुटने टेक और हाथ जोडकर सप्तशिखायुक्त अग्निका स्तोत्रपाठ करने लगे ॥ २६ ॥ शान्तिने कहा--जो संपूर्ण प्राणियोंके साधन हैं, जो महात्मा हैं, जो एक दो पंच रूपी हैं, और जो राजसूय यज्ञमें षण्मूर्तिधारी हैं, उनको नमस्कार है ॥ २७ ॥ जो समस्त देवताओंको वृत्ति प्रदान करते हैं, जो सुवर्चाः हैं और जो सब जगत्की स्थिति प्रदान करते हैं, उन शुक्ररूपी तुमको नमस्कार है ॥ २८ ॥ तुम्ही सब देवताओंके मुखस्वरूप हो, भगवान् तुम्हारे द्वाराही घृतपान करके सब देवताओंको संतुष्ट करते हैं, तुम्हीं सब देवताओंके प्राणस्वरूप हो ॥ २९ ॥ तुममें ही हविः हुत होकर अमल मेध्यत्वको प्राप्त होती है और पीछे वह जलरूपमें

सचकारतदास्तोत्रंसप्तचैंयतमानसः ॥ सचैकचित्तोमेदिन्यांन्यस्तजानुःकृताञ्जलिः ॥ २६ ॥ शान्तिरुवाच ॥ ॥ ओंनमःसर्वभूतानांसाधनायमहात्मने ॥ एकद्विपञ्चधिष्ण्यायराजसूयेषडात्मने ॥ २७ ॥ नमःसमस्तदेवानांवृत्तिदायसुवर्चसे ॥ शुक्ररूपायजगतामशेषाणांस्थितिप्रदः ॥ २८ ॥ त्वंमुखंसर्वदेवानांत्वयात्तंभगवन्हविः ॥ प्रीणयस्यखिलान्देवांस्त्वत्प्राणाःसर्वदेवताः ॥ २९ ॥ हुतंहविस्त्वय्यनलमेधत्वमुपगच्छति ॥ ततश्चजलरूपेणपरिणाममुपैतियत् ॥ ३० ॥ तेनाखिलौषधीजन्मभवत्यनिलसारथे ॥ औषधीभिरशेषाभिःसुखंजीवन्तिजन्तवः ॥ ३१ ॥ वितन्वतेनरायज्ञांस्त्वत्सृष्टास्वोषधीषुच ॥ यज्ञैर्देवास्तथादैत्यास्तद्वद्रक्षांसिपावक ॥३२॥ आप्याय्यन्तेचतेयज्ञास्त्वदाधाराहुताशन ॥ अतःसर्वस्यस्ययोनिस्त्वंवह्नेसर्वमयस्तथा ॥ ३३ ॥ देवतादानवायक्षादैत्यागन्धर्वराक्षसाः ॥ मानुषाःपशवोवृक्षामृगपक्षिसरीसृपाः ॥ ३४ ॥

परिणत होती है ॥ ३० ॥ हे अनिलसार थे ! उससे ही समस्त औषधी उत्पन्न होती हैं और उन सब औषधियोंसे ही जीवगण सुखपूर्वक जीवित रहते हैं ॥ ३१ ॥ हे पावक ! मनुष्यगण तुम्हारी उत्पन्न की हुई औषधियोंके द्वारा जो यज्ञ करते हैं और उन यज्ञोंके द्वारा ही देवता, दैत्य और राक्षसगण ॥ ३२ ॥ आप्यायित अर्थात् तृप्त होते हैं। हे हुताशन ! तुम्ही उन सब यज्ञोंके आधारस्वरूप हो, अतएव हे वह्ने ! तुम्हीं सबके उत्पन्नकर्त्ता और सर्वमय हो ॥ ३३ ॥ हे पावक ! देवता, दानव, यक्ष, दैत्य, गंधर्व, राक्षस, मनुष्य, पशु, वृक्ष, मृग, पक्षी और सरीसृप गण ॥ ३४ ॥

तुम्हारे द्वाराही तृप्त होते हैं, संवर्द्धित होते हैं और तुमसेही उत्पन्न होकर अन्त समय तुममेंही विलीन होते हैं ॥ ३५ ॥ हे देव ! तुम्ही जल उत्पन्न करते हो और फिर तुम्ही उसको पान करते हो. तथा तुम्हारे द्वाराही वह पाचित होकर प्राणियोंका पुष्टिकारक होता है ॥ ३६ ॥ हे भगवान् अग्ने ! तुम्ही देवताओंमें तेजरूपसे सिद्धोंमें कान्तिरूपसे नागोंमें विषरूपसे और पक्षियोंमें वायुरूपसे वर्त्तमान हो ॥ ३७ ॥ हे देव ! तुम्हीं मनुष्योंमें क्रोध रूपसे, पक्षी और मृगादिमें मोहरूपसे, वृक्षोंमें स्थितिरूपसे, पृथ्वीमें काठिन्य अर्थात् कठिनता रूपसे ॥ ३८ ॥ और जलमें द्रवत्वरूपसे स्थिति करते हो तुम्हीने वायुमें वेगरूपसे और आकाशमें व्यापित्वरूपसे आत्माको अवस्थित किया है ॥ ३९ ॥ हे अग्ने !

आप्याय्यन्तेत्वयासर्वैसंवर्ध्यन्तेचपावक ॥ त्वत्तएवोद्भवंयान्तित्वय्यन्तेचतथालयम् ॥३५॥ अपःसृजसिदेवत्वंत्वमत्सिपुनर्गताः ॥ पच्यमानास्त्वयाताश्चप्राणिनांपुष्टिकारणम् ॥ ३६ ॥ देवेषुतेजोरूपेणकान्त्यासिद्धेष्ववस्थितः ॥ विषरूपेण नागेषुवायुरूपः पतत्रिषु ॥ ३७ ॥ मनुजेषुभवान्क्रोधोमोहःपक्षिमृगादिषु ॥ अवष्टम्भोऽसितरुषुकाठिन्यंत्वंमहींप्रति ॥ ३८ ॥ जलेद्रवस्त्वंभगवाञ्जवरूपीतथाऽनिले ॥ व्यापित्वेनतथैवाग्नेनभसित्वंव्यवस्थितः ॥ ३९ ॥ त्वमग्नेसर्वभूतानामन्तश्चरसिपालयन् ॥ त्वामेकमाहुःकवयस्त्वामाहुस्त्रिविधंपुनः ॥ ४० ॥ त्वामष्टधाकल्पयित्वायज्ञवाद्यमकल्पयन् ॥ त्वयासृष्टमिदंविश्वंवदन्तिपरमर्षयः ॥ ४१ ॥ त्वामृतेहिजगत्सर्वंसद्योनश्येद्धुताशन ॥ तुभ्यंकृत्वाद्विजःपूजांस्वकर्मविहितांगतिम् ॥ ४२ ॥ प्रयान्तिहव्यकव्याद्यैःस्वधास्वाहाभ्युदीरणात् ॥ परिणामात्मवीर्याणिप्राणिनाममरार्चित ॥ ४३ ॥ दहन्तिसर्वभूतानितत्तोनिष्क्रम्यहेतयः ॥ जातवेदस्त्वयैवेदंविश्वंसृष्टंमहाद्युते॥४४॥

तुम्हीं पालन करते करते सब जीवोंके अन्तरमें विचरण करते हो, कविगण तुमको एककर निर्देश करते हैं, किन्तु फिर वही तुमको त्रिविध कहते हैं ॥ ४० ॥ कविगण तुमको अष्टधा कल्पित करके आद्य यज्ञको कल्पना करते हैं, तुम्हारे द्वाराही जगत् उत्पन्न हुआ है, यह परमर्षिगण कहते हैं ॥ ४१ ॥ हे हुताशन ! तुम्हारे नष्ट होनेपर संपूर्ण जगत् तत्काल विनाशको प्राप्त होता है ॥ ब्राह्मणगण तुम्हारी हव्य कव्यादिके द्वारा पूजा करके स्वधा स्वाहा उच्चारणके कारण स्वकर्मविहित गतिको प्राप्त होते हैं । हे अमरार्चित अर्थात् देवताओंसे पूजित ! प्राणियोंकी परिणामात्मा वीर्यस्वरूप ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ समस्त अग्निशिखा तुमसेही निकल कर भूतगणोंको दग्ध करती है ।

हे महाद्युते जातवेदः! यह विश्व तुम्हारी ही सृष्टि है॥४४॥हे अनल! वैदिक कर्म और सर्वभूतात्मक जगत् तुम्हारेही आधीन है। हे पिंगाक्ष अनल! तुमको नमस्कार करता हूं, हे हुताशन! तुमको प्रणाम करता हूं ॥४५॥ हे आद्य! हे पावक! तुमको प्रणाम करताहूं तुम्हीं भुक्त (भोजन किये) और पीतद्रव्य (पिये हुए) को पचानेके कारण विश्वपावन हो हे विश्वपावन! तुम सर्व भूतके पवित्र करनेवाले हो ॥ ४६ ॥ तुम्हीं सस्यके पाककर्त्ता अर्थात् पकानेवाले और जगत्‌को पुष्टिकारक हो तुम्हीं मेघ तुम्हीं वायु तुम्हीं सस्योत्पादनके हेतु बीजस्वरूप॥४७॥ और तुम्हीं सब भूतों का पोषण करनेके लिये भूत भविष्यत् तथा वर्त्तमानरूपी हो। तुम्हीं समस्त भूतों में ज्योतिस्वरूप और आदित्य सूर्यहो ॥ ४८ ॥ तुम्हीं

तवैववैदिकंकर्मसर्वभूतात्मकंजगत् ॥ नमस्तेऽनलपिंगाक्षनमस्तेऽस्तुहुताशन ॥ ४५ ॥ पावकाद्यनमस्तेऽस्तुनमस्तेहव्यवाहन ॥ त्वमेवसर्वभूतानांपावनाद्विश्वपावनः ॥ त्वमेवभुक्तपीतानांपाचनाद्विश्वपाचकः ॥ ४६ ॥ सस्यानांपाकर्त्तात्वंपोष्टात्वंजगतस्तथा ॥ त्वमेवमेघस्त्वंवायुस्त्वंबीजंसस्यहेतुकम् ॥४७॥ पोषायसर्वभूतानांभूतभव्यभवोह्यसि ॥ त्वंज्योतिःसर्वभूतेषुत्वमादित्योविभावसुः ॥ ॥ ४८ ॥ त्वमहस्त्वंतथारात्रिरुभेसन्ध्येतथाभवान् ॥ हिरण्येतास्त्वंवह्नेहिरण्योद्भवकारणम् ॥ ४९ ॥ हिरण्यगर्भश्चभवान्हिरण्य सदृशप्रभः ॥ त्वंमुहूर्त्तक्षणश्चत्वंत्वंत्रुटिस्त्वंतथालवः ॥ ५० ॥ कलाकाष्ठानिमेषादिरूपेणासिजगत्प्रभो ॥ त्वमेतदखिलंकालःपरि णामात्मकोभवान् ॥ ५१ ॥ याजिह्वाभवतःकालीकालनिष्ठाकरीप्रभो ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५२ ॥ कराली नामयाजिह्वामहाप्रलयकारणम् ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५३ ॥

दिन, तुम्हीं रात्रि, और तुम्हीं दोनों संध्या हो। हे वह्ने! तुम्हीं हिरण्य रेता और हिरण्य (सुवर्ण) को उत्पन्न करनेवाले हो ॥ ४९ ॥ तुम्हीं हिरण्यगर्भ और हिरण्यके समान कान्तियुक्त हो। तुम्हीं मुहूर्त्त, तुम्हीं क्षण त्रुटि और तुम्हीं लव हो ॥ ५० ॥ हे जगत्प्रभो! तुम्हीं कलाकाष्ठा निमेषादि रूपमें परिणामात्मक अन्तकाल हो ॥ ५१ ॥ हे प्रभो! आप की जो कालनिष्ठाकरी काली जीभ है, उसके द्वारा हे देव! पाप भय और ऐहिक महाभयसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५२ ॥ महाप्रलयके कारण कराली नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५३ ॥

लघिमागुणयुक्त मनोजवा नामक जो आपकी जीभ है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५४ ॥ जो तुम्हारी सुलोहिता नामक जीभ प्राणियोंकी कामना पूर्ण करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५५ ॥ सधूम्रवर्ण नामक जो आपकी जीभ प्राणियोंके रोग दग्ध करती हैं, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५६ ॥ आपकी स्फुलिङ्गिनी नामक जीभसे जो पुद्गल अर्थात् आत्मा और देह उत्पन्न होता है, इसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ५७ ॥ आपकी विश्वा नामक जीभ प्राणियोंको मंगल प्रदान करती है, उसके द्वारा ऐहिक महाभय और पापोंसे हमारी रक्षा

मनोजवाचयाजिह्वालघिमागुणलक्षणा ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५४ ॥ करोतिकामंभूतेभ्योयातेजिह्वासुलोहिता ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५५ ॥ सधूम्रवर्णायाजिह्वाप्राणिनांरोगदायिका ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५६ ॥ स्फुलिंगिनीचयाजिह्वायतःसकलपुद्गलाः ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५७ ॥ यातेविश्वसृजाजिह्वाप्राणिनांशर्मदायिनी ॥ तयानःपाहिपापेभ्यऐहिकाच्चमहाभयात् ॥ ५८ ॥ पिङ्गाक्षलोहितग्रीवकृष्णवर्त्मन्हुताशन ॥ त्राहिमांसर्वदोषेभ्यःसंसारादुद्धरेहमाम् ॥ ५९ ॥ प्रसीदवह्नेसप्तार्चिःकृशानोहव्यवाहन ॥ अग्निपावकशुक्रादिनामाष्टभिरुदीरितः ॥ ॥ ६० ॥ अग्नेऽग्रेसर्वभूतानांसमुत्पत्तिर्विभावसो ॥ प्रसीदहव्यवाहाख्यअभिष्टुतमयाव्यय ॥ ६१ ॥ त्वमक्षयोवह्निरचिन्त्यरूपःसमृद्धिमन्दुष्प्रसहोऽतितीव्रः ॥ तवाव्ययंभीममशेषलोकसंवर्धकंहन्त्यथवातिवीर्य्यम् ॥ ६२ ॥

कीजिये ॥ ५८ ॥ हे हुताशन ! आपके नेत्र पिंगल वर्ण ग्रीवा लोहितवर्ण और आप स्वयं कृष्ण वर्ण हैं, । आप मेरी सब प्रकारके दोषोंसे रक्षा कीजिये और मेरा इस संसारसे उद्धार कीजिये ॥ ५९ हे वह्ने ! आप सप्तार्चिः हव्यवाहन, कृशानु, अग्नि पावक, शुक्र, इत्यादि आठ नामोंसे कथित होते हो आप प्रसन्न हूजिये ॥ ६० ॥ हे अग्ने ! आप संपूर्ण भूतोंसे आगे उत्पन्न हुए हैं । हे विभावसो ! हे अव्यय हव्यवाह ! मैं आपकी स्तुति करताहूं आप स्तुतिको प्राप्त होकर मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये॥६१॥ हे वह्ने ! आपका क्षय नहीं है, आपका रूप अचिन्त्य अर्थात चिन्ताकाभी अविषय है, आप समृधिरूंपन्न, आश्रय और अत्यन्त तीव्र हैं, मूर्तिमान होनेपर आप ऐसे बलशाली होते हैं कि, अव्यय और भीम

रूप संपूर्ण जगत्कोभी नाश करते हैं ॥ ६२ ॥ हे हुताशन ! आप उत्तम सत्व और संपूर्ण प्राणियोंके हृदय कमलस्वरूप हो, और आप सबके पूजनीय अनन्त ब्रह्म स्वरूप हो। आपनेही ब्रह्म स्वरूपसे इस चराचर विश्वको व्याप्त कर रक्खा है अत एव आप एक होकर भी बहुत प्रकारसे इस संसारमें अवस्थान करते हो ॥ ६३ ॥ हे अनल ! आप अक्षय हैं आपही पर्वत वनयुक्त पृथ्वीस्वरूप हैं. आपही चन्द्रसूर्य युक्त समस्त आकाशस्वरूप हैं आपही दिन रात इत्यादि निखिल कालस्वरूप हैं आपही महासमुद्रके भीतर वडवाग्नि हैं और आपही परम विभूतिके द्वारा सर्व किरणमें अवस्थित हैं ॥६४॥ हे हुताशन ! आप हुत हविः भोजन करते हैं, इस कारण नियमपरायण महर्षिगण महा

त्वमुत्तमंतत्त्वमशेषसत्त्वहृत्पुण्डरीकस्थमनन्तमीड्यम् ॥ त्वयाततंविश्वमिदंचराचरंहुताशनैकोबहुधात्वमत्र ॥ ६३ ॥ त्वमक्षयः सगिरिवनावसुन्धरानभःससोमार्कमहर्दिवाखिलम् ॥ महोदधेर्जठरगतश्चवाडवोभवान्विभुःपिबतिपयांसिपावक ॥ ६४ ॥ हुताशन स्त्वमितिसदाभिपूज्यसेमहाक्रतौनियमपरैर्महर्षिभिः ॥ अभिष्टुतःपिबसिचसोममध्वरेवषट्कृतान्यपिचहवींषिभूतये ॥६५॥ त्वंविप्रैः सततमिहेज्यसेफलार्थंवेदाङ्गेष्वथसकलेषुगीयसेत्वम् ॥ त्वद्धेतोर्यजनपरायगाद्विजेन्द्रावेदाङ्गान्यधिगमयन्निसर्वकाले ॥ ६६ ॥ त्वंब्रह्मायजनपरस्तथैवविष्णुर्भूतेशःसुरपतिरर्य्यमाजलेशः ॥ सूर्य्येन्दूसकलसुरासुराश्चहव्यैःसन्तोष्याभिमतफलान्यथाप्नुवन्ति ॥ ॥ ६७ ॥ अर्चिर्भिःपरममहोपघातदुष्टंसंस्पृष्टंतवशुचिजायतेसमस्तम् ॥ स्नानानांपरममतीवभस्मनामत्सन्ध्यायांमुनिभिरतीवसेव्य सेतत् ॥ ६८ ॥ तत्कृत्वात्रिदिवमवाप्नुवन्तिलोकाःसद्भक्त्यासुखनियताःसमूहगीतम् ॥ ६९ ॥

यज्ञमें आपकी सदा पूजा करते हैं और आपभी उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्त होकर जगत्के मंगलार्थ सोमरस और वषट्कारसहित हविः पान करतेहैं ॥६५॥ समस्त वेदाङ्गमें आपही गाये जातेहैं और यज्ञपरायण आपके लिये द्विजश्रेष्ठगण सदावेदाङ्ग अध्ययन करते हैं ॥६६॥ आपही यजनपरायण ब्रह्मा आपही विष्णु और आपही भूतनाथ महादेव हैं।देवराजेन्द्र, अर्यमा, जलेश्वर वरुण, सूर्य और चन्द्रमाभी आपही हैं।देवता और असुर सभी हव्यद्वारा आपको संतुष्ट करके वांछित फलको प्राप्त होते हैं॥६७॥अत्यन्त उपघातसे दूषित संपूर्ण वस्तु आपकी शिखाके स्पर्शसे पवित्र होती हैं, विविध स्नानमें भस्मद्वारा स्नानही श्रेष्ठ है, इस कारण मुनिगण सन्ध्याकालमें वही स्नान करते हैं॥६८॥ ऐसा करनेसे लोग स्वर्गको प्राप्त होते हैं और

सद्भक्तिकर अनेक सुखको प्राप्त करते हैं ॥ ६९ ॥ हे वह्ने ! इस निमित्त ही आप शुचिनामधारी हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये आपही विमल और अतिप्रबल वायुस्वरूप हैं आप उसीरूपसे प्रसन्न हूजिये । हे पावक ! आप वैद्युताग्नि इत्यादि नामोंमे कीर्तित होते हैं आप उसी रूपसे मेरे प्रति प्रसन्न हूजिये । हे हव्याशन ! आप प्रसन्न हूजिये और मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७० ॥ हे वह्ने ! आपका जो मंगलमय रूप और जो सप्तहेति (ज्वाला) हैं, हे देव ! मेरे द्वारा स्तुतिको प्राप्त होकर उन सब सबसे, पिता जिस प्रकार पुत्रकी रक्षा करता है वैसे ही मेरी रक्षा कीजिये ॥ ७१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भौत्यमन्वन्तरे षण्णवतितमोऽध्यायः ॥ ९६ ॥

प्रसीदवह्नेशुचिनामधेयप्रसीदवायोविमलातिदीप्ते ॥ प्रसीदमेपावकवैद्युताभप्रसीदहव्याशनपाहिमांत्वम् ॥ ७० ॥ यत्तेवह्नेशिवंरूपंये चतेसप्तहेतयः ॥ तैःपाहिनःस्तुतोदेवपितापुत्रमिवात्मजम् ॥ ७१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभौत्यमन्वंतरेऽग्निस्तोत्रंनामषण्णवतितमो ऽध्यायः ॥ ९६ ॥ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंस्तुतस्ततस्तेनभगवान्हव्यवाहनः ॥ ज्वालामालाकुलतनुस्तस्यामीदग्रतोमुने ॥ ॥ १ ॥ देवोविभावसुःप्रीतस्तोत्रेणानेनवैद्विज ॥ तंशान्तिमाहप्रणतंमेघगम्भीरयागिरा ॥ २ ॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ ॥ परितुष्टोऽस्मिते विप्रभक्त्यायातेस्तुतिःकृताःवरंददामिभवतेप्रार्थ्यतांयत्तवेप्सितम् ॥ ३ ॥ ॥ शान्तिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कृतकृत्योऽस्मियत्त्वांपश्या मिरूपिणम् ॥ तथापिभक्तिनम्रस्यभवताश्रूयतांमम ॥ ४ ॥ भ्रातृयज्ञंगतोदेवममाचार्य्योनिजाश्रमात् ॥ आगतश्चाश्रमंधिष्ण्यंत्व त्सनाथंसपश्यतु ॥ ५ ॥ ममापराधात्सन्त्यक्तंधिष्ण्यंयत्तेविभावसो ॥ तत्त्वयाधिष्ठितंसोऽद्यपूर्ववत्पश्यतुद्विजः ॥ ६ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने!शांतिके इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् हव्यवाहन ज्वालामालासे युक्त होकर वहां उनके सन्मुख प्रगट हुए॥१॥ हे द्विज ! देव विभावसुने इस स्तोत्रके द्वारा प्रसन्न होकर उन प्रणत शांतिसे मेघके समान गंभीर वचनद्वारा कहा॥२॥अग्नि बोले--हे विप्र!तुमने जो भक्तिपूर्वक मेरी स्तुति करी है, इससे मैं संतुष्ट हुआहूं।मैं तुमको वर देताहूं तुम अपने अभिलाषित विषयकी प्रार्थना करो॥३॥शांतिने कहा--हे भगवन्!आपको मूर्त्तिमान दर्शन करकेही मैं कृतकृत्य हुआहूं । तो भी मैं भक्ति--नम्र होकर जो कहताहूं, वह सुनिये॥४॥हे देव ! मेरे आचार्य अपने आश्रमसे भ्राताके यज्ञमें गये हैं । वह आश्रममें आकर अग्निकुण्डको अग्नियुक्त देखें॥५॥ हे विभावसो ! मेरे अपराधके कारण जिस अग्नि

कुण्डको आपने त्याग दियाहै वह द्विज उसको इस समय आपके द्वारा पूर्ववत् अधिष्ठित देखें ॥६॥ हे देव ! आप यदि प्रसन्न हुए हैं, तो मेरी दूसरी प्रार्थना यह है कि, मेरे अपुत्र गुरुके विशिष्ट (गुणशाली) पुत्र हो ॥ ७ ॥ मेरे गुरु जिस प्रकार उस अपने पुत्रसे स्नेहकरें, उनका मन उसी प्रकार सब प्राणियोंके प्रति मृदु अर्थात् स्नेहशाली हो ॥ ८ ॥ हे अव्यय ! मुझपर प्रसन्न हुआ देखकर जो आपकी स्तुति करे, मेरे प्रति प्रसन्नहोकर आप उसके संबंधमें इस स्तोत्रद्वारा वरदायक हों ॥९॥ मार्कण्डेयजी बोले--पावक गुरुभक्तिद्वारा और इस स्तोत्र द्वारा आराधित हो उस द्विजश्रेष्ठ शांतिका वचन सुनकर उससे कहने लगे ॥१०॥ अग्नि बोले--हे ब्रह्मन् ! तुमने जो गुरुके लिये दो वर माँगे और अपने लिये कुछ

तथान्यदपिमेदेवप्रसादंकुरुषेयदि ॥ पुत्रोविशिष्टोभवतुतदपुत्रस्यमेगुरोः ॥ ७ ॥ तथाचमैत्रींतनयेसकरिष्यतिमेगुरुः ॥ तथासमस्तसत्त्वेषुभवत्वस्यमनोमृदु ॥ ८ ॥ यश्चत्वांस्तोष्यतेऽनेनप्रीतिंयातोऽसिमेऽव्यय ॥ स्तोत्रेणतस्यवरदोभवेथामत्प्रसादितः ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एतच्छ्रुत्वावचस्तस्यतमाहद्विजसत्तमम् ॥ स्तोत्रेणाराधितस्तेनगुरुभक्त्याचपावकः ॥१०॥ ॥ अग्निरुवाच ॥ गुरोरर्थेयतोब्रह्मन्याचितंतेवरद्वयम् ॥ नात्मार्थेनेनमेप्रीतिस्त्वय्यतीवमहामुने ॥ ११ ॥ भविष्यत्येतदखिलंगुरोर्यत्प्रार्थितंत्वया ॥ मैत्रीसमस्तभूतेषुपुत्रश्चास्यभविष्यति ॥ १२ ॥ मन्वन्तराधिपःपुत्रोभौत्योनामभविष्यति ॥ महाबलोमहावीर्योमहाप्राज्ञोगुरुस्तव ॥ ॥ १३ ॥ अनेनयश्चस्तोत्रेणस्तोष्यतेमांसमाहितः ॥ तस्याभिलषितंसर्वंपुण्यंचास्यभविष्यति ॥ १४ ॥ यज्ञेषुपर्वकालेषुतीर्थेज्याहोमकर्मसु ॥ धर्मायपठतामेतन्ममपुष्टिकरंपरम् ॥ १५ ॥

भी नहीं माँगा हे महामुने ! इससे मैं तुम्हारे प्रति और भी अधिक प्रसन्न हुआ हूं ॥ ११ ॥ तुमने गुरुके लिये जो प्रार्थना करी है, वह समस्त ही पूर्ण होगी समस्त प्राणियोंमें उनकी मित्रता होगी और उनके पुत्र भी होगा ॥ १२ ॥ तुम्हारे गुरु महाप्राज्ञ हैं, उनके महाबल, महावीर्य भौत्य नामक मन्वन्तराधिपति पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १३ ॥ और जो पुरुष सावधान होकर इस स्तोत्र द्वारा मेरी स्तुति करेगा, उसकी समस्त कामना पूर्ण होंगी और पुण्यसंचय होगा ॥ १४ ॥ यज्ञमें, पर्वकालमें, तीर्थयज्ञमें और होम कर्ममें धर्मार्थ मेरा, यह पुष्टिकारक स्तोत्र पाठ करनेसे ॥ १५ ॥

तथा इसको एकवार श्रवण मात्र करनेसे दिन और रात्रिका किया समस्त पाप निःसन्देह नष्ट होगा। हे द्विज! यह स्तव मेरा अत्यन्त सन्तोषजनक है ॥ १६ ॥ होमकालके बीत जानेपर वा अनधिकारी मनुष्यके होमादि करनेपर जो दोष होता है इस स्तवके सुननेसे वह तत्काल प्रशमित होता है ॥ १७ ॥ मेरा यह श्रेष्ठ स्तव पूर्णिमा, अमावस्या अथवा अन्य पर्वकालमें सुननेसे मनुष्योंका पाप नष्ट होगा ॥ १८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले हे मुने! दीपककी अग्नि जिस प्रकार सहसा निवृत्त होजाती है, उसी प्रकार भगवान् अग्नि यह कहकर देखते देखते उनके सन्मुखसे अन्तर्धान होगये ॥ १९ ॥ अग्निके अन्तर्धान होनेपर वह शान्ति संतुष्टचित्त और हर्षसे पुलकिततनु होकर

अहोरात्रकृतंपापंश्रुतमेतत्सकृद्द्विजनाशयिष्यत्यसन्दिग्धंममतुष्टिकरंपरम् ॥ १६ ॥ अहोमकालदोषादीनयोग्यैर्गपितत्कृतैः ॥ येदोषास्तानिदंसद्यःशमयिष्यतिसंश्रुतम् ॥१७॥ पौर्णमास्याममावास्यांपर्वस्वन्येषुचस्तवः ॥ ममैषसंश्रुतोमर्त्यैर्भविनापापनाशनः ॥ ॥ १८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वाभगवानग्निःपश्यतस्तस्यवैमुने ॥ बभूवादर्शनःसद्योदीपमथोनिर्वृतोयथा ॥ १९ ॥ सचशान्तिर्गतेवह्नौपरितुष्टेनचेतसा ॥ हर्षरोमाञ्चिततनुःप्रविवेशाश्रमंगुरोः ॥ २० ॥ जाज्वल्यमानंतत्रासौगुरुर्धिष्ण्येहुताशनम् ॥ ददर्श पूर्ववत्प्रापततःसपरमांमुदम् ॥ २१ ॥ एतस्मिन्नन्तरेसोऽपिगुरुस्तस्यमहात्मनः ॥ भ्रातुर्यवीयसोयज्ञादाजगामस्वमाश्रमम् ॥२२॥ तस्याग्रतश्चशिष्योऽसौचक्रेपादाभिवन्दनम्॥गृहीतासनपूजश्चतमाहसतदागुरुः ॥२३॥ वत्सातिहार्दंत्वयिमेतथान्येषुचजन्तुषु ॥ नवेद्मिकिमिदंत्वञ्चेद्वेत्स्येतत्कथाशुभे ॥२४॥ ततःसशान्तिस्तत्सर्वमाचार्य्यायमहामुने॥अग्निनाशादिकंविप्रःसमाचष्टेयथातथम् ॥२५॥

गुरुके आश्रममें गये ॥ २० अनन्तर वह शान्ति गुरुके अग्निकुण्डमें अग्निको पूर्ववत् जाज्वल्यमान देखकर अत्यन्त मुदित हुए ॥ २१ ॥ इसी अवसरमें वह महात्मा शान्तिके गुरुभी कनिष्ठ भ्राताके यज्ञसे अपने आश्रममें लौटकर आये ॥ २२ ॥ तब आगे जाकर उस शिष्यने उनके चरणोंको वंदना करी। तदनन्तर गुरुने पूजा और आसन ग्रहण करके शान्तिसे कहा ॥ २३ ॥ हे वत्स! तुम्हारे प्रति और अन्यान्य प्राणियोंके प्रति मेरा स्नेह उत्पन्न होता है, ऐसा क्यों हुआ, सो मैं नहीं जानता। हे वत्स! तुम यदि जानते हो तो शीघ्र मुझसे कहो ॥ २४ ॥ हे महामुने! तब शान्तिनामक उस विप्रने अग्निनाशादि वह समस्त घटना आचार्य से यथावत् कह सुनाई ॥ २५ ॥

हे महामुने ! उन गुरुने यह समस्त सुनकर स्नेहार्द्र नेत्रोंसे शिष्यको आलिंगन करके उसको साङ्गोपाङ्ग संपूर्ण वेद प्रदान किये ॥ २६ ॥ तदनन्तर उन भूतिके पुत्र भौत्य नामक मनुने जन्म ग्रहण किया था उन विख्यातकर्मा भविष्य मनुके मन्वन्तरमें जो देवता, ऋषि, भूपति और जो इन्द्र होंगे उनका विषय मैं विस्तार सहित वर्णन करता हूं सुनो ॥ २७ ॥ २८ ॥ चाक्षुष, कनिष्ठ, पवित्र, भ्राजिर और धारावृक यह पांच प्रकारके देवगण होंगे ॥ २९ ॥ उस समय संपूर्ण इन्द्रके गुणोंसे युक्त महाबल महावीर्य " शुचि " उन देवताओंके इन्द्र होंगे ॥ ३० ॥ आग्निध्र, अग्निबाहु शुचि, मुक्त, माधव, शक्र और अजित, यह सात जनही उस समय सप्तर्षि होंगे ॥ ३१ ॥ गुरु,

तच्छ्रुत्वासपरिष्वज्यस्नेहार्द्रनयनोगुरुः ॥ शिष्यायप्रददौवेदान्सांगोपाङ्गान्महामुने ॥ २६॥ भौत्योनाममनुस्तस्यपुत्रोभूतेरजायत ॥ तस्यमन्वन्तरेदेवानृषीन्भूपांश्चमेशृणु ॥ २७ ॥ भविष्यस्यभविष्यांस्तुगदतोममविस्तरात् ॥ देवेन्द्रोयश्चभवितातस्यविख्यातकर्मणः ॥ २८ ॥ चाक्षुषाश्चकनिष्ठाश्चपवित्राभ्राजिरास्तथा ॥ धारावृकाश्चेत्येतेवैपञ्चदेवगणाःस्मृताः ॥ २९ ॥ शुचिरिन्द्रस्तदातेपांत्रिदशानांभविष्यति ॥ महाबलोमहावीर्य्यःसर्वैरिन्द्रगुणैर्युतः ॥ ३० ॥ आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्चशुचिर्मुक्तोऽथमाधवः ॥ शुक्रोऽजितश्च सप्तैतेतदासप्तर्षयःस्मृताः ॥ ३१ ॥ गुरुर्गभीरोब्रध्नश्चभरतोऽनुग्रहस्तथा ॥ श्रीमानीचप्रतीरश्चविष्णुःसंक्रन्दनस्तथा ॥ ३२ ॥ तेजस्वीसुबलश्चैवभौत्यस्यैतेमनोःसुताः ॥ चतुर्दशंमयैतत्तेमन्वन्तरमुदाहृतम् ॥ ३३ ॥ श्रुत्वामन्वन्तराणीत्थंक्रमेणमुनिसत्तम ॥ पुण्यमाप्नोतिमनुजस्तथाऽक्षीणांचसन्ततिम् ॥ ३४ ॥ श्रुत्वामन्वतरंपूर्वंधर्ममाप्नोतिमानवः ॥ स्वारोचिषस्यश्रवणात्सर्वकामानवाप्नुते ॥ ३५ ॥

गंभीर, ब्रध्न, भरत, अनुग्रह, श्रीमाणि, प्रतीर, विष्णु, संक्रमण ॥ ३२ ॥ और तेजस्वी सुबल, यही भौत्यमनुके पुत्र होंगे । यह मैंने तुम्हारे निकट चौदह मन्वन्तरोंका वर्णन किया ॥ ३३ ॥ हे मुनिसत्तम ! क्रमानुसार यह संपूर्ण मन्वन्तर श्रवण करनेसे मनुष्यगण पुण्यसंचयमें समर्थ होते हैं और उनका वंश कभी क्षीण नहीं होता ॥ ३४ ॥ मनुष्यगण प्रथम मन्वन्तर (स्वायम्भुव) श्रवण करके धर्मको प्राप्त होते हैं, दूसरा स्वरोचिष मन्वन्तर सुननेसे उनकी संपूर्ण कामना सिद्ध होती हैं ॥ ३५ ॥

तीसरे औत्तममन्वन्तरके सुननेसे धन और चौथे तामसमन्वन्तरके सुननेसे ज्ञानलाभ होता है। पांचवें रैवतमन्वन्तरके सुननेसे बुद्धि और स्वरूपवती स्त्री प्राप्त होती है॥३६॥ छठे चाक्षुषमन्वन्तरके सुननेसे पुरुष आरोग्यता लाभ करते हैं, सातवें वैवस्वत मन्वन्तरके सुननेसे बल और आठवें सूर्य सावर्णिक मन्वन्तरके सुननेसे गुणवान् पुत्र पौत्र लाभ करते हैं ॥ ३७ ॥ मनुष्यगण नवम ब्रह्मसावर्णि मन्वन्तर श्रवण करनेसे माहात्म्य दशवां धर्मसावर्णिक सुननेसे मंगल और ग्यारहवाँ रुद्रसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे सुमति और जय प्राप्त होती है ॥३८॥ हे नरोत्तम! बारहवां दक्षसावर्णिकमन्वन्तर सुननेसे मनुष्य ज्ञातिमें श्रेष्ठ और गुणयुक्त होता है. तेरहवां रौच्यमन्वन्तर सुननेसे शत्रुबलध्वंस करनेमें समर्थ होता है ॥३९॥ चौदहवां भौत्यमन्वन्तर

औत्तमेधनमाप्नोतिज्ञानमाप्नोतितामसे ॥ रैवतेचश्रुतेबुद्धिंसुरूपांविन्दतेस्त्रियम् ॥ ३६ ॥ आरोग्यंचाक्षुषेपुंमांश्रुतेवैवस्वतेबलम् ॥ गुणवत्पुत्रपौत्रांस्तुसूर्य्यसावर्णिकेश्रुते ॥ ३७ ॥ माहात्म्यंब्रह्मसावर्णेधर्मसावर्णिकेशुभाम् ॥ मतिमाप्नोतिमनुजोरुद्रसावर्णिकेजयम् ॥ ३८ ॥ ज्ञातिश्रेष्ठोगुणैर्युक्तोदक्षसावर्णिकेश्रुते ॥ निशातयत्यरिबलंरौच्यंश्रुत्वानरोत्तम ॥ ३९ ॥ देवप्रसादमाप्नोतिभौत्येमन्वन्तरे श्रुते ॥ तथाग्निहोत्रंपुत्रांश्चगुणयुक्तानवाप्नुते॥४०॥ सर्वाण्यनुक्रमाद्यश्चशृणोतिमुनिसत्तम ॥ मन्वन्तराणितस्यापिश्रूयतांफलमुत्तमम् ॥ ॥ ४१ ॥ तत्रदेवानृषीनिन्द्रान्मनूंस्तत्तनयान्नृपान् ॥ श्रुत्वावंशांश्चसर्वेभ्यःपापेभ्योविप्रमुच्यते ॥ ४२ ॥ देवर्षीन्द्रनृपाश्चान्येयेतन्मन्वन्तराधिपाः ॥ तेप्रीयन्तेतथाप्रीताःप्रयच्छन्तिशुभांमतिम् ॥ ४३ ॥ ततःशुभांमतिंप्राप्यकृत्वाकर्मतथाशुभम् ॥ शुभांगतिमवाप्नोतियावदिन्द्राश्चतुर्दश ॥ ४४ ॥ सर्वेस्युर्ऋतवःक्षेम्याःसर्वेसौम्यास्तथाग्रहाः ॥ भवन्त्यसंशयंश्रुत्वाक्रमान्मन्वन्तरस्थितिम् ॥४५॥

सुननेसे देवप्रसाद लाभ होता है और अग्निहोत्र फल तथा गुणयुक्त पुत्र प्राप्त हो सकता है ॥४०॥ हे मुनिसत्तम ! जो मनुष्य स्वायम्भु मन्वन्तरसे क्रमानुसार सब मन्वन्तर सुनते हैं, उनकी उत्तम फल प्राप्तिका विषय सुनो ॥ ४१ ॥ हे विप्र ! ! उन उन मन्वन्तरके देवता समस्त ऋषि मनुके नृपति पुत्रगण और उनके वंशका वृत्तान्त सुननेपर मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूट जाता है॥४२॥और देवता, ऋषि, इन्द्र, नृपगण तथा अपर जो उस मन्वन्तरके अधिपति हैं, वह सबही प्रसन्न होते हैं और वह प्रसन्न होनेपर सुमति देते हैं॥४३॥तदनन्तर सुमतिको प्राप्त होकर शुभकर्म करनेसे जबतक चौदह इंद्र रहेंगे, तबतक मनुष्य शुभमतिको प्राप्त होंगे॥४४॥क्रमानुसार मन्वन्तरोंकी स्थिति सुननेसे समस्त ऋतु क्षेमकारी होती हैं

और समस्तग्रह सौम्य होते हैं,इसमें संदेह नहीं॥४५॥इति श्रीमार्कंडेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः॥९७॥
क्रौष्टुकिने कहा--हे भगवन् ! आपने मन्वन्तरोंकी स्थितिका विषय सम्यक्प्रकारसे कहा है और मैंने भी क्रमशःवह विषय आपके निकटसे विस्तार सहित सुना है॥१॥हे द्विजसत्तम!ब्रह्माजीसे आरंभ करके मैं राजाओंका संपूर्ण वंश सुननेकी इच्छा करताहूं।हे भगवन्!वह मुझसे भलीभाँति वर्णन कीजिये॥२॥मार्कण्डेयजी बोले--हे वत्स!तुम जगत्मूल प्रजापति ब्रह्माजीसे आरंभ करके संपूर्ण राजाओंके जन्मका वृत्तान्त और चरित्र सुनो॥३॥ अनेक यज्ञकारी रणविजयी, धर्मज्ञ शतशत राजाओंके द्वारा यह वंश अलंकृत है॥४॥इन महात्मा राजाओंकी उत्पत्तिका विषय और सब चरित्र

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेचतुर्दशमन्वन्तरवर्णनसमाप्तिर्नामसप्तनवतितमोऽध्यायः ॥ ९७ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथिताम्यक्त्वयामन्वन्तरस्थितिः ॥ क्रमाद्विस्तरतस्त्वत्तोमयाचैवावधारिता ॥ १ ॥ ब्रह्माद्यमखिलंवंशंभूभुजांद्विजसत्तम ॥ श्रोतुंममेच्छतः सम्यग्भगवन्प्रब्रवीहिमे ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ शृणुवत्सनृपाणांत्वमशेषाणांसमुद्भवम् ॥ चरितंचजगन्मूलमादौकृत्वा प्रजापतिम् ॥ ३ ॥ अयंहिवंशोभूपालैरनेकक्रतुकर्तृभिः ॥ संग्रामजिद्भिर्धर्मज्ञैःशतसंख्यैरलंकृतः ॥ ४ ॥ श्रुत्वाचैषांनरेन्द्राणांचरितानिमहात्मनाम् ॥ उत्पत्तयश्चपुरुषःसर्वपापैःप्रमुच्यते ॥ ५ ॥ मनुर्यत्रतथेक्ष्वाकुरनरण्योभगीरथः ॥ अन्येचशतशोभूपाःसम्यक्पालितभूमयः ॥ ६ ॥ धर्मज्ञायज्विनःशूराःपरमार्थार्थवेदिनः ॥ श्रुतेतस्मिन्पुमान्वंशेपापौघाद्विप्रमुच्यते ॥ ७ ॥ तदयंश्रूयतांवंशोयतोवंशाः सहस्रशः ॥ भिद्यन्तेमनुजेन्द्राणामवरोहायथावटात् ॥ ८ ॥ ब्रह्माप्रजापतिःपूर्वंसिसृक्षुर्विविधाःप्रजाः ॥ अंगुष्ठाद्दक्षिणाद्दक्षमसृजद्द्विजसत्तम ॥ ९ ॥

सुनकर पुरुष समस्त पापोंसे छूटजाते हैं॥५॥जिस वंशमें मनु, इक्ष्वाकु, अनरण्य, भगीरथ और अन्याय शतशत धर्मज्ञ, यज्ञकारी शूर और परम ज्ञानी भूपालगणोंने जन्म ग्रहण करके सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन किया था,उस वंशका विषय सुननेपर पुरुष संपूर्ण पापसमूहसे छूट जाता है ॥ ६ ॥ ७ ॥ वटवृक्षसे अंकुर उत्पन्न होकर जिस प्रकार वह स्वतन्त्र वटवृक्षरूपमें परिणत होता है, उसी प्रकार इस वंशसे मनुजेन्द्रगणोंके सहस्र सहस्र वंश उत्पन्न हुए हैं, सो सुनो ॥ ८ ॥ हे द्विज सत्तम ! पूर्वकालमें प्रजापति ब्रह्माजीने विविध प्रजा उत्पन्न करनेकी

इच्छा करके दहिने अँगूठेसे दक्षको उत्पन्न किया था ॥ ९ ॥ जगत्प्रभवकारा प्रभु भगवान् ब्रह्माजीने जगत्की सृष्टिके लिये बायें अँगूठेसे उस दक्षकी पत्नीको उत्पन्न किया ॥१०॥ उस दक्षकी अदिति नामक सुंदरी कन्या उत्पन्न हुई थी। उसके गर्भ और कश्यपके औरससे मार्तण्ड-देवका जन्म हुआ ॥ ११ ॥ हे द्विज ! जो ब्रह्मस्वरूप अशेष जगतको वर देनेवाले हैं, सृष्टि, स्थिति, प्रलय कर्ममें जो आदि, मध्य, अन्तर-स्वरूप हैं॥१२॥जिनसे यह संपूर्ण जगत् उत्पन्न हुआ है, जिनमें यह संपूर्ण जगत् अवस्थितहै, देवासुर और मनुष्य युक्त यह जगत जिनका स्वरूप है ॥ १३ ॥ जो सर्वभूतस्वरूप है, जो सर्वात्मा है और जो सनातन परमात्मा हैं उन्हीं भास्वान् सूर्यने पूर्वमें अदितिके द्वारा आराधित होकर

वामाङ्गुष्ठाच्चतत्पत्नींजगत्सूतिकरोविभुः ॥ससर्जभगवान्ब्रह्माजगतांकारणंपरम् ॥१०॥ अदितिस्तस्यदक्षस्यकन्याजायतशोभना ॥ तस्यांचकश्यपोदेवंमार्तण्डमसजीजनत् ॥११॥ ब्रह्मास्वरूपंजगतामशेषाणांवरप्रदम् ॥ आदिमध्यान्तभूतंचसर्गस्थित्यंतकर्मसु॥१२॥ यतोऽखिलमिदंयस्मिन्नशेषंचस्थितंद्विज ॥ यत्स्वरूपंजगच्चेदंसदेवासुरमानुषम् ॥ १३ ॥ यःसर्वभूतःसर्वात्मापरमात्मासनातनः ॥ आदित्यामभवद्भास्वान्पूर्वमाराधितस्तया ॥ १४ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवञ्छ्रोतुमिच्छामियत्स्वरूपंविवस्वतः ॥ यत्कारणंचादिदेवः सोऽभवत्कश्यपात्मजः ॥ १५ ॥ यथाचाराधितोदेव्यासोऽदित्याकश्यपेनच ॥ आराधितेनचोक्तंयत्तेनदेवेनभास्वता ॥ १६ ॥ प्रभावंचावतीर्णस्ययथावन्मुनिसत्तम ॥ भवताकथितंसम्यक्छ्रोतुमिच्छाम्यशेषतः ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ विस्पष्टापरमाविद्याज्योतिर्भाशाश्वतीस्फुटा ॥ कैवल्यंज्ञानमाविर्भूःप्राकाम्यंसंविदेवच ॥१८॥

उसके गर्भसे जन्म ग्रहण किया ॥१४॥क्रौष्टुकिने कहा हे भगवान् ! विवस्वान् सूर्यका जो स्वरूपहै और जिस कारणसे वह आदिदेव कश्यपके पुत्र हुए यह सुननेकी इच्छा करताहूं ॥ १५ ॥ तथा वह जिस प्रकार कश्यप और देविअदितिके द्वारा आराधित हुएथे और आराधित होकर उन भास्करदेवने जो कहा था ॥१६॥ और गृहीतजन्मा दिवाकरका प्रभाव इससे पहिले आपने जिसप्रकार कहा है हे मुनिसत्तम ! वहभी सब भलीभाँति विस्तार सहित सुननेकी अभिलाषा है ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--विस्पष्टा, परमा, विद्या, ज्योतिः, शाश्वती और दीप्ति, कैवल्य, ज्ञान, आविर्भाव, प्राकाम्य, संवित् ॥ १८ ॥

बोध, अवगति, स्मृति और विज्ञान, यह समस्तही सूर्यमूर्त्तिका स्वरूप है हे महाभाग ! आपने जो पूछा कि, "रविका किस प्रकार आविर्भाव हुआ था ?" वह मैं विस्तारपूर्वक कहता हूं, सुनो ॥ २० ॥ सृष्टिके पहिले जब कुछ भी नहीं था, तब इस जगत्के प्रभाहीन, और प्रकाश हीन होकर भली भाँति अंधकारसे ढक जानेपर परम कारण, क्षयरहित एक बड़ा अंडा उत्पन्न हुआ था ॥ २१ ॥ उसके मध्यमें भगवान् प्रपितामह, पद्मयोनि स्थित थे, जो जगत्के उत्पन्नकर्त्ता हैं, उन्हीं प्रभु ब्रह्माजीने स्वयं इस अंडेको भेदन किया ॥ २२ ॥ हे महामुने ! ब्रह्माजीके मुखसे उस समय "ॐ" यह महाशब्द हुआ था।इस ओंकारसे प्रथम 'भू' फिर 'भुवः' और इसके पीछे 'स्वः'

बोधश्चावगतिश्चैवस्मृतिर्विज्ञानमेवच ॥ इत्येतानीहरूपाणितस्यारूपस्यभास्वतः ॥ १९ ॥ श्रूयतांचमहाभागविस्तराद्वदतोमम ॥ यत्पृष्टवानसिरवेराविर्भावोयथाभवत् ॥ २० ॥ निष्प्रभेऽस्मिन्निरालोकेसर्वतस्तमसावृते ॥ बृहदण्डमभूदेकमक्षरंकारणंपरम् ॥ ॥ २१ ॥ तद्भिभेदतदन्तःस्थोभगवान्प्रपितामहः ॥ पद्मयोनिःस्वयंब्रह्मायःस्रष्टाजगतांप्रभुः ॥ २२ ॥ तन्मुखादोमितिमहानभूच्छब्दोमहामुने ॥ ततोभूस्तुभुवस्तस्मात्तनश्चस्वरनन्तरम् ॥ २३ ॥ एताव्याहृतयस्तिस्रःस्वरूपंतद्विवस्वतः ॥ ओमित्यस्मात्स्वरूपात्तुसूक्ष्मरूपंरवेःपरम् ॥ २४ ॥ ततोमहरितिस्थूलंजनंस्थूलतरंततः ॥ ततस्तपस्ततःसत्यमितिमूर्तानिसप्तधा ॥ २५ ॥ स्थितानितस्यरूपाणिभवन्तिनभवन्तिच ॥ स्वभावभावयोर्भावंयतोगच्छन्तिसंक्षयम् ॥ २६ ॥ आद्यन्तंयत्परंसूक्ष्ममरूपंपरमंस्थितम् ॥ ओमित्युक्तंमयाविप्रतत्परंब्रह्मतद्वपुः ॥ २७ ॥

उत्पन्न हुआ ॥२३॥ यह तीन प्रकारकी व्याहृति ही भगवान् सूर्यका स्वरूप है । इस 'ॐ' स्वरूपसे ही रविका परम सूक्ष्मरूप हुआ है ॥२४॥ फिर उससे स्थूलरूप 'महः' इसके पीछे स्थूलरूप 'जन' फिर उसकी अपेक्षा भी स्थूल रूप 'तपः' और तदनन्तर उसकी अपेक्षा भी स्थूलरूप 'सत्य' उत्पन्न हुआ । सूर्यका यह समस्त रूप मूर्त्त अर्थात् स्थूल है ओंकारसे विवस्वानके स्थूल सूक्ष्म भेदमें यह सातरूप उत्पन्न हुए हैं ॥ २५ ॥ भगवान् भास्करके यह समस्त रूप होनेपर भी कभी प्रकाशित होते हैं और कभी अप्रकाशित होते हैं, क्योंकि उनके स्वभाव और भावका अस्तित्व भी संशयको प्राप्त होता है ॥ २६ ॥ हे विप्र ! इस विश्वके आदि और अन्तमें जो रूपविहीन परम सूक्ष्म

परमात्मा स्थित हैं, मैंने जो ॐकार कहा, सो ॐकार वही है । हे विप्र ! वह परब्रह्म ही मार्त्तण्डदेवका शरीर है ॥ २७ ॥ इति श्रीमा०पु० भाषाटीकायां वंशानुकीर्तननामाष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥ मार्कण्डेयजी बोले--हेमुने ! जब वह अण्डा विभिन्न हुआ अर्थात फटा और उसमेंसे अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजी निकले, तब उनके पहिले मुखसे ऋग्वेद उत्पन्न हुआ ॥१॥ वह जपापुष्पके समान, तेजोरूपा अन्त संहत और परस्पर विभिन्न रजोरूपधारी था॥२॥उनके दक्षिण मुखसे कंचनके समान वर्णयुक्त असंहति धारण करनेवाला समस्त यजुः अनिरु-द्धभावसे बहिर्गत हुआ अर्थात् निकला॥३॥अनन्तर परमेष्ठी ब्रह्माजीकी पश्चिम दिशामें जो मुख है, उससे समस्त साम आविर्भूत हुआ।वह समस्त साम

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुकीर्त्तननामाष्टनवतितमोध्यायः ॥ ९८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्मादण्डाद्विभिन्नात्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ ऋचोबभूवुःप्रथमंप्रथमाद्वदनान्मुने ॥ १ ॥ जपापुष्पनिभाःसद्यस्तेजोरूपाह्यसंहताः ॥ पृथक्पृथग्विभिन्नाश्चरजोरूपवहास्ततः ॥ २ ॥ यजूंषिदक्षिणाद्वक्त्रादनिरुद्धानिकानिचित् ॥ यादृग्वर्णतथावर्णान्यसंहतिधराणिच ॥ ३ ॥ पश्चिमंयद्विभोर्वक्त्रंब्रह्मणःपरमेष्ठिनः ॥ आविर्भूतानिसामानितत्तच्छन्दांसितांसितान्यथ ॥ ४ ॥ अथर्वणामशेषंचभृङ्गाञ्जनचयप्रभम् ॥ यावद्घोरस्वरूपंतदाभिचारिकशान्तिकम् ॥ ५ ॥ उत्तराप्रकटीभूतंवदनात्तस्यवेधसः ॥ सुखसत्त्वतमःप्रायंसौम्यासौम्यस्वरूपवत् ॥ ६ ॥ ऋचोरजोगुणाःसत्त्वंयजुषांचगुणाभुने ॥ तमोगुणानिसामानितमःसत्त्वमथर्वसु ॥ ७ ॥ एतानिज्वलमानानितेजसाऽप्रतिमेनवै ॥ पृथक्पृथगवस्थानंभाञ्जिपूर्वमिवाभवन् ॥ ८ ॥ ततस्तदाद्यंयत्तेजओमित्युक्ताभिक्षब्दचते ॥ तस्यस्वभावाद्यत्तेजस्तत्समावृत्यसंस्थितम् ॥ ९ ॥

छन्दःसंयुक्तथा॥४॥उन ब्रह्माजीके उत्तर मुखसे इसी प्रकार मारण उच्चाटनादि आभिचारिक और शांतिकारक, घोररूप भौंरे और अंजनके समूहके समान कृष्णवर्ण प्रभायुक्त सुख, सत्व और तमो बहुल सौम्य और असौम्यरूपी अशेष अथर्व प्रगट हुआ था॥५॥६॥ हे मुने ! समस्त ऋक् रजोगुण युक्त समस्त यजुः सत्वगुणयुक्त; समस्त साम तमोगुणयुक्त, और समस्त अथर्व सत्व तथा तमोगुणात्मक है ॥ ७ ॥ इन सबनेही अप्रतिम तेज द्वारा उज्ज्वल होकर पूर्ववत् पृथक् पृथक् भावसे अवस्थान किया ॥ ८ ॥ तदनंतर प्रथमका वह जो तेज है, जिसको 'ॐ' कहा गया है, उसके

स्वभावसे उत्पन्न हुआ जो तेज है उसको वह आवृत करके अवस्थित हुआ ॥ ९ ॥ हे महामुने ! इसी प्रकार उसने साममय तेज और यजुर्मय तेजको भी आवृत किया, इस भाँतिसे समस्त तेजही उस ओंकाररूप परमतेजको आश्रय करके एकताको प्राप्त हुए ॥ १० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनन्तर ऋक् इत्यादि तीनों वेदमें शान्तिक, पौष्टिक और आभिचारिक यह त्रिविध अथर्व वेद लीन हुआ ॥ ११ ॥ हे विप्रर्षे । फिर अंधकारका नाश होनेसे यह विश्व तत्काल निर्मल हुआ, इससे उसका ऊर्द्ध्व, अध और तिर्यक् (पार्श्व) देश प्रकाशित हुआ ॥ १२ ॥ हे ब्रह्मन् ! इसके उपरान्त वह छान्दस (वैदिक) उत्तम तेज मण्डलीभूत होकर फिर श्रेष्ठ तेज ओंकारके सहित एकताको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ इस प्रकार

यथायजुर्मयंतेजस्तद्वत्साम्नांमहामुने ॥ एकत्वमुपयातानिपरेतेजसिसंश्रये ॥ १० ॥ शान्तिकंपौष्टिकंचैवतथाचैवाभिचारिकम् ॥ ऋगादिषुलयंब्रह्मंस्त्रितयंत्रिष्वथागमत् ॥११॥ ततोविश्वमिदंसद्यस्तमोनाशात्सुनिर्मलम् ॥ विभावनीयंविप्रर्षेतिर्य्यगूर्ध्वमधस्तथा ॥ ॥ १२ ॥ ततस्तन्मण्डलीभूतंछान्दसंतेजउत्तमम् ॥ परेणतेजसाब्रह्मन्नेकत्वमुपगम्यतत ॥ १३ ॥ आदित्यसंज्ञामगमदादावेवयतोऽभवत् ॥ विश्वस्यास्यमहाभागकारणञ्चाव्ययात्मकम् ॥ १४ ॥ प्रातर्म्मध्यन्दिनेचैवतथाचैवापराह्णिके ॥ त्रयीतपतिमाकालेऋग्यजुःसामसंज्ञिता ॥ १५ ॥ ऋचस्तपंतिपूर्वाह्णेमध्याह्नेचयजूंषिवै ॥ सामानिचापराह्णेवैतपन्तिमुनिसत्तम ॥ १६ ॥ शान्तिकमृक्षुपूर्वाह्णेयजुःष्वेवचपौष्टिकम् ॥ विन्यस्तंसाम्निसायाह्नेह्याभिचारिकमन्ततः ॥१७॥ मध्यन्दिनेऽपराह्णेचसमेचैवाभिचारिकम् ॥ अपराह्णेपितृणान्तुसाम्नाकार्य्याणितानिवै ॥ १८ ॥

यह तेज आदिमें (प्रथममें) उत्पन्न हुआ । इस कारण आदित्यसंज्ञाको प्राप्त हुआ । हे महभाग ! यह इस विश्वका अव्ययात्म कारण है॥ १४ ॥ ऋक्, यजु और सामनाम्नी त्रयीही प्रातःकाल, मध्याह्नकाल और अपराह्नकालमें तपती है ॥ १५ ॥ हे मुनिसत्तम ! तिनमें प्रातःसमय ऋक् मध्याह्नमें यजुः और अपराह्नमें साम तपता है ॥ १६ ॥ पूर्वाह्नके समय ऋक्में शान्तिकर्म मध्याह्नके समय यजुःमें पौष्टिक और सायाह्नके समय साममंत्रमें समस्त अभिचारिक कार्य विन्यस्त हैं ॥ १७ ॥ मध्याह्न और अपराह्न दोनों कालमें आभिचारिक कार्य करे और केवल अपराह्नमें ही सामद्वारा पितरोंका कार्य करना चाहिये ॥ १८ ॥

सृष्टिकालमें ब्रह्मा ऋङ्मय, स्थितिकालमें विष्णु यजुर्मय और संहार कालमें रुद्र साममय कहे गये हैं; इसी कारण अमराह्नको अशुचि कहा है ॥ १९ ॥ अतएव उल्लिखित प्रकारसे वेदात्मा वेदसंस्थित और वेद विद्यामय भगवान् भास्वान् परमपुरुष कहे गये हैं ॥ २० ॥ सृष्टि स्थिति प्रलयकारी यह शाश्वत आदित्य सत्व रज और तमोगुणको आश्रमकरके ब्रह्मा, विष्णु और शिवनामको प्राप्त होते हैं ॥ २१ ॥ सर्वदा देवताओंके द्वारा पूज्य वेदमूर्ति निराकार और संपूर्ण प्राणियोंके मूर्ति रूपमें मूर्तिमान् ज्योति स्वरूपमें आदिपुरुष वह भगवान् आदित्य विश्वके आश्रयस्वरूप अवेद्यधर्मा, वेदान्तगम्य और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर हैं ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्ड

विसृष्टौऋङ्मयोब्रह्मास्थितौविष्णुर्यजुर्मयः ॥ रुद्रःसाममयोन्तेचतस्मात्तस्याशुचिध्वनिः ॥ १९ ॥ तदेवंभगवान्भास्वान्वेदात्मावेदसंस्थितः ॥ वेदविद्यात्मकश्चैवपरःपुरुषउच्यते ॥ २० ॥ सर्गस्थित्यन्तहेतुश्चरजःसत्वादिकान्गुणान् ॥ आश्रित्य ब्रह्मविष्ण्वादिसंज्ञामभ्येतिशाश्वतः ॥ २१ ॥ देवैःसदेड्यःसतुवेदमूर्तिरमूर्तिराद्योऽखिलमर्त्यमूर्तिः ॥ विश्वाश्रयंज्योतिरवेद्यधर्मावेदान्तगम्यःपरमःपरेशः ॥ ॥ २२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मार्त्तण्डमाहात्म्येनवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ मार्कण्ड उवाच ॥ ॥ ते स्यसन्ताप्यमानेतुतेजसोर्द्धमधस्तथा ॥ सिसृक्षुश्चिन्तयामासपद्मयोनिःपितामहः ॥ १ ॥ सृष्टिःकृतापिमेनाशंप्रयास्यत्यभितेजसा ॥ भांस्वतःसृष्टिसंहारस्थितिहेतोर्महात्मनः ॥ २ ॥ अप्राणाःप्राणिनःसर्वआपःशुष्यन्तितेजसा ॥ नचाम्भसाविना सृष्टिर्विश्वस्यास्यभविष्यति ॥ ३ ॥ इतिसञ्चिन्त्यभगवान्स्तोत्रंभगवनोरवेः ॥ चकारतन्मयोभूत्वाब्रह्मलोकपितामहः ॥ ४ ॥ ब्रह्मोवाच ॥ नमस्येयन्मयंसर्वमेतत्सर्वमयश्चयः ॥ विश्वमूर्तिःपरंज्योतिर्यत्तद्ध्यायन्तियोगिनः ॥ ५ ॥

माहात्म्यं नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥ ९९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तदनन्तर आदित्यके तेजद्वारा ऊर्द्ध्व और अधः संतापित होनेपर सृष्टिकी कामना करनेवाले पद्मयोनि पितामह चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ कि, मेरे सृष्टि करनेपर भी सृष्टि स्थिति संहारकारी महात्मा भास्करके तीव्र तेजसे वह समस्तही नष्ट होगी ॥२॥ उनके तेजसे समस्त प्राणी प्राणहीन और जल शुष्क होता है, फिर जलके विना इस विश्वकी सृष्टि भी नहीं होगी ॥ ३ ॥ लोक पितामह ब्रह्मा इस प्रकार चिन्ता करके तन्मय हो भगवान् रविकी स्तुति करने लगे ॥ ४ ॥ ब्रह्माजी बोले--

जो संपूर्ण विश्वके आत्मस्वरूप हैं और जो इस विश्वरूपमें ही वर्त्तमान हैं, विश्वही जिनकी मूर्त्ति है और योगीगण जिस अनिन्द्रियगाह्य परम ज्योतिका ध्यान करते हैं मैं उनको नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ जो अचिन्त्यशक्ति ऋग्वेदमय, जो यजुर्वेदके निधान (आधार) जो सामवेदकी उत्पत्तिके कारण, जो स्थूलता प्रयुक्त त्रयीमय, जो अर्द्धमात्रा स्वरूप एवं जो परम ब्रह्मस्वरूप और गुणातीत हैं ॥ ६ ॥ पहिले उन्हीं सर्व कारणरूपी परमपूज्य, परमवेद्य अवह्निरूप परमज्योति, देवात्मता हेतु स्थूलरूपी और श्रेष्ठसे भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् भास्वान्को नमस्कार करता हूं ॥ ७ ॥ हे देव ! तुम्हारी सक्तिही आद्या है क्योंकि मैं उसीके द्वारा प्रेरित होकर जल, मही, पवन और अग्निरूपा देवतादि

यऋङ्मयोयोयजुषांनिधानंसाम्नांचयोयोनिरचिन्त्यशक्तिः ॥ त्रयीमयःस्थूलतयार्धमात्रापरस्वरूपोगुणपारयोग्यः ॥ ६ ॥ त्वांसर्वहेतुंपरमंचवेद्यमाद्यंपरंज्योतिरवेद्यरूपम् ॥ स्थूलञ्चदेवात्मतयानमस्येभास्वन्तमाद्यंपरमंपरेभ्यः ॥ ७ ॥ सृष्टिंकरोमियदहंतवशक्तिराद्यातत्प्रेरितोजलमहीपवनाग्निरूपाम् ॥ तद्देवतादिविषयांप्रणवाद्यशेषांनात्मेच्छयास्थितिलयावपितद्वदेव ॥ ८ ॥ वह्निस्त्वमेवजलशोषणतःपृथिव्याःसृष्टिंकरोषिजगतांचतथाद्यपाकम् ॥ व्यापीत्वमेवभगवन्गगनस्वरूपंत्वंपञ्चधाजगदिदंपरिपासिविश्वम् ॥ ९ ॥ यज्ञैर्यजन्तिपरमात्मविदोभवन्तंविष्णुस्वरूपमखिलेष्टिमयंविवस्वन् ॥ ध्यायन्तिचापियतयोनियतात्मचित्ताःसर्वेश्वरंपरममात्मविमुक्तिकामः ॥ १० ॥ नमस्तेदेवरूपाययज्ञरूपायतेनमः ॥ परब्रह्मस्वरूपायचिन्त्यमानाययोगिभिः ॥ ११ ॥ उपसंहरतेजोयत्तेजसःसंहतिस्तव ॥ सृष्टेर्विघातायविभोसृष्टौचाहंसमुद्यतः ॥ १२ ॥

विषया और प्रणवादि अशेष सृष्टि करता हूं । इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी अपनी इच्छासे नहीं करता, तुम्हारी शक्तिके द्वारा प्रेरित होकर ही करता हूं ॥८॥ हे भगवन् ! तुम्हीं वह्निरूपी हो । जब तुम पृथ्वीका जल सोखते हो तब मैं जगत्की सृष्टि और प्रथम पाक संपन्न करता हूं तुम्हीं सर्वव्यापक गगनस्वरूप हो, तुम्हीं पंचरूप इस विश्वकी रक्षा करते हो ॥ ९ ॥ हे विवस्वन् ! परमात्मविद्गण अखिल यज्ञमय विष्णुरूपमें तुम्हारी यज्ञद्वारा अर्चना करते हैं,आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रिय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ध्यान करते हैं ॥१०॥तुम्हीं देवरूप हो,तुमको प्रणाम करता हूं,तुम्हीं यज्ञरूप और तुम्हीं योगीजनोंके चिन्तनीय परब्रह्मस्वरूप हो,तुमको प्रणाम करता हूं ॥११॥ हे विभो !

वह एकाग्रचित्त नियताहार और श्रेष्ठ नियम परायण हो गगनमें स्थित तेजोराशि स्वरूप दिवाकरकी स्तुति करने लगी ॥ १७ ॥ अदितिने कहा—हे शाश्वत ! तुम सुन्दर सूक्ष्म सौवर्णतनुधारी हो तुम्हीं ज्योतिःस्वरूप हो, ज्योतिष्कगणोंमें तुम्हीं प्रधान और, ज्योतिके आधार हो तुमको नमस्कार है ॥ १८ ॥ हे गोपते ! जगत्का उपकार करनेके लिये जल ग्रहण करनेके समय तुम्हारी जो वह मूर्त्ति तीव्र होती है, उसको मैं प्रणाम करती हूं ॥ १९ ॥ तुम आठ मासकाल इन्दुमय रस ग्रहण करनेके लिये जो अत्यन्त तीव्रमूर्त्ति ग्रहण करते हो मैं उस मूर्त्तिको प्रणाम करता हूं ॥ २० ॥ हे भगवन् ! वह समस्त रस वर्षणार्थ परित्याग करनेके समय तुम जो तृप्तिकारिणी मेघरूप मूर्त्ति ग्रहण करते हो तुम्हारी

एकाग्रानियताहारापरंनियममास्थिता ॥ तुष्टावतेजसांराशिंगगनस्थंदिवाकरम् ॥ १७ ॥ अदितिरुवाच ॥ नमस्तुभ्यंपरांसूक्ष्मा सौवर्णींबिभ्रतेतनुम् ॥ धामधामवतामीशधाम्नामाधारशाश्वत ॥ १८ ॥ जगतामुपकारायतथापस्तवगोपते ॥ आददानस्यय द्रूपंतीव्रंतस्मैनमाम्यहम् ॥ १९ ॥ ग्रहीतुमष्टमासेनकालेनेन्दुमयंरसम् ॥ बिभ्रतस्तवयद्रूपमतितीव्रंनतास्मितत् ॥ २० ॥ तमेवमुञ्चतःसर्वंरसंवैवर्षणाययत् ॥ रूपमाप्यायकंभास्वंस्तस्मैमेघायतेनमः ॥२१॥ वार्युत्सर्गविनिष्पन्नमशेषञ्चौषधीगणम् ॥ पाका यतवयद्रूपंभास्करंतंनमाम्यहम् ॥ २२ ॥ यच्चरूपंनवातीतंहिमोत्सर्गादिशीतलम् ॥ तत्कालसस्यपोषायतरणेतस्यतेनमः ॥ २३ ॥ नातितीव्रंचयद्रूपंनातिशीतंचयत्तव ॥ वसन्तर्त्तौरवेसौम्यंतस्मैदेवनमोनमः ॥ २४ ॥ आप्यायनमशेषाणांदेवानांचतथापरम् ॥ पितृ णांचनमस्तस्मैसस्यानांपाकहेतवे ॥ २५ ॥ यद्रूपंजीवनायैकंवीरुधाममृतात्मकम् ॥ पीयतेदेवपितृभिस्तस्मैसोमात्मनेनमः॥ २६ ॥

उस मेघमूर्त्तिको प्रणाम करती हूँ ॥ २१ ॥ जलवर्षण द्वारा उत्पन्न हुई अशेष औषधियोंको पकानेके लिये तुम अन्य जिस प्रकारकी मूर्ति धारण करते हो तुम्हारी उस भास्कर मूर्तिको प्रणामकरती हूं ॥२२॥ हे देव तरणे ! हेमन्तकालमें शस्यपोषणके लिये तुम्हारा जो हिमवर्षणादि द्वारा शीतलरूप होता है तुम्हारी उस मूर्तिको प्रणाम करती हूं ॥ २३ ॥ हे रवे ! वसंत ऋतुमें तुम्हारी जो मूर्त्ति अत्यन्त तीव्र नहीं है और अत्यन्त शीतलभी नहीं है,तथा सौम्य है हे देव !तुम्हारी उस मूर्तिको नमस्कार करती हूं ॥२४॥ तुम्हारा जो रूप अशेष देवता और पितरोंको परम तृप्त करनेवाला तथा शस्यको पकानेवाला है,तुम्हारे उस रूपको नमस्कार करती हूं॥२५॥तुम्हारा जो अमृतमय रूप समस्त गुल्मलताके जीवनका

कारण है और अमृतमय होनेसेही जिसको देवता और पितर पान करते हैं, उस सोम स्वरूप तुमको नमस्कार है ॥२६॥ अग्नि और सोम, यह दो अर्करूप मिलित होनेसे तुम्हारा जो विश्वमयरूप हुआ है उन गुणात्माको नमस्कार करती हूं ॥ २७ ॥ हे विभावसो ! ऋक्,यजु, और साम इन तीन वेदके मिलित होनेसे तुम्हारा जो त्रयी नामक रूप विश्वमें तपता है, तुम्हारे उस रूपको नमस्कार है ॥ २८ ॥ उसकी अपेक्षाभी तुम्हारा जो श्रेष्ठ सूक्ष्म, अनन्त और विमलरूप ओंकार कहा गया है, तुम्हारे उस नित्यरूपको नमस्कार है ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे मुने ! वह देवी अदिति इस प्रकार नियमयुक्त और निराहार हो विवस्वान् सूर्यका आराधन करनेकी इच्छासे दिनरात इस भाँति स्तुति करने लगी॥३०॥ हे द्विजोत्तम ! अनन्तर बहुतकाल पीछे भगवान् तपन आकाशमेंही इस दाक्षायणीके प्रत्यक्ष गोचर हुए ॥ ३१ ॥ जो दीप्तिशालिनी अंशुमाला

आप्यायदाहरूपाभ्यांरूपंविश्वमयन्तव ॥ समेतमग्नीषोमाभ्यांनमस्तस्मैगुणात्मने ॥ २७ ॥ यद्रूपमृग्यजुःसाम्नामैक्येनतपतेतव ॥
विश्वमेतत्त्रयीसंज्ञंनमस्तमैविभावसो ॥ २८ ॥ यत्तुतस्मात्परंरूपमोमित्युक्ताभिशब्दितम् ॥ अस्थूलानन्तममलंनमस्तस्मैसदा
त्मने ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एवंसानियतादेवीचक्रेस्तोत्रमहर्निशम् ॥ निराहाराविवस्वन्तमारिराधयिषुर्मुने ॥ ३० ॥
ततःकालेनमहताभगवांस्तपनोऽम्बरे ॥ प्रत्यक्षतामगादस्यादाक्षायण्याद्विजोत्तम ॥ ३१ ॥ साददर्शमहाकूटंतेजसोऽम्बरसंश्रितम् ॥
जगादमेप्रसीदेतिनत्वांपश्यामिगोपते ॥ ३२ ॥ यथादृष्टवतीपूर्वमम्बरस्थंसुदुर्दृशम् ॥ निराहाराविवस्वन्तंतपन्तंतदनन्तरम् ॥ ३३ ॥
संघातंतेजसांनद्धदिहपश्यामिभूतले ॥ प्रसादंकुरुपश्येयंयद्रूपन्तेदिवाकर ॥ भक्तानुकम्पकविभोभक्ताहंपाहिमेसुतान् ॥ ३४ ॥

द्वारा आकाशविवरमें दुर्दर्श थे, उन्हीं तेजोराशिरूप रविको अदितिने धरातलमें स्थिति करते देखा। उनको इस प्रकार देखकर वह देवी अत्यन्त भयको प्राप्त हुई और कहने लगी हे गोपते ! मेरे ऊपर प्रसन्न होओ, मैं तुमको नहीं देख सक्ती ॥ ३२ ॥ पहिले निराहार होकर आकाशस्थित दुर्दर्श सूर्यको जिस प्रकार ताप प्रदान करते हुए देखा था, उनके पीछे अब इस भूतलमें भी उसी प्रकार तेजः समूहकी मूर्ति देखती हूं। हे दिवाकर ! मुझपर प्रसन्न हूजिये जिससे मैं तुम्हारा प्रकृतरूप देखूं। हे विभो ! तुम भक्तोंपर कृपा करते हो मैं तुम्हारा भक्त हूं; मेरे पुत्रोंकी रक्षा कीजिये ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

तुम ब्रह्माके रूपसे इस विश्वको उत्पन्न करते हो, तुम्हीं स्थिति करनेमें प्रवृत्त होकर पालन करते हो और प्रलयके समय अखिलतत्त्व तुममें ही लयको प्राप्त होता है अतएव सर्व लोकमें तुम्हारे अतिरिक्त अन्य गति नहीं है ॥ ३५ ॥ तुम्हीं ब्रह्मा, तुम्हीं हरि, तुम्हीं अजसंज्ञित महादेव, तुम्हीं इन्द्र, धनेश्वर कुबेर पितृपति (यम),अम्बुपति (वरुण) और समीर हो तुम्हीं सोम अग्नि, गगन, महीधर और समुद्र हो । तुम्हीं संपूर्ण तेजःपदार्थोंकी आत्मास्वरूप हो और तुम्हारी क्या स्तुति करूं ? ॥ ३६ ॥ हे यज्ञेश ! आत्मकर्मा नुरक्त द्विजगण प्रतिदिन विविध पद (छन्दबद्धवाक्यादि) द्वारा स्तव करके तुम्हारी पूजा करते हैं । संयतचित्त योगीजन तुम्हारा ध्यान

त्वंधाताविसृजसिविश्वमेतत्त्वंपासिस्थितिकरणायसंप्रवृत्तः॥त्वय्यन्तेलयमखिलंप्रयातितत्त्वंत्वत्तोऽन्यानहिगतिरस्तिसर्वलोके ॥३५॥ त्वंब्रह्माहरिरजसंज्ञितस्त्वमिन्द्रोवित्तेशःपितृपतिरप्पतिःसमीरः ॥ सोमोऽग्निर्गगनपतिर्महीधरोऽब्धिः किंस्तव्यंतवसकलात्मरूपधाम्नः ॥ ३६ ॥ यज्ञेशत्वामनुदिनमात्मकर्मसक्ताः स्तुन्वन्तोविविधपदैर्द्विजायजन्ति ॥ ध्यायन्तोविनियतचेतसोभवन्तंयोगस्थाःपरमपदं प्रयान्तिमर्त्याः ॥ ३७ ॥ तपसिपचसिविश्वंपासिभस्मीकरोपिप्रकटयसिमयूखैर्ह्लादयस्यम्बुगर्भैः ॥ सृजसिक मलजन्मापालयस्य च्युताख्यःक्षपयसिचयुगांतेरुद्ररूपस्त्वमेकः ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदिवाकरस्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०१ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःस्वतेजसस्तस्मादाविर्भूतोविभावसुः ॥ अदृश्यततदादित्यस्तप्तताम्रोपमप्रभः ॥ १ ॥ अथतांप्रणतांदेवीं तस्यसंदर्शनान्मुने ॥ प्राहभास्वान्वृणुष्वेष्टवरंमत्तोयमिच्छसि ॥ २ ॥

करते करते योगमूर्तिद्वारा परमपदको प्राप्त होते हैं ॥ ३७ ॥ तुम्हीं विश्वमें ताप देते हो, तुम्हीं विश्वको पक्व रक्षित, भस्म, किरणोंसे प्रकाशित करते हो तथा जलगर्भवाली किरणसमूहोंसे आह्लादित और फिर उत्पन्न करतेहो, देवता और मनुष्य तुमकोही प्रणाम करते हैं और पापकर्मकारी स्थिर भावना करनेपरभी तुमको प्राप्त नहीं होते ॥३८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां दिवाकर स्तुतिर्नामैकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसके उपरान्त प्रभु विभावसु उस अपने तेजोमण्डलके मध्यसे तपे हुए तांबेके समान कलेवर होकर प्रकट हुए ॥१॥ हे मुने ! उनका दर्शन करते ही देवी अदितिने उनको प्रणाम किया तब भास्वान् सूर्यने उनसे कहा तुम्हारी जैसी इच्छा हो वही मुझसे अभीष्ट वर माँगो ॥ २ ॥

उन देवी अदितिने जानु द्वारा पृथ्वीको स्पर्शकर मस्तक द्वारा प्रणामपूर्वक वर देनेके लिये उपस्थित विवस्वान्से कहा हे देव ! प्रसन्न हूजिये । अधिक बलवान् दैत्य और दानवोंने मेरे पुत्रोंका त्रिभुवन और यज्ञभाग हरण कर लिया है ॥ ३ ॥ ४ ॥ हे गोपते ! इसी निमित्त मुझपर प्रसन्न हूजिये और आप अंशरूपमें उनके भ्राता होकर शत्रुओंका विनाश कीजिये ॥ ५ ॥ हे प्रभो दिवाकर ! जिस प्रकार मेरे पुत्र फिर यज्ञभाग भोजनमें अधिकारी और त्रैलोक्यके अधिपति हों ॥६॥ हे रवे ! मेरे प्रति प्रसन्न होकर मेरे पुत्रोंपर उसी प्रकार कृपा प्रकाश कीजिये ! हे दुःखियोंके भयहारिन् ! तुमको लोकस्थिति (पालन) कर्ता कहते हैं ॥७॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे विप्र ! तदनन्तर वारि सुखानेवाले भगवान् भास्करने

प्रणताशिरसासाचजानुपीडितमेदिनी ॥ प्रत्युवाचविवस्वन्तंवरदंसमुपस्थितम् ॥ ३ ॥ देवप्रसीदपुत्राणांहृतंत्रिभुवनंमम ॥ यज्ञभागाश्चदैत्यैश्चदानवैश्चबलाधिकैः ॥ ४ ॥ तन्निमित्तंप्रसादंत्वंकुरुष्वममगोपते ॥ अंशेनतेषांभ्रातृत्वंगत्वानाशयतद्रिपून् ॥ ५ ॥ यथामेतनयाभूयोयज्ञभागभुजःप्रभो ॥ भवेयुरधिपाश्चैवत्रैलोक्यस्यदिवाकर ॥ ६ ॥ तथानुकम्पांपुत्राणांसुप्रसन्नोरवेमम ॥ कुरुष्वप्रार्तिहरस्थितिकर्तात्वमुच्यसे ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तामाहभगवान्भास्करोवारितस्करः ॥ प्रणतामदितिंविप्रप्रसादसुमुखोविभुः ॥ ८ ॥ सहस्रांशेनतेगर्भेसम्भूयाहमशेषतः ॥ त्वत्पुत्रशत्रूनदितेनाशयाम्याशुनिर्वृतः ॥ ९ ॥ इत्युक्त्वाभगवान्भास्वानन्तर्द्धानमुपागमत् ॥ निवृत्तामापितपसःसंतृप्ताखिलवाञ्छिता ॥ १० ॥ ततोरश्मिसहस्रात्तुसौषुम्नाख्योरवेःकरः ॥ विप्रावतारंसंचक्रेदेवमातुरथोदरे ॥ ११ ॥ कृच्छ्रचान्द्रायणादीनिसाचचक्रेसमाहिता ॥ शुचिःसंधारयामासदिव्यंगर्भमितिद्विज ॥ १२ ॥ ततस्तांकश्यपःप्राहकिञ्चित्कोपप्लुताक्षरम् ॥ किम्मारयसिगर्भाण्डमितिनित्योपवासिनी ॥ १३ ॥

प्रसन्नमुख होकर उन प्रणत अदितिसे कहा ॥ ८ ॥ हे अदिते ! मैं सहस्रांशमें तुम्हारे गर्भसे जन्म ग्रहण कर तुम्हारे पुत्रोंके समस्त शत्रुओंको समूल विनाश करूंगा । तुम्हारे पुत्र शीघ्रही सुखी होंगे॥९॥यह कहकर भगवान् भास्वान् वहांसे अन्तर्धान होगये और वह अदितिभी वांछित वरको प्राप्त कर तपस्यासे निवृत्त हो गई ॥१०॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त रविकी सौषुम्न नामक किरण सहस्रांशुसे देवमाता अदितिके गर्भमें अवतीर्ण हुई ॥ ११ ॥ हेद्विज!वह अदिति सावधान होकर कृच्छचांद्रायणादि व्रतानुष्ठानपूर्वक पवित्रतासे दिव्य गर्भ धारण करने लगी॥१२॥ तब कश्यपजी । उसे । कुछेक

कोपयुक्त वचनद्वारा कहा, तू नित्य उपशासी होकर क्या इस गर्भस्त अण्डाको मारित अर्थात् नष्ट करेगी ॥१३॥ अदितिने उनसे कहा--हे क्रूद्ध स्वभावा यह जो गर्भाण्ड देखतेहो, इसको मारती नहीं हूं, यह शत्रुओंके विनाशका कारण होगा॥१४॥मार्कण्डेयजी बोले—यह कहकर सुरमाता अदितिने पतिके वचनद्वारा क्रोधित होकर तेजसे जाज्वल्यमान उस गर्भको परित्याग किया॥१५॥कश्यप उदय कालीन भास्करके समान प्रभाशाली वह गर्भ देखकर प्रणामपूर्वक आदरसहित आद्यऋक् मंत्रसमूहद्वारा स्तव करने लगे॥१६॥तब उनके द्वारा स्तुतिको प्राप्तहो वह भास्कर तेजद्वारा दिशाओंके मुख व्याप्त करते हुए पद्मपत्रके समान वर्णयुक्त हो गर्भाण्डसे बाहर निकले॥१७॥अनन्तर सजल जलदके समान गंभीर अशरीरिणी वाणी अन्तरिक्षमे

साचतंप्राहगर्भाण्डमेतत्पश्येतिकोपना ॥ नमारितंविपक्षाणांमृत्युरेवैतद्भविष्यति ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्त्वातंतदागर्भमुत्ससर्जसुरारणिः ॥ जाज्वल्यमानंतेजोभिःपत्युर्वचनकोपिता ॥ १५ ॥ तंदृष्ट्वाकश्यपोगर्भमुद्यद्भास्करवर्चसम् ॥ तुष्टावप्रणतोभूत्वाऋग्भिराद्याभिगदरात ॥ १६ ॥ संस्तूयमानःसतदागर्भाण्डात्प्रकटोऽभवत् ॥ पद्मपत्रसवर्णाभस्तेजसाव्याप्तदिङ्मुखः ॥ १७ ॥ अथान्तरिक्षादाभाष्यकश्यपंमुनिसत्तमम् ॥ सतोयमेघगम्भीरवाग्उवाचाशरीरिणी ॥ १८ ॥ मारितंतेयतःप्रोक्तमेतदण्डंत्वयामुने ॥ तस्मान्मुनेसुतस्तेऽयंमार्त्तण्डाख्योभविष्यति ॥१९॥ सूर्याधिकारंचविभुर्जगत्येषकरिष्यति ॥ हनिष्यत्यसुरांश्चायंयज्ञभागहरानरीन् ॥२०॥ देवानिशम्येतिवचोगगनात्समुपागमन् ॥ प्रहर्षमतुलंयातादानवाश्चहृतौजसः ॥ २१ ॥ ततोयुद्धायदैतेयानाजुहावशतक्रतुः ॥ सहदेवैर्मुदायुक्तोदानवाश्चसमभ्ययुः ॥ २२ ॥ तेषांयुद्धमभूद्घोरंदेवानामसुरैःसह ॥ शस्त्रास्त्रदीप्तिसंदीप्तंसमस्तभुवनान्तरम् ॥ २३ ॥

मुनिवर कश्यपको संबोधन देकर कहने लगी॥१८॥ हे मुने!तुमने इस अण्डको "मारित"कहा था, इस कारण तुम्हारे पुत्रका नाम 'मार्त्तण्ड'होगा ॥१९॥यह विभु जगत्में सूर्यका कार्य करेंगे, और यज्ञभागहारी देवशत्रु असुरोंको यही विनाश करेंगे॥२०॥देवतागण उक्त वचन श्रवणपूर्वक अतुल हर्षको प्राप्त हो आकाशसे आये और दानव गण तेजहीन होगये॥२१॥तदनन्तर देवताओंके सहित शतक्रतु(इन्द्र)ने युद्धके लिये दैत्योंको बुलाया, तब दानवगण प्रसन्नचित्त होकर आये ॥२२॥ तिस काल असुरोंके सहित देवताओंका घोर युद्ध होने लगा और संपूर्ण भुवनान्तर देवता और असुरोंके अस्त्रशस्त्रोंकी दीप्तिसे सम्यक् प्रकारसे दीप्तिमान होगया ॥ २३ ॥

उस युद्धमें महा असुरगण भगवान् मार्त्तण्डके देखनेसे तथा उनके तेज द्वारा दग्ध होकर भस्म होगये ॥२४॥ तब संपूर्ण देवताओंने अतुलहर्षको प्राप्त हो समस्त तेजके आकरस्वरूप मार्त्तण्डदेवकी और अदितिकी स्तुति करी ॥ २५ ॥ देवता पूर्ववत् अपने अधिकार और यज्ञभागको प्राप्त हुए और भगवान् मार्त्तण्ड भी इसी स्वीय अधिकारानुरूप सूर्यका कार्य करने लगे ॥ २६ ॥ वह कदम्ब पुष्पवत् नीचे और ऊपरमें किरणोंके द्वारा दीप्तिशाली होकर गोलाकार अग्निपिण्डके समान दिखाई देने लगे और अधिक स्फुरनासे रहित शरीर धारण किया ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां मार्तण्डोत्पत्तिर्नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर प्रजापति विश्वकर्माने

तस्मिन्युद्धेभगवतामार्त्तण्डेननिरीक्षिताः ॥ तेजसादह्यमानास्तेभस्मीभूतामहासुराः ॥ २४ ॥ ततःप्रहर्षमतुलंप्राप्ताःसर्वेदिवौकसः ॥ तुष्टुवुस्तेजसांयोनिंमार्त्तण्डमदितिंतथा ॥ २५ ॥ स्वाधिकारांस्तथाप्राप्तायज्ञभागांश्चपूर्ववत् ॥ भगवानपिमार्तण्डःस्वाधिकारमथाकरोत् ॥ २६ ॥ कदम्बपुष्पवद्भास्वानधश्चोर्ध्वंचरश्मिभिः ॥ वृत्ताग्निपिण्डसदृशोदध्रेनातिस्फुरद्वपुः ॥ २७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमार्त्तण्डोत्पत्तिर्नामद्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ अथतस्मैददौकन्यांसंज्ञांनामविवस्वते ॥ प्रसाद्यप्रणतोभूत्वाविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ १ ॥ वैवस्वतस्तुसम्भूतोमनुस्तस्यांविवस्वतः ॥ पूर्वमेवतथाख्यातंतत्स्वरूपंविशेषतः ॥ २ ॥ (क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामिमार्त्तण्डस्यमहात्मनः ॥ चरितंहंतियत्पापंकलौसंशृण्वतांनृणाम् ॥ १ ॥) ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ त्रीण्यपत्यान्यसौतस्यांजनयामासगोपतिः ॥ द्वौपुत्रौसुमहाभागौकन्याञ्चयमुनांमुने ॥ ३ ॥ मनुर्वैवस्वतोज्येष्ठःश्राद्धदेवःप्रजापतिः ॥ ततोयमोयमीचैवयमलौसंबभूवतुः ॥ ४ ॥

प्रणत होकर भगवान् विवस्वानको प्रसन्न करके संज्ञानाम्नी अपनी कन्या दी ॥ १ ॥ उस संज्ञाके गर्भसे विवस्वान्के 'वैस्वत' मनु नामक जिस पुत्रका जन्म हुआ, उसका वृतान्त पहिले ही विशेष करके कहा है क्रौष्टुकिने कहा, मैं मार्तण्डमहात्माका चरित्र फिर भी सुननेकी इच्छा करताहूं जो चरित्र सुननेवालोंके कलिसम्बन्धी पापोंका विनाश करता है ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे मुने ! गोपति सूर्यने संज्ञाके गर्भसे दो महाभाग पुत्र और यमुना नामक एक कन्या यह तीन संतान उत्पन्न करी ॥ ३ ॥ तिनमें श्राद्धदेव प्रजापति वैवस्वत मनु ज्येष्ठ हैं।

तदनन्तर यम और यमी नामक यमज संतानकी उत्पत्ति हुई॥४॥ उसकाल विवस्वान् मार्त्तण्डका जो अधिक तेज था, उसके द्वारा वह सचराचर तीनों लोकोंको तापित करतेथे॥५॥संज्ञा विवस्वान्‌का वह गोलाकाररूप देख और उनका महतेज सहनेमें असमर्थ हो अपनी छायाकी ओर देख कर कहने लगी॥६॥संज्ञा बोली हे शुभे!तुम्हारा कल्याण हो।मैंअपने पिताके घर जातीहूं, तुम मेरी आज्ञा पालन करतीहुई निर्विकारचित्तसे इस स्थानमें रहना॥७॥मेरे इन दोनों बालक और इस वरवर्णिनी कन्याके प्रति सस्नेह व्यवहार करना और यह वृत्तान्त भगवान्‌के निकट कभी प्रकाश नहीं करना ॥ ८ ॥ छायाने कहा—हे देवि ! जबतक वह मेरे केश ग्रहण न करेंगे और जबतक मुझको शाप नहीं देंगे, तबतक मैं भगवान्‌के

यत्तेजोऽभ्यधिकंतस्यमार्तण्डस्यविवस्वतः ॥ तेनातितापयामासत्रींल्लोकान्सचराचरान् ॥ ५ ॥ गोलाकारन्तुतद्दृष्ट्वासंज्ञारूपंविवस्वतः ॥ असहन्तीमहत्तेजःस्वांछायांप्रेक्ष्यसाऽब्रवीत् ॥ ६ ॥ ॥ संज्ञोवाच ॥ ॥ अहंयास्यामिभद्रंतेस्वमेवभवनंपितुः ॥ निर्विकारंत्वयाप्यत्रस्थेयंमच्छासनाच्छुभे ॥ ७ ॥ इमौचबालकौमह्यंकन्याचवरवर्णिनी ॥ संभाव्योनैवचाख्येयमिदंभगवतेत्वया ॥ ८ ॥ ॥ छायोवाच ॥ ॥ आकेशग्रहणाद्देविआशापान्नैवकर्हिचित् ॥ आख्यास्यामिमतंतुभ्यंगम्यतांयत्रवाञ्छितम् ॥ ९ ॥ इत्युक्ताछाययासंज्ञाजगामपितृमन्दिरम् ॥ तत्रावसत्पितुर्गेहेकञ्चित्कालंशुभेक्षणा ॥ १० ॥ भर्तुःसमीपंयाहीतिपित्रोक्तासापुनःपुनः ॥ अगच्छद्वडवाभूत्वाकुरून्विप्रोत्तरांस्ततः ॥ ११ ॥ तत्रतेपेतपःसाध्वीनिराहारामहामुने ॥ पितुःसमीपंयातायाःसंज्ञायावाक्यतत्परा ॥ ॥ १२ ॥ तद्रूपधारिणीछायाभास्करंसमुपस्थिता ॥ तस्यांचभगवान्सूर्य्यःसंज्ञेयमितिचिन्तयन् ॥ १३ ॥

निकट अपनी बात नहीं कहूंगी, तुम अपने अभिलषित स्थानमें जाओ ॥ ९ ॥ छायाके इस प्रकार कहनेपर शुभदर्शन संज्ञाने पिताके घर जाकर कुछ काल वहां वास किया ॥ १० ॥ हे विप्र ! अनन्तर "भर्त्ताके घर जाओ" यह वचन पिताविश्वकर्माके वारंवार कहनेपर संज्ञा बड़वा (घोड़ी) का रूप धारणकर उत्तर कुरुदेशमें चली गई ॥ ११ ॥ हे महामुने ! साध्वी वहां अनाहार हो तपस्या करने लगी। जब संज्ञा पिताके घर चली गई, तब छाया उसीके वचनानुसार ॥ १२ ॥ उसीका रूप धारणकर भगवान् ! भास्करकी भजना करने लगी भगवान् सूर्यनेभी उसको अपनी पत्नी संज्ञा विचारकर ॥ १३ ॥

उसके गर्भसेभी दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न की । हे द्विज सत्तम ! इन दो पुत्रोंमें जो श्रेष्ठ पुत्र थे, वह संज्ञाके पुत्र पूर्वोत्पन्न वैवस्वत मनुके समान सावर्णि नामक मनु हुए और दूसरे पुत्र शनैश्चर नामक ग्रह हुए ॥ १४ ॥ १५ ॥ और तपती नामक जो कन्या उत्पन्न हुई, पीछे संवरण नामक नरपतिने उससे ही विवाह किया छायासंज्ञा सावर्णि मनु इत्यादि अपने पुत्रोंके प्रति जैसा स्नेह व्यवहार करती ॥ १६ ॥ संज्ञाके गर्भसे उत्पन्न हुई वैवस्वत मनु इत्यादिके प्रति वैसा व्यवहार नहीं करती । छाया संज्ञाका इस प्रकार असमान व्यवहार देखकर भी वैवस्वत मनुने उसको सह लिया, किंतु यमने न सहा ॥ १७ ॥ और इससे अत्यन्त दुःखित होकर पितृ पत्नी कर्तृक वारंवार याचित

तथैवजनयामासद्वौसुतौकन्यकांतथा ॥ पूर्वजस्यमनोस्तुल्यःसावर्णिस्तेनसोऽभवत् ॥ १४ ॥ यस्तयोःप्रथमंजातःपुत्रयोर्द्विजसत्तम ॥ द्वितीयोयोऽभवच्चान्यःसग्रहोऽभूच्छनैश्चरः ॥ १५ ॥ कन्याभूत्तपतीयातांवव्रेसंवरणोनृपः ॥ संज्ञातुपार्थिवीतेषामात्मजानांयथाऽकरोत् ॥ १६ ॥ स्नेहान्नपूर्वजातानांतथाकृतवतीसती ॥ मनुस्तत्क्षान्तवांस्तस्याश्चयमस्यानचक्षमे ॥ १७ ॥ बहुशोयाच्यमानस्तु पितुःपत्न्यासदुःखितः ॥ सवैकोपाच्चबाल्याच्चभाविनोऽर्थस्यवैबलात् ॥ १८ ॥ पदासन्तर्जयामासच्छायासंज्ञांयमोमुने ॥ ततःशशापचयमंसंज्ञासामर्षिणीभृशम् ॥ १९ ॥ ॥ छायोवाच ॥ पदातर्जयसेयस्मात्पितृभार्यांगरीयसीम् ॥ तस्मात्तवैषचरणःपतिष्यतिनसंशयः ॥ २० ॥ यमस्तुतेनशापेनभृशंपीडितमानसः ॥ मनुनासहधर्मात्मासर्वंपित्रेन्यवेदयत् ॥ २१ ॥ ॥ यमउवाच ॥ ॥ स्नेहेनतुल्यमस्मासुमातादेवनवर्तते ॥ विसृज्यज्यायसोऽप्यस्मान्कनीयांसौबुभूषति ॥ २२ ॥

होकर भी उसको न सह सके । हे मुने ! यमने कोपाविल और भावीअर्थ—बलके कारण अर्थात् होनेवाली बातके वशीभूत हो ॥ १८ ॥ छाया संज्ञाको घुडककर चरण उठाया, इससे छाया संज्ञाने अत्यन्त क्रोधित हो यमको यह कहकर शाप दिया ॥ १९ ॥ संज्ञाने कहा "मैं तुम्हारे पूजनीय पिताकी भार्या हूं मुझको पद दिखाकर घुडका अतएव तुम छिन्नपद होगे अर्थात् तुम्हारा यह चरण कटकर गिरजायगा, इसमें सन्देह नहीं" ॥ २० ॥ धर्मात्मा यमने इस शापसे अत्यन्त पीड़ितमन हो मनुके सहित पिताके समीप जाकर संपूर्ण वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ यमने कहा—हे देव ! माता हमारे प्रति तुल्यस्नेह न करके हमारे ज्येष्ठ होनेपरभी हमारा अनादर करती हुई दोनों कनिष्ठके भरण पोषणमें इच्छा करती है ॥ २२ ॥

इसकारण मैंने बाल्यस्वभाव अथवा मोहवशसे उसकी ओर चरण उठाया था, किंतु आघात नहीं किया, आप मेरे उस अपराधको क्षमा कीजिये ॥ २३ ॥ हे तापदातृ ! श्रेष्ठ पितः यदि पुत्र दुराचारी भी हो, तोभी माता उसके प्रति कभी बुरा व्यवहार नहीं करती, अतएव पुत्रको "तुम्हारा चरण गिर जाय" ऐसा शाप कैसे देगी। जब जननी होकर पुत्रके प्रति कोपके कारण इस प्रकार शाप दिया, तब यह माता नहीं जान पडती ॥ २४ ॥ २५ ॥ हे भगवन् ! मातृशापके कारण जिससे मेरा पैर न गिरे हे गोपते ! अनुग्रह पूर्वक उसी उपायकी चिंता कीजिये ॥ २६ ॥ सूर्यने कहा—हे पुत्र ! तुम धर्मज्ञ और सत्यवादी होकरभी जब क्रोधके वशीभूत हुए, तब निःसन्देह ऐसा होनेकी संभावना है ॥ २७ ॥ अन्यान्य

तस्यांमयोद्यतःपादोनतुदेहेनिपातितः ॥ बाल्याद्वायदिवामोहात्तद्भवान्क्षन्तुमर्हति ॥ २३ ॥ शप्तोऽहंतातकोपेनजनन्यातनयोयतः ॥ ततोनमन्येजननीमिमांवैतपतांवर ॥ २४ ॥ विगुणेष्वपिपुत्रेपुनमाताविगुणापितः ॥ पादस्तेपततांपुत्रकथमेतत्प्रवक्ष्यति ॥ २५ ॥ तवप्रसादाच्चरणोनपतेद्भगवन्यथा ॥ मातृशापादयंमेऽद्यतथाचिन्तयगोपते ॥ २६ ॥ रविरुवाच ॥ असंशयमिदंपुत्रभविष्यत्यत्र कारणम् ॥ येनत्वामाविशत्क्रोधोधर्मज्ञंसत्यवादिनम् ॥ २७ ॥ सर्वेषामेवशापानांप्रतिघातोहिविद्यते ॥ नतुमात्राभिशप्तानांक्वचिच्छापनिवर्तनम् ॥ २८ ॥ नशक्यमेतन्मिथ्यातुकर्तुंमातुर्वचस्तव ॥ किञ्चित्तवविधास्यामिपुत्रस्नेहादनुग्रहम् ॥ २९ ॥ कृमयोमांसमादायप्रयास्यन्तिमहीतलम् ॥ कृतंतस्यावचःसत्यंत्वंचत्रातोभविष्यसि ॥ ३० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ आदित्यस्त्वब्रवीच्छायांकिमर्थंतनयेषुवै ॥ तुल्येष्वप्यधिकःस्नेहएकत्रक्रियतेत्वया ॥ ३१ ॥ नूनंनैषांत्वंजननीसंज्ञाकापित्वमागता ॥ विगुणेष्वप्यपत्येषु कथंमाताशपेत्सुतम् ॥ ३२ ॥

समस्त शापही प्रतिहत हो सकते हैं, किन्तु मातृशाप मोचन करनेका कोई उपाय नहीं है ॥ २८ ॥ अतएव मैं तुम्हारी माताका वचन मिथ्या करनेमें समर्थ नहीं हूं किन्तु पुत्रस्नेहके वश होकर कुछेक अनुग्रह विधान करूंगा ॥ २९ ॥ " किमि तुम्हारे पैरका मांस ग्रहण करके मही तलमें लेजाँयगे " ऐसा होनेसे तुम्हारी माताका वचन सत्य होगा और तुमभी रक्षित होंगे ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--फिर आदित्यने छायासे कहा " तुम्हारे समस्त पुत्रही तुल्य स्नेहके पात्र हैं, किन्तु ऐसा न करके एकके प्रति स्नेह करती हो ॥ ३१ ॥ इस कारण बोध होता है तुम

इनकी माता संज्ञा नहीं हो, अपर कोई संज्ञाके रूपमें अवस्थान करती हो, नहीं तो पुत्रके दुराचारी होनेपर माता क्या कभी शाप देसकती है " ॥ ३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--छाया संज्ञाने समस्त वृत्तान्त छिपाकर दिवाकरसे कुछभी नहीं कहा। किन्तु दिवस्पति समाधिके बलसे सब सत्य वृत्तान्त अवलोकन कर ॥ ३३ ॥ शापदेनेमें उद्यत हुए हे ब्रह्मन्! यह देख छाया संज्ञाने भयसे काँपते हुए सब वृत्तान्त ज्योंका त्यों कह दिया ॥ ३४ ॥ विवस्वान् यह सब वृत्तान्त सुनकर क्रोधित चित्तहो श्वशुरके समीप गये! जब सुव्रत विश्वकर्माने देखा कि, इन्होंने रोषद्वारा समस्तही दग्ध करनेकी अभिलाषा करी है, तब इनकी यथाविधि पूजा करके समझाया ॥ ३५ ॥ विश्वकर्माने कहा--संज्ञा आपका

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सातत्परिहरन्तीचनाचचक्षेविवस्वतः ॥ सचात्मानंसमाधाययुक्तस्तत्त्वमपश्यत ॥ ३३ ॥ तंशप्तुमुद्यतंदृष्ट्वा छायासंज्ञादिवस्पतिम् ॥ भयेनकंपिताब्रह्मन्यथावृत्तंन्यवेदयत् ॥ ३४ ॥ विवस्वांस्तुततःक्रुद्धःश्रुत्वाश्वशुरमभ्यगात् ॥ सचापितंयथान्यायमर्चयित्वादिवाकरम् ॥ निर्दग्धुकामंरोषेणसान्त्वयामाससुव्रतः ॥ ३५ ॥ विश्वकर्मोवाच ॥ तवातितेजसाव्याप्तमिदंरूपंसुदुःसहम् ॥ असहन्तीततःसंज्ञावनेचरतिवैतपः ॥ ३६ ॥ द्रक्ष्यतेतांभवानद्यस्वभार्यांशुभचारिणीम् ॥ रूपार्थभवतोऽरण्येचरन्तींसुमहत्तपः ॥ ३७ ॥ स्मृतंमेब्रह्मणोवाक्यंयदितेदेवरोचते ॥ रूपंनिवर्तयाम्येतत्तवकान्तंदिवस्पते ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ यतोहिभास्वतोरूपंप्रागासीत्परिमण्डलम् ॥ ततस्तथेतितंप्राहत्वष्टारंभगवान्रविः ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मात्वनुज्ञातःशाकद्वीपेविवस्वतः ॥ भ्रमिमारोप्यतत्तेजःशातनायोपचक्रमे ॥ ४० ॥

यह अतिरिक्त तेजसे व्याप्त दुःसह रूप न सह सकनेके कारण वनमें तपस्या करती है ॥ ३६ ॥ आप अभी अपने रूपके कारण वनमें महा-तप करती हुई, शुभकार्यमें तत्पर उस अपनी भार्याको देखिये ॥ ३७ ॥ हे देव! मुझको ब्रह्माजीका वचन स्मरण होता है उसमें यदि आपकी अनुमतिहो, तो हे दिवस्पते! आपके इस रूपको कान्तरूपमें परिवर्त्तित करूं ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अपने उपस्थितरूपकी मण्डलाकारता होनेसे भगवान् रविने त्वष्टाको उस कार्यमें आज्ञादी ॥ ३९ ॥ विश्वकर्मानेभी आज्ञा पाय शाकद्वीपमें विवस्वानको भ्रमियंत्र (शान) में आरो-पणपूर्वक शातन करने (निराकरणकरने) का उपक्रम किया ॥ ४० ॥

हे ब्रह्मन् ! संपूर्ण जगत्के नाभिस्वरूप आदित्यके घूमनेसे समुद्र--गिरि--वन--वेष्टित महीतल आकाशमें मिल गया ॥ ४१ ॥ और हे महाभाग ! चन्द्र, ग्रह तारकादिसंकुल संपूर्ण गगन नीचे गिरतासा आकुल होने लगा ॥ ४२ ॥ समुद्रोंका जल उछलने लगा, महापर्वतसमूह शिखर बिखरनेसे विभिन्न होने लगे ॥ ४३ ॥ और हे मुनिसत्तम ! ध्रुवाधार सब नक्षत्रकुल अपनी रशना बंधना स्खलित होनेसे नीचेको जाने लगे ॥ ४४ ॥ चारों दिशाओंमें महामेघोंके वेगसे भ्रमण करने पर उठी हुई वायुद्वारा परस्पर लगकर घोर गर्जनसहित विचरण करते हुए विशीर्ण होने लगे ॥ ४५ ॥ हे मुनिसत्तम ! इस प्रकार स्वर्ग, मर्त्य, पाताल संपूर्ण जगतही सूर्यके भ्रमणसे विभ्रान्त होकर अतिशय

भ्रमताऽशेषजगतांनाभिभूतेनभास्वता ॥ समुद्राद्रिवनोपेतासारुरोहमहीनभः ॥ ४१ ॥ गगनञ्चाखिलंब्रह्मन्सचन्द्रग्रहतारकम् ॥ अधोगतंमहाभागबभूवाक्षिप्तमाकुलम् ॥ ४२ ॥ विक्षिप्तसलिलाःसर्वेबभूवुश्चतथाब्धितः ॥ ॥ व्यभिद्यन्तमहाशैलाःशीर्णसानुनिबन्धनाः ॥ ४३ ॥ ध्रुवाधाराण्यशेषाणिधिष्ण्यानिमुनिसत्तम ॥ त्रुटद्रश्मिनिबन्धानिह्यधोजग्मुःसहस्रशः ॥ ४४ ॥ वेगभ्रमणसंजातवायुक्षिप्ताःसमन्ततः ॥ व्यशीर्यन्तमहामेघाघोरगवविराविणः ॥ ४५ ॥ भास्वद्भ्रमणविभ्रान्तंभूम्याकाशरसातलम् ॥ जगदाकुलमत्यर्थंतदासीन्मुनिसत्तम ॥ ४६ ॥ त्रैलोक्येसकलेविप्रभ्रममाणेसुरर्षयः ॥ देवाश्चब्रह्मणासार्द्धंभास्वन्तमभितुष्टुवुः ॥ ४७ ॥ आदिदेवोऽसिदेवानांज्ञातमेतत्स्वरूपतः ॥ स्वर्गस्थित्यन्तकालेषुत्रिधाभेदेनतिष्ठसि ॥४८॥ स्वस्तितेऽस्तुजगन्नाथघर्मवर्षाहिमाकर ॥ जुषस्वशांतिंलोकानां देवदेवदिवाकर ॥४९॥ इन्द्रश्चागत्यतंदेवंलिख्यमानंयथाऽस्तुवत् ॥ जयदेवजगद्व्यापिञ्जयाशेषजगत्पते ॥५०॥

आकुल हो उठा ॥ ४६ ॥ हे विप्र ! त्रैलोक्यके इस प्रकार घूमनेपर सुरर्षि और देवता, ब्रह्माजीके सहित स्तुति करने लगे ॥ ४७ ॥ उन्होंने कहा, तुम देवताओंमें आदिदेव हो, यह स्वरूपसेही ज्ञात होता है। सृष्टि, स्थिति और प्रलयकालके भेदसे तुम त्रिधा विभक्त होकर स्थिति करते हो ॥ ४८ ॥ हे जगन्नाथ ! हे ग्रीष्म--वर्षा-हिमाकर ! तुम्हारा मंगल हो। हे देवदेव ! हे दिवाकर ! तुम लोकोंकी शान्तिविधान करो ॥ ४९ ॥ आये हुए इन्द्रने सूर्य देवकी मूर्त्ति लिख "हे देव ! हे जगद्व्यापिन् ! हे अशेषजगत्पते ! तुम्हारी जय हो" इसप्रकार कहकर स्तुति करी ॥ ५० ॥

इसके उपरान्त वसिष्ठ अत्रि इत्यादि सप्त ऋषियोंने स्वस्ति वाक्य उच्चारण कर विविध स्तोत्रोंके द्वारा स्तुति करी ॥ ५१ ॥ प्रसन्नचित्त वालखिल्य गण लिखी हुई भास्करदेवकी वेदोक्त आद्य ऋक्के द्वारा इस प्रकार स्तुति करने लगे ॥ ५२ ॥ हे नाथ ! तुम मुमुक्षु पुरुषोंके पक्षमें मोक्ष, ध्यानी पुरुषोंके एक मात्र ध्येय और कर्मकांडमें प्रवृत्त सब जीवोंकेभी तुम्हीं गति हो ॥ ५३ ॥ हे देवेश ! हे जगन्नाथ ! सब प्रजाका, हमारा, एवं हमारे द्विपद और चतुष्पदोंका मंगलविधान करो ॥ ५४ ॥ तदनन्तर विद्याधर, यक्ष राक्षस और पन्नगगण कृताञ्जलि पुटसे रविको मस्तकद्वारा प्रणाम कर ॥ ५५ ॥ " हे भूतभावन ! आपका तेज समस्त भूतके सहने योग्य हो " इस प्रकार मन और कानोंका

ऋषयश्चततःसप्तवसिष्ठात्रिपुरोगमाः ॥ तुष्टुवुर्विविधैःस्तोत्रैःस्वस्तिस्वस्तीतिवादिनः ॥ ५१ ॥ वेदोक्ताभिरथाग्र्याभिर्वालखिल्याश्चतुष्टुवुः ॥ भास्वन्तमृग्भिराद्याभिर्लिख्यमानंमुदायुताः ॥ ५२ ॥ त्वंनाथमोक्षिणांमोक्षोध्येयस्त्वंध्यानिनांपरः ॥ त्वंगतिः सर्वभूतानांकर्मकाण्डेऽपिवर्तताम् ॥ ५३ ॥ शंप्रजाभ्योऽस्तुदेवेशशन्नोऽस्तुजगताम्पते ॥ शन्नोऽस्तुद्विपदेनित्यंशन्नश्चास्तुचतुष्पदे॥५४॥ ततोविद्याधरगणायक्षराक्षसपन्नगाः ॥ कृताञ्जलिपुटाःसर्वेशिरोभिःप्रणतारविम् ॥ ५५ ॥ ऊचुरवं विधावाचो मनःश्रोत्रसुखावहाः ॥ सह्यंभवतुतेतेजोभूतानांभूतभावन ॥ ५६ ॥ ततोहाहाहुहूश्चैवनारदस्तुम्बुरुस्तथा ॥ उपगायितुमारब्धागान्धर्वकुशलारविम् ॥ ५७ ॥ षड्जमध्यमगान्धारग्रामत्रयविशारदाः ॥ मूर्च्छनाभिश्चतानैश्चसंप्रयोगैःसुखप्रदम् ॥ ५८ ॥ विश्वाचीचघृताचीचउर्वश्यथतिलोत्तमा ॥ मेनकासहजन्याचरम्भाचाप्सरसांवरा॥५९॥ननृतुर्जगतामीशेलिख्यमानेविभावसौ॥हावभावविलासाढ्यान्कुर्वन्तोऽभिनयान्बहून्॥६०॥ प्रावाद्यन्तततस्तत्रवेणुवीणादिझर्झराः ॥ पणवाःपुष्कराश्चैवमृदङ्गाःपटहानकाः ॥ ६१ ॥

सुखकर वचन कहने लगे ॥ ५६ ॥ अनन्तर षड्ज, मध्यम और गांधार इन तीनों ग्राममें विशारद हाहा हूहू नारद तुम्बुरु इत्यादि संगीत विद्गणोंने मूर्च्छना और तालादिके सुप्रयोगानुसार रविके सन्मुख सुखदायक संगीत आरंभ किया ॥ ५७ ॥ ५८ ॥ देव विभावसुके इस प्रकार लिख्यमान होनेपर विश्वाची, घृताची, उर्वशी, तिलोत्तमा, मेनका सहजन्या और रम्भा इत्यादि श्रेष्ठ अप्सरायें ॥ ५९ ॥ हाव, भाव, विलासादि अनेक अभिनयसहित नृत्य करने लगीं ॥ ६० ॥ वेणु, वीणा, दुर्दर, पणव, पुष्कर, मृदंग, पटव, आनक ॥ ६१ ॥

देवदुन्दुभी और शंख इत्यादि सैकड़ों हजारों बाजोंकी ध्वनि होने लगी । इस प्रकार गन्धर्वोंके संगीत स्वर्गकी अप्सराओंके नृत्य ॥ ६२ ॥ और तूर्य बाजोंके अनेक शब्द द्वारा उस काल संपूर्ण जगत् कोलाहलसे पूर्ण होगया । अनन्तर सब देवताओंने हाथ जोड भक्तिकर नम्रमूर्त्ति हो ॥ ६३ ॥ लिख्यमान सहस्रांशुको प्रणाम किया । देवता इत्यादिके समागमका उस समय कोलाहल उपस्थित होनेपर विश्वकर्माने धीरे धीरे तेज क्षीण किया ॥ ६४ ॥ शिशिर, वर्षा और ग्रीष्मकालके हेतुस्वरूप और हरि, हर तथा ब्रह्माजीके द्वारा स्तुतिको प्राप्त हुए भानुदेवकी यह तनुपरिलिखन कथा सुननेसे जीवनके अन्तमें दिवाकरलोककी प्राप्ति होती है ॥६५॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां भानुतनु लेखनं नाम

देवदुन्दुभयःशङ्खाःशतशोऽथसहस्रशः ॥ गायद्भिश्चैवगांधर्वंनृत्यद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥ ६२ ॥ तूर्यवादित्रघोषैश्चसर्वंकोलाहलीकृतम् ॥ ततःकृताञ्जलिपुटाभक्तिनम्रात्ममूर्तयः ॥ ६३ ॥ लिख्यमानंसहस्रांशुंप्रणेमुःसर्व देवताः ॥ ततःकोलाहलेतस्मिन्सर्व देवसमागमे ॥ तेजसःशातनञ्चक्रेविश्वकर्माशनैःशनैः ॥ ६४ ॥ इति हिमजलघर्मकालहेतोर्हरकमलासनविष्णुसंस्तुतस्य ॥ तनुपरिलिखनंनिशम्य भानोर्व्रजतिदिवाकरलोकमायुषोऽन्ते ॥ ६५ ॥ इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेभानुतनुलेखनेत्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ लिख्यमानेततोभानौविश्वकर्माप्रजापतिः ॥ उद्भूतपुलकःस्तोत्रमिदंचक्रेविवस्वतः ॥ १ ॥ विवस्वतेप्रणतहितानुकम्पिनेमहात्मनेसमजवसप्तसप्तये ॥ सुतेजसेकमलकुलावबोधिनेनमस्तमःपटलपटावपाटिने ॥ २ ॥ पावनातिशयपुण्यकर्मणेनैककामविषयप्रदायिने ॥ भास्वरानलमयूखशायिनेसर्वलोकहितकारिणे नमः ॥ ३ ॥ अजायलोकत्रयकारणाय भूतात्मनेगोपतयेवृषाय ॥ नमोमहाकारुणिकोत्तमायसूर्य्यायचक्षुःप्रभवालयाय ॥ ४ ॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--प्रजापति विश्वकर्माने भानुतनु क्षीण करते करते पुलकित हो विवस्वान्की लिखित मूर्त्तिका यह कहकर स्तव किया था ॥ १ ॥ प्रणत मनुष्योंका हितानुष्ठान और उनपर कृपाकारी सप्त वेगयुक्त, सप्ताश्वशाली, कमलकुल खिलानेवाले और तमोराशि विनाशक तेजस्वी महात्मा विवस्वान्को नमस्कार करता हूं ॥ २ ॥ अतिशय पावन, पुण्यकर्मा, अनेक काम्य विषयदायक भास्वर अग्नि सदृश किरणशाली और सर्व लोकोंके हितकारी देवको नमस्कार करता हूं ॥ ३ ॥ स्वयं उत्पत्तिरहित किन्तु तीनों

लोकोंको उत्पन्न करनेके कारण स्वरूप भूतात्मा रश्मिपति, वृष (साक्षात् धर्मस्वरूप) महाकारुणि श्रेष्ठ चाक्षुषविषयके आलय स्वरूप सूर्यको प्रणाम करता हूं ॥ ४ ॥ ज्ञानियोंके अन्तगतमारूपी जगदाधार जगत्के हितैषी स्वयंभू समस्त लोकके चक्षुस्वरूप सुरश्रेष्ठ अमिततेजा विवस्वान्को नमस्कार करता हूं ॥ ५ ॥ तुम जगत्के हितकी कामनासे देवताओंके सहित क्षणकाल उदयाचलके शिरकी माल्यस्वरूप हो, तेज किरणोंके द्वारा सहस्र वपुःग्रहणपूर्वक अंधकारके समूहका विनाश करते हुए जगत्में प्रकाशपाते हो॥६॥हे मिहिर!जगत्के तिमिररूप आसव पीनेकी मत्तताके कारण लोहितमूर्ति होकर तुम त्रिभुवनप्रकाशक किरणोंके द्वारा अतिशय दीप्तिपाते हो॥७॥हे भगवन्!तुम जगत्का हित करनेके लिये सदा समान अवयववाले अत्यन्त मनोरम कुछेक कंपायमान विस्तृत रथमें चढकर घोड़ोंके द्वारा विचरण करतेहो॥८॥हे अग्निसूदन ! तुम संजीवनी

विवस्वतेज्ञानभृतेंतरात्मनेजगत्प्रतिष्ठायजगद्धितैषिणे ॥ स्वयम्भुवेलोकसमस्तचक्षुपेसुरोत्तमायामिततेजसेनमः ॥ ५ ॥ क्षणमुदयाचलमौलिमणिःसुरगणमहितहितोजगतः ॥ त्वमुमयूखसहस्रवपुर्जगतिविभासितमांसिनुदन् ॥ ६ ॥ भवतिमिगमत्वपानमदाद्भवति विलोहितविग्रहता ॥ मिहिरविभासियतः सुतरांत्रिभुवनभावनभानिकरैः ॥ ७ ॥ रथमधिरुह्यसमावयवंचारुविकंपितमुरुरुचिरम् ॥ सततमखिन्नहयैर्भगवंश्चरसिजगद्धितायविततम् ॥ ८ ॥ अमृतमयेनरसेनसमंविबुधपितॄनपितर्पयसे ॥ अग्गिणसूदनतेनतवप्रणतिमुपेत्यलिखामिवपुः ॥ ९ ॥ शुकसमवर्णहयप्रथितंतवपदपांसुपवित्रनमम् ॥ नतजनवत्सलमांप्रणनंत्रिभुवनपावनपाहिरवे ॥१०॥ इतिसकलजगत्प्रसूतिभूतंत्रिभुवनभावनधामहेतुमेकम् ॥ रविमखिलजगत्प्रदीपभूतंत्रिदशवरप्रणतोऽस्मिसर्वदात्वाम् ॥ ११ ॥

सुधाद्वारा देवता और पितरोंकी एकही समयमें तृप्ति संपादन करते हो।इसी कारण जगतके हितकी कामनासे मैंने तुमको प्रणाम करके तुम्हारा वपुः (देह)लिखा है ॥९॥ हे प्रणतजनवत्सल ! हे त्रिभुवन पावन भास्कर ! मैं तुम्हारीही तोतेके समान वर्णवाली अश्व सृष्टिके कारण विख्यात हुआहूं और तुम्हारेही चरणोंकी रजसे इस समय अत्यन्त पवित्र हुआ हूं इस प्रणतजनकी रक्षा करो ॥ १० ॥ इस प्रकार संपूर्ण जगत्के कारण रूपी, त्रिभुवनको पवित्र करनेवाले, तेजस्वरूप, इस अखिल जगत्के प्रदीपतुल्य विश्वकर्मा (विश्वस्रष्टा) रविदेवको मैं सदा प्रणाम करता हूं ॥ ११ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां सूर्यस्तवनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--विश्वकर्माने इस प्रकार दिवस्पति सूर्यकी स्तुति करके उनके तेजका सोलहवां भाग मण्डलमें रक्खा ॥१॥ तिसकाल तेजके पन्द्रह भाग निकलजानेसे सूर्यका कलेवर अतीव सुन्दर और कांतियुक्त हुआ था॥२॥सूर्यके निकले हुए तेजद्वारा शत्रुओंके विनाशार्थ विष्णुका चक्र, शिवका शूल, कुबेरकी पालकी॥३॥ यमका दण्ड, कार्तिकेयकी शक्ति और अन्यान्य देवताओंके सब प्रदीप्त अस्त्र विश्वकर्माने निर्माण किये थे ॥ ४ ॥ इस प्रकार मार्त्तण्ड क्षीणतेज होकर शोभा पानेलगे और शत्रुओंके नाशके निमित् उनका शरीर मनोहर होगया ॥५॥ और अत्यन्त तीव्रतारहित तेज द्वारा समस्त अंगोंसे

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेसूर्य्यस्तवनंनामचतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंसूर्य्यस्तवंकुर्वन्विश्वकर्मा दिवस्पतेः ॥ तेजसःषोडशंभागंमण्डलस्थमधारयत् ॥ १ ॥ शातितैस्तेजसोभागैर्दशभिःपञ्चभिस्तथा ॥ अतीवकान्तिमच्चारुभानोरासीत्तदावपुः ॥ २ ॥ शातितंचास्ययत्तेजस्तेनचक्रंविनिर्मितम् ॥ विष्णोःशूलंचशर्वस्यशिबिकाधनदस्यच ॥ ३ ॥ दंडःप्रेतपतेःशक्तिर्देवसेनापतेस्तथा ॥ अन्येषाचैवदेवानामायुधानिसविश्वकृत् ॥ ४ ॥ चकारतेजसाभानोर्भासुरगण्यरिशान्तये ॥ इतिशातिततेजाःसशुशुभेनातितेजसा ॥ ५ ॥ वपुर्दधारमार्त्तण्डःसर्वावयवशोभनम् ॥ सददर्शसमाधिस्थःस्वांभार्य्यांवडवाकृतिम् ॥ ६ ॥ अधृष्यांसर्वभूतानांतपसानियमेनच ॥ उत्तरांश्चकुरून्गत्वाभूत्वाऽश्वोभानुरागमत् ॥७॥ साचदृष्ट्वातमायान्तंपरपुंसोविशङ्कया॥ जगामसंमुखंतस्यपृष्ठरक्षणतत्परा ॥ ८ ॥ ततश्चनासिकायोगंतयोस्तत्रसमेतयोः ॥ वडवायांचतत्तेजोनासिकाभ्यांविवस्वतः ॥ ९ ॥

युक्त शोभायमान शरीर धारण किया और फिर समाधिस्थ होकर अपनी भार्याको घोड़ीके रूपमें देखा ॥ ६ ॥ कि, वह उत्तरकुरुदेशमें सब भूतोंसे अधर्षित होकर अत्यन्त नियमसहित तप करतीहै तदनन्तर भानु उत्तरकुरुदेशमें जाकर अश्वरूप ग्रहणपूर्वक उसके निकट गये ॥ ७ ॥ तब वडवाकृति संज्ञा उनको आता हुआ देखकर पराये पुरुषकी शंकासे पीठकी रक्षाके लिये सावधान होकर उनके सन्मुख गई ॥ ८ ॥ तब समीपस्थ दोनोंकी नासिका संयुक्त होनेसे विवस्वान्का तेज नासिकायुगल द्वारा घोड़ीके गर्भमें प्रविष्ट होनेपर ॥ ९ ॥

उनसे भिषक्श्रेष्ठ दो अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए और अश्वके मुखसे निकले हुए 'नासत्य' एवं 'दस्र' यह दोनों ॥ १० ॥ अश्वरूपधारी मार्त्तण्डकेही पुत्र हैं वीर्यके शेषभागसे वर्मयुक्त शरीर खड्गधारी धनुष धारी, घोडे पर चढे बाण और तरकस संयुक्त रेवन्त उत्पन्न हुए। अनन्तर अंशुमाली सूर्यने अपना निर्मलरूप दिखाया॥ ११ ॥ १२ ॥ उनका यह शांत स्वरूप देखनेसे परम प्रसन्न हो संज्ञानेभी अपना स्वरूप धारण करलिया। तब वारिशोषक भास्कर प्रीतिमती अपनी भार्याको अपने घर ले आये। जो संज्ञाके ज्येष्ठ पुत्र थे, वह वैवस्वत मनु हुए ॥ १३ ॥ १४ ॥ और दूसरे पुत्र यम शाप एवं अनुग्रहके कारण धर्मदृष्टि हुए थे। यम उस शापके हेतु

देवौतत्रसमुत्पन्नावश्विनौभिषजांवरौ ॥ नासत्यदस्रौतनयावश्विवक्राद्विनिर्गतौ ॥ १० ॥ मार्त्तण्डस्यसुतावेतावश्वरूपधरस्यहि ॥ रेतसोऽन्तेचरेवन्तःखड्गीधन्वीतनुत्रधृक् ॥ ११ ॥ अश्वारूढःसमुद्भूतोबाणतूणसमन्वितः ॥ ततःस्वरूपममलंदर्शयामासभानुमान् ॥ ॥ १२ ॥ तस्यशान्तंसमालोक्यसारूपंमुदमाददे ॥ स्वरूपधारिणींचेमामानिनायनिजालयम् ॥ १३ ॥ संज्ञांभार्य्यांप्रीतिमतींभास्करोवारितस्करः ॥ ततःपूर्वसुतोयोऽस्याःसोऽभूद्वैवस्वतोमनुः ॥ १४ ॥ द्वितीयश्चयमःशापाद्धर्मदृष्टिरनुग्रहात् ॥ यमस्तुतेनशापेनभृशंपीडितमानसः ॥ १५ ॥ धर्मोभिरेचतेयस्माद्धर्मराजस्ततःस्मृतः ॥ कृमयोमांसमादायपादतस्तेमहीतलम् ॥ ॥ १६ ॥ पतिष्यन्तीतिशापान्तंतस्यचक्रेपितास्वयम् ॥ धर्मदृष्टिर्यतश्चासौसमोमित्रेतथाऽहिते ॥ १७ ॥ ततोनियोगेतंयाम्येचकारतिमिरापहः ॥ तस्मैददौपिताविप्रभगवाँल्लोकपालताम् ॥ १८ ॥ पितृणामाधिपत्यञ्चपरितुष्टोदिवाकरः ॥ यमुनांचनदींचक्रेकलिन्दान्तरवाहिनीम् ॥ १९ ॥ अश्विनौदेवभिषजौकृतौपित्रामहात्मना ॥ गुह्यकाधिपतित्वेचरेवन्तोविनियोजितः ॥ २० ॥

अत्यन्त व्यथित होकर ॥ १५ ॥ धर्माचरणमें प्रवृत्त हुए थे, इस कारण वह धर्मराजके नामसे कीर्त्तित हुए हैं, कृमि तुम्हारे पैरसे मांसग्रहण करके पृथ्वीतलमें ॥ १६ ॥ पतित होंगे, उनके पिताने इस प्रकार शापान्त किया था। यम धर्मदृष्टि होकर शत्रुमित्रमें समान व्यवहार करते थे ॥१७॥ इस कारण सूर्यने उनको याम्य अधिकारमें नियुक्त किया। हे विप्र ! भगवान् दिवाकरने परितुष्ट होकर उनको लोकपालत्व ॥१८॥ और पितरोंका आधिपत्यभी प्रदान किया। पिताने यमुनाको कलिन्द देशवाहिनी नदी किया॥ १९ ॥ और उन्ही महात्मा पिताने दोनों

अश्विनीकुमारोंको देवताओंका वैद्य किया । रैवन्त गुह्यकगणोंके आधिपत्यमें नियुक्त हुए ॥२०॥ और भूतभावन भगवानने उनमे यह भी कहा कि,हे वत्स ! तुम अशेषलोकोंके पूज्य होगे ॥२१॥ मनुष्यगण वन,दावानल, शत्रु और चोरोंके भयसे भीत होकर यदि तुमको स्मरण करेंगे, तो तुम उनको उन सब महाविपदसे छुडाओगे ॥२२॥ और मनुष्योंके पूजा करनेपर उनके प्रति संतुष्ट होकर उनको मंगल, सुबुद्धि, सुख, राज्य, आरोग्य, कीर्ति और उन्नति प्रदान करोगे ॥२३॥ छाया संज्ञाके महायशवान् सावर्णनामक पुत्र भावीकालमें सावर्णकनामसे आठवें मनु होगे ॥२४॥ इस समयभी वह मेरुपृष्ठपर घोर तपस्या करते हैं उनके भ्राता शनैश्वर आदित्यकी आज्ञासे ग्रह हुए हैं ॥ २५ ॥ हे द्विजोत्तम ! आदित्यकी युवती

एवमप्याहचततोभगवाँल्लोकभावितः ॥ त्वमप्यशेषलोकस्यपूज्योवत्सभविष्यसि ॥ २१ ॥ अरण्यादिमहादावेवैरिदस्युभयेषुच ॥ त्वांस्मरिष्यन्तियेमर्त्यामोक्ष्यन्तेतेमहापदः ॥ २२ ॥ क्षेमंबुद्धिंसुखंराज्यमारोग्यंकीर्तिमुन्नतिम् ॥ नृणांपरितुष्टस्त्वंपूजितःसंप्रदास्यसि ॥ २३ ॥ छायासंज्ञासुतश्चापिसावर्णिःसुमहायशाः ॥ भाव्यःसोऽनागतेकालेमनुःसावर्णिकोऽष्टमः ॥ २४ ॥ मेरुपृष्ठे तपोघोरमद्यापिचरतिप्रभुः ॥ भ्राताशनैश्चरस्तस्यग्रहोऽभूच्छासनाद्रवेः ॥ २५ ॥ यवीयसीतुयाकन्याऽऽदित्यस्याभूद्द्विजोत्तम ॥ अभवत्सासरिच्छ्रेष्ठातपनीलोकपावनी ॥ २६ ॥ यस्तुज्येष्ठोमहाभागःसर्गोयस्येहसाम्प्रतम् ॥ विस्तरंतस्यवक्ष्यामिमनोर्वैवस्वतस्यह ॥२७॥ इदंयोजन्मदेवानांशृणुयाद्वापठेतवा ॥ विवस्वतस्तनूजानांरवेर्माहात्म्यमेवच ॥२८॥ आपदंप्राप्यमुच्येतप्राप्नुयाच्चमहायशः॥ अहोरात्रकृतंपापमेतच्छमयतेश्रुतम् ॥ माहात्म्यमादिदेवस्यमार्तण्डस्यमहात्मनः ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेरवेर्माहात्म्यवर्णनं नामपंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

कन्या लोकपावनी यमुना नदियोंमें श्रेष्ठ हुई है ॥ २६ ॥ जो ज्येष्ठपुत्र वैवस्वत मनु हैं, इस समय जिनकी सृष्टि चलती है, उनके वंशका विस्तार पीछे वर्णन करूंगा ॥ २७ ॥ इन सूर्यपुत्र देवताओंके जन्मकी कथा और रविका माहात्म्य जो पुरुष सुनते हैं वा पढते हैं ॥ २८ ॥ वह उपस्थित विपदसे छूटकर महायशको प्राप्त होते हैं और आदिदेव महात्मा मार्त्तण्डका माहात्म्य सुननेसे अहोरात्रके किये संपूर्ण पाप नष्ट होते हैं ॥ ॥ २९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां रवेर्माहात्म्यवर्णनं नाम पंचाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०५ ॥

कौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने भानुकी सन्ततिका होना और उन आदिदेवका माहात्म्य तथा स्वरूप विस्तारपूर्वक भलीभाँति वर्णन किया ॥ ॥ १ ॥ किन्तु हे मुनिसत्तम ! भास्करके सम्यक् माहात्म्यका वृत्तान्त फिर सुननेकी इच्छा करता हूं उसको आप प्रसन्न होकर वर्णन कीजिये ॥ ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—आदिदेव विवस्वानने पूर्वकालमें जनोंके द्वारा आराधित होकर जो जो संपादन किया था, वह समस्तमाहात्म्यका विषय तुमसे कहता हूं ॥ ३ ॥ दमके पुत्र विख्यात राज्यवर्द्धन राजा होकर सम्यक् प्रकारसे पृथ्वीका पालन करते थे ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उन महात्माके स्वधर्म पूर्वक प्रजापालन करने पर उस समय राष्ट्र, धन, जनसे नित्य वृद्धिको प्राप्त हुआ था ॥ ५ ॥ और उनके राजा होनेपर

॥ कौष्टुकिरुवाच ॥ ॥ भगवन्कथितःसम्यग्भानोःसन्ततिसंभवः ॥ माहात्म्यमादिदेवस्यस्वरूपश्चातिविस्तरात् ॥ १ ॥ भूयोऽपि भास्वतःसम्यङ्माहात्म्यंमुनिसत्तम ॥ श्रोतुमिच्छाम्यहंतन्मेप्रसन्नोवक्तुमर्हसि ॥ २ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ श्रूयतामादिदेवस्य माहात्म्यंकथयामिते ॥ विवस्वतोयच्चकारपूर्वमाराधितोजनैः ॥ ३ ॥ दमस्यपुत्रोविख्यातोराजाभूद्राज्यवर्धनः ॥ ससम्यक्पालनंचक्रेपृथिव्याःपृथिवीपतिः ॥ ४ ॥ धर्मतःपाल्यमानंतुतेनराष्ट्रंमहात्मना ॥ ववृधेऽनुदिनंविप्रजनेनचधनेनच ॥ ५ ॥ हृष्टपुष्टमतीवासीत्तस्मिन्राजन्यशेषतः ॥ निर्भयःसकलश्चोर्व्यांपौरजानपदोजनः ॥ ६ ॥ नोपसर्गोनचव्याधिर्नचव्यालोद्भवंभयम् ॥ नचावृष्टिभयन्तत्रदमपुत्रेमहीपतौ ॥ ७ ॥ सईजेचमहायज्ञैर्ददौदानानिचार्थिनाम् ॥ सुधर्मस्याविरोधेनबुभुजेविषयानपि ॥ ८ ॥ तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ॥ सप्तवर्षसहस्राणिजग्मुरेकमहर्यथा ॥ ९ ॥ विदूरथस्यतनयादाक्षिणात्यस्यभूभृतः ॥ तस्यपत्नीबभूवाथमानिनीनाममानिनी ॥ १० ॥

अन्यान्य राजागण, समग्र पृथ्वी और पौरजन गण निर्भय होकर अत्यन्त हृष्ट पुष्ट हुए थे ॥ ६ ॥ दमपुत्र महीपति राज्यवर्द्धनके शासनकालमें कोई उपसर्ग, व्याधि, सर्पादि हिंसकजन्तुका वा भय अवृष्टिका भय नहीं था ॥ ७ ॥ वह महामहायज्ञकार्यमें अर्थीगणोंको दान करके अति धर्मके सहित विषयोंको भोगते थे ॥ ८ ॥ इस प्रकार राज्यकार्य और सम्यक् प्रकार प्रजापालन करके उन्होंने एकदिनके समान सातहजार वर्ष बिताये थे ॥ ९ ॥ विदूरथनामक दक्षिणदेशके अधिपतिकी मानिनी नामक कन्या उनकी पत्नी थी ॥ १० ॥

एक समय सुभ्रू मानिनीने राजपुरुषोंके सामने राजाके मस्तकमें तेल मलते मलते आंसू गिराया ॥ ११ ॥ क्रमानुसार वह आंसू राजाके गात्रमें गिरा, तब राज्यवर्द्धनने मानिनीको अश्रुपूर्णनेत्र देखकर इसका वृत्तान्त पूछा ॥ १२ ॥ किन्तु वह कुछ भी उत्तर न देकर केवल आंसू गिराती हुई निःशब्द भावसे रोने लगी। यह देखकर राज्यवर्द्धनने फिर मानिनीसे पूछा यह क्या ? तुम क्यों रोती हो ? ॥ १३ ॥ मनस्विनीने स्वामीके इस प्रकार पूछनेपर 'कुछ नहीं' केवल मात्र यह उत्तर दिया ॥ १४ ॥ राजाने उस सुमध्यमासे बहुत ही पूछा परंतु फिर उसने राज्यवर्धनसे कुछ न कहा, राजाने उस मानिनीसे फिर पूछा कि, यह क्या है जब राजाने बहुत ही पूंछा तब भामिनीने

कदाचित्तस्यसासुभ्रूःशिरसोऽऽयञ्जनादृता ॥ पश्यतोराजलोकस्यमुमोचाश्रूणिमानिनी॥११॥ तदश्रुबिन्दवोगात्रेयदातस्यमहीपतेः ॥ तदावीक्ष्याश्रुवदनांतामपृच्छतमानिनीम् ॥ १२ ॥ निःशब्दमश्रुमोक्षेणरुदन्तींतांविलोक्यवै ॥ किमेतदितिपप्रच्छमानिनींराज्यवर्धनः ॥ १३ ॥ पृष्टासातुनतस्तेनभर्त्राप्राहमनस्विनी ॥ नकिंचिदितितांभूयः पप्रच्छसमहीपतिः ॥ १४ ॥ बहुशःपृच्छतस्तस्यभूभृतः सासुमध्यमा ॥ (नकिंचिदितिहोवाचसाभूयोराज्यवर्धनम् ॥ किमेतदितिपप्रच्छमानिनींपार्थिवःपुनः ॥ बहुशःप्रेरितातेनसाभर्त्रातत्र भामिनी ॥) दर्शयामासपलितंकेशभागान्तरोद्भवम् ॥ १५ ॥ पौराणांचमहीपालकिमन्यन्मन्युकारणम् ॥ ममातिमन्दभाग्याया जहासाथनृपस्ततः ॥ १६ ॥ सविवस्याहतांपत्नींशृण्वतांसर्वभूभृताम् ॥ पौराणांचमहीपालायेतत्रासन्समावृताः ॥ १७ ॥ शोकेनालंविशालाक्षिरोदितव्यंनतेशुभे ॥ जन्मर्द्धिपरिणामाद्याविकाराःसर्वजन्तुषु ॥ १८ ॥ अधीताःसकलावेदाइष्टायज्ञाःसहस्रशः ॥ दत्तं द्विजानांपुत्राश्चसमुत्पन्नावरानने ॥ १९ ॥

राजाको केशोंके मध्यमें एक श्वेतबाल दिखाया ॥ १५ ॥ हे राजन् ! इसको देखो क्रोधका कारण नहीं है यह मुझ मन्दभागिनीका भाग्य है यह सुनकर राजाको बडी हँसी आई ॥ १६ ॥ वह हँसते हँसते आये हुये राजगण और पौरगणोंके सामने पत्नीसे कहने लगे ॥ १७ ॥ हे विशालाक्षि ! हे कल्याणि ! रोदन मत करो । समस्त जन्तुओंमें ही जन्म वृद्धि और परिणामादि विकार दिखाई देते हैं सुतरां इसके लिये शोक करना निष्प्रयोजन है ॥ १८ ॥ हे वरानने ! मैंने संपूर्ण वेद अध्ययन सहस्र सहस्रयज्ञ संपादन ब्राह्मणोंको अर्थादि

दान-पुत्रोत्पादन ॥ १९ ॥ तुम्हारे संग मनुष्योंको अति दुर्लभ समस्त भोगने योग्य विषय उपभोग सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन न्यायपूर्वक युद्धानुष्ठान ॥ २० ॥ और प्रियमित्रोंके सहित हास्य परिहास तथा वनविहार आदि अनेक कार्य किये हैं. हे भद्रे ! ऐसा क्या कार्य नहीं किया है, जो तुम मेरा पलित (पका केश) देखकर भीत होती हो ! ॥ २१ ॥ हे शुभे ! मेरे केश पलित हों अर्थात् पक जाँय, वलि प्रकटित हों और शरीर शिथिलताको प्राप्तहो इससे कुछ हानि नहीं है क्योंकि हे मानिनी ! मैं इस समय कृतकृत्य हुआहूं ॥ २२ ॥ हे भद्रे ! मेरे मस्तकमें जो पका हुआ केश देखा है, मैं वनाश्रमका आश्रय करके उसकी चिकित्सा करूंगा ॥ २३ ॥ बालकपनमें बालक्रीडा, तथा कौमार

भुक्ताभोगास्त्वयासार्द्धंयेमर्त्यैरतिदुर्लभाः ॥ सम्यक्चपालितापृथ्वीशौर्य्ययुद्धेष्वनुष्ठितम् ॥ २० ॥ मित्रैःसहेष्टैर्हसितंविहृतंचवनान्तरे ॥ किमन्यन्नकृतंभद्रेपलितेभ्योबिभेषियत ॥ २१ ॥ भवन्तुकेशाःपलितावलयःसन्तुमेशुभे ॥ शैथिल्यमेतुमेकायःकृतकृत्योऽस्मिमानिनि ॥ २२ ॥ मूर्ध्नियद्दर्शितंभद्रेभवत्यापलितंमम ॥ चिकित्सामेवतस्याहंकरोमिवनसंश्रयात् ॥ २३ ॥ बाल्येबालक्रिया पूर्वंतद्वत्कौमारकेचया ॥ यौवनेचापियायोग्यावार्द्धकेवनसंश्रया ॥ २४ ॥ एवंमत्पूर्वजैर्भद्रेकृतंतत्पूर्वजैश्चयत् ॥ अतोनतेश्रुपातस्यकिंचित्पश्यामिकारणम् ॥ २५ ॥ अलन्तेमन्युनाभद्रेनन्वभ्युदयकारिमे ॥ दर्शनंपलितस्यास्यमागोदीर्निष्प्रयोजनम् ॥ २६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःप्रणम्यतंभूपाःपौराश्चैवसमीपगाः ॥ साम्नाप्रोचुर्महीपालामहर्षेराज्यवर्धनम् ॥ २७ ॥ नगोदितव्यमनया तवपत्न्यानराधिप ॥ रोदितव्यमिहास्माभिरथवासर्वजन्तुभिः ॥ २८ ॥

और यौवनमें भी उसके योग्य कार्य (विद्याभ्यास विषयभोगादि) संपादन करके वृद्धावस्थामें वनकाही आश्रय करना उचित है ॥ २४ ॥ हे भद्रे ! मेरे पूर्वपुरुषगण और उनकेभी पूर्वपूर्व पुरुषगण इसी प्रकार करते आये हैं, अतएव मैं तुम्हारे अश्रुपातका कोईभी कारण नहीं देखताहूं हे भद्रे ! शोक परित्याग करो ॥ २५ ॥ मेरा यह पलित केश दीखना भाग्योदयकारी है, अतएव निष्प्रयोजन रोदन मत करो ॥ २६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महर्षे ! अनन्तर समीपस्थ भूपाल और पौरगण राजा राज्यवर्द्धनको प्रणाम करके विनय पूर्वक कहने लगे ॥२७॥ हे नराधिप ! आपकी पत्नीका रोदन अनावश्यक है किन्तु हमारा अथवा संपूर्ण जन्तुओंकाही इस समय रोदन काल उपस्थित हुआ है ॥ २८ ॥

हे नाथ! आप हमारे प्रतिपालक हैं, हे नृप ! आपने जो वनवास आश्रय करनेकी बात कही इससे हमारे प्राण निकले जाते हैं ॥२९॥ यदि आप वनमें जायँगे, तो हमभी सब वहाँ चलेंगे। हे नाथ ! आपके वनवासी होनेपर पृथ्वीवासियोंकी निःसंदेह श्रौतस्मार्त्त अशेष क्रियाकी हानि होगी ॥ ३० ॥ इसमें यदि धर्मकी बाधा विचारते हो तो इस संकल्पको परित्याग कीजिये ॥ ३१ ॥ हे नराधिप ! आपने सातहजारवर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, उससे कैसे महापुण्यका उदय हुआ है, देखिये ॥ ३२ ॥ हे महाराज ! आप वनमें वास करके जो तप करेंगे, वह इस पृथ्वीपालनके षोडशभागके समान भी नहीं होगा ॥ ३३ ॥ राजाने कहा—मैंने सातहजारवर्ष इस पृथ्वीका पालन किया है, अब मेरे

त्वंब्रवीषियथानाथवनवासाश्रितंवचः ॥ पतन्तितेननःप्राणालालितानांत्वयानृप ॥ २९ ॥ सर्वैयाम्यामहेभूपयदियातिभवान्वनम् ॥ ततोऽशेषक्रियाहानिः सर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ ३० ॥ भविष्यतिनसन्देहस्त्वयिनाथवनाश्रये ॥ साचधर्मोपघाताययदितत्प्रविमुच्यताम् ॥ ३१ ॥ सप्तवर्षसहस्राणित्वयेयंपालितामही ॥ तत्समुत्थंमहापुण्यमालोकयनराधिप ॥ ३२ ॥ वनेवसन्महाराजत्वंकरिष्यसियत्तपः ॥ तन्महीपालनस्यास्यकलांनार्हतिषोडशीम् ॥ ३३ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ सप्तवर्षसहस्राणिमयेयंपालितामही ॥ इदानींवनवासस्यममकालोयमागतः ॥ ३४ ॥ ममापत्यानिजातानिदृष्ट्वामेऽपत्यसन्ततीः ॥ स्वल्पैरेवमहोभिर्मेह्यन्तकोनसहिष्यति ॥ ३५ ॥ यदेतत्पलितंमूर्ध्नितद्विजानीतनागराः ॥ दूतभूतमनार्य्यस्यमृत्योरत्युग्रकर्मणः ॥ ३६ ॥ सोऽहं राज्येसुतंकृत्वाभोगांस्त्यक्त्वावनाश्रयः॥ तपस्तप्स्येसमायान्तियावद्यमसैनिकाः ॥ ३७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततोयियासुःसवनंदैवज्ञानवनीपतिः ॥ पुत्रराज्याऽभिषेकाय दिनलग्नान्यपृच्छत ॥ ३८ ॥

वनवासकाही उपयुक्त समय उपस्थित है ॥ ३४ ॥ मेरे पुत्र उत्पन्न होगये हैं, अब उन सब पुत्रोंकी सन्तानको देखकर अन्तक (यम) अल्पकालके लिये भी सहन नहीं करेंगे अर्थात् शीघ्रही आयु शेष होगी ॥ ३५ ॥ हे नगरवासियो ! मेरे मस्तकमें जो पलित केश देखा है, इसीको उग्रकर्मा अनार्य मृत्युका दूत जानना चाहिये ॥ ३६ ॥ अतएव मैं पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके भोगपरित्यागपूर्वक वनवासी हो यमसेनाके आगमनकालपर्यन्त तपस्या करूंगा ॥ ३७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनन्तर पृथ्वीपतिने, वन जानेमें स्थिर संकल्प हो ज्योतिषियोंसे पुत्रके राज्याभिषेकका दिन

लग्न पूछा ॥ ३८ ॥ ज्योतिषीगण शास्त्रदर्शी होकरभी राजाका वचन सुननेसे व्याकुलचित्तताके कारण दिन लग्न होरा इत्यादिके देखनेमें असमर्थ होकर ॥ ३९ ॥ वाष्पगद्गद वाणीके द्वारा राजासे कहने लगे हे नृप ! आपका वचन सुननेसे हमारा ज्ञान नष्ट होगया है ॥ ४० ॥ हे मुने ! फिर क्रमानुसार अन्यान्य नगर अधीन हुए राष्ट्र और उस राजधानीसे अनेकानेक वृद्ध द्विजश्रेष्ठ गण ॥ ४१ ॥ आया वनवासेच्छुक राजासे मस्तक कम्पायमान करते हुए कहने लगे ॥४२॥ हे राजन्! प्रसन्न हूजिये। अनुग्रहपूर्वक पूर्वके समान हमारा पालन कीजिये। हे भूपाल! आपके वनगमन करनेसे समस्त मनुष्य अत्यन्त दुःखी होजायँगे ॥४३॥ अतएव हे राजन्! जिससे संपूर्ण जगत् दुःखी न हो, आप वही कीजिये हे वीर! हम और

श्रुत्वाचतेतुनृपतेर्वचोव्याकुलचेतसः ॥ दिनंलग्नंचहोराश्चनविदुःशास्त्रदृष्टयः ॥ ३९ ॥ ऊचुश्चनंमहीपालंदैवज्ञावाष्पगद्गदम् ॥ ज्ञाना निनःप्रणष्टानिश्रुत्वैतत्तेवचोनृप ॥ ४० ॥ ततोऽन्यनगरेभ्यश्चभृत्यैराष्ट्रेभ्यएवच ॥ ततस्तस्माच्चनगरात्प्राचुर्येणाभ्युपागमन् ॥४१॥ समुत्पत्यमहीपालंतंयियासुंमुनेवनम् ॥ प्रकम्पिशिरसोभूत्वाप्रोचुर्ब्राह्मणसत्तमाः ॥ ४२ ॥ प्रसीदपाहिनोराजन्पालितास्मयथा पुरा ॥ सीदिष्यत्यखिलोलोकस्त्वयिभूपवनाश्रये ॥ ४३ ॥ त्वंकुरुष्वतथाराजन्यथानोसीदतेजगत ॥ यावज्जीवामहेवीरस्वल्पका लमिमेवयम् ॥ नेच्छामश्चभवच्छून्यंद्रष्टुंसिंहासनंविभो ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्येवंतैस्तथान्यैश्चद्विजैःपौरपुरःसरैः ॥ भूपैर्भृत्यैरमात्यैश्चराजाप्रोक्तःपुनःपुनः ॥ ४५ ॥ वनवासविनिर्बन्धंनोपसंहर्तुमैच्छत ॥ क्षमिष्यत्यन्तकोनेनिदर्दामचनदोत्तरम्॥४६॥ ततोऽमात्याश्चभूपाश्चपौरवृद्धास्तथाद्विजाः ॥ समेत्यमन्त्रयामासुःकिमत्रक्रियतामिति ॥ ४७ ॥ तेषांमन्त्रयतांविप्रनिश्चयोऽयमजा यत ॥ अनुरागवतांतत्रमहीपालेऽतिधार्मिके ॥ ४८ ॥

केवल थोडे काल जियेंगे इसके बीचमें तुम्हारे शून्य सिंहासनको देखनेकी अभिलाषा नहीं करते॥४४॥ मार्कण्डेयजी बोले। इसप्रकार उन सब तथा अन्यान्य ब्राह्मणगण पौरगण भूपालगण अमात्य और भृत्यगणके वारंवार अनुरोध करनेपरभी ॥४५॥ उन्होंने वनवासकी कामना परित्याग न करके 'यम कभी क्षमा न करेंगे' केवल यही उत्तर दिया ॥४६॥ तब ब्राह्मण, पौरवृद्ध, अमात्य और भृत्यगण मिलित होकर परामर्श करने लगे कि, "इस समय क्या किया जाय ?"॥४७॥ हे विप्र! धार्मिकप्रवर राजाके प्रति अनुरागी उन सब ब्राह्मणादिकोंने परामर्शमें यही स्थिर किया

कि ॥ ४८ ॥ हम सम्यक् प्रकार ध्यानमें रत होकर तपस्याके द्वारा भास्करकी आराधना करें और उनसे इन महीपतिकी आयु माँगे ॥४९॥ अनन्तर वह सब इस कार्यमें एक निश्चय हो कोई कोई घरमें अर्घ्योपचारादि उपहार द्वारा भास्करकी पूजा करने लगे ॥ ५० ॥ कोई मौनी होकर ऋक् मंत्रके जपद्वारा, कोई यजुर्वेदानुयायी और कोई सामानुयायी जपद्वारा रविका संतोष साधन करने लगे॥५१॥ अपर कोई नदीके पुंलिनमें निराहार तपस्याचरण करके परिश्रमसहित भास्करकी आराधना करने लगे॥५२॥कोई अग्निहोत्रमें तत्पर हुए दिनरात रविसूक्तका जप करने लगे ॥ और कोई भास्करकी ओर दृष्टि लगाकर खडे रहे॥५३॥इस भाँति वह उस उस प्रसिद्ध विधिके अनुसार अनेक प्रकारके सूर्यकी

सम्यग्ध्यानपराभूत्वाप्रार्थयामःसमाहिताः ॥ तपसाराध्यभास्वन्तमायुरस्यमहीपतेः ॥ ४९ ॥ तत्रैकनिश्चयाःकार्य्येकेचिद्गेहेचभास्करम् ॥ सम्यगर्घोपचाराद्यैरुपहारैरपूजयन् ॥ ५० ॥ अपरेमौनिनोभूत्वाऋग्जापेनतथाऽपरे ॥ यजुषामथमाम्नांचतोषयाञ्चक्रिरेरविम् ॥ ५१ ॥ अपरेचनिराहारानदीपुलिनशायिनः ॥ तपांसिचक्रुरिच्छंतोभास्करराधनंद्विजाः ॥ ५२ ॥ अग्निहोत्रपराश्चान्येरविसूक्तान्यहर्निशम् ॥ जेपुस्तत्रापरेतस्थुर्भास्करेन्यस्तदृष्टयः ॥ ५३ ॥ इत्येवमतिनिर्बन्धंभास्कराराधनंप्रति ॥ बहुप्रकारंचक्रुस्तेनंतंविधिमुपाश्रिताः ॥ ५४ ॥ तथातुयततांतेषांभास्कराराधनंप्रति ॥ सुदामनामागन्धर्वउपगम्येदमब्रवीत् ॥ ५५ ॥ यद्याराधनमिष्टंवोभास्करस्यद्विजातयः ॥ तदेतत्क्रियतांयेनभानुःप्रीतिमुपैष्यति ॥ ५६ ॥ तस्माद्गुरुविशालाख्यंवनंसिद्धनिषेवितम् ॥ कामरूपेमहाशैलेगम्यतांतत्रवैलघु ॥ ५७ ॥ तस्मिन्नाराधनंभानोःक्रियतांसुसमाहितैः ॥ सिद्धक्षेत्रंहितंतत्रसर्वकामानवाप्स्यथ ॥ ५८ ॥
॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितेतद्वचःश्रुत्वागत्वातत्काननंद्विजाः ॥ ददृशुर्भास्वतस्तत्रपुण्यमायतनंशुभम् ॥ ५९ ॥

आराधनामें दृढसंकल्प रहे॥५४॥उनका इस प्रकार सूर्यकी आराधनामें अतिशय यत्न देख, सुदामा नामक गन्धर्वने वहाँ आकर कहा॥५५॥हे ब्राह्मणो!यदि भानुकी आराधना करनाही आपका अभीष्ट है, तो जिससे वह प्रसन्न हों, उसी कार्यके करनेकी चेष्टा करो ॥ ५६ ॥ कामरूप महापर्वतमें सिद्धोंके द्वारा सेवित, 'गुहविशाल' नामक वनमें शीघ्र जाकर ॥ ५७ ॥ वहां सावधान चित्तसे भानुकी आराधना करो, इससे आपकी वांछित अभिलाषा सिद्ध होगी, क्योंकि इन सब कार्योंमें सिद्धक्षेत्रही अधिक फलदायक है ॥५८॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम!ब्राह्मणगण

गन्धर्वके उक्त वचन सुनकर उस वनमें गये और वहां भगवान् भास्करका पवित्र मन्दिर देखा ॥५९॥ ब्राह्मणादि सब वर्णोंनेही उस स्थानमें नियताहार अवलम्बनपूर्वक आलस्यरहित हो धूप और पुष्पादि उपहारद्वारा भास्करदेवकी पूजा करी ॥ ६० ॥ हे ब्रह्मन् ! अनुलेपन, गन्ध, पुष्प, धूप, दीप, जप, होम और नैवेद्य इत्यादिके द्वारा सावधानचित्तसे पूजा करते करते ब्राह्मणगण सूर्य देवकी स्तुति करने लगे ॥६१॥ब्राह्मण बोले—देव, दानव, यक्ष और ज्योतिष्कग्रहोंमें अधिक तेजस्वी सूर्य देवकी हम शरणागत हुये हैं ॥ ६२ ॥ जो देवेश्वर आकाशमें स्थित होकर संपूर्ण दिशाओंको प्रकाशित करते हैं, जो किरणोंसे वसुधा और अन्तरिक्षको व्याप्त कर रहेहैं ॥ ६३ ॥ जो भास्कर, सविता, दिवाकर, पूषा,

तत्रतेनियताहारावर्णाविप्रादयोद्विज ॥ धूपपुष्पोपहाराढ्यांपूजांचक्रुरतन्द्रिताः ॥ ६० ॥ पुष्पानुलेपनाद्यैश्चधूपगन्धादिकैस्तथा ॥ जपहोमान्नदानाद्यैःपूजनंतेसमाहिताः ॥ कुर्वन्तस्तुष्टुवुर्ब्रह्मन्विवस्वन्तंद्विजातयः ॥ ६१ ॥ ॥ ब्राह्मणाऊचुः ॥ ॥ देवदानवयक्षाणां ग्रहाणांज्योतिषामपि ॥ तेजसाभ्यधिकंदेवंव्रजामशरणंरविम् ॥ ६२ ॥ दिविस्थितंचदेवेशंद्योतयन्तंसमन्ततः ॥ वसुधामन्तरिक्षंच व्याप्नुवन्तंमरीचिभिः ॥ ६३ ॥ आदित्यंभास्करंभानुंसवितारंदिवाकरम् ॥ पूषाणमर्यमाणंचस्वर्भानुंदीप्तदीधितिम् ॥ ६४ ॥ चतुर्युगान्तकालाग्निदुष्प्रेक्ष्यंप्रलयान्तगम् ॥ योगीश्वरमनन्तंचरक्तंपीतंसितासितम् ॥ ६५ ॥ ऋषीणामग्निहोत्रेषुयज्ञदेवत्वनस्थितम् ॥ व्रजामशरणंदेवंतेजोराशितमच्युतम् ॥ अक्षरंपरमंगुह्यंमोक्षद्वारमनुत्तमम् ॥ ६६ ॥ छन्दोभिरश्वरूपैश्चसकृद्युक्तेर्विहङ्गमम ॥ उदयास्तमनेयुक्तंसदामेरोःप्रदक्षिणे ॥ ६७ ॥ अनृतंचऋतंचैवपुण्यतीर्थंपृथग्विधम् ॥ विश्वस्थितिमचिन्त्यंचप्रपन्नाःस्मप्रभाकरम् ॥६८॥

अर्यमा, स्वर्भानु, दीप्त दीधिति ॥ ६४ ॥ और योगीश्वर नामसे कथित हैं, जो चारोंयुगके अन्तमें दुर्निरीक्ष्य कालाग्निस्वरूप हैं जो अनन्त, रक्त, पीत, श्वेत, कृष्ण हैं ॥ ६५ ॥ जो ऋषियोंके अग्निहोत्रकालमें यज्ञदेवाधिष्ठाता हैं, जो अक्षर और परमगुह्य अति उत्तम मोक्षद्वारा ब्रह्म स्वरूप हैं जो एकवारजोडे हुए छन्दोंरूप अश्वद्वारा आकाशगामी हैं जो उदयास्त गमनमें और सुमेरुकी प्रदक्षिणामें सदा नियुक्त हैं और ॥ ६६ ॥६७ ॥ जो मिथ्या सत्य, पुण्यतीर्थ और पृथक् प्रकारसे विश्वस्थितिस्वरूप हैं, उन्हीं अदितिके गर्भसे उत्पन्न अनन्त अचिन्त्य आदिदेव प्रभाकरका हमने आश्रय लिया है ॥ ६८ ॥

जो ब्रह्मा हैं, जो महादेव हैं, जो विष्णु हैं, जो प्रजापति हैं, जो वायु, आकाश, जल, पृथ्वी, पर्वत, समुद्र ॥ ६९ ॥ ग्रह, नक्षत्र, चन्द्रादि, वनस्पति, वृक्ष और ओषधी स्वरूप हैं जो व्यक्ताव्यक्त भूतगणोंके धर्माधर्म प्रवर्त्तक हैं ॥ ७० ॥ और ब्राह्मी, माहेश्वरी तथा वैष्णवी तनुभेदसे जिनका स्वरूप त्रिधा विभिन्न हुआ है. वह भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७१ ॥ सब पदार्थ ही जिन अनादि जगत्प्रभुकी गोदीमें स्थित हैं और जो जगत्के जीवनस्वरूप हैं, वह भास्वान् हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७२ ॥ जिनका अद्वितीय प्रकाशमान प्रभामण्डल दुर्निरीक्ष्य है दिवाकर और सौम्य सुधाकर यह दो रूप हैं, वह भास्करदेव हमारे प्रति प्रसन्न हों ॥ ७३ ॥

योब्रह्मायोमहादेवोयोविष्णुर्यःप्रजापतिः ॥ वायुराकाशमापश्चपृथिवीगिरिसागराः ॥ ६९ ॥ ग्रहनक्षत्रचन्द्राद्यावानस्पत्यद्रुमौषधम् ॥ व्यक्ताव्यक्तेषुभूतेषुधर्माधर्मप्रवर्त्तकः ॥ ७० ॥ ब्राह्मीमाहेश्वरीचैववैष्णवीचैवतेतनुः ॥ त्रिधायस्यस्वरूपन्तुभानोर्भास्वान्प्रसीदतु ॥ ७१ ॥ यस्यसर्वमयस्येदमङ्कभूतंजगत्प्रभोः ॥ सनःप्रसीदतांभास्वाञ्जगतांयश्चजीवनम् ॥ ७२ ॥ यस्यैकमक्षरंरूपंप्रभामण्डलदुर्दृशम् ॥ द्वितीयमैन्दवंसौम्यसनोभास्वान्प्रसीदतु ॥ ७३ ॥ ताभ्यांचनस्यरूपाभ्यामिदंविश्वंविनिर्मितम् ॥ अग्नीषोममयंभास्वान्सनोदेवःप्रसीदतु ॥ ७४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्थंस्तुत्यानदाभक्त्यासम्यक्पूजाविधानतः ॥ तुतोषभगवान्भास्वांस्त्रिभिर्मासैर्द्विजोत्तम ॥ ७५ ॥ ततःसमण्डलादुद्यन्निजबिंबसमप्रभः ॥ अवतीर्यददौतेभ्योदुर्दृशोदर्शनंरविः ॥ ७६ ॥ ततस्तेस्पष्टरूपंतंसवितारमजंजनाः ॥ पुलकोत्कम्पिनोविप्राभक्तिनम्राःप्रणेमिरे ॥ ७७ ॥ नमोनमस्तेस्तुसहस्ररश्मेसर्वस्यहेतुस्त्वमशेषकेतुः ॥ पातात्वमीडयोऽखिलयज्ञधामध्येयस्तथायोगविदांप्रसीद ॥ ७८ ॥

जिनके उन प्रसिद्ध दो रूपोंसे यह अग्नीसोममय विश्व निर्मित हुआ है, वही भास्कर हमारे प्रति प्रसन्न हों॥७४॥मार्कण्डेयजी बोले—हे द्विजोत्तम! इस प्रकार जब उन्होंने अत्यन्त भक्तिसहित तीन महीनेतक स्तवपाठपूर्वक पूजा करी, तब भगवान् भास्कर सन्तुष्ट हुए ॥ ७५ ॥ और स्वयं दुर्निरीक्ष्य होकरभी उन्होंने मण्डलसे निकल अपने उदयकालीन मण्डलकी प्रभासे उनको दर्शन दिया ॥७६॥ तब उन मनुष्योंने उनका स्पष्ट रूप देखनेसे पुलकित और भक्तिनम्र हो उन अनादि सविताको यह कहकर प्रणाम किया ॥७७॥ हे सहस्ररश्मे ! तुमको नमस्कार है तुम सम-

स्त भूतके कारण और अखिल जगत्के पताकास्वरूप हो। हे अखिलयज्ञेश्वर ! तुम्हीं पूज्य, तुम्हीं सब यज्ञोंके आधार और योगविद् पुरुषोंके ध्यानका विषय हो, तुम हमारे प्रति प्रसन्न होओ ॥७८॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भानुस्तवो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः॥१०६॥
मार्कण्डेयजी बोले—इसके पीछे भगवान् भानुने प्रसन्न होकर उन संपूर्ण जनोंसे कहा हे द्विजातिगण ! तुमने मुझसे जो प्राप्त करनेकी अभिलाषा की है, उसको मांगो ॥ १ ॥ तब द्विजाति प्रजागणोंने उष्णांशुको सन्मुख देख, भ्रमसहित प्रणाम कर उन वरदेनेवाले जगदीश्वरसे कहा ॥२॥ प्रजाने कहा हे भगवन् हे तिमिरहारी ! यदि आप हमारी भक्तिसे प्रसन्न हुए हैं ॥ ३ ॥ तो हमारे राजा राज्यवर्द्धन निरामय रोगरहित विजित

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भानुस्तवोनामषडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःप्रसन्नोभगवान्भानुराहाखिलाञ्जनान् ॥ व्रियतांयदभिप्रेतंमत्तःप्राप्तुंद्विजादयः ॥ १ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तेप्रणिपत्योचुर्विप्रक्षत्रादयोजनाः ॥ ससाध्वसमशीतांशुमवलोक्यपुरःस्थितम् ॥ २ ॥ ॥ प्रजाऊचुः ॥ भगवन्यदिनोभक्त्याप्रसन्नस्तिमिरापह ॥ ३ ॥ दशवर्षसहस्राणि ततोनोजीवतांनृपः ॥ निरामयोजितारातिःसुकोशःस्थिरयौवनः ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तथेत्युक्त्वाजनान्भास्वानदृश्योऽभून्महामुने ॥ तेऽपिलब्धवराहृष्टाःसमाजग्मुर्जनेश्वरम् ॥ ॥ ५ ॥ यथावृत्तंचतेतस्मैनरेन्द्रायन्यवेदयन् ॥ वरंलब्ध्वासहस्रांशोःसकाशादखिलंद्विज ॥ ६ ॥ तच्छ्रुत्वाजहर्षेतस्यसापत्नीमानिनीद्विजः ॥ (प्रहर्षपरमंयाताहर्षोद्गततनूरुहा) ॥ सचराजाचिरंदध्यौनाहकिंचिच्चतंजनम् ॥ ७ ॥ ततःसामानिनीभूपंहर्षापूरितमानसा ॥ दिष्ट्याऽऽयुषामहीपालवर्द्धस्वेत्याहतंपतिम् ॥ ८ ॥

शत्रु पूर्णकोश और स्थिरयौवन होकर दशहजार वर्ष जीवित रहें ॥ ४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे महामुने ! भगवान् उस सब प्रजासे तथास्तु कहकर अन्तर्धान होगये। और वहभी वरलाभ करनेसे प्रसन्नचित्त हो राजाके समीप आये ॥ ५ ॥ हे द्विज ! सहस्रांशु सूर्यके समीप वरलाभ इत्यादि जो कुछ हुआ था ब्राह्मणों ने वह सब राजासे निवेदन किया ॥ ६ ॥ हे द्विज ! नरेन्द्रपत्नी मानिनी यह सुनकर अत्यन्त हर्षको प्राप्त हुई तथा परमहर्षसे शरीर पुलकित होगया किंतु राजा उनसे कुछ न कहकर बहुतकालतक चिंता करते रहे ॥ ७ ॥ इसके उपरांत मानिनीने प्रसन्न चित्तहो पतिसे कहा हे महीपाल ! सुवृद्ध आयुके द्वारा आप वृद्धिको प्राप्त हूजिये ॥८॥

हे द्विज ! आनन्दचित्त मानिनीके द्वारा इस प्रकार सत्कारको प्राप्त होकर भी राजाने चिन्ताकुल चित्तसे कोई उत्तर नहीं दिया ॥ ९ ॥ तब मानिनी फिर नीचेको मुख किये चिन्ताकुलभर्तासे कहने लगी । हे नृप ! आप ऐसे आनन्दके समयमें भी किस निमित्त हर्षको प्राप्त नहीं होते ? ॥ १० ॥ आप रोगरहित और स्थिरयौवन होकर अबसे दश हजार वर्ष जीवित रहेंगे इसपर भी आप प्रसन्न क्यों नहीं होते ॥ ११ ॥ हे पृथ्वीपते ! ऐसे आनन्दकालके उपस्थित होनेपर भी किस निमित्त आप चिन्ताकुल होरहे हैं इसका कारण प्रकाश कीजिये ॥ १२ ॥ राजा बोले हे भद्रे ! मेरा क्या भाग्योदय हुआ तुम क्यों मेरा सत्कार करती हो ? सहस्रों दुःखके प्राप्तहोनेमें क्या

तथातयामुदाभर्त्तामानिन्याथसभाजितः ॥ नाहकिंचिन्महीपालश्चिन्ताजडमनाद्विज ॥ ९ ॥ मापुनःप्राहभर्त्तारंचिन्तयानमधोमुखम् ॥ कस्मान्नहर्षमभ्येषिपरमाभ्युदयेनृप ॥१०॥ दशवर्षसहस्राणिनीरुजःस्थिरयौवनः ॥ भावीत्वमद्यप्रभृतिकिंतथापिनहृष्यसे ॥ ॥११॥ किन्तुतत्कारणंब्रूहियच्चिन्ताक्लिष्टमानसः ॥ परमाभ्युदयेऽपित्वंसंप्राप्तेपृथिवीपते ॥ १२ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ कथमभ्युदयो भद्रेकिंसभाजयसेचमाम् ॥ प्राप्तोदुःखसहस्राणांकिंसभाजनमिष्यते ॥ १३ ॥ दशवर्षसहस्राणिजीविष्याम्यहमेककः ॥ नत्वंतत्रविपत्तौमेकिन्नदुःखंभविष्यति ॥१४॥ पुत्रान्पौत्रान्प्रपौत्रांश्चतथान्यानिष्टबान्धवान् ॥पश्यतोमेमृतान्दुःखंकिमल्पंहिभविष्यति ॥ १५ ॥ भृत्येषुचातिभक्तेषुमित्रवर्गेतथामृते ॥ भद्रेदुःखमपारंमेभविष्यतितुसन्ततम् ॥ १६ ॥ येमदर्थंतपस्तप्तंक्लेशंधर्ममनिमन्ततैः ॥ तेमरिष्यन्त्यहंभोगीजीविष्यामीतिधिक्करम् ॥ १७ ॥ सेयमापद्वरारोहेप्राप्तानाभ्युदयोमम ॥ कथंवामन्यसेनत्वंयत्सभाजयसेऽद्यमाम्॥१८॥

आनंद भोगूंगा ? ॥ १३ ॥ मैं अकेला दशहजार वर्ष ही जीवित रहूंगा किन्तु तुम नहीं रहोगी, सुतरां तुम्हारी विपत्तिमें क्या मुझको दुःख नहीं होगा ॥ १४ ॥ पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और अन्यान्य प्रियबान्धवोंकी मृत्यु देखनेसे क्या मुझको अल्प दुःख होनेकी संभावना है ॥ १५ ॥ हे भद्रे ! अत्यन्त भक्त भृत्यगण और मित्रोंके मरनेपर मुझको सदा अपार दुःख अनुभव करना पड़ेगा ॥ १६ ॥ जिन्होंने मेरे लियेही नमोंको सुखाकर तपस्या की है, उनकीभी मृत्यु होगी किन्तु मैं जीवित रहकर भोग सुख अनुभव करूंगा यह क्या मुझको धिक्कार नहीं है ? ॥ १७ ॥ हे वरारोहे ! यह जो दश हजार वर्षकी परमायु है सो मुझको आपदा उपस्थित हुई है, यह भाग्योदय नहीं है, तुम इस बातको विना विचारे

वनमें मृगया (शिकार) के लिये जाकर ईश्वरके कोपसे ॥ १२ ॥ फिर यह मनुपुत्र स्त्री हुए थे। उसी समय सोमपुत्र बुधने उसके गर्भसे पुरूरवानामक तेजस्वी चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न किया, पुत्रोत्पत्तिके पीछे फिर अश्वमेध यज्ञ करनेसे ॥ १३ ॥ १४ ॥ वह सुद्युम्न पुरुषत्वको प्राप्त होकर राजा हुए थे सुद्युम्नके पुरुष होनेपर उनके उत्कल, विनय और गय नामक ॥ १५ ॥ महावीर याज्ञिक और विपुल तेजवाले तीन पुत्र थे। उनके पुरुषकालमें जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १६ ॥ वही राज्य लाभ करके धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करते थे, राजाके स्त्री कालमें जो पुरूरवा उत्पन्न हुए थे ॥ १७ ॥ वह बुधके पुत्रहोनेसे पृथ्वीका भाग प्राप्त नहीं करसके किंतु वसिष्ठजीकी आज्ञासे उनको प्रतिष्ठान नामक

स्त्रीत्वमासादितंतेनमनुपुत्रेणधीमता ॥ पुरूरवसनामानंचक्रवर्तिनमूर्जितम् ॥ १२ ॥ जनयामासतनयंयत्रसोमसुतोबुधः ॥ जातेसुते पुनःकृत्वामोऽश्वमेधंमहाक्रतुम् ॥ १४ ॥ पुरुषत्वमनुप्राप्तःसुद्युम्नःपार्थिवोऽभवत ॥ सुद्युम्नस्यत्रयःपुत्राउत्कलोविनियोगयः ॥१५॥ पुरुषत्वेमहावीर्य्यायज्विनःपृथुलौजसः ॥ पुरुषत्वेतुयेजातास्तस्यराज्ञस्त्रयःसुताः ॥ १६ ॥ बुभुजुस्तेमहीमेतांधर्मेनियतचेतसः ॥ स्त्रीभूतस्यतुयोजातस्तस्ययराज्ञःपुरूरवाः ॥ १७ ॥ नसलेभेमहीभागंयतोबुधसुतोहिसः ॥ ततोवसिष्ठवचनात्प्रतिष्ठानंपुरोत्तमम् ॥ तस्मैदत्तंसराजाभूत्तत्रातीवमनोहरे ॥ १८ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणे वंशानुक्रमोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ पृषध्राख्योमनोःपुत्रोमृगयामगमद्वनम् ॥ तत्रचंक्रममाणोऽसौविपिनेनिर्जनेवने ॥ १ ॥ नाससादमृगंकंश्चिद्भानुर्दीधितितापितः । क्षुत्तृट्तापपरीताङ्गइतश्चेतश्चचंक्रमन् ॥ २ ॥ सददर्शतदातत्रहोमधेनुंमनोहराम् ॥ लतान्तर्देहच्छिन्नार्धांब्राह्मणस्याग्निहोत्रिणः ॥ ३ ॥ समन्यमानोगवयमिषुणातामताडयत् ॥ पपातसापितद्बाणविभिन्नहृदयाभुवि ॥ ४ ॥

उत्तम पुर दियागया वह उसी मनोहर प्रदेशमें राजा हुए थे ॥१८॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां वंशानुक्रमोनामाष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥ मार्कण्डेयजी बोले -मनुपुत्र पृषध्र एक समय मृगयाकी अभिलाषासे वनमें गये थे। उन्हों ने निर्जन वनमें इधर उधर भ्रमण करके भी ॥१॥ कोई मृग नहीं पाया। किन्तु सूर्यकी किरणसे तप्त और भूख प्याससे पीडित होकर इधर उधर विचरण करते करते ॥ २ ॥ वहां किसी अग्निहोत्री ब्राह्मणकी खुली हुई मनोहर होम धेनु लताके अन्तरमें छिपी देखी ॥ ३ ॥ उन्होंने उसको गवय (गौसदृशजीव) जान बाण मारा।

और वह धेनुभी बाणसे हृदय फटजानेके कारण पृथ्वीमें गिरगई ॥ ४ ॥ हे मुने ! अग्निहोत्री ऋषिका गौपालनमें नियुक्त ब्रह्मचारी और तपस्यानुरागी बाभ्रव्यनामक पुत्र तिस कालमें पिताकी होमधेनुको गिरता हुआ देख, क्रोधित हो अत्यन्त क्रोधसे नष्ट एवं पसीनेसे आर्द्र देह और अश्रुपूर्ण घूर्णित नेत्रोंसे राजाके शाप देनेमें उद्यत हुआ ॥ ५ ॥ ६ ॥ राजा पृषध्र मुनिबालकके अंगमें क्रोधसे पसीना निकलता हुआ देखकर कहने लगे ॥ ७ ॥ प्रसन्न हूजिये, क्यों शूद्रके समान ऐसा क्रोध करते हो ? आप उत्तम ब्राह्मणके कुलमें जन्म ग्रहण करके जिस प्रकार शूद्र समान आचरण करते हैं, इस प्रकार किसी क्षत्रिय वा वैश्यकोभी कोपके वशीभूत नहीं देखा जाता ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब राजाने

ततोऽग्निहोत्रिणःपुत्रोब्रह्मचारीतपोरतिः ॥ शतवान्सपितुर्दृष्ट्वाहोमधेनुंनिपातिताम् ॥ ५ ॥ गोपालःप्रेषितःपुत्रोबाभ्रव्योनामनामतः ॥ कोपामर्षपराधीनचित्तवृत्तिस्ततोमुने ॥ ६ ॥ चुकोपविगलत्स्वेदजललोलाविलेक्षणः ॥ तंक्रुद्धंप्रेक्ष्यसनृपःपृषध्रोमुनिदारकम् ॥ ॥ ७ ॥ प्रसीदेतिजगौकस्माच्छूद्रवत्कुरुपेरुषम् ॥ नक्षत्रियोनवावैश्यएवंक्रोधमुपैतिवै ॥ यथात्वशूद्रवज्जातोविशिष्टेब्रह्मणःकुले ॥ ॥ ८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिनिर्भर्त्सितस्तेनसराज्ञामौलिनःसुतः ॥ शशापतंदुरात्मानंशूद्रएवभविष्यसि ॥ ९ ॥ प्रयास्यतिक्षयंब्रह्मन्यत्तेऽधीतंगुरोर्मुखात् ॥ होमधेनुर्ममगुरोर्यदियंहिंसितात्वया ॥ १० ॥ एवंशप्तोनृपःक्रुद्धस्तच्छापपरिपीडितः ॥ प्रतिशापपरोविप्रतोयंजग्राहपाणिना ॥ ११ ॥ सोऽपिराज्ञोविनाशायकोपंचक्रेद्विजोत्तमः ॥ तमभ्येत्यत्वरायुक्तोवारयामासवैपिता ॥ १२ ॥ वत्सालमलमत्यर्थंकोपेनातीववैरिणा ॥ ऐहिकामुष्मिकहितःशमएवद्विजन्मनाम् ॥ १३ ॥

इस प्रकार " शूद्रवत् " कहकर तिरस्कार किया, तब अग्निहोत्री ' मौलि ' ऋषिके उस पुत्रने दुर्मति राजाको यह शाप दिया कि, " तुम शूद्रही होंगे ॥ ९ ॥ और तुमने मेरे पिताकी होम धेनुका वध किया है, इस कारण तुम्हारी गुरुके मुखसे पढी हुई संपूर्ण ब्रह्मविद्या नष्ट होजायगी" ॥ १० ॥ हे विप्र ! राजाने इस प्रकार शापको प्राप्त होकर शाप व्यथित हृदयसे क्रोधपूर्वक प्रतिशाप देनेकी इच्छाकर हाथमें जल ग्रहण किया ॥ ११ ॥ तब द्विजोत्तम मुनिबालकभी राजाके विनाश करनेकी कामनासे अत्यन्त क्रोधित हुआ, इसी अवसरमें उसके पिता शीघ्रता सहित आय उसको निवारण करते हुए कहने लगे ॥ १२ ॥ हे वत्स ! भावीकालका अहितकारी कोप परित्याग करो । ब्राह्मणोंकी शान्तिही इसलोक

॥

और परलोकमें मंगलकारी है ॥ १३ ॥ कोप तपस्याका नाशकर्ता है और क्रोध होनेसे आयुक्षय होती है, ज्ञान लोप होता है, और अर्थहीनता अर्थात् दरिद्र होता है ॥ १४ ॥ क्रोधी पुरुष धर्म और अर्थ संचय नहीं कर सकता और कोपपरवशचित्त होनेपर काम प्राप्तिभी सुख संपादनमें समर्थ नहीं होती ॥ १५ ॥ यदि राजाने जानकरही इस धेनुकी हत्याकरी है तो इनके ऊपर, अपना हित चाहनेवाले पुरुषको दयाही करनी उचित है ॥ १६ ॥ और यदि अज्ञानसे उन्होंने मेरी धेनुको मारा है तो यह किस प्रकार शापके योग्य हो सकते हैं। क्योंकि इनका अन्तःकरण निर्दोषहै॥१७॥जो मनुष्य अपने हितकी इच्छासे दूसरेको दुःख देतेहैं उन मूढबुद्धि मनुष्योंके ऊपरभी दयालु पुरुषोंको दयाही प्रकाश करनी

कोपस्तपोनाशयतिक्रुद्धोभ्रश्यत्यथायुषः ॥ क्रुद्धस्यगलतेज्ञानंक्रुद्धश्चार्थाच्चहीयते ॥ १४ ॥ नधर्मंक्रोधशीलस्यनार्थंचाप्नोतिगेषणः ॥ नालंसुखायकामाप्तिःकोपेनाविष्टचेतसाम् ॥ १५ ॥ यदिराज्ञाहताधेनुरियंविज्ञानिनासता ॥ युक्तमत्रदयांकर्तुमात्मनोहितबोधिना ॥ ॥ १६ ॥ अथवाऽजानताधेनुरियंव्यापादितामम ॥ तत्कथंशापयोग्योऽयंदुष्टंनास्यमनोयतः ॥ १७ ॥ आत्मनोहितमन्विच्छन्बाधतेयोऽपरंनरः ॥ कर्तव्यामूढविज्ञानेदयातत्रदयालुभिः ॥ १८ ॥ अज्ञानतःकृतेदण्डंपातयन्तिबुधायदि ॥ बुधेभ्यस्तंमहमन्ये वरमज्ञानिनोनराः ॥ १९ ॥ नाद्यशापस्त्वयादेयःपार्थिवस्यास्यपुत्रक ॥ स्वकर्मणैवपतितागौरेषादुःखमृत्युना ॥ २० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ पृषध्रोऽपिमुनेःपुत्रंप्रणम्यानम्रकन्धरः ॥ प्रसीदेतिजगादोच्चैरज्ञानाद्धातितेतिच ॥ २१ ॥ मयागवयबुद्ध्यागौरवध्या घातितामुने ॥ अज्ञानाद्धोमधेनुस्तेप्रसीदत्वंचनोमुने ॥ २२ ॥ ॥ ऋषिपुत्रउवाच ॥ ॥ आजन्मनोमहीपालनमयाव्याहृतंमृषा ॥ क्रोधश्चाद्यमहाभागनान्यथामेकदाचन ॥ २३ ॥

चाहिये॥१८॥और विनाजाने अपराधकरनेपर जो बुद्धिमान् पुरुष दण्ड देते हैं,उनकी अपेक्षा मैं अज्ञानी पुरुषोंको श्रेष्ठ समझताहूं॥१९॥अतएव हे पुत्र! इस समय तुम राजाको शाप मत दो । गाय अपने कर्मके वश होकरही इस दुःखकर मृत्युमुखमें गिरी है ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—फिर पृषध्रभी मस्तक झुकाय मुनिपुत्रको प्रणामकर उच्चस्वरसे कहने लगे, प्रसन्न हूजिये, मैंने विना जाने धेनुकी हत्या करी है ॥ २१ ॥ हे मुने! मैंने गवय विचार करही अवध्या गामी आपकी इस होमधेनुको नष्ट किया है, हे मुने! आप मुझपर प्रसन्न हूजिये ॥ २२ ॥ ऋषिपुत्रने कहा

हे महीपाल ! मैंने जन्मसे लेकर कभी मिथ्या नहीं बोला है, सुतरां हे महाभाग ! मेरा यह क्रोधभी कभी मिथ्या नहीं होगा ॥ २३ ॥ अतएव हे नृप ! इस शापको भी अन्यथा नहीं कर सकता । किन्तु आपको जो दूसरा शाप देनेमें उद्यत हुआ था; उससे निवृत्त होता हूं, अर्थात् वह आपको नहीं देता ॥ २४ ॥ बालकके इस प्रकार कहनेपर उसके पिता उसको आश्रममें लेगये । इसके उपरान्त वह पृषध्रभी शूद्रताको प्राप्त हुए ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां पृषध्रोपाख्यानेनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—महावीर कारुष क्षत्रियगण करुषके पुत्रहैं । वह संख्यामें सात सौ हैं और उन समस्त कारुषोंसेभी अन्य हजारों वीर उत्पन्न हुए थे ॥ १ ॥ दिष्ट पुत्र नाभागने प्रथम यौवनके

तन्नाहमेनंशक्नोमिशापंकर्तुंनृपान्यथा ॥ यस्तेसमुद्यतःशापोद्वितीयःसनिवर्तितः ॥२४॥ इत्युक्तवन्तंतंबालमादायसपिताततः ॥ जगामस्वाश्रमंसोऽपिपृषध्रःशूद्रतामगात् ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेवंशानुचरितेपृषध्रोपाख्यानेनवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥
॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ कारुषाःक्षत्रियाःशूराःकरुषस्याभवन्सुताः ॥ तेतुसप्तशतंवीरास्तेभ्यश्चान्येसहस्रशः ॥ १ ॥ दिष्टपुत्रस्तु नाभागःस्थितःप्रथमयौवने ॥ ददर्शवैश्यतनयामतीवसुमनोहराम् ॥ २ ॥ तस्यांसंदृष्टमात्रायांमदनाक्षिप्तमानसः ॥ बभूवभूपतनयोनिःश्वासाक्षेपतत्परः ॥ ३ ॥ तस्याःसगत्वाजनकंवव्रेतांवैश्यकन्यकाम् ॥ ततोऽनङ्गपराधीनमनोवृत्तिंनृपात्मजम् ॥ ४ ॥ तंचाहसपितातस्याराजपुत्रंकृतांजलिः ॥ बिभ्यत्तस्यपितुर्विप्रप्रश्रयावनतंवचः ॥ ५ ॥ भवन्तोभूभुजोभृत्यावयंवःकरदायकाः ॥ कथंसम्बन्धमसमैरस्माभिरभिवाञ्छसि ॥ ६ ॥ ॥ राजपुत्रउवाच ॥ ॥ साम्यंमानुषदेहस्यकाममोहादिभिःकृतम् ॥ तथापिकालेनैवयोज्यतेमानुषंवपुः ॥ ७

समयमें किसी दिन एक अति मनोहर वैश्यकी कन्याको देखा ॥२॥ राजपुत्रने केवलमात्र उसको देखतेही अत्यन्त कामासक्त मन होकर दीर्घ श्वास छोडते ॥ ३ ॥ उसके पिताके समीप जाकर इस वैश्यकन्याकी प्रार्थना करी । कारण कि, कामसे उनकी पराधीनवृत्ति होगई थी ॥ ४ ॥ हे विप्र ! उसका पिताभी महाराज दिष्टके भयसे भीत हो,हाथ जोड़ कामासक्तचित्त राजनन्दनसे विनीतभावद्वारा कहने लगा ॥५॥ आप राजा और हम आपको कर देनेवाले सेवक हैं, आप ऐसे असमान मनुष्यके साथ किस प्रकार सम्बन्ध स्थापित करनेकी अभिलाषा करते हो ॥ ६ ॥ राजपुत्रने कहा । मनुष्य

देहमें काम क्रोधादि समानभावसेही विधाताने निर्मित कियेहैं, किन्तु सदाही जो काम क्रोधादि मनुष्यदेहमें रहता है, ऐसा नहीं है, किसी किसी समयमें उत्पन्न होता है ॥७॥ और विभिन्नजातिके मनुष्योंमें भी काम क्रोधादि उपकारी होते हैं तो (दूसरे दूसरेसे जीते हैं) अर्थात् मनुष्यगण काम क्रोधादिका अवलम्बन नहीं करते, अन्यभाव अवलम्बन करते हैं ॥८॥ काम क्रोधादि तथा अन्य और भी किसीके अयोग्य होनेपर काल पाकर योग्य होते हैं और योग्य भी अयोग्य होते हैं अतएव योग्यता कालकेही आधीन है॥९॥आहारादि इष्ट वस्तुद्वारा जो देहको तृप्त करते हैं वहभी नहीं रहता। केवल योग्यताका नियम बिगाडनेवाला कालभुक्त करके उनको सुखा देता है ॥१०॥ इसी कारण तुम्हारी कन्यामें मेरी अभिलाषा हुई

तथैवचोपकारायजायन्तेतस्यतान्यपि ॥ अन्यानिचान्येर्जीवन्तिभिन्नजातिमतांसताम् ॥८॥तथान्यान्यप्ययोग्यानियोग्यतांयान्तिकालतः ॥ योग्यान्ययोग्यतांयान्तिकालवश्याहियोग्यता ॥ ९ ॥ आप्याय्यतेयच्छरीरमाहारादिभिरीप्सितैः ॥ कालेनात्तंतथाभुक्तं तदेवपरिशिष्यते ॥१०॥ इत्थंममैषाभिमतातनयादीयतांत्वया ॥ अन्यथामच्छरीरस्यविपत्तिरुपलक्ष्यते ॥ ११ ॥ ॥ वैश्यउवाच ॥ परतन्त्रावयंत्वंचपरतन्त्रोमहीभुजः ॥ पित्रातेनाभ्यनुज्ञातस्त्वंगृहाणददाम्यहम् ॥ १२ ॥ राजपुत्रउवाच ॥ प्रष्टव्याःसर्वकार्य्येषु गुरवोगुरुवर्तिभिः ॥ नत्वीदृशेष्वकार्य्येषुगुरूणांवाक्यगोचरः ॥ १३ ॥ क्वमन्मथकथालापोगुरूणांश्रवणंक्वच ॥ विरुद्धमेतदन्यत्र प्रष्टव्यागुरवोनृभिः ॥ १४ ॥ वैश्यउवाच ॥ ॥ एवमेतत्स्मरालापस्त्वयंपृच्छमागुरुम् ॥ अहंपृच्छामिनालापोममकामकथाश्रयः ॥ १५ ॥

है, वह मुझको प्रदान करो नहीं तो मेरे शरीरका विनाश देखोगे ॥ ११ ॥ वैश्यने कहा मैं पराधीन हूं और आपभी महीपालके आधीन हैं, अतएव आप पिताकी आज्ञा लेकर ग्रहण कीजिये मैं कन्या दूंगा ॥ १२ ॥ राजपुत्रने कहा गुरुजनोंकी आज्ञामें रहनेवाले मनुष्योंको यद्यपि संपूर्ण विषयोंमेंही गुरुजनोंसे पूछना उचित है, किन्तु तो भी ऐसी बातका गुरुके निकट प्रकाशित न करनाही अच्छा है ॥१३॥ कहां कामकथाका प्रसंग और कहां गुरुजनोंका श्रवणगोचरत्व अर्थात् सुनना इन दोनों में बडा अन्तर है अतएव यह विरुद्ध है इसके अतिरिक्त और सब कार्योंमें ही गुरुजनोंसे पूछना आवश्यक है ॥१४॥ वैश्य बोला–आप सत्यही कहते हैं कि, गुरुकी आज्ञा लेना आपके पक्षमें कामकथा होगी, अतएव मैं इस विषयको

पूछता हूं इसमें फिर कामकथाकी संभावना नहीं रहेगी ॥१५॥ मार्कण्डेयजी बोले जब वैश्यने यह बात कही तब राजपुत्र निरुत्तर होगये। तब वैश्यने भी राजपुत्रका अभीष्ट विषय राजासे ज्योंका त्यों कहा ॥ १६ ॥ तब राजाने ऋचीक इत्यादिक द्विजश्रेष्ठगण और पुत्रको उपस्थितकरके उपरोक्त समस्त विषय प्रकाशपूर्वक ॥ १७ ॥ मुनियोंसे पूछा हे द्विजश्रेष्ठगण! आप इस उपस्थित विषयमें मुझको क्या आज्ञा देते हैं? ॥१८॥ ऋषि बोले-हे राजकुमार! आप यदि वैश्यकी कन्यामें अनुरागी हुएहैं सो इसमें अधिक अधर्म नहीं है किन्तु न्यायपूर्वक होना आवश्यक है ॥ १९ ॥ पहिले मूर्द्धाभिषिक्त (अभिषेकयोग्य राज्ञी) कन्याका पाणिग्रहण करके फिर इस कन्याको आप भार्या कीजिये ॥ २० ॥ यदि आप

॥मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्युक्तःसोऽभवन्मौनीराजपुत्रःसचापितत् ॥ तत्पित्रेसर्वमाचष्टराजपुत्रस्ययन्मनम् ॥१६॥ ततस्तस्यपिताविप्रानृचीकादीन्द्विजोत्तमान् ॥ प्रवेश्यराजपुत्रंचयथाख्यानंन्यवेदयत् ॥ १७ ॥ निवेद्यचततःप्राहमुनीनेवंव्यवस्थिते ॥ यत्कर्तव्यंतदादेष्टुमर्हन्तिद्विजसत्तमाः ॥ १८ ॥ ऋषयऊचुः ॥ ॥ राजपुत्रानुरागस्तेयद्यस्यांवैश्यसन्ततौ ॥ तदस्तुधर्मएवैषकिन्तुन्यायक्रमेणसः ॥ ॥ १९ ॥ मूर्द्धाभिषिक्ततनयापाणिग्रहोत्सवःपुरा ॥ भवत्वनन्तरंचेयंतवभार्याभविष्यति ॥ २० ॥ एवंनदोषोभवतितथैमामुपभुञ्जतः ॥ अन्यथाऽभ्येतितेजातिरुत्कृष्टाबालकानयात् ॥ २१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्तस्तदपास्यैववचस्तेषांमहात्मनाम् ॥ विनिष्क्रम्यगृहीत्वातासुद्यतासिरथाब्रवीत् ॥ २२ ॥ राक्षसेनविवाहेनमयावैश्यसुताहृता ॥ यस्यसामर्थ्यमत्रास्तिसएतांमोचयत्विति ॥ २३ ॥ ततः सवैश्यस्तांदृष्ट्वागृहीतांतनयांद्रुतम् ॥ त्राहीतिपितरंतस्यप्रययौशरणंद्विज ॥ २४ ॥

इसप्रकार इस कन्यासे भोग करेंगे तो आपको किसी दोषके होनेकी संभावना नहीं है नहीं तो बालिका हरणके कारण आपको इस श्रेष्ठजातिमें नीचा होना पडेगा ॥२१॥ मार्कण्डेयजी बोले—जब उन समस्त महात्माओंने इस प्रकार अभिप्राय प्रकट किया तब उनके वचनोंको अस्वीकार करके राजपुत्र बाहर निकला और उस कन्याको ग्रहणपूर्वक खड्ग उद्यतकरके कहने लगा ॥२२॥ मैंने इस वैश्यकन्याको राक्षसविवाहद्वारा हरण किया, जिसमें सामर्थ्य हो, मुझको छुडाले ॥ २३ ॥ हे द्विज! तब वैश्यने कन्याको राजपुत्रके द्वारा हरण होता देख शीघ्रपदसे राजाके समीप उपस्थित हो "रक्षा करो" यह कहकर आश्रय ग्रहण किया ॥ २४ ॥

अनन्तर राजाने अत्यन्त क्रोधित हो "इस धर्मदूषक नाभागको शीघ्र वध करो" यह कहकर सेनाको आज्ञा दी ॥ २५ ॥ तब सेनाने राजाकी आज्ञासे राजपुत्रके संग युद्ध आरंभ किया, किन्तु राजपुत्रने अस्त्रोंके द्वारा उस सेनाके अधिकांशको गिरा दिया ॥ २६ ॥ फिर राजपुत्रके द्वारा सेनाको निहत हुआ सुन भूपति स्वयं ही अन्यान्य सेनाके सहित युद्धमें गये ॥ २७ ॥ अपने पुत्रके सहित भूपतिका युद्ध होनेपर अस्त्र शस्त्रादिद्वारा राजपुत्रकी अपेक्षा पिताकी ही अधिकता हुई ॥ २८ ॥ इसी अवसरमें आकाशसे सहसा परिव्राजकमुनि (नारद) आकर राजादिष्टसे बोले—हे महीपाल ! युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ २९ ॥ हे नृप ! आपका पुत्र विधर्मी होगया है,

ततस्तस्यपिताक्रुद्धआदिदेशबलंमहत् ॥ हन्यतांहन्यतांदुष्टोनाभागोधर्मदूषकः ॥ २५ ॥ ततस्तद्युयुधेसैन्यंतेनभूभृत्सुतेनवै ॥ कृतास्त्रेणतदास्त्रेणतत्प्राचुर्य्येणपातितम् ॥ २६ ॥ सश्रुत्वानिहतंसैन्यंराजपुत्रेणभूपतिः ॥ स्वयमेवययौयोद्धुंस्वसैन्यपरिवारितः ॥२७॥ ततोयुद्धमभूत्तस्यभूभुजःस्वसुतेनयत् ॥ राजपुत्रेणशस्त्रास्त्रैस्तत्रातिशयितःपिता ॥ २८ ॥ ततोऽन्तरिक्षादागत्यपरिव्राट्सहसामुनिः ॥ प्रत्युवाचमहीपालंविरमस्वेतिसंयुगात् ॥ २९ ॥ त्वत्पुत्रस्यमहाभागविधर्मोऽयंमहात्मनः ॥ तवापिवैश्येनसहनयुद्धंधर्मवन्नृप॥३०॥ ब्राह्मण्यांब्राह्मणःपूर्वंकुर्वन्दारपरिग्रहम् ॥ ब्राह्मण्यात्सर्ववर्णेषुनहानिमुपगच्छति ॥ ३१ ॥ तथैवक्षत्रियसुतांक्षत्रियःपूर्वमुद्वहन् ॥ इतरेचनतोराजंश्च्यवतेनस्वधर्मतः ॥ ३२ ॥ पूर्वं वैश्यस्तथावैश्यांपश्चाच्छूद्रकुलोद्भवाम् ॥ नहीयतेवैश्यकुलादयंन्यायःक्रमोदितः ॥ ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःसवर्णापाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वाऽन्यभत्रापाणेःपतन्तिनृपसंग्रहात् ॥ ३४ ॥ यस्यायस्याहिहीनायाः कुरुतेपाणिसंग्रहम् ॥ अकृत्वावर्णसंयोगंसोऽपितद्वर्णभाग्भवेत् ॥ ३५ ॥

अतएव वैश्यके संग आपका युद्ध धर्मसंगत नहीं है ॥ ३० ॥ ब्राह्मण प्रथम ब्राह्मणी स्त्रीका पाणिग्रहण करके फिर यदि समस्त वर्णकी स्त्री ग्रहणकरे, तोभी उसके ब्राह्मणत्वकी हानि नहीं होती ॥ ३१ ॥ इसी प्रकार क्षत्रियभी प्रथम क्षत्रियकन्यासे विवाह करके फिर वैश्य और शूद्रकी कन्या ग्रहण करनेपर भी अपने धर्मसे च्युत नहीं होता ॥ ३२ ॥ वैश्यभी इसी प्रकार पहिले वैश्यकन्यासे विवाह करके फिर शूद्रकन्यासे विवाह करने परभी वैश्यकुलसे पतित नहीं होता इस भाँति क्रमानुसार नीति चली आती है ॥ ३३ ॥ हे नृप ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सवर्णा कन्याका

पाणिग्रहण विनाकिये अन्य वर्णा कन्यासे विवाह करनेपर जिस जिस जातिकी हीनवर्ग कन्याका पाणिग्रहण करते हैं, वह पतित होकर उसीकी जातिको प्राप्त होते हैं और प्रथम सवर्णा कन्याका पाणिग्रहण न करनेसे वह दायाधिकारी नहीं हो सकते ॥ ३४ ॥ ३५ ॥ आपका यह मन्दबुद्धि पुत्र वैश्यत्वको प्राप्त हुआ है और आप क्षत्रिय हैं अतएव आपके संग यह युद्ध करनेका अधिकारी नहीं है ॥ ३६ ॥ हे नृपनन्दन ! इससे किस प्रकारका कारण उत्पन्न होगा सो मैं नहीं जानता । अब आप युद्धसे निवृत्त हूजिये ॥ ३७ ॥ श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नाभागाख्यानं नाम दशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ ११० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर पुत्रके संग युद्ध करनेसे राजा निवृत्त हुए और उनका पुत्रभी उस

सोऽयंवैश्यत्वमापन्नस्तवपुत्रःसुमन्दधीः ॥ नास्याधिकारोयुद्धायक्षत्रियेणत्वयासह ॥ ३६ ॥ वयमेतन्नजानीमःकारणंनृपनन्दन ॥ यथाभविष्यतीदंचनिवर्त्तरणकर्मतः ॥ ३७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेवंशानुचरितेनाभागाख्याननामदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ ११० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ निवृत्तोसौततोभूपःसंग्रामात्स्वसुतेनवै ॥ उपयेमेचतांवैश्यतनयांसोऽपितत्सुतः ॥ १ ॥ ततः सवैश्यतांप्राप्तःसमुपेत्याहपार्थिवम् ॥ भूपालयन्मयाकार्य्यंतत्समादिश्यतांमम ॥ २ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ धर्माधिकरणेयुक्ताबाभ्रव्याद्यास्तपस्विनः ॥ यदस्यकर्मधर्मायतद्वदंतुतथाचर ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तेमुनयस्तस्यपाशुपाल्यंतथाकृषिम् ॥ वाणिज्यंचपरंधर्ममाचचख्युःसभासदः ॥ ४ ॥ तथैवचक्रेसमुतस्तस्यराज्ञोयथोदितम् ॥ नैर्धर्मवादिभिर्धर्मच्युतस्यनिजधर्मतः ॥ ५ ॥ तस्यपुत्रस्ततोजातोनाम्नाख्यातोभलन्दनः ॥ ममात्राप्रहितोगच्छद्गोपालोभवपुत्रक ॥ ६ ॥

कन्यासे विवाह करके वैश्यत्वको प्राप्त हुआ ॥ १ ॥ तब उसने वैश्यत्वको प्राप्त हो राजाके समीप जाकर पूछा हे भूपाल ! अब मुझको क्या करना चाहिये, सो आज्ञा कीजिये ॥ २ ॥ राजाने कहा--बाभ्रव्यादि जो समस्त तपस्वी धर्माधिकरणमें नियुक्त हैं, वह जिस कर्मको धर्मानुयायी कहकर आज्ञा दें, उसीके अनुसार आचरण कर ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले -तब उन सभासद मुनियोंने कहा पशुपालन, कृषि और वाणिज्यकर्महीं तुम्हारा उत्तमधर्म है ॥ ४ ॥ राजपुत्रभी अपने धर्मसे च्युत होकर राजाकी आज्ञानुसार उन धर्मवादियोंके निर्दिष्ट धर्मका आचरण करने लगे ॥ ५ ॥ उनके भलन्दननामक पुत्र हुआ था उसकी माताने उसको हे वत्स ! गोपाल होओ ॥ ६ ॥

यह कहकर गोपालनमें नियुक्त किया । तब वह माताकी आज्ञा पाय माताको प्रणाम पूर्वक हिमालय पर्वतवासी नीपनामक राजर्षिके निकट गये ॥ ७ ॥ भलन्दनराजर्षिके समीप उपस्थित हो यथाविधि चरणवन्दनापूर्वक प्रणाम करके कहने लगे ॥ ८ ॥ हे भगवन् ! माताने मुझको "तुम गोपाल होओ" यह आज्ञा दी है, सुतरां पृथ्वीपालन अवश्यही मेरा कर्त्तव्य है, किन्तु यह गोपालन किसप्रकार स्वीकार करूं ? ॥९॥ क्योंकि पृथ्वीपालन मेरे स्वीकार करनेपरभी इस समय बलवान् ज्ञातिगणके द्वारा आक्रान्त हो रही है॥१०॥अतएव हे विभो ! जिसमें आपके अनुग्रहमें मैं पृथ्वीलाभ करसकूं इस प्रणतजनको वही आज्ञा दीजिये, मैं उसीका अनुष्ठान करूंगा॥११॥ मार्कण्डेयजी बोले हे ब्रह्मन् ! तब राजर्षि नीपने

मात्रातथानियुक्तोऽथप्रणिपत्यस्वमातरम् ॥ राजर्षिमगमन्नीपंहिमवत्पर्वताश्रयम् ॥७॥ तंसमेत्यचजग्राहतस्यपादौयथाविधि ॥ प्रणिपत्याहचैवैनंराजर्षिंभलन्दनः॥ ८ ॥ आदिष्टोभगवन्मात्रागोपालस्त्वंभवेतिवै ॥ मयाचपालनीयाक्ष्मातस्याःस्वीकरणंकथम् ॥९॥ मयाहिगोःपालनीयामायदास्वीकृताभवेत ॥ आक्रान्तावलवद्भिस्तादायादैःपृथिवीमम ॥ १० ॥ तांयथाप्राप्नुयांपृथ्वींत्वत्प्रसादाद्हंविभो ॥ तथादिशकरिष्यामितवाज्ञांप्रणतोऽस्मिते ॥ ११ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःसनीपोराजर्षिस्तस्मैनिरवशेषतः ॥ भलन्दायददौब्रह्मन्नस्त्रग्रामंमहात्मने ॥ १२ ॥ प्राप्तास्त्रविद्यःसययौपितृव्यतनयान्द्विज ॥ वसुरातादिकान्पुत्रानादिष्टःसमहात्मना॥१३॥ अयाचतसराज्यार्धंपितृपैतामहोचितम् ॥ तेचोचुर्वैश्यपुत्रस्त्वंकथंभोक्ष्यसिमेदिनीम् ॥१४॥ ततस्तैर्युद्धमभवद्भलन्दस्यात्मवंशजैः ॥ वसुरातादिभिःक्रुद्धैःकृतास्त्रस्यास्त्रवर्षिभिः ॥१५॥ सजित्वातानशेषांस्तुशस्त्रविक्षतसैनिकान् ॥ जहारपृथिवींतेषांधर्मयुद्धेनधर्मवित् ॥ ॥१६॥सनिर्जितारिःसकलांपृथ्वींराज्यंनथापितुः॥ निवेदयामासततस्तत्पिताजागृहेनच॥प्रत्युवाचसतंपुत्रंभार्यायाःपुरतस्तदा ॥१७॥

महात्मा भलन्दनको संपूर्ण अस्त्रविद्या प्रदान करी॥१२॥ हे द्विज ! भलन्दन अस्त्रविद्यालाभ करके राजर्षिकी आज्ञाग्रहणपूर्वक पितृव्यपुत्र वसुरात इत्यादिके निकट गये ॥ १३ ॥ और पितृपैतामहिक राज्यके अर्द्धांशकी प्रार्थना की ' उन्होंने उत्तर दिया, ' तुम वैश्यपुत्र हो, पृथ्वीपालन तुमको उचित नहीं है " ॥ १४ ॥ तब अस्त्रलाभ किये क्रोधित भलन्दनका अस्त्रवर्षी ज्ञाति वसुरात इत्यादिके संग युद्धारंभ हुआ ॥ १५ ॥ तब धर्मात्मा भलन्दनने धर्मयुद्धमें ही सब सेनाको शस्त्रसे घायल करके पराजयपूर्वक पृथ्वी हरण करी ॥ १६ ॥ भलन्दनने इस प्रकार शत्रुओंको

जीत समस्त पृथ्वी राज्य पिताके चरणोंमें समर्पण किया, किन्तु पिता उसको ग्रहण न करके पत्नीके सामनेही पुत्रसे कहने लगे ॥१७॥ नाभागने कहा-हे वत्स भलन्दन!पूर्वपुरुषशासित यह राज्य तुम्हीं भोगो॥१८॥ मैं राज्यपालनमें असमर्थ हूं,ऐसा नहीं है पूर्व में मैं पिताकी आज्ञामें रह करभी पिताकी असम्मतिसे ॥ १९ ॥ वैश्यकन्या ग्रहण करनेके कारण वैश्यत्वको प्राप्त हो राज्यभोगका अधिकारी नहीं होसका । अब मैं फिर यदि पिताकी आज्ञा उलंघन करके पृथ्वीका पालन करूं तो मिथ्या आज्ञाके कारण राजाभी प्रलयकालपर्यन्त पुण्यलोकभागी नहीं हो सकेंगे और शतकल्पमेंभी मुझको मुक्ति प्राप्त होनेकी संभावना नहीं है ॥ २० ॥ २१ ॥ और मेरे समान निराकांक्षी मानी मनुष्यको, दुर्बलके परवजित

॥ नाभागउवाच ॥ भलन्दराज्यमेतत्तेक्रियतापूर्वजैःकृतम् ॥ १८ ॥ अहंनकृतवान्राज्यंनासामर्थ्ययुतःपुरा ॥ वैश्यतांतुपुरस्कृत्यतथैवाज्ञाकरःपितुः ॥ १९ ॥ कृत्वाऽप्रीतिंपितुरहंवैश्यकन्यापरिग्रहात् ॥ नपुण्यलोकभाग्राजायावदाभूतसंप्लवम् ॥ २० ॥ उल्लंघ्याज्ञांपुनस्तस्यपालयामिमहींयदि ॥ नास्तिमोक्षस्ततोनूनंममकल्पशतैरपि ॥ २१ ॥ नचापियुक्तंत्वद्बाहुनिर्जितंममानिनः ॥ राज्यंभोक्तुमनर्हस्यदुर्बलस्येवकस्यचित् ॥ २२ ॥ राज्यंकुरुस्वयंपुत्रदायादेभ्योविमुंचवा ॥ ममाज्ञापालनंशस्तंपितुर्नक्षितिपालनम् ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततः प्रहस्यतद्भार्यासुप्रभानामभामिनी ॥ प्रत्युवाचपतिंभूपगृह्यतांराज्यमूर्जितम् ॥ २४ ॥ नत्वंवैश्योनचैवाहंजातावैश्यकुलेनृप ॥ क्षत्रियस्त्वंतथैवाहंक्षत्रियाणांकुलोद्भवा ॥ २५ ॥ पूर्वमासीन्महीपालःसुदेवइतिविश्रुतः ॥ तस्याभूत्सखाराज्ञोधूम्राश्वस्यसुतोनलः ॥ २६ ॥ सतेनसख्यासहितोजगामाम्रवनंवनम् ॥ पत्नीभिःससमंरन्तुंमाधवेमासिपार्थिव ॥२७॥

विषय भोगके समान तुम्हारे बाहुबलसे जीता हुआ राज्य भोगना भी उचित नहीं है ॥ २२ ॥ तुम स्वयं राज्यपालन करो अथवा ज्ञातिगणको फिर देसकते हो, मुझको पिता की ही आज्ञा पालन करनी उत्तम है, पृथ्वीपालन उचित नहीं है ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-तब उनकी 'सुप्रभा' नामक भार्याने हँसकर कहा हे भूप ! यह समृद्धिशाली राज्य ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ आप वैश्य नहीं हैं और मैंनेभी वैश्यकुलमें जन्म नहीं लिया है, आपभी क्षत्रिय हैं और मैं भी क्षत्रियके कुलमें उत्पन्न हुई हूं ॥ २५ ॥ पूर्वकालमें सुदेवनामक एक विख्यात राजा थे और राजा धूम्राश्वके पुत्र नलनामक उनके सखा थे ॥२६॥ हे पार्थिव ! एक दिन वैशाखमासमें राजा इन सखा और पत्नियोंके सहित आम्रवनमें

वनविहारको गये ॥ २७ ॥ वहां सखा और भार्याओंके सहित अनेक प्रकारसे खाने पीनेका वस्तु भोगने लगे ॥ २८ ॥ तदनन्तर पुष्करिणीके तटमें च्यवनपुत्र महर्षि प्रमतिकी मनोहरपत्नीको देखा तब राजाके सखा दुर्मति नलने उसको ग्रहण किया। यह प्रमतिपत्नी किसी एकराजाकीकन्याथी। फिर प्रमतिपत्नी राजाके सन्मुख "रक्षा करो, रक्षा करो" यह कहकर रोने लगी॥ २९ ॥ ३० ॥ उसके पति महर्षि प्रमति दूरसे रोनेका शब्द सुनकर "यह क्या है? यह क्या है?" कहते कहते शीघ्र वहां आये ॥ ३१ ॥ वहां आकर देखा कि, महाराज सुदेव बैठे हैं और दुरात्मा नल पत्नीको हरण कर रहाहै ॥ ३२ ॥ तब प्रमतिने सुदेवसे कहा, इसको निवृत्त कीजिये आपही राजा हैं आपही शासनकर्त्ता हैं अतएव तुम्हें इस दुष्टनलको

ततःपानान्यनेकानिभक्ष्याणिबुभुजेतदा ॥ भार्याभिःसहितस्ताभिस्तेनसख्यासमन्वितः ॥ २८ ॥ ततःपुष्करिणीतीरेददर्शातिमनोरमाम् ॥ पत्नींच्यवनपुत्रस्यप्रमतेःपार्थिवात्मजाम् ॥ २९ ॥ सखातस्यनलोमत्तोजगृहेतांचदुर्मतिः ॥ पश्यतस्तस्यराज्ञश्चत्रातत्रातेतिवादिनीम् ॥ ३० ॥ आक्रन्दितंनिशम्यैवसतस्याःप्रमतिःपतिः ॥ आजगामत्वरायुक्तःकिमेतदितिवैवदन् ॥ ३१ ॥ ततोददर्शराजानंसुदेवंतत्रसंस्थितम् ॥ गृहीतांचतथापत्नींनलेनसुदुरात्मना ॥ ३२ ॥ ततःसुदेवंप्रमतिःप्राहायंशास्यतामिति ॥ त्वंचशास्ताभवद्राज्येदुष्टश्चायंनलोनृप ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यार्तस्यवचःश्रुत्वासुदेवोनलगौरवात् ॥ प्राहवैश्योऽस्मिगच्छान्यंक्षत्रियंत्राणकारणात् ॥ ३४ ॥ ततःसप्रमतिःक्रुद्धस्तेजसानिर्दहन्निव ॥ प्रत्युवाचाथराजानंवैश्योऽस्मीत्यभिभाषिणम् ॥ ३५ ॥ ॥ प्रमतिरुवाच ॥ ॥ एवमस्तुभवान्वैश्यःक्षत्रियःक्षतरक्षणात् ॥ क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रंनार्त्तशब्दोभवेदिति ॥ सत्वंनक्षत्रियोभार्त्तावैश्यएवकुलाधमः ॥ ३६ ॥

शासन करना उचित है ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—प्रमतिके इसप्रकार आर्त्तवचन सुनकर राजा सुदेवने नलके गौरवकी रक्षा करनेको कहा 'मैं वैश्य हूं, आप रक्षाके लिये किसी क्षत्रियके निकट जाइये' ॥ ३४ ॥ प्रमतिने सुदेवके वचनसे अत्यन्त क्रोधित हो, अपने तेजसे मानो दग्ध करते करतेही "मैं वैश्यहूं" इस प्रकार उक्तिकारी उस राजासे कहा ॥ ३५ ॥ प्रमति बोले—तथास्तु। तुम सत्यही वैश्य हो, क्योंकि आर्त्तमनुष्योंकी रक्षाकेलियेही क्षत्रियसंज्ञाकी उत्पत्ति है, 'आर्त्त' शब्दपर्यन्त न हो, इसी अभिप्रायसे क्षत्रिय गण शस्त्रधारण करतेहैं,अतएव तुम कभी क्षत्रिय नहीं हो

तुम कुलाधम वैश्यही होगे ॥ ३६ ॥ इति श्रीमा० पु० भाषाटीकायां एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१११॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विज ! भार्गव प्रमतिने इसप्रकार सुदेवको शाप देकर क्रोधसे मानों त्रैलोक्यके दग्ध करनेमें उद्यत हो नलसे कहा॥१॥ तैंने मदोन्मत्त होकर जब मेरे आश्रममें मेरी भार्याको बलत्कार ग्रहण किया है,तो तू अभी भस्म हो॥२॥ उनके वचनकी समाप्ति होतेही नल स्वदेहज अग्निद्वारा तत्काल भस्म होगया ॥३॥ तब सुदवे प्रमतिका इस प्रकार प्रभाव देख, मत्तता छोड़ प्रणाम करके विनीतभावसे कहने लगे -हे भगवन् ! क्षमा करो, क्षमा करो ॥४॥ हे भगवन् सुरापानजनित मत्तताके कारण आपसे जो कुछ कहाहै, प्रसन्न होकर वह सब क्षमा कीजिये और यह शाप निवृत्त कीजिये ॥५॥ राजाके इस प्रकार

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनाभागचरितेएकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ तस्मैदत्त्वाततःशापंनलंक्रुद्धोऽब्रवीद्द्विज ॥ प्रमतिर्भार्गवःकोपात्त्रैलोक्यंनिर्दहन्निव ॥ १ ॥ मदोन्मत्तोयतोभार्य्यांभवानत्रममाश्रमे ॥ बलाद्गृह्णातिभस्मत्वंतस्माद्व्रजतुनाचिरम् ॥ २ ॥ तेनोदाहृतमात्रेचवाक्येतस्मिंस्तदानलः ॥ देहजेनाग्निनासद्योभस्मपुञ्जस्तदाऽभवत ॥ ३ ॥ दृष्ट्वाप्रभावंतंतस्यसुदेवोविमदस्ततः ॥ प्रणामनम्रःप्राहेदंक्षम्यतांक्षम्यतामिति ॥ ४ ॥ यदुक्तवांस्त्वांभगवन्सुरापानमदाकुलम् ॥ तत्क्षम्यतांप्रसीदत्वंशापोऽयंविनिवर्त्यताम् ॥ ५ ॥ एवंप्रसादितस्तेनप्रमतिःप्राहभार्गवः ॥ गतकोपोनलेदग्धेनावर्नीतेनचेतसा ॥ ६ ॥ नान्यथाभावितद्वाक्यंयन्मयासमुदीरितम् ॥ तथापितेकरिष्यामिप्रसन्नोऽनुग्रहंपरम् ॥ ७ ॥ भवितावैश्यजातीयोभवान्नास्त्यत्रसंशयः॥ भविताक्षत्रियोवैश्यस्तस्मिन्नेवाशुजन्मनि ॥ ८ ॥ ग्रहीष्यतिबलात्कन्यांयदातेक्षत्रसम्भवः ॥ तदात्वंक्षत्रियोवैश्यःस्वगृहीतोभविष्यसि ॥ ९ ॥ एवंसवैश्योभूपालसुदेवोऽस्मत्पिताभवत् ॥ अहंचयामहाभागतत्सर्वंश्रूयतां त्वया ॥ १० ॥

प्रसन्न करनेपर और नलको दग्ध करने पर तब भार्गवप्रमतिका कोप शान्त हुआ–फिर वह अनासक्त चित्तसे कहने लगे यद्यपि मेरा वचन अन्यथा नहीं है, किन्तु तो भी प्रसन्नचित्तसे आपके ऊपर अनुग्रह करताहूं ॥ ६ ॥ ७ ॥ अवश्यही कुछ दिन आपको वैश्यजातीय होना पडेगा, किन्तु इस जन्ममेंही आप फिर क्षत्रिय हो जायँगे ॥ ८ ॥ जब कोई क्षत्रियकुमार बलपूर्वक आपकी कन्याको ग्रहण करेगा,हे वैश्य ! उसी समय आप फिर स्वयं क्षत्रिय होंगे ॥ ९ ॥ हे भूपाल ! इस प्रकार मेरे पिता सुदेव वैश्य हुएथे । हे महाभाग ! अब मैं अपनाभी समस्त परिचय तुमसे वह

तीहूं; सुनो ॥ १० ॥ पूर्वकालमें सुरथनामक राजर्षि गंधमादन पर्वतमें वनाश्रयपूर्वक नियताहार और संगरहित हो तपस्या करते थे ॥ ११ ॥ एक समय पृथ्वीतलमें एक बाजके मुखसे छूटी हुई शारिका देखकर कृपासे उन महात्माको मूर्च्छा उपस्थित हुई ॥ १२ ॥ हे प्रभो ! फिर मूर्च्छाके दूर होनेपर मैं उनके शरीरमें उत्पन्न हुई । उन्होंनेभी मुझको देख कर स्नेहार्द्रचित्तसे ग्रहण कर लिया ॥ १३ ॥ और कहा " मेरे कृपाभिभूत होनेपर इस कन्याने जन्म ग्रहण किया है, अतएव इसका नाम "कृपावती" हुआ ॥ १४ ॥ इसके पीछे मैं उनके आश्रममें रहकर दिन दिन बढने लगी और समान अवस्थावाली सखियोंके संग सदा वनोंमें विचरण करने लगी ॥ १५ ॥ एक दिन अगस्त्यके समान प्रभाव-

सुरतोनामराजर्षिःप्रागासीद्गन्धमादने ॥ तपस्वीनियताहारस्त्यक्तसङ्गोवनाश्रयः ॥ ११ ॥ ततःश्येनमुखभ्रष्टांदृष्ट्वैकांशारिकांभुवि ॥ कृपाऽभूज्जनितामूर्च्छातथातस्यमहात्मनः ॥ १२ ॥ ततोमूर्च्छावसानेऽहंतस्योत्पन्नाशरीरतः ॥ समांदृष्ट्वाचजग्राहस्निह्यमानेनचेतसा ॥ १३ ॥ यस्मात्कृपाभिभूतस्यममजातेयमात्मजा ॥ तस्मात्कृपावतीनाम्नाभविष्यत्याहसप्रभो ॥ १४ ॥ ततोऽहमाश्रमात्तस्यवर्धमानंदिवानिशम् ॥ सखीभिःसहतुल्याभिर्विचरामिवनानिच ॥ १५ ॥ ततोमुनेरगस्त्यस्यभ्रातागस्त्यइतिश्रुतः ॥ सचिन्वन्काननेवन्यंसखीभिकोपितोऽशपत् ॥ १६ ॥ यस्मान्मांवैश्यइत्याहभवतीतेनतेऽशपे ॥ वैश्याभविष्यसीत्युक्तेप्रमाद्योक्तोमयामुनिः ॥ नापराधंकृतवतीतवाहंद्विजसत्तम ॥ अन्यासामपराधेनकिमर्थंशप्तवानसि ॥ १७ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ ॥ दुष्टानांदुष्टसंसर्गाददुष्टमपिगच्छति ॥ सुराबिंदुनिपातेनपञ्चगव्यघटोयथा ॥ १८ ॥

शाली अगस्त्यमुनिके भ्राता वनमें पुष्पादि बीनते थे इसी समयमें मेरी सखियोंने उनको कोधित किया, तब उन्होंने क्रोधित चित्तसे मुझको यह कहकर शाप दिया कि, " तैंने मुझको वैश्य कहा है, इस कारण तू मेरे शापसे वैश्यकीही कन्या होगी " यह दारुण शाप सुनकर मैंने उनसे कहा--हे द्विजसत्तम ! मैंने आपका कोई अपराध नहीं किया है, अन्यके अपराधमें मुझको शाप क्यों देते हो ? ॥ १६ ॥ १७ ॥ ऋषि बोले--केवल एक बूँद सुराके पड़नेसे ही जिस पंचगव्यपूर्ण घट दूषित हो जाता है, ऐसे ही निर्दोष मनुष्य भी दुष्टका संसर्ग होनेसे दुष्ट होजाता है ॥ १८ ॥

हे बालिके ! तैं ने प्रणामपूर्वक " मैं दुष्टा नहीं हूं " कहकर जो मुझे प्रसन्न किया है इस निमित्त मैं तुझपर अनुग्रह करताहूं सुन ॥ १९ ॥ तू वैश्ययोनिमें उत्पन्न होकर जब अपने पुत्रको राज्यलाभके लिये नियुक्त करेगी, उसी समय तू जातिस्मरताको प्राप्त होगी ॥ २० ॥ और पतिके संग फिर क्षत्रियत्वको प्राप्त होकर दिव्य भोग भोगमें अधिकारिणी होगी । अतएव अब आश्रममें जा और भय परित्यागकर ॥ २१ ॥ हे राजेन्द्र ! इस प्रकार उन महर्षि के द्वारा पूर्वकालमें मैं शापको प्राप्त हुई थी और प्रमतिने पूर्वकालमें मेरे पिताकोभी ऐसाही शाप दिया था ॥ २२ ॥ सुतरां हे राजन् ! आप वा मेरे पिता कोई वैश्य नहीं हैं । इसी भाँति मेरे निर्दोष होनेपर मेरे संसर्गसे आप किस प्रकार दूषित

प्रणिपत्यह्यनिष्टोपियत्त्वयाहंप्रसादितः ॥ तस्मादनुग्रहंबालेशृणुष्वचकरोम्यहम् ॥ १९ ॥ वैश्ययोनौयदाजानात्त्वंपुत्रंत्रोधयिष्यसि ॥ राज्यायजातिस्मरतांतदात्वंसमवाप्स्यसि ॥ २० ॥ ततोभूयःक्षत्रजातिंप्राप्तात्वंपतिनासह ॥ दिव्यानवाप्स्यसेभोगान्गच्छभीतिरपैतुते ॥ २१ ॥ एवंशप्तास्मिराजेन्द्रतेनपूर्वंमहर्षिणा ॥ पिताचमेपूर्वमेवंशप्तःप्रमतिनाऽभवत् ॥ २२ ॥ एवंवैश्योनराजंस्त्वंनचवैश्यःपितामम ॥ नत्वंहिमय्यदुष्टायामदुष्टोदुष्यसेकथम् ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेद्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतितस्यावचःश्रुत्वापुत्रस्यसचपार्थिवः ॥ पुनःप्रोवाचधर्मज्ञस्तांपत्नींतनयंतथा ॥ १ ॥ यन्मयापितुरादेशात्त्यक्तंराज्यंनतत्पुनः ॥ ग्रहीष्यामिवृथोक्तेनकिमात्माक्लिश्यतेत्वया ॥ २ ॥ अहंतेसम्प्रदास्यामिकरंवैश्यव्रतेस्थितः ॥ भुङ्क्ष्वराज्यमशेषंत्वमिच्छयावापरित्यज ॥ ३ ॥ इत्युक्तःसतदापित्राराजपुत्रोभलन्दनः ॥ चकारराज्यंधर्मेणतद्वदार परिग्रहम् ॥ ४ ॥

होंगे, अतएव ऐसा कभी नहीं आप सदा अदुष्ट हैं ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणे भाषाटीकायां द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--धर्मज्ञराजाने भार्या और पुत्रके यह वचन सुनकर फिर उनसे पृथक् पृथक् कहा ॥१॥ पत्नीसे कहा मैंने पिताकी आज्ञानुसार जिस राज्यको एकबार त्याग दिया है, उसको अब फिर ग्रहण नहीं करूंगा तुम वाक्य व्ययकरके क्यों वृथा कष्ट पातीहो ?॥२॥ पुत्रसे कहा मैं वैश्यवृत्तिमेंही रहकर तुमको कर दूंगा तुम यह संपूर्ण राज्य भोगो, अथवा इच्छा हो तो परित्यागभी कर सकते हो॥३॥ राजपुत्र भलन्दन इसप्रकार पिताकी आज्ञा

पाय धर्मानुसार राज्यपालन करने लगे और यथासमयमें दारपरिग्रह अर्थात् विवाह किया॥४॥हे द्विज ! पृथ्वीके समस्त स्थानोंमेंही उनका रथ चक्र (बेरोक टोक भ्रमा था)उनका मनभी कभी अधर्ममार्गमें अग्रेसर नहीं हुआ अतएव संपूर्ण भूपालही उनके वशीभूत हुए थे॥५॥वह यथाविधि यज्ञानुष्ठान और वसुंधराका सम्यक् प्रकार पालन करते थे क्रमानुसार सब पृथ्वीमेंही उनका शासन व्याप्त होनेसे वह पृथ्वीके अद्वितीय अधीश्वर हुए थे॥६॥वत्सप्री नामक उनके एक पुत्र हुआ था और उस महात्माने गुणोंसे पिताको विवर्द्धित किया था ॥७॥ विदूरथकन्या सौनन्दा नामक वत्सप्रीकी भार्या थी वह इन्द्रके शत्रु कुजृम्भ नामक दैत्यनाथको मारकर इस पतिव्रता महाभाग्यवतीको प्राप्त हुए थे ॥८॥ क्रौष्टुकिने कहा ! हे

अव्याहतंतस्यचक्रंपृथिव्यामभवद्द्विज ॥ नचाधर्मेमनोभूपास्तस्यसर्वेऽभवन्वशे ॥ ५ ॥ तेनेष्टोविविधैर्यज्ञैःसम्यक्शास्तिवसुन्धराम् ॥ सएवैकोऽभवद्भर्त्तापृथिव्यामरिशासनः ॥ ६ ॥ अजायतसुतस्तस्यवत्सप्रीतिस्तुनामतः ॥ पितातिशयितोयेनगुणौघेनमहात्मना॥ ७॥ तस्यापिभार्य्यासौनन्दाविदूरथसुताऽभवत् ॥ पतिव्रतामहाभागासाप्राप्तातेनशौर्य्यतः ॥ हत्वापुरन्दररिपुंकुजृंभंदितिजेश्वरम् ॥ ८ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवंस्तेनसंप्राप्ताकुजृंभनिधनात्कथम् ॥ एतदाख्यानमाख्याहिप्रसन्नेनान्तरात्मना ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ विदूरथोनामनृपःख्यातकीर्तिरभूद्भुवि ॥ तस्यपुत्रद्वयंजातंसुनीतिःसुमतिस्तथा ॥ १० ॥ एकदातुवनंयातोमृगयांसविदूरथः ॥ ददर्शगर्तंसुमहद्भूमेर्मुखमिवोद्गतम् ॥ ११ ॥ तंदृष्ट्वाचिन्तयामासकिमेतदितिभैरवम् ॥ पातालविवरंमन्येनैनद्भूमेश्चिरन्तनम् ॥ १२ ॥ चिन्तयन्नितितत्रासौददर्शविजनेवने ॥ ब्राह्मणंसुव्रतंनामतपस्विनमुपागतम् ॥ १३ ॥

भगवन् ! वत्सप्रीने किस प्रकार कुजृम्भको मारकर सौनन्दाको प्राप्त किया था,आप प्रसन्न चित्तसे यह आख्यान वर्णन कीजिये॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–भूमण्डलमें विदूरथ नामक विख्यात् कीर्त्ति एक राजा थे,उनके सुनीति और सुमति नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए थे॥१०॥किसी समय विदूरथने मृगयाके लिये जाकर पृथ्वीका मुखस्वरूप निकला हुआ एक बड़ा गर्त (गढा) देखा ॥११॥ उन्होंने वह भयंकर गर्त देखकर पहिले विचारा"यह क्याहै ?" फिर सोचा "यह कभी पुरातन समयका भूमिविवर नहीं है मुझको बोध होताहै कि, यह पाताल विवर है"॥१२॥इस प्रकार चिंता करते थे, इसी अवसरमें उस विजन वनमें सुव्रत नामक एक ब्राह्मण तपस्वीको आता हुआ देखा ॥ १३ ॥

आश्चर्ययुक्त राजाने उसको पृथ्वीका वह गंभीर विवर दिखाय "यह क्या है" इस प्रकार कहकर उसका वृत्तान्त पूछा ॥ १४ ॥ ऋषिने कहा हे महीपाल ! आप क्या इसको नहीं जानते ? जब पृथ्वीका समस्त वृत्तान्त ही राजाको जान रखना उचित है, तो मेरे मतसे आप यह सुननेके यथार्थ योग्यपात्र हैं ॥ १५ ॥ महावीर्यशाली उग्र एक दानव रसातलमें वास करता है। वह पृथ्वीको जृम्भित (जँभाईवाला) करता है; इस कारण सब उसको कुजृम्भ कहते हैं ॥ १६ ॥ हे नराधिप ! इस भूमण्डल और स्वर्ग राज्यके प्रतिप्राणीमें ही जो समस्त घटना होती हैं, वह सब इसीका कार्य है, आप क्या उसको जानते नहीं ? ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें विश्वकर्माने सुनन्दनामक जो मूशल निर्माण

सतंपप्रच्छचनृपःकिमेतदितिविस्मितः ॥ अतिगम्भीरमवनेर्दर्शितांतर्गतोदरम् ॥ १४ ॥ ॥ ऋषिरुवाच ॥ किन्नवेत्सिमहीपालवाग थैस्त्वंहिमेमतः ॥ ज्ञेयंसर्वंनरेन्द्रेणवर्ततेयन्महीतले ॥ १५ ॥ दानवःसुमहावीर्य्योवसत्युग्रोरसातले ॥ सजृम्भयतियत्पृथ्वींकुजृम्भः प्रोच्यतेततः ॥ १६ ॥ क्रियतेतेनयत्किञ्चिद्रत्नभूतंमहीतले ॥ त्रिदिवेवानरपतेतंकथंवेत्तिनोभवान् ॥ १७ ॥ सुनन्दंनाममुशलंत्वष्ट्रा यन्निर्मितंपुरा ॥ तज्जहारसदुष्टात्मातेनहन्तिरणेरिपून् ॥ १८ ॥ पातालान्तर्गतस्तेनभिनत्तिवसुधामिमाम् ॥ ततोऽसुरगणांसर्वेषांद्वा रणिकुरुतेऽसुरः ॥ १९ ॥ तेनभिन्नात्रवसुधासुनन्दमुशलेनतु ॥ भोक्ष्यतेवसुधामेतांतमजित्वाकथंभवान् ॥ २० ॥ यज्ञान्विध्वंसय त्युग्रोदेवानामुपरोधकः ॥ आप्याययतिदैतेयान्सबलीमुशलायुधः ॥ २१ ॥ यद्यरिंघातयस्येनंपातालान्तरगोचरम् ॥ ततःसमस्त वसुधापतिस्त्वंपरमेश्वरः ॥ २२ ॥ मुशलन्तस्यबलिनःसौनन्दंप्रोच्यतेजनैः ॥ तथाबलाबलञ्चैवतंवदन्तिविचक्षणाः ॥ २३ ॥

किया था, यह दुरात्मा उसीको ग्रहण करके युद्धकालमें उसीके द्वारा शत्रुओंको हनन करता है ॥१८॥ और उसके द्वारा ही रसातलसे पृथ्वी भेदकर अन्यान्य सब असुरोंके लिये द्वार बनता है ॥१९॥ उस सुनन्द मूशलके आघातसे ही इस स्थानकी पृथ्वी भेदकर उसने यह विवर किया है आप उसको विना पराजय किये किस प्रकार भोग करते हैं ? उग्रकर्मा दैत्य मूशलायुधसे अधिक बलशाली होकर यज्ञकर्मका विनाश और देवताओंको व्यथित करता हुआ दैत्योंको तृप्त करता है ॥ २० ॥ २१ ॥ आप यदि पातालमें रहने वाले इस शत्रुको पराजय करसकेंगे तो आप संपूर्ण पृथ्वीके अधीश्वर होकर परमेश्वर (सम्राट्) होनेमें समर्थ होंगे ॥ २२ ॥ जनगण इस मूशलको "सौनन्द" कहते हैं और

विचक्षण पुरुष भी उसके बलाबल सम्बन्धमें इस प्रकार कहते हैं ॥ २३ ॥ वह मूशल जिस दिन स्त्रीके हाथसे छुआ जाय उसदिन वीर्यहीन होता है और उसके दूसरेही दिन फिर पूर्ववत् बलशाली होजाता है ॥ २४ ॥ किंतु वह दुराचारी मूशलका यह प्रभाव और स्त्रीजातीके हस्ताग्रस्पर्श सेभी उसके बलहानिरूप दोषकी बात नहीं जानता है ॥ २५ ॥ हे राजन् ! दुरात्मादानवका और मूशलका इस प्रकार बल आपसे कहागया। अब मेरे कहनेके अनुसार कार्य कीजिये ॥ २६ ॥ हे महीपते ! तुम्हारे पुरके निकटही उसने यह भूमिरन्ध्र किया है, फिर आप क्यों निश्चिन्त होरहे हैं ? ॥ २७ ॥ जब ऋषि इस प्रकार कहकर चलेगये तब राजाभी अपने पुरमें आये और वहां मंत्रज्ञ मंत्रियोंसे मंत्रणा करने लगे ॥

तत्तुनिर्वीर्य्यतांयातिसंस्पृष्टंयोपितानृप ॥ तस्मिन्दिनेद्वितीयेऽह्निवीर्य्यवत्तदुदीर्य्यते ॥ २४ ॥ नमवेत्तिदुराचारःप्रभावंमुशलस्य तम् ॥ योपित्कराग्रसंस्पर्शदोपंवीर्य्यविशातनम् ॥ २५ ॥ एवंतस्यवलंभूपदानवस्यदुरात्मनः ॥ मुशलस्यचतेप्रोक्तंयद्युक्तंतत्समा चर ॥ २६ ॥ आसन्नमेतद्भवतःपुरस्यपृथिवीपते ॥ कृतंतेनमहारंध्रंनिश्चिन्तःकिंभवान्वृथा ॥ २७ ॥ इत्युक्तातुगतेतस्मिन्पुरंगत्वा महीपतिः ॥ मन्त्रयामासमन्त्रज्ञैःपुरमध्येतुमन्त्रिभिः ॥ २८ ॥ यथाश्रुतमशेषन्तत्कथयामासमन्त्रिणाम ॥ मुशलस्यप्रभावञ्चवी र्य्यशातनमेवच ॥ २९ ॥ तंमन्त्रंक्रियमाणन्तुमन्त्रिभिस्तेनभूभृता ॥ तत्पार्श्ववर्तिनीकन्याशुश्रावाथमुदावती ॥ ३० ॥ ततःकति पयाहेतुतांकन्यांवयसान्विताम् ॥ जहारोपवनाद्दैत्यःकुजृम्भःसखीवृताम् ॥ ३१ ॥ तच्छ्रुत्वाममहीपालःक्रोधपर्य्याकुलेक्षणः ॥ पुत्रावुवाचत्वरितंगच्छतंवनकोविदौ ॥ ३२ ॥

॥ २८ ॥ मूशलका प्रभाव और वीर्यहानि इत्यादि जो जो सुन आये थे, वह सब मंत्रियोंके समीप प्रकाशित किया॥२९॥जब राजा मंत्रियोंके संग यह परामर्श कर रहे थे, उनकी कन्या मुदावतीभी उस समय पार्श्वमें बैठी हुई सब सुन रही थी ॥ ३० ॥ इस घटनाके कई दिन पीछे ही सखियोंके संग मुदावती जब उपवनमें थी तब कुजृम्भ दैत्यने उस अवस्थावाली कन्याको उस उपवनसे हरण किया ॥ ३१ ॥ यह संवाद सुनते ही महीपालने क्रोधसे नेत्र लालकर वन प्रदेशके जाननेवाले दोनों पुत्रोंसे कहा, तुम वन प्रदेशके जाननेवाले हो अतएव तुम शीघ्र जावो ॥ ३२ ॥

निर्विन्ध्या नदीके तटमें जो गर्त्त है, उसके द्वारा रसातलमें जाकर मुदावतीके हरण करनेवाले उस दुर्मतिको मारो ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर दोनों राजपुत्र उस गर्त्तपर पहुँचे, उसमें उसके पैरोंके अनुशरणसे गमन करके अत्यन्तक्रोधपूर्वक अपनी सेनासहित कुजृम्भके संग युद्ध किया ॥ ३४ ॥ तिस समय परिघ निस्त्रिंश, (आयुध विशेष) शक्ति, शूल, फरशे और बाणोंके द्वारा उनका अविरत दारुण युद्ध होने लगा॥३५॥किन्तु मायाके बलसे बली दैत्योंने युद्धस्थलमें दोनों राजपुत्रोंकी संपूर्ण सेना मारकर दोनोंको बाँध लिया॥३६॥ हे मुनिसत्तम ! दोनों पुत्रोंके बंधनका सम्वाद जब महीपालने सुना, तब हृदयमें अत्यन्त दुःखित होकर सेनासे कहा कि, ॥ ३७ ॥ जो उस दैत्यको मारकर मेरी

निर्विन्ध्यायास्तटेगर्तस्तेनगत्वारसातलम् ॥ सहन्यतांयोऽपहर्तामुदावत्याःसुदुर्मतिः ॥ ३३ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ ततस्तौनत्सुतौ प्राप्यतंगर्त्ततत्पदानुगौ ॥ युयुधातेकुजृम्भेणस्वसैन्येनातिकोपितौ ॥ ३४ ॥ ततःपरिघनिस्त्रिंशशक्तिशूलपरश्वधैः ॥ बाणैश्चावि रतंयुद्धंतेषामासीत्सुदारुणम् ॥ ३५ ॥ ततोमायाबलवतातेनदैत्येनताबुभौ ॥ राजपुत्रौरणेबद्धौनिहताशेषसैनिकौ ॥ ३६ ॥ तच्छ्रुत्वासमहीपालःप्राहेदंसर्वसैनिकान् ॥ बद्धपुत्रःपरामार्तिमुपेतोमुनिसत्तम ॥ ३७ ॥ यस्तंनिहत्यदैतेयंमोचयिष्यतिमेसुताम् ॥ तस्याहंसंप्रदास्यामितामेवायतलोचनाम् ॥ ३८ ॥ इत्येवंघोषयांचक्रेसराजास्वपुरेतदा ॥ निराशःपुत्रतनयाबन्धमोक्षायवैमुने ॥ ॥ ३९ ॥ ततःशुश्राववत्सश्रीर्भलन्दनसुतोहितत् ॥ आघोष्यमाणंबलवान्कृतास्त्रःशौर्य्यसंयुतः ॥ ४० ॥ सचागम्याभिवाद्यैनंप्राह पार्थिवसत्तमम् ॥ विनयावनतोभूत्वापितुर्मित्रमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥ आज्ञापयाशुमामेवतनयौमोचयामिते ॥ तवैवतेजसाहत्वातंदैत्यं तनयांचते ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सतंमुदापरिष्वज्यप्रियसख्युरथात्मजम् ॥ गम्यतामितिसंसिद्ध्यैवत्सेत्याहसपार्थिवः॥४३॥

कन्या और दोनों पुत्रोंको छुड़ासकेगा उसको अपनी वही बड़े नेत्रोंवाली मुदावती कन्या दूंगा॥ ३८ ॥ हे मुने ! राजाने पुत्र कन्याके छूटनेके विषयमें निराश होकर अपने नगरमें इस प्रकार ढंढोरा पिटवाया था ॥ ३९ ॥ बलवान् वीर्यशाली अस्त्रवित् भलन्दनपुत्र वत्सश्री यह घोषणा सुनकर आये और पिताके मित्र पार्थिवसत्तम विदूरथको प्रणाम करके विनयसे नम्र होकर कहा ॥ ४० ॥ ४१ ॥ "मुझको आज्ञा दीजिये ! मैं अभी आपके तेजबलसे उस दैत्यको मारकर आपकी कन्या और पुत्रोंको छुड़ाताहूं " ॥ ४२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--राजाने मित्रपुत्र वत्सश्रीको

सहर्ष आलिंगन करके कहा " हे वत्स ! कार्यसिद्धिके लिये जाओ ॥ ४३ ॥ यदि यह कार्य करसको तो तुम्हारे द्वारा यथार्थ मित्रपुत्रका कार्य संपन्न हुआ समझूंगा और हे वत्स ! यदि इस कार्यमें तुम्हारा मन अत्यन्त उत्साहपूर्ण हो, तो इस कार्यको शीघ्र संपादान करो ॥ ४४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- इसके पीछे महावीर वत्सश्री खड्ग, धनुष, गोधा और अंगुलीत्राण (चर्मका अंगुलीमें पहरा जाता है) इत्यादि धारण कर उसी गर्तके द्वारा शीघ्र पदसे पातालमें घुसे ॥ ४५ ॥ और वहां राजपुत्रने अपने उग्र धनुषके प्रत्यंचाकी टंकार करी कि, जिससे संपूर्ण पातालविवर परिपूर्ण हो गया ॥ ४६ ॥ दानवपति कुजृम्भ इस धनुषकी प्रत्यंचाका शब्द सुननेसे अत्यन्त क्रोधित हो अपनी सेना सहित

स्थानेस्थास्यतिमेवत्सोयथैवंकुरुतेविधिम् ॥ वत्सैतत्क्रियतामाशुयद्युत्साहिमनस्तव ॥ ४४ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ ततःसखड्गः सधनुर्बद्धगोधाङ्गुलित्रवान् ॥ जगामवीरःपातालंतेनगर्तेनसत्वरः ॥ ४५ ॥ तज्ज्यास्वनमत्युग्रंसचक्रेपार्थिवात्मजः ॥ येनपातालमखिलमासीदापूरितान्तरम् ॥ ४६ ॥ ततोज्यास्वनमाकर्ण्यकुजृम्भोदानवेश्वरः ॥ आजगामातिकोपेनस्वसैन्यपरिवारितः ॥ ॥ ४७ ॥ ततोयुद्धमभूत्तस्यतेनपार्थिवसूनुना ॥ ससैन्यस्यससैन्येनबलिनोद्बलशालिना ॥ ४८ ॥ दिनानित्रीणिसयदायोधितस्तेन दानवः ॥ ततःकोपपरीतात्मामुसलायाभ्यधावत ॥ ४९ ॥ गन्धैर्माल्यैस्तथाधूपैःपूज्यमानःसतिष्ठति ॥ अन्तःपुरेमहाभागप्रजापतिविनिर्मितः ॥ ५० ॥ ततोविज्ञातमुशलप्रभावामामुदावती ॥ पस्पर्शमुशलंश्रेष्ठमनिनम्रशिरोधरा ॥ ५१ ॥ पुनर्यावत्सगृह्णाति मुशलंतंमहासुरः ॥ तावत्सावन्दनव्याजात्पस्पर्शानेकशःशुभा ॥ ५२ ॥ ततःसगत्वायुयुधेमुशलेनासुरेश्वरः ॥ व्यर्थामुशलपातास्ते संजग्मुस्तेषुशत्रुषु ॥ ५३ ॥

आकर उपस्थित हुआ॥४७॥तब बलशाली सेनासे युक्त राजपुत्रके संग सेनाकी अधिकाईसे बली कुजृम्भका युद्ध हुआ॥४८॥दानव तीन दिन तक उनके संग संग्राम करके क्रोधितचित्तसे मूशल लेनेको दौड़ा ॥ ४९ ॥ हे महाभाग ! प्रजापतिनिर्मित वह मूशल गंध, माल्य, धूप इत्यादिके द्वारा पूजित होकर अन्तःपुरमें रक्खा रहता था ॥५०॥ मुदावती पहिलेसेही मूशलका प्रभाव जानती थी, उसने मस्तक झुकाकर उसको स्पर्श कर दिया था ॥५१॥और जब असुरने वह मूशल ग्रहण किया तबतक उस सुन्दरीने पूजाके बहाने उसको वारंवार स्पर्शकिया था॥५२॥इसके उपरान्त असुर

पति रणस्थलमें उपस्थित हो उस मूशलके द्वारा युद्ध करने लगा॥ किंतु शत्रुओंमें मूशलपात व्यर्थ होनेलगा॥५३॥ हे मुने! सौनन्द परम अस्त्र मूशलके वीर्यहीन होनेपर दैत्य अस्त्रशस्त्रद्वाराही संग्राममें शत्रुके संग युद्ध करने लगा॥५४॥ किंतु॥ दैत्यराज पुत्रके समान अस्त्रशस्त्रद्वारा युद्धमें पारदर्शी नहीं था और उसको जो मूशलका बल था, वहभी बुद्धिबलसे व्यर्थ किया गया था॥५५॥ अतएव राजपुत्रने उसके संपूर्ण अस्त्र शस्त्र व्यर्थ करके उसको तत्काल रथविहीन किया। तब दैत्य फिर तलवार और ढाल ग्रहण करके दौडाहुआ आया॥ ५६ ॥ इन्द्रशत्रु उस दैत्यके क्रोधयुक्त होकर वेगसहित आनेपर राजपुत्रने कालाग्नितुल्य चमकते हुए आग्नेयास्त्रद्वारा उसको वध किया॥५७॥ देवशत्रु कुजृम्भने उस आग्नेयास्त्रसे हृदयमें

परमास्त्रेतुनिर्वीर्येसौनन्देमुशलेमुने ॥ अस्त्रैःशस्त्रैश्चदैतेयःसोयुध्यतरणेऽरिणा ॥ ५४ ॥ शस्त्रास्त्रैर्नसमस्तस्यराजपुत्रस्यसोऽसुरः ॥ मुशलेनबलन्तस्यतच्चतन्व्यानिराकृतम् ॥ ५५ ॥ ततःपराजित्यसभूपसूनुरस्त्राणिशस्त्राणिचदानवस्य ॥ चकारसद्योविरथंततश्चसच सखड्गःपुनरप्यधावत् ॥ ५६ ॥ तमापतन्तंरभसाऽभ्युदीर्णविस्पष्टकोपंत्रिदशेन्द्रशत्रुम् ॥ शस्त्रेणवह्नेर्भुविराजपुत्रोजघानकालानलस प्रभेण ॥ ५७ ॥ सपावकास्त्रेणहृदिक्षतोभृशंतत्याजदेहंत्रिदशारिरात्मनः ॥ बभूवसद्यश्चमहोरगाणांरसातलान्तेषुमहानथोत्सवः॥५८॥ ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्महीपालसुतोपरि ॥ जगुर्गन्धर्वपतयोदेववाद्यानिसस्वनुः ॥ ५९ ॥ सचापिराजपुत्रस्तंहत्वातौनृपतेःसुतौ ॥ मोच यामासतन्वङ्गींताश्चकन्यांमुदावतीम् ॥ ६० ॥ तच्चापिमुसलंतस्मिन्कुजृम्भेविनिपातिते ॥ जग्राहनागाधिपतिरनन्तःशेषसंज्ञितः ॥ ॥ ६१ ॥ तस्याश्चपरितुष्टोऽसौशेषःसर्वोरगेश्वरः ॥ मुदावत्यांमुदाध्यातमनोवृत्तिस्तपोधनः ॥ ६२ ॥ सुनन्दमुशलस्पर्शयच्चकार पुनःपुनः ॥ योषित्करतलस्पर्शप्रभावज्ञातिशोभना ॥ ६३ ॥

अत्यन्त घायल हो जैसेही प्राण परित्याग किया, उसीसमय पातालवासी उरगोंमें महाउत्सव उपस्थित हुआ ॥५८॥ उसकाल राजपुत्रके ऊपर पुष्पवृष्टि होनेलगी, गंधर्वोंने संगीत आरंभ किया और समस्त देवबाजे बज उठे ॥ ५९ ॥ राजपुत्र वत्सप्रीनेभी दैत्यका विनास करके सुनीति और सुमति नामक दोनों राजपुत्र और राजकन्या क्षीणाङ्गी मुदावतीको छुडाया॥६०॥ कुजृम्भके मारेजानेपर शेषनामक नागराज अनन्तने उस मूशलको ग्रहण किया ॥६१॥ और हे द्विज! तपोधन नागराज राजकन्या मुदावतीका अभिप्राय समझकर सहर्ष उसके प्रति संतुष्ट हुए॥६२॥ स्त्रीके

करतलस्पर्शका प्रभाव जानकर मुदावतीने जो बारम्बार मूशलको स्पर्श किया था॥६३॥इसकारण नागराजने सानन्द मुदावती का सौनन्द मूशलके गुणसे 'सुनन्दा' यह नाम रक्खा ॥६४॥ राजपुत्रने दोनों भ्राताओंके सहित उस कन्याको शीघ्र पिताके समीप लाय प्रणामपूर्वक कहा ॥६५॥ हे तात!आपकी अज्ञानुसार आपके यह दोनों पुत्र और मुदावतीको ले आयाहूं,अब मुझको अन्य जो करना होगा,उसकी आज्ञा दीजिये॥६६॥ मार्कण्डेयजी बोले तब महीपालने प्रीतिपूर्ण हृदय हो उच्चस्वर और मधुर वचनोंसे "साधु वत्स !" इसप्रकार कहकर ॥ ६७ ॥ फिर कहा हे वत्स ! आज मैं तीन कारणोंसे देवताओंके द्वाराभी प्रशंसित हुआ हूं । प्रथम तो तुमको जामातृ प्राप्त किया, दूसरे शत्रु मारागया ॥ ६८ ॥

मुदावत्यास्ततोनामनागराजस्तदाकरोत् ॥ सुनन्दामितिसानन्दंसौनन्दगुणजंद्विज ॥६४॥ सचापिराजपुत्रस्तांभ्रातृभ्यांसहितांपितुः॥ समीपमानिनायाशुप्रणिपत्याहचैवतम् ॥६५॥ आनीतौतनयौताततथैवेयंमुदावती ॥ तवाज्ञयामयान्यद्यत्कर्तव्यंतत्ममादिश ॥६६॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःप्रहर्षसंपूर्णहृदयःसमहीपतिः ॥ साधुसाध्वित्यथाहोच्चैर्वत्समवत्सेतिशोभनम् ॥६७॥ सभाजितोऽस्मि त्रिदशैर्वत्साहंकारणैस्त्रिभिः ॥ त्वंजामाताचयत्प्राप्तोयच्चारिर्विनिपातितः ॥६८॥ आगतान्यक्षतान्यत्रयच्चापत्यानिमेपुनः॥तद्गृहाणा द्यशस्तेऽह्निपाणिमस्यामयोदितम् ॥ ६९ ॥ त्वंराजपुत्रचार्वङ्ग्याःकन्यायादुहितुर्मम ॥ मुदावत्यामुदायुक्तःसत्यवाक्यंकुरुष्व माम् ॥७०॥ राजपुत्रउवाच ॥ ॥ तातस्याज्ञामयाकार्य्यायद्ब्रवीषिकरोमितत् ॥ त्वमेवतातजानीषेनैवात्राधिकृतावयम् ॥ ७१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तयोःसराजेन्द्रश्चक्रेवैवाहिकंक्रमम् ॥ मुदावत्याश्चदुहितुर्भलन्दनसुतस्यवै ॥ ७२ ॥

और मेरे पुत्र कन्या फिर अक्षत शरीर (स्वस्थशरीर) से यहां लौट आये हैं, अतएव हे राज पुत्र ! आज शुभदिनमें मेरी आज्ञानुसार सहर्ष शोभनाङ्गी लक्षणयुक्त मेरी इस दुहिता मुदावतीका पाणिग्रहण करो, तो मैं सत्यवादी हूंगा ॥ ६९ ॥ ७० ॥ राज पुत्रने कहा हे तात ! आपकी आज्ञा अवश्यही प्रतिपालन करने योग्य है, अतएव जो आज्ञा देते हो वही करूंगा हे तात ! आप भी जानते हैं कि, पूज्यपुरुषोंकी आज्ञा पालनमें मैं कभी विमुख नहीं हुआ ॥ ७१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर राजेन्द्र विदूरथने कन्या मुदावती और भलन्दनपुत्र वत्सप्रीका विवाहकार्य संपादन किया ॥ ७२ ॥

तदनन्तर नवयुवक वत्सप्रीभी मुदावतीके सहित रमणीयदेश और प्रासादशिखरमें विहार करने लगे ॥ ७३ ॥ कालक्रमसे वत्सप्रीके पिता भलन्दन वृद्ध होकर वनमें चले गये, तब वत्सप्री राजा होकर ॥ ७४ ॥ यज्ञानुष्ठान और धर्मानुसार प्रजाका पालन करने लगे। प्रजा उन महात्माके द्वारा पुत्रके समान पालीजाकर ॥ ७५ ॥ उत्तरोत्तर समृद्धिशाली होने लगी और उनके राज्यमें कहीं वर्णसंकरकी उत्पत्ति नहीं हुई उनके शासन कालमें चोर, हिंसक जन्तु, दुर्वृत्त कुचाली और अन्यान्य विघ्नोंसे कोई भय नहीं था ॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां भलन्दनवत्सप्रीचरितं नाम त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उस सुनन्दाके गर्भसे वत्सप्रीके बारह पुत्र

ततःसहतयारेमेवत्सप्रीर्नवयौवनः ॥ रमणीयेषुदेशेषुप्रासादशिखरेषुच ॥ ७३ ॥ कालेनगच्छतावृद्धःपितातस्यभलन्दनः ॥ वनंजगामवत्सप्रीःसबभूवमहीपतिः ॥ ७४ ॥ इयाजयज्ञान्सततंप्रजाधर्मेणपालयन् ॥ पुत्रवत्पाल्यमानास्तुप्रजास्तेनमहात्मना ॥ ७५ ॥ ववृधुर्विषयेतस्यनचाभूद्वर्णसङ्करः ॥ नदस्युव्यालदुर्वृत्तभयमासीच्चकस्यचित् ॥ नोपसर्गभयञ्चैवतस्मिञ्छासतिभूपतौ ॥ ७६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेभलन्दनवत्सप्रीचरितंनामत्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ तस्यतस्यांसुनन्दायांपुत्राद्वादशजज्ञिरे ॥ प्रांशुःप्रवीरःशूरश्चसुचक्रोविक्रमःक्रमः ॥ १ ॥ बलीबलाकश्चण्डश्चप्रचण्डश्चसुविक्रमः ॥ सुनयश्चमहाभागाःसर्वेसंग्रामजित्तमाः ॥ २ ॥ तेषांज्येष्ठोमहावीर्य्यःप्रांशुरासीन्नराधिपः ॥ इतरेभृत्यवत्तस्यबभूवुर्वशवर्त्तिनः ॥ ३ ॥ तस्ययज्ञेद्विजत्यक्तैरनेकैर्द्रव्यराशिभिः ॥ न्यूनवर्णविसृष्टैश्चसत्यनाभावसुन्धरा ॥ ४ ॥ सम्यक्पालयतस्तस्यप्रजाःपुत्रानिवौरसान् ॥ योऽभूद्धनचयःकोशेतेननिष्पादितास्तुये ॥ ५ ॥ क्रतवःशतंसहस्रास्तेतेषांसंख्यानविद्यते ॥ अयुताद्येनकोटीभिर्नचपद्मादिभिर्मुने ॥ ६ ॥

उत्पन्न हुए थे उनके नाम प्रांशु, प्रवीर, शूर, सुचक, विक्रम, क्रम ॥१॥ बल, बलाक, चण्ड; प्रचण्ड, सुविक्रम और स्वरूप। यह सब महाभाग और संग्राम जीतनेवाले थे ॥२॥ तिनमें ज्येष्ठ महावीर प्रांशु राजा हुए थे और अन्यान्य ग्यारह भ्राता भृत्यके समान उनके वशवर्त्ती रहते थे ॥ ३ ॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मणोंने और दूसरी जातिने अनेकानेक द्रव्यका त्याग किया इसीकारण पृथ्वीने "वसुन्धरा" यह सार्थक नाम धारण किया था ॥४॥ औरस पुत्रके समान प्रजापालन करकेभी उनके राजकोशमें जो धन इकट्ठा होता, उनके द्वाराही जो समस्त असंख्य यज्ञकार्य सम्पादित हुए थे

हे मुने ! उनकी अयुत, करोड़, पद्म इत्यादि संख्या द्वारा भी गिनती नहीं होसकती ॥५॥६॥ प्रांशुके प्रजातिनामक पुत्र हुए थे उनके यज्ञमें बलिश्रेष्ठ शतक्रतु इन्द्रने देवताओंके सहित यज्ञभागद्वारा तृप्तिलाभकरके महावीर्यशाली ॥ (९९) दानव बल और जम्भ नामक दोनों असुरराज तथा अन्यान्य महाबली देवताओंके शत्रुओंको मारा था. हे मुने ! खनित्र इत्यादि प्रजातिके पांच पुत्र थे ॥ ७ ॥ ८ ॥ ९ ॥ तिनमें खनित्रही अपने विक्रमद्वारा विख्यात राजा हुए हैं, यह शान्त, सत्यवादी, शूर, सब प्राणियोंका हित करनेवाले ॥ १० ॥ स्वधर्मपरायण सदा वृद्धसेवी, बहुशास्त्र-दर्शी वाग्मी, विनयी, अस्त्रज्ञ, अहंकाररहित ॥ ११ ॥ और सर्वलोकप्रिय थे, वह सदाही यह बात कहते " सब प्राणी आनन्द भोगें, विजनस्था-

प्रजातिस्तस्यपुत्रोऽभूद्यस्ययज्ञेशतक्रतुः ॥ अवाप्यतृप्तिमतुलांयज्ञभागैःसुरैःसह ॥ ७ ॥ दानवानांसुवीर्य्याणांजघाननवतीर्नव ॥ बलंचबलिनांश्रेष्ठोजम्भंचासुरसत्तमम् ॥ ८ ॥ अन्यांश्चसुमहावीर्य्यानाजघानामरद्विषः ॥ प्रजातेस्तनयाःपंचखनित्रप्रमुखामुने ॥ ॥ ९ ॥ तेषांखनित्रोराजाभूत्प्रख्यातोनिजविक्रमैः ॥ सशान्तःसत्यवाक्छूरःसर्वप्राणिहितेरतः ॥ १० ॥ स्वधर्माभिरतोनित्यंवृद्धसेवीबहुश्रुतः ॥ वाग्मीविनयसंपन्नःकृतास्त्रोऽप्यविकत्थनः ॥ ११ ॥ सर्वलोकप्रियोनित्यमुवाचैतदहर्निशम् ॥ नन्दन्तुसर्वभूतानि स्निह्यन्तुविजनेष्वपि ॥ १२ ॥ स्वस्त्यस्तुसर्वभूतेषुनिरातङ्कानिसन्तुच ॥ माव्याधिरस्तुभूतानामाधयोनभवन्तुच ॥ १३ ॥ मैत्रीमशेषभूतानिपुष्यन्तुसकलेजने ॥ शिवमस्तुद्विजातीनांप्रीतिरस्तुपरस्परम् ॥ १४ ॥ समृद्धिःसर्ववर्णानांसिद्धिरस्तुचकर्मणाम् ॥ भोलोकाःसर्वभूतेषुशिवावोऽस्तुसदामतिः ॥ १५ ॥ यथात्मनियथापुत्रेहितमिच्छथसर्वदा ॥ तथासमस्तभूतेषुवर्त्तध्वंहितबुद्धयः ॥ ॥ १६ ॥ एतद्वोहितमत्यन्तंकोवाकस्यापराध्यते ॥ यत्करोत्यहितंकिंचित्कस्यचिन्मूढमानसः ॥ १७ ॥

नमेंभी प्रीतिमान हों ॥ १२ ॥ सब जीवोंका मंगल हो और सभी भय रहित हों प्राणियोंकी पीडा नष्ट हो, किसीको मनोऽयथा उपस्थित न हो ॥ १३ ॥ और समस्तप्राणी सबके प्रति मैत्रीभाव प्रकाश करें, ब्राह्मणोंका मंगल, परस्पर प्रीति ॥ १४ ॥ संपूर्ण वर्णोंकी समृद्धि और संपूर्ण कर्मोंकी सिद्धि संघटित हो, हे जनगण ! तुम्हारी सब प्राणियोंमेंही सब सदा मंगलमय बुद्धि प्रवृत्त रहे ॥ १५ ॥ तुम जिस प्रकार अपनी और अपने पुत्रके हितकी कामना करतेहो, इसी प्रकार सब जीवोंके हितकी कामना करो ॥ १६ ॥ यही तुम्हारा अत्यन्त हितकारक है, कौन

किसके निकट अपराधी होता है, जो कोई मन्दबुद्धि किसीका अहित करता है ॥ १७ ॥ तो उसीका अहित होता है, क्योंकि कर्मफल कर्त्ताको ही भोगना पड़ता है; हे मनुष्यगण ! तुम यह विचारकर समस्त प्राणियोंमें हितबुद्धि होओ अर्थात् सदैव सबप्राणियोंके हितकी चेष्टा करते रहो ॥ १८ ॥ हे बुधगण ! तुम लौकिक पापमें प्रवृत्त न होना। ऐसा करनेसे तुम पुण्यलोकोंको प्राप्त होगे। जो इस समय मुझसे स्नेह रखता है, पृथ्वीमें उसका सदा मंगल हो ॥ १९ ॥ और जो मुझसे द्वेष करता है, वह भी सदा मंगल भोगे। समस्तगुण—संपन्न. पद्मपलाशलोचन राजाके पुत्र वह श्रीमान् खनित्र इस प्रकार थे। वह प्रीति पूर्वक भ्राताओंको पृथक् पृथक् राज्यमें नियुक्त कर ॥२०॥२१॥

तंसमभ्येतिन्यूनंकर्तृगामिफलंयतः ॥ इतिमत्वासमस्तेषुभोलोकाहितबुद्धयः ॥१८॥ मन्तुमान्त्रौ किंपापंलोकाःप्राप्स्यथनेबुधाः ॥ योमेऽद्यस्निह्यतेतस्यशिवमस्तुसदाभुवि ॥ १९ ॥ यश्चमांद्वेष्टिलोकेऽस्मिन्सोऽपिभद्राणिपश्यतु ॥ एवंस्वरूपःपुत्रोऽभूत्खनित्रस्तस्य भूपतेः ॥ २० ॥ समस्तगुणसम्पन्नःश्रीमानब्जदलेक्षणः ॥ तेनतेभ्रातरःप्रीत्यापृथग्राज्येषुयोजिताः ॥ २१ ॥ स्वयंचपृथिवीमेतां बुभुजेसागराम्बराम् ॥ प्राच्यांतेनकृतःशौरिर्दक्षिणस्यामुदावसुः ॥ २२ ॥ दिशिप्रतिच्यांसुनयउत्तरस्यांमहारथः ॥ तेषांतस्यच भूपस्यपृथग्गोत्राःपुरोहिताः ॥ २३ ॥ बभूवुर्मुनयश्चैवमन्त्रिवंशक्रमागताः ॥ शौरेरत्रिकुलोद्भूतःसुहोत्रोनामवैद्विजः ॥ २४ ॥ उदा वसोःकुशावर्त्तोगौतमान्वयजोऽभवत ॥ काश्यपःप्रमतिर्नामसुनयस्यपुरोहितः ॥ २५ ॥ महारथस्यवासिष्ठःपुरोधाऽभून्महीभृतः ॥ बुभुजुस्तेस्वराज्यानिचत्वारोऽपिनराधिपाः॥२६॥खनित्रश्चाधिपस्तेषामशेषवसुधाधिपः॥तेषुभ्रातृष्वशेषेषुस्खनित्रःसमहीपतिः॥ २७॥

स्वयं समुद्रपर्यन्त इस पृथ्वीको पालते भोगते रहे। शौरिको पूर्व प्रदेशमें, उदावसुको दक्षिणदेशमें ॥ २२ ॥ पश्चिममें मुनि और उत्तरमें महारथी उस राजाके पृथक् गोत्रके पुरोहित ॥ २३ ॥ खनित्र और उनके भ्राताओंके मंत्रिवंशके क्रमसे प्राप्त पृथक् गोत्री जो मुनिगण पुरोहित थे उसीके अनुसार अत्रि--कुलोत्पन्न सुहोत्र नामक ब्राह्मण शौरिके ॥ २४ ॥ गौतम -वंशोत्पन्न कुशावर्त्त उदावसुके काश्यपगोत्रज प्रमति सुनयके ॥ २५ ॥ और वसिष्ठ महारथके पुरोहित थे। उक्त चारों भाई राजा होकर अपने राज्यको भोगते थे ॥ २६ ॥ समस्त वसुधाधिपति खनित्र उनके अधीश्वर थे। महाराज खनित्र सब भाई ॥ २७ ॥

और समस्त प्रजाके प्रति पिता जिसप्रकार पुत्रसे व्यवहार करता है, सदा उसी प्रकार हित व्यवहार करते थे एकदिन मन्त्री विश्ववेदीने शौरिसे कहा ॥२८॥ हे महीपाल ! इस एकान्त समयमें मुझे कुछ कहना है । यह समस्त पृथ्वी और भूपालगण जिनके वशीभूत हैं ॥ २९. ॥ वह और उनके पुत्र पौत्र इत्यादि वंशधरही राजाहोते हैं और उनके अपरभाई प्रथम अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं ॥३०॥ क्रमानुसार उनके पुत्र उनसे भी अल्प और फिर उनके पौत्र उनकी अपेक्षाभी अल्प राज्यके अधिकारी होते हैं, समय पाकर पुरुषानुक्रमसे वह घटते घटते अन्तमें ॥३१॥ उस वंशके मनुष्य खेतीसे जीविका निर्वाह करते हैं । हे पृथ्वीपाल ! भ्रातृ—स्नेहमें बद्ध होकर भ्राता कभी भ्राता का उद्धार नहीं करता ॥३२॥

प्रजाश्चसमस्तासुपुत्रेष्विवसदाहितः ॥ एकदामन्त्रिणाशौरिःसप्रोक्तोविश्ववेदिना ॥ २८ ॥ विविक्तेपृथिवीपालकिंचिद्वक्तव्यमस्तिनः ॥ यस्येयंपृथिवीकृत्स्नायस्यभूपावशानुगाः ॥ २९ ॥ सराजातस्यपुत्रश्चतत्पौत्राश्चान्वयस्ततः ॥ इतरेभ्रातरस्तस्यप्राक्स्वल्पविषयाधिपाः ॥ ३० ॥ तत्पुत्राश्चाल्पकास्तस्मात्तत्पौत्राश्चाल्पकाल्पकाः ॥ कालेनह्रासमायान्तिपुरुषात्पुरुषान्तरम् ॥ ३१ ॥ कृष्योपजीविनोभूपभवन्तीतितदन्वयाः ॥ नोद्धारंकुरुतेभ्राताभ्रातृस्नेहबलार्पणः ॥ ३२ ॥ स्नेहःकःपृथिवीपालपरतोऽसौतृपुत्रयोः ॥ तत्पुत्रयोःपरतरमतिर्भवतिपार्थिव॥३३॥तत्पुत्रःकेनकार्य्येणप्रीतियुक्तोभविष्यति ॥ अथवायेनतेनैवरंतोषंकुरुतेनृपः ॥३४॥ क्रियते तत्किमर्थन्तुभूपैर्मन्त्रिपरिग्रहः ॥ भुज्यतेसकलंराज्यंमयातेमंत्रिणासता ॥३५॥ तत्किंमुधाधारयसेसंतोषंकुरुतेयदि ॥ कार्यनिष्पादकंराज्यंकरणंकर्तुरिष्यते ॥ ३६ ॥

फिर उक्त दोनों भ्राताओंके दोनों पुत्रभी परस्पर परस्परको पराया विचारते हैं । हे पार्थिव ! उनके पुत्र उत्पन्न होनेपर वह उत्पन्न हुआ पुत्र फिर और भी पराया विचारता है ॥ ३३ ॥ और किस कार्यसे करनेमे अपना पुत्र सुखमें रहे, उस विषयमें ही वह अधिक मन लगाते हैं । और भी--जो किसी प्रकार संतोष मात्र राजाका अवलम्बनीय हो ॥ ३४ ॥ तो भूपालगण किस प्रयोजनके लिये मंत्रियोंको रखते हैं, मेरे समान मंत्री रहनेपर आप समस्त राज्यही भोग सकेंगे ॥ ३५ ॥ और मैं यदि चेष्टा करूं तो क्यों आप वृथा संतोष धारण कर रहे हैं ? राज्य करनेवालेका कार्य कर देनाही मंत्रीका इष्ट है ॥ ३६ ॥

किन्तु तिनमें राज्यलाभ कार्यमें आप कर्त्ता और मैं कारण हूं। * अतएव कारणके द्वारा अपना पितृ पैतामहिक राज्यशासन कीजिये! हम इसी लोकमें आपको फलदाता होंगे परलोकमें फलदाता नहीं होंगे ॥ ३७ ॥ राजाने कहा महीपालक राजा हमारे ज्येष्ठ हैं और हम उनके अनुज हैं, अतएव वह सब पृथ्वी भोगते हैं और हम अल्पमात्र पृथ्वीका भाग भोग करते हैं ॥ ३८ ॥ हे महामते ! हम पांच भाई हैं, किन्तु पृथ्वी केवल एकहै इस कारण इस पृथ्वीका समस्त ऐश्वर्य हम किस प्रकार पृथक् भावसे भोग करनेमें समर्थ होंगे ? ॥ ३९ ॥ विश्ववेदी बोला हे नृप ! आपने जो कहा सो सत्य है, पृथ्वीको यदि एकही मान लिया जाय, तो आपही उसको ग्रहण कीजिये और सबमें प्रधान होकर आपही इस

राज्यलब्धुश्चतेकार्यंत्वंकर्त्ताकरणंवयम् ॥ सोऽस्माभिःकरणैराज्यंपितृपैतामहंकुरु ॥ फलप्रदाभविष्यामःपरलोकेनतेवयम् ॥ ३७ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ज्येष्ठोभ्रातामहीपालोवयंतस्यानुजायतः ॥ ततःसभुंक्तेपृथिवींवयंचाल्पवसुंधराम् ॥ ३८ ॥ वयन्तुभ्रातरःपंच पृथ्वीचैकामहामते ॥ अतोऽस्याःपृथगैश्वर्य्यंकथंकृत्स्नंभविष्यति ॥ ३९ ॥ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ ॥ एवमेतद्भवत्वत्रयद्येकावसुधानृप ॥ तांत्वमेवाभिपद्यस्वज्येष्ठःशास्तुयथाभवान् ॥४०॥ सर्वाधिपत्यःसर्वेभ्योभवत्वमखिलेश्वरः ॥ यतन्तेचयथाहंतेतेषामपिहिमन्त्रिणः॥ ॥ ४१ ॥ राजोवाच ॥ ॥ ज्येष्ठोराजायथाप्रीत्याभजतेऽस्मान्सुतानिव ॥ कथंतस्यकरिष्यामिममत्वंजगतींगतम् ॥ ४२ ॥ ॥ विश्ववेद्युवाच ॥ राज्येस्थितःपूजयेथाज्येष्ठंभूपार्हणैर्धनैःकनिष्ठज्येष्ठताकेयंराज्यंप्रार्थयतांनृणाम् ॥ ४३ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ तथेतिचप्रतिज्ञातेभूभुजातेनसत्तम ॥ विश्ववेदीततोमन्त्रीतद्भ्रातृननयद्वशम् ॥ ४४ ॥

पृथ्वीका शासन कीजिये ॥ ४० ॥ सर्वाधिपत्य लाभ करके सब भाइयोंमें आपही अखिलेश्वर हूजिये मेरे नियुक्त मंत्री भी इसी प्रकार चेष्टा करते हैं ॥ ४१ ॥ राजाने कहा—ज्येष्ठ भ्राता हमारा पुत्रके समान स्नेह सहित पालन करते चले आते हैं फिर मैं किस प्रकार उन राजाके राज्यमें ममता (लोभ) करूं ? ॥ ४२ ॥ विश्ववेदीबोला—आप राज्य अधिकारपूर्वक ज्येष्ठ होकर भाँति २ के सत्कारसे पूजाद्वारा उनकी अर्चना कीजिये । अथवा राज्यकी चाहना करनेवाले मनुष्यको बडे छोटे का विचार करना निष्प्रयोजन है ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे सत्तम !

* जिसके द्वारा कार्य--संपन्नहो, उसीको कारण कहते हैं ।

अनन्तर राजाके यह बात स्वीकार करनेपर मंत्री विश्ववेदीने उनके अन्यान्य भ्राताओंको वशीभूत कर लिया ॥ ४४ ॥ और उनके पुरोहितोंको अपने शान्तिकर्म और खनित्रके आभिचारिक कार्यमें नियुक्त किया ॥ ४५ ॥ खनित्रके विश्वासीभृत्योंको सामदानादि द्वारा भेदयुक्त करके अपने दण्डके प्रभाव बढानेमें उद्योग करने लगा ॥ ४६ ॥ जब चार पुरोहित नित्य अत्युग्र आभिचारिक कार्य करनेमें प्रवृत्त हुए तब चार कृत्या उत्पन्न हुई ॥ ४७ ॥ वह सब कराल देह, बिकट वदन और देखनेमें अति भयंकर थीं उनके हाथमें महाशूल उद्यत, देह अतिविशाल और वह अत्यन्त दारुण थीं ॥ ४८ ॥ इसके उपरान्त वह चारों कृत्या राजा खनित्रके समीप उपस्थित हुई। किन्तु निष्पाप राजाके पुण्य

तेषांपुरोहितांश्चैवआत्मनःशांतिकादिषु ॥ नियोजयामासततःखनित्रस्याभिचारके ॥ ४५ ॥ बिभेदतस्यनिभृतान्सामदानादिभिस्तथा ॥ चक्रेचपरमोद्योगंनिजदंडप्रभावने ॥ ४६ ॥ आभिचारिकमत्युग्रमहन्यहनिकुर्वताम् ॥ पुरेऽधमांचतुर्णांचजज्ञेकृत्याचतुष्टयम् ॥ ४७ ॥ विकरालंमहावक्त्रमतिभीषणदर्शनम् ॥ समुद्यतमहाशूलंप्रभूतमतिदारुणम् ॥ ४८ ॥ ततस्तदागतन्तत्रखनित्रोयत्रपार्थिवः ॥ निरस्तंचाप्यदुष्टस्यतस्यपुण्यचयेनतत् ॥ ४९ ॥ कृत्याचतुष्टन्तेषुनिपपातदुरात्मसु ॥ पुरोहितेषुभूपानांतथावैविश्ववेदिनि ॥ ५० ॥ ततोनिहन्त्यानिर्दग्धाःकृत्ययातेपुरोहिताः ॥ विश्ववेदीतथामन्त्रीसशौरेर्दुष्टमन्त्रदः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरित्रेचतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः॥ ११४ ॥॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ ततःसमस्तलोकस्यविस्मयःसोऽभवन्महान् ॥ यदेककालंनेशुस्तेपृथक्पुरनिवासिनः ॥१॥ ततःशुश्रावनिधनंयातान्भ्रातृपुरोहितान् ॥ मन्त्रिणञ्चतथाभ्रातुर्दग्धंतंविश्ववेदिनम् ॥२॥

बलसे तेजहत होकर ॥ ४९ ॥ वह राजाओंके उन दुरात्मा चारों पुरोहित और विश्ववेदीके निकट लौटकर आई ॥ ५० ॥ तब यह पुरोहित और शौरिको दुष्ट परामर्श देनेवाला मंत्री विश्ववेदी कृत्याओंके द्वारा निहत होकर भस्म होगया ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तिस काल समस्त लोकोंकोही यह एक महान् आश्चर्य उपस्थित हुआ था कि, पृथक् पृथक् पुरवासी होकर भी यह किस प्रकार एकही कालमें नाशको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ हे मुनिसत्तम ! इसके उपरान्त महाराज खनित्र भ्राताके पुरोहित और भ्राताके मंत्री विश्ववेदीका दग्ध होकर मरना सुन ॥ २ ॥

इसका कारण न जान, 'यह क्या हुआ ?' इस प्रकार चिन्ता करके अत्यन्त आश्चर्यमें हुए ॥ ३ ॥ फिर वसिष्ठजीके घर आने पर जिस कारणसे भ्राताके मंत्री और पुरोहित नष्ट हुए थे राजाने वह उनसे पूछा ॥ ४ ॥ जब महामुनि वसिष्ठजीसे इस प्रकार पूछा गया, तब उन्होंने शौरिके मंत्री और शौरिकी परस्पर जो बातचीत हुई थी ॥ ५ ॥ उस, दुष्ट मंत्रीके द्वारा भ्राताओंमें भेद-साधन करनेवाले जो सब कार्य अनुष्ठित हुए थे पुरोहितोंने जो किया था ॥ ६ ॥ और शत्रुपर भी दया करनेवाले वह पुरोहित जिस कारण निरपराधीका अपराधीका अपकार करनेमें उद्यत होकर नष्ट हुए थे, वह सब यथावत् कहा ॥ ७ ॥ हे द्विज ! राजा यह सब वार्त्ता सुन "हा हतोस्मि"

किमेतदितिसोऽतीवविस्मितोमुनिसत्तम ॥ खनित्रोऽभून्महाराजोनाजानात्तच्चकारणम् ॥ ३ ॥ ततोवसिष्ठंपप्रच्छसराजागृहमागतम् ॥ यत्कारणंविनेशुस्तेभ्रातृमन्त्रिपुरोहिताः ॥ ४ ॥ तेनपृष्टस्तदाप्राहयथावृत्तंमहामुनिः ॥ यच्छौरिमन्त्रिणाप्रोक्तंयच्चशौरिरुवाचतम् ॥ ॥ ५ ॥ यथाचानुष्ठितन्तेनभ्रातॄणांभेदकारिवै ॥ मन्त्रिणातेनदुष्टेनयच्चकुश्चपुरोहिताः ॥ ६ ॥ यन्निमित्तंविनेशुस्तेअपापस्यापकारिणः ॥ पुरोहितास्तस्यराज्ञःशत्रावपिदयावतः ॥ ७ ॥ सतच्छ्रुत्वाततोराजाहाहतोऽस्मीतिवैवदन् ॥ निनिन्दात्मानमत्यर्थंवसिष्ठस्याग्रतोद्विज ॥ ८ ॥ राजोवाच ॥ ॥ धिङ्मामपुण्यसंस्थानमल्पभाग्यमशोभनम् ॥ दैवदोषकृतंपापंसर्वलोकविगर्हितम् ॥ ९ ॥ मन्निमित्तंविनष्टंतत्तद्ब्राह्मणचतुष्टयम् ॥ मत्ताकोऽन्यःपापतरोभविष्यतिपुमान्भुवि ॥ १० ॥ नाभविष्यंयदिपुमानहमत्रमहीतले ॥ ततस्तेनविनश्येयुर्ममभ्रातृपुरोहिताः ॥ ११ ॥ धिग्राज्यंधिक्चमेजन्मभूभुजांमहतांकुले ॥ कारणत्वंगतोयोऽहंविनाशस्यद्विजन्मनाम् ॥ १२ ॥

इस प्रकार कह, वसिष्ठजीके सामनेही अपनपेकी अत्यन्त निन्दा करने लगे ॥ ८ ॥ राजा बोले- मेरा पुण्यसंचय नहीं है, मैं अल्पभाग्य और शोभाहीन हूं, दैवभी मेरे प्रतिकूल है और मैं सर्व लोकमें निन्दित तथा पापीहूं, मुझको धिक्कार है ॥ ९ ॥ क्योंकि मेरे निमित्तही चार ब्राह्मण मृत्युको प्राप्त हुए हैं, अतएव मेरी अपेक्षा भूमण्डलमें और अधिक पापी मनुष्य कौन है ? ॥ १० ॥ इस पृथ्वीमें, मैं यदि पुरुष होकर जन्म ग्रहण नहीं करता, तो फिर मेरे भ्राताओंके पुरोहित नष्ट नहीं होते ॥ ११ ॥ मैंही ब्राह्मणोंके नाशका कारण

हुआ हूं, अतएव मेरे इस राज्य और महत् राजकुलमें मेरे इस जन्मको धिक्कार है ॥ १२ ॥ मेरे भ्राताओंके याजकगण जिसका प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये जाकर नष्ट हुये हैं, सुतरां वह दोषी नहीं हैं, उनके विनाशका कारण होकर मैं ही दोषी हुआ ॥ १३ ॥ मैं अब क्या करूं ! कहाँ जाऊं ? ब्रह्महत्याका कारण होकर मेरे समान पापकारी पृथ्वीमें दूसरा नहीं है। १४॥ इसप्रकार महीपाल खनित्रने उद्विग्न होकर वन जानेकी इच्छासे पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त किया ॥१५॥ राजा क्षुप नामक पुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करके तीन पत्नियोंके संग तपस्याके लिये वनमें चले गये ॥१६॥ नृपसत्तमने वनमें उपस्थित होकर वानप्रस्थ विधानानुसार साढे तीन सौ वर्ष तपस्याकी थी॥१७॥ इसके पश्चात् हे द्विजो ... [illegible]

कुर्वन्तःस्वामिनोनिऽथभ्रातॄणांममयाजकाः ॥ नाशंययुर्नदुष्टास्तेदुष्टोऽहंनाशकारणे ॥ १२ ॥ किंकरोमिक्वगच्छामिनान्योमत्तोहि पापकृत् ॥ पृथिव्यामस्तिहेतुत्वंद्विजनाशस्ययोगतः ॥ १४ ॥ इत्थमुद्विग्नहृदयःखनित्रःपृथिवीपतिः ॥ वनंगियासुःपुत्रस्यकृतवान भिषेचनम् ॥ १५ ॥ अभिषिच्यसुतंराज्येक्षुपसंज्ञंमहीपतिः ॥ भार्याभिस्तिसृभिःसार्धंतपसेसवनंययौ ॥ १६ ॥ तत्रागत्वातपस्ते पेवानप्रस्तविधानवित् ॥ शतानित्रीणिवर्षाणांसार्द्धानिनृपसत्तमः ॥ १७ ॥ तपसाक्षीणदेहस्तुराजवर्योद्विजोत्तम ॥ निगृह्यसर्व स्रोतांसितत्याजासून्वनेचरः ॥ १८ ॥ ततःपुण्यान्ययौलोकान्सर्वकामदुहोऽक्षयान् ॥ अश्वमेधादिभिर्यज्ञैर्नाप्यायेनराधिपः ॥१९॥ भार्याश्चतस्यतास्तिस्रःसमन्तेनैवतत्यजुः ॥ प्राणानवापुःसालोक्यंतेनैवसुमहात्मना ॥ २० ॥ एतत्खनित्रचरितंश्रुतंकल्मषनाशनम् ॥ पठताञ्चमहाभागक्षुपस्यातोनिशामय ॥ २१ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरितंनामपंचदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥

वनवासी उन राजाने तपस्याद्वारा क्षीणदेह होनेपर सर्व स्रोत (इन्द्रिय पथ) निरोधकरके प्राणपरित्याग किया॥१८॥अन्यान्य राजा शताशत अश्वमेध करकेभी जिस लोकको प्राप्त नहीं होसकते महाराज खनित्र मृत्युके पीछे उसी सर्वाभीष्टप्रद अक्षय पुण्यलोकको प्राप्त हुए॥१९॥उनकी तीनों भार्याभी स्वामीके संग प्राण त्याग करके उन महात्माके संगही समान लोकमें गई ॥२० हे महाभाग!इसप्रकार यह खनित्रचरित्र कहा गया। इसके सुनने वा पढनेसे पाप समूह नष्ट होते हैं।अब क्षुपका चरित्र वर्णन करताहूं, सुनो ॥२१॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां खनित्रचरित्रसमाप्ति

नाम पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—खनित्र-पुत्र क्षुप राज्यको प्राप्त हो पिताके समान प्रजाका मन प्रसन्न करते हुए धर्म पूर्वक प्रजापालन करने लगे ॥१॥ यह राजा क्षुपभी यज्ञकरनेवाले दाता और व्यवहारादि(स्मृतिमें कहे अठारह विवाद पद) मार्गमें शत्रु मित्रके प्रति समान भाववाले हुए थे ॥२॥ हे मुने ! एकसमय सूतगणोंने राज्यासनमें बैठे हुए राजासे कहा—आप ठीक पूर्ववर्ती क्षुपराजाके समान हैं ॥ ३ ॥ ब्रह्माके पुत्र क्षुप पूर्वमें पृथ्वीपति हुए थे, उनके चरित्र और चेष्टा जिस प्रकार थी, आपकीभी वैसीही है ॥ ४ ॥ राजाने कहा--महात्मा क्षुपका चरित्र सुननेकी इच्छा करता हूं, यदि मैं भी उनके समान आचरण करनेमें समर्थ हूं, तो उसकी चेष्टा करूंगा ॥ ५ ॥ सूतगण बोले हे

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ क्षुपःखनित्रपुत्रस्तुप्राप्यराज्यंयथापिता ॥ तथैवपालयामासप्रजाधर्मेणरञ्जयन् ॥ १ ॥ सदानशीलोय ष्टाचयज्ञानामवनीपतिः ॥ समःशत्रौचमित्रेचव्यवहारादिवर्त्मनि ॥ २ ॥ एकदासमहीपालोनिजस्थानगतोमुने ॥ सूतैरुक्तोयथापूर्वं क्षुपोराजातथाऽभवत् ॥ ३ ॥ ब्रह्मणस्तनयःपूर्वंक्षुपोऽभूत्पृथिवीपतिः ॥ यादृक्चरितमस्यासीत्तादृक्तस्यैवचेष्टितम् ॥ ४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ श्रोतुमिच्छामिचरितंक्षुपस्यसुमहात्मनः ॥ यदिताद्दङ्मयाशक्यंचेष्टितुंतत्करोम्यहम् ॥ ५ ॥ सूताऊचुः ॥ सच कराकरान्भूपराजागोब्राह्मणान्पुरा ॥ षष्ठांशेनकृताचोर्व्यामिष्टिस्तेनमहात्मना ॥ ६ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ तेषांमहात्मनांराज्ञांकोऽ नुयास्यतिमद्विधः ॥ तथाप्युत्कृष्टचेतानांचेष्टासूद्यमवान्भवेत् ॥ ७ ॥ तच्छ्रूयतांप्रतिज्ञायासाम्प्रतंक्रियतेमया ॥ क्षुपस्यानुकरिष्या मिमहाराजस्यचेष्टितम् ॥ ८ ॥ त्रींस्त्रीन्यज्ञान्करिष्यामिसस्यापातेगतागते ॥ पृथिव्यांचतुरन्तायांप्रतिज्ञेयंकृतामया ॥ ९ ॥

राजन् ! वह महात्मा क्षुप राजा गौ ब्राह्मणसे कर नहीं लेते थे और छठे अंशद्वारा पृथ्वीमें यज्ञकार्य सम्पादन करते थे ॥ ६ ॥ राजाने कहा—मेरे समान कौन मनुष्य उन महात्माके कार्यका अनुकरण कर सकता है ? इसकी संभावना भी नहीं है किन्तु तो भी ऐसे महात्माओंका आचरण जिस प्रकार उत्कृष्ट है, वैसे आचरणमें उद्यम करना उचित है ॥ ७ ॥ अतएव मैं जो इस समय प्रतिज्ञा करता हूं, वह सुनो । मैं आजसे महाराज क्षुपके कार्यका अनुकरण करूंगा ॥ ८ ॥ मैंने चारों वर्ण और पृथ्वीमें यह प्रतिज्ञा करी कि, खेतीके आनेवाले उपस्थित और बीतनेके कालमें तीन तीन यज्ञ करूंगा ॥ ९ ॥

और पूर्व पूर्वकालमें गो ब्राह्मणसे राजाओंने जो कर ग्रहण किया है, वह उनको लौटा दूंगा ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले—यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ क्षुपने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके वैसेही प्रतिज्ञाकी रक्षा की अर्थात् उन याज्ञिक श्रेष्ठने सस्यके उपस्थिति कालमें तीन यज्ञ संपादन किये ॥ ११ ॥ और गौ ब्राह्मणोंने पहिले जिन सब राजाओंको कर दिया था, उतना द्रव्य गौ ब्राह्मणको दे दिया ॥ १२ ॥ उनके प्रमथा नामक महिषीके गर्भसे महावीर और सुंदर एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस पुत्रने अपने शौर्य वीर्यके बलसे सब राजाओंको वशीभूत किया था ॥ १३ ॥ विदर्भराजकुमारी नन्दिनी उनकी पत्नी हुई थी उस महिषीके गर्भसे उन्होंने विविंश नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १४ ॥

यच्चगोब्राह्मणाःपूर्वमददन्भूभृतेकरम् ॥ तमेवप्रतिदास्यामिब्राह्मणानांतथागवाम् ॥ १० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिप्रतिज्ञायवचःक्षुपस्तत्कृतवांस्तथा ॥ सस्यापातेसयज्ञांस्त्रीनयजद्यजतांवरः ॥ ११ ॥ गोब्राह्मणाःपुराराज्ञामददद्यंचवैकरम् ॥ तावत्संख्यमदाद्वित्तमन्यद्गोब्राह्मणायसः ॥ १२ ॥ तस्यपुत्रोऽभवद्वीरःप्रमथायामनिन्दितः ॥ यस्यप्रतापशौर्याभ्यांकृतावश्यामहीभृतः ॥ १३ ॥ तस्यापिनन्दिनीनामवैदर्भीदयिताऽभवत् ॥ विविंशंतनयंतस्यांजनयामाससप्रभुः ॥ १४ ॥ विविंशेशासतिमहींमहीपालेमहौजसि ॥ महीतलमभूद्व्याप्तंनिरन्तरतयानरैः ॥ १५ ॥ ववर्षकालेपर्जन्योमहीसस्यवतीतथा ॥ सुफलानिचसस्यानिरसवन्तिफलानिच ॥१६॥ रसाःपुष्टिकराश्चासन्पुष्टिर्नोन्मादकारिणी ॥ नवित्तनिचयान्नृणांप्रभूतामदहेतवः ॥ १७ ॥ तत्प्रतापेनरिपवोभयमापुर्महामुने ॥ स्वास्थ्यंजनःसुहृद्वर्गोमुदमापसुपूजितः॥१८॥इष्ट्वासयज्ञान्सुबहून्सम्यक्सम्पाल्यमेदिनीम् ॥ संग्रामेनिधनंप्राप्यशक्रलोकमितोगतः॥१९॥

महावीर विविंश नरपतिके पृथ्वी शासन कालमें महीतल प्रजासमूहसे ऐसा व्याप्त हुआ था कि, कहीं भी स्थान नहीं था ॥ १५॥ उस समय मेघगण यथाकालमें वर्षाकरते और पृथ्वीभी उसी प्रकार सस्यसे परिपूर्ण हुई थी । और समस्तसस्य फलशाली, फलरसयुक्त ॥१६॥ रसपुष्टिकर और पुष्टि उन्माद करनेवाली नहीं थी । मनुष्य बहुत धनके अधिकारी होकर भी उन्मत्त नहीं होते थे ॥ १७ ॥ हे महामुने । शत्रु उनके प्रभावसे सदा भीत रहकर स्वास्थ्य लाभ नहीं कर सकते थे सुहृद्वर्ग संतुष्ट चित्तसे रहते थे ॥ १८ ॥ इसप्रकार विविंशराजा अनेकानेक यज्ञोंका अनुष्ठान और भलीभाँति राज्यपालन करते हुए संग्राममें मृत्यु पाय इन्द्रलोकको प्राप्त हुए थे ॥ १९ ॥

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां विविंशचरितं नाम षोडशाधिक शततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--विविंशके पुत्र महाबलवान् विक्रमशाली खनीनेत्र हुए उनका यज्ञानुष्ठान देखनेसे विस्मित होकर गंधर्वोंने इस प्रकार गाया था ॥ १ ॥ कि, " खनिनेत्रके समान भूमण्डलमें अन्य यज्ञ करनेवाला नहीं होगा क्योंकि उन्होंने दशहजार यज्ञ संपादन करके सागरपर्यन्त पृथ्वी दान करी है " ॥ २ ॥ महाराज खनीनेत्रने महात्मा ब्राह्मणोंको सब पृथ्वी देकर तपस्या द्वारा अनेक द्रव्यलाभ करके उसको छुडाया था ॥ ३ ॥ हे विप्र ! ब्राह्मणोंने उन देनेवालोंमें श्रेष्ठ खनीनेत्रके निकटसे विपुल--धनको प्राप्त हो फिर उन्होंने दूसरेके निकटसे दान नहीं लिया ॥ ४ ॥ उन्होंने तिहत्तर हजार

॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेविविंशचरितंनामषोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तस्यपुत्रःखनीनेत्रोमहाबलपराक्रमः ॥ यस्ययज्ञेष्वगायन्तगन्धर्वाविस्मयान्विताः ॥ १ ॥ खनीनेत्रसमोनान्योभुवियज्वाभविष्यति ॥ तेनयज्ञायुतेपूर्णेदत्तापृथ्वीससागरा ॥ २ ॥ दत्त्वाचसकलांपृथ्वींब्राह्मणानांमहात्मनाम् ॥ तपसाद्रव्यमासाद्यमोदयन्साधितेनयः ॥ ३ ॥ यतश्चप्राप्यवित्तर्द्धिमतुलांदातृसत्तमात् ॥ जगृहुर्ब्राह्मणाविप्रनान्यगान्ज्ञःप्रतिग्रहम् ॥ ४ ॥ सप्तषष्टिसहस्राणिसप्तषष्टिशतानिच ॥ सप्तषष्टिंचयोयज्ञानयजद्भूरिदक्षिणान् ॥ ५ ॥ अपुत्रःसमहीपालोमृगयामुपचक्रमे ॥ पुत्रार्थंपितृयज्ञायमांसकामोमहामुने ॥ ६ ॥ अश्वारूढोविनासैन्यमेकएवमहावने ॥ बद्धगोधाङ्गुलित्राणोबाणखड्गधनुर्धरः ॥ ७ ॥ तंवाहयन्तंतुरगमन्यतोगहनाद्वनात् ॥ विनिष्क्रम्यमृगःप्राहमांहत्वाभिमतंकुरु ॥ ८ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अन्येमृगाःपलायन्तेमहाभीत्याविलोक्यमाम् ॥ कथमात्मप्रदानंत्वंमृत्यवेकर्तुमिच्छसि ॥ ९ ॥

सातसौ सरसठ यज्ञ किये थे और प्रत्येक यज्ञमें बहुत दक्षिणा दी थीं॥५॥ हे महामुने ! एक समय महीपाल खनीनेत्रने अपुत्र होनेके कारण पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करनेके लिये मांसकी इच्छा की थी और वह उस समय गोध और अंगुलित्राण बांधकर हाथमें धनुष बाण और खड्ग धारण पूर्वक सेनाके विनाही अकेले घोड़ेपर चढकर महावनमें मृगयाके लिये गये थे ६ ॥ ७ ॥ जब उन्होंने उस गहन वनसे दूसरे वनमें जानेके लिये घोड़ा दौड़ाया; उस समय एक मृगने निकल कर कहा--हे महाराज! मुझको मारकर अपना अभीष्ट संपादन कीजिये ॥ ८ ॥ राजाने कहा--

अन्यान्य मृग मेरे देखनेसे भीत होकर भागते हैं, फिर तू मृत्युके लिये आत्मप्रदान करनेकी इच्छा क्यों करता है ? ॥ ९ ॥ मृग बोला--हे महाराज ! मैं अपुत्र हूं. इस कारण अपने जीवन धारण करनेको वृथा विचारता हूं ॥ १० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसी समयमें और एक मृगने उपस्थित होकर पहिले मृगके सामनेही कहा--हे पार्थिव ! इस मृगको लेकर आप क्या करेंगे ? ॥ ११ ॥ मुझको मारकर मेरे मांससे कर्म संपादन कीजिये इससे आपका प्रयोजन सिद्ध होगा और मेरा भी उपकार हो जायगा ॥ १२ ॥ हे महाराज ! आप पुत्रकी कामनासे पितृयज्ञ करेंगे । किन्तु इस अपुत्रके मांससे किस प्रकार अभिलाषा सिद्ध होगी ? ॥ १३ ॥ क्योंकि जो कर्म जैसा हो, उसके लिये वैसा ही द्रव्य लाना

॥ मृगउवाच ॥ ॥ अपुत्रोऽहंमहाराजवृथाजन्मप्रयोजनम् ॥ विचारयन्नपश्यामिप्राणानामिहधारणम ॥१०॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ अथाभ्येत्यमृगःप्राहसन्ध्योन्सुधाधिपम ॥ मृगस्यतस्यप्रत्यक्षमलमेतेनपार्थिव ॥ ११ ॥ घातयस्वेनिमांमांसैर्ममकर्मसमाचर ॥ यथाकृतार्थतातेस्यान्ममचाप्युपकारिता ॥ १२ ॥ पुत्रार्थंत्वंमहाराजस्वपितॄन्यष्टुमिच्छसि ॥ अपुत्रस्यास्यमांसेनलप्स्यसेत्वंछितं कथम् ॥ १३ ॥ यादृक्कर्मत्रिनिश्चायंतादृग्द्रव्यमुपाहरेत् ॥ दुर्गन्धैर्नसुगन्धानांगन्धज्ञानविनिर्णयः ॥ १४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ वैराग्यकारणंप्रोक्तमनेनापुत्रतामम ॥ कथ्यतांप्राणसंत्यागेयत्तेवैराग्यकारणम् ॥ १५ ॥ ॥ मृगउवाच ॥ ॥ बहवोमेसुताभूपबह्व्यश्चदुहितर स्तथा ॥ यच्चिन्तादुःखदावाग्निज्वालामध्येवसाम्यहम् ॥ १६ ॥ सर्वमाध्यानरेन्द्रेयंमृगजातिःसुकातरा ॥ तेष्वपत्येषुमेचातिमम त्वंतेनदुःखितः ॥ १७ ॥ मनुष्यसिंहशार्दूलवृकादिभ्योबिभेम्यहम् ॥ विहीनात्सर्वसत्त्वेभ्यःश्वशृगालादपिप्रभो ॥ १८ ॥

चाहिये । देखो, दुर्गन्ध द्वारा सुगंधित वस्तुका गंधज्ञान निर्णय नहीं हो सकता ॥ १४ ॥ राजाने कहा--पहिले मृगने कहा है कि, अपुत्रताही मेरे वैराग्यका कारण है, किन्तु तुमको प्राण परित्याग विषयमें वैराग्य क्यों हुआ ? ॥ १५ ॥ मृग बोला--हे राजन् ! मेरे पुत्र और कन्या बहुत हैं, उनकी चिन्तासे ही मैं दुःखदावानलमें दग्ध होता रहता हूं ॥ १६ ॥ हे नरेन्द्र ! यह कातर मृग जाति सहजमें ही सब जीवोंके आधीन होजाती है, मेरी भी संतानके प्रति अधिक ममता है. इस कारण मुझको सदा ही दुःख भोगना पड़ता है ॥ १७ ॥ हे प्रभो ! मनुष्य, सिंह, व्याघ्र, वृक, अधिक क्या सब जीवोंसे हीन गीदड और कुत्ते आदिसे भी मैं डरता रहता हूं ॥ १८ ॥

सुतरां इन मनुष्य, सिंह इत्यादिके भयसे पृथ्वी रहित हो और मैं निर्विघ्न हूं, सदा यही कामना करता रहता हूं ॥ १९ ॥ गो, मेष, बकरी, अश्व इत्यादि पशुओंके तृण भक्षण करनेपर पृथ्वीमें समस्त तृण शेष होंगे, तो मेरे पुत्र; कन्या क्या खाकर जीवित रहेंगे। इसी कारण उनका पोषण करनेके लिये मुझको तृणभोजी पशुओंकी मृत्यु कामना करनी पड़ती है ॥ २० ॥ जब मेरे पुत्र कन्या अलग अलग निकलते हैं, तो स्नेहके वश होकर मुझको सैकडों चिन्ता उपस्थित होती है ॥ २१ ॥ जान पड़ता है या तो कोई पुत्र कहीं कठिन पाश या वज्र अथवा जालमें पतित हुआ है या सिंहादिके द्वारा नष्ट होगया है ॥ २२ ॥ और जो एक आता है तो दूसरोंकी चिन्ता होती है जो महावनमें चरने

सोऽहंनिमित्तंबन्धूनामिमांशून्यांवसुन्धराम् ॥ नृसिंहादिभयात्सर्वामिच्छामिसुनृशंसकृत् ॥ १९ ॥ तृणान्यन्येऽपिखादन्तिगोऽजा वितुरगादिकाः ॥ तांस्तेषांपोषणायाहमिच्छामिनिधनंगतान् ॥ २० ॥ निष्क्रान्तेषुततस्तेषुममापत्येषुवैपृथक् ॥ भवन्तिचिन्ताः शतशोममत्वावृतचेतसः ॥ २१ ॥ किंकूटपाशंकिंवज्रंवागुरांकिंसुतोमम ॥ प्राप्तश्चरन्वनेकिंवानृसिंहादिवशंगतः ॥ २२ ॥ प्राप्तो ऽयमेकःसंप्राप्नास्तेयस्थांकीदृशींमम ॥ साम्प्रतंतेचिरायंतेयेगताःसुमहावनम् ॥ २३ ॥ दृष्ट्वाप्राप्तान्ममाभ्याशमहन्तानात्मजान्नृप ॥ ईषदुच्छ्वसितःक्षेममिच्छामिरजनींपुनः ॥२४॥ प्रभातेदिवसंक्षेममस्तगेऽर्कैनिशामपि॥वांछाम्यहंकदाक्षेमंसर्वकालंभविष्यति ॥ २५ ॥ एतत्तेकथितंभूपमहोद्वेगस्यकारणम्॥ अतःप्रसादंकुरुमेबाणोऽयंपात्यतांमयि ॥ २६ ॥ इतिदुःखशताविष्टःप्राणान्नाहंत्यजामियत् ॥ तत्कारणंनिबोधत्वंब्रुवतोममपार्थिव ॥ २७ ॥

गये हैं, नहीं जानता कि, उनकी वहां कैसी अवस्था होरही है? ॥२३॥ हे नृप ! पुत्र गण जब मेरे समीप आते हैं, तब उनको देखकर कुछेक संतोष प्राप्त होता है, किंतु उस समयभी समस्तरात्रिके लिये मंगलचिन्ता करताहूं॥२४॥और फिर प्रभात होनेपर दिनकी और सूर्यास्त होनेपर रात्रिकी मंगलचिन्ता करताहूं कि, वह सर्वकाल निरापद अवस्थामें रहैं, प्रतिक्षण इसीकी चिन्ता करता रहताहूं॥२५॥हे भूप!यह मैंने अपने उद्वेगका कारण कहा, अब अनुग्रह करके मेरेही बाणमारिये॥२६॥हे पार्थिव!जिस कारण मैं इस प्रकार सैकड़ों दुःखसे आक्रांत होकर प्राण परित्याग करनेकी इच्छा करता हूं, वह आप समझिये ॥ २७ ॥

हे प्रभो ! आत्मघाती असूर्य नामक नरकको प्राप्त होते हैं, और यज्ञार्थमें नियुक्त समस्त पशु सद्गति लाभ करते हैं ॥ २८ ॥ पूर्वकालमें अग्नि, वरुण और सूर्य पशुत्व ग्रहण करके यज्ञकार्यमें नियुक्त हुए थे, इसी कारण सद्गति प्राप्त की है ॥ २९ ॥ अतएव हे नृप ! मेरे ऊपर कृपा करके मुझको सद्गति प्रदान किजिये । ऐसा करनेसे आपको पुत्रलाभमें अभीष्ट प्राप्ति होगी ॥ ३० ॥ पूर्वमृगने कहा- हे राजेन्द्र ! यह मृग हत्याके उपयुक्त नहीं है, क्योंकि जिसके बहुत संतान है, वह सुकृती(पुण्यवान)और धन्य हैं । मैं अपुत्र हूं अतएव मुझको मारना चाहिये ॥ ३१ ॥ उत्तरमृग बोला—एकमात्र देहके कारण जिसको एकमात्र दुःख उत्पन्न होता है, वह तुम्हारे समान धन्य है किन्तु जिसके देह बहुत हैं, उसको दुःख भी

असूर्यानामतेलोकायान्गच्छन्त्यात्मघातकाः ॥ यज्ञोपयुक्ताःपशवःसम्प्रयान्त्युच्छ्रितीःप्रभो ॥ २८ ॥ अग्निःपशुरभूत्पूर्वंपशुरासीज्जलाधिपः ॥ भास्वानथोच्छ्रितीःप्राप्तायज्ञेनिष्ठामुपागताः ॥ २९ ॥ तन्ममैतांकृपांकृत्वानयमामुच्छ्रितिंनृप ॥ आत्मनश्चेप्सितंकामपुत्रलाभादवाप्स्यसि ॥ ३० ॥ पूर्वमृगउवाच ॥ ॥ राजेन्द्रनैषहन्तव्योधन्योऽयंसुकृतीमृगः ॥ बह्वयस्तनयाह्यस्यहन्तव्योऽहमसन्ततिः ॥ ३१ ॥ ॥ उत्तरमृगउवाच ॥ ॥ एकदेहभवंयस्यदुःखंधन्यःसवैभवान् ॥ बहूनियस्यदेहानितस्यदुःखान्यनेकधा ॥३२॥ एकोयदाहमासंतुप्राक्तदादेहजंमम ॥ दुःखमासीन्ममत्वेतुभार्य्यायास्तदभूद्द्विधा ॥ ३३ ॥ यदाजातान्यपत्यानितदायावन्तितानिवै ॥ तावच्छरीरभूमीनिममदुःखान्यथाभवन् ॥ ३४ ॥ नकृतार्थोभवाम्यस्यनातिदुःखायसम्भवः ॥ इहदुःखायमत्सूतिःपरत्रचविरोधिनी ॥ ३५ ॥ यतोरक्षणपोषार्थमपत्यानांकरोमितत् ॥ चिन्तयामिचसंभूतिस्तेनमेनरकेध्रुवम् ॥ ३६ ॥

अनेकानेक होते हैं ॥३२॥प्रथम जब मैं एक था, तब मुझको दुःखभी एक देहका था फिर जब भार्या हुई, तब स्नेहवश यही दुःख दो भागमें विभक्त हुआ ॥३३॥और अब जितनी संतान उत्पन्न हुई है, देह भी उतनेही भागमें विभक्त हुआ है, इस कारण मुझको अनेक देहजनित दुःख उत्पन्न हुआ है ॥ ३४ ॥ तुमको जब अधिक दुःख भोगना नहीं पडता तब क्या तुम कृतार्थ नहीं हो ? मेरी संतान इस लोकमेंभी दुःखका कारण और परलोकमें भी विरोधी है ! ॥ ३५ ॥ देखो मैं पुत्रोंकी रक्षा तथा उनका पोषण करनेके लिये जो कुछ करता हूं जो कुछ चिन्ता करता हूं निःसंदेह वह सब नरकमें जानेका हेतुस्वरूप हैं ॥ ३६ ॥

राजाने कहा--हे मृग ! पुत्रवान् और अपुत्रमें कौन धन्य है, यह मैं नहीं जान सकता,मेरा भी इस कार्यमें पुत्रके लियेही उद्योग है, अतएव मेरा मन अत्यन्त चंचल होता है ॥ ३७ ॥ यद्यपि संततिके कारण इसलोक और परलोकमें दुःख भोगना पडता है यह बात सत्य है किन्तु तो भी मैंने ऐसी नीति सुनी है कि, अपुत्र मनुष्य ऋणी होता है ॥ ३८ ॥ अतएव हे मृग ! मैं विना ही प्राणीका वध किये पूर्वकालके राजाओंके समान प्रचण्ड तपस्या द्वारा पुत्र प्राप्त होनेकी चेष्टा करूंगा ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां खनीनेत्रचरितेसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर राजा खनीनेत्र पापनाशिनी गोमतीके तटपर जाय संयतेन्द्रिय हो, देवपुरन्दरकी स्तुति करने

॥ राजोवाच ॥ नवेद्मिकिंसन्ततिमान्धन्योऽपुत्रोऽत्रकिंमृग ॥ पुत्रार्थंश्चायमारम्भोऽलमदोलायतेमनः ॥ ३७ ॥ दुःखायसन्ततिः सत्यमैहिकामुष्मिकायतत् ॥ तथाप्यतनयान्यान्तिऋणानीतिश्रुतंमया ॥ ३८ ॥ सोऽहमिति ये पुत्रार्थंभूतंप्राणिवधंमृग ॥ तपसैवप्रचण्डेनयथापूर्वंमहीपतिः ॥ ३९ ॥ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेखनित्रचरितेसप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११७ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःसनृपतिर्गत्वागोमतींपापनाशिनीम् ॥ तत्रतुष्टावनियतोभूत्वादेवंपुरन्दरम् ॥ १ ॥ तप्यमानस्तपश्चोग्रंयताक्कायमानसः ॥ तुष्टावप्रयतःशक्रमपत्यार्थंमहीपतिः ॥ २ ॥ तस्यस्तोत्रेणतपसाभक्त्याचापिसुरेश्वरः ॥ तुतोषभगवानिन्द्रःप्राहचैनंमहामुने ॥ ३ ॥ अनेनतपसाभक्त्यास्तोत्रेणोच्चारितेनच ॥ परितुष्टोऽस्मितेभूपव्रियतांभवतावरः ॥ ४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ अपुत्रस्यसुतोमेऽस्तुसर्वशस्त्रभृतांवरः ॥ सदाव्याहतैश्वर्योधर्मकृद्धर्मवित्कृती ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तथेत्युक्तःशक्रेणराजाप्राप्तमनोरथः ॥ प्रजाःपालयितुंभूपआजगामनिजंपुरम् ॥ ६ ॥

लगे ॥ १ ॥ हे महामुने ! जब महीपतिने काय मन वचनसे संयत होकर पुत्रकी कामना करके इन्द्रकी स्तुतिकी, तब भगवान् सुरेश्वरने उनकी भक्ति और स्तुतिसे संतुष्ट होकर उनसे कहा ॥ २ ॥ ३ ॥ हे भूप ! तुम्हारे इस तप भक्ति और स्तोत्र उच्चारणके द्वारा मैं अत्यन्त संतुष्ट हुआ हूं अतएव वरमांगो ॥ ४ ॥ राजाने कहा--मैं अपुत्र हूं मेरे सब शस्त्रधारियोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ सदाप्रतिबंधरहित ऐश्वर्यवाला धर्मज्ञ, धर्मचारी और कृतकार्य पुत्र हो ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--जब राजाकी प्रार्थना इन्द्रने ' तथास्तु ' कहकर स्वीकार करी, तब राजा प्रजापालनके लिये

अपने पुरमें लौट आये ॥ ६ ॥ वहां यज्ञानुष्ठान और प्रजापालन करनेपर इन्द्रके प्रसादसे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ७ ॥ राजाने उसका 'बलाश्व' नाम रक्खा। और उसको संपूर्ण अस्त्र विद्या प्रदानकी ॥८॥ हे विप्र ! बलाश्वने पिताकी मृत्युके उपरान्त साम्राज्येश्वर राजा होकर पृथ्वीके समस्त राजाओंको अपने वशीभूत किया॥९॥और सारग्रहणपूर्वक उनसे कर ग्रहण और प्रजाका सम्यक् प्रकारसे पालन करने लगा॥१०॥ अनन्तर उन समस्त राजा और उनकी दुर्मद ज्ञातिगणने अभ्युत्थानरूप सत्कार न देकर कर देना बंद कर दिया ॥११॥ और वह अभ्युत्थान रहित होकर स्वाधीन भावसे राज्यशासन करकेही संतुष्ट नहीं हुए वरन् अन्तमें उन्होंने उन नरेन्द्र बलाश्वकी अधिकृत भूमितक ग्रहण करली

तत्रास्यकुर्वतोयज्ञंसम्यक्पालयतःप्रजाः ॥ अजायतसुतोविप्रतदाशक्रप्रसादतः ॥ ७ ॥ तस्यनामपिताचक्रेबलाश्वइतिभूपतिः ॥ अस्त्रग्राममशेषंचग्राहयामासतंसुतम् ॥८॥ पितर्युपरतेविप्रसोऽधिराज्येस्थितोनृपः ॥ सबलाश्वोवशंनिन्येभुविसर्वमहीक्षितः ॥ ९ ॥ करंचदापयामाससारग्रहणपूर्वकम् ॥ ससर्वभूमिपान्राजापालयामासचप्रजाः ॥ १० ॥ अथाखिलनरेन्द्रास्तेदायादास्तस्यदुर्मदाः ॥ नचाभ्युत्थायमततंतेचास्मैप्रददुःकरान् ॥ ११ ॥ व्युत्थिताःस्वेषुराष्ट्रेषुनसन्तोषपरास्ततः ॥ मुर्वतस्यनरेन्द्रस्यजगृहुस्तेनराधिपाः ॥ ॥ १२ ॥ सगृहीत्वास्वकंराज्यंपृथिवीशोबलान्मुने ॥ तस्थौस्वनगरेभूपैर्विरोधोबहुभिःकृतः ॥ १३ ॥ समेत्यसुमहावीर्याःसमाधन धनास्ततः ॥ रुरुधुस्तंमहीपालंपुरेतत्रनरेश्वराः ॥ १४ ॥ पुरगेधनतेनाथकुपितःसमहीपतिः ॥ स्वल्पकोशोल्पदण्डश्चपरंक्ष्यंपरमं गतः ॥ १५ ॥ अपश्यमानःशरणंसबलोद्विजसत्तम ॥ करौमुखाग्रःकृत्वानिशश्वासार्तमानसः ॥ १६ ॥ ततोऽस्यहस्तविवरान्मुखा निलसमाहताः ॥ निर्जग्मुःशतशोयोधारथनागतुरङ्गमाः ॥ १७ ॥

॥ १२ ॥ पृथ्वीश्वर बलाश्व अनेक राजाओंके संग युद्धमें हीनबल हो अपना राज्यमात्र ग्रहण कर अपनी राजधानीमें वास करने लगे ॥१३॥ किन्तु तो भी इन सब साधन और धन संपन्न महाबलवान् राजाओंने उनको पुरमें घेर लिया ॥१४॥ तब महीपति पुर घिर जानेके कारण अत्यन्त कुपित हुए, किन्तु वह बलशाली बलाश्व उस काल अत्यन्त अल्पकोष और अल्पदण्डयुक्त होनेसे ॥१५॥ और रक्षाका दूसरा कोई उपाय न देखकर अति विकल हुए और व्यथित हृदयसे दोनों हाथ मुखपर रखकर लम्बे श्वास त्यागने लगे ॥ १६ ॥ इससे मुखकी वायु आहत

होकर उसके मध्यसे शत शतयोद्धा रथ हाथी और घोडे निकले ॥ १७ ॥ हे मुने ! इस प्रकार क्षणकालमें ही बलशाली सर्वोत्तम उस सैन्य समूह द्वारा भूपतिका संपूर्ण नगर व्याप्त होगया ॥ १८ ॥ अनन्तर उस सब महत् सेनाके सहित राजाने नगरसे निकलकर शत्रुओंको जीता ॥ १९ ॥ हे महाभाग ! तब नरपति उनको पराजय पूर्वक वशीभूत और पूर्वके समान कर दे अर्थात् कर देनेवाला करके सौभाग्यशाली हुए ॥ २० ॥ बलाश्वके धूत अर्थात् कम्पित दोनों हाथोंके मध्यसे जो शत्रुओंको हनन करनेवाली सेना उत्पन्न हुई इस कारण बलाश्व करन्धम' नामसे विख्यात हुए थे ॥ २१ ॥ करंधम तीनों लोकमें विख्यात, धर्मात्मा और सब प्राणियोंमें मित्रभावापन्न थे ॥ २२ ॥

ततःक्षणेनतत्सर्वंनगरंतस्यभूपतेः ॥ व्याप्तमासीद्बलौघेनसारेणातिबलान्मुने ॥ १८ ॥ अथसोऽतिबलौघेनमहतातेनसंवृतः ॥ निर्मथ्य नगरात्तस्मात्तान्विजिग्येनराधिपः ॥ १९ ॥ जित्वाचवशमानीयचकारकरदान्पुनः ॥ यथापूर्वंमहाभागमहाभाग्योनरेश्वरः ॥ २० ॥ धुतयोःकरयोर्जज्ञेयतस्तस्यारिदाहदम् ॥ बलंकरन्धमस्तस्मात्सबलाश्वोऽभिधीयते ॥ २१ ॥ सधर्मात्मामहात्माचसमैत्रःसर्वजन्तुषु ॥ करन्धमोऽभवद्भूपस्त्रिषुलोकेषुविश्रुतः ॥ २२ ॥ सम्प्राप्तस्यपरामार्त्तिंददावरिविनाशनम् ॥ बलन्धर्मेणचाक्षिप्तमभ्युपेत्यस्वयंनृपम् ॥ ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेकरन्धमचरितंनामाष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ वीर्य्यचन्द्रसुतासुभ्रूर्वीरानामशुभव्रता ॥ स्वयंवरेसाजगृहेमहाराजंकरन्धमम् ॥१॥ तस्यांपुत्रंसराजेन्द्रोजनयामासवीर्यवान् ॥ अविक्षितमितिख्यातिमुपेतंजगतीतले ॥२॥ जातेतस्मिन्सुतेराजासदैवज्ञानपृच्छत ॥ कच्चित्प्रशस्तनक्षत्रेशस्तलग्नेसुतोमम ॥ ३ ॥ कच्चिच्चालोकितंजन्मममपुत्रस्यशोभनैः ॥ ग्रहैःकच्चिन्नदुष्टानांग्रहाणांदृक्पथंगतम् ॥ ४ ॥

वह नृप स्वयं धर्मप्रदत्त बललाभ करके परमआर्त्त मनुष्योंके शत्रुओंका नाश कर देते थे ॥ २३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायामष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥ मार्कण्डेयजी बोले–हे द्विजोत्तम! स्वयंवरस्थलमें सुन्दरी शुभव्रता वीरा नाम्नी वीर्यचंद्रकी कन्यासे महाराज करंधमको पतित्वमें वरण किया था ॥ १ ॥ उन राजेन्द्रने उसके गर्भसे अवीक्षित नामक जगद्विख्यात वीर्यवान् पुत्र उत्पन्न किया ॥ २ ॥ उस पुत्रके उत्पन्न होनेपर राजाने ज्योतिषियोंसे पूछा कि, मेरे इस पुत्रने प्रशस्त लग्न और शुभ नक्षत्रमें तो जन्मग्रहण किया है ? ॥ ३ ॥ इसके लग्नस्थानमें सब

शुभग्रहोंकी दृष्टि तो है ? और दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टिमें पतित नहीं हुआ ? अर्थात् इनपर दुष्टग्रहोंकी तो दृष्टि नहीं पड़ी ॥ ४ ॥ देवज्ञगणोंने इस प्रकार पूछे जानेपर उत्तर दिया—हे महाराज ! आपका पुत्र प्रशस्त मुहूर्त, प्रशस्त नक्षत्र और प्रशस्त लग्नमें उत्पन्न हुआ है ॥ ५ ॥ अतएव हे राजन् ! यह आपका पुत्र महाभाग्यवान्, अत्यन्त वीर्यवान्, असीम बलशाली और महाराज होंगे ॥ ६ ॥ यह देखिये, इस पुत्रको बृहस्पति और शुक्र सप्तम हैं वा सप्तम घरपर देखते हैं और चतुर्थ स्थानको चन्द्र अवलोकन करता है ॥७॥ और ग्यारहवें स्थानमें स्थित बुधकी भी इनपर दृष्टि है और आपके पुत्र पर रवि, मंगल तथा शनैश्चरकी दृष्टि नहीं है ॥८॥ अतएव हे महाराज यह आपके

इत्युक्तास्तेनदैवज्ञास्तमूचुर्नृपतिंततः ॥ शस्तेमुहूर्तेनक्षत्रेलग्नेचैवसुतस्तव ॥ ५ ॥ समुत्पन्नोमहावीर्योमहाभागोमहाबलः ॥ भविष्यति महाराजमहाराजस्तवात्मजः ॥६॥ अवैक्षतेमंदेवानांगुरुःशुक्रश्चसप्तमः ॥ सोमश्चतुर्थस्तनयंतथैनंसमवैक्षत ॥७॥ उपान्तसंस्थितश्चैवसो मपुत्रोप्यवैक्षत ॥ नावैक्षतेमंसवितानभौमोनशनैश्चरः ॥८॥ तवपुत्रंमहाराजधन्योऽयंतनयस्तव ॥ सर्वकल्याणसम्पत्तिसमवेतोभवि ष्यति ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिदैवज्ञवचनंनिशम्यवसुधाधिपः ॥ हर्षपूर्णमनाःप्राहनिजस्थानगतस्तदा ॥ १० ॥ अवै क्षतेमंदेवानांगुरुःसोमःसितोबुधः ॥ नावैक्षतैनमादित्योनार्कसूनुर्नभूमिजः ॥ ११ ॥ अवैक्षतेतियत्प्रोक्तंभवद्भिर्बहुशोवचः ॥ अवि क्षितेतितेनास्यख्यातंनामभविष्यति ॥ १२ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ अविक्षितःसुतस्तस्यवेदवेदाङ्गपारगः ॥ अस्त्रग्राममशेषंसक ण्वपुत्रादथाग्रहीत् ॥ १३ ॥ सरूपेणातिभिषजौदेवानांपार्थिवात्मजः ॥ बुद्ध्यावाचस्पतिंकान्त्याशशाङ्कंतेजसारविम् ॥ १४ ॥

पुत्र धन्य और सर्व कल्याण संपत्ति युक्त होंगे॥९॥मार्कण्डेयजी बोले—ज्योतिषी गणोंके इस प्रकार वचन सुनकर वसुधेश्वर प्रीति पूर्ण मनसे अपने स्थानपर बैठे हुए कहने लगे॥१०॥"बृहस्पति और बुध यह पुत्रको अवलोकन करते हैं. किंतु रवि, शनि, मंगल नहीं देखते" ॥ ११ ॥ आपने बारम्बार "अवैक्षत" शब्द कहा है, अतएव यह पुत्र 'अवीक्षित' नामसे विख्यात होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—इनके वेदवेदाङ्गपारग पुत्र अवीक्षितने कण्वपुत्रसे संपूर्ण अस्त्रविद्या ग्रहण की थी ॥१३॥ राजपुत्रने रूपमें देववैद्य दोनों अश्विनीकुमार, बुद्धिमें वाचस्पति, कांतिमें शशाङ्क (चन्द्रमा) तेजमें सूर्य ॥ १४ ॥

धैर्यमें समुद्र, और सहिष्णुतामें पृथ्वीको अतिक्रम किया था और कोई पुरुष भी उन महात्माके समान शौर्यशाली नहीं था ॥ १५ ॥ हेमधर्मकी कन्या वरा, सुदेवकी कन्या गौरी, बलिकी पुत्री सुभद्रा ॥ १६ ॥ वीरभद्रकी कन्या निभा, वीरकन्या लीलावती भीमपुत्री मान्यवती और दम्भ कन्या कुमुद्वतीने उनको स्वयंवरमें वरण किया था ॥ १७ ॥ और जिन राजकन्याओंने स्वयंवरमें उनको सन्मानित नहीं किया अर्थात् वरण नहीं किया, बलवान् बलोन्मत्त राजपुत्रने अपने पराक्रमसे अन्यान्य राजाओं और उनके पितृकुलको पराजय करके उनको भी बलात्कारसे ग्रहण किया ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे विप्रर्षे! एक समय वैदेशाधिपति विशालराजकी कन्या सुदती वैशालिनीने

धैर्येणाब्धिंतथोर्वींचसहिष्णुत्वेनवीर्यवान् ॥ शौर्येणनसमस्तस्यकश्चिदासीन्महात्मनः ॥ १५ ॥ स्वयंवरेऽग्रहेहेमधर्मात्मजावरा ॥ सुदेवतनयागौरीसुभद्राबलिनःसुता ॥ १६ ॥ लीलावतीवीरसुतावीरभद्रसुतानिभा ॥ भीमात्मजामान्यवतीदम्भपुत्रीकुमुद्वती ॥१७॥ याश्चैनंनाभिनन्दन्तिस्वयंवरकृतक्षणाः ॥ ताश्चापिसबलाद्वीरोजग्राहनृपतेःसुतः ॥ १८ ॥ निराकृत्यनृपान्सर्वांस्तासांपितृकुलानिच ॥ स्वयंहिवीर्यमाश्रित्यबलवान्सबलोद्धतः ॥ १९ ॥ एकदातुविशालस्यविशालाधिपतेःसुताम् ॥ वैशालिनींससुदतींस्वयंवरकृतक्षणाम् ॥ २० ॥ परिभूयाखिलान्भूपान्स्वेच्छयानवृतस्तया ॥ बलाज्जग्राहविप्रर्षेयथान्याबलगर्वितः ॥ २१ ॥ ततस्तेभूभृतःसर्वेबहुशस्तेनमानिना ॥ निराकृताःसुनिर्विण्णाःप्रोचुरन्योन्यमाकुलाः ॥ २२ ॥ क्षमतांवंचनामेतामेकस्माद्बलशालिनाम् ॥ बहूनामेकवर्णानांजन्मधिग्वोमहीभृताम् ॥ २३ ॥ क्षत्रियोयःक्षतात्राणंवध्यमानस्यदुर्मदैः ॥ करोतितस्यतन्नामवृथैवान्येहिबिभ्रति ॥ २४ ॥

स्वयंवरके समय उनको ॥ २० ॥ बरनेकी इच्छा नहीं की, तब उन्होंने बलके गर्वसे जिस प्रकार अन्यान्य राजकन्याओंको ग्रहण किया था, इसी प्रकार समस्त राजाओंको पराजित करके बलात्कारसे उसको भी ग्रहण किया ॥ २१ ॥ इससे यह सब राजा मानी अवीक्षितके द्वारा वार म्वार पराजित होकर दुःखितचित्त और व्याकुलभावसे परस्परमें कहने लगे ॥ २२ ॥ एकजातीय बलशाली समस्त इकट्ठे राजाओंके सामने एक मात्र वीरने इस ललनाको ग्रहण किया, यह देखकर भी तुम सहन कर गये, अतएव तुम्हारे जन्मको धिक्कार है ॥ २३ ॥ दुष्टमनुष्यके मारने परभी उसकी जो रक्षा करता है, उसीका नाम प्रकृतक्षत्रिय है, अन्य पुरुष क्षत्रिय नाम वृथा धारण करते हैं ॥ २४ ॥

दूसरेकी तो बातही क्या है,तुम लोग इस दुष्टके हाथसे अपनी रक्षा करनेका भी उद्योग नहीं करते क्षत्रियकुलमें जन्मग्रहण करके यह तुम्हारी कैसी बुद्धि है ? ॥ २५ ॥ हे वीरगण ! सूत, मागध और बन्दी गण तुम्हारी जो स्तुति करते हैं, वह वृथा न हो, शत्रुविनाश करके उसको सत्यमें परिणत करो ॥ २६ ॥ तुम्हारा "भूप" शब्द दिगन्तरमें वृथा प्रचारित न हो, तुम सबनेही श्रेष्ठ कुलमें जन्म ग्रहण किया है, अतएव सबही पौरुष शाली हो ॥ २७ ॥ कौन मनुष्य मृत्युका भय नहीं करता और युद्ध परित्याग करके ही कौन अमर होता है ? यह सब विचारकर शस्त्रधारी मात्रको ही पौरुष छोडना उचित नहीं है ॥ २८ ॥ यह सब वचन सुनकर भूपालगण अत्यन्त कुपित हो परस्पर उत्साह

आत्मनोपिक्षतत्राणंदुष्टादस्मादकुर्वताम् ॥ भवतांक्षत्रियकुलेजातानांकीदृशीमतिः ॥ २५ ॥ आर्यतैस्तुर्नियंवःसूतमागधब न्दिभिः ॥ सासत्यामावृथावीराभवत्वरिविनाशनात् ॥ २६ ॥ चरतांसानथैवैषाभूपाश्चारैर्दिगन्तरं ॥ पौरुषाश्रयिणःसर्वेविशिष्ट कुलसम्भवाः ॥ २७ ॥ बिभेतिकोनमरणात्कोयुद्धेनविनाऽमरः ॥ विचिन्त्यैतन्नहातव्यंपौरुषंशस्त्रवृत्तिभिः ॥ २८ ॥ एतन्निशम्यत भूपाविस्पष्टामर्षपूरिताः ॥ ऊचुःपरस्परंसर्वेसमुत्तस्थुश्चसायुधाः ॥ २९ ॥ केचिद्रथानारुरुहुःकेचिन्नागांस्तथाहयान् ॥ अन्येऽमर्षपरा धीनास्तमुपेताःपदातयः ॥ ३० ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामैकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११९ ॥ ॥ ७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इतिसंग्राममसज्जास्ते भूपाभूपसुतास्तथा ॥ निराकृताःसुबहुशस्तत्कालश्चाप्यविक्षिता ॥ १ ॥ ततोबभूवसंग्रामस्त स्यतैःसहदारुणः ॥ एकस्यबहुभिर्भूपैर्भूपपुत्रैश्चसुने ॥ २ ॥ तेऽसिशक्तिगदाबाणपाणयस्तंसुदुर्मदाः ॥ अभिघ्नन्तोऽयुयुधिरेतेःसमस्त रसावपि ॥ ३ ॥

पूर्ण बातचीत करने लगे और फिर शस्त्रग्रहण करके उठ खड़े हुए॥२९॥कोई रथ हाथी तथा कोई घोडेपर चढ गये और कोई कोई क्रोधित चित्तसे पदाति होकर अर्थात् पैदलही अवीक्षितके समीप आये ॥३०॥ इति श्रीमा०पु०भाषाटीकायामेकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥ मार्कण्डेयजी बोले–उसकालभी अवीक्षितके द्वारा बहुतवार हारे हुये वह राजपुत्र और राजालोग इसप्रकार संग्राममें सुसज्जित हुए ॥ १ ॥ हे मुने ! तब बहुतसे उन राजा और राजपुत्रोंके संग एकमात्र अवीक्षितका दारुण संग्राम होने लगा ॥ २ ॥ वह संपूर्ण दुर्मद राजा असि, शक्ति, गदा,

और बाण हाथमें लिये उनपर आघात करते युद्ध करने लगे और अवीक्षितभी अकेले उनके संग युद्ध करने लगे ॥ ३ ॥ अस्त्रज्ञ बलवान् नृप नन्दनने शतशत उग्र बाणोंके द्वारा उनको विद्ध किया और वहभी निशित बाणोंसे उनको विद्ध करने लगे ॥ ४ ॥ राजपुत्र अवीक्षितने किसीकी बाहु और किसीका मस्तक काट डाला किसीका हृदय विद्ध किया और किसीकी छातीमें आघात किया ॥ ५ ॥ उन्होंने हाथियोंकी सूंड घोडोंके मस्तक और किसीके रथके घोडे और किसीके सारथीको छेदन किया ॥ ६ ॥ शत्रुओंके आते हुए सब बाणोंको अपने बाणोंसे अधबीचमेंही दो खण्ड करने लगे और हाथकी लाघवतासे किसीका खड्ग तथा किसीका धनुष काट डाला ॥ ७ ॥

सतांञ्छरशतैरुग्रैर्बिभेदनृपनन्दनः ॥ कृतास्त्रोबलवान्बाणैस्तेचतंविभिदुःशितैः ॥४॥ कस्यचिच्चिच्छिदेबाहुमन्यस्यचशिरोधराम् ॥ हृदिविव्याधचैवान्यमन्यंवक्षस्यताडयत् ॥ ५ ॥ करञ्चिच्छेदकरिणस्तुरगस्यतथाशिरः ॥ रथस्येपान्यश्चाश्वान्रथस्यान्यस्यसारथिम् ॥ ६ ॥ बाणानापततश्चैकेद्विधाबाणैस्तथाद्विषाम् ॥ चिच्छेदान्यस्यखड्गञ्चधनुरन्यस्यलाघवात् ॥ ७ ॥ तनुत्रेऽपहृतेतेननना शान्योनृपात्मजः ॥ अविक्षिताहतश्चान्यःपदातिःप्रजहौरणम् ॥ ८ ॥ इत्याकुलीकृतेतस्मिन्समग्रेराजमण्डले ॥ तस्थुःसप्तशतंवीरामरणेकृतनिश्चयाः ॥ ९ ॥ आभिजात्यवयःशौर्य्यलज्जाभारसमन्विताः ॥ निर्जितेसकलेसैन्येपलायनपरायणे ॥ १० ॥ तैः समेत्यमहीपालैःसतुपुत्रोमहीभृतः ॥ युयुधेधर्मयुद्धेनतेनतंनातिकोपितः ॥ ११ ॥ चिच्छिदुर्यन्त्रकवचान्यस्त्रानपिमहाबलः ॥ कर्त्तुं व्यवस्थितस्तेचततःक्रुद्धा महामुने ॥ १२ ॥ धर्ममुत्सृज्ययुयुधुर्युध्यमानेनधर्मतः ॥ नरेन्द्रपुत्राःप्रस्वेदजलक्लिन्नाननाःसमम् ॥१३॥

अवीक्षितके किसी राजपुत्रका वर्म (बख्तर) काटनेके वह मृत्युको प्राप्त हुआ और किसी पदातिकने आहत होकर रणस्थल परित्याग किया ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब उन्होंने समस्त राजमण्डलको व्याकुल कर दिया और हारी हुई सेना भागनेमें तत्पर हुई, तब केवल सातसौ वीर अपनी कुलीनता, अवस्था और शौर्य विचार, लज्जापूर्वक मरनेमें कृतनिश्चय हो रणक्षेत्रमें स्थिति करने लगे ॥ ९ ॥ १० ॥ राजपुत्र अत्यन्त क्रोधित हो, उनके समीप आय, यथाविहित धर्मयुद्धद्वारा उन सब राजाओंके संग युद्ध करने लगे ॥ ११ हे महामुने ! जब महाबलवान् अवीक्षित उनके अस्त्र कवचादि काटनेमें कृतसंकल्प हुए॥१२॥तब जिनका मुख पसीनेमें भीग रहा है, ऐसे नरेंद्रपुत्रगण धर्मत्याग कर उन धर्म योद्धाके

संग युद्ध करने लगे ॥१३॥कोई बाणोंसे विद्ध करने लगा किसीने धनुष छेदन किया और किसीने ध्वजा काटकर पृथ्वीमें गिरादी॥१४॥किसीने घोडोंको मारडाला, किसीने रथ तोड़ डाला और किसीने उनकी पीठमें शस्त्रघातसे ताडनाकरी॥१५॥धनुषके कटजानेपर नृपनंदनने अत्यन्त क्रोधसे ढाल तलवार ग्रहण करी, किंतु किसीवीरने उसको भी काटदिया ॥१६॥ढाल तलवारके छिन्न होनेपर गदायुद्धमें चतुर अवीक्षितने गदा ग्रहण करी परंतु लघुहस्त अपर वीरने क्षुरके समान तीक्ष्णबाणसे उसको भी काटडाला ॥१७॥इसके उपरांत धर्मयुद्धसे विमुख राजाओंने उनको घेर लिया और उनमें कितनोहीने सहस्र बाणोंके द्वारा कितनोहीने शतबाणोंके द्वारा उनको विद्ध किया ॥ १८ ॥ अकेले राजकुमार बहुतजनोंके

विव्याधकश्चिद्बाणौघैःकश्चिच्चिच्छेदकार्मुकम् ॥ ध्वजमस्यापरेबाणैश्छित्त्वाभुमावपातयत ॥ १४ ॥ जघ्नुरन्येतथैवाश्वान्बभञ्जुश्चापरेरथम् ॥ गदापातेनाथचान्येबाणैःपृष्ठमताडयन् ॥ १५ ॥ छिन्नेधनुषिसक्रोधःसतदानृपतेःसुतः ॥ जग्राहासिंतथाचर्मतदप्यन्योन्वपातयत् ॥ १६ ॥ छिन्नासिचर्माजग्राहसगदांगदिनांवरः ॥ तामप्यन्यःक्षुरप्रेणचिच्छेदकृतहस्तवत् ॥ १७ ॥ अन्येशरसहस्रेणशतेनान्येनराधिपाः ॥ विव्ययधुःकोपकीकृत्यधर्मयुद्धपराङ्मुखाः ॥ १८ ॥ सविह्वलःपपातोर्व्यामकोबहुभिरर्दितः ॥ राजपुत्रामहाभागाबबन्धुस्तेचतंततः ॥ १९ ॥ तमधर्मेणतेसर्वेगृहीत्वानृपतेःसुतम् ॥ विशालेनसमंराज्ञावैदिशंविविशुःपुरम् ॥ २० ॥ हृष्टाःप्रमुदिताबद्धंसमादायनृपात्मजम् ॥ स्वयंवराचसाकन्यान्यस्तानतननःपुरः ॥ २१ ॥ पुनःपुनश्चापित्राकानथापिचपुरोधसा ॥ आलम्ब्यतामितिवरोयस्तेराजसुरोचते ॥ २२ ॥

द्वारा इस प्रकार विद्ध होनेसे विह्वल होकर पृथ्वीमें गिरपडे तब महाभाग राजपुत्रोंने उनको बांधलिया ॥ १९ ॥ सब महीपाल उनको अधर्मयुद्धमें ग्रहण कर विशाल राजाके सहित वैदिशपुरमें प्रविष्ट हुए ॥ २० ॥ उन राजपुत्रको बंधनपूर्वक ग्रहण करके वह सब हृष्ट और आह्लादित हुए थे तदनंतर उस स्वयंवरा कन्या और राजपुत्रको उन्होंने विशाल नरपतिके संमुख स्थापित किया ॥ २१ ॥ इसके पीछे हे मुने ! इन राजाओंमें जिसकी अभिलाषा हो उसकोही वरो" उसके पिता और पुरोहितोंके इस प्रकार वारम्वार कहनेपर ॥ २२ ॥

श्लाघाका विषय विचारती हूं ॥१४॥ तुम्हारे पूर्वजोंने भी शत्रुओंका नाश करके राजाओंका पृथ्वी पुत्रादिक धन हरण किया है॥१५॥ और इस निमित्त आपके मस्तकमें अस्त्रघातका होना भी श्लाघनीय है।राजा लोग पृथ्वी, पुत्रादि धन और भार्या इत्यादिसज्जनोंके निकटसेही हरण करके संचय करते हैं और वही उनके गौरवका कारण होता है अतएव आप युद्धके लिये शीघ्रता अवलम्बन कीजिये, शीघ्र रथमें चढकर ॥ १६ ॥ सारथी सहित हाथी और घोडोंको सज्जित कीजिये । अनेक राजाओंके संग एकजनेका युद्ध आप लोग कैसा विचारते हैं ? ॥१७॥ शूर जन अल्प युद्धमें ही बडा पराक्रम संपादन करके अंतमें संतोष प्राप्त करते हैं, अल्प नरेंद्रादि शत्रुसमूह और जिनसे भयकी संभावना नहीं है. ऐसे कातर शत्रुओंके ऊपर

युष्माकमपियेपूर्वैःकृत्वारीणांनिपातनम् ॥ हृत्वैवपृथिवीशनांपृथ्वीपुत्रादिकंवसु ॥१५॥ भार्य्यावीर्यनिमित्तानिततोयातातिगौरवम् ॥ तत्त्वर्य्यतांरणायाशुस्यन्दनान्यधिरोहत ॥१६॥ सज्जीकुरुतनागाश्वमचिरेणससारथिम् ॥ मन्यध्वंकिंमहीपालैर्बहुभिःसहविग्रहम् ॥ ॥ १७ ॥ प्रभूताएवतोषायशूरस्यालपरणेक्रियाः ॥ कस्यनाल्पेषुसामर्थ्यंनरेन्द्रादिषुजायते ॥ १८ ॥ येभ्योनविद्यतेभीतिर्विक्रांतस्यापिशत्रुषु ॥ व्याप्यलोकान्समस्तान्योह्यभिभूययतोनरः ॥ व्यरोचतेतिशूरःसतमांसीवदिवाकरः ॥ १९ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इत्थमुद्धर्षितोराजाऽनयापत्न्याकरन्धमः ॥ चकारसबलोद्योगंहन्तुंपुत्राहितान्मुने ॥ २० ॥ ततस्तस्यसमंभूपैर्विशालेनचसङ्गरः ॥ बभूवबद्धपुत्रस्यतैर्शेषैर्महामुने ॥ २१ ॥ दिनत्रयमभूद्युद्धंतेनराज्ञासमंतदा ॥ करन्धमेनभूपानांविशालस्यानुकुर्वताम् ॥ २२ ॥ यदापराजितप्रायंतत्सर्वंभूपमण्डलम् ॥ तदाविशालोऽर्घ्यकरःकरन्धममुपस्थितः ॥ २३ ॥

कौन सामर्थ्य प्रकाश करनेकी अभिलाषा नहीं करता?॥१८॥सूर्य जिस प्रकार दिगंतव्याप्त अंधकारके समूहका नाश करते हैं,ऐसेही जो शूर बल वीर्यादिके द्वारा भुवन व्यापी सब शत्रुओंको पराजित करके विराजमान होते हैं, वही यथार्थ शूर हैं॥१९॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे मुने.राजा करंधम इस प्रकार पत्नीके द्वारा उत्तेजित होकर पुत्रके शत्रुओंका वध करनेको सेना सजाने लगे ॥२०॥ अनंतर पुत्रके बँधे रहतेही विशालराज और अपरापर राजाओंके संग करन्धमका युद्ध आरंभ हुआ ॥ २१ ॥ उस समय विशालराजके अनुगामी राजाओंके सहित राजा करन्धमका तीन दिन युद्ध होनेपर ॥२२॥ जब वह सब विशाल राजानुगामी भूपमण्डल पराजित होगया तब विशाल उनकी पूजा करनेके लिये अर्घ्य हाथमें

ले कर करन्धमके समीप उपस्थित हुए ॥ २३ ॥ करंधमनेभी राजाके द्वारा पूजित हो पुत्रको बंधनसे छुड़ाय, प्रीतिपूर्वक उस रात्रिको वहां सुखसे वास किया ॥ २४ ॥ हे विप्रर्षे ! इसके उपरांत विशालराजकन्याको लेकर विवाहदानार्थ वहां उपस्थित हुए तब अवीक्षितने पिताके सामनेही उनसे कहा ॥२५॥ हे नृप ! जिस कन्याके सामने मैं शत्रुओंसे परास्त होगया हूं, उसको तो कभी ग्रहण नहीं कर सकता और अन्य भी किसी कामिनीको मैं ग्रहण नहीं करूंगा ॥ २६ ॥ अतएव जो कभी शत्रुओंसे अपमानित नहीं हुआ हो, ऐसे अखण्डित यश वीर्यसे युक्त किसी और मनुष्यको आप कन्या दीजिये और यह कन्याभी उसीको वरण करे ॥ २७ ॥ इस कातर अबलाके समान मैं शत्रुओंसे परा

करंधमोऽपिसंप्रीत्यातेनराज्ञाभिपूजितः ॥ विमुक्तेतनयेतत्रनिशांतांसुखमावसत् ॥ २४ ॥ तांचकन्यामुपादायविशालंसमुपस्थितम् ॥ अविक्षित्प्राहविप्रर्षेविवाहार्थंपितुःपुरः ॥ २५ ॥ नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यांयोषितंनृप ॥ परैर्यस्यानिरीक्षन्त्याःसंग्रामेऽहंपराजितः॥ ॥ २६ ॥ अन्यस्मैसंप्रयच्छेमामियञ्चान्यंवृणोतुतम् ॥ अखण्डितयशोवीर्य्योयःपरैर्नापमानितः ॥ २७ ॥ परैःपराजितोऽहंयत्कातरे यंयथाऽबला ॥ किमत्रमानुषत्वंमेनैनस्याममचान्तरम् ॥ २८ ॥ स्वतन्त्रतामनुष्याणांपरतन्त्रासदाऽबला ॥ नरोऽपिपरतन्त्रोयस्त स्यकीदृङ्मनुष्यता ॥ २९ ॥ सोऽहमस्यामुखंभूयोदृष्टंदर्शयिताकथम् ॥ योऽहमस्याःपुरोभूमौपरैर्भूपैःखिलीकृतः ॥ ३० ॥ इत्युक्तेतेनतनयामुवाचजगतीपतिः ॥ श्रुतंतेवचनंवत्सेवदतोऽस्यमहात्मनः ॥ वरयान्यंपतिंयत्रमनस्तेरमतेशुभे ॥ ३१ ॥ वयंवासंप्रयच्छामोयस्मिंस्तस्मिंस्तवाहृतिः ॥ एतयोरेकमातिष्ठमार्गयो रुचिरानने ॥ ३२ ॥

जित होगयाहूं अतएव मेरा मनुष्यत्व क्या है ! सुतरां मुझमें और इस कन्यामें कोई भेद नहीं है ॥ २८ ॥ स्वतंत्रता सदा मनुष्यके आधीन है और ललनागण सदाही पराधीन हैं, अतएव पुरुष होकरभी जो पराधीन हो, उसकी मनुष्यता कैसी है ? ॥ २९ ॥ जिसके सन्मुख मैं समस्त राजाओंसे हार गयाहूं उसको अपना यह पूर्वदृष्ट मुख किस प्रकार दिखाऊंगा ? ॥ ३० ॥ जगतीपति विशालने राजपुत्रके यह वचन सुनकर कन्यासे कहा हे वत्स ! इन महात्माने जो कहा, वह सुना। अब हे कल्याणी ! यदि तुम्हारी इच्छा हो, तो अपने आप अन्य किसीको पति रूपमें वरण करो ॥ ३१ ॥ अथवा तुम्हारे प्रति अत्यन्त स्नेहके कारण मैं जिसको उचित समझूं उसको प्रदान करूंगा हे रुचिरानने ! इन

दोनों बातोंमें एक स्वीकार करो ॥ ३२ ॥ कन्या बोली हे पार्थिव ! यह राजकुमार धर्ममार्गमें स्थित रहकर बहुत जनोंके संग संग्राम करके भी यशोवीर्य हानिकारक युद्धमें सम्यक् प्रकार पराजित नहीं हुए हैं ॥ ३३ ॥ युद्धके लिये आये हुए बहुत राजाओंमें इन्होंने जो केसरीके समान अकेलेही युद्धमें स्थिति की थी, उसके द्वाराही इनका विशेष शौर्य प्रकाशित हुआ है ॥ ३४ ॥ यह केवल युद्धस्थलमें स्थित ही नहीं थे, वरन् इन्होंने संपूर्ण राजमण्डलको बहुत वार पराजित करके यथेष्ट विक्रमभी प्रकाशित किया था ॥ ३५ ॥ शौर्य और विक्रमशाली धर्म युद्धकारी इन कुमारको जो बहुत राजाओंने अधर्म व्यवहारसे पराजित किया है, फिर इसमें लज्जाकी क्या बात है ? ॥ ३६ ॥ हे पिता ! मैं

॥ कन्योवाच ॥ ॥ पराजितोऽयंबहुभिर्नसम्यक्सम्यगाचरन् ॥ संग्रामेतद्यशोवीर्य्यहानिकारिनपार्थिव ॥ ३३ ॥ एकोबहूनांयुद्धायग जानामिवकेसरी ॥ यत्संस्थितःपरंशौर्य्यंतेनास्यप्रकटीकृतम् ॥ ३४ ॥ नकेवलमयंतस्थौयुद्धेतेऽप्यखिलाजिताः ॥ बहुशोऽनेनय त्नेनविक्रमोऽपिप्रकाशितः ॥ ३५ ॥ शौर्य्यविक्रमसंयुक्तमिमंसर्वमहीक्षितः ॥ धर्म्मयुद्धमधर्मेणजितवन्तोऽत्रकात्रपा ॥ ३६ ॥ नचापिरूपमात्रेऽहंलोभमस्यगतापितः ॥ शौर्य्यविक्रमधैर्य्याणिहरन्त्यस्यमनोमम ॥ ३७ ॥ तत्किमुक्तेनबहुनायाच्यतांमत्कृतेनृपः॥ त्वयामहानुभावोऽयंनान्योमेभवितापतिः ॥ ३८ ॥ विशाल उवाच ॥ ॥ राजपुत्रसुताप्राहममैतच्छोभनंवचः ॥ एवंचैवत्वयातुल्यः कुमारोनमहीतले ॥ ३९ ॥ अविसंवादितेशौर्य्यमतीवचपराक्रमः ॥ पावयास्मत्कुलंवीरदुहितुर्मेपरिग्रहात् ॥ ४० ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ नाहमेतांग्रहीष्यामिनचान्यायोषितंनृप ॥ आत्मन्येवहिमेबुद्धिःस्त्रीमयीमनुजेश्वर ॥ ४१ ॥

इनका केवल रूपमात्र देखकर लोभ नहीं करती वरन् इनके शौर्य विक्रम और धैर्यने मेरा मन हर लिया है ॥ ३७ ॥ अतएव अधिक और क्या कहूं हे नृप ! आप मेरे लिये इन महानुभावको ही अनुरोध कीजिये । इनके अतिरिक्त दूसरा कोई मेरा पति नहीं होगा ॥ विशालने कहा—हे राजपुत्र ! मेरी कन्याने जो कहा, वह सब युक्ति संगत है । तुम्हारे समान पृथ्वीतलमें अन्य कुमार दिखाई नहीं देता ॥ ३८ ॥ तुम्हारा शौर्य अप्रतिहत है और पराक्रमभी अधिक है ॥ ३९ ॥ हे वीर ! तुम्हीं इस मेरी कन्याको ग्रहण करके मेरे कुलको पवित्र करो॥४०॥ राजपुत्रने कहा हे नृप ! मैं इसको वा दूसरी किसी स्त्रीको ग्रहण नहीं करूंगा, हे मनुजेश्वर ! मैं स्वयंही अपनपेको स्त्री समझताहूं ॥ ४१ ॥

मार्कण्डेयजी बोले—तब करन्धम भी पुत्रसे कहने लगे हे पुत्र ! तुम इस कन्याको ग्रहण करो क्योंकि यह सुंदरी विशाल कन्या तुम्हारे प्रति दृढ अनुरागवती हुई है ॥ राजपुत्रने कहा-हे प्रभो ! मैंने पहले कभी आपकी आज्ञा भंग (अपालन) नहीं करी, हे तात ! इस समय भी आप मुझको वैसे ही आज्ञा दीजिये जिसको मैं पालन करनेमें समर्थ हूं ॥ ४३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—राजा विशालने राजपुत्रको इस प्रकार स्थिर बुद्धि जान व्याकुल चित्त हो कन्यासे कहा ॥ ४४ ॥ हे पुत्रि ! इनकी ओरसे मनको निवृत्त कर और अनेक राजपुत्र हैं उनमें किसीको पति वरण कर ॥ ४५ ॥ कन्या बोली-हे तात ! यदि यह राजपुत्र मेरी अभिलाषा नहीं करते, तो मैं प्रार्थना

॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःकरन्धमःप्राहपुत्रेयंगृह्यतांत्वया ॥ विशालतनयासुभ्रूस्त्वयिहार्दवतीदृढम् ॥ ४२ ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ नाज्ञाभङ्गःकदाचित्तेकृतःपूर्वंमयाप्रभो ॥ तथाऽऽज्ञापयमांतातयथाज्ञांकरवाणिते ॥ ४३ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ अत्यन्तनिश्चितमतौतस्मिन्राजसुतेसुताम् ॥ तामुवाचविशालोऽपिव्याकुलीकृतमानसः ॥ ४४ ॥ निवर्त्यतांमनःपुत्रिएतस्माच्चप्रयोजनात् ॥ अन्यंवरयभर्त्तारंसन्त्यनेकेनृपात्मजाः ॥ ४५ ॥ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ वरंवृणोम्यहंतातमामेपयदिनेच्छति ॥ तपसाऽन्योनमेभर्त्ताजन्मन्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४६ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततःकरन्धमोराजाविशालेनसमंमुदा ॥ स्थित्वादिनत्रयं तत्रनिजमभ्याययौपुरम् ॥ ४७ ॥ अविक्षितोपितेनैवपित्रान्यैश्चनराधिपैः ॥ निदर्शनैःपुरावृत्तैःसान्त्वितोऽभ्यागमत्पुरम् ॥ ४८ ॥ सापिकन्यावनंगत्वानिसृष्टानिजबान्धवैः ॥ तपस्तेपेनिराहारावैराग्यंपरमास्थिता ॥ ४९ ॥ निराहारायदामासातुमासत्रयमवस्थिता ॥ संप्रापपरमामार्तिंकृशाधमनिसन्तता ॥ ५० ॥

करती हूं कि, तपस्याके अतिरिक्त इस जन्ममें मेरा अन्य पति नहीं होगा ॥ ४६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर करन्धम विशाल राजाके सहित वहां प्रसन्नचित्तसे तीन दिन बिताकर अपने नगरको चले गये ॥ ४७ ॥ पिता और अन्यान्य राजाओंके अनेकानेक प्राचीन दृष्टान्तोंसे समझानेपर अवीक्षितभी राजधानीमें गये ॥ ४८ ॥ और वह विशालराजाकी कन्या भी आत्मीय बांधवोंसे बिदाले, वनमें जाय, परम वैराग्यके सहित निराहार होकर तपस्या करने लगी ॥ ४९ ॥ इस प्रकार निराहार होकर तीन महीने बितानेपर उसके शरीरकी नाडी दीखने लगीं वह कृश

होकर अत्यन्त दुःखित हुई ॥ ५० ॥ तब वह अत्यन्त दुबले अंगवाली मृत्युके समीप हुई बालिका राजकन्या मन्दोत्साह होकर प्राणत्याग करनेके लिये कृतनिश्चय हुई ॥ ५१ ॥ इस और उसको प्राणत्याग करनेमें स्थिर निश्चय जानकर देवताओंने मिलित हो, उसके निकट देवदूतको भेजा ॥ ५२ ॥ दूतने आकर कहा हे नृपात्मजे ! मैं देवताओंका भेजा हुआ दूत हूं जिस कार्यके लिये देवताओंने मुझे तुम्हारे निकट भेजा है, वह सुनो ॥५३॥ इस दुर्लभ शरीरको तुम परित्याग मत करो, हे कल्याणि ! तुम चक्रवर्त्ती राजाकी जननी होगी ॥५४॥ हे महाभागे ! तुम्हारा पुत्र शत्रुकुलका विनाश करके अप्रतिहत प्रभावसे बहुत कालतक इस सप्तद्वीपा पृथ्वीको भोग करेगा ॥ ५५ ॥ देवशत्रु तरुजित् और क्रूर अयःशंकु

मन्दोत्साहाततितन्वङ्गीमुमूर्षुर्नृपबालिका ॥ देहत्यागायसाचक्रेतदाबुद्धिंनृपात्मजा ॥ ५१ ॥ आत्मत्यागायतांज्ञात्वाकृतबुद्धिंसुरास्ततः ॥ समेत्यप्रेषयामासुर्देवदूतन्तदन्तिकम् ॥ ५२ ॥ समुपेत्यसतांप्राहदूतोऽहंपार्थिवात्मजे ॥ प्रेपितस्त्रिदशैस्तुभ्यंयत्कार्यंतन्निशामय ॥ ५३ ॥ नभवत्यापरित्याज्यंशरीरमतिदुर्लभम् ॥ त्वंभविष्यसिकल्याणिजननीचक्रवर्तिनः ॥ ५४ ॥ पुत्रेणचमहाभागेभोक्तव्यानिहतारिणा ॥ अव्याहताज्ञेनचिरंसप्तद्वीपवतीमही ॥ ५५ ॥ हन्तव्यस्तेनतरुजिद्देवानांपुरतोरिपुः ॥ अयःशंकुस्तथाक्रूरोधर्मेस्थाप्यास्ततःप्रजाः ॥ ५६ ॥ परिपालनीयमखिलंचातुर्वर्ण्यंस्वधर्मतः ॥ हन्तव्यादस्यवोम्लेच्छायेचान्येदुष्टचेष्टिताः ॥ ५७ ॥ यष्टव्यंविविधैर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ॥ वाजिमेधादिभिर्भद्रेषट्सहस्रैश्चसंख्यया ॥ ५८ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ तंदृष्ट्वासाऽतीरक्षस्थंदिव्यस्रगनुलेपनम् ॥ देवदूतमुवाचेदंराजपुत्रीततोमृदु ॥ ५९ ॥ सत्यंत्वमागतःस्वर्गाद्देवदूतोनसंशयः ॥ किन्तुभर्त्राविनापुत्रःसंकथंमेभविष्यति ॥ ६० ॥ अविक्षितमृतेभर्त्तामममनान्योऽत्रजन्मनि ॥ भवितेतिप्रतिज्ञातंमयैतत्सन्निधौपितुः ॥ ६१ ॥

देवताओंके सामने उसके द्वारा विनाशको प्राप्त होंगे, वह प्रजाको धर्माचरणमें स्थापन करेगा ॥५६॥ समस्त चातुर्वर्ण्यको ही यथाधर्ममें प्रतिपालन करेगा, म्लेच्छ, दस्यु (तस्कर) इत्यादि दुराचारी उसके द्वारा विनाशको प्राप्त होंगे ॥ ५७ ॥ और हे भद्रे ! वह विपुल, दक्षिणापूर्ण अश्वमेधादि अनेक प्रकारके छः हजार यज्ञ करेगा॥५८॥मार्कण्डेयजी बोले—अनंतर दिव्यमालानुलेपनधारी आकाशमें स्थित उस देवदूतको देखकर राजपुत्रीने मधुर स्वरसे कहा॥५९॥आप सत्यही स्वर्गसे देवदूत आये हैं, इसमें संदेह नहीं है, किंतु भर्त्ताके विना मेरे किस प्रकार पुत्र होगा ? ॥६०॥ अवीक्षितके अति

रेकि दूसरा कोई मेरा इस जन्ममें भर्त्ता नहीं होगा, मैंने पिताके निकट इस प्रकार प्रतिज्ञा की है ॥ ६१ ॥ किंतु अवीक्षितने भी मेरे पिताके, अपने पिताके और मेरे अनुरोधसे भी मेरी अभिलाषा नहीं करी ॥ ६२ ॥ देवदूतने कहा—हे महाभाग ! अधिक कहनेका प्रयोजन नहीं है, निःसंदेह तुम्हारे पुत्र उत्पन्न होगा इस कारण आत्महत्यारूप अधर्माचरण मत करो ॥ ६३ ॥ इसी वनमें रहकर क्षीणदेहका पोषण करो। तपस्याके प्रभावसे अवश्य तुमको सब भाँतिसे मंगल उपस्थित होगा ॥ ६४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—देवदूत इस प्रकार कहकर जहांसे आया था वहींको चला गया और सुंदरी राजकन्या भी नित्य शरीर पोषण करने लगी ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितभाषाटीकायामेकविंशत्यधि-

सचनेच्छतिमांप्रोक्तोमत्पित्राजनकेनच ॥ करन्धमेनाथसम्यग्याचितश्चमयातथा ॥ ६२ ॥ देवदूतउवाच ॥ ॥ किमनेनमहाभागेब हुनोक्तेनतेसुतः ॥ समुत्पत्स्यंतिमात्याक्षीस्त्वमात्मानमधर्मतः ॥ ६३ ॥ अत्रैवकाननेतिष्ठनतुंक्षीणांचपोषय ॥ तपःप्रभावादेतत्तेसर्वं साधुभविष्यति ॥ ६४ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ इत्युक्त्वादेवदूतोऽसौयथागतमगच्छत ॥ चकारानुदिनंसुभ्रूःसाप्यात्मतनुपोषणम् ॥ ॥ ६५ ॥ इति श्रीमार्कंडेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामैकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः । १२१ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ ॥ अथनाऽविक्षितो मातावीरावीरप्रजावती ॥ पुण्येऽहनिसमाहूयप्राहपुत्रमविक्षितम् ॥ १ ॥ पुत्राहमभ्यनुज्ञातातवपित्रामहात्मना ॥ उपवासंकरिष्या मिदुष्करोऽयंकिमिच्छकः ॥ २ ॥ सचायत्तस्तवपितुस्त्वयासाध्योमयापिच ॥ प्रतिज्ञातेत्वयापुत्रततस्तत्रयताम्यहम् ॥ ३ ॥ द्रव्यस्यार्द्धमहाकोशात्तवदास्याम्यहंपितुः ॥ धनंतेपितुरायत्तमनुज्ञाताऽस्मितेनच ॥ ४ ॥

कशततमोऽध्यायः ॥ १२१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—एक समय पवित्र दिनमें अवीक्षितकी माता वीरप्रसवीराने पुत्र अवीक्षितको बुलाकर कहा ॥ १ ॥ हे पुत्र! मैं किमिच्छक नामक उपवासके पीछे एक दुष्कर व्रत करूंगी, तुम्हारे महात्मा पिताने भी उसे करनेकी आज्ञा देदी है ॥ २ ॥ यह व्रत तुम्हारे पिता, तुम और मैं इन तीन जनोंके अधीन है अतएव हे पुत्र ! जब तुम उसकी प्रतिज्ञा करलोगे, तब मैं व्रतकार्यमें यत्नवती हूंगी ॥ ३ ॥ तुम्हारे पिताके राजकोषका आधा धन दान करूंगी, सुतरां धन तुम्हारे पिताके अधीन है, किन्तु उनसे आज्ञा प्राप्त करली है ॥ ४ ॥

क्लेश साध्य विषय मेरे आधीन है वह मेरे—द्वारा भलीभाँति सम्पन्नभी होगा और जो कुछ बल तथा पराक्रमसाध्य है, वह सब तुम्हारे आधीन है ॥ ५ ॥ वह तुमको सुसाध्य, दुःखसाध्य अथवा असाध्य भी हो सकता है, अतएव हे पुत्र ! यदि अपने साध्यविषयमें तुम अंगीकार करो; तो इस व्रतका उद्योग करूं अब तुम्हारा जो अभिप्राय हो, उसको प्रकाश करो ॥६॥ अवीक्षितने कहा--धन पिताके आधीन है उसमें मेरी कुछ प्रभुता नहीं है, मेरे शरीरसे जो कार्य सिद्ध होगा, तुम्हारी आज्ञानुसार मैं उसके संपादन करनेको प्रस्तुत हूं ॥ ७ ॥ यदि वित्तेश्वर पिताही इसमें आज्ञा देते हैं तो हे माता ! तुम निश्चिन्त होकर संतुष्ट हृदयसे किमिच्छक व्रत अवलम्बन करो ॥ ८ ॥ मार्कण्डयजी बोले—अनन्तर संयमपरा

क्लेशसाध्योमदायत्तःसहिश्रेयोभविष्यति ॥ साध्योभवेद्वायदितेकश्चिद्बलपराक्रमैः ॥ ५ ॥ सतेऽसाध्योह्यन्यथावादुःखसाध्योभविष्यति ॥ तत्त्वंप्रतिज्ञांकुरुषेयदिपुत्रात्रचैवते ॥ तदेतदहमावाप्स्येकथ्यतांयन्मतंतव ॥ ६ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ वित्तंमेपितुरायत्तंमत्स्वामित्वंनतत्रवै ॥ यन्मच्छरीरनिष्पाद्यंतत्करिष्येत्वयोदितम् ॥ ७ ॥ किमिच्छकंव्रतंमातर्निश्चिन्ताभवनिर्व्यथा ॥ गज्ञापित्राऽभ्यनुज्ञातंयदिवित्तेश्वरेणमे ॥ ८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसाराजमहिषीतद्व्रतंसमुपोषिता ॥ यथोक्तंसाऽकरोत्पूजांराजराजस्य संयता ॥ ९ ॥ निधीनामप्यशेषाणांनिधिपालगणस्यच ॥ लक्ष्म्याश्चपरयाभक्त्यायतवाक्कायमानसा ॥ १० ॥ विविक्तेतुगृहस्थोऽयमथराजाकरन्धमः ॥ आसीनउक्तःसचिवैर्नीतिशास्त्रविशारदैः ॥ ११ ॥ सचिवाऊचुः ॥ ॥ राजन्वयःपरिणतन्तवैतच्छासतोमहीम् ॥ एकस्तेतनयोऽविक्षित्त्यक्तदारपरिग्रहः ॥ १२ ॥ अपुत्रसचतेनिष्ठांयदाभूपगमिष्यति ॥ तदारिपक्षंपृथिवीनिश्चितंतवयास्यति ॥ १३ ॥ वंशक्षयस्तेभवितापितृपिण्डोदकक्षयः ॥ एतन्महत्तेऽरिभयंक्रियाहान्याभविष्यति ॥ १४ ॥

यण राजमहिषी उस व्रतमें उपवासपूर्वक काय, मन, वचनसे संयत हो अत्यन्त भक्तिसहित यथोक्तविधानसे निधिसमूह निधिपालगण और लक्ष्मी देवीकी पूजा करने लगी ॥ ९ ॥ १० ॥ इस ओर राजा करन्धम नीतिशास्त्रविशारद मंत्रियोंके सहित मंत्रणागृहमें विराजमान रहे ॥ ११ ॥ मंत्री बोले -हे राजन् ! पृथ्वीपालन करते हुए आपकी अवस्था बीतचली और आपके एक मात्र पुत्रने दारपरिग्रह त्याग किया अर्थात् विवाह नहीं किया है ॥१२॥ हे भूप ! वह भी जब अपुत्रही रहेंगे दारसंग्रह न करेंगे तब निःसदेह पृथ्वी आपके शत्रुओंका आश्रय करेगी ॥ १३ ॥ आपका भी वंश

क्षय और पितरोंका श्राद्ध, तर्पण नष्ट होगा। फिर क्रियाहानिके कारण यह समस्त महत् शत्रुभय उपस्थित होगा ॥ १४ ॥ अतएव हे भूपाल! जिससे आपका पुत्र फिर सदा पितरोंका उपकार करनेवाली बुद्धि अवलम्बन करे, उसका उपाय कीजिये ॥ १५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसी समय राजमहिषी वीराके संबंधमें पुरोहित अर्थीगणोंसे जो कहते थे राजाने उन वचनोंका शब्द सुना ॥ १६ ॥ पुरोहित कहते थे "करन्धमकी महिषी किमिच्छक व्रत करती हैं. तुम क्या क्या इच्छा करते हो? किसका क्या दुःसाध्य कार्य साधन करना होगा। सो प्रकाश करो" ॥ ॥ १७ ॥ जब राजपुत्र अवीक्षितने पुरोहितोंका वचन सुना तब वह भी राजद्वारपर आकर सब अर्थियोंसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे अर्थी

तस्मात्कुरुनथाभूपयथातेतनयः पुनः ॥ करोतिसततंबुद्धिंपितॄणामुपकारिणीम् ॥ १५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरेश ब्दंशुश्रावजगतीपतिः ॥ पुरोहितस्यवीरायागदतोह्यर्थिनंप्रति ॥ १६ ॥ कःकिमिच्छतिदुःसाध्यंकस्यकिंसाध्यतामिति ॥ करन्धमस्य महिषीकिमिच्छिकमुपोषिता ॥ १७ ॥ राजपुत्रोऽप्यविक्षित्तुश्रुत्वापौरोहितंवचः ॥ प्रत्युवाचार्थिनःसर्वान्राजद्वारमुपागतान् ॥१८॥ ॥ मयासाध्यंशरीरेणयस्यकिञ्चिद्ब्रवीतुसः ॥ ममप्रातामहाभागाकिमिच्छिकमुपोषिता ॥ १९ ॥ शृणुवन्तुमेऽर्थिनः सर्वेप्रतिज्ञातं मयातदा ॥ किमिच्छथददाम्येषक्रियमाणेकिमिच्छके ॥ २० ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ततोराजानिशम्यैतद्वाक्यंपुत्रमुखाच्च्युतम् ॥ समुत्पत्याब्रवीत्पुत्रमहमर्थीप्रयच्छमे ॥ २१ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ दातव्यंयन्मयाताभवनेनद्रब्रवीहिमाम् ॥ कर्तव्यंदुष्करंवातेसाध्यंदुःसाध्यमेववा ॥ २२ ॥

गणो! मेरी प्रतिज्ञा सुनो--मेरी भाग्यवती माता किमिच्छकव्रतमें स्थित हो रही है,इस समयमें मेरे शरीरसे जो कुछ साधित होसके, उसे कहो ॥ ॥ १९ ॥ इस किमिच्छकव्रतके समय तुम क्या क्या प्रार्थना करते हो सो कहो मैं वही देनेको प्रस्तुत हूं यह मेरी प्रतिज्ञा है ॥ २० ॥ मार्कण्डेयजी बोले इसके उपरान्त राजाकरन्धमने पुत्रके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन उसके समीप जाकर कहा ॥ २१ ॥ 'हे पुत्र! मैं अर्थी हूं मुझको अभिलाषित वस्तु दो' अवीक्षितने कहा--"हे तात! मैं आपको क्या दूं? आज्ञा कीजिये आपकी माँगी वस्तु साध्य दुःसाध्य वा असाध्यही क्यों न हो, मैं वह दूंगा" ॥ २२ ॥

राजाने कहा "यदि तुमने किमिच्छकमें दान करनेकी सत्य प्रतिज्ञा की है तो मेरी गोदीमें बैठाकर पौत्रका मुख दिखाओ" ॥ २३ ॥ अवीक्षितने कहा--हे नृप ! मैं ही आपका एक-मात्र पुत्र हूं, सो मैंने ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया है और मेरे पुत्र भी नहीं है, अतएव किस प्रकार आपको पौत्रका मुख दिखाऊं ? ॥२४॥ राजाने कहा 'यह जो तुमने ब्रह्मचर्य धारण किया है, सो यह पापका हेतु है सुतरां इसको परित्याग करके उससे आत्माको मुक्त करो और मुझको भी पौत्रका मुख दिखाओ' ॥ २५ ॥ अवीक्षितने कहा यह कार्य अत्यन्त विषम अर्थात् ब्रह्मचर्यका विरोधी है । हे महाराज ! मैंने वैराग्यके निमित्त ही स्त्री संभोग परित्याग किया है जिससे वह वैराग्य खंडित न हो आप मुझे वैसी ही

॥ राजोवाच ॥ ॥ यदिसत्यप्रतिज्ञस्त्वंददामिचकिमिच्छकम् ॥ पौत्रस्यदर्शयमुखंममोत्सङ्गगतम्यनत् ॥ २३ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ अहन्त्वेकस्तनयोब्रह्मचर्य्यंचमेनृप ॥ नमेपुत्रोऽस्तिपौत्रस्यदर्शयामिकथंमुखम ॥ २४ ॥ ॥ राजोवाच ॥ ॥ पापाय ब्रह्मचर्य्यन्तेयदिदंधार्य्यतेत्वया ॥ तस्मात्त्वंमोचयात्मानंममपौत्रंचदर्शय ॥ २५ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ विषमस्यान्महाराजयदन्यत्तत्समादिश ॥ वैराग्येणमयात्यक्तःस्त्रीसंभोगस्तथास्तुसः ॥ २६ ॥ राजोवाच ॥ बहुभिर्युध्यमानानांहष्टोवैवैरिणांजयः ॥ तत्रापियदिवैराग्यमुपैपितदपण्डितः ॥ २७ ॥ किंवानोबहुनोक्तेनब्रह्मचर्य्यंपरित्यज ॥ मातुस्त्वमिच्छयावक्रंपौत्रस्यममदर्शय ॥ २८ ॥ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ यदासबहुशस्तेनप्रोक्तःपुत्रेणपार्थिवः ॥ नान्यत्प्रार्थयनैकिंचित्तदापुत्रोऽब्रवीत्पुनः ॥ २९ ॥ दत्त्वाकिमिच्छकं तुभ्यंप्राप्तोऽहंतातसङ्कटम् ॥ तत्करिष्यामिनिर्लज्जोभूयोदारपरिग्रहम् ॥ ३० ॥

कोई दूसरी आज्ञा दीजिये ॥ २६ ॥ राजाने कहा "मैंने देखा है कि, बृहत् सेनासे युक्त वैरियोंको तुमने युद्धमें परास्त किया है, इस पर भी यदि तुम वैराग्य अवलम्बन करते हो तो तुम अपण्डित (मूर्ख) हो ॥ २७ ॥ अब मेरे अधिक कहनेका क्या प्रयोजन है ? तुम अपनी माताकी इच्छानुसार ब्रह्मचर्य परित्याग करो और मुझको पौत्रका मुख दिखावो" ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--राजपुत्रके वारंवार अनुरोध करनेपर भी जब राजाने दूसरी, कोई प्रार्थना नहीं करी, तब राजपुत्रने फिर कहा ॥ २९ ॥ हे तात ! आपसे किमिच्छक प्रदान विषयमें अंगीकार करके मैं संकटमें पड़ गया हूं इस कारण निर्लज्ज होकर फिर स्त्री, ग्रहण करनी ही पड़ेगी ॥ ३० ॥

मैं स्त्रीके सामने पराजित होकर पृथ्वीमें गिर गया था, अतएव स्त्री मेरे पक्षमें पतिके समान होगी, हे तात ! यह बड़ा ही कठिन कार्य है ॥ ॥ ३१ ॥ किन्तु तो भी क्या करूं ? जब कि, सत्यपाशमें बँध गया हूं, तब आप जो कहते हैं वह अवश्य करूंगा । अब आप निश्चिन्त चित्तसे राज्यशासन कीजिये ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितेभाषाटीकायां द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- किसी समय राजपुत्र वनमें मृग, वराह, शार्दूल, सिंह इत्यादि दंष्ट्री जन्तुओंको विद्ध करके मृगया करते थे ॥ १ ॥ उसी समय सहसा रोती हुई कामिनीके कंठका निकला हुआ भयसे गद्गद अत्युच्च "त्राहि त्राहि" शब्द वारंवार सुना ॥ २ ॥ राजपुत्रने वह शब्द सुनते ही तत्काल

स्त्रियाःसमक्षंविजितःपतितोधरणीतले ॥ स्त्रीपतिर्भविताभूयस्तातैतदतिदुष्करम् ॥ ३१ ॥ तथापिकिंकरोम्येषसत्यपाशवशङ्गतः ॥ करिष्यामियथाऽऽत्थत्वंभुज्यतांनिजशासनम् ॥ ३२ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंद्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ ॥ १२२ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ कदाचिद्राजपुत्रोऽसौमृगयामचरद्वने ॥ मृगान्विध्यन्वराहांश्चशार्दूलदींश्चदंष्ट्रिणः ॥ १ ॥ शुश्रावस हसाशब्दंत्राहित्राहीतियोषितः ॥ विक्रोशन्त्याःसुबहुशोभयगद्गदमुच्चकैः ॥ २ ॥ माभैर्माभैरितिवदन्राजपुत्रःसवेगितः ॥ चोदयामा सतुरगंयतःशब्दःसमागतः ॥ ३ ॥ ततश्चसापिचुक्रोशकन्यकाविजनेवने ॥ गृहीतादनुपुत्रेणदृढकेशेनमानिनी ॥ ४ ॥ करन्धमसुत स्याहंभार्य्याचाहमविक्षितः ॥ हरत्यनार्य्योविपिनेपृथिवीशस्यधीमतः ॥ ५ ॥ यस्यसर्वेमहीपालास्तथागन्धर्वगुह्यकाः ॥ नसमर्थाः पुरःस्थातुंतस्यभार्य्याहृतास्म्यहम् ॥६॥ यस्यमृत्योरिवक्रोधःशक्रस्येवपराक्रमः ॥ करन्धमसुतस्यैपातस्यभार्य्याह्रियाम्यहम् ॥७॥

'भय नहीं, भय नहीं' कहकर जिस ओरसे शब्द आता था, उसी ओरको वेग सहित घोड़ा दौड़ाया ॥ ३ ॥ तदनन्तर दनुपुत्र दृढकेशके द्वारा पकड़ी हुई वह मानिनी कन्या विजनवनमें ऊंचे स्वरसे इस प्रकार विलाप करने लगी ॥ ४ ॥ कि, "मैं करन्धमके पुत्र बुद्धिमान पृथिवीश्वर अवीक्षितकी भार्या हूं यह दुराचारी मुझको वनमें हरण करता है" ॥ ५ ॥ जिनके सम्मुख संपूर्ण महीपाल और गुह्यक गंधर्व भी नहीं ठहर सकते, मैं उनकी ही भार्या होकर हरी जाती हूं ॥ ६ ॥ जिनका क्रोध मृत्युके समान और पराक्रम इन्द्रके समान है, मैं उन्हीं करन्धमके पुत्रकी भार्या हूं यह मुझको हरण करता है ॥ ७ ॥

मार्कण्डेयजी बोले धनुष हाथमें लिये राजाने यह बात सुनकर विचार किया कि, इस वनमें मेरी भार्या यह कैसी बात है ॥ ८ ॥ यह निःसन्देह वनमें विहार करनेवाले राक्षसोंकी माया है। जो हो निकट जानेपर सब ज्ञात हो जायगी ॥ ९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले इसके उपरान्त राजपुत्रने शीघ्र वहां पहुँचकर देखा कि, उन वनमें समस्त गहनोंसे विभूषित अत्यन्त मनोहर एक कन्या ॥ १० ॥ दंड हाथमें लिये दानव दृढकेशके द्वारा पकड़ी जाकर "त्राहि त्राहि" शब्दसे वारंवार रोदन करती है ॥ ११ ॥ उन्होंने उस कन्यासे "भय नहीं" यह कहकर दानवसे कहा-तेरी मृत्यु अत्यन्त निकट है करन्धमके पृथ्वी पालनेके समय कौन दुःखी हो सकता है ॥ १२ ॥

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इत्याकर्ण्यमहीपालतनयःसशरासनी ॥ चिन्तयामासकिमिदंममभार्य्यात्रकानने ॥ ८॥ मायेयंरक्षसांनूनं दुष्टानांकाननौकसाम् ॥ अथवागतएवाहंसर्वं वेत्स्यामिकारणम् ॥ ९ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ त्वरितःसततोगत्वाहदर्शातिमनोरमाम् ॥ काननेकन्यकामेकांसर्वालङ्कारभूषिताम् ॥ १० ॥ गृहीतांदनुपुत्रेणदृढकेशेनदंडिना ॥ त्राहित्राहीतिकरुणंविक्रोशन्तींपुनःपुनः ॥ ॥ ११ ॥ माभैरितिसतामाहहतोऽसीतिचतंवदन् ॥ शासतीमांमहींदुष्टःकोदूयेतकरंधमे ॥ १२ ॥ यस्यप्रतापावनताभुविसर्वेमहीक्षितः ॥ ततस्तमागतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ॥ १३ ॥ मांत्राहीत्याहतन्वङ्गीहृतास्म्येपेतिचासकृत् ॥ राज्ञःकरन्धमस्याहंस्नुषाभार्य्याप्यविक्षितः ॥ हृतास्म्येतेनदुष्टेनसनाथाऽनाथवद्वने ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोविममृशेवाक्यमविक्षित्सतथोदितम् ॥ कथमेषाहिमेभार्य्यास्नुषातातस्यवाकथम् ॥ १५ ॥

जिनकरन्धम राजाके प्रतापसे पृथ्वीके संपूर्ण महीपाल अवनत रहते हैं, उनके शासन कालमें कौन दुष्ट मनुष्य जीवित रह सकता है ? प्रचण्ड धनुर्धारी उन राजपुत्रको आया हुआ देखकर ॥ १३ ॥ वह कृशाङ्गी वारंवार कहने लगी "मेरी रक्षा करो, यह मुझको हरण करता है, मैं करन्धमराजाकी पुत्रवधू अवीक्षितकी भार्या हूं; अतएव सनाथ होकर भी अनाथके समान इस वनमें दुष्टके द्वारा हरी जाती हूं" ॥ १४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-कन्याका यह वचन सुनकर राजपुत्र चिन्ता करने लगे कि, यह कन्या मेरी भार्या और मेरे पिताकी पुत्रवधू किस प्रकार हुई ॥ १५ ॥

जो हो, पहिले इस कन्याको छुडा लूं, पीछे सब बात जान लूंगा, क्यों कि, आर्त्त मनुष्योंकी रक्षाके लिये ही क्षत्रिय शस्त्र धारण करते हैं ॥ १६ ॥ अनन्तर महावीर राजकुमारने क्रोधित होकर दुर्मति दानवसे कहा यदि जीवनकी इच्छा हो तो इसको छोडकर भाग जा; नहीं तो अवश्यही तेरी मृत्यु होनहार है ॥१७॥ दानव राजपुत्रके वचनसे कन्याको छोडकर दण्ड हाथमें लिये उनकी ओर दौंडा, तब उन्होंने भी बाणोंकी वर्षा करके उसको आच्छन्न कर डाला ॥ १८ ॥ दानवने राजपुत्रके बाणोंको निवारण करके अत्यन्त अहंकार सहित राजपुत्रके ऊपर (सैकडों कीलोंसे व्याप्त) दण्ड चलाया ॥ १९ ॥ किन्तु राजपुत्रने अधबीचमें ही उसको बाणोंसे काटडाला, तब दानव समीपका एक बड़ा भारी वृक्ष

अथवामोचयाम्येतांतन्वींवेत्स्यामितत्पुनः ॥ क्षत्रियैर्धार्य्यतेशस्त्रमार्त्तानांत्राणकारणात् ॥ १६ ॥ ततःक्रुद्धोऽब्रवीद्वीरोदानवंतंसुदुर्मतिम् ॥ जीवन्गच्छविमुच्यैनामन्यथानभविष्यसि ॥ १७ ॥ ततःसतांविहायोच्चैर्दण्डमुत्क्षिप्यदानवः ॥ तमभ्यधावत्सोऽप्येनंशरवर्षैरवाकिरत ॥ १८ ॥ सवार्य्यमाणोबाणौघैर्दानवोऽतिमदान्वितः ॥ राजपुत्रायचिक्षेपदण्डंशंकुशतावृतम ॥ १९ ॥ तमापतन्तंचिच्छेदशरैर्भूपसुतस्ततः ॥ सोऽप्यासन्नंगृहीत्वोच्चैर्द्रुममाजौव्यवस्थितः ॥ २० ॥ सृजतःशरवर्षाणिनंचिक्षेपततोद्रुमम् ॥ मच्चतंतिलशश्चक्रेभल्लैःकार्मुकमोचितैः ॥ २१ ॥ ततश्चिक्षेपचशिलांराजपुत्रायदानवः ॥ सापिमोघापपातोर्व्यामुज्झितातनलाघवात ॥ २२ ॥ राजपुत्रायकुपितोयद्यच्चिक्षेपदानवः ॥ तत्तच्चिच्छेदबाणौघैर्भूभृत्सूनुःसलीलया ॥ २३ ॥ ततोविच्छिन्नदंडोमाविच्छिन्नसकलायुधः ॥ मुष्टिमुद्यम्यसक्रोधोराजपुत्रमधावत ॥२४॥ तस्यापततएवासौकरन्धमसुतःशिरः ॥ छित्त्वावैतसपत्रेणपातयामासभुवि ॥ २५ ॥

हाथमें लेकर युद्धस्थलमें उपस्थित हुआ ॥ २० ॥ और बाणोंकी वर्षा करते हुए उसे राजपुत्रके ऊपर चलाया, किन्तु राजपुत्रने उसको भी धनुषसे छूटेहुए भाले समूह द्वारा तिल तिल परिमाण खण्डित किया ॥ २१ ॥ इसके उपरान्त दानव राजपुत्रके ऊपर शिला चलाने लगा और वह लघुहस्तसे उसको भी व्यर्थ करके पृथ्वीतलमें गिराने लगे ॥ २२ ॥ इस प्रकार दानवने क्रोधपूर्वक राजपुत्रके ऊपर जो कुछ चलाया उन्होंने भी बाणोंके द्वारा उन सबको सहजमें ही काटडाला ॥ २३ ॥ इस प्रकार दण्ड और संपूर्ण अस्त्र शस्त्रोंके कट जानेपर दानव क्रोधित चित्तसे घूँसा उठाकर राजपुत्रकी ओर दौंडा ॥ २४ ॥ किंतु उसके आते आते ही करन्धमकुमारने उसी समय वैतसपत्र बाणद्वारा उसका

मस्तक काटकर भूमिमें गिरा दिया ॥ २५ ॥ दुराचारी दानवके इस प्रकार मरनेपर देवता करन्धम पुत्रको "साधु साधु" कहने लगे ॥ २६ ॥ इसके उपरान्त "वर मागो" देवताओंके इसप्रकार आज्ञा देनेपर राजपुत्रने पिताका प्रियकार्य साधनके अर्थ महावीर पुत्रकी प्रार्थना करी ॥ २७ ॥ देवता बोले हेपापरहित!तुमने जिसको छुडायाहै इस कन्याके गर्भसेही तुम्हारे बलवान् चक्रवर्ती पुत्र उत्पन्न होगा॥२८॥राजपुत्रने कहा—मैं पिताके निकट सत्यपाशमें बँधकरही पुत्रकी इच्छा करताहूं नहीं तो युद्धस्थलमें राजाओंसे हारकर स्त्रीग्रहण करनेकी इच्छा त्यागदी थी ॥२९॥ मेरे विशालराजाकी कन्याको परित्याग करनेपर उस कन्यानेभी तबसे मेरेही अतिरिक्त दूसरे पुरुषसे संगमकी इच्छा परित्यागकरीहै॥३०॥आज उस विशालकन्याको छोडकर

तस्मिन्विनिहतेदेवैर्दानवेदुष्टचेष्टिते ॥ करन्धमसुतःसर्वैःसाधुसाध्वितिभापितः ॥ २६ ॥ वरंवृणीष्वेतितदादेवैरुक्तोनृपात्मजः ॥ वव्रे पुत्रंमहावीर्य्यंपितुःप्रियचिकीर्षया ॥ २७ ॥ देवाऊचुः ॥ भविष्यतिहितेपुत्रश्चक्रवर्त्तीमहाबलः ॥ अस्यामेवहिकन्यायांमोक्षितायां त्वयानघ ॥ २८ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ पित्राहंसत्यपाशेनबद्धइच्छाम्यहंसुतम् ॥ राजभिर्निर्जितेनाजौत्यक्तोमेदारसंग्रहः ॥ २९ ॥ साचमेयावतात्यक्ताविशालनृपतेःसुता ॥ तयाचमत्कृतेत्यक्तोमामृतेनरसङ्गमः ॥ ३० ॥ तत्कथंतामपास्याद्यविशालतनयामहम् ॥ नृशंसात्माकरिष्यामिअन्यनारीपरिग्रहम् ॥ ३१ ॥ ॥ देवाऊचुः ॥ इयमेवहितेभार्य्याश्लाघ्यतेयात्वयासदा ॥ विशालस्यसुतासुभ्रूस्त्वत्कृतेयाऽऽश्रितातपः ॥ ३२ ॥ अस्यामुत्पत्स्यतेवीरःसप्तद्वीपप्रसाधकः ॥ यष्टायज्ञसहस्राणांचक्रवर्त्तीसुतस्तव ॥ ३३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युच्चार्य्यययुर्देवाःकरन्धमसुतंद्विज ॥ सोऽप्याहतांतदापत्नींकथ्यतांभीरुकिंत्विदम् ॥ ३४ ॥ साचास्मै कथयामासत्यक्ताहंभवतायदा ॥ त्यक्तबन्धुजनाऽरण्यंनिर्वेदात्समुपागता ॥ ३५ ॥

किस प्रकार नृशंसके समान अन्य नारी ग्रहण करूं?॥३१॥देवता बोले--जिसकी तुम सदा प्रशंसा करतेहो,यह तुम्हारी वही भार्या है।इस सुन्दरी विशाल कन्यानेही तुम्हारे लिये तपस्या अवलंबन करी है ॥ ३२ ॥ इसके गर्भसे तुम्हारे सप्तद्वीप प्रशासक, सहस्र सहस्र यज्ञकर्ता चक्रवर्ती वीर पुत्र जन्मग्रहण करेगा ॥ ३३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे द्विज ! देवता करन्धमपुत्रसे यह बात कहकर अन्तर्धान होगये ! तब राजपुत्रने पत्नीसे पूछा--हे भीरु ! किस प्रकार यह घटना उपस्थित हुई सो कहो ॥ ३४ ॥ कन्या उनसे कहने लगी ' जब आप मुझे छोडकर चले गये, तब मैं अत्यन्त

दुःखी हो बांधवोंको त्यागकर इस वनमें चली आई ॥ ३५ ॥ हे वीर ! यहां तपस्यासे देह अत्यन्त क्षीण होनेपर मैंने एक दिन देहत्याग करनेकी इच्छा करी, उसी समय एक देवदूतने आकर मुझको निवारण किया ॥ ३६ ॥ उसने कहा " तुम्हारे महाबलवान् चक्रवर्त्ती पुत्र होगा । वह पुत्र असुरोंको हनन करेगा और देवताओंकी प्रीति संपादन करेगा । अतएव देवताओंकी आज्ञासे तुम प्राणत्याग मत करो"॥ ३७॥ इसप्रकार निवारित होकर मैं भी उस काल आपके संग मिलनेकी आशासे जीवन त्याग नहीं करसकी ॥ ३८ ॥ परसोंके दिन मैं गंगाह्रदमें जाकर वहां स्नान करनेको उतरी थी, उसी समय कोई बूढा नाग मुझको खैंचकर रसातलमें लेगया ॥ ३९ ॥ जब मैं रसातलमें पहुँची तो वहां

अत्राहंतपसावीरक्षीणप्रायंकलेवरम् ॥ त्यक्तुकामासमभ्येत्यदेवदूतेनवारिता ॥ ३६ ॥ भविष्यतिचपुत्रस्तेचक्रवर्त्तीमहाबलः ॥ प्रीणयिष्यतियोदेवानसुरांश्चहनिष्यति ॥ ३७ ॥ इतिदेवाज्ञयातेनदेवदूतेनवारिता ॥ नसंत्यक्तवतीदेहंत्वत्सङ्गममनारथा ॥ ३८ ॥ परश्वश्वमहाभागस्नातुंगङ्गांह्रदंगता ॥ अवतीर्णाविकृष्टास्मिवृद्धनागेनकेनचित् ॥ ३९ ॥ ततोरसातलंनीतातेनतत्रचमेपुरः ॥ नागाः सहस्रशस्तस्थुर्नागपत्न्यःकुमारकाः ॥ ४० ॥ तुष्टुवुर्मांसमभ्येत्यमामन्येऽपूजयंस्तथा ॥ ययाचिरेसविनयंनागामामङ्गनास्तथा ॥ ॥ ४१ ॥ प्रसादंकुरुसर्वेषांत्वमस्माकंसुतस्त्वया ॥ अपराधमुपेतानांसंनिवार्य्योवधोन्मुखः ॥ ४२ ॥ अपराधंकरिष्यन्तित्वत्पुत्रस्यानिलाशनाः ॥ तन्निमित्तंनिवार्योऽसोप्रसादःक्रियतामिति ॥ ४३ ॥ तथेतिचमयाप्रोक्तेदिव्यैःपातालभूषणैः ॥ भूपिताहंतथापुष्पैर्गन्धवासोभिरुत्तमैः ॥ ४४ ॥

सहस्र सहस्र नाग, नागपत्नी और कुमार गण मेरे सन्मुख स्थित हो ॥ ४० कोई पूजा और कोई स्तुति करने लगा । इसके पीछे नाग और नागपत्नियोंने विनयसहित मुझसे प्रार्थना करी ॥ ४१ ॥ " आप हम सबके ऊपर अनुग्रह कीजिये ! तुम्हारे पुत्रके निकट यदि हम अपराधी हों और वह हमको वध करनेका उद्योग करे तो तुम उनको निवारण करना ॥ ४२ ॥ अनिलाशन अर्थात् वायुभोजी नागगण जब तुम्हारे पुत्रका अपराध करैं तो तुम इस निमित्त उनको निवारण करो अनुग्रहपूर्वक यह बात अंगीकार कीजिये " ॥ ४३ ॥ जब मैंने " यही हो " कहकर स्वीकार किया तब दिव्य पातालभूषण, मनोहर, गंध वस्त्र और पुष्पादि द्वारा मुझको भूषित करके ॥ ४४ ॥

सर्पगण पृथ्वीमें रख गये तब मैं पूर्वके समान कान्तिमती और रूपवती होगई ॥४५॥ मुझको इस प्रकार सब गहनोंसे विभूषित रूपवती देखकर दुर्मति दृढकेशने हरणकी इच्छासे मुझको पकडा था॥४६॥हे राजपुत्र!मैंने आपकेही बाहुबलसे इस समय छुटकारा पाया है अतएव हे महाबाहो ! अनुग्रह करके मुझको ग्रहण कीजिये । मैं सत्यही कहती हूं कि,पृथ्वीतलमें आपके समान गुणशाली अन्य--राजपुत्र नहीं है॥४७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽवीक्षितचरितेभाषाटीकायां त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--राजकुमार अवीक्षितने कुमारीके इस प्रकार वचन सुनकर किमिच्छक व्रतके समय पिताके निकट प्रतिज्ञा करनेपर महाराज करन्धमने जो कहा था वह पिताका वचन स्मरण किया ॥

समानीतातथालोकमिमन्तेनानिलाशिना ॥ पुरायथाकान्तिमतीपूर्ववद्रूपशालिनी ॥ ४५ ॥ इतिरूपवतींदृष्ट्वासर्वालङ्कारभूपिताम् ॥ जग्राहदृढकेशोऽयंहर्तुकामःसुदुर्मतिः ॥ ४६ ॥ युष्मद्बाहुबलेनाहंराजपुत्रविमोक्षिता ॥ तत्प्रसीदमहाबाहोमाप्रतीच्छत्वयासमः ॥ भूलोकेराजपुत्रोऽन्योनास्तिसत्यंब्रवीम्यहम् ॥ ४७ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षिच्चरितंनामत्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२३ ॥ मार्कंडेयउवाच ॥ इतितस्यावचः श्रुत्वास्मृत्वापितृवचःशुभम् ॥ किमिच्छकेप्रतिज्ञातेयदुक्तंतेनभूभृता ॥ १ ॥ प्रत्युवाच सतांकन्यामविक्षिन्नृपतेःसुतः ॥ सानुरागमनाःकन्यात्यक्तभोगाश्चतत्कृते ॥ २ ॥ यदाहंत्यक्तवांस्तन्वीत्वामरातिपराजितः ॥ विजित्य शत्रून्संप्राप्तात्वंमयात्रकरोमिकिम् ॥ ३ ॥ ॥ कन्योवाच ॥ ॥ ममपाणिंगृहाणत्वंरमणीयेऽत्रकानने ॥ सकामायाःसकामेनसङ्गमोगुणवान्भवेत् ॥ ४ ॥ ॥ राजपुत्र उवाच ॥ ॥ एवंभवतुभद्रन्तेविधिरेवात्रकारणम् ॥ अन्यथाकथमन्यत्रत्वामहञ्चसमागतः ॥ ५ ॥

॥ १ ॥ अपनेही लिये कन्याको भोगकी इच्छा त्याग किये देखकर तब सानुराग चित्तसे नृपनन्दन अवीक्षितने उसको उत्तर दिया ॥ २ ॥ हे कृशाङ्गी ! मैंने शत्रुओंसे हारकरही तुम्हें त्याग दिया था, और अब शत्रुको जीत करही फिर तुमको प्राप्त हुआ हूं इस समय मुझको क्या करना चाहिये ? ॥ ३ ॥ कन्या बोली--इस रमणीय वनमेंही आप मेरा पाणिग्रहण कीजिये तो सकामा कामिनीका सकाम पुरुषके सहित संगम गुणवान् होगा अर्थात् सुखशान्ति विधान करेगा ॥ ४ ॥ राजपुत्रने कहा--यही हो तुम्हारा मंगल हो । दैव ही इस विषयमें कारण है, नहीं तो तुम और मैं पृथक् २ स्थानमें रहकर भी आज किस प्रकार एकत्रित हुए ॥ ५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले हे मुने ! उसी समयमें तनय नामक गंधर्व अनेक गंधर्व और अप्सराओंके सहित वहां उपस्थित हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्वने कहा--हे राजपुत्र ! यह मानिनी मेरी ही कन्या है । भामिनी इसका नाम है । अगस्त्यजीके शापसे ही यह कन्या राजा विशालकी पुत्री हुई ॥ ७ ॥ एक समय भामिनीने क्रीडा करते करते बाल्य स्वभावसे महर्षि अगस्त्यजीको कोप उत्पन्न कराया था इस कारण अगस्त्यजीने उस समय "तू मानुषी होगी" यह कहकर शाप दिया ॥ ८ ॥ हे विप्रर्षे ! यह कन्या अबोध बालिका अपराध किया है अतएव इसका अपराध ग्रहण न करके अनुग्रह प्रकाश कीजिये ॥ ९ ॥ मैंने उस समय इस प्रकार कह उनको प्रसन्न किया । तब महामुनि अगस्त्यजीने मेरी प्रार्थनासे प्रसन्न

॥ मार्कंडेय उवाच ॥ ॥ एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोगन्धर्वतनयोमुने ॥ वराप्सरोभिःसहितोगन्धर्वैरपरैर्वृतः ॥ ६ ॥ ॥ गन्धर्व उवाच ॥ ॥ राजपुत्रसुतेयम्मेभामिनीनाममानिनी ॥ अभिशापादगस्त्यस्यविशालतनयाऽभवत् ॥ ७ ॥ बालभावनयोऽगस्त्यःकोपितःक्रीडमानया ॥ ततस्तेनतदाशप्तामानुषीत्वंभविष्यसि ॥ ८ ॥ प्रसादितःसचास्माभिर्बालेयमविवेकिनी ॥ नवापगद्धाविप्रर्षेप्रमादःक्रियतामिति ॥ ९ ॥ प्रसाद्यमानःसोऽस्माभिरिदमाहमहामुनिः ॥ बालेतिमत्वाशापोऽल्पोदत्तोऽस्यानान्यथैवतत् ॥ १० ॥ इतिशापादगस्त्यस्यविशालभवनेशुभा ॥ जातेयंमत्सुतासुभ्रूर्भामिनीनामनामतः ॥११॥ तदस्याहंकृतेप्राप्तोगृहाणमांनृपात्मजाम ॥ ममात्मजांसुतस्तेऽत्रचक्रवर्तीभविष्यति ॥ १२ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तथेत्युक्तेतितस्याश्चसपाणिंपार्थिवात्मजः ॥ जग्राहविधिवद्धोमंचक्रेतत्रचतुम्बुरुः ॥१३॥ प्रजगुर्देवगधर्वाननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥ पुष्पाणिससृजुर्मेघादेववाद्यानिसस्वनुः ॥ १४ ॥

होकर कहा-- बालिका जानकरही इसको सामान्य शाप दिया है किंतु यह अन्यथा होनेवाला नहीं है' ॥ १० ॥ मेरी कन्या कल्याणी सुभ्रू भामिनीने अगस्त्यजीके इस शापसे ही विशालके घर जन्मग्रहण किया है ॥ ११ ॥ मैं इसीके लिये यहां आया हूं, अब राजकन्या इस मेरी कन्याको ग्रहण करो । इसके गर्भसे तुम्हारे चक्रवर्त्ती पुत्र उत्पन्न होगा ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--गन्धर्वका वचन राजपुत्रने 'तथास्तु' कहकर स्वीकारपूर्वक उस कन्याका पाणिग्रहण किया और गन्धर्वोंके पुरोहित तुम्बुरुने यथाविधि होमकार्य संपादन किया ॥ १३ ॥ उसकाल देवता गंधर्वोंने संगीत और अप्सराओंने नाचना आरंभ किया । मेघोंने पुष्पोंकी वर्षा करी और देवताओंके बाजे बजने लगे ॥१४॥

हे मुने ! अनंतर संपूर्ण पृथ्वीमंडलके पालनकर्त्ताओंकी कारण स्वरूप (जननी) इस कुमारीके संग राजपुत्रके विवाहकालमें ॥ १५ ॥ आये हुए सब गंधर्व उस महात्मा तुनयके सहित गंधर्व लोकमें चले गये और वह राजकन्या तथा राजपुत्र भी उन्हींके संग गये ॥ १६ ॥ वहां नृपनंदन अवीक्षित भामिनीके सहवाससे जिस प्रकार आनंदित हुए, भोग सम्पत्शालिनी भामिनी भी अवीक्षितके सहवाससे उसी प्रकार संतोषको प्राप्त हुई ॥ १७ ॥ वह वहां उस कृशाङ्गीके सहित कभी अत्यन्त मनोहर नगरके उपवनमें और कभी उपपर्वतोंमें क्रीडा करने लगे ॥ १८ ॥ कभी हंस सारस शोभित नदीके पुलिनमें, कभी मंदिरोंमें मनोहर ऊंचे महलोंपर ॥ १९ ॥ और कभी अन्यान्य रमणीय

विवाहेराजपुत्रस्यतयातत्रसमेयुषः ॥ समस्तवसुधात्राणकर्तृकारणभूतया ॥ १५ ॥ ततोगन्धर्वलोकन्तेसहतेनमहात्मना ॥ निःशेषेण ययुःसाचसचराजसुतोमुने ॥ १६ ॥ भामिन्यामुमुदेसार्द्धमविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ साचतेनसमंतत्रभोगसम्पत्समन्विता ॥ १७ ॥ कदाचिदतिरम्येऽसौगगनोपवनेतया ॥ विक्रीडतिसमंतन्व्याकदाचिदुपपर्वते ॥ १८ ॥ कदाचित्पुलिनेनद्याहंससारसशोभिते ॥ कदाचिद्भवनस्यान्तेप्रासादेचातिशोभने ॥ १९ ॥ विहारदेशेष्वन्येषुरमणीयेष्वहर्निशम् ॥ सरेमेसहितस्तन्व्यासाचतेनमहात्मना ॥ ॥ २० ॥ भक्ष्यानुलेपनंवस्त्रंस्रक्पानादिकमुत्तमम् ॥ उपाजह्रुस्तयोस्तत्रमुनिगन्धर्वकिन्नराः ॥ २१ ॥ तयाचरमतस्तस्यभामिन्या सहदुर्लभे ॥ गन्धर्वलोकेवीरस्यपुत्रंसासुषुवेशुभा ॥ २२ ॥ तस्मिञ्जातेमहावीर्येगन्धर्वाणांमहोत्सवः ॥ बभूवमनुजव्याघ्रेतेनकार्य्यमवेक्षताम् ॥ २३ ॥

विहार प्रदेशमें तन्वीके संग राजपुत्र और महानुभव राजपुत्रके संग भामिनी, इस प्रकार वह परस्पर दिनरात रमण करने लगे ॥ २० ॥ मुनि, गंधर्व और किन्नरगण उनको उत्तम उत्तम भक्ष्य पानीय, वस्त्र, माल्य और अनुलेपन इत्यादि उपहार प्रदान करने लगे ॥ २१ ॥ उस दुर्लभ गंधर्वलोकमें भामिनीके संग महावीर राजकुमारके इस प्रकार विहार करनेपर कालक्रमसे कल्याणीने एक पुत्र प्रसव किया ॥ २२ ॥ हे मनुजव्याघ्र ! महावीर्यशाली इस पुत्रके उत्पन्न होनेपर उसके द्वारा भविष्यत् प्रयोजन सिद्ध होनेकी आशासे गंधर्वोंमें महा उत्सव उपस्थित हुआ था ॥ २३ ॥

उनमें कोई गान करने लगा तथा कोई मृदंग पटह (बाजे) आनकर डोलादि और कोई वेणु वीणादि बजाने लगा ॥ २४ ॥ उस काल अप्सरायें नाचने लगीं और संपूर्ण मेघ फूलोंकी वर्षा करते करते मृदु मन्द शब्दसे गर्जने लगे ॥ २५ ॥ हे मुने ! इस प्रकार पूर्ण कोलाहलकी अवस्थामें तुनयके स्मरण करतेही तुम्बुरुने वहां आकर जातकर्म संपादन किया ॥ २६ ॥ हे द्विजोत्तम ! क्रमानुसार संपूर्ण देवता निष्पाप देवर्षिगण, पातालसे शेष, वासुकि, तक्षक इत्यादि पन्नग ॥ २७ ॥ राजगण, देव, असुर, यक्ष और गुह्यकोंमें प्रधान प्रधान व्यक्तिगण और समस्त वायुकुल आकर उपस्थित हुआ ॥ २८ ॥ उसकाल आयेहुए संपूर्ण ऋषि, देव, दानव, पन्नग और मुनियोंसे गंधर्वोंका महानगर व्याप्त

जगुःकेचित्तथैवान्येमृदङ्गपटहानकान् ॥ अवादयन्तचैवान्येवेणुवीणादिकांस्तथा ॥ २४ ॥ ननृतुश्चतथातत्रबहवोऽप्सरसांगणाः ॥ पुष्पवृष्टिमुचोमेघाजगर्जुर्मृदुनिस्वनाः ॥ २५ ॥ तथाकोलाहलेतस्मिन्वर्तमानेऽथतुम्बुरुः ॥ प्रणयेनस्मृतोभ्येत्यजातकर्माकरोन्मुनिः॥ ॥ २६ ॥ देवाःसमाययुःसर्वेतथादेवर्षयोऽमलाः ॥ पातालात्पन्नगेन्द्राश्चशेषवासुकितक्षकाः ॥ २७ ॥ तथादेवासुराणांचयेप्रधानाद्विजोत्तम ॥ यक्षाणांगुह्यकानांचवायवश्चतथाऽखिलाः ॥ २८ ॥ तदाऽऽगतैरशेषर्षिदेवदानवपन्नगैः ॥ मुनिभिश्चाकुलमभूद्गन्धर्वाणांमहत्पुरम् ॥ २९ ॥ ततःसतुम्बुरुःकृत्वाजातकर्मादिकाःक्रियाः ॥ चक्रेस्वस्त्ययनंतस्यबालस्यस्तुतिपूर्वकम ॥ ३० ॥ चक्रवर्तीमहावीर्योमहाबाहुर्महाबलः ॥ महान्तंकालमीशित्वमशेषायाःक्षितेःकुरु ॥ ३१ ॥ इमेशक्रादयःसर्वेलोकपालास्तथर्षयः ॥ स्वस्तिकुर्वन्तुतेवीरवीर्यंचारिविनाशनम् ॥ ३२ ॥ मरुत्तवशिवायास्तुवातिपूर्वेणयोऽरजाः ॥ मरुत्तविमलोऽक्षीणोऽपस्यात्वास्तुदक्षिणः ॥ ३३ ॥ पश्चिमस्तेमरुद्वीर्य्यमुत्तमंतेप्रयच्छतु ॥ बलंयच्छतुचोत्कृष्टंमरुत्तेचतथोत्तरः ॥ ३४ ॥

होगया॥२९॥तदनंतर जातकर्मादि कार्यसंपादनके पीछे उन तुम्बुरुने स्तुतिपूर्वक इस प्रकार बालकका स्वस्त्ययन किया॥३०॥हे वीर!तुम महाबल, महावीर्य और महाबाहु सार्वभौम होकर बहुत कालतक संपूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य करो॥३१॥यह समस्त इंद्रादि लोकपाल और ऋषिगण तुम्हारा मंगलसाधक और शत्रुविनाशक वीर्य विधान करे ॥३२॥पूर्वदिशासे बहती हुई धूलि रहित मरुत(वायु)तुम्हारा मंगल विधान करे । अक्षीण विमल दक्षिणका पवन तुम्हारे ऊपर अनुकूलतामें स्थितहो॥३३॥और पश्चिमका मरुत् तुमको महावीर्य और उत्तरका पवन तुमको उत्कृष्ट बल प्रदान करे॥३४॥

इस प्रकार स्वस्त्ययन कार्यके समाप्त होनेपर आकाशवाणी हुई कि "गुरुने वारंवार 'मरुत्' इस प्रकार उच्चारण किया है ॥ ३५ ॥ इस कारण यह बालक 'मरुत्त' नामसे भूमण्डलमें विख्यात होगा और संपूर्ण महीपाल इसके आज्ञावर्त्ती होंगे ! ॥ ३६ ॥ अतएव यह बालक सब राजाओंका शीर्षस्थानीय होगा और महावीर्य चक्रवर्त्ती होकर सदा पृथ्वीपालगणों पर आक्रमण करके इस सप्तद्वीपवती पृथ्वीको भोग करेगा यह बालक पृथ्वीश्वरोंमें और यज्ञ करनेवालोंमें श्रेष्ठ होगा और सब राजाओंकी अपेक्षा शौर्य वीर्यमें अधिकता लाभ करेगा" ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ श्रीमार्कण्डेयजी बोले--किसी देवताके उच्चारित यह वचन (देववाणी) सुनकर संपूर्ण विप्र, गंधर्व और बालकके माता पिता परमसंतोषको प्राप्त

इतिस्वस्त्ययनस्यान्तेवागुवाचाशरीरिणी ॥ मरुत्तवेतिबहुशोयदिदंगुरुरब्रवीत् ॥ ३५ ॥ मरुत्तइतितेनायंभुविख्यातोभविष्यति ॥ भुविचास्यमहीपालायास्यन्त्याज्ञावशायतः ॥ ३६ ॥ एषसर्वक्षितीशानांवीरःस्थास्यतिमूर्द्धनि ॥ चक्रवर्त्तीमहावीर्य्यःसप्तद्वीपवतीं महीम् ॥ ३७ ॥ आक्रम्यपृथिवीपालानयंभोक्ष्यत्यवारितः ॥ प्रधानःपृथिवीशानांभविष्यत्यपयाज्वनाम् ॥ आधिक्यंशौर्य्यवीर्य्ये णभविष्यत्यस्यराजसु ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ इत्याकर्ण्यवचःसर्वैकेनाप्युक्तंदिवौकसाम् ॥ तुतुषुर्विप्रगन्धर्वाश्चास्यमा तातथापिता ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेय पुराणेऽविक्षिच्चरितेऽविक्षितो मरुत्तपुत्रोत्पत्तिवर्णननामचतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ततःसराजपुत्रस्तमादायदयितंसुतम् ॥ पत्नीश्चानुगतोविप्रगन्धर्वैर्गययोपुरम् ॥ १ ॥ सपितुर्भवनंप्राप्यववन्देपितुरादरात् ॥ चरणौसाचतन्वङ्गीह्रीमतीनृपतेःसुता ॥ २ ॥ तथाहराजपुत्रोऽसौगृहीत्वाबालकंसुतम् ॥ धर्मासनगतंभूपंराज्ञांमध्येकरन्धमम् ॥ ३ ॥ मुखंपौत्रस्यपश्यैतद्तुसङ्गस्थस्ययन्मया ॥ किमिच्छकेप्रतिज्ञातंतुभ्यंमातुःकृतेपुरा॥४॥

हुए ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेऽविक्षितचरिते भाषाटीकायां चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—हे विप्र! इसके उपरान्त राजपुत्र प्रिय पुत्रको लेकर स्त्रीसहित अपने नगरमें आये ! आनेके समय गन्धर्वोंने पैदलही उनका अनुगमन कियाथा ॥ १ ॥ उन्होंने पिताके भवनमें पहुँचकर भक्तिसहित पिताके चरणोंकी वंदना करी और फिर कृशाङ्गी राजकन्याने भी लज्जितभावसे मस्तक झुकाकर प्रणाम किया ॥ २ ॥ तदनन्तर राजपुत्रने बालक पुत्रको ग्रहण करके राजाओंके मध्य धर्मासनमें बैठेहुए पिता करन्धमसे कहा ॥ ३ ॥ "मैंने पूर्वमें जन

नीके कारण कमिच्छकव्रतके समय आपसे जो प्रतिज्ञा करी थी, यह उसी पौत्रको गोदीमें लेकर पौत्रमुख देखिये" ॥४॥ यह कहकर पिताकी गोदीमें पुत्रको दे उनसे यथावत् सब वृत्तान्त वर्णन किया ॥५॥ राजा आनन्दाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे पौत्रको आलिंगन करके "मैं भाग्यवान् हुआहूं" इस प्रकार कहते हुए वारंवार अपनी प्रशंसा करने लगे॥६॥इसके पीछे हर्षके कारण अन्यान्य कार्य भूलकर आये हुए गंधर्वोंका अर्घ्यादिके द्वारा सन्मान किया॥७॥हे महामुने!उस समय नगरमें समस्त पौर जनोंके घर "हमारे रक्षा–कर्त्ता राजाके सन्तान हुई है" यह कहकर महान् आनन्द उत्सव होने लगा ॥ ८ ॥ उस आनंदपूर्ण पुरके विशाल आंगनोंमें सुन्दरी विलासिनीगण गीत वाद्य सहित उत्तम नृत्य करने लगीं

इत्युक्त्वापितुरुत्सङ्गेतंकृत्वातनयंततः ॥ यथावृत्तमशेषंसकथयामासतस्यतत् ॥५॥ सपरिष्वज्यतंपौत्रमानन्दाम्राविलेक्षणः ॥ सभाग्योऽस्मीत्यथात्मानंप्रशशंसपुनःपुनः ॥ ६ ॥ ततःसोर्घ्यादिनासम्यग्गन्धर्वान्समुपागतान् ॥ संमानयामाससुदाविस्मृतान्यप्रयोजनः ॥ ७ ॥ ततःपुरेमहानासीदानन्दःपौरवेश्मसु ॥ अस्माकंसन्ततिर्जातानाथस्येतिमहामुने ॥ ८ ॥ हृष्टपुष्टपुरेतस्मिन्नगीनवाद्यैर्वराङ्गनाः ॥ विलासिन्योऽतिचार्वङ्ग्योननृतुर्लास्यमुत्तमम् ॥ ९ ॥ राजाचद्विजमुख्येभ्योरत्नानिचवसूनिच ॥ गावोवस्त्राण्यलङ्कारानददाद्धृष्टमानसः ॥ १० ॥ ततःसबालोववृधेशुक्लपक्षेयथाशशी ॥ पितॄणांप्रीतिजनकोजनस्येष्टश्चसोऽभवत ॥ ११ ॥ आचार्याणांसकाशात्सप्राग्वेदाञ्जगृहेमुने ॥ ततःशास्त्राण्यशेषाणिधनुर्वेदंततःपरम् ॥ १२ ॥ कृतोद्योगोयदासोऽभूत्खड्गकार्मुककर्मणि ॥ अन्येषुचतथावीरःशस्त्रेषुविजितश्रमः ॥ १३ ॥ ततोऽस्त्राणिसजग्राहभार्गवाद्भृगुसंभवात ॥ विनयावनतोविप्रगुरोःप्रीतिपरायणः ॥ १४ ॥

॥ ९ ॥ राजा हर्षित चित्तसे गुणशाली ब्राह्मणोंको धन, रत्न, वस्त्र, गहने और गायें दान करने लगे ॥ १० ॥ तदनन्तर वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान बढकर पिताको प्रीतिप्रद और साधारण मनुष्योंका प्रियतम होगया ॥ ११ ॥ हे मुने ! उस बालकने यथाकालमें आचार्यके निकटसे प्रथम वेद फिर अन्यान्य सब शास्त्र और इसके पीछे धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करी ॥ १२ ॥ अन्तमें वह वीरबालक जब शास्त्रोंमें श्रम करचुका तब खड्ग, धनुष और अन्यान्यशस्त्रकी प्रयोगशिक्षामें उद्योगी हुआ ॥ १३ ॥ हे विप्र ! तब उसने विनयसे नम्र और गुरुको प्रीतिपरायण होकर भृगुवंशीय भार्गवके निकटसे संपूर्ण अस्त्रग्रहण किये ॥ १४ ॥

इसी प्रकार वह अस्त्रग्रहण कर धनुर्वेदका पारगामी हो कृतकार्य हुआ धनुर्विद्यामें पारग तथा और भी सब विद्यामें पारदर्शी होगया । उस काल इसकी अपेक्षा इन सब विषयोंमें और कोई श्रेष्ठ नहीं था ॥१५॥ अपनी कन्याकी समस्त वार्त्ता जानकर और दौहित्रकी योग्यता उपलब्धकरके विशालराजाका भी चित्त हर्षसे परिपूर्ण होगया ॥ १६ ॥ पौत्रमुख देखनेसे प्राप्त मनोरथ, शत्रुविजयी और बलबुद्धिमान् राजा करन्धमने अनेकानेक यज्ञ संपादान कर अर्थियोंको बहुतसे दान ॥ १७ ॥ और सब भाँति सत्कार्य हो बलबुद्धिपूर्वक यथाधर्म पृथ्वीपालन करते हुए ॥ १८ ॥ कुछ काल पीछे वन जानेकी इच्छा करके पुत्र अवीक्षितसे कहा " हे पुत्र ! मैं बूढा होगया हूं अब वनमें जानेकी अभिलाषा करताहूं तुम मुझसे

गृहीतास्त्रःकृतीवेदेधनुर्वेदस्यपारगः ॥ निष्णातःसर्वविद्यासुनबभूवततःपरः ॥ १५ ॥ विशालोऽपिसुतावार्त्तामुपलभ्याखिलामिमाम् ॥ हर्षनिर्भरचित्तोऽभूद्दौहित्रस्यचयोग्यताम् ॥१६॥ अथराजासुतसुतंदृष्ट्वाप्राप्तमनोरथः ॥ यज्ञाननेकान्निष्पाद्यदत्त्वादानानिचार्थिनाम् ॥ ॥१७॥ कृतशेषक्रियोयुक्तःसवर्णैर्धर्मतोमहीम् ॥ परिपाल्यारिविजयीबलबुद्धिसमन्वितः ॥१८॥ सयियासुर्वनंपुत्रमविक्षितमभाषत ॥ पुत्रवृद्धोऽस्मिगच्छामिवनंराज्यंगृहाणमे ॥ १९ ॥ कृतकृत्योऽस्मिनास्त्यन्यत्किञ्चित्त्वदभिषेचनात् ॥ सुनिष्पन्नमतोराज्यंत्वंगृहाण मयार्पितम् ॥ २० ॥ इत्युक्तःपितरंप्राहसोऽविक्षिन्नृपनन्दनः ॥ प्रश्रयावनतोभूत्वावियियासुस्तपसेवनम् ॥ २१ ॥ नाहंतातकरिष्यामि पृथिव्याःपरिपालनम् ॥ नापैतिह्रीर्मेमनसिराज्येऽन्यंत्वंनियोजय ॥२२॥ तातेनमोक्षितोबद्धोनस्ववीर्य्याद्दहंयतः ॥ ततःकियत्पौरुषं मेपुरुषैःपाल्यतेमहीम् ॥ २३ ॥ योऽहंनपालनायालमात्मनोऽपिवसुन्धराम् ॥ सकथंपालयिष्यामिराज्यमन्यत्रविक्षिप ॥ २४ ॥

यह राज्य ग्रहण करो ॥ १९ ॥ मैं समस्त विषयोंमेंही कृतार्थ होगयाहूं, अब तुम्हारे अभिषेकके अतिरिक्त और कुछ शेष नहीं है, अतएव तुम यह मेरा दिया सब भाँति सम्पन्न राज्य ग्रहण करो"॥२०॥नृपनन्दन अवीक्षितने पिताका वचन सुन;उन्होंनेभी वन जानेकी इच्छाकर विनयसहित पितासे कहा ॥२१॥ हेपिता ! मैं पृथ्वीपालन नहीं करूंगा,अबतक मेरी यह लज्जा दूर नहीं हुई है, अतएव आप अन्य किसीको राज्यमें नियोजित कीजिये ॥२२॥ मैं बद्ध होकर पिताके द्वारा छुड़ाया गयाथा; अपने वीर्यसे नहीं छूटसका; सुतरां मेरा पौरुष कितनाहै ? पुरुषही पृथ्वी पालन करते हैं ॥ २३ ॥ मैं जब आत्मा अर्थात् अपनी ही रक्षा करनेमें असमर्थ हूं ! तो किस प्रकार पृथ्वी पालन करूंगा ? इस

कारण किसी दूसरेके हाथमें राज्यभार सौंपिये ॥ २४ ॥ मंत्रणाशील और धर्मशील होकर भी जो पुरुष शत्रुओंसे पराजित होगया है और जो कभी मोहके वशीभूत होने योग्य नहीं है; उस आत्माको जिस पुरुषने आपके (पिताके) यत्नसे बंधनमुक्त किया है वह स्त्रीजातिके समान धर्म वाला मैं किस प्रकार महीपति हूंगा ? ॥ २५ ॥ २६ ॥ पिताने कहा—हे वीर ! पिता पुत्रसे और पुत्र पितासे पृथक् नहीं है, अतएव मेरे द्वारा छूटना परायेद्वारा छूटनेमें नहीं है ॥ २७ ॥ पुत्रने कहा हे नरेश्वर ! मैं अब हृदयके वेगको नहीं फिरा सकता आपके द्वारा छूटनेसे मेरे हृदयमें अत्यन्त लज्जा जागरित रहती है ॥ २८ ॥ जो पुरुष पिताकी उपार्जन की हुई सम्पति भोगता है, विपदमें पिताके द्वारा छुटकारा पाता है

सस्त्रीसधर्मापुरुषोयश्चान्येनावद्भुह्यते ॥ आत्माऽमोहायभवताबन्धनाद्येनमोक्षितः ॥ २५ ॥ सोऽहंकथंभविष्यामिस्त्रीसधर्मामहीपतिः॥ स्त्रियःपुमान्भवेद्भर्तायःशूरःसमहीपतिः ॥ २६ ॥ ॥ पितोवाच ॥ ॥ नभिन्नएवपुत्रस्यपितापुत्रस्तथापितुः ॥ नान्येनमोक्षितोवीरय स्त्वंपित्राविमोक्षितः ॥ पुत्र उवाच ॥ हृदयंनान्यथानेतुंमयाशक्यंनरेश्वर ॥ २७ ॥ हृदयेह्रीममातीवयस्त्वहंमोक्षितस्त्वया ॥२८॥ पित्रोपात्तांश्रियंभुङ्क्तेपित्राकृच्छ्रात्समुद्धृतः ॥ विज्ञायतेचयःपित्रामानवःमोस्तुनोकुले ॥२९॥ स्वयमर्जितवित्तानांख्यातिंस्वयमुपेयु षाम् ॥ स्वयंनिस्तीर्णकृच्छ्राणांयागतिःसाऽस्तुमेगतिः ॥ ३० ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्याहबहुशःपित्रायदाप्युक्तोऽप्ययंमुने॥ तदातस्यसुतंराज्येमरुत्तमकरोन्नृपः ॥ ३१ ॥ सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यपितामहात् ॥ चकारसम्यक्सुहृदामानन्दमुपपादयन् ॥ ३२ ॥ राजाकरन्धमश्चापिवीरामादायतान्तथा ॥ वनंजगामतपसेयतवाक्कायमानसः ॥ ३३ ॥

और पिताकेही नामसे परिचित होता है, वंशमें ऐसे पुत्रका जन्म न होना ही उत्तम है ॥ २९ ॥ जो स्वयं धन उपार्जित करता है, स्वयं ख्याति लाभ करता है और स्वयं ही दुःखसे छूट सकता है, उसकी जो गति होती है मेरी भी वही गति हो ॥ ३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले । हे मुने ! पिताके वारंवार अनुरोध करनेपर भी जब राजपुत्रने यही उत्तर दिया, तब राजा करन्धमने उनके पुत्र मरुत्तको राज्यमें राजा किया ॥ ३१ ॥ मरुत्त पिताका अनुमोदित राज्य पितामहसे प्राप्तकर सुहृद्गणोंका आनन्द सम्पादन पूर्वक सम्यक् प्रकार उसको शासन करने लगे ॥ ३२ ॥ काय, मन, वचनसे संयत होकर तपस्या करनेके लिये राजा करन्धम अपनी पत्नी वीराको संग लेकर वनमें चले गये ॥ ३३ ॥

वहां राजा करन्धम हजार वर्ष पर्यन्त कठिन तपस्याकरके देहपरित्यापूर्वक इन्द्रलोकको प्राप्त हुए ॥ ३४ ॥ और वह इनकी पत्नी वीरा और भी सौ वर्ष पर्यन्त जटा बढाये हुए तप करती रही ॥ ३५ ॥ और स्वर्गमें प्राप्त हुए महात्मा भर्त्ताके सालोक्यकी इच्छा करने लगी और फल मूल आहार करके भार्गवके आश्रममें रहने लगी द्विजाति पत्नियोंके मध्यमें स्थित हुई उनकी शुश्रूषा और आदरको प्राप्त हुई ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेभाषाटीकायां पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने करंधम और अवीक्षितका संपूर्ण चरित विस्तार सहित वर्णन किया ॥ १ ॥ अब अवीक्षितके पुत्र महात्मा मरुत्तराजाका चरित्र सुननेकी इच्छा करता हूं ।

तत्रवर्षसहस्रंसतपस्तप्त्वासुदुश्चरम् ॥ विहायदेहंनृपतिःशक्रस्यापसलोकताम् ॥ ३४ ॥ सास्यपत्नीतदावीरावर्षाणामपरंशतम् ॥ तपश्चचारविप्रर्षेजटिलामलपंकिनी ॥ ३५ ॥ सालोक्यमिच्छतीभर्त्तुःस्वर्गतस्यमहात्मनः ॥ फलमूलकृताहाराभार्गवाश्रमसंश्रया ॥ द्विजातिपत्नीमध्यस्थाद्विजशुश्रूषणादृता ॥ ३६ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेपञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२५ ॥
॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ भगवन्विस्तरात्सर्वममैतत्कथितंत्वया ॥ करन्धमस्यचरितमविक्षिच्चरितंचयत् ॥ १ ॥ आविक्षितस्यनृपतेर्मरुत्तस्यमहात्मनः ॥ श्रोतुमिच्छामिचरितंश्रूयतेसोऽतेचेष्टितः ॥ २ ॥ चक्रवर्त्तीमहाभागःशूरकान्तोमहामतिः॥ धर्मविद्धर्मकृच्चैवसम्यक्पालयिताभुवः ॥ ३ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सपित्रासमनुज्ञातंराज्यंप्राप्यपितामहात् ॥ धर्मतःपालयामासपितापुत्रानिवौरसान् ॥ ४ ॥ इयाजसुबहून्यज्ञान्यथावत्स्वाप्तदक्षिणान् ॥ ऋत्विक्पुरोहितादेशादनिर्विण्णोमहीपतिः ॥ ५ ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥ गतिश्चाप्यनवच्छिन्नास्वःपातालजलादिषु ॥ ६ ॥

सुना है कि, वह अत्यन्त उद्यमशील, प्रतिष्ठित ॥ २ ॥ चक्रवर्ती, महाभाग, शूर, कमनीय, महामति, धर्मवित्, धर्मचारी और सम्यक् पृथ्वीपालक थे ॥ ३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—मरुत्त पिताकी अनुज्ञासे पितामहसे राज्यको प्राप्त हो पिता जिसप्रकार औरस पुत्रका प्रतिपालन करता है यावतीय प्रजाको वैसे ही धर्मानुसार पालन करने लगे ॥ ४ ॥ याज्ञिक और पुरोहितोंकी आज्ञा पालनमें मन लगाकर उन महीपतिने महादक्षिणायुक्त यथाविधानसे अनेकानेक यज्ञ संपादन किये थे ॥ ५ ॥ सप्तद्वीपमें उनका रथचक्र अप्रतिहत था और आकाश,पाताल और जलादिके स्थानमें

भी उनकी गति नहीं रुकती थी ॥ ६ ॥ हे विप्र ! उन स्वकर्म परायण मरुत्तने धनको प्राप्त हो संपूर्ण महायज्ञोंके अनुष्ठान द्वारा इंद्र इत्यादि देवताओंका यजन किया था ॥ ७ ॥ अन्यान्य समस्त वर्ण भी अपने अपने कर्ममें तत्पर रहकर उनके ही निकटसे प्राप्त किये धन द्वारा इष्टापूर्त्तादि क्रिया संपादन करते थे ॥ ८ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! पृथ्वी महात्मा मरुत्तसे प्रतिपालित होकर देवताओंके सहित भी स्पर्द्धा करती थी ॥ ९ ॥ मरुत्त केवल महीपालोंमें ही प्रधानताको प्राप्त नहीं हुए थे, बरन् सैकड़ों यज्ञोंका अनुष्ठान करके वह देवराज इन्द्रकी अपेक्षा भी प्रधान हुए थे ॥ १० ॥ हे विप्र ! अंगिराके पुत्र, बृहस्पतिके भ्राता तपोनिधि महात्मा संवर्त्त उनके ऋत्विक थे ॥ ११ ॥

ततःप्राप्यधनंविप्रयथावत्स्वक्रियापरः ॥ अयजत्समहायज्ञैर्देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥ ७ ॥ इतरेचयथावर्णाःस्वेस्वेकर्मण्यनन्द्रिताः ॥ तदुपात्तधनाश्चक्रुरिष्टापूर्त्तादिकाःक्रियाः ॥ ८ ॥ पाल्यमानामहीतेनमरुत्तेनमहात्मना ॥ योस्पर्द्धत्रिदशावासवासिभिर्द्विजसत्तम ॥ ॥ ९ ॥ तेनातिशयिताःसर्वेकेवलंनमहीक्षितः ॥ यज्विनादेवराजोऽपिशतयज्ञाभिमन्थिना ॥ १० ॥ ऋत्विक्तस्यतुसंवर्त्तोविभ्र वाङ्गिरसःसुतः ॥ भ्राताबृहस्पतेर्विप्रमहात्मातपसांनिधिः ॥ ११ ॥ सौवर्णोमुञ्जवान्नामपर्वतःसुरसेवितः ॥ पातितंतेनतच्छृङ्गंकृते तस्यमहीपतेः ॥ १२ ॥ तेनयस्याखिलंयज्ञेभूमिभागादिकंद्विज ॥ प्रासादाश्चकृताःशुभ्रास्तपसासर्वकाञ्चनाः ॥ १३ ॥ गाथाश्चाप्य त्रगायन्तिमरुत्तचरिताश्रयाः ॥ सातत्येनर्षयःसर्वेकुर्वन्तोऽध्ययनंयथा ॥ १४ ॥ मरुत्तेनसमोनाभूद्यजमानोमहीतले ॥ सदःसमस्तं यद्यज्ञेप्रासादाश्चैवकांचनाः ॥१५॥ अमाद्यदिन्द्रःसोमेनदक्षिणाभिर्द्विजातयः ॥ वीप्राणांपरिवेष्टारःशक्राद्यास्त्रिदशोत्तमाः ॥ १६ ॥

हे द्विज ! देव-सेवित मुञ्जवान नामक सुवर्णमय एक पर्वत है, ऋत्विक् तपोबलसे उसका शृंग उखाड़कर राजाके लिये लाये थे ॥ १२ ॥ राजाका यज्ञीय समस्त भूभाग और भलीभांतिसे कांचनमय निर्मल महलोंसे युक्त इस शृंगके द्वारा तपोबलसे निर्मित हुई थी ॥ १३ ॥ ऋषि गण इन मरुत्तका चरित अवलम्बन करके सदा इस प्रकार गाथा गान और अध्ययन करते थे ॥ १४ ॥ कि "जिनके यज्ञमें समस्त सभा और प्रासाद कांचनमय किये गये थे । इंद्र सोमपीनेसे और ब्राह्मणगण दक्षिणा पानेसे मत्त हो उठे थे तथा इंद्रादिप्रधान प्रधान देवता ब्राह्मणोंको घेरे हुए थे, उन मरुत्तके समान यज्ञशील किसी मनुष्यने पृथ्वीमें जन्मग्रहण नहीं किया ॥ १५ ॥ १६ ॥

महीपति मरुत्तके समान और किसके यज्ञमें ब्राह्मणगण सब रत्नपूर्ण घरोंमें सुवर्ण राशिको त्याग सके थे ? ॥ १७ ॥ उनके यज्ञकालमें ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य तीनों वर्ण सुवर्णमय प्रासादादि समस्त वस्तुको प्राप्त हुए थे । उनके अतिरिक्त और किसने ऐसा दान किया था ? ॥१८॥ (उनका दिया हुआ धन पाकर जो शिष्टपुरुष उनके यज्ञमें पूर्णमनोरथ हुए थे, उन्होंने भी पृथक् पृथक् देशमें पृथक् पृथक् सब यज्ञ संपादन किये थे) हे मुनि सत्तम!इस प्रकार उनके सम्यक् राज्यशासन और प्रजापालन कालमें एक समय किसी तपस्वीने आकर उनसे कहा ।.१९ ॥ हे नरेश्वर ! तापसमण्डलीको मदोन्मत्त सर्पोंके विषद्वारा पीडित होता देखकर तुम्हारी पितामही दादीने यह बात कहलाभेजी है ॥ २० ॥ "कि,

यथायज्ञेमरुत्तस्यतृप्ताःसर्वेमहीपतेः ॥ सुवर्णमखिलंत्यक्तंरत्नपूर्णगृहेद्विजैः ॥ १७ ॥ प्रासादादिसमस्तंचसौवर्णतस्ययत्कतौ ॥ त्रयोवर्णाह्यलभ्यन्ततस्मात्केचित्तथाददुः ॥ १८ ॥ (तेनत्यक्तेनशिष्टायेजनाःपूर्णमनोरथाः ॥ तेपियज्ञान्यजंतेस्मदेशेदेशे पृथक्पृथक् ॥) तस्यैवंकुर्वतोराज्यंसम्यक्पालयतःप्रजाः ॥ तपस्वीकश्चिदभ्येत्यतमाहमुनिसत्तम ॥ १९ ॥ पितुर्मातातवाहेदंदृष्ट्वा तापसमण्डलम् ॥ विषाभिभूतमुरगैर्मदोन्मत्तैर्नरेश्वर ॥ २० ॥ पितामहस्तेस्वर्यातःसम्यक्संपाल्यमेदिनीम् ॥ पितातवतथाशक्तोहि त्वाग्रामंवनंगतः ॥ (तपश्चरणशक्ताऽहमिहचौर्वाश्रमेस्थिता) ॥ २१ ॥ साऽहंपश्यामिवैकल्यंतवराज्यंप्रशासतः ॥ पितामहस्यतेनाभूद्यत्पूर्वेषांचतेनृप ॥ २२ ॥ नूनंप्रमत्तोभोगेषुसक्तोवाऽतिजितेन्द्रियः ॥ चारान्धतायतोस्तीयंदुष्टादुष्टंनवेत्सियत् ॥ २३ ॥ पातालादभ्युपेतेस्तुभुजगैर्दंशशालिभिः ॥ दष्टामुनिसुताःसप्तदूषिताश्चजलाशयाः ॥ २४ ॥ स्वेदमूत्रपुरीषेणदूषितंसुशृतंहविः ॥ अपराधं समुद्दिश्यदत्तोनागबलिश्चिरात् ॥ २५ ॥

तुम्हारे पितामह सम्यक् प्रकार पृथ्वीका पालन करके स्वर्गमें गये हैं और तुम्हारे पिताभी ग्राम छोडकर वनको गये हैं (मैं भी इस समय तपस्यामें आसक्त होकर और्वाश्रममें वास करती हूं ॥ २१ ॥ हे नृप ! तुम्हारे अन्यान्य पूर्वपुरुषोंके राज्यसमयमें जो घटना कभी नहीं हुई, तुम्हारे शासनकालमें वही विकलता देखती हूं ॥ २२ ॥ तुम निस्सन्देह प्रमत्त अथवा अजितेन्द्रिय होकर भोगमें आसक्त हुए हो और तुमको दूतोंका नरखना उपस्थित हुआ है इसी कारण तुम दुष्टादुष्ट जाननेमें असमर्थ हो ॥ २३ ॥ दंशनशाली भुजङ्गगणोंने पातालसे आकर सात मुनि पुत्रोंको

डसा है और स्वेद, मूत्र तथा पुरीषद्वारा समस्त जलाशय और होमकी हविको दूषित कर डाला है। इस कारण मुनिगण अपराध हुआ समझ कर नागोंको बलि देते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ यह समस्त मुनि सर्पोंको भस्म करनेमें समर्थ हैं किन्तु इसमें (शासनविषयमें) उनका अधिकार नहीं है, तुम्हीं उस कार्यमें अधिकारी हो ॥ २६ ॥ हे भूप ! राजपुत्रगण तबतकही भोगजनित सुख भोग सकते हैं जबतक उनके मस्तकमें अभिषेकका जल नहीं गिरता ॥ २७ ॥ " कौन मित्र है ? कौन शत्रु है ? कितना शत्रुका बल है ? मैं कौन हूं ? कौन मंत्री है ? कौन कौन राजा अपने पक्षमे हैं ॥ २८ ॥ (मेरे पास कितना कोष और बल है ? मुझमें कौन जन अनुरक्त है ?) कौन शत्रुके द्वारा भेदको प्राप्त हुआ

एतेसमर्थामुनयोभस्मीकर्तुंभुजंगमान् ॥ किन्त्वेषांनाधिकारोऽत्रत्वमेवात्राधिकारवान् ॥ २६ ॥ तावत्सुखंभूपतिजैर्भोगजंप्राप्यतेनृप ॥ अभिषेकजलंयावन्नमूर्ध्निविनिपात्यते ॥ २७ ॥ कानिमित्राणिकःशत्रुर्ममशत्रोर्बलंकियत् ॥ कोऽहंकेमन्त्रिणःपक्षेकेवाभूपतयोमम ॥ ॥ २८ ॥ (कियान्कोशोवलंकिंवाकोनुरक्तोजनोमम) ॥ विरक्तोवापरैर्भिन्नःपरेषामपिकीदृशः ॥ कःसम्यगत्रनगरेविषयेवाजनो मम ॥ २९ ॥ धर्मकर्माश्रयोमूढःकःसम्यगपिवर्त्तते ॥ कोदण्ड्यःपरिपाल्यःकःकेचोपेक्ष्यानरामया ॥ ३० ॥ सामभेदतयादृग्यादे शकालमवेक्षता ॥ चारांश्चचारयेदन्यैरज्ञातान्भूपतिश्चरैः ॥ ३१ ॥ सचिवादिषुसर्वेषुचरान्दद्यान्महीपतिः ॥ इत्यादौभूपतिर्नित्यंकर्म ण्यासक्तमानसः ॥ ३२ ॥ नयेद्दिनंतथारात्रिंनतुभोगपरायणः ॥ राज्ञांशरीरग्रहणंनभोगायमहीपते ॥ ३३ ॥ क्लेशायमहतेपृथ्वीस्व धर्मपरिपालने ॥ सम्यक्पालयतःपृथ्वींस्वधर्मंचमहीपतेः ॥ ३४ ॥

है ? शत्रुओंमें कौन किस प्रकार है ? अपने नगर वा राज्यमें कौन भलीभाँति धर्मकर्माश्रयी है ! ॥ २९ ॥ और कौन मूर्खवास करता है ? कौन दण्डनीय अर्थात् दण्ड देने योग्य है ? कौन पालन करने योग्य है? कौन उपेक्षाके योग्य है ? ॥ ३० ॥ संधिभेदके भयसे देशकालका विचारकर किसके प्रति दृष्टि रखनी उचित है ?" यह सब वृत्तान्त जाननेके लिये राजा अन्यचर (दूत) के अपरिचित चरको नियुक्त करे ॥ ॥ ३१ ॥ महीपति समस्त सचिवादिके प्रतिभी दूतको नियुक्त करें । भूपति इस प्रकार कार्यमें सदा आसक्तचित्त हो ॥ ३२ ॥ दिन रात बितावें कभी भोगपरायण होगा राजाको उचित नहीं है । हे महीपते ! राजाओंका शरीर धारण करना भोगके निमित्त नहीं है ॥ ३३ ॥ पृथ्वी और

अपना धर्म पालनके कारण महाक्लेशही उनको भोगना होता है । राजाओंको स्वधर्म और पृथ्वीपालन करनेसे ॥ ३४ ॥ इस जन्ममें अत्यन्त क्लेश भोगनेपर भी परकालमें स्वर्ग जानेपर उनको अक्षय सुख प्राप्त होता है हे नरेश्वर ! यह सब विचारकर भोग परित्याग पूर्वक ॥ ३५ ॥ तुमको पृथ्वीपालनके कारण क्लेश अंगीकार करना उचित है । हे भूप ! तुम्हारे शासनकालमें यह जो ऋषियोंको सर्पोंसे दुःख उपस्थित हुआ है ॥ ३६ ॥ तुम दूतोंके न रखनेके कारण ही उसको नहीं जान सके, अधिक और क्या कहूं ? हे राजन् ! तुम दुष्टोंको दंड ॥ ३७ ॥ और शिष्ट पुरुषोंका प्रतिपालन करो । इससे धर्मफलका छठा भाग प्राप्त होगा । दुष्टगण उद्धतताके सहित जो करते हैं उससे रक्षा न करनेपर ॥ ३८ ॥

इहक्लेशोमहान्स्वर्गेपरमंसुखमक्षयम् ॥ तदेतदवबुध्यस्वहित्वाभोगान्नरेश्वर ॥ ३५ ॥ पालनायक्षितेःक्लेशमङ्गीकर्तुमिहार्हसि ॥ इतिवृत्तमृषीणांयद्व्यसनंत्वयिशासति ॥ ३६ ॥ भुजङ्गहेतुकंभूपचारान्धोनापिवेत्सितत् ॥ बहुनात्रकिमुक्तेनदुष्टेदण्डोनिपात्यताम् ॥ ३७ ॥ शिष्टान्पालयराजंस्त्वंधर्मषड्भागमाप्स्यसि ॥ अरक्षन्पापमखिलंदुष्टैरविनयात्कृतम् ॥ ३८ ॥ समवाप्स्यस्यसन्दिग्धंयदिच्छसिकुरुष्वतत् ॥ एतन्मयोक्तंसकलंयत्त्वाहंपितामहः ॥ कुरुष्वैवंस्थितेयत्तेरोचतेवसुधाधिप ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेषड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितापसवाक्यंसश्रुत्वालज्जापरोनृपः ॥ धिङ्मांचारान्धमित्युक्त्वानिःश्वस्यजगृहेधनुः ॥ १ ॥ ततःसत्वरितंगत्वातैर्मावस्याश्रमंप्रति ॥ ववन्देशिरसावीरांमातरंपितुरात्मनः ॥ २ ॥ तापसांश्चयथान्यायंतैश्चाशीर्भिरभिष्टुतः ॥ दृष्ट्वाचतापसान्सत्तनागैदष्टान्मृतान्भुवि ॥ ३ ॥

तुम निस्संन्देह पापके भागी होगे । अब जो कर्त्तव्य विचारो, वही करो। हे वसुधाधिप ! मैं ही तुम्हारी पितामही हूं इसी कारण मैंने यह सब कहा । इस स्थलमें जो तुम्हें अच्छा लगे उसीके अनुसार कार्य करो ॥ ३९ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरितेभाषाटीकायां षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२६ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--राजाने तापसके यह वचन सुननेसे लज्जित हो " मैं चारान्ध हूँ, मुझको धिक्कार है " यह कह, लम्बी श्वास छोड़, धनुषको ग्रहण किया ॥ १ ॥ और अत्यन्त शीघ्र और्वाश्रममें जाय मस्तक झुकाकर पितामही वीराको ॥ २ ॥ और तापसगणोंको यथाविहित प्रणाम किया। उन्होंने भी उनकी सम्यक् प्रकार आशीर्वाद वचनोंसे स्तुति करी । इसके उपरांत राजाने

सर्पदष्ट सात तापसोंको मृतक होकर भूमिमें पड़ा देखा ॥३॥ मुनियोंके सामने बारंबार अपनी निंदा करके कहा—यह दुष्ट भुजंग मेरे (बलका तिरस्कार) करके ॥४॥ ब्राह्मणोंसे द्वेष करतेहैं, मैं उनकी अब जो अवस्था करताहूँ, वह देव, दैत्य और नरलोकके सहित संपूर्ण जगत् देखे ॥ ५ ॥ मार्कण्डेयजी बोले- राजाने इसप्रकार कहकर पाताल और महीतलवासी संपूर्ण नागकुलके विनाशार्थ क्रोधपूर्वक संवर्त्तक अस्त्र ग्रहण किया ॥ ६ ॥ हे विप्र ! उस काल संपूर्ण नागलोक उस महाअस्त्रके तेजसे सहसा जाज्वल्यमान होगया और अनिवारित दग्ध होनेलगा ॥७॥ इस अस्त्रकाण्डमें भयसे उद्विग्न पन्नगगण "हा माता ! हा तात ! हा वत्स" कह कर आर्तनाद करने लगे ॥८॥ किसीकी पूंछ और किसीका फण जलने लगा ।

निनिन्दात्मानमसकृत्पुरस्तेषांमहीपतिः ॥ उवाचचैतदद्याहंमद्वीर्य्यमवमन्यताम् ॥ ४ ॥ यत्करोमिभुजङ्गानांदुष्टानांब्राह्मणद्विषाम् ॥ तत्पश्यतुजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ॥ ५ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वाजगृहेकोपादस्त्रंसंवर्तकंनृपः ॥ नाशायाशेषनागानांपातालोर्वीविचारिणाम् ॥ ६ ॥ ततोजज्वालसहसानागलोकःसमन्ततः ॥ महास्त्रतेजसाविप्रदह्यमानोनिवारितः ॥ ७ ॥ हाहातातेतिहामातर्हाहावत्सेतिसंभ्रमे ॥ तस्मिन्नस्त्रकृतेवाचःपन्नगानामथाभवन् ॥ ८ ॥ केचिज्ज्वलद्भिःपुच्छाग्रैःफणैरन्येभुजङ्गमाः ॥ गृहीतपुत्रदाराश्चत्यक्ताभरणवाससः ॥ ९ ॥ पातालमुत्सृज्यययुःशरणंभामिनींतदा ॥ मरुत्तमातरंपूर्वंययादत्तंतदाभयम् ॥ १० ॥ तामुपेत्योरगाःसर्वेसप्रमाणंभयातुराः ॥ सगद्गदमिदंप्रोचुःस्मर्यतांनःपुरोदितम् ॥ ११ ॥ प्रणम्याभ्यर्थितंपूर्वंयदस्माभीरसातले ॥ तस्य कालोऽयमायातस्त्राहिवीरप्रजायिनि ॥ १२ ॥ पुत्रोनिवार्य्यतांराज्ञिप्राणैःसंयोज्यमस्तुनः ॥ दह्यतेसकलोलोकोनागानांमस्त्रवह्निना ॥ १३ ॥

तथा किसी किसीने वस्त्र आभरणादि संपूर्ण परित्यागपूर्वक स्त्री पुत्र समेत ॥९॥ पाताल छोड़कर मरुत्तकी माता भामिनीका आश्रय ग्रहण किया । क्योंकि उसने पहिले अभयप्रदान किया था ॥१०॥ भयातुर समस्त उरगणोंने उसके निकट उपस्थित होकर प्रणामपूर्वक गद्गद वचनोंसे कहा । पहिले रसातलमें प्रणाम और अर्चनापूर्वक आपके निकट हमने जो प्रार्थना करी थी उसको स्मरण कीजिये । हे वीरप्रसू ! यह उसका समय उपस्थित हुआ है, इससे हमारी रक्षा कीजिये ॥ ११ ॥ १२ ॥ हे राज्ञि ! पुत्रको निवारणकरके हमको प्राणदान दो संपूर्ण नागलोक अस्त्राग्निसे

दग्ध हुआ जाता है ॥१३॥ हे यशस्विनी ! तुम्हारा पुत्र हमको इस प्रकार दग्ध करता है, अतएव तुम्हारे अतिरिक्त दूसरा कोईभी शरण देनेवाला नहींहै हमारे ऊपर तुम कृपा करो ॥१४॥ मार्कण्डेयजी बोले--साध्वी भामिनीने उन सर्पोंके इस प्रकार वचन सुननेसे पूर्वोक्त अपना अभयवाक्य स्मरणकर स्वामीके निकट संभ्रमसहित यह वचन कहे ॥१५॥ भामिनी बोली—पातालमें भुजङ्गमगणोंने प्रार्थनाके सहित मेरे पुत्रके संबन्धमें जो कहा था, वह मैंने पहिलेही आपसे कहा है ॥१६॥ वही भुजङ्गमगण इस समय पुत्रके तेजसे जले जाते हैं, सुतरां यह भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं मैंने भी पूर्वमें इनको अभयप्रदान किया है ॥ १७ ॥ देखो, जो मेरी शरणगत हैं वह अवश्य आपके भी

एवंसंदह्यमानानामस्माकंतनयेनते ॥ त्वामृतेशरणंनान्यत्कृपांकुरुयशस्विनि ॥ १४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिश्रुत्वावचस्तेषां संस्मृत्यादौचभाषितम् ॥ भर्त्तारमाहसासाध्वीससंभ्रममिदंवचः ॥ १५ ॥ पूर्वमेवतवाख्यातंपातालेयद्भुजङ्गमैः ॥ प्रोक्तमभ्यर्थनापूर्वं ममामीत्तनयंप्रति ॥ १६ ॥ तइमेऽभ्यागताभीतादह्यन्तेतस्यतेजसा ॥ मामेतेशरणंपूर्वंदत्तमेभ्योमयाऽभयम् ॥ १७ ॥ येमांशरणमापन्नास्तेत्वांशरणमागताः ॥ अपृथग्धर्मचरणायाताहंशरणंतव ॥ १८ ॥ तन्निवारयपुत्रंत्वंमरुत्तंवचनात्तव ॥ मयाचाभ्यर्थितोऽवश्यं शममभ्युपयास्यति ॥ १९ ॥ ॥ राजोवाच ॥ महापराधेनियतंमरुत्तःक्रोधमागतः ॥ दुर्निवर्त्यमहंमन्येतस्यक्रोधंसुतस्यते ॥२०॥
॥ नागाऊचुः ॥ शरणागतास्तववयंप्रसादःक्रियतांनृप ॥ क्षत्रस्यार्तपरित्राणनिमित्तंशस्त्रधारणम् ॥ २१ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥
॥ नागानांतद्वचःश्रुत्वाभूतानांशरणैषिणाम् ॥ तयाचाभ्यर्थितःपत्न्याप्राहावीक्षिन्महायशाः ॥ २२ ॥

शरणागत हैं, क्योंकि मैं एक धर्मका आचरण करके आपकी शरणमें प्राप्त हुई हूं ॥१८॥ अतएव तुम पुत्र मरुत्तको निवारण करो । आपके वचन और मेरे अनुरोधसे वह अवश्यही शान्त होगा ॥१९॥ अवीक्षितने कहा -इनके सदा अपराध करनेके कारणही मरुत्तको क्रोध उपस्थित हुआ है सुतरां तुम्हारे पुत्रका क्रोध सहजमें ही निवारित होगा ऐसा बोध नहीं होता ॥२०॥ नागोंने कहा हे नृप ! हम आपकी शरणमें आये हैं,हमारे ऊपर अनुग्रह कीजिये, क्षत्रियगण आर्तमनुष्योंकी रक्षाके लियेही अस्त्रधारण करते हैं ॥ २१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--महायशा अविक्षितने शरणेच्छु नागोंके यह वचन सुनकर और पत्नीके द्वारा इस प्रकार प्रार्थित होकर उत्तर दिया ॥ २२ ॥

हे भद्रे ! मैं अभी तुम्हारे पुत्रके समीप जाकर नागोंकी रक्षाके लिये उससे कहता हूं, शरणागतको त्याग करना कभी उचित नहीं है ॥ २३ ॥ यदि तुम्हारा पुत्र मरुत्त राजा मेरे वचनसे अस्त्रसंहार नहीं करेगा तो मैं अस्त्रद्वारा उसका अस्त्र निवारण करूंगा ॥ २४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—अनंतर क्षत्रियश्रेष्ठ अवीक्षित धनुष ग्रहण करके भार्याके सहित शीघ्र भार्गवाश्रममें गये ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायांसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—उन्होंने वहां आकर धनुषधारी धनुषपर शस्त्रचढ़ाये पुत्रको देखा कि उनके उग्रशस्त्रकी ज्वालासे सब दिशामण्डल व्याप्त होरहा है ॥ १ ॥ जिसमेंसे महाअग्नि निकल रही है पृथ्वी प्रदीप्त होरही है और वह

मत्वाब्रवीमितंभद्रेतनयंत्वरयातव ॥ परित्राणायनागानांनत्याज्याःशरणागताः ॥ २३ ॥ नोपसंहरतेसोऽस्त्रंयदिमद्वचनान्नृपः नदास्त्रैर्वा रयिष्यामितस्यास्त्रंतनयस्यते ॥ २४ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततोगृहीत्वासधनुरविक्षित्क्षत्रियोत्तमः ॥ भार्य्ययासहितःप्रायात्त्व रावान्भार्गवाश्रमम् ॥ २५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेसप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२७ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ सतुतत्रसुतंदृष्ट्वागृहीतवरकार्मुकम् ॥ धनुःशस्त्रंचतस्योग्रंज्वालाव्याप्तदिगन्तरम् ॥ १ ॥ उद्गिरन्तंमहावह्निंदीपिताखिलभूतलम् ॥ पातालान्तर्गतंप्राप्तमसह्यंघोरभीषणम् ॥ २ ॥ सतंदृष्ट्वामहीपालंभृकुटीकुटिलाननम् ॥ माक्रुधस्त्वंमरुत्तास्त्रमुपसंह्रियतामिति ॥ ३ ॥ प्राहासकृच्चानुलुप्तवर्णक्रममुदारधीः ॥ सनिशम्यगुरोर्वाक्यंदृष्ट्वातंचपुनःपुनः ॥ ४ ॥ गृहीतकार्मुकःपित्रोःप्रणिपत्यसगौरवम ॥ प्रत्यु वाचापराद्धामेसुभृशंपन्नगाःपितः ॥ ५ ॥ शासतीमांमयिमहींपरिभूयबलंमम ॥ सताश्रममुपागम्यदष्टामुनिकुमारकाः ॥ ६ ॥ ऋषी णामाश्रमस्थानाममीषामवनीपते ॥ मयिशासतिदुर्वृत्तैर्दूषितानिहवींषिच ॥ ७ ॥

असह्य घोर भीषण अग्नि पातालतक पहुँचगई है ॥ २ ॥ उन्होंने देखा कि, राजा मरुत्तका मुख भृकुटीसे कुटिल होरहा है तब उन्होंने कहा हे मरुत्त ! अस्त्रसंहार करो क्रोध मतकरो ॥ ३ ॥ वारंवार यह कहनेसे उनके वचनमें वर्णक्रम लुप्त होनेलगे तब उस उदार बुद्धिने पिताके वचन सुन और उन्हें देख ॥ ४ ॥ पितामाताको हाथमें धनुष लिये ही प्रणाम कर सम्मानपूर्वक कहा—हे पिता ! यह पन्नगगण मेरे अत्यन्त अपराधी हैं ॥ ५ ॥ मेरे शासनकालमें मेरे बलकी अवज्ञा करके इन्होंने आश्रममें आय सात मुनिकुमारोंको काटा है ॥ ६ ॥ और हे अवनीपते ! मेरे

शासन कालमें इन दुर्वृत्त सर्पगणोंने इन समस्त आश्रमवासी ऋषियोंको हवि और समस्त जलाशयोंको दूषित किया है ॥ ७ ॥ अतएव हे पिता!आप इनके संबंधमें कुछ न कहें और ब्रह्मघाती पन्नगोंके निधनकार्यमें निवारण भी न करें ॥८॥ अवीक्षितने कहा—यदि इन्होंने ब्रह्महत्या करी हो तो मृत्युके उपरांत नरकको प्राप्त होंगे, तुम अस्त्रप्रयोगसे विरत होकर मेरे वचनकी रक्षा करो॥९॥मरुत्तने कहा—यदि इन पापियोंके निग्रहमें यत्न न करूँ, तो मैंही नरकगामी हूँगा, अतएव हे पिता!मुझको निवारण न कीजिये मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा ॥१०॥अवीक्षितसे कहा—यह पन्नगगण मेरी शरणमें आये हैं,इस कारण हे नृप ! मेरे गौरवकी रक्षाके लिये तुम क्रोध रोककर अस्त्रसंहार करो॥११॥मरुत्तने

जलाशयास्तथाप्येतैःसर्वएवहिदूषिताः ॥ तदेत्कारणंकिञ्चिन्नवक्तव्यंत्वयापितः ॥ ननिवारयितव्योऽहंब्रह्मघ्नान्प्रतिपन्नगान् ॥ ८ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ यद्येभिर्निहताविप्रायास्यन्तिनरकंमृताः ॥ ममैतत्क्रियतांवाक्यंविरमास्त्रप्रयोगतः ॥ ९ ॥ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ॥ अहमेवगमिष्यामिनरकंयदिपापिनाम् ॥ ननिग्रहेयताम्येषांमांनिवारयमापितः ॥ १० ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ मामेतेशरणंप्राप्ताःपन्नगाममगौरवात् ॥ उपसंह्रियतामस्त्रमलंकोपेनतेनृप ॥ ११ ॥ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ नाहमेषांक्षमिष्यामिदुष्टानामपराधिनाम् ॥ स्वधर्ममुल्लंघ्यकथंकरिष्यामिवचस्तव ॥ १२ ॥ दण्ड्येनिपातयन्दण्डंभूपःशिष्टांश्चपालयन् ॥ पुण्यलोकानवाप्नोतिनरकांश्चाप्युपेक्षणात् ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ एवंसबहुशःपित्रावार्य्यमाणोम्वयासह ॥ नोपसंहरतेसोऽस्त्रंततोऽसौपुनरब्रवीत् ॥१४॥ हिंससेपन्नगान्भीतान्ममैताञ्छरणंगतान् ॥ वार्यमाणोऽपितस्मात्तकरिष्यामिप्रतिक्रियाम् ॥१५॥

कहा—मैं इन दुष्ट अपराधियोंको क्षमा नहीं करूंगा अपना धर्म उल्लंघनकरके किसप्रकार आपके वचनकी रक्षाकरूं ? ॥ १२ ॥ दण्डनीय पुरुषोंको दण्डप्रदान और शिष्ट पुरुषोंका पालन करके राजा समस्त पुण्य लोकोंको प्राप्त होते हैं, किन्तु इसमें उपेक्षा करनेसेही नरकगामी होते हैं ॥ १३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—पिताके इस प्रकार वारंवार निषेध करनेपर भी जब पुत्र मरुत्तने अस्त्रसंहार नहीं किया, तब अवीक्षितने फिर उनसे कहा ॥ १४ ॥ यह पन्नगगण भीत होकर मेरी शरणमें आये हैं, इस कारण मेरे वारंवार निवारण करनेपर भी तुम इनकी हिंसा करते हो, अतएव मैं इसका प्रतिकार करूँगा ॥ १५ ॥

भूमण्डलमें केवल एक मात्र तुम्ही अस्त्रवेत्ता नहीं हो, मैंने भी अनेक अस्त्रलाभ किये हैं हे दुर्वृत्त ! मेरे सन्मुख तेरा पौरुष कुछ नहीं है ॥ १६ ॥ हे मुनिपुंगव ! अवीक्षितने इस वचनके पीछे क्रोधसे ताम्रलोचन हो, धनुषपर गँदा चढाय कालास्त्र ग्रहण किया ॥ १७ ॥ और ज्वालापरि-वृत, शत्रुविनाशक महावीर्य वह उत्तम कालास्त्र धनुषपर चढ़ाया ॥ १८ ॥ हे विप्र ! मरुत्तके संवर्त्तकास्त्रसे तापित पर्वत समुद्रयुक्त संपूर्ण जगत इस समय कालास्त्रके छूटनेसे क्षुब्ध होगया ॥ १९ ॥ मरुत्तने भी उस चढ़ाये हुए कालास्त्रको देखकर उच्चस्वरसे कहा—मेरा संवर्त्तक अस्त्र दुष्टोंकी शान्तिविधानके लिये उद्यत हुआ है ॥ २० ॥ तुम्हारे वधके लिये नहीं है, तो फिर सत्पथावलम्बी और सर्वदा अपनी आज्ञा प्रति

मयाप्यस्त्राण्यवाप्तानिनत्वमेकोऽस्त्रविद्भुवि ॥ ममाग्रतःसुदुर्वृत्तपौरुषञ्चकियत्तव ॥ १६ ॥ ततःकार्मुकमारोप्यकोपताम्रविलोचनः ॥ अविक्षिदस्त्रंजग्राहकालस्यमुनिपुङ्गवः ॥ १७ ॥ ततोज्वालापरीवारमरिसंघघ्नमुत्तमम् ॥ कालास्त्रंतुमहावीर्य्ययोजयामासकार्मुके ॥ ॥ १८ ॥ ततश्चुक्षोभजगतीसवर्त्तास्त्रप्रतापिता ॥ साब्धिशैलाऽखिलाविप्रकालस्यास्त्रेसमुद्यते ॥ १९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ कालास्त्रमुद्यतंपित्रामरुत्तःसोऽपिवीक्ष्यतत् ॥ प्राहोच्चैरस्त्रमेतन्मेदुष्टशास्तिसमुद्यतम् ॥ २० ॥ नत्वद्वधायकालास्त्रंमयिमुंचसिकिंभवान् ॥ स्वधर्मचारिणिसुतेसदैवाज्ञाकरेतव ॥ २१ ॥ मयाकार्यमहाभागप्रजानांपरिपालनम् ॥ त्वयैवंक्रियतेकस्मान्मद्वधायास्त्रमुद्यतम ॥ ॥ २२ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ शरणागतसंत्राणंकर्तुंव्यवसिताव्वयम् ॥ तस्यव्याघातकर्त्तात्वंनमेजीवन्विमोक्ष्यसे ॥ २३ ॥ मांवाहत्वास्त्रवीर्येणजहिदुष्टानिहोरगान् ॥ त्वांवाहत्वाऽहमस्त्रेणरक्षिष्यामिमहोरगान् ॥ २४ ॥ धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमागतम ॥ योनार्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ॥ २५ ॥

पालन करनेवाले पुत्रके प्रति आप किस किस निमित्त कालास्त्र त्याग करते हैं ? ॥ २१ ॥ हे महाभाग ! प्रजाका पालन करना ही मेरा कर्त्तव्य है, आप मेरे विनाशार्थ क्यों इस प्रकार अस्त्र उद्यत करते हो ? ॥ २२ ॥ अवीक्षितने कहा—मैं शरणागत पुरुषोंकी रक्षा करनेके लिये कृत संकल्प हूं, तुम उस कार्यमें बाधा करते हो, इस कारण तुम जीवित रहते मेरे निकटसे रक्षा नहीं पासकोगे ॥ २३ ॥ इस समय या तो तुम्हीं अस्त्रबलसे मुझको विनाश करके दुष्ट उरगकुलका वध करो अथवा मैं ही तुमको अस्त्रकी सहायतासे मारकर सर्पोंकी रक्षा करूंगा ॥ २४ ॥ शत्रुपक्षीय

मनुष्यके भी आर्त्त होकर शरणमें आनेपर जो मनुष्य उसकी रक्षा नहीं करता उस मनुष्यके जीवनको धिक्कार है ॥ २५ ॥ मैं क्षत्रिय हूं इन्होंने भीत होकर मेरी शरण ग्रहण की है और तुम्हीं इनके अपकारी हो अतएव फिर किस निमित्त तुम मेरे द्वारा वधके योग्य नहीं हो ? ॥ २६ ॥ मरुत्तने कहा-मित्र, बांधव, पिता अथवा गुरु जो प्रजापालनमें विघ्नकारी हो, वह अवश्य ही राजाके द्वारा वध होनेके योग्य है ॥ २७ ॥ इस कारण हे पिता ! मैं आपपर प्रहार करूंगा किन्तु आप इससे क्रोध न कीजिये स्वधर्मका पालन करना ही मेरा उद्देश्य है आपके ऊपर मेरा क्रोध नहीं है ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--उन दोनोंको ही परस्परके वध करनेमें कृतनिश्चय देखकर भार्गवादि मुनियोंने

क्षत्रियोऽहमिमेभीताःशरणंमामुपागताः ॥ अपकर्त्तात्वमेवैषांकथंवध्योनमेभवान् ॥ २६ ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ मित्रंवाबान्धवोवाऽपिपितावायदिवागुरुः ॥ प्रजापालनविघ्नाययोहन्तव्यःसभूभृता ॥ २७ ॥ सोऽहन्तेप्रहरिष्यामिनक्रोद्धव्यंत्वयापितः ॥ स्वधर्मःपरिपाल्योमेक्रोधस्तवोपरि ॥ २८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततस्तौनिश्चितौदृष्ट्वापरस्परवधंप्रति ॥ समुत्पत्यान्तरेतस्थुर्मुनयोभार्गवादयः ॥ २९ ॥ ऊचुश्चैनंनमोक्तव्यंत्वयास्त्रंपितरंप्रति ॥ त्वयाचनायंहन्तव्यःपुत्रःप्रख्यातचेष्टितः ॥ ३० ॥ मरुत्तउवाच ॥ ॥ मयादुष्टानिहन्तव्याःसन्तोरक्ष्यामहीक्षिता ॥ इमेचदुष्टाभुजगाःकोपराधोऽत्रमेद्विजाः ॥ ३१ ॥ ॥ अविक्षिदुवाच ॥ ॥ शरणागतसन्त्राणंमयाकार्यमयश्चमे ॥ अपराध्यःसुतोविप्रायोहन्तिशरणागतान् ॥ ३२ ॥ ऋषयऊचुः ॥ इमेवदन्तिभुजगास्त्रासलोलविलोचनाः ॥ संजीवयामस्तान्विप्रान्येदष्टादुष्टपन्नगैः ॥ ३३ ॥

शीघ्र आय दोनोंके मध्यमें खडे हो ॥ २९ ॥ मरुत्तसे कहा--पिताके ऊपर अस्त्र चलाना तुमको उचित नहीं है और अवीक्षितसे कहा--तुमको भी इस विख्यात कर्मा पुत्रका विनाश नहीं करना चाहिये ॥ ३० ॥ मरुत्तने कहा--हे द्विजगण ! मैं राजा हूं दुष्टोंका हनन और शिष्ट पुरुषोंका पालन करना मेरा सम्यक् प्रकार कर्त्तव्य है, यह भुजंगगण भी दुष्ट हैं, अतएव इस विषयमें मेरा क्या अपराध है ? ॥ ३१ ॥ अवीक्षितने कहा हे विप्रगण ! शरणागत पुरुषोंकी रक्षा करना ही मेरा कर्त्तव्य है, जो पुत्र मेरे उन शरणागत जनोंको नष्ट करता है वह मेरा अपराधी है ॥ ३२ ॥ ऋषियोंने कहा--डरसे चंचल नेत्र हो भुजङ्गगण कहते हैं जिन ब्राह्मणोंको दुष्ट पन्नगगणोंने डसा है, हम उनको

जीवित करते हैं ॥ ३३ ॥ अतएव अब युद्धकी आवश्यकता नहीं है, प्रसन्न हूजिये, आप दोनों ही राजश्रेष्ठ और दोनों ही जिस प्रकार धर्मवेत्ता हैं, इसी प्रकार प्रतिज्ञा पालक हैं ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--इसी समयमें वीराने वहां उपस्थित होकर पुत्र अवीक्षितसे कहा--मेरे वचनानुसार ही तुम्हारा पुत्र सर्पोंके विनाश करनेमें उद्यत हुआ था ॥ ३५ ॥ और जब मरे हुये ब्राह्मण जीवित होते हैं तब वह कार्य संपन्न भी होगया है अतएव तुम्हारा यह शरणागत भी मुक्त हुए ॥ ३६ ॥ भामिनीने कहा पातालवासी इन सब सर्पोंने पूर्वमें मुझसे इस प्रकार अभय प्रार्थना की थी, इसी कारण मैंने भर्त्ताको इस विषयमें अनुरोध किया है ॥ ३७ ॥ इस समय मेरे स्वामी और पुत्रका एवं

तदलंविग्रहेणोभौराजवर्यौप्रसीदताम् ॥ उभावपिविनिर्व्यूढप्रतिज्ञौधर्मकोविदौ ॥ ३४ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ सातुवीरासमभ्येत्यपुत्रमेतदभाषत ॥ मद्वाक्यादेषतेपुत्रोहन्तुंनागान्कृतोद्यमः ॥ ३५ ॥ तन्निष्पन्नंयदाविप्रास्तेजीवन्तितथामृताः ॥ संजीवन्तश्चमुच्यन्तेयद्युष्मच्छरणंगताः ॥ ३६ ॥ ॥ भामिन्युवाच ॥ ॥ अहमभ्यर्थितापूर्वमेभिःपातालसंश्रयैः ॥ तन्निमित्तमयंभर्त्तामयात्रविनियोजितः ॥ ॥ ३७ ॥ तदेतदार्यैर्निर्वृत्तमुभयोरपिशोभनम् ॥ ममभर्तुश्चपुत्रस्यत्वत्पौत्रस्यात्मजस्यच ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततः संजीवयामासुस्तान्विप्रांस्तेभुजङ्गमाः ॥ दिव्यैरोषधिजातैश्चविषसंहरणेनच ॥ ३९ ॥ पित्रोर्ननामचरणौसततोजगतीपतिः ॥ मरुत्तश्चसतंप्रीत्यापरिष्वज्येदमब्रवीत् ॥ ४० ॥ मानहाभवशत्रूणांचिरंपालयमेदिनीम् ॥ पुत्रपौत्रैश्चमोदस्वमाचतेसन्तुविद्विषः ॥४१॥ ततोद्विजैरनुज्ञातौवीरयाचनरेश्वरौ ॥ समारूढौरथंसाचभामिनीस्वपुरङ्गता ॥ ४२ ॥

तुम्हारे पुत्र और पौत्रका यह कार्य सुन्दर रीतिसे ही संपन्न हुआ है ॥ ३८ ॥ मार्कण्डेयजी बोले-अनन्तर सर्पोंने दिव्य औषधियोंके द्वारा विष हरण करके उन ब्राह्मणोंको जीवित कर दिया ॥ ३९ ॥ इसके उपरांत महीपति मरुत्तने भी मातापिताके चरणोंमें प्रणाम किया और अवीक्षितने भी मरुत्तको प्रीतिसहित आलिंगन करके इस प्रकार आशीर्वाद वचन कहे ॥ ४० ॥ "शत्रुओंके मान नष्ट करनेवाले होओ। सदा पृथ्वी पालन करो। पुत्रपौत्रके सहित सुखपूर्वक समय बिताओ। और तुम्हारे शत्रु विनाशको प्राप्त हो" ॥ ४१ ॥ इसके उपरान्त ब्राह्मणगण और वीराकी आज्ञा ग्रहण कर दोनों राजा और भामिनी रथपर चढकर अपने नगरमें चले गये ॥ ४२ ॥

तत्पश्चात् धार्मिकश्रेष्ठ महाभाग्यवती पतिव्रता वीरा महातपस्याचरण करके स्वामीके सालोक्यको प्राप्त हुई ॥ ४३ ॥ राजा मरुत्तने भी छहों शत्रु पराजित करके धर्मानुसार पृथ्वीपालन और नानाप्रकारके भोगसुख अनुभव किये ॥ ४४ ॥ विदर्भकन्या महाभाग प्रभावती, सुवीरकी कन्या सौवीरी ॥ ४५ ॥ मगधेश्वर केतुवीर्यकी कन्या सुकेशा, मद्रराज सिन्धुवीर्यकी कन्या केकयकी दुहिता केकयी ॥ ४६ ॥ सिंधुराजकी पुत्री सैन्धवी और चेदिराजकी कन्या वपुष्मती, यह सुन्दरी ललना उनकी भार्या थीं ॥ ४७ ॥ हे द्विज ! इन सब भार्याओंके गर्भसे राजाके अठारह पुत्र उत्पन्न हुए थे उनमें "नरिष्यन्त" नामक पुत्रही ज्येष्ठ प्रधान थे ॥४८॥ महाराज महाबलवान् मरुत्त ऐसे वीर्यवान् थे। सात द्वीपोंमें

वीराऽपिकृत्त्वासुमहत्तपोधर्मभृतांवरा ॥ भर्तुःसलोकतांप्राप्तामहाभागापतिव्रता ॥ ४३ ॥ मरुत्तोऽपिचकागेर्व्यांधर्मतःपरिपालनम् ॥ विर्निर्जितारिषड्वर्गोभोगांश्चबुभुजेनृपः ॥ ४४ ॥ तस्यपत्नीमहाभागाविदर्भतनयातथा ॥ प्रभावतीसुवीरस्यसौवीरीचाभवत्सुता ॥ ॥ ४५ ॥ सुकेशीकेतुवीर्य्यस्यमागधस्यात्मजाऽभवत् ॥ सुताचसिन्धुवीर्य्यस्यमद्रराजस्यकेकयी ॥ ४६ ॥ केकयस्यचसैरन्ध्रीसिन्धुभर्तुर्वपुष्मती ॥ चेदिराजसुताचाभद्भार्य्यातस्यसुशोभना ॥ ४७ ॥ तासांपुत्रास्तस्यचासन्भूभृतोऽष्टादशद्विज ॥ तेषांप्रधानोज्येष्ठश्चनरिष्यंतःसुतोऽभवत् ॥ ४८ ॥ एवंवीर्य्योमरुत्तोऽभून्महाराजोमहाबलः ॥ तस्याप्रतिहतंचक्रमासीद्द्वीपेषुसप्तसु ॥ ४९ ॥ यस्यतुल्योऽपरोराजानभूतोनभविष्यति ॥ सत्वविक्रमयुक्तस्यराजर्षेरमितौजसः ॥ ५० ॥ तस्यैतच्चरितंश्रुत्वामरुत्तस्यमहात्मनः ॥ जन्मचाग्र्यंद्विजश्रेष्ठमुच्यतेसर्वकिल्बिषैः ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेमरुत्तचरितेष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ ॥ क्रौष्टुकिरुवाच ॥ मरुत्तचरितंकृत्स्नंभगवन्कथितंत्वया ॥ तत्संततिमशेषेणश्रोतुमिच्छाप्रवर्तते ॥ १ ॥

उनका चक्र अप्रतिहत था ॥ ४९ ॥ बलविक्रमशाली अमिततेजा जिन राजर्षिके समान और कोई राजा आविर्भूत नहीं हुआ और होगा भी नहीं ॥ ५० ॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! उन महात्मा मरुत्तके यह चरित्र सुनने पर संपूर्ण पापोंसे मुक्ति और मृत्युके पीछे श्रेष्ठ जन्म प्राप्त होता है ॥ ॥ ५१ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे मरुत्तचरिते भाषाटीकायामष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२८ ॥ क्रौष्टुकिने कहा—हे भगवन् ! आपने मरुत्तचरित्र संपूर्ण वर्णन किया । अब उनकी संततिका समस्त वृत्तांत सुननेकी इच्छा हुई है ॥ १ ॥

हे महामुने उनकी संतानमें जो पृथ्वीपति राज्य योग्य और वीर्यशाली थे आपके मुखसे उन्हींका वृत्तान्त सुननेकी इच्छा करता हूं ॥ २ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–मरुत्तके अठारह पुत्रोंमें नरिष्यन्त ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ थे ॥ ३ ॥ क्षत्रियश्रेष्ठ मरुत्तने सत्तरसहस्र पन्द्रह वर्ष संपूर्ण पृथ्वी भोगकरी थी ॥ ४ ॥ वह धर्मानुसार राज्यशासन और उत्तमोत्तम यज्ञानुष्ठान पूर्वक पुत्र नरिष्यन्तको राज्याभिषिक्त कर अन्तमें वनको चले गये ॥ ५ ॥ हे विप्र! इसके उपरांत राजामरुत्तने वनमें एकाग्रचित्तसे महा तपस्या करके स्वर्गलोक मृत्युलोक यशसे पूर्णकर स्वर्गारोहण किया ॥ ६ ॥ उनके पुत्र बुद्धिमान् नरिष्यन्तने पिता और अन्यान्य राजाओंका व्यवहार देखकर विचार किया ॥ ७ ॥ कि इस वंशमें

तत्संततौक्षितीशायेराज्यार्हावीर्यशालिनः ॥ तानहंश्रोतुमिच्छामित्वयाख्यातान्महामुने ॥ २ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ नरिष्यंत इतिख्यातोमरुत्तस्याभवत्सुतः ॥ अष्टादशानांपुत्राणांसज्येष्ठःश्रेष्ठएवच ॥ ३ ॥ वर्षाणांचसहस्राणिसप्ततिंदशपंचच ॥ बुभुजे पृथिवींकृत्स्नांमरुत्तःक्षत्रियर्षभः ॥ ४ ॥ कृत्वाराज्यंस्वधर्मेणइष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ॥ नरिष्यंतसुतंज्येष्ठमभिषिच्यययौवनम् ॥ ५ ॥ एकाग्रचित्तःसनृपस्तत्वातत्रतपोमहत् ॥ आरुरोहदिवंविप्रयशसावृत्यरोदसी ॥ ६ ॥ नरिष्यंतःसुतःसोऽचिंतयामानबुद्धिमान् ॥ पितुर्वृत्तंसमालोक्यतथान्येषांचभूभृताम् ॥ ७ ॥ अत्रवंशेमहात्मानोराजानोममपूर्वजाः ॥ यज्विनोधर्मतःपृथ्वींपालयामासुरूर्जिताः ॥ ८ ॥ दातारश्चापिवित्तानांसंग्रामेष्वनिवर्तिनः ॥ तेषांकश्चरितंशक्तस्त्वनुयातुंमहात्मनाम् ॥ ९ ॥ किन्तुनैयत्कृतंकर्मधर्म्यमाहव नादिभिः ॥ तदहंकर्तुमिच्छामितच्चनास्तिकरोमिकिम् ॥ १० ॥ धर्मात्पालयतःपृथ्वींकोगुणोत्रमहीपतेः ॥ असम्यक्पालनात्पापीन रेन्द्रोनरकंव्रजेत् ॥ ११ ॥

मेरे सब पूर्वपुरुष महात्मा राजागण यज्ञानुष्ठान करनेवाले प्रबल पराक्रमी, धनदाता और संग्राममें अपराङ्मुख अर्थात विमुख नहीं थे और सबने ही धर्मानुसार पृथ्वीका पालन किया है उन महात्माओंके चरित्रका अनुकरण करनेमें कौन समर्थ होगा ? ॥ ८ ॥ ९ ॥ उन्होंने आत्मयज्ञादि द्वारा जो धर्म कार्य संपन्न किये हैं वही करनेकी इच्छा करता हूं किंतु वहभी तो [illegible] है [illegible] करूं ॥ १० ॥ [illegible] धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करे, तो इसमें राजाका गुण क्या है ? वह उसके गुणमें परिगणित [illegible] है, [illegible] [illegible] पृथ्वीपालन न करनेसे

नरेन्द्र पापभागी होकर नरकमें जाते हैं ॥ ११ ॥ धन होनेपर राजाको महायज्ञ संपादन और दान करना चाहिये। किन्तु इसमें भी फिर विचित्रता क्या है ! इस प्रकार राजाके अवसन्न होनेपर ईश्वर ही उसको एक मात्र गति है ॥ १२ ॥ राजाके स्वधर्ममें रहनेसेही वह जातिश्रेष्ठता लज्जा शत्रुके प्रति कोप और युद्धसे पलायन नहीं करता है ॥ १३ ॥ यह समस्त कार्य मेरे पूर्वपुरुषगण और पिता मरुत्तने जिस प्रकार संपादन किये हैं दूसरा और कौन उस प्रकार करनेमें समर्थ होगा ॥ १४ ॥ मेरे सब पूर्वपुरुषगण श्रेष्ठ यज्ञ करनेवाले दाता दमगुणशाली संग्राममें अपराङ्मुख ॥ १५ ॥ और महासंग्राम उपस्थित होने पर शत्रुओंके निकट पराक्रम प्रकाश करनेवाले थे मैं इस समय ऐसा क्या कार्य करूं, जो

सतिवित्तेमहायज्ञाःकर्तव्याएवभूभृता ॥ दातव्यंचात्रकिंचित्रंसीदतामीश्वरोगतिः ॥ १२ ॥ आभिजात्यंतथालज्जाकोपश्चारिजनाश्रयः ॥ कार्यंतिस्वधर्मश्चसंग्रामादपलायनम् ॥ १३ ॥ एतत्सर्वंयथासम्यङ्मत्पूर्वैःपुरुषैःकृतम् ॥ पित्राचमेमरुत्तेनतथातत्केनशक्यते ॥ १४ ॥ तदहंकिंकरिष्यामियत्तुतैःपूर्वजैःकृतम् ॥ येयज्विनोवरादान्ताःसंग्रामाच्चानिवर्तिनः ॥ १५ ॥ महत्संग्रामसंमर्देष्ववि संवादिपौरुषाः ॥ क्रमेणाहंयतिष्यामिकस्मैतानभिसंधितुम् ॥ १६ ॥ अथवातैःस्वयंयज्ञाःकृताःपूर्वजनेश्वरैः ॥ अविश्रमद्भिर्नान्यैस्तुकारितास्तत्करोम्यहम् ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिसंचिंत्ययज्ञंसचकारैकंनेरश्वरः ॥ यादृशंनचकारान्योवित्तोत्सर्गोपशोभितम् ॥ १८ ॥ द्विजानांजीवनायालंदत्त्वातुसुमहाधनम् ॥ ततःशतगुणंतेषांयज्ञार्थमददान्नृपः ॥ १९ ॥ गावोवस्त्राण्यलंकारंधान्यागारादिकंतथा ॥ प्रत्येकमददात्तेषांसर्वपृथ्वीनिवासिनाम् ॥ २० ॥

उन्होंने नहीं किया है ! अतएव मैं कर्मद्वारा निष्काम कर्मका अनुष्ठान करूंगा ॥ १६ ॥ अथवा मेरे पूर्वपुरुषोंने स्वयंही अविरत यज्ञ किये थे, अपर किसीको भी वह नहीं कराये, मैं उन्हींका अनुष्ठान करूंगा ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--नरेश्वरने इस प्रकार चिन्ता करके विपुल धन दानकर एक यज्ञ किया, वैसा यज्ञ पहिले अन्य कोई नहीं कर सका था ॥ १८ ॥ उन्होंने उस यज्ञमें ब्राह्मणोंको जीविका निर्वाहके लिये बहुत धन दिया उसकी अपेक्षा शतगुण अन्न दान किया था ॥१९॥ पृथ्वीवासी ब्राह्मणोंमें प्रत्येकको ही उन्होंने गाय, वस्त्र, अलंकार, धान्य, गृह इत्यादि बहुत दिये थे ॥ २० ॥

उसके पीछे जब राजाने फिर यज्ञका अनुष्ठान किया, तब फिर याजक करनेके लिये कोई ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ ॥ २१ ॥ जिस जिस ब्राह्मणकोही उन्होंने ऋत्विक्कार्यमें वरण करना चाहा, उसीने कहा, मैं यज्ञके लिये अन्यत्र दीक्षित हुआ हूं ॥ २२ ॥ आप अन्यको वरण कीजिये !॥हे नृपते ! आपने यज्ञकालमें दान करके हमको जितना धन दिया है हमारे अनेकानेक यज्ञोंमें भी वह निःशेष नहीं हुआ ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--संपूर्ण पृथ्वीके ईश्वर होकर भी जब, उन्होंने ऋत्विक् करनेके लिये किसी ब्राह्मणको नहीं पाया तब बहिर्वेदीमें दान करनेका यत्न किया ॥ २४ ॥ किन्तु तो भी धनपूर्ण गृहका ब्राह्मणोंने दान ग्रहण नहीं किया ! जब राजा ब्राह्मणोंको दान करनेके

ततस्तेनयदायज्ञःप्रारब्धोभूभुजापनः ॥ प्रारब्धेसमखेयष्टुंततोनालभतद्विजान् ॥ २१ ॥ यान्यान्वृणोतिसनृपोविप्रानार्त्विज्यकर्मणि॥ तेतेतमूचुर्यज्ञायवयमप्यत्रदीक्षिताः ॥ २२ ॥ अन्यंवरययद्वित्तंत्वयास्माकंविसर्जितम् ॥ तस्यांतोनास्तियज्ञेषुदद्यास्त्वंनृपतेकथम् ॥ ॥ २३ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ नचापऋत्विजोविप्रांस्तदाशेषक्षितीश्वरः ॥ बहिर्वेद्यांतदादानंसदातुमुपचक्रमे ॥ २४ ॥ तथापि जगृहुर्नैवधनसंपूर्णमंदिराः ॥ द्विजायदातुंभूयोऽसौनिर्विण्णइदमब्रवीत् ॥ २५ ॥ अहोतिशोभनंपृथ्व्यांयद्विप्रोनाधनःक्वचित् ॥ अशोभनंचयत्कोशोविफलोयमयज्विनः ॥ २६ ॥ नार्त्विज्यंकुरुतेकश्चिद्यजमानोखिलोजनः ॥ द्विजानांनचनोदानंददतांसम्प्रतीच्छते ॥ २७ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःकांश्चिद्द्विजान्भक्त्याप्रणिपत्यपुनःपुनः ॥ स्वयज्ञेऋत्विजश्चक्रेतेप्रचक्रुर्महामखम् ॥ ॥ २८ ॥ अत्यद्भुतमिदंचासीद्यदातस्यमहीपतेः ॥ सयज्ञोभूतदापृथ्व्यांयजमानोऽखिलोजनः ॥ २९ ॥

निमित्त प्रवृत्त हो, उसमें विफलश्रम हुए अर्थात् ब्राह्मणोंके दान नहीं लेनेसे उनका श्रम व्यर्थ हुआ, तब वह अत्यन्त दुःखित होकर कहने लगे ० २५ ॥ कि अहो ! पृथ्वीके किसी स्थानमें इस समय निर्धन ब्राह्मण नहीं हैं यह अवश्यही सुखका विषय है, किन्तु यज्ञके बिना मेरा राजकोष विफल होता है, यह अत्यन्त कष्टका कारण है ॥ २६ ॥ ब्राह्मणोंमें इस समय सबही स्वयं यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए हैं, इस कारण कोई ऋत्विक् होनेमें सम्मत नहीं है और वह स्वयंही दान करते हैं,अत एव मेरा दिया दान ग्रहण नहीं करते ॥२७॥ मार्कण्डेयजी बोले--अनन्तर बारंवार भक्तिसहित प्रणामपूर्वक कई ब्राह्मणोंको उन्होने अपने यज्ञमें ऋत्विक् किया और उन्हीं ब्राह्मणोंने वह महायज्ञ संपादन किया॥२८॥यह अत्यन्त

आश्चर्यकी बात हुईथी कि, जब राजाका वह महायज्ञ आरंभ हुआ, तब पृथ्वीके मध्य ब्राह्मणोंमें सबही स्वयं यजमान हुए थे ।.२९॥ सुतरां उस यज्ञमें कोई सभासद नहीं हुआ।तब ब्राह्मणोंमें कोई स्वयं यजमान हुआ था और कोई इसका याजक हुआ था॥३०॥राजा नारिष्यन्तने जिस समय यज्ञ किया था, तब उनके दिये धनद्वाराही पृथ्वीमें ब्राह्मणगण अनेक यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए थे हे मुने!महाराज नारिष्यन्त जब यज्ञ करनेमें प्रवृत्त हुए थे तब पूर्व दिशामें अठारह करोडसे भी अधिक यज्ञ संपादित हुए थे।और पश्चिम दिशामें सात करोड दक्षिण दिशामें चौदह करोड॥३१॥३२॥ और उत्तरदिशामें पचास कोटि यज्ञ हुए।ब्राह्मणोंके यह समस्त यज्ञ एकही समयमें संपादित हुए थे॥३३॥ हे विप्र!पूर्वकालमें मरुत्तके पुत्र विख्यात

द्विजन्मनामभून्नासीत्सदस्यस्तत्रकश्चन ॥ यजमानाद्विजाःकेचित्केचित्तेषांतुयाजकाः ॥ ३० ॥ नरिष्यंतोनरपतिरियाजसयदातदा ॥ तत्प्रदातुर्धनैर्यागंकुर्युःपृथ्व्यामशेषतः ॥ ३१ ॥ प्राच्यांकोट्यस्तुयज्ञानामस्त्वष्टादशाधिकाः ॥ प्रतीच्यांसप्तवैकोट्योदक्षिणस्यांचतुर्दश ॥ ३२ ॥ उत्तरस्यांचपंचाशदेककालंतदाभवन् ॥ मुनेब्राह्मणयज्ञानांनरिष्यंतोयदाऽयजत् ॥ ३३ ॥ एवंसराजाधर्मात्मानरिष्यंतोऽभवत्पुरा ॥ मरुत्ततनयोविप्रविख्यातबलपौरुषः ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेनरिष्यंतचरितंनामैकोनविंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १२९ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ नरिष्यंतस्यतनयोदुष्टारिदमनोदमः ॥ शक्रस्येवबलंतस्यदयाशीलंमुनेरिव ॥ १ ॥ बाभ्रव्यामिंद्रसेनायांसजज्ञेतस्यभूभृतः ॥ नववर्षाणिजठरेस्थित्वामातुर्महायशाः ॥ २ ॥ यद्दाहयामासदमंमातरंजठरेस्थितः ॥ दमशीलश्चभवितायतश्चायंनृपात्मजः ॥ ३ ॥ ततस्त्रिकालविज्ञानःसहितस्यपुरोहितः ॥ दमइत्यकरोन्नामनरिष्यंतसुतस्यतु ॥ ४ ॥

बलपौरुष राजा नारिष्यन्त ऐसे धर्मात्मा थे ॥ ३४ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भाषाटीकायां नारिष्यन्तचरितंनामैकोनत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः १२९.
मार्कण्डेयजी बोले--नारिष्यंतके पुत्र दम हुए।वह दुर्वृत्त शत्रुओंको दमन करते थे उनका इंद्रके समान बल और मुनिके समान दया और शीलता थी ॥ १ ॥ दमने बभ्रुकी कन्या इंद्रसेनाके गर्भसे नारिष्यंतके डरसे जन्मग्रहण किया । यह महायशा नौ वर्ष माताके जठरमें स्थित रहे थे ॥ २ ॥ इन राजपुत्रके इसप्रकार जठरमें रहनेके समय इनकी माताको दम गुण (इन्द्रियनिग्रह) अवलम्बन करना पडा था और यह राजपुत्र स्वयं भी दमशील ही होंगे ॥ ३ ॥ ऐसा देखकर त्रिकालज्ञ राजपुरोहितोंने उन नारिष्यंतके पुत्रका नाम दम रक्खा राजपुत्र दमने नरराज वृषपर्वाके

निकटसे संपूर्ण धनुर्वेदकी शिक्षा ग्रहण करी ॥४॥५॥ और तपोवननिवासी दैत्यश्रेष्ठ दुन्दुभीके निकटसे सब अस्त्रग्राम प्रयोग और संहारके सहित ग्रहण किये ॥ ६ ॥ उन्होंने शक्ति मुनिके निकटसे संपूर्ण वेद वेदाङ्ग और आत्मवान् होकर आर्ष्टिषेणके निकट योगशिक्षा ग्रहण करी थी ॥७॥ दशार्णाधिपति महाबलवान् चारुकर्माकी कन्या सुमनाने पिताके द्वारा स्वयंवरमें नियोजित होकर अपनी अभिलाषासे आये हुए संपूर्ण राजाओंके सामनेही महाबली अस्त्रधारी अपने अनुरूप महात्मा दमको पतित्वमें वरण किया था ॥८॥९॥ मद्रराजके पुत्र महाबलवान् महानन्द विदर्भाधिपति संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान् और महाधनु नामक उदारचेता राजपुत्र उस सुमनाके प्रति अनुरागी हुए थे ॥१०॥११॥ दुष्ट वैरियोंको

सदत्तोराजपुत्रस्तुधनुर्वेदमशेषतः ॥ जगृहेसुरराजस्यसकाशाद्वृषपर्वणः ॥ ५ ॥ दुन्दुभेर्दैत्यवर्य्यस्यतपोवननिवासिनः ॥ सकाशाज्जगृहेकृत्स्नमस्त्रग्राममशेषतः ॥ ६ ॥ शक्तेःसकाशाद्वेदांश्चवेदाङ्गान्यखिलानिच ॥ तथार्ष्टिषेणाद्राजर्षेर्जगृहेयोगमात्मवान् ॥ ७ ॥ तंसुरूपंमहात्मानंगृहीतास्त्रंमहाबलम् ॥ स्वयंवरेकृतापित्राजगृहेसुमनापतिम् ॥ ८ ॥ सुतादशार्णाधिपतेर्बलिनश्चारुवर्मणः ॥ पश्यतांसर्वभूतानांयेतदर्थमुपागताः ॥९॥ तस्यांचसानुरागोऽभून्मद्रराजस्यवैसुतः ॥ सुमनाश्चमहानन्दोमहाबलपराक्रमः ॥१०॥ तथाविदर्भाधिपतेःपुत्रःसंक्रन्दनस्यच ॥ वपुष्मान्राजपुत्रश्चमहाधनुरुदारधीः ॥ ११ ॥ तेतदातंवृतंदृष्ट्वादुष्टाश्चिमनंदमम् ॥ मन्त्रयामासुरन्योऽन्यंतत्रानङ्गविमोहिताः ॥१२॥ एतामस्यबलात्कन्यांगृहीत्वारूपशालिनीम् ॥ गृहंप्रयामस्तन्व्येयमस्माकंधर्मतोऽपिनि ॥१३॥ भर्तृबुद्ध्यावरारोहास्वयंवरविधानतः ॥ तस्येच्छयानोभवित्रीभार्य्याधर्मोपपादिता ॥१४॥ अथनेच्छतिसाकञ्चिदस्माकंमदिरेक्षणा ॥ ततस्तस्यभवित्रीसायोदमंघातयिष्यति ॥ १५ ॥

दमन करनेवाले, उन दमको राजकन्याने वरण किया। यह देखकर वह कामबाणसे मोहितचित्त हो परस्पर इस प्रकार परामर्श करने लगे ॥१२॥ हम इस रूपशालिनी कन्याको इसके निकटसे बलपूर्वक ग्रहण करके घरको जाँयगे ॥१३॥ इसके पीछे यह वरारोहा इस स्वयंवरके विधानानुसार हममें जिसको इच्छानुसार स्वामिबुद्धिसे ग्रहण करे, यह कन्या उसीकी धर्मोपपादिता भार्या होगी ॥१४॥ और यदि यह मदिरेक्षणा हममें से किसीको भी अपनी इच्छानुसार ग्रहण न करे तो जो दमको मारडाले, यह कन्या उसीकी भार्या होगी ॥ १५ ॥

मार्कण्डेयजी बोले--उन तीन राजपुत्रोंने इस प्रकार निश्चय करके दमके पार्श्ववर्त्ती उस सुंदरीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस अवसरमें दमकी ओरके कितने ही राजा उनकी निन्दा और भर्त्सना करने लगे और अपर कितने ही राजा क्रोधमें भरगये तथा अन्य किमीने मध्यस्थत अवलम्बन करी ॥ १७ ॥ हे महामुने ! इसके उपरांत दम उन सब राजाओंको चारों ओर स्थित देखकर अनाकुल चित्तसे कहने लगे ॥ १८ ॥ दमने कहा--हे भूपालगण ! स्वयंवरको जो सब धर्मकार्यमें गिनते हैं, वास्तवमें वह अधर्म है वा धर्म है ? इन्होंने जो इस स्वयंवरमें प्राप्त हुई कन्याको बलपूर्वक ग्रहण किया है ॥ १९ ॥ यदि स्वयंवर अधर्ममें गिना जाय तो इससे मेरा कार्य नहीं है, यह

॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतितेनिश्चयंकृत्वात्रयःपार्थिवनन्दनाः ॥ जगृहुस्तांसुचार्वङ्गींदमपार्श्वानुवर्त्तिनीम् ॥ १६ ॥ ततःकेचिन्नृपास्तेषांयेतत्पक्षाविचुक्रुशुः ॥ चुक्रुशुश्चापरेभूपाःकेचिन्मध्यस्थतांगताः ॥ १७ ॥ ततोदमस्तान्भूपालानवलोक्यसमन्ततः ॥ अनाकुलमनावाक्यमिदमाहमहामुने ॥ १८ ॥ दमउवाच ॥ ॥ भोभूपाधर्मकृत्येषुयद्वदन्तिस्वयंवरम् ॥ दशार्णपतिनाभूपाःकृतेधर्म्ये स्वयंवरे ॥ अधर्मोवाऽथवाधर्मोयदेभिर्गृह्यतेबलात् ॥ १९ ॥ यद्यधर्मोनमेकार्यमन्यभार्य्याभविष्यति ॥ धर्मोवातदलंप्राणैर्यैरक्ष्यन्तेऽरिलंघने ॥ २० ॥ ततोदशार्णाधिपतिश्चारुवर्मानराधिपः ॥ निःशब्दंकारयित्वातत्सदःप्राहमहामुने ॥ २१ ॥ दमेनयदिदंप्रोक्तंधर्माधर्माश्रितंनृपाः ॥ तद्वदध्वंयथाधर्मोममास्यचनलुप्यते ॥ २२ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ ततःकेचिन्महीपालास्तमूचुर्वसुधाधिपम् ॥ परस्परानुरागेणगान्धर्वोविहितोविधिः ॥ २३ ॥ क्षत्रियाणांपरमयंनविट्शूद्रद्विजन्मनाम् ॥ दममाश्रित्यनिष्पन्नः सचास्यादुहितुस्तव ॥ २४ ॥

अन्यकी भार्या हो और यदि उसको आप धर्म कहकर निश्चय करते हैं,तो इस शत्रुलांछित प्राण धारणकी क्या आवश्यकता है ? ॥२०॥ हे महामुने ! अनन्तर दशार्णाधिपति महाराज चारुकर्माने सभास्थल निःशब्द कराकर कहा ॥ २१ ॥ हे नृपगण ! दमने धर्माधर्मके संबंधमें जो बात उठाई है, आप लोग इसके संबंधमें ऐसी सम्मति प्रकाश कीजिये जिससे आपका धर्मलोप न हो ॥ २२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--तब कितने ही महीपाल उन राजासे कहने लगे परस्परके अनुरागसे गांधर्व विवाह संपन्न होता है ॥ २३ ॥ यह विवाह क्षत्रियोंके पक्षमें ही

श्रेष्ठ है. ब्राह्मण वैश्य वा शूद्रके पक्षमें नहीं है, दमके संग ही आपकी इस कन्याका गांधर्व विवाह संपन्न हुआ है ॥ २४ ॥ अतएव हे पार्थिव ! आपकी कन्या उक्त धर्मानुसार दमकी ही भार्या हुई है। जो कामात्मा हैं, वही मोहके वश होकर इसके विरोधी होते हैं ॥ २५ ॥ हे विप्र ! इसके उपरान्त विपक्ष राजाओंकी ओर जो भूपाल थे, वह सब महात्मा दशार्णाधिपतिसे इस प्रकार कहने लगे ॥ २६ ॥ यह मोहके वश होकर क्या कहते हैं, यह गांधर्व विवाह क्षत्रियके पक्षमें तो प्रशस्त है ही नहीं इसके अतिरिक्त अन्य विवाह भी प्रशस्त नहीं हैं शस्त्र-जीवियोंका एकमात्र राक्षसविवाह ही प्रशस्त है ॥ २७ ॥ हे अवनीश्वरगण ! जो पुरुष विपक्षका विनाश करके बलात्कारसे इस कन्याको ग्रहण कर

इतिधर्माद्दमस्यैषादुहितातवपार्थिव ॥ योऽन्यथावर्त्ततेमोहात्कामात्मासम्प्रवर्त्तते ॥ २५ ॥ तथाऽपरेतदाप्रोचुर्महात्मानोहिभूभृताम् ॥ पक्षेयेभूभृतोविप्रदशार्णाधिपतिंवचः ॥ २६ ॥ मोहात्किमाहुर्धर्मोऽयंगान्धर्वक्षत्रजन्मनः ॥ नवेत्पशास्तानान्योहिराक्षसःशस्त्रजीविनाम् ॥ २७ ॥ बलादिमांयोहरतिहत्वातुपरिपन्थिनः ॥ तस्यैषास्याद्राक्षसेनविवाहेनावनीश्वराः ॥ २८ ॥ प्रधाननरएपोऽत्रविवाहद्वितयेमतः ॥ क्षत्रियाणामतोधर्मोमहानन्दादिभिःकृतः ॥ २९ ॥ ॥ मार्कण्डेउवाच ॥ ॥ अथप्रोचुःपुनर्भूपायेःपूर्वमुदितोनृपः ॥ परस्परानुरागेणजातिधर्माश्रितंवचः ॥ ३० ॥ सत्यंशस्तोराक्षसोऽपिक्षत्रियाणांपरोविधिः ॥ किन्त्वमीजनकन्याम्येकुमार्य्यानुमतोवरः ॥ ३१ ॥ हत्वातुपितृसम्बन्धंबलेनह्रियतेहिया ॥ सराक्षसोविधिःप्रोक्तोनात्रभर्तृकरेस्थिता ॥ ३२ ॥ पश्यतांमत्र्भूपानाम नयायद्वृतोदमः ॥ गान्धर्वस्येहनिष्पत्तौविवाहोराक्षसोऽत्रकः ॥ ३३ ॥

सकेगा राक्षसविवाहके विधानानुसार यह पत्नी उसीको प्राप्त होगी ॥ २८ ॥ क्षत्रियोंके संबंधमें इन दोनों विवाहके मध्य जब राक्षस विवाह ही प्रधान है तब महानन्द इत्यादि राजपुत्रोंने धर्मव्यवहार ही किया है ॥ २९ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—जिन्होंने पहिले राजाओंके सामने परस्परानुराग और जातिधर्म विषयक वचन कहे थे, वह सब राजा फिर कहने लगे ॥३०॥ सत्य है. क्षत्रियोंके पक्षमें राक्षस विवाह प्रशस्त और श्रेष्ठ विधि है. किन्तु इस राजकन्याने पिताके अधीन रहकर कुमारी अवस्थामें दमको वरा है ॥३१॥ पितृपक्षको हत और आहत करके यदि कन्या हरणकरीजाय उसीको राक्षस विवाह कहते हैं, किन्तु पतिके हस्तगत कन्याको हरण करनेसे वह राक्षस विवाह नहीं होगा॥३२॥ सब राजाओंके

देखते हुए जब इस सुमनाने दमको ही वरा है, तो यह विवाह गान्धर्व विधानसे संपन्न हुआ है, इसमें फिर राक्षस विधी क्या है ? ॥ ३३ ॥ विवाहिता कन्याका कन्यात्व नहीं रहता हे नृपतिगण ! विवाहके संगही कन्याका संबंध जानना चाहिये॥ ३४ ॥ जो दमके हाथसे इसको बलपूर्वक ग्रहण करनेमें उद्यत हुए हैं वह बलके गौरवसे ऐसा कर सकते हैं, किन्तु यह सत्कार्य नहीं है॥३५॥ मार्कण्डेयजी बोले—दमने यह वचन सुनकर कोपसे लाल नेत्र करके धनुष्यपर ज्यारोपण पूर्वक कहा ॥ ३६ ॥ मेरे देखते हुए बलवान् यदि बलात्कारसे मेरी भार्याको हरण करते हैं, तब तो मैंने क्लीब (नपुंसक) होकर ही जन्मग्रहण किया है फिर मेरे कुल गौरव और दोनों भुजामें ही क्या गुण रहा ॥३७॥ यदि मेरा

विवाहितायाःकन्यायायान्यात्वंनैवविद्यते ॥ कान्यायाश्चविवाहेनसम्बन्धःपृथिवीश्वराः ॥३४॥ तइमेयेबलादेनांदमाद‍ादातुमुद्यताः ॥ बलिनस्तेयदिततःकुर्वन्तुनतुसाधुतत् ॥ ३५ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ तच्छ्रुत्वाऽसौदमःकोपकषायीकृतलोचनः ॥ आरोपयामासधनुर्वचनंचेदमब्रवीत् ॥ ३६ ॥ ममापिभार्य्यांबलिभिःपश्यतोह्रियतेयदि ॥ तत्कुलेनभुजाभ्यांवाकोगुणःक्लीबजन्मनः ॥३७॥ धिङ्ममास्त्राणिधिक्छौर्य्यंधिक्छरान्धिक्छरासनम् ॥ धिग्व्यर्थमेकुलेजन्ममरुत्तस्यमहात्मनः ॥ ३८ ॥ यदिभार्य्यामिमेमूढाःसमादायबलान्विताः ॥ प्रयान्तिजीवतोधिक्तांममव्यर्थमनुष्यताम् ॥ ३९ ॥ इत्युक्त्वातान्महीपालान्महानन्दमुखान्बली ॥ अथाब्रवीत्तदासर्वान्महारिदमनोदमः ॥४०॥ एषातिशोभनाबालाचार्वङ्गीमदिरेक्षणा ॥ किन्तस्यजन्मनाभार्य्यानयस्येयंकुलोद्भवा ॥४१॥ इतिसञ्चिन्त्यभूपालास्तथायततसंयुगे ॥ यथानिर्जित्यमामेतांपत्नींकुरुतमानिनः ॥ ४२ ॥

जीवित रहते यह मूढ बलयुक्त होकर मेरी भार्या हरण करके चले जाय तो मेरे अस्त्र, शौर्य, शरसमूह और शरासनको धिक्कार है और महात्मा मरुत्तके वंशमें मेरे जन्मग्रहण व्यर्थ तथा मेरी व्यर्थ मनुष्यताको भी धिक्कार है ॥ ३८ ॥ ३९ ॥ बलवान् महाशत्रुदमनकारी दमने यह बात कहकर फिर महानन्द इत्यादि सब राजाओंसे कहा ॥ ४० ॥ हे सन्मानित भूपालो ! "यह अत्यन्तमनोहर मदिरेक्षणा सत्कुलोत्पन्न सुन्दरी बालिका जिसकी भार्या नहीं हुई, उसका जन्म ही वृथा है" ॥ ४१ ॥ तुम इस प्रकार विचारकर जिससे मुझको पराजयपूर्वक इसको पत्नी कर सकोगे संग्राममें वैसाही यत्न करो ॥ ४२ ॥

दम यह कहकर उस काल अन्धकारद्वारा वृक्षराजिके समान राजाओंको आच्छादन करके बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ ४३ ॥ उन सब महा वीर राजाओंने भी शर, शक्ति, ऋष्टि और मुद्गर इत्यादि परित्याग किये, किन्तु दमने लीलापूर्वकही उन सब अस्त्रोंको काट डाला ॥ ४४ ॥ हे मुने ! उस समय वह महीपालगण दमके छोडे अस्त्र और नरिष्यन्तपुत्र दमभी उनके समस्त अस्त्र छेदन करने लगे ॥४५॥ राजपुत्रोंके सहित दमका इस प्रकार युद्धहो रहा था इसी अवसरमें खड्ग हाथमें लिये महानन्द दमके सन्मुख आया ॥ ४६ ॥ दमने उस महा युद्धस्थलमें खड्ग पाणि उसको आया हुआ देखकर इन्द्र जिस प्रकार जलकी वर्षा करते हैं, इसी प्रकार बाणोंकी वर्षा आरम्भ करी ॥ ४७ ॥ महानन्दने

इत्याभाष्यततस्तत्रशरवर्षममुंचत ॥ छादयन्पृथिवीपालांस्तमसेवमहीरुहान् ॥ ४३ ॥ तेऽपिवीरामहीपालाःशरशक्त्यृष्टिमुद्गरान् ॥ मुमुचुस्तत्प्रयुक्तांश्चदमश्चिच्छेदलीलया ॥ ४४ ॥ तेऽपितत्प्रहितान्बाणांस्तेषांचासौशरोत्करान् ॥ चिच्छेदपृथिवीशानांनरिष्यन्तात्मजोमुने ॥ ४५ ॥ वर्त्तमानेतदायुद्धेदमस्यक्षितिपात्मजैः ॥ प्रविवेशमहानन्दःखड्गपाणिर्यतोदमः ॥ ४६ ॥ तमायान्तंदमोदृष्ट्वा खड्गपाणिंमहामृधे ॥ मुमोचशरवर्षाणिवर्षाणीवपुरन्दरः ॥ ४७ ॥ तदस्त्राणिततस्तानिशरजालानितत्क्षणात् ॥ महानन्दःप्रचिच्छेद खड्गेनान्यानवंचयत् ॥ ४८ ॥ ततोऽगेपात्समारुह्यतंदमस्यतदारथम् ॥ महानन्दोमहावीर्योदमेनयुयुधेसह ॥ ४९ ॥ बहुधायुध्यमा नस्यमहानन्दस्यलाघवात् ॥ दमोमुमोचहृदयेशरंकालानलप्रभम् ॥ ५० ॥ तंलग्नमात्मनोत्कृष्यविभिन्नेनतोहृदा ॥ दमप्रतिविचि क्षेपमहानन्दोऽसिमुज्ज्वलम् ॥ ५१ ॥ पतन्तंचैनमुल्काभंशक्त्याचिक्षेपतंदमः ॥ शिरोवेतसपत्रेणमहानन्दस्यचाच्छिनत् ॥ ५२ ॥

तत्काल खड्ग द्वारा उनके अस्त्र समूह और शरजालको छेदन किया। हाथकी लाघवतासे यह कार्य इतनी शीघ्र संपन्न किया कि अन्यान्य राजा उसको देख भी नहीं सके) ॥ ४८ ॥ अनन्तर महावीर्यवान् महानन्द क्रोधमें भरा हुआ दमके रथपर चढकर उनके संग युद्ध करने लगा ॥ ४९ ॥ महानन्दके बहुत काल पर्यन्त युद्ध करनेपर फिर दमने अत्यन्त लघुहस्तसे उसके हृदयमें कालाग्निके समान प्रभायुक्त बाण छोडा ॥ ५० ॥ महानन्दने हृदयमें लगे हुए उस बाणको स्वयंही हृदयसे निकालकर विभिन्न हृदयसे ही दमके ऊपर उज्ज्वल असि चलाई ॥ ५१ ॥ दमने उस उल्काके समान असिके गिरते गिरतेही शक्ति द्वारा छेदन करके तत्काल बेतस पत्र बाणसे महानन्दका मस्तक काट

डाला ॥ ५२ ॥ महानन्दके मरतेही अधिकांश राजा युद्धसे पराङ्मुख हुए; केवल कुण्डिनाधिपति वपुष्मान् स्थिति करने लगा ॥ ५३ ॥ वह दाक्षिणात्य--भूपालतनय बलके गर्वसे मत्त वपुष्मान् रणका आश्रय लेकर दमके सहित युद्ध करने लगा ॥ ५४ ॥ रणस्थलमें दमने तत्काल उस युद्ध करते हुए वपुष्मान्‌की उग्र तलवार व सारथी मस्तक और ध्वजा काट डाली॥५५॥तब वपुष्मान्‌ने खड्गके कट जानेपर बहुत कांटोंसे युक्त गदा ग्रहण करी, किंतु दमने वह गदा उसके हाथमें रहते रहतेही काट डाली॥५६॥फिर वपुष्मान्‌ने अन्य उत्कृष्ट अस्त्र ग्रहण किया, परंतु दमने उसको उसी समय बाणोंसे विद्ध करके भूमिमें गिरादिया॥५७॥राजपुत्र वपुष्मान्‌ने भूमिमें गिर विह्वलाङ्ग और कम्पितकलेवर होनेसे युद्धकी

तस्मिन्हतेमहानन्देप्राचुर्य्येणपराङ्मुखाः ॥ बभूवुःपार्थिवास्तत्रैववपुष्मान्कुण्डिनाधिपः ॥ ५३ ॥ दमेनयुयुधेचासौबलगर्वमदान्वितः ॥ दाक्षिणात्यमहीपालतनयोरणगोचरः ॥ ५४ ॥ युध्यमानस्यतस्योग्रंकरवालंसवैलघु ॥ चिच्छेदसारथेश्चैवशिरःसंख्येतथाध्वजम् ॥ ५५ ॥ छिन्नखड्गोगदांसोऽथजग्राहबहुकण्टकाम् ॥ तामप्यस्यसचिच्छेदकरस्थामेवसत्वरः ॥ ५६ ॥ यावदन्यत्समादत्तेसवपुष्मान्वरायुधम् ॥ तावच्छरेणतंविद्धादमोभूमावपातयत् ॥ ५७ ॥ सपातितस्ततोभूमौविह्वलाङ्गःसवेपथुः ॥ विनिवृत्तमतिर्युद्धाद्बभूवक्षितिपात्मजः ॥ ५८ ॥ तमालोक्यतथाभूतमयुयुद्धमतिमात्मवान् ॥ उत्सृज्यादायसुमनांसुमनाःप्रययौदमः ॥ ५९ ॥ ततोदशार्णाधिपतिःप्रीतिमानकरोत्तयोः ॥ दमस्यसुमनायाश्चविवाहंविधिपूर्वकम् ॥ ६० ॥ कृतदारोदमस्तत्रदशार्णाधिपतेःपुरे ॥ स्थित्वाऽल्पकालंप्रययौसभार्योनिजमन्दिरम् ॥ ६१ ॥ दशार्णाधिपतिश्चास्मैदत्त्वानागांस्तुरङ्गमान् ॥ रथगोऽश्वखरोष्ट्रांश्चदासीदासांस्तथाबहून् ॥ ६२ ॥ वस्त्रालङ्कारचापादिवरोपस्करमासनम् ॥ अन्यैस्तैश्चतथाभाण्डैःपरिपूर्णंव्यसर्जयत् ॥ ६३ ॥

इच्छा छोडदी ॥५८॥ मनस्वी दमने उसको इस अवस्था और युद्धमें अनिच्छुक देखकर छोड दिया और सुमनाको लेकर प्रसन्नचित्तसे चले गये ॥ ५९ ॥ अनंतर दशार्णाधिपतिने प्रसन्नचित्तसे दम और सुमनाका विवाहकार्य विधिपूर्वक संपादन किया॥६०॥ दम स्त्री ग्रहण कर दशार्णाधिपतिके पुरमें कुछ काल रहे और फिर भार्याके सहित अपने घरको चलेगये॥६१॥दशार्णाधिपतिने उस समय अनेक हाथी, घोडे, रथ, गौ, खर, ऊंट, दास, दासी ॥ ६२ ॥ वस्त्र, अलंकार, धनुष इत्यादि अनेक प्रकारकी बहुमूल्य सामग्री यौतुकरूपसे दानपूर्वक धन रत्नादिपूर्ण करके

उनको बिदा किया ॥ ६३ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥ मार्कण्डेयजी बोले--हे महामुने ! क्षितिपालनंदन दमने सुमनाको पत्नीरूपमें लाभ कर फिर माता पिताके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १ ॥ और सुंदरी सुमनाने भी सास और श्वशुरको प्रणाम किया । हे विप्र ! तब उन्होंने भी दोनोंको आशीर्वाद वचनोंके द्वारा अभिनंदन किया ॥ २ ॥ जब स्त्री ग्रहण करके दम दशार्णाधिपतिके पुरसे आगये, तब नरिष्यन्तके पुरमें महोत्सव आरंभ हुआ ॥ ३ ॥ महीपति नरिष्यन्त दशार्णेश्वरके सहित वैवाहिक संबंध और पुत्रके द्वारा अनेक राजाओंके हरनेका संवाद सुनकर परम संतोषको प्राप्त हुए ॥ ४ ॥ इसके उपरान्त राजपुत्र दम

इतिश्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३०॥ ॥मार्कण्डेयउवाच॥ ॥ सतांलब्ध्वातथापत्नींसुमनांसुमहामुने ॥
प्रणम्यसपितुःपादौमातुश्चक्षितिपात्मजः ॥१॥ साचतौश्वशुरौसुभ्रूर्ननामसुमनातदा॥ताभ्यांतौचतदाविप्रआशीर्भिरभिनन्दितौ ॥२॥
महोत्सवश्चसंजज्ञेनरिष्यन्तस्यवैपुरे ॥ कृतदारेचसंप्राप्तेदशार्णाधिपतेपुरात् ॥ ३ ॥ सम्बन्धिनंदशार्णेशंजितांश्चपृथिवीश्वरान् ॥
श्रुत्वापुत्रेणमुमुदेनरिष्यंतोमहीपतिः ॥ ४ ॥ सोऽपिरेमेसुमनयामहाराजसुतोदमः ॥ वरोद्यानवनोद्देशप्रासादगिरिसानुषु ॥ ५ ॥
अथकालेनमहतारममाणादमेनसा ॥ अवापगर्भंसुमनादशार्णाधिपतेः सुता ॥ ६ ॥ सोऽपिराजानरिष्यन्तोभुक्तभोगोमहीपतिः ॥ वयः
परिणतिंप्राप्यदमंराज्येऽभिषिच्यच ॥ ७ ॥ वनंजगामेंद्रसेनापत्नींचास्यतपस्विनी ॥ वानप्रस्थविधानेनमतत्रसमतिष्ठत ॥ ८ ॥
दाक्षिणात्यः सुदुर्वृत्तः संक्रन्दनसुतोवने ॥ वपुष्मान्समृगान्हन्तुययावल्पपदानुगः ॥ ९ ॥

विचित्र उद्यान वनप्रदेश प्रासाद और पर्वत इत्यादि स्थानोंमें सुमनाके संग विहार करने लगे ॥ ५ ॥ दमके संग इस प्रकार विहार करते करते कुछ काल पीछे दशार्ण राजाकी कन्या सुमनाने गर्भ धारण किया ॥ ६ ॥ इसी समय राजा नरिष्यन्त भोगसमूह उपभोगपूर्वक वयसकी परिणति अवस्था अर्थात् वृद्धावस्था देख दमको राज्यमें अभिषिक्तकर ॥ ७ ॥ यशस्विनी पत्नी इन्द्रसेना सहित वनमें चले गये और वहां वानप्रस्थ विधानानुसार वास करने लगे ॥ ८ ॥ एक समय दुराचारी दक्षिणात्य राजा संक्रन्दनका पुत्र वपुष्मान् अल्प अनुगामी मनुष्योंके सहित उस वनमें मृगयाके लिये उपस्थित हुआ ॥ ९ ॥

वहाँ मैलसे युक्त शरीरवाले तपस्वी नरिष्यन्त और उनकी पत्नी तपसे दुबले अंग हुई इन्द्रसेनाको देखकर ॥ १० ॥ पूछा कि, तुम कौन हो ? ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य; कौन जाति तुम वानप्रस्थ अवलम्बन करके वनवासी हुए हो ? सो मुझसे कहो ॥ ११ ॥ राजा मौनव्रती होनेसे इस बातका उत्तर नहीं देसके, किन्तु इन्द्रसेनाने उससे सब वृत्तान्त यथावत् कह दिया ॥ १२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–उनको शत्रुका पिता नरिष्यन्त जानकर वपुष्मान्‌ने "पाया है" शब्द उच्चारण पूर्वक क्रोधसे उनकी जटा पकड ली ॥ १३ ॥ उस काल इंद्रसेना हाहाकार शब्द और बाष्पगद्गद स्वर रोने लगी । तब दुराचारीने उसी समय म्यानसे तलवार खैंचकर कहा ॥ १४ ॥ " जिसनेमुझको समरमें परास्त

स तं दृष्ट्वा नरिष्यन्तं तापसं मलपङ्किनम् ॥ इन्द्रसेनां च तत्पत्नीं तपसातिसुदुर्बलाम् ॥ १० ॥ पप्रच्छ कस्त्वं भो विप्रः क्षत्रियो वा वनेचरः ॥ वानप्रस्थमनुप्राप्तो वैश्यो वा मम कथ्यताम् ॥ ११ ॥ ततो मौनव्रती भूपो न हि तस्योत्तरं ददौ ॥ इन्द्रसेना च तत्सर्वमाचष्टास्मै यथातथम् ॥ ॥ १२ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ ज्ञात्वा तञ्च नरिष्यन्तं वपुष्मान्पितरं रिपोः ॥ प्राप्तोऽसीति वदन्कोपाज्जटासु परिगृह्य च ॥ १३ ॥ हाहेति चन्द्रसेनायां रुदत्यां बाष्पगद्गदम् ॥ चकर्ष कोपात्खड्गं च वाक्यं चेदमुवाच ह ॥ १४ ॥ निर्जितः समरे येन येन मे सुमना हृता ॥ दमस्य तस्य पितरं हनिष्येऽवतु तं दमः ॥ १५ ॥ येनाखिलमहीपालपुत्राः कन्यार्थमागताः ॥ अवधूता हनिष्येऽहं पितरं तस्य दुर्मतेः ॥ १६ ॥ यौवनास्त्रस्वरूपेषु मदो यस्य दुरात्मनः ॥ स दमो वारयत्वेष हन्मि तस्याग्रिपो गुरुम् ॥ १७ ॥ ॥ मार्कण्डेय उवाच ॥ ॥ इत्युक्त्वा स दुराचारी वपुष्मानवनीपतिः ॥ क्रंदन्त्यामिन्द्रसेनायां शिरश्चिच्छेद तस्य च ॥ १८ ॥ ततो धिग्धिङ्मुनिजना अन्ये च वनवासिनः ॥ तमूचुः स च तं हत्वा जगाम स्वपुरं वनात् ॥ १९ ॥

किया था जो मेरी सुमनाको हरकर लेगया है, आज उस दमके पिताको नष्ट करता हूं, दम आकर रक्षा करे ॥ १५ ॥ कन्याके अर्थ आये हुए सब राजपुत्रोंको जिसने अपमानित किया है, उस दुर्मति दमके पिताका आज मैं वध करता हूं ॥ १६ ॥ जो दुरात्मा स्वाभावसे ही योद्धाओंको दमन करनेवाला है, आज उसी शत्रुके पिताको निहत करता हूं, दम आकर निवारण करे" ॥ १७ ॥ मार्कण्डेयजी बोले–यह कहकर दुरात्मा राजा वपुष्मान्‌ने रोती हुई इंद्रसेनाके सामनेही नरिष्यंतका शिर काट डाला ॥ १८ ॥ तब मुनिगण और अपरापर

वनवासी सब उसको धिक्कार देने लगे फिर वह भी नारिष्यन्तको इस अवस्थामें देखकर वनसे अपने पुरमें चला गया ॥ १९ ॥ वपुष्मानके चले जाने-पर इंद्रसेनाने लम्बे श्वास छोड़कर एक शूद्रतापसको पुत्रके पास भेजा ॥ २० ॥ उससे कह दिया कि, तुम शीघ्र जाकर हमारे पुत्र दमसे हमारा वृत्तान्त कहो । तुम मेरे स्वामीका वृत्तान्त समस्तही जानते हो । अतएव तुमसे और इस विषयमें कुछ कहनेकी आवश्यकता नहीं है ॥ २१ ॥ किंतु तो भी महीपतिका उपस्थित ऐसा अपमान देखनेसे अत्यंत दुःखित होकर मैं जो कहती हूं मेरे पुत्रसे सब कहो ॥ २२ ॥ तुम राजा हो, तुम चारों आश्रमके प्रतिपालक भर्त्ता नियुक्त हुए हो, किंतु तुम जो तपस्वी लोगोंकी रक्षा नहीं करते, यह क्या तुमको उचित है ? ॥ २३ ॥ मेरे स्वामी

गतेतस्मिन्विनिश्वस्यसेन्द्रसेनावपुष्मति ॥ प्रेषयामासपुत्रस्यसमीपंशूद्रतापसम् ॥ २० ॥ गच्छेथाआशुमेपुत्रंदमंब्रूहिवचोमम ॥ अभिज्ञोह्यसिमद्भर्तृवृत्तान्तंप्रोच्यतेऽत्रकिम् ॥ २१ ॥ तथापिवाच्यःपुत्रोमेयद्ब्रवीम्यतिदुःखिता ॥ लंघनामीदृशींप्राप्तांविलोक्यैतांमहीपते ॥ २२ ॥ मद्भर्त्ताऽधिकृतोराजाचतुर्णांपरिपालकः ॥ त्वमाश्रमाणांकिंयुक्तंतापसान्यन्नरक्षसि ॥ २३ ॥ भर्त्ताममनरिष्यन्तस्ता पसस्तपसिस्थितः ॥ विलपन्त्यास्तथानाथोयथानासितथात्वयि ॥ २४ ॥ आकृष्यकेशेषुबलादपराधंविनानतः ॥ हतोवपुष्मता ख्यातिमितितेभूपनिर्गता । २५ ॥ एवंस्थितेतत्क्रियतांयथाधर्मोनलुप्यते ॥ तथाचनैववक्तव्यंमाताहंतापसीयतः ॥ २६ ॥ पितावृद्धस्तपस्वीचनापराधनेदूषितः ॥ निहतोयेनयत्तस्यकर्तव्यंतद्विचिन्त्यताम् ॥२७॥ सन्तितेमन्त्रिणोवीराःमन्त्रशास्त्रार्थवेदिनः ॥ तैःमहालोच्ययत्कार्यमेवंभूतेकुरुष्वतत् ॥ २८ ॥

नारिष्यंत तपस्वी होकर तपस्या करते थे । किंतु तुम रक्षा कर्त्ताके वर्त्तमान होते भी अनाथके समान बिना अपराध उनके केश खेंचकर मेरे विलाप करते करते वपुष्मानने उनको मार डाला है।तुम्हारे संबंधमें यह हुआ कि, तुमने राजा होकर इस प्रकार ख्याति लाभ करी ॥ २४॥२५॥ इस अवस्थामें जिससे धर्मलोप न हो उसीके उपयुक्त कार्य करो।मैं तापसी हूं, इससे अधिक और कुछ [illegible] कहना । [illegible] पिता एक तो वृद्ध थे. इसपर भी तपस्वी और फिर वह किसी अपराधमें अपराधी भी नहीं थे ऐसी अवस्थामें [illegible] अब इसके संबंधमें जो कर्त्तव्य हो,उस विषयकी भलीभाँति चिंता करो॥२७॥तुम्हारे शास्त्रवेत्ता वीरमंत्री विद्यमान हैं उनसे परामर्श करके इस अवस्था [illegible]

हो, वह करो॥२८॥हे नराधिप! तुम्हारे पिता महाराज नरिष्यंतने मृत्युके समय कहा है कि, मैं तापस हूं, इन विषयमें मेरा कुछ अधिकार नहीं है तुम्हीं इसका प्रतिकार करना" ॥२९॥ विदूरथके पिता जिस प्रकार यवनके द्वारा निहत हुए थे उसी प्रकार हे पुत्र ! तुम्हारे पिताका भी वध करके वपुष्मान्‌ने तुम्हारे कुलको नष्ट किया है ॥ ३० ॥ असुरराज जम्भके पिताको जब सर्पोंने काटा था, तब जंभने संपूर्ण पातालवासी पन्नगोंको नियत किया था ॥ ३१ ॥ और राक्षसके द्वारा पिता शक्तिको निहत हुआ सुनकर पराशरने संपूर्ण राक्षसकुलको अग्निमें पातित अर्थात् दग्ध किया था॥३२॥अपने वंशके अन्य किसीका अपमान होनेपर क्षत्रिय जब उसको भी सहन नहीं कर सकते,तो फिर पिताके वधकी बात क्या

नास्माकमधिकारोऽतापसानांनराधिप ॥ कुरुष्वैतदितीत्थंत्वमेवंभूपतिभाषितम् ॥ २९ ॥ विदूरथस्यजनकोयवनेनयथाहतः ॥ तथा यंतवपुत्रस्यकुलंतेनविनाशितम् ॥३०॥ जम्भस्यासुरराज्यस्यपितादष्टोभुजङ्गमैः ॥ तेनाप्यखिलपातालवासिनःपन्नगाहताः ॥३१॥ पराशरेणपितरंशक्तिंतंरक्षसाऽऽहतम् ॥ श्रुत्वाऽग्नौपातितंकृत्स्नंरक्षसामभवत्कुलम् ॥३२॥ अन्यस्यापिस्ववंशस्यलंघनाक्रियतेहिया ॥ तांनालंक्षत्रियःसोढुंकिंपुनःपितृमारणम् ॥ ३३ ॥ नायंपितातेनिहतोनास्मिञ्छस्त्रंनिपातितम् ॥ त्वामत्रनिहतंमन्येत्वयिशस्त्रंनिपातितम् ॥३४॥ बिभेत्यस्यहिकंःशस्त्रंन्यस्तंयेनवनौकसाम् ॥ तवभूपस्यपुत्रस्यमाबिभेतुबिभेतुवा ॥ ३५ ॥ तवेयंलंघनायुक्तायदस्मिंस्तत्समाचर ॥ वपुष्मतिमहाराजसभृत्यज्ञातिबांधवे ॥ ३६ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ ॥ इतिसंक्रान्तसन्देशमिन्द्रसेनाविसृज्यतम् ॥ पतिदेहमुपाश्लिष्यविवेशाग्निमनस्विनी ॥ ३७ ॥

कहूं?॥३३॥मेरे विचारसे तुम्हारे पिता निहत नहीं हुए हैं, उनके प्रति शस्त्रपात भी नहीं हुआ हैं इसमें तुम्ही निहत हुए हो और तुम्हारे ऊपरही शस्त्र निपतित हुआ है ॥३४॥ जो व्यक्ति वनवासियोंके ऊपर शस्त्र चलाता है उसका कौन भय करता है और उसका पौरुष क्या है ? वह पापी है, तुम उनके पुत्र और राजा हो, तुम यदि शत्रुका विनाश करो तो सब तुमसे भय करेंगे।इसके अन्यथा होनेसे कोई भी तुमसे भय नहीं करेगा इस कारण तुम्हारे राज्यशासनमेंभी विघ्न होगा॥३५॥यह अपमान तुम्हाराही हुआ है अतएव हे महाराज!भृत्यज्ञाति और बांधवोंके सहित वपुष्मान्‌के संबंधमें जो कर्त्तव्य है वह करो॥३६॥मार्कण्डेयजी बोले—मनस्विनी इंद्रसेनाने; तापससे यह बात कही और फिर उसको विदा दे—पतिके देहको

आलिंगनपूर्वक अनलमें प्रवेश किया ॥ ३७॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायामेकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३१ ॥ मार्कण्डेयजी बोले--शूद्रतापसने इंद्रसेनाकी इसप्रकार आज्ञा पाय, दमके समीप जाय, उनके पिताकी मृत्युका संवाद और रानी इंद्रसेनाने जिसप्रकार आज्ञा दी थी, वह सब कहा॥१॥जब तापसने पिताके वध होनेका वृत्तान्त आदिसे अन्ततक वर्णन किया,तब राजा दम घृताहुतिसे उठी हुई अग्निके समान क्रोधसे जल उठे ॥ २ ॥ हे महामुने ! वह स्वभावसे धीर होनेपर भी उस काल क्रोधाग्निसे प्रज्वलित हो हाथसे हाथ मलकर कहने लगे ॥ ३ ॥ मुझ पुत्रके जीवित रहते वंशका अपमान करके नृशंसने मेरे पिताको अनाथ के समान वध किया है॥४॥मैं तापकरूं या नपुंसकतासे क्षमाकरू मैं दुष्टोंका

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितएत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ इन्द्रसेनासमाज्ञप्तःसगत्वाशूद्रतापसः॥ समाचष्टयथापूर्वंदमायनिधनंपितुः ॥१॥ तापसेनसमाख्यातेदमस्तेनपितुर्वधे ॥ क्रोधेनातीवजज्वालहविषेवाग्निरुद्धत ॥२॥ सतुक्रोधाग्निनाधीरोदह्यमानोमहामुने ॥ करंकरेणनिष्पिष्यवाक्यमेतदुवाचह ॥ ३ ॥ अनाथइवमेतातोमयिपुत्रेतुजीवति ॥ घातितःसुनृशंसेनपरिभूयकुलंमम ॥४॥ तापंकरोम्यहंकिवाप्येषक्लैब्यात्क्षमाम्यहम् ॥ दुर्वृत्तशांतौशिष्टानांपालनेऽधिकृतावयम् ॥५॥ पितरंचापिनिहतं दृष्ट्वाजीवन्तिशत्रवः ॥ तत्किमेतेनहुनाहातातेतिचकिंपुनः ॥६॥ विलापेनात्रयत्कृत्यंतदेपोऽत्रकरोम्यहम् ॥ यद्यहंतस्यरक्तेनदेहोत्थेन वपुष्मतः ॥ नकरोमिगुरोस्तृप्तिंतत्प्रवेक्ष्येहुताशनम् ॥ ७ ॥ तच्छोणितेनोदककर्मतस्यामांसेनसम्यग्द्विजभोजनंच ॥ कुर्यांपितुस्तस्यचपिंडदानंनचेत्प्रवेक्ष्यामिहुताशनंतत् ॥ ८ ॥ साहाय्यमस्यासुरदेवयक्षगन्धर्वविद्याधरसिद्धसंघा ॥ कुर्वन्तिचेत्तानपिचास्त्रपूगैर्भस्मीकरोम्येषरुपासमेतः ॥ ९ ॥

दमन और शिष्ट पुरुषोंके पालन करनेमें नियुक्त हुआहूं॥५॥किंतु पिताको निहत देखकर भी मेरे शत्रु अभीतक जीवित है,(सुतरां मैं नपुंसकके समान उनको क्षमा करता हूं, इस प्रकार जनापवाद अवश्य उपयुक्तही कहना चाहिये।)अतएव अधिक बातचीतका क्या प्रयोजन है अथवा 'हे तात!इस भाँति विलाप करनेसेही क्या होगा ॥६॥अब जो कर्त्तव्य है, वह मैं करता हूं यदि मैं वपुष्मानके देहसे निकले रक्तद्वारा पिताका तर्पण न करूं तो अनलमें प्रवेश करूंगा ॥७॥ यदि युद्धमें उसको मारकर उसके शोणितसे मृतपिताका उदक कर्म और मांस द्वारा (राक्षसकुलोत्पन्न) ब्राह्मणोंको भोजन न करा सकूं और उसके मांससे पितरोंको पिंडदान न करूं, तो मैं अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ८ ॥ असुर, देव, यक्ष, गंधर्व, विद्याधर

और सिद्धगण भी यदि उसकी सहायता करें तो तत्काल उनको भी क्रोधसहित अस्त्राग्निद्वारा भस्म करूंगा ॥ ९ ॥ उस शौर्यहीन, अधार्मिक, निंदित दक्षिणात्यको समरमें निहत करके फिर मैं संपूर्ण पृथ्वीको भोग करूंगा अथवा उसके मारनेमें असमर्थ होकर अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ १० ॥ मेरे वनवासी मौनव्रती, तपोनिरत वृद्ध पिताके उद्विग्न होकर शान्तिवचन कहनेपर भी जिस दुर्मतिने उनका वध किया है, मैं अभी समस्त बन्धु, मित्र, पदाति, हस्ती और सेनासहित उसको संहार करूंगा ॥ ११ ॥ मैं अब खड्ग और धनुषको ग्रहण कर, रथपर चढ शत्रुकी सेनामें उपस्थित हो, उनके जिस प्रकार संहारकार्यमें प्रवृत्त होता हूं, वह सब देवगण देखें ॥ १२ ॥ आज वह मेरे संग संग्राममें प्रवृत्त

नाशूरमाधार्मिकमप्रशस्तंतंदाक्षिणात्यंसमरेनिहत्य ॥ भोक्ष्येततोऽहंपृथ्वीचकृत्स्नांवह्निंप्रवेक्ष्याम्यनिहत्यतंवा ॥ १० ॥ सुदुर्मतिंतापस वृद्धघातिनंवनस्थगंमाधुविधिविदग्धगम् ॥ हन्ताहमद्याखिलबन्धुमित्रपदातिहस्त्यश्वबलैःसमेतम् ॥११॥ एषोऽहमादायधनुःसखड्गो रथीतथैवारिबलंसमेत्य ॥ करोमिवैयत्कदनंसमस्ताःपश्यन्तुमेदेवगणाःसमेताः ॥१२॥ योयःसहायोभवितायतस्यमयासमेनस्यरणाय भूयः॥तस्यैवनिःशेषकुलक्षयायसमुद्यतोऽहंनिजबाहुसैन्यः॥१३॥यदिकुलशिखरोऽस्मिन्स्युगेदेवराजःपितृपतिरथचोग्रंदण्डमुद्यम्यको पात् ॥ धनपतिवरुणार्कारक्षितुन्तंयतन्तेनिशितशरवरौघैर्घातयिष्येतथापि ॥१४॥ नियतमतिरदोषःकाननाखण्डलोकानिपतितफलभ क्षःसर्वभूतेषुमैत्रः॥प्रभवतिमयिपुत्रेहिंसितोयेनतातःपिशितरुधिरतृप्तास्तस्यसन्त्वद्यगृध्राः॥१५॥इतीश्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेद्वात्रिं शदधिकशततमोऽध्यायः॥१३२॥मार्कण्डेयउवाच॥इतीप्रतिज्ञायतदानरिष्यंतसुतोदमः॥कोपामर्षविवृत्ताक्षःस्पृश्नुमावृत्यपाणिना ॥१॥

होनेपर जो जो उसका सहायक होगा, अपनी इन स्वीय बाहुरूप सेनाके द्वारा तत्काल उनका भी समस्त कुलक्षय करनेके लिये मैं उद्यत हुआ हूं ॥ १३ ॥ इस युद्धमें वज्रहस्त इन्द्र, क्रोधसहित उग्र दण्ड उद्यत करके यम, अथवा कुबेर वरुण और सूर्य भी यदि उसकी रक्षा करनेका यत्न करें तो भी मैं शोणित श्रेष्ठ बाणोंके द्वारा उनका विनाश करूंगा॥१४॥मुझ प्रभावशाली पुत्रके वर्त्तमान रहते भी जिसने मेरे संयतचित्त,निर्दोष वनवासी, गिरे हुए फलमात्रसे जीविका निर्वाह करनेवाले और सर्व प्रणियोंमें मैत्रीपरायण पिताको वध किया है आज उसके मांस और रुधिरसे गृध्रकुल तृप्ति लाभ करें ॥ १५ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३२ ॥ मार्कण्डेयजी बोले—

नारिष्यन्तपुत्र दमने इस प्रकार प्रतिज्ञा करके कोप और अमर्षमें भर घूर्णित नेत्रोंसे हाथसे श्मश्रुआवरण पूर्वक मूछोंको चढाया ॥ १ ॥ "हा हतोस्मि" कह कर पिताकी चिन्ता और दैवकी निन्दा करने लगे। इसके पीछे पुरोहितोंको बुलाकर सब मंत्रियोंके सामने कहा ॥ २ ॥ दम बोले पिताजी स्वर्गमें चले गये हैं, शूद्र तपस्वीने जो कहा वह आप जान चुके हैं अब इस समय जो करना चाहिये वह आप कहिये ॥ ३ ॥ सबके शासनकर्ता वह नृप वृद्धावस्थामें वानप्रस्थ व्रत अवलम्बन पूर्वक तपस्वी होकर मौनव्रती थे, वपुष्मानके पूछनेपर मेरी माता इन्द्र सेनाने ॥ ४ ॥ वपुष्मान्‌को सब सत्य परिचय दिया। तब उस दुष्टात्माने खड्ग खैंचकर बायें हाथमें ॥ ५ ॥ लोक-

हाहतोऽस्मीतिपितरंध्यात्वादैवंविनिंद्यच ॥ प्रोवाचमंत्रिणःसर्वानानिनायपुरोहितम् ॥ २ ॥ ॥ दमउवाच ॥ ॥ यदत्रकृत्यं तद्ब्रूततातेप्राप्तेसुरालयम् ॥ श्रुतंभवद्भिर्यत्प्रोक्तंतेनशूद्रतपस्विना ॥ ३ ॥ वृद्धस्तपस्वीसनृपोवानप्रस्थव्रतेस्थितः ॥ मौनव्रतधरो ऽशस्त्रोमन्मात्राचेन्द्रसेनया ॥ ४ ॥ प्रोक्तंसंसृष्टयास्वात्म्याद्याथातथ्यंवपुष्मते ॥ तेनापिखड्गमाकृष्य जटांसव्येनपाणिना ॥ ५ ॥ धृत्वाजघानदुष्टात्मालोकनाथमनाथवत् ॥ माताचसंदिश्यहिमांधिक्छब्दंवब्रुतीमती ॥ ६ ॥ मंदभाग्यंचनिःश्रीकंप्रविष्टाहव्यवाहनम् ॥ तमालिंग्यनरिष्यंतंप्रयातात्रिशालयम् ॥ ७ ॥ सोऽहमद्यकरिष्यामियन्ममातुरुदीरितम् ॥ हस्त्यश्वरथपादातैर्न्यंचपर्या कल्प्यताम् ॥ ८ ॥ अनिर्याप्यपितुर्वैरमहत्वापितृघातकम् ॥ अकृत्वाचवचोमातुर्जीवितुंकिमिहोत्सहे ॥ ९ ॥ ॥ मार्कण्डेयउवाच ॥ मंत्रिणस्तद्वचःश्रुत्वाहाहेत्युक्त्वातथाचतत् ॥ कृतवन्तोविमनसःसभृत्यबलवाहनाः ॥ १० ॥

नाथको अनाथके समान पकड़कर मार डाला है। मेरी सती माता मुझ मन्दभागी और श्रीहीनको धिक्कार देती हुई मेरे पिता उन नरिष्यन्तको आलिंगनपूर्वक अग्निमें प्रवेश करके स्वर्गको चली गई है ॥ ६ ॥ ७ ॥ माताने मुझको जिस प्रकार आज्ञा कहला भेजी है, मैं अब उसीके अनुसार कार्य करूंगा हाथी, घोड़े, रथ और पैदल यह चतुरङ्ग सेना सज्जित हो॥८॥ पिताका वैर लेनेके निमित्त पितृघातकका बिना वध किये और माताकी आज्ञा बिना पालन किये मैं जीवन धारणमें किस प्रकार उत्साही हूंगा ॥९॥ मार्कण्डेयजी बोले मंत्रियोंने उनके यह वचन सुन हाहाकार शब्द द्वारा शोक प्रकाश कर उदासमनसे राजाकी आज्ञानुसार कार्य किया और वह भृत्य, सैन्य तथा वाहनके सहित ॥ १० ॥

(खड्ग शक्ति और ऋष्टि हाथमें लिये) सपरिवार निकले । तब दम भी त्रिकालज्ञ विप्र पुरोहितोंका आशीर्वाद ग्रहण कर ॥ ११ ॥ उरग राजके समान श्वास छोड़ते हुए सीमापालादि सामन्तगणोंको विनाश करते करते शीघ्रतासे दक्षिण दिशामें वपुष्मान्‌के लिये गये ॥१२॥ परिवार कुटुम्ब और आमात्यगणोंके सहित योद्धाके वेशमें दम आये हैं, यह संवाद पाकर संक्रन्दनके पुत्र वपुष्मान्‌ने भी अमर्षमें पूर्ण हो॥१३॥ अविचलितचित्तसे अपनी सैनाको युद्धके लिये आज्ञा दी और नगरसे बाहर जाय यह कहकर दूत भेजा ॥१४॥ कि रे क्षत्रियाधम ! तू अत्यन्त शीघ्र आ भार्याके सहित नारिष्यन्त तेरी प्रतीक्षा करते हैं,इस कारण तू शीघ्र मेरे निकट आगमन कर ॥१५॥ यह सब रुधिरके प्यासे शिलापर पैनाये

निर्ययुःसपरीवाराःपुरकृत्यदं नृपम् ॥ गृहीत्वाचाशिषोविप्रात्रिकालज्ञात्पुरोधसः ॥ ११ ॥ अहिराडिवनिःश्वस्यदमःप्रायाद्वपुष्म तम् ॥ सीमापालादिसामंतान्निघ्नन्याम्यांदिशंत्वरा ॥ १२ ॥ निरीक्ष्यतंसमायांतंवपुष्मान्मर्षपूरितः ॥ संक्रंदनसुतेनापिदमोज्ञातो वपुष्मता ॥ आयातःसपरीवारःसामात्यःसपरिच्छदः ॥ १३ ॥ अकंपितेनमनसाससैन्यानिदिदेशह ॥ दूतंचप्रेषयामासनिर्गम्यनग राद्बहिः ॥१४॥ त्वंशीघ्रतरमागच्छनरिष्यंतःप्रतीक्षते ॥ सभार्यक्षत्रबंधोत्वंसमायाहिममांतिकम् ॥१५॥ इमेमद्बाहुनिर्मुक्ताःशिताबा णाःपपासिताः ॥ भित्त्वाशरीरंसंग्रामेपास्यंतिरुधिरंतव ॥ १६ ॥ श्रुत्वादमस्तुतत्सर्वंदूतप्रोक्तंययौत्वरन् ॥ स्मृत्वाप्रतिज्ञापूर्वोक्तांनिः श्वसन्नुरगोयथा ॥१७॥ आहूतसमरेचैववपुमान्सेनाविकत्थनः॥ ततोयुद्धमतीवासीद्दमस्यचवपुष्मतः॥१८॥ रथीचरथिनानागीनागिना हयिनाहयी॥अयुध्यंतचविप्रर्षेतद्युद्धंतुमुलंह्यभूत्॥१९॥पश्यतांसर्वदेवानांसिद्धगंधर्वरक्षसाम्॥चकंपेवसुधाब्रह्मन्युध्यमानेदमेयुधि॥२०॥ नगजोनरथीनाश्वस्तस्यबाणसहस्तुयः ॥ ततोदमेनयुयुधेसेनाध्यःक्षोवपुष्मतः ॥ २१ ॥

बाण मेरी भुजाओंके द्वारा छूट संग्रामस्थलमें तेरे शरीरको भेदन कर रुधिर पान करेंगे॥१६॥दम दूतके यह सब वचन सुन और पहिली प्रतिज्ञा स्मरण कर सर्पके समान श्वास छोड़ते छोड़ते शीघ्रतासहित गये ॥१७॥ और उसको समरमें बुलाकर कहा "जो प्रकृत पुरुष हैं, वह कभी आत्म श्लाघा नहीं करते।" अनंतर दम और वपुष्मान्‌का घोरतर युद्ध उपस्थित हुआ ॥१८॥ रथीके संग रथी, हाथीके संग हाथी और अश्वारोहीके संग अश्वारोही युद्ध करने लगे । वह तुमुल संग्राम होने लगा ॥१९॥हे विप्रर्षे ! संपूर्ण देवगण, सिद्ध, गंधर्व और यागशीलगण देखने लगे । उनके सामने इस प्रकार युद्ध होने लगा । हे ब्राह्मण ! जिस काल दम क्रोधपूर्वक युद्ध करनेमें प्रवृत्त हुये, उस समय पृथ्वी काँपने लगी॥२०॥ऐसा कोई

हाथी, घोडा वा रथी नहीं था, जो उनके बाण सहन करसकता। वपुष्मान्का सेनापति दमके संग युद्ध करता था ॥ २१ ॥ दमने बाण द्वारा उसका हृदय गाढ रीतिसे विद्ध किया। सेनापतिके गिरतेही वपुष्मान्सहित सब सेना भागनेमें तत्पर होकर प्रस्थान करने लगी ॥२२॥ तब शत्रु दमनकारी दमने कहा--रे दुष्ट ! मेरे तपस्वी पिताको मारकर तू कहां जाता है ॥२३॥ तेने मेरे शस्त्रहीन तपस्वी पिताको निहत किया है, तू क्षत्रिय है,अतएव निवृत्त हो। अनन्तर वपुष्मान्ने अनुज,पुत्र संबंधी और बांधवोंके सहित निवृत्त होकर रथारोहणपूर्वक युद्ध प्रारम्भ किया। तब वपुष्मान्ने धनुषसे छोडे हुए बाणोंके द्वारा आकाश और संपूर्ण दिशा आच्छन्न करदी ॥२४॥२५॥ और बाणजाल द्वारा अश्व तथा रथ सहित

हृदिविव्याधचदमइषुणागाढमानिकम् ॥ तस्मिन्निपतितेसैन्यंपलायनपरंह्यभूत् ॥ २२ ॥ सस्वामिनंततःप्राहदमःशत्रुंदमस्तथा ॥ क्वयासिदुष्टपितरंघातयित्वातपस्विनम् ॥ २३ ॥ अशस्त्रंचनपस्यंतंक्षत्रियोसिनिवर्तताम् ॥ ततोनिवृत्यसदसंयोधयामाससानुजः ॥ ॥२४॥ सपुत्रःसहसंबंधिबांधवैर्युयुधेरथी॥ ततःशरासनान्मुक्तबाणैर्व्याप्तास्ततोदिशः ॥२५॥ दमचसरथंचाशुशरजालैरपूरयत् ॥ ततः पितृवधोत्थेनकोपेनसदमस्तथा ॥ २६ ॥ चिच्छेदतान्छरांस्तेषांविव्याधान्यैश्चतानपि ॥ एकैकेनबाणेनसप्तपुत्रांस्तथाद्विज ॥२७॥ संबंधिबांधवान्मित्रान्निनाययमसादनम् ॥ वपुष्मान्सरथीक्रोधान्निहतात्मजबांधवः ॥ २८ ॥ युयुधेचमनातेजाःशरैराशीविषोपमैः ॥ चिच्छेदतस्यतान्बाणान्सदमश्चमहामुने ॥२९॥ युयुधातेचसंरब्धौपरस्परजयैषिणौ ॥ परस्परशराघातविच्छिन्नधनुषोत्वरा ॥ ३० ॥ गृहीतखड्गावुत्तीर्यचिक्रीडातेमहाबलौ ॥ दमःक्षणंनृपंध्यात्वात्वापितरंनिहतंवने॥ ३१ ॥ केशेष्वाकृष्यचाक्रम्यनिपात्यधरणीतले ॥ शिरोधरायांपादेनभुजमुद्यम्यचाब्रवीत् ॥ ३२ ॥

दमको ढक दिया। तब दमने भी पिताके वधसे उत्पन्न हुए कोप द्वारा॥२६॥उसके बाणोंको छेदन करके शत्रुओंका अंग बाणोंसे विद्ध किया और एक एक बाणसे उसके सात पुत्र॥२७॥अनुज संबंधी और मित्रोंको यमसदनमें भेज दिया।तब रथी वपुष्मान् भी आत्मज बांधवोंके मरनेसे अत्यन्त क्रोधित होकर॥२८॥ सर्पके समान बाणोंसे दमके सहित युद्ध करने लगा॥किन्तु हे महामुने ! दमने उन सब बाणोंको काट डाला॥२९॥इस प्रकार अत्यन्त क्रोध सहित परस्पर परस्परके वधकी इच्छा करके दारुण युद्ध करने लगे।दोनोंही महा बलवान और दोनोंही क्रमशः परस्परके शराघातसे छिन्नधनु हो,दोनों ही खड्गग्रहणपूर्वक उठकर युद्धक्रीडा करने लगे वनमें निहत पिताको क्षण काल चिंता करके दमने उनके॥३०।३१॥केश खैंचकर

उसको धरणीतलमें गिरा दिया और उसकी गर्दन पैरोंमे दबाकर भुजा उठाकर इस प्रकार कहने लगे ॥३२॥ इस क्षत्रियाधम वपुष्मान्का हृदय विदीर्ण करता हूं संपूर्ण देवता मनुष्य सिद्ध और पन्नगगण यह वार्त्ता अवलोकन करें ॥ ३३ ॥ इसप्रकार कहकर दमने असिद्वारा उसका हृदय विदीर्ण किया और उसका रक्तपान करनेमें उद्यत हुए तब देवताओंने उनको निवारण किया ॥ ३४ ॥ उन्होंने उस रक्तसे अपने पिताकी उदक क्रिया सम्पन्न कराई । दमने वपुष्मान्के मांस द्वारा पितृपिंड प्रदान किये और राक्षसकुलोत्पन्न ब्राह्मणोंको भोजन कराया । इस प्रकार पिताके ऋणसे मुक्त होकर फिर अपने राज्यमें लौट आये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥ इस प्रकारके पराक्रमी राजा सूर्यवंशमें प्रगट हुए हैं और भी अनेक बुद्धिमान् शूर यज्ञ करनेवाले धर्मात्मा और पंडित हुए हैं ॥ ३७ ॥ वह ऐसे वेदान्तपारगामी हुए हैं जो कहनेमें नहीं आते न उनकी

पश्यंतुदेवताःसर्वामानुषाःपन्नगाःखगाः॥पाट्यमानंचहृदयंक्षत्रबंधोर्वपुष्मतः॥३३॥ एवमुक्त्वाचसदमोहृदयंचव्यदारयत् ॥ पातुकामश्च ससुरैःक्षतजेननिवारितः ॥ ३४ ॥ ततश्चकारतातस्यारक्तेनैवोदकक्रियाम् ॥ आनृण्यंप्राप्यसपितुःपुनःप्रायात्स्वमंदिरम् ॥ ३५ ॥ वपुष्मतश्चमांसेनपिंडदानंचकारह॥ब्राह्मणान्भोजयामासरक्षःकुलसमुद्भवान्॥३६॥एवंविधाह्रिराजानोबभूवुःसूर्यवंशजाः॥ अन्येपिसुधियःशूरायज्विनोधर्मकोविदाः॥३७॥वेदांतपारगास्तांश्चनसंख्यातुमिहोत्सहे॥एतेषांचरितंश्रुत्वानरःपापैःप्रमुच्यते॥३८॥इति श्रीमार्कण्डेयपुराणेदमचरितेवपुष्मद्वधोनामत्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः॥१३३॥पक्षिणऊचुः॥एवमुक्त्वाजैमिनेयंमार्कण्डेयोमहामुनिः ॥ विसृज्यक्रौष्टुकिमुनिंचक्रेमाध्याह्निकींक्रियाम् ॥ १ ॥ अस्माभिश्चश्रुतंतस्माद्यत्तेप्रोक्तंमहामुने॥अनादिसिद्धमेतद्धिपुराप्रोक्तंस्वयंभुवा ॥२ ॥ मार्कण्डेयायमुनयेयत्तेस्माभिरुदाहृतम् ॥ पुण्यंपवित्रमायुष्यंधर्मकामार्थसिद्धिदम् ॥ ३ ॥

कोई संख्या कर सकता है इनका चारित्र श्रवणकर मनुष्य सब पापोंसे छूटता है ॥ ३८ ॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे दमचरिते भाषाटीकायां वपुष्मद्वधोनाम त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३३ ॥ पक्षी बोले हे जैमिने ! महामुनि मार्कण्डेयजीने इस प्रकार कीर्त्तनकर क्रौष्टुकिमुनिको बिदादे मध्याह्नक्रिया समापन करी ॥ १ ॥ हे महामुने ! जो आपके निकट वर्णन किया; यह अनादिसिद्ध पुराण स्वयंभूने मार्कण्डेयमुनिसे कहा था, हमने उन्हींके निकटसे इसको सुना है ॥ २ ॥ हमने जो आपसे कहा, यह मार्कण्डेयका कहा हुआ मनोहर पुराण पुण्य पवित्र कहा, है इसके पाठ करने अथवा सुननेसे आयुर्वृद्धि और सर्वकामार्थकी सिद्धि होती है ॥ ३ ॥

तथा इसके पढ़ने सुननेसे मनुष्य संपूर्ण पापोंसे छूटा जाता है। आपने पूर्वमें मुझसे जो चार प्रश्न किये थे उन्हींका उत्तर ॥४॥ और पितापुत्रका संवाद स्वयंभूकी सृष्टि मनुगणोंकी उत्पत्ति और राजाओंकाचारित्र भी ॥५॥ मैंने आपसे वर्णन किया। अब और क्या सुननेकी इच्छा करते हो। मनुष्य यह सब श्रवण करने और सभास्थलमें पाठ करानेपर॥६॥ समस्तपापोंसे छूटकर ब्रह्ममें लीन होता है। पितामह ब्रह्माने अष्टादश पुराण कीर्तन किये थे ॥७॥ तिनमें यह विख्यात मार्कण्डेयपुराण सप्तम है। १ब्राह्म, २पाद्म, ३वैष्णव, ४शैव, ५भागवत,॥८॥ ६नारदीय, ७मार्कण्डेय८ आग्नेय ९भविष्य ॥९॥ १०ब्रह्मवैवर्त्त, ११लिंग, १२वाराह १३स्कन्द,॥ १०॥ १४वामन, १५कौर्म,॥१६॥ मत्स्य, १७गरुड, और इसके पीछे १८ अठारहवां ब्रह्मांड है ॥ ११॥

पठतांशृण्वतांसद्यःसर्वपापप्रमोचनम्॥आदावेवकृतायेचप्रश्नाश्चत्वारएवहि ॥४॥ पितुःपुत्रस्यसंवादस्तथासृष्टिःस्वयंभुवः॥ तथामनूनां स्थितयोराज्ञांचचरितंमुने ॥५॥ अस्माभिरेतत्तप्रोक्तंकिमन्यश्रोतुमिच्छसि ॥ एतान्मर्त्यो नरः श्रुत्वापठनवाससभासु च॥६॥ विध्यसर्वपापानि ब्रह्मणोतेलयंव्रजेत्॥अष्टादशपुराणानियानिप्राहपितामहः ॥७॥ तेषांतुसप्तमंज्ञेयंमार्कण्डेयंसुविश्रुतम् ॥ ब्राह्मंपाद्मंवैष्णवंचशैवंभागवतंतथा ॥८॥ तथान्यन्नारदीयंचमार्कंडेयचसप्तमम् ॥ आग्नेयमष्टमंप्रोक्तंभविष्यंनवमंतथा ॥९॥ दशमंब्रह्मवैवर्त्तंलैंगमेकादशंस्मृतम् ॥ वाराहंद्वादशंप्रोक्तंस्कांदमत्रत्रयोदशम् ॥ १० ॥ चतुर्दशंवामनंचकौर्मंपंचदशंतथा ॥ मात्स्यंचगारुडंचैवब्रह्मांडंचततःपरम् ॥ ११ ॥ अष्टादशपुराणानांनामधेयानियःपठेत ॥ त्रिसंध्यंजपतेनित्यंसोऽश्वमेधफलंलभेत ॥ १२ ॥ सर्गश्चप्रतिसर्गश्चवंशोमन्वंतराणिच ॥ वंशानुचरितंचैवपुराणंपंचलक्षणम् ॥ १३ ॥ चतुःप्रश्नसमोपेतंपुराणंह्येतदुत्तमम् ॥ श्रुत्वापुनश्चतेपापंकल्पकोटिशतैःकृतम् ॥ १४ ॥ ब्रह्महत्यादिपापानियान्यन्यान्यशुभानिच ॥ तानिसर्वाणिनश्यंतितृणंवातहतंयथा ॥ १५ ॥ पुष्करेदानजंपुण्यंश्रवणादस्यजायते ॥ सर्ववेदाधिकफलंसमाप्त्याचाधिगच्छति ॥ १६ ॥

इन अठारह पुराणोंके नाम जो मनुष्य पाठ करता है और तीनों संध्यामें जप करता है, उसको अश्वमेध यज्ञके फलके समान फल प्राप्त होता है ॥१२॥ सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश वर्णन, मन्वन्तर और वंशानुचरित, यह पुराणके पांच लक्षण हैं ॥१३॥ चार प्रश्न युक्त यह उत्तम मार्कण्डेयपुराण श्रवण करनेसे सौ करोड कल्पके लिये पाप नष्ट होते हैं॥१४॥ और ब्रह्म हत्यादि संपूर्ण महापाप तथा अन्यान्य सब अमंगल वायुसे हत हुये तृणके समान इसके पाठसे नष्ट हो जाते हैं॥१५॥ पुष्करमें दान करनेसे जो पुण्य होता है, इसके सुननेसे भी वैसाही पुण्यलाभ होता है इसकी समाप्तिमें सम्पूर्ण वेदपाठके समान

फल प्राप्त होता होता है ॥१६॥ जो इस पुराणको सुनावे ब्रह्माके समान उसका पूजन करना चाहिये, गंध पुष्प वस्त्रादिसे पूजन कर ब्राह्मणोंको भोजन करावे ॥१७॥ राजाको यथाशक्ति ग्राम और वाहन देने चाहिये यह पुराण सम्पूर्ण ही वेदार्थसे युक्त है. धर्मशास्त्रका स्थान है इसको सुन कर सब अर्थोंकी प्राप्ति होती है॥१८॥यह सम्पूर्ण पुराण सुनकर बुद्धिमान्‌को व्यासका पूजन करना चाहिये,तो धर्म अर्थ काम मोक्ष चारों पदार्थ प्राप्त होते हैं॥१९॥ सुवर्ण वस्त्र अलंकारसे युक्त गुरुके निमित्त गौ देनी चाहिये श्रवणका फल प्राप्तिके निमित्त दानसे गुरुको सन्तुष्ट करे॥२०॥ जो मनुष्य विना वाचककी पूजा किये एक श्लोक भी सुनते हैं वह पुण्यलाभ नहीं कर सकते वरन् पण्डित उनको शास्त्र–चोर कहते हैं ॥२१॥

यःश्रावयेत्पूजयेत्तंयथादेवंपितामहम् ॥ गंधपुष्पैस्तथावस्त्रैर्ब्राह्मणानांचतर्पणैः॥१७॥ यथाशक्त्याचदातव्यंनृपैर्ग्रामादिवाहनम् ॥ एतत्पुराणमखिलंवेदार्थैरुपबृंहितम् ॥ धर्मशास्त्रैकनिलयंश्रुत्वासर्वार्थमाप्नुयात् ॥१८॥ श्रुत्वापुराणमखिलंव्यासंसंपूजयेद्बुधः ॥ धर्मार्थकाममोक्षाणांयथोक्तफलहेतवे ॥ १९ ॥ दद्याद्गांगुरवेस्वर्णवस्त्रालंकारसंयुताम् ॥ श्रवणस्यफलावाप्त्यैदानैःसंतोषयेद्गुरुम् ॥ २० ॥ अपूज्यपाठकर्तारंश्लोकमेकंशृणोतियः ॥ नासौपुण्यमवाप्नोतिशास्त्रचोरःस्मृतोहिसः ॥२१॥ नतस्यदेवाःप्रीणंतिपितरोनैवपुत्रकान् ॥ दत्तंश्राद्धंतथेच्छंतितीर्थस्नानफलंनच ॥ २२ ॥ लभतेशास्त्रचोरश्चनिंदांसज्जनसंसदि ॥ अवज्ञयानश्रोतव्यंशास्त्रमेतद्विचक्षणैः ॥२३॥ पठ्यमानेत्ववज्ञातेसाधुभिःशास्त्रउत्तमे ॥ मूकोभवतिजन्मानिसप्तमूर्खःप्रजायते ॥२४॥ श्रुत्वातत्पूजयेद्यस्तुपुराणंसप्तमंपुनः ॥ सर्वपापविनिर्मुक्तः पूनात्येवनिजंकुलम् ॥२५॥ पूतोयातिनसंदेहोविष्णुलोकंसनातनम् ॥ च्युतस्ततःपुनर्नैवसभविष्यतिमानवः ॥ २६ ॥ पुराणश्रवणादेवपरंयोगमवाप्नुयात् ॥ नास्तिकायनदातव्यंवृषलेवेदनिंदके ॥ २७ ॥

देवता उनके प्रति अप्रसन्न होते हैं, पितृगण भी ऐसे पुत्रोंपर प्रसन्न नहीं होते, वह उनका दिया श्राद्धभी ग्रहण नहीं करते तथा उनको तीर्थस्नानका फल भी नहीं मिलता है॥२२॥शास्त्रचोरकी सज्जनोंकी सभामें निन्दा होती है,बुद्धिमानोंको यह शास्त्रअवज्ञा करके न सुनना चाहिये॥२३॥जो साधुओंके शास्त्र पढनेमें अवज्ञा करते हैं वह कई जन्ममूक होकर सात जन्मतक बहरे होते हैं॥२४॥जो इस सप्तम पुराणको सुनकर पूजन करते हैं वह सब पापसे रहित हो अपने कुलको पवित्र करते हैं॥२५॥ इसमें संदेह नहीं वह पवित्र होकर विष्णुलोकको जाते हैं. जहांसे फिर इस संसारमें नहीं आते ॥ २६ ॥ एकमात्र इस पुराणके सुननेसे ही उत्कृष्ट योगलाभ होता है । किन्तु यह पुराण नास्तिक, शूद्र, वेदनिन्दक ॥ २७ ॥

गुरुद्वेषी भग्नव्रत, मातापिताके त्यागी निन्दक तथा वेदशास्त्रकी निन्दाकरनेवालेको न दे॥२८॥मर्यादा भंगकरनेवाले और ज्ञातिदूषक मनुष्योंको प्रदान न करे, यही क्या,ऐसोंको प्राण--कंठगत होनेपर भी न दे॥२९॥इन सब मनुष्योंमें यदि कोई लोभ, मोह वा भयसे इस पुराणका पाठ करता है; अथवा पाठ कराकर सुनता है,वा उक्त कारणोंसे यदि कोई उसके निकट पाठ करता है,तो उसकी निस्सन्देह नरकमें गति होती है ॥३०॥ मार्कण्डेयजी बोले- यह संपूर्ण उपाख्यान धर्म, स्वर्ग और अपवर्गकादेनेवाला है,जो पढता और सुनता है,उसके सब मनोरथ सिद्ध होते हैं ॥३१॥ उसको कभी आधिव्याधिके दुःख नहीं होते, इसमें संदेह नहीं,वह ब्रह्महत्यादि पापोंसे छूटजाता है ॥ ३२ ॥ उसके स्वजन और मित्र

गुरुद्विजातिनिंदायतथाभग्नव्रतायच ॥ मातापित्रोर्निंदकायवेदशास्त्रादिनिंदिने ॥२८॥ भिन्नमर्यादिनेचैवतथावैज्ञातिकोपिने ॥ एतेषां नैवदातव्यंप्राणैःकंठगतैरपि ॥२९॥ लोभाद्वायदिवामोहाद्भयाद्वापिविशेषतः ॥ पठेद्वापाठयेद्वापिसगच्छेन्नरकंध्रुवम् ॥३०॥ मार्कण्डेय उवाच॥एतत्सर्वमुपाख्यानंधर्म्यंस्वर्गापवर्गदम् ॥ यःशृणोतिपठेद्वापिसिद्धंतस्यमनोहितम् ॥३१॥ आधिव्याधिजदुःखेनकदाचिन्नाभि युज्यते॥ ब्रह्महत्यादिपापेभ्योमुच्यतेनात्रसंशयः॥३२॥संतःस्वजनमित्राणिभवंतिहितबुद्धयः॥नारयःसंभविष्यंतिदस्यवोवाकदाचन ॥ ॥३३॥सदर्थोमिष्टभोगीचदुर्भिक्षनावसीदति॥परदारपरद्रव्यपरहिंसादिकिल्बिषैः ॥३४॥ मुच्यतेनेकदुःखेभ्योनित्यंचैवद्विजोत्तम ॥ ऋद्धिर्वृद्धिःस्मृतिशांतिःश्रीःपुष्टिस्तुष्टिरेवच ॥ नित्यंतस्यभवेद्विप्रयःशृणोतिकथामिमाम्॥३५॥ मार्कण्डेयपुराणमेतदखिलंशृण्वन्नशो च्यःपुमान्योवासम्यगुदीरयेद्दसमयंशोच्योनसोपिद्विज ॥ योगज्ञानविशुद्धसिद्धिसहितःस्वर्गादिलोकेष्वमोशक्राद्यैश्चसुरादिभिःपरि वृतःस्वर्गेसदापूज्यते ॥ ३६ ॥ पुराणमेतच्छ्रुत्वाचज्ञानविज्ञानसंयुतम् ॥ विमानवरमारुह्यस्वर्गलोकेमहीयते ॥ ३७ ॥

हितकारी होते हैं,उसका कोई शत्रु नहीं होता,तथा उसको चोरोंकी बाधा नहीं होती ॥३३॥ उसके यहां अच्छा धन रहता है,वह मिष्टान्नभोजी होकर कभी दुर्भिक्षसे पीडित नहीं होता,पराई स्त्री,पराया द्रव्य,पराई हिंसाके पापोंमे॥३४॥तथा और भी अनेक प्रकारके दुःखोंसे छूट जाता है, हे द्विज ! ऋद्धि, वृद्धि,स्मृति,शान्ति,लक्ष्मी, पुष्टि, तुष्टि उसको नित्यप्रति होती हैं जो इस कथाको सुनता है॥३५॥इस संपूर्ण "मार्कण्डेयपुराण" को सुनकर फिर शोचके योग्य नहीं रहता है । और जो ब्राह्मण इसको कहते हैं, वहभी शोचके योग्य नहीं होते, वह योग ज्ञान और विशुद्ध सिद्धिके सहित स्वर्गादि लोकको जाते हैं और इन्द्रादि देवताओंसे युक्तहोकर स्वर्गमें सदा पूजित होते हैं ॥ ३६ ॥ इस ज्ञान विज्ञानमे संयुक्त

पुराणको सुनकर पुरुष अच्छे विमानमें बैठ स्वर्गलोकको जाता है॥३७॥सूक्ष्म [illegible] बुद्धिमान् उन मार्कण्डेयजीने प्रथम इस पुराणके अक्षरोंकी संख्यासे इस पुराणमें छःहजारनौसै श्लोक वर्णन किये॥३८॥३९॥जैमिनि [illegible] ण।महाभारतमें जो सन्देह नष्ट नहीं हुआ तुमने सख्य(मित्र) भावसे मेरा वह संशय दूर किया और कौन इस प्रकार करसकता है ?॥४०॥ [illegible] दीर्घायु,रोगरहित और बुद्धिविशारद होओ,तुम्हारी बुद्धि

पुराणाक्षरसंख्याचप्रख्यातातत्त्वबुद्धिना॥श्लोकानांषट्सहस्राणितथाचा [illegible] ॥३८॥ श्लोकास्तत्रनवाशीतिरेकादशसमाहिताः ॥
कथितामुनिनापूर्वमार्कण्डेयेनधीमता॥३९॥जैमिनिरुवाच ॥ ॥ भारतेन [illegible] संशयस्फोटनंद्विजाः ॥ तद्भवद्भिःकृतंयन्नकश्चिद्व्यक
रिष्यति॥४०॥यूयंदीर्घायुषःस्यातप्रज्ञाबुद्धिविशारदाः ॥ सांख्ययोगेत [illegible] बुद्धिरव्यभिचारिणी॥४१॥पितृशापकृताद्दुःखाद्दौर्मन
स्यंव्यपेतुवः॥एतावदुक्त्वावचनंजगामस्वाश्रमंमुनिः ॥ चिंतयन्परमोदा [illegible] वाक्यर्मीरितम् ॥४२॥ इति श्रीमार्कण्डेयमहापुराणे
एतत्पुराणमाहात्म्यश्रवणपठनफलंनामचतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः [illegible] सम्पूर्णमिदंमार्कण्डेयमहापुराणम् ॥श्रीशःपायात् ॥

सांख्ययोगमें अव्यभिचारिणीहो॥४१॥तुम पिताके दिये शापसे दुःखको नहीं प्रा [illegible] से यह वचन कहकर और उन परमोदार पक्षियोंके वचन स्मरण करते हुए मुनि अपने आश्रममें आये॥४॥ इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे भुवन [illegible] पण्डितकुलतिलकमिश्रसुखानन्दसूरीसूनुमुरादाबादनिवासि पण्डितकन्हैयालालमिश्रकृतभाषाटीकायां पुराणश्रवणपठनफलं नाम चतुस्त्रिंशदधि [illegible] ऽध्यायः ॥१३४॥ श्रीमज्जगदीश्वरार्पणमस्तु ॥छ॥ ॥छ॥

दोहा--श्रीगणेश पदपद्मगहि, व्यासमुनिहि शिरनाय । मार्कण्डेय पु [illegible] टीका लिखी बनाय ॥ १ ॥
पढहिं सुनहिं कर प्रेम जे, लहहिं पदारथचार । सकल कामन [illegible] प्रद, देवनचरित उदार ॥ २ ॥
वसत रामगंगा निकट, नगर मुरादाबाद । भजन करत [illegible] हां, बुधज्वालापरसाद ॥ ३ ॥
तिनको मैं लघुभ्रात हूं, नाम कन्हैयालाल । प्रतिपदको टी [illegible] ,भाषा ललित रसाल ॥ ४ ॥
जगद्विदित महिमा अतुल, खेमराज सुखदान । वेङ्कटेश्वर यं [illegible] राखत गुणियनमान ॥ ५ ॥
तिनहित यह टीकाकियो, निजमतिके अनुसार । हैं पूरण विश्व [illegible] करिहैं अंगीकार ६ ॥
सम्वत् वसु शर अंक विधु, भाद्र पूर्णिमा पाय । पूर्णकियो भाष [illegible] टीका सब सुखदाय ॥ ७ ॥ ॥ समाप्तोऽयंग्रन्थः ॥

॥ अथ सभाषाटीकं श्री मा